जम्मू-कश्मीर का स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य : एक विवेचन

-डॉ० राजकुमार

508

जम्मू-कश्मीर अकैडेमी ऑफ आर्ट, कल्चर एण्ड लैंग्वेजिज़, जम्मू

जम्मू-कश्मीर का स्वातंत्र्योत्तर
हिन्दी साहित्य : एक विवेचन
-डॉ० राजकुमार

जम्मू कश्मीर का स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी साहित्य

एक विवेचन

डॉ. राजकुमार
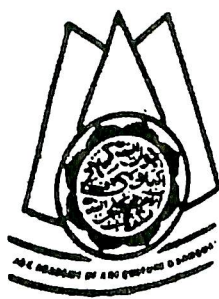
जे० एंड के०
अकैडमी ऑफ आर्ट, कल्चर एंड लैंग्वेजिज़, जम्मू

जम्मू कश्मीर का स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी साहित्य : एक विवेचन

© **अकैडमी**

प्रथम संस्करण : 1999 ई.
प्रकाशक : सेक्रेटरी, जे. एंड. के. अकैडमी ऑफ आर्ट, कल्चर एंड लैंग्वेजिज़, जम्मू
मुद्रक : रोहिणी प्रिंटर्ज़, कोट किशन चंद, जालन्धर
मूल्य : 105/- रुपये

Jammu-Kashmir Ka Swatantroyatter Hindi Sahitya.
(Critical Study of Post Independence Hindi Literature of J&K)

प्रकाशकीय

जम्मू-कश्मीर राज्य में हिन्दी-साहित्य सृजन की परम्परा अठारहवीं शताब्दी के कवि दत्तु तथा कश्मीर के संत कवि परमानन्द की अविस्मरणीय हिन्दी सेवा से अनुस्यूत है। कालान्तर में इसी परम्परा का निर्वाह करते चले आने में प्रयत्नशील राज्य के हिन्दी रचनाकारों ने समूचे भारतीय हिंदी साहित्य में अपनी एक विशिष्ट पहचान बनायी है।

समय की गति समाज के साथ-साथ साहित्य को भी बदलाव देती चलती है। रचनाकार इस बदलाव का मात्र द्रष्टा न होकर भुक्तभोगी भी होता है। अतः साहित्य की विविध विधाओं से जुड़ी उसकी कृतियों में जहां बदलाव का सूक्ष्म-स्थूल प्रभाव मुखर होता है वहां काल-संगत प्रवृत्तियां मात्र चलन न होकर उसके भुक्त यथार्थ का दस्तावेज़ बन जाती हैं।

साहित्यिक जागरण एवं नव चेतना के आकलन स्वरूप हमने कई महत्त्वपूर्ण प्रकाशन अपने पाठकों के नाम किये हैं। 'जम्मू-कश्मीर का स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य: एक विवेचन' जैसी कृति भी हमारे इन्हीं प्रयासों में से एक है जो राज्य के हिन्दी सृजन कर्म की क्रमबद्ध विकास यात्रा को चिह्नांकित करती है।

डॉ. राजकुमार स्वयं एक सुधि लेखक, चिंतक तथा परिश्रमी साधक हैं। यद्यपि साहित्य का सर्वेक्षण कर पाना सहज नहीं होता तथापि हमें आशा है कि उनका यह श्रमसाध्य प्रयास पाठकों को लाभान्वित करने में अवश्य समर्थ हो सकेगा।

बलवंत ठाकुर
सचिव

जम्मू-कश्मीर का स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य :एक विवेचन

मूल्यह्रास 5.1.14 साक्षात् के क्षण (भुवनपति शर्मा) 5.1.14.1 जीवन-अनुभूतियों और अभिव्यक्ति की छटपटाहट 5.1.14.2. भारतीय जीवन-दृष्टि और अभिव्यक्ति की छटपटाहट 5.1.15.1 मेरे गीत तुम्हारे गीत (वेद कुमारी) 5.1.15.1.1. नारी-हृदय और प्रणयानुभूति का चित्रण 5.1.15.1.2. क्रांति-चेतना 5.1.15.1.3. जीवन-दर्शन 5.1.15.2. मेरे गीत तुम्हारे गीत (डॉ० राम प्रताप) 5.1.15.2.1. प्रणयानुभूति का स्वरूप 5.1.15.2.2. भारतीय जीवन-दृष्टि के अन्तर्गत आधुनिक विसंगति पर व्यंग्य 5.1.15.2.3. जनकल्याण-भावना 5.1.16. तिनका तिनका घोंसला (रमेश मेहता) 5.1.16.1 व्यवस्थाजन्य दु:खद स्थितियों का चित्रण 5.1.16.2. स्वार्थांध राजनीति और मानव-मूल्यों का ह्रास 5.1.17 मीठे बोल तीखे स्वर (सत्यपाल श्री वत्स) 5.1.17.1. प्रगतिशील कल्याण-भावना 5.1.17.2. चारित्रिक खोखलेपन पर चोटें 5.1.17.3. विसंगतिजन्य व्यंग्य 5.1.18. चौराहे की आग (आदर्श) 5.1.18.1 रूपवाद का विरोध 5.1.18.2. विसंगत व्यवस्था के प्रति संदेह और विरोध 5.1.18.3 संस्कार-शोधन का प्रयास 5.1.18.4. पूंजीवादी राजनीति का स्वरूप-चित्रण 5.1.19. यथार्थ के घेरे में (मनोज शर्मा) 5.1.19.1. अध्यात्मवाद का विरोध 5.1.19.2. जीवन-यथार्थ और मानव-मूल्यों की पहचान 5.1.19.3. संघर्ष-चेतना का स्वरूप-विकास 5.1.20 दे दो एक वसंत (जितेन्द्र उधमपुरी) 5.1.20.1. जीवन विकृतियों का चित्रण 5.1.20.2. प्रणयानुभूति का स्वरूप और प्रकृति-प्रेम 5.1.20.3. आतंकवाद का विरोध 5.1.20 4. कवि-कर्म का स्वरूप 5.1.20.5 नवक्रान्ति का आह्वान 5.1.21 सुरभि (राज भल्ला) 5.1.21.1. अलौकिक सत्ता के प्रति आकर्षण 5.1.21.2. देश -प्रेम 5.1.21.3. आधुनिक राजनीति पर व्यंग्य 5.1.21.4. देश की सामाजिक कुरीतियां और समस्याएं 5.1.21.5. मानव-मूल्यों का ह्रास 5.2. **कहानी :** नवां दशक 5.2.1. **फुटकर हिन्दी कहानी** 5.2.1.1. संजना कौल 5.2.1.2. शक्ति शर्मा 5.2.1.3. क्षमाकौल 5.2.1.4. महाराज कृष्ण शाह 5.2.1.5. चन्द्रकान्ता 5.2.1.6. अलंकार 5.2.1.7. दीदार सिंह 5.2.1.8. ज्योतिश्वर 'पथिक' 5.2.1. 9. रमेश मेहता 5.2.1.10. ओ.पी.शर्मा 'सारथी' 5.2.1.11. संतोष कौल 5.2.1.12. ओंकार नाथ बख्लू 5.2.1.13. निर्मल चोपड़ा 5.2.1.14. बंसी लाल 5.2.1.15. रत्न लाल शान्त 5.2.1.16. पद्मा सचदेव 5.2.1.17. किरण बख्शी 5.2.1.18. सुदर्श त्रिलोचन 5.2.1.19. वीणाधर 5.2.1.20. धर्मचन्द प्रशान्त 5.2.1.21. शिव रैणा 5.2.1.22. नरेन्द्र गुप्ता 'बेचैन' 5.2.1.23 वेद राही 5.2.1.24. मनोज शर्मा 5.2.1.25. जियालाल हण्डू 5.2.2. **नवें दशक के हिन्दी कहानी-संग्रह** 5.2.2.1. सौगात (अवतार कृष्ण राजदान) 5.2.2.2. चेरी के फूल (अशोक जेरथ) 5.2.2.3. कलाकार के आंसू (राजभल्ला) 5.2.2.4. अरथी (हरिकृष्ण कौल) 5.2.2.5. बारह कहानियां (ओम गोस्वामी) 5.2.2.6. रोशनी से दूर (छत्रपाल) 5.2.2.7. सर्द आग (ओम गोस्वामी) 5.2.2.8. खुले हाथ (डॉ० राजकुमार) 5.2.2.9. अनकही (दीदार सिंह) 5.2.2.10. दस दरवाजे (आदर्श) 5.2.2.11. अनजाने क्षितिज (डॉ० अशोक जेरथ) 5.2.2.12. जाल (डॉ० राजकुमार) 5.3. **उपन्यास :** नवां दशक 5.3.1. प्यार का सपना (सुरेश दुबे) 5.3.2. धरती बोलती है (सुदर्श त्रिलोचन)

6. उपसंहार

7. संदर्भ ग्रन्थ सूची

विषय-प्रवेश

जम्मू-कश्मीर में हिन्दी साहित्य-लेखन का प्रारम्भ महाराजा रंजीत देव के शासन काल में उनके ज्येष्ठ पुत्र ब्रजराज देव के दरबारी कवि दत्तू (देवदत्त और देवीदत्त इन्हीं का नाम है) द्वारा हुआ है। भारतीय हिन्दी साहित्य के इतिहास की दृष्टि से कवि दत्तू का युग रीतिकाल में पड़ता है, इसलिए रीतिकालीन काव्य प्रवृत्तियां कवि दत्तू की रचनाओं में मिल जाती हैं।

वैसे जम्मू-कश्मीर में महाराजा ब्रजराज देव के देहांत (सन् 1786 ई०) के बाद हिन्दी लेखन-परम्परा अवरुद्ध हो जाती है। फिर भी इन्हीं के अन्य दरबारी कवि गंगाराम का नाम भी लिया गया है, विद्वान इन्हें कवि दत्तू का समकालीन मानते हैं, परन्तु इनकी कोई रचना उपलब्ध नहीं।

प्रो० राम नाथ जी शास्त्री ने महाराजा गुलाब सिंह के दरबार से रुष्ट कवि पंडित भवनाथ की तीन रचनाओं का नाम गिनाया है, ये रचनाएं हैं-विवाह में पढ़ा जाने वाला 'मंगलाष्टक', 'श्री त्रिकुटा स्तोत्र' और 'श्री शीतला दुर्गा स्तोत्र'।[1]

इन्हीं पण्डित भवनाथ के पुत्र पण्डित नीलकण्ठ (देहांत सन् 1890 ईस्वी) महाराजा रणवीर सिंह (शासनकाल 1856-अगस्त 1885 ई०) के दरबारी कवि हैं। हिन्दी साहित्य के इतिहास-काल की दृष्टि से कवि पण्डित नीलकण्ठ का रचनाकाल 'भारतेन्दु युग' में पड़ता है। पण्डित नीलकण्ठ के प्रति डॉ० गंगा दत्त शास्त्री 'विनोद' ने लिखा है, "इनकी अनेक रचनाएं मिलती हैं, जिनमें से 'वंशावली' और 'कीर्तिविलास' का विशेष महत्व है, कवि गंगाराम द्वारा रचित 'मामल्याष्टक' के आठ श्लोक कवि नीलकण्ठ रचित 'कीर्तिविलास' में उद्धृत किए गए हैं।"[2]

भारतेन्दु काल में जब पंडित नीलकण्ठ जम्मू प्रान्त में राजाश्रित हिन्दी साहित्य का सृजन कर रहे थे तब इन्हीं के समकालीन कश्मीरी संत कवि परमानन्द (1790-1880 ई०) (इन्हें नन्दराम भी कहा गया है) कश्मीर में हिन्दी में कविता लिख रहे थे। प्रो० चमन लाल सपरू ने इन्हें कश्मीर का पहला हिन्दी कवि कहा है, इनकी लगभग एक दर्जन कविताएं उपलब्ध हैं, इनकी कविता में भक्ति भावना और अद्वैत भावना के दर्शन होते हैं, इन्होंने वेदान्त तथा अन्य आध्यात्मिक उपदेश दिए हैं।[3] प्रो० चमनलाल सपरू ने कश्मीर संत-परम्परा के कृष्ण राजदान और लक्ष्मण जू 'बुलबुल' का नाम भी लिया है, परन्तु इनकी हिन्दी रचनाओं के प्रति कुछ नहीं कहा। जबकि प्रो० भूषण लाल कौल ने इन पंक्तियों के लेखक से उपर्युक्त तीनों संतों को 18-19वीं शताब्दी के संत हिन्दी कवि कहा है और कहा है कि इनकी हिन्दी खिचड़ी (मिश्रित) हिन्दी है।

राष्ट्रीय स्तर के हिन्दी साहित्य के संदर्भ में महाराजा रणवीर सिंह का शासन काल भारतेन्दु युग में पड़ता है, परन्तु प्रदेश के हिन्दी साहित्यकारों में अभी तक भारतेन्दु युगीन साहित्य संवेदना ने बल नहीं पकड़ा था, कवि या तो आश्रयदाता की स्तुति या ईश्वर और अध्यात्म आदि के विषय में ही उलझे हुए थे। प्रो० सुभाष भारद्वाज ने इस काल के हिन्दी साहित्य का लेखा

जोखा प्रस्तुत करते हुए लिखा है, ''यद्यपि महाराज रणबीर सिंह ने अपने शासन काल में हिन्दी तथा संस्कृत साहित्य के सृजन एवं प्रकाशन के लिए महत्वपूर्ण काम किया और विद्वानों एवं साहित्यकारों को इसके लिए ठोस प्रोत्साहन दिया परन्तु देश के अन्य भागों में चल रहे साहित्यिक आंदोलन से प्रस्फुटित देशभक्ति, समाज सुधार, भाषा प्रेम आदि की प्रवृत्ति यहां के कवि में जागृत नहीं हो पाई।''[4]

महाराज प्रताप सिंह के शासन काल (सन् 1885-1925 ई०) में हिन्दी साहित्य-लेखन की गति और अधिक धीमी पड़ गई। हिन्दी साहित्य की दृष्टि से यह काल भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग और छायावाद काल के पूर्वार्ध तक विस्तृत है। इस काल के स्थानीय हिन्दी कवियों के प्रति प्रो० सुभाष भारद्वाज ने लिखा है, ''इनके काव्य में कोई विशेष काव्य कौशल नहीं।''[5]

इस काल के राज दरबार में साहित्य-सृजन हुआ ही नहीं, महाराज प्रताप सिंह ने अधिकतर पूजा-पाठ, कर्मकाण्ड, यज्ञ, तप, दान में रुचि ली तथा संस्कृत के विद्वानों के सम्मान में योगदान दिया। इन्होंने मिस्टर स्टाईन को बुलाकर 1886 -94 ई० तक एकत्रित किए गए हस्तलेखों की वृहत् सूची तैयार करवाई।[6]

इस काल में कश्मीर में हिन्दी साहित्य की स्थिति भी लगभग जम्मू के हिन्दी लेखन जैसी ही रही, यहां मात्र पंडित जिन्दा कौल (मास्टर जी) ही हिन्दी कविता लिख रहे थे। प्रो० चमन लाल सपरू इन्हें रहस्यवादी कवियों में अग्रणी मानते हैं, ये शंकर के वेदान्त से प्रभावित हैं।[7]

परन्तु प्रो० चमन लाल सपरू के कथन से यह स्पष्ट नहीं होता कि इनकी प्रसिद्ध पुस्तक 'स्मरण' हिन्दी पुस्तक है कि कश्मीरी। हां प्रो० भूषण लाल कौल ने प्रस्तुत पंक्तियों के लेखक से कहा है कि जिन्दाकौल की 1924 ई. में प्रकाशित हिन्दी पुस्तक 'पत्रम् पुष्पम्' की अब एक मात्र फोटोस्टेट प्रति उनके पास है। लेखक ने फोटोकापी देखी भी है।

महाराज हरिसिंह के शासन काल (1925-1948 ई०) के दो प्रमुख कवि हैं- पण्डित हरदत्त शर्मा (1890-4/1956 ई०) तथा पण्डित नरोत्तम शास्त्री गांगेय 1900-10/1955 ई०। परन्तु ये दोनों कवि राजाश्रय से मुक्त और स्वतंत्र लेखन कर रहे थे। इसी तरह स्वर्गीय पुरुषार्थवती (1911-30 ई०), श्रीमती सत्यवती मलिक, दुर्गा प्रसाद काचुर (1908-56 ई०) दीनू भाई पन्त, प्रो० पृथ्वी नाथ 'पुष्प', गंगादत्त शास्त्री 'विनोद', चन्द्रकान्त जोशी, प्रो० सुभाष भारद्वाज आदि कवियों की एक-एक, दो-दो रचनाएं प्रकाशित हुईं।

इस काल में शासन की ओर से प्रकाशन और प्रोत्साहन की कोई सुविधा नहीं थी, मात्र हिन्दी के प्रचार-प्रसार और साहित्य लेखन की प्रेरणाएं समाज सेवी संस्थाओं की छोटी मोटी एकाध पत्रिकाएं ही दे रही थीं। अधिकतर कवि अपनी रचनाएं साहित्य-संस्थाओं की गोष्ठियों में पढ़ कर ही कृतकृत्य हो जाते थे। वस्तुतः यह युग जम्मू-कश्मीर में हिन्दी के प्रचार-प्रसार का युग था।

1930 के आस पास तो यहां हिन्दी का पठन-पाठन व्यवहारिक दृष्टि से उपयोगी और वांछनीय ही नहीं था, इस काल में हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं को पढ़ने का प्रचलन बहुत ही सीमित था।

जम्मू से श्री बंसीलाल सूरी ने प्रथम मासिक हिन्दी पत्रिका 'वसुधा' 1932 ई. में निकाली, जिसका रंग रूप आकर्षक और सामग्री उच्चकोटि की थी परन्तु धनाभाव के कारण यह पत्रिका मात्र तीन अंक निकाल कर ही बंद हो गई। [8] इसी काल में 'भारती' और 'उषा' पत्रिकाएं भी प्रकाशित होने लगीं। [9]

1936-37 ई० में श्रीनगर से 'प्रताप' पत्रिका प्रकाशित हो रही थी। 1939 ई० में श्री दुर्गा प्रसाद काचुर और प्रो० पृथ्वी नाथ 'पुष्प' ने कश्मीर से हिन्दी पत्रिका 'चन्द्रोदय' का प्रकाशन आरम्भ किया । [10]

पण्डित हरदत्त शर्मा ने जम्मू से साप्ताहिक पत्र 'दीपक' निकाला जिसके 1940 के किसी अंक में डॉ० गंगादत्त शास्त्री 'विनोद' की प्रथम रचना 'एक हिन्दी कविता' प्रकाशित हुई।[11] उषा के अगस्त 1942 के अंक में दीनू भाई पन्त की हिन्दी कविता 'जुगनू' तो 1942 के ही किसी अन्य अंक में इन्हीं की कविता 'पथ पर दीप जलाने वाले' प्रकाशित हुई। [12]

इन पत्रिकाओं के अतिरिक्त 'रणवीर' और हिन्दी उर्दू मिश्रित पत्रिका 'गुलाब' भी प्रकशित हो रही थी।

ये सभी पत्र-पत्रिकाएं प्रदेश में हिन्दी प्रेम के उमड़ते ज्वार और साहित्य-साधना का प्रतिनिधित्व कर रही थीं। जिससे हिन्दी भाषा और साहित्य-साधना का वातावरण अधिक सप्राण और गतिशील हो रहा था। फिर भी इनमें प्रदेश के लेखकों की प्रकाशित रचनाएं बहुत कम मिलती हैं।

चौथे दशक के अंत तक पहुंचते-पहुंचते प्रदेश के लोगों का भारतीय हिन्दी-साहित्य जगत से सम्पर्क बढ़ गया तो लोग राजाश्रय से मुक्त होकर साहित्यिक पत्रिकाओं के सम्पर्क में आने लगे जिससे प्रदेश में हिन्दी साहित्य-सृजन ने भी गति पकड़ ली।

पांचवें दशक में भी प्रदेश में हिन्दी भाषा और साहित्य-सृजन की प्रेरणा और प्रचार बढ़ता रहा और अब लेखक और श्रोता मिल बैठकर गोष्ठियां करने लगे, कवि- सम्मेलनों का आयोजन होने लगा। श्री धर्मचन्द 'प्रशान्त' ने लिखा है, "उत्साही हिन्दी प्रेमी दल बनाकर अत्यन्त विरोधी परिस्थितियों के बावजूद हिन्दी के प्रचार-प्रसार के कार्य में समर्पित निष्ठा से अग्रसर हो रहे थे। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए जम्मू में 1942 ई. में हिन्दी प्रचारिणी सभा की स्थापना हुई। [13]

यह संस्था काशी नागरी प्रचारिणी सभा के साथ सम्बद्ध थी। श्री धर्म. चन्द प्रशान्त, श्री बंसीलाल सूरी, शान्ता भारती, पंडित रमाकान्त भारद्वाज, श्री भागमल आदि महानुभाव इसके

संचालन में तन मन धन से सक्रिय रहे।''[14] परन्तु 1947 ई० के बाद यह संस्था समाप्त हुई तो फिर इसे पूनर्जन्म न मिल सका।[15] यह संस्था हिन्दी के प्रचार प्रसार के लिए कवि सम्मेलनों का आयोजन करती थी।

हिन्दी प्रचारिणी सभा, जम्मू की स्थापना के साथ ही साथ 1942 ई० में हिन्दी साहित्य मण्डल, जम्मू की भी स्थापना हुई।[16] यह संस्था भी 1947 ई० तक ही चल पाई। परन्तु इस संस्था का 1961 ई० के आसपास पुनर्जन्म हुआ।[17] इस संस्था की गोष्ठियों में हिन्दी साहित्य प्रेमी युवक युवतियां अच्छी खासी संख्या में बड़ी तत्परता से भाग लेते थे।

प्रो० रामनाथ शास्त्री ने हिन्दी साहित्य मण्डल, जम्मू की गतिविधियों का लेखा जोखा करते हुए लिखा है, ''मण्डल के पास न पैसा था, न अपनी पत्रिका और न अपना कोई कार्यालय। हिन्दी के तरुण साहित्य-प्रेमियों के उत्साह की पूंजी से ही मण्डल स्थापित हुआ और चलता रहा। अपने जीवन में मण्डल ने एक छोटा पुस्तकालय (राष्ट्रभाषा पुस्तकालय) भी बनाया-चलाया था। एक रात्रि पाठशाला चला कर निःशुल्क हिन्दी पढ़ाने का आयोजन किया। परन्तु मण्डल का प्रमुख कार्य, उसकी साप्ताहिक गोष्ठियां था, जिसमें हिन्दी के छात्र-छात्राएं तथा अध्यापक अध्यापिकाएं सुविधा के अनुसार किसी सदस्य के घर में अथवा किसी (प्राईवेट) शिक्षा संस्था में मिलकर बैठते और अपनी रचनाएं पढ़ कर सुनाते। इन गोष्ठियों का मुख्य उद्देश्य था हिन्दी के लिए अनुराग जगाना तथा नौसिखिया लेखकों में इस प्रवृत्ति को बढ़ावा देना। इसलिए ये गोष्ठियां वस्तुतः नए लेखकों की बैठकें हुआ करती थीं जिनमें हर नई रचना हिन्दी विरोध के दुर्ग की प्राचीर पर लगने वाला एक गोला समझी जाती थी।''[18]

कश्मीर में तो पांचवें दशक तक हिन्दी के प्रचार प्रसार का न कोई आन्दोलन चला और न ही कोई साहित्यिक संस्था अस्तित्व में आई। कुछ लेखक स्वतंत्र रूप से साहित्य साधना में जुटे रहे परन्तु उनका प्रकाशित साहित्य फिलहाल मुझे उपलब्ध नहीं ।

हां, इस दशक में साहित्य-सृजन की प्रेरणा के लिए रेडियो कश्मीर का भी थोड़ा बहुत योगदान रहा है। प्रथम दिसम्बर 1947 ई० में जम्मू में तो 21 अक्तूबर 1948 में श्रीनगर में रेडियो स्टेशन स्थापित हुए, जिन्हें 1954 ई० के क्रमशः 16 दिसम्बर तथा 13 अप्रैल को आकाशवाणी ने अपने नियन्त्रण में लिया । लेह में 25 जून 1971 ई० को रेडियो स्टेशन की स्थापना हुई।[19] स्पष्ट है कि पांचवें दशक के अन्तिम दो वर्षों में रेडियो कश्मीर से जितना बन पड़ा इसने हिन्दी के विकास के लिए योगदान दिया।

संदर्भ

1. (लेख) 'पंडित नीलकण्ठ-व्यक्ति एवं काव्य'-प्रो० राम नाथ शास्त्री-'हमारा साहित्य' 1978
2. 'मति मंथन'-डॉ० गंगा दत्त शास्त्री 'विनोद' पृ० 55.

3. (लेख) 'परमानन्द और उनकी हिन्दी कविता'-प्रो० चमन लाल सपरू-'हमारा साहित्य' 1983
4. -----------प्रो० सुभाष भारद्वाज-शीराज़ा अंक 62 पृ० 3
5. ---------वही-----------वही
6. 'मति मंथन'-डॉ० गंगा दत्त शास्त्री 'विनोद' पृ 68
7. (लेख) 'कश्मीरी संत कवि'-प्रो० चमन लाल सपरू-गद्यांजलि पृ148
8. (लेख) 'स्व० बंसीलाल सूरी एक बहुविध व्यक्तित्व' -धर्मचन्द 'प्रशान्त'-सहस्त्र मुखी पृ॰11
9. कवि परिचय-पद्यांजलि
10. वही
11. वही
12. वही
13. (लेख) 'स्व०. बंसीलाल सूरी एक बहुविध व्यक्तित्व'-धर्मचन्द प्रशान्त -सहस्त्रमुखी पृ॰ 14
14. 'शंकर शर्मा 'पिपासु' व्यक्तित्व और कृतित्व'-प्रो० सुभाष भारद्वाज पृ॰ 8
15. (लेख) 'स्व० बंसी लाल सूरी एक बहुविध व्यक्तित्व'-धर्मचन्द 'प्रशान्त'-सहस्त्रमुखी पृ॰ 12
16. 'शंकर शर्मा 'पिपासु' व्यक्तित्व और कृतित्व'-प्रो० सुभाष भारद्वाज पृ॰ 8
17. (लेख) 'स्व० बंसीलाल सूरी एक बहुविध व्यक्तित्व-धर्मचन्द 'प्रशान्त'-सहस्त्रमुखी पृ॰ 12
18. 'दो चान्द'-दो शब्द-प्रो० राम नाथ शास्त्री
19. (लेख) 'रेडियो कश्मीर की हिन्दी कविता को देन'-दीदार सिंह-'हमारा साहित्य 1978'

1

पांचवें दशक तक का जम्मू-कश्मीर का हिन्दी साहित्य

आधुनिक हिन्दी साहित्य के विकास के इतिहास क्रम को देखें तो भारतेन्दुकाल में जम्मू-कश्मीर के हिन्दी साहित्यकार पंडित नीलकण्ठ और संत कवि परमानंद की हिन्दी कविता में प्रकृति, आत्मा, परमात्मा, माया तथा मानवता सम्बन्धी मूल तत्वों के विवेचन के साथ-साथ भक्ति भावना और अद्वैत भावना के अन्तर्गत कविता का विषय था अध्यात्म चर्चा। जबकि 1885 ई० तक भी भारतेन्दु कालीन देश भक्ति, समाज सुधार, भाषा-प्रेम आदि की प्रवृत्तियां यहां विकसित नहीं हो पाईं।

1925 ई० में जब छायावाद अपने विकास-क्रम में आगे बढ़ रहा था तब पंडित जिन्दा कौल शंकर के वेदान्त से प्रभावित रहस्यवादी कविताएं लिख रहे थे। जबकि जम्मू के स्थानीय कवियों के काव्य में कोई विशेष काव्य कौशल नहीं था।

कवि पंडित नरोत्तम शर्मा शास्त्री गांगेय और पण्डित दुर्गा प्रसाद मिश्र जम्मू-कश्मीर के बाशिंदे होकर भी रियास्त से बाहर बस गए थे। अत: उनकी कविताओं से जम्मू-कश्मीर की साहित्य परम्परा के विकास में कोई योगदान नहीं मिला। सत्यवती मल्लिक की रचनाएं 1935 ई० से प्रकाशित होने लगी थीं परन्तु इनका सृजन-क्षेत्र भी जम्मू-कश्मीर से बाहर दिल्ली में रहा, जबकि इनकी छोटी बहिन स्व० पुरुषार्थवती (देहान्त 1930 ई०) का कविता संग्रह 'अन्तर्वेदना' लाहौर से प्रकाशित हो चुका था।

पुरुषार्थवती की रचनाओं पर महादेवी वर्मा का प्रभाव है परन्तु मौलिक प्रतिभा का भी अभाव नहीं, भावुकता का स्तर अत्यधिक तीव्र होते हुए भी आह्लादल है।[1]

पण्डित नरोत्तम शास्त्री गांगेय कलकत्ता और काशी में रहे, उन्होंने निबन्ध भी लिखे परन्तु मूलतया वे कवि थे। उनके सुपुत्र डॉ० विष्णुकान्त शास्त्री ने लिखा है कि उनकी एक मात्र कविता पुस्तक है- 'मालिनी मन्दिर' या 'फूलों की दुनिया', उनकी कविता की विशेषता का हवाला देते हुए डॉ० विष्णुकान्त शास्त्री लिखते हैं, "उनकी कविताओं में देशभक्ति, करुणा, साहस, प्रकृति प्रेम एवं सांस्कृतिक चेतना की मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है। द्विवेदी युग और छायावादी युग की विशेषताएं उनकी रचनाओं में सहज ही परिलक्षित हो जाती हैं, फिर भी प्रधानता द्विवेदी युगीन मनोभावों की ही है। नास्तिकता और धर्म के प्रति अनास्था से वे क्षुब्ध रहते थे और धार्मिकता को भारतीयता का अभिन्न अंग मानते थे। वे संघर्ष-विमुख स्वप्न विलासी न होकर हमारी चेतना को कुण्ठित कर रखने वाले विदेशी शासन के विरुद्ध थे और पुरातन मूल्यों के संरक्षण को महत्व देते हुए सनातन संस्कृति के उत्तराधिकार के प्रति निष्ठावान

थे।[2]

पण्डित हरदत्त शर्मा 1948 ई० तक जम्मू-कश्मीर में रह कर साहित्य सृजन करते रहे। उन्होंने साप्ताहिक 'दीपक' निकाला। श्री ओम गोस्वामी इनकी प्रकाशित हिन्दी रचनाओं का ब्यौरा देते हुए 49 रचनाएं बताते हैं और कहते हैं कि इन पूर्व प्रकाशित हिन्दी पंजाबी भजनों का संकलन 'भगवत्पदी' नाम से बम्बई से पुन: प्रकाशित कराया गया है। 1948 ई० से पूर्व प्रकाशित इन रचनाओं के प्रति ओम गोस्वामी लिखते हैं कि पंडित हरदत्त शर्मा भाषा को सांस्कृतिक माध्यम मानते थे, लोगों में स्वधर्म, स्वभाषा तथा सांस्कृतिक दाय के प्रति गौरव को जागृत करना चाहते थे। इनकी कविताओं का वर्ण्य विषय था - हिन्दू समाज के पतन के प्रति सोच, सनातन हिन्दू संस्कृति के गौरवमय अतीत का वर्णन, आज के पतित समाज का चित्रण, समकालीन राजनीतिक उद्बोधन तथा गांधीवाद से प्रेरणा का चित्रण, पौराणिक प्रसंगों और अवतारवाद का चित्रण, भक्त और प्रभु-पंथ का चित्रण, भौतिक भोगवाद और मुक्ति का चित्रण, भारतीय नारी की स्थिति का चित्रण।[3] इन्होंने हिन्दु धर्म-कृत्यों के विषय में शास्त्र सम्मत टिप्पणियां करते हुए 'श्री गंगाजल' नामक गद्य पुस्तक भी छपवाई थी।

प्रो० सुभाष भारद्वाज ने पंडित हरदत्त की भाषा को सरल एवं प्रांजल माना है, उपदेशात्मकता के बावजूद उनमें आधुनिक चिंतन के बीज को स्वीकार करते हुए, सामाजिक पाखण्डों और आडम्बरों पर किए गए उनके तीखे व्यंग्य की चर्चा की है।[4]

चौथे दशक से ही प्रो० पृथ्वी नाथ 'पुष्प' और स्व० दुर्गा प्रसाद काचुर कश्मीर में हिन्दी साहित्य-सृजन का कार्य कर रहे थे। प्रो० पुष्प की प्रथम कविता 'दो दृश्य' 1937 ई० में 'प्रताप' श्रीनगर में प्रकाशित हुई थी, परन्तु स्व० दुर्गा प्रसाद काचुर की पांचवें दशक तक प्रकाशित रचनाओं का कोई विवरण नहीं मिलता। सत्यवती मल्लिक की प्रथम कविता 'अन्तर में जो क्रीड़ा करते हैं' 'हंस' 1938 में प्रकाशित हुई। डॉ० गंगा दत्त शास्त्री 'विनोद' की प्रथम कविता 'एक हिन्दी कविता' साप्ताहिक 'दीपक' में 1940 ई० में प्रकाशित हुई। श्री दीनू भाई पन्त की हिन्दी कविता 'जुगनू' और 'पथ पर दीप जलाने वाले' 1942 ई० में 'उषा' जम्मू के अंकों में प्रकाशित हुईं और 'दीवाली' कविता भी 'उषा' में ही 1944 में प्रकाशित हुई। चन्द्रकान्त जोशी की प्रथम कविता 'भारत भिखमंगों की दुनिया' लाहौर से प्रकाशित 'विश्वबन्धु' में 1944 ई० में प्रकाशित हुई जबकि प्रो० सुभाष भारद्वाज की प्रथम कविता 'जनरव' लाहौर से प्रकाशित 'हिन्दी मिलाप' के 1945 ई० के किसी अंक में प्रकाशित हुई।[5]

उपर्युक्त विवरण के आधार पर प्रो० सुभाष भारद्वाज के कथन का अनुमोदन किया जा सकता है कि 1947 ई० से पहले के हिन्दी कवियों की कोई प्रकाशित काव्य-कृति (छोटी मोटी फुटकर रचनाओं को छोड़कर) उपलब्ध नहीं है।[6] अत: जब मूल्यांकन का आधार ही नहीं तो कुछ कहना विवादास्पद होगा।

हां, हिन्दी साहित्य मण्डल, जम्मू में जो रचनाएं पढ़ी जाती रहीं उनके प्रति प्रो० राम नाथ

शास्त्री का कथन उद्धृत कर लेने से ही पांचवें दशक की हिन्दी कविता का मूल्यांकन हो जाता है। उनका कहना है, "ये गोष्ठियां (हिन्दी साहित्य मण्डल, जम्मू की) वस्तुतः नए लेखकों की बैठकें हुआ करती थीं जिनमें हर नई रचना हिन्दी विरोध के दुर्ग की प्राचीर पर लगने वाला एक गोला समझी जाती थी, वह गोला आकार में गोल है या नहीं तथा उसमें भरा हुआ मसाला असली है या नहीं अथवा मसाला है या नहीं-इन चीज़ों की परख पड़ताल करने की प्रथा अभी तक नहीं चली थी। आलोचक नाम का जीव अभी तक उस साधना-सरोवर में पैदा नहीं हुआ था। छन्द मात्रा आदि का विवेचन हिन्दी परीक्षाओं के पाठ्य-क्रम में तो रहता था परन्तु उस समय की तुकबंदियों में उनका अंकुश प्रायः नहीं माना जाता था।[7]

हिन्दी साहित्य मण्डल, जम्मू की गोष्ठियों में पढ़ी जाने वाली रचनाओं के विषय की परख पड़ताल करते हुए प्रो० रामनाथ शास्त्री लिखते हैं, "मण्डल की गोष्ठियों में शृंगार, यौवन, अनुराग आदि विषय निषिद्ध थे, इस तरह के स्वच्छन्द लेखन की प्रवृत्ति को आचार-शास्त्र की विद्रोहात्मक अवहेलना समझ कर साम, दाम, दण्ड, भेद की नीतियों में से किसी एक की चोट से ध्वस्त कर दिया जाता था। 'मण्डल' की गोष्ठियों में अधिकतर समाज-सुधार, आचार संहिता विवेचन, देशानुराग, प्रकृति चित्रण और छायावादात्मक रहस्यवाद या रहस्यात्मक छायावाद आदि विषयों को चुनने का प्रोत्साहन दिया जाता था।[8]

प्रो० सुभाष भारद्वाज ने प्रो० शास्त्री के इस कथन की समीक्षा करते हुए लिखा है, "उस समय स्वदेश प्रेम तथा आचार आदि विषयों की और छायावादी ढंग की शृंगारिकता की प्रवृत्ति यहां पर अधिक थी। शकुन्तला सेठ, सुशीला तुली आदि कवयित्रियों की रचनाओं में छायावादी, सुधारवादी तथा नारी-उद्धार सम्बन्धी भावनाओं की प्रमुखता है, 'पिपासु' की रचनाओं में छायावादी ढंग का अवसाद एवं उन्मुक्त शृंगारिकता की भावना प्रबल है। उन दिनों प्रकाशित वेद पाल 'दीप' की लम्बी कविता 'शल्या' में कवि के असफल एकांगी प्रेम की झलक मिलती है। सम्भवतः दीप की इस लघु काव्य पत्रिका को छोड़ नई शैली की किसी अन्य कवि की कृति प्रकाशित नहीं हुई।"[9]

भारतीय हिन्दी साहित्य के इतिहास का अवलोकन करें तो 1940 ई० के आसपास जब छायावाद के बाद उत्तरछायावादी कवित्रयी (बच्चन, अंचल, नरेन्द्र शर्मा) के काव्य का दौर चल रहा था और प्रगतिवाद अपनी त्रुटियों को पहचान नया मार्ग खोज रहा था तथा प्रयोगवाद प्रसव काल में था, तब जम्मू-कश्मीर में साहित्य-सृजन की पृष्ठभूमि तैयार हो रही थी। भाषा-प्रेम, देश-प्रेम, नारी-उद्धार, समाज-सुधार, नैतिक-उपदेश और धर्म तथा ईश्वर के प्रति परम्परागत सोच यहां की हिन्दी कविता में अभिव्यक्त हो रही थी। यहां का साहित्यकार आत्मचेतस् न होकर प्रेरित साहित्यकार रहा, इसलिए हिन्दी की परम्परागत कविता का भावबोध और शिल्प पक्ष अपनाता रहा। इसी कारण यहां पांचवें दशक तक की हिन्दी कविता में द्विवेदी युग की भाषागत सरलता, छायावाद की रहस्योत्सुकता तथा गोपन-चेतना, उत्तर छायावाद की मादकता, मांसलता और गीतात्मकता, प्रगतिवाद की शोषण विरुद्ध चेतना और भारतेन्दु-द्विवेदी युगीन

हिन्दी-प्रेम, देश-प्रेम और समाज-सुधार की चेतना तथा नैतिक दृष्टि का घालमेल एक साथ मिल जाता है। अतः पांचवें दशक की जम्मू-कश्मीर की हिन्दी कविता का भाव बोध और शिल्प परम्परा-प्राप्त है।

पांचवें दशक तक जम्मू-कश्मीर में कविता लेखन को ही बल मिला, कहानी, उपन्यास, नाटक आदि विधाएं प्रायः उपेक्षित रहीं। मात्र सत्यवती मल्लिक की कहानी 'दो फूल' का 'विशाल भारत' में 1935 में प्रकाशन हुआ,[10] यह इनकी प्रथम प्रकाशित कहानी है। फिर प्रो० पृथ्वी नाथ 'पुष्प' की कहानी 'अहिंसा' 'प्रताप' श्रीनगर के 1937 ई० के अंक में प्रकाशित हुई। अतः पांचवां दशक जम्मू-कश्मीर के हिन्दी साहित्य में केवल कविता-सृजन का युग है।

संदर्भ

1. कवि परिचय-पद्यांजलि
2. (लेख) 'मेरे पिता पं: गांगेय नरोत्तम शास्त्री'-पं० विष्णु कान्त शास्त्री-'हमारा साहित्य' 1978
3. (लेख) 'हरदत्त शर्मा-व्यक्तित्व तथा कृतित्व'-श्री ओम गोस्वामी-'हमारा साहित्य' 1978
4. ....प्रो० सुभाष भारद्वाज -'शीराज़ा' अंक 62.
5. कवि परिचय -पद्यांजलि
6. ....प्रो० सुभाष भारद्वाज-'शीराज़ा' अंक 62 पृ० 7
7. 'दो चान्द'....दो शब्द....प्रो० राम नाथ शास्त्री
8. वही वही वही
9. ....प्रो० सुभाष भारद्वाज-'शीराज़ा' अंक 62-पृ० 7
10. लेखक परिचय-गद्यांजलि

2

छठे दशक तक का जम्मू-कश्मीर का हिन्दी साहित्य

छठे दशक तक पहुंचते-पहुंचते जम्मू-कश्मीर में मात्र 'भारती' और सरकारी पत्रिका 'योजना' का ही प्रकाशन हो रहा था। तात्पर्य यह कि लेखकों के पास प्रकाशन की कोई विशेष सुविधा नहीं थी। जम्मू में स्वतंत्रता के बाद 1961 ई० तक कोई साहित्यिक संस्था भी नहीं रह गई थी, जिसकी गोष्ठियों में रचना पढ़-सुन कर लेखक नव सृजन के लिए प्रेरित होते, किन्हीं कारणों से हिन्दी के कुछ प्रतिभावान लेखक डोगरी भाषा और साहित्य की उन्नति के कार्य में जुट गए थे।

छठे दशक तक पहुंचते-पहुंचते चौथे पांचवें दशक तक के हिन्दी प्रेम का ज्वार नीचे उतर कर अब अत्यन्त धीमा पड़ गया था, कुछ इने-गिने हिन्दी लेखक ही छठे दशक में लिखने वाले रह गए थे जबकि नए लेखक उभर नहीं रहे थे।

छठे दशक में प्रकाशित हिन्दी साहित्य को साक्षी मानें तो 1950 ई० से पूर्व प्रकाशित हो रहे लेखकों-गंगादत्त शास्त्री 'विनोद', चन्द्रकान्त जोशी, सुभाष भारद्वाज-की रचनाओं के प्रकाशन की सूचना ही अन्त: साक्ष्यों में मिलती है। श्री शंकर शर्मा 'पिपासु', श्री बंसीलाल सूरी, श्री धर्मचन्द प्रशान्त, कु० राज तुल्ली (भल्ला), कु० सुशीला तुल्ली, कु० शकुन्तला सेठ, कु० कृष्णा गुप्ता यद्यपि 1940-42 ई० के आसपास से साहित्य-सृजन कर रहे थे परन्तु छठे दशक में इनकी मात्र एक एक, दो दो प्रकाशित रचनाएं ही मिलती हैं।

ये सभी लेखक रेडियो-प्रोग्राम या छोटे-मोटे कवि-सम्मेलनों में कविता पढ़ कर ही संतुष्ट हो जाते रहे हैं। कश्मीर के हिन्दी लेखकों की स्थिति भी लगभग ऐसी ही है, यद्यपि श्रीनगर में 'अभिनव हिन्दी लेखक मण्डल' की स्थापना हो चुकी थी।

जम्मू और कश्मीर रियासत के दोनों प्रान्तों में इस दशक के अंत तक कुछेक सुविधा सम्पन्न लेखकों की ही स्वतंत्र पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। परन्तु विडम्बना यह है कि ये पुस्तकें फिलहाल अनुपलब्ध हैं। पुस्तकों की सूची मात्र से ही तसल्ली करनी पड़ रही है। पुस्तकों की सूची है-

1. नगरी नगरी फिरा मुसाफिर (संस्मरण)-श्री घनश्याम सेठी।

2. 'केसर के फूल', 'चिनार के पत्ते' (कहानी-संग्रह), 'मनोरम कश्मीर' (विधा ज्ञात नहीं)- श्री मोहन कृष्ण दर।

3. 'दु:ख-सुख' (उर्दू लिपि में हिन्दी कविता-संग्रह) श्री चन्द्रकान्त जोशी।

4. 'ताण्डव' (कविता-संग्रह)- प्रो० सुभाष भारद्वाज।

5. उर्मिला (कविता-संग्रह)- श्रीमती शान्ति गुप्ता।

6. 'दो फूल', 'दिन-रात', 'वैशाख की रात', 'पान-सुपारी' (1960 ई० तक प्रकाशित सभी कहानी-संग्रह), 'अमिट रेखाएं' 'मानव रत्न' (1960 ई० तक प्रकाशित स्केचज़), 'दीपक', 'कश्मीर की सैर', 'अमरपथ' 1960 ई० तक प्रकाशित पुस्तकें (विधा ज्ञात नहीं), 'सूरदास व कृष्ण' (1960 ई० तक प्रकाशित अंग्रेज़ी से अनूदित पुस्तक)- सत्यवती मल्लिक।

इन मौलिक 16 पुस्तकों में से मात्र 'ताण्डव' ही उपलब्ध है। वैसे भी श्रीमती सत्यवती मल्लिक आरम्भ से ही दिल्ली में 'हिन्दी भवन' के संचालन कार्य में लगी रही हैं, इनकी दो-तीन कहानियां ही प्रदेश की पत्रिका 'शीराज़ा' में प्रकाशित हुई हैं। लगभग यही स्थिति मोहन कृष्ण दर की है, इनकी मात्र एक कहानी 'गद्यांजलि' में प्रकाशित मिलती है। इनके अतिरिक्त स्वर्गीय दुर्गा प्रसाद काचुर की एक कविता-पुस्तक 'अश्रुकण' अर्द्ध मुद्रित कही गई है, प्रकाशित रूप में मिली नहीं।

जम्मू-कश्मीर के हिन्दी साहित्य के प्रोत्साहन के क्षेत्र में सबसे महत्वपूर्ण घटना है- 'जम्मू-कश्मीर अकादमी आफ आर्ट, कल्चर एण्ड लैंग्वेजिज़' की स्थापना। प्रदेश की कला, संस्कृति और भाषाओं के विकास के लिए अगस्त 1958 ई० में इस अकादमी की स्थापना हुई, जिसने रियासत में हिन्दी-साहित्य के विकास में विशेष योगदान दिया है।

अकादमी प्रदेश में साहित्यिक गोष्ठियों और कवि-सम्मेलनों का आयोजन करती रही है, रजिस्टर्ड साहित्य-संस्थाओं को अपने कार्यक्रमों के आयोजन के लिए आर्थिक अनुदान देती रही है और लेखकों को पुस्तक प्रकाशनार्थ आर्थिक सहायता देती रही है परन्तु छठे दशक में अकादमी के अनुदान या सहायता से किसी लेखक की स्वतंत्र पुस्तक नहीं छपी।

हां, इस दशक के अंतिम वर्ष में अकादमी ने प्रदेश के प्रतिनिधि कवियों की रचनाओं का संकलन 'पद्यांजलि' शीर्षक से और प्रदेश के प्रतिनिधि गद्य लेखकों की रचनाओं का संकलन 'गद्यांजलि' शीर्षक से प्रकाशित किया है। इन दोनों संकलनों में 1960 ईस्वी तक लिखी गई रचनाओं में से कुछेक रचनाएं संकलित हैं, परन्तु हैं ये यहां के लेखन की बानगी मात्र ही।

'पद्यांजलि' में जम्मू प्रदेश के प्रकाशित कवि हैं- गंगादत्त शास्त्री 'विनोद', चन्द्रकान्त जोशी, शंकर शर्मा 'पिपासु', प्रो० सुभाष भारद्वाज, यश शर्मा, श्यामदत्त 'पराग', शकुन्तला सेठ, शान्ति गुप्ता, पद्मा 'दीप' (सचदेवा) आदि।

कश्मीर प्रदेश के प्रकाशित कवि हैं-

सत्यवती मल्लिक, पृथ्वीनाथ 'पुष्प', स्व० दुर्गाप्रसाद काचुर, पृथ्वीनाथ 'मधुप', मोहन (लाल) 'निराश', शशिशेखर तोषखानी, रत्न लाल (रैणा) शान्त आदि।

'गद्यांजलि' में जम्मू प्रदेश के प्रकाशित लेखक हैं- धर्मचन्द 'प्रशान्त', वेद राही (दोनों कहानीकार), गोपीनाथ कौशिक (एकांकीकार), शक्ति शर्मा (संस्मरणकार), रमाकान्त भारद्वाज, विष्णुदत्त शास्त्री, प्रो० रामनाथ शास्त्री, शकुन्तला सेठ (चारों समीक्षक-निबंधकार) आदि।

'गद्यांजलि' में कश्मीर प्रदेश के प्रकाशित लेखक हैं- सत्यवती मल्लिक, मोहन कृष्ण दर, दीप (दीपक) कौल, हरिकृष्ण कौल, जवाहर लाल कौल, रत्नलाल शांत (सभी कहानीकार), घनश्याम सेठी (संस्मरणकार) पृथ्वीनाथ 'पुष्प', चमन लाल सपरू (दोनों समीक्षक-निबन्धकार)।

छठे दशक के अन्त तक लद्दाख प्रदेश के हिन्दी लेखन का कोई ब्यौरा नहीं मिलता। न प्रकाशित साहित्य ही मिलता है।

इन कवियों-लेखकों के अतिरिक्त प्रदेश के एक महत्वपूर्ण लेखक मनसाराम शर्मा 'चंचल' जालंधर से प्रकाशित समाचार पत्र 'मिलाप' में कार्य करते हुए साहित्य-सृजन कर रहे थे, उनके अन्त: साक्ष्य के आधार पर कहा जा सकता है कि उनकी रचनाएं 'बाल गीत' और 'अश्रुमाला' इस दशक में प्रकाशित हो चुकी थीं, जो उपलब्ध नहीं, परन्तु इन संग्रहों की विशेषकर 'अश्रुमाला' की कुछ रचनाएं उनकी पुस्तक 'सुषमा' में सातवें दशक में पुन: प्रकाशित हुई हैं।

इन कवियों-लेखकों के अतिरिक्त जम्मू-कश्मीर रियासत में कुछ और भी हिन्दी लेखक हो सकते हैं परन्तु तब तक की प्रकाशित सामग्री में उनकी कहीं चर्चा नहीं हुई, न ही उनकी कोई रचना फिलहाल उपलब्ध है।

कुछ लेखकों के आत्म कथ्य से भी प्रतीत होता है कि उन्होंने छठे दशक में लेखन आरम्भ किया था परन्तु उनकी प्रकाशित सामग्री सातवें दशक या उसके बाद की ही मिलती है, जिसका यथास्थान मूल्यांकन किया जाएगा, ये लेखक हैं-

श्री देश बन्धु 'नूतन' (पांचवें दशक में लेखन आरम्भ) श्री (डॉ०) ओम प्रकाश गुप्त (1952-53 ई से लेखन आरम्भ) श्री पुष्कर नाथ (मूलत: उर्दू कहानीकार 1953 ई. से लेखन आरम्भ) श्री ओम गोस्वामी (1955-56 ई० से लेखन आरम्भ) श्री निर्मल 'विनोद' प्रथम रचना 1957 ई० में लिखी फिर 1962 ई० में वास्तविक लेखन का आरम्भ 1965 ई० से)।

छठे दशक तक इस प्रकाशित और उपलब्ध साहित्य का मूल्यांकन निम्नलिखित है।

2.1 कविता : छठा दशक

छठे दशक तक जम्मू-कश्मीर में अधिकतर लोग कविता विधा में साहित्य-सृजन करते रहे, परन्तु इस दशक के अंत तक प्रो० सुभाष भारद्वाज का ही स्वतंत्र संग्रह 'ताण्डव' प्रकाशित हो सका जबकि अन्य लेखकों की फुटकर कविताएं ही 'पद्यांजलि' में उपलब्ध मिलती हैं, ये कविताएं आगे चलकर सातवें दशक या उसके बाद प्रकाशित स्वतंत्र संग्रहों में पुन: प्रकाशित हुई हैं।

छठे दशक की प्रदेश की हिन्दी कविता के स्वरूप को समझने के लिए हमें 'ताण्डव' और अन्य फुटकर कविताओं का ही सहारा लेना पड़ रहा है। इन कविताओं का मूल्यांकन प्रस्तुत है।

2.1.1. छठे दशक के कविता-संग्रह इस दशक तक प्रकाशित तीन कविता संग्रहों का नाम गिनाया जा चुका है, यहां हम मात्र एक उपलब्ध कविता-संग्रह का मूल्यांकन कर रहे हैं।

2.1.1.1. ताण्डव की रचनाओं के रचनाकाल में कवि प्रगतिवाद का कट्टर अनुगामी था, जबकि इस समय 'प्रगति-युग' अन्तिम चरण में था. पुस्तक-प्रकाशन (1960 ई०) के समय तो प्रगतिवाद अतीत का विषय बन चुका था. इसी कारण 'ताण्डव' को प्रकाशित करने में कवि संकोच का अनुभव करता रहा। 'ताण्डव' की कविताओं की प्रमुख प्रवृत्तियों का विवेचन प्रस्तुत है।

2.1.1.1.1. प्रगतिशीलता स्वातंत्र्योत्तर भारत देश के नेता अपने ढंग से जन-समस्याओं को सुलझाने के यत्न कर रहे थे परन्तु उनके यत्नों का आम आदमी को कोई लाभ नहीं पहुंच रहा था। कवि सुभाष भारद्वाज बेकारी, भुखमरी, बदहाली से विवश जनसाधारण की पीड़ा, यंत्रणा, झुंझलाहटजन्य क्रोध का कविता में सहानुभूतिपूर्ण और करुणासिक्त संवेदना सहित संयोजन करता हुआ चित्रण करता है।

इन कविताओं में कहीं वह लोगों की संघर्षहीनता, सहनशीलता आदि को झकझोरता है, कहीं उन पर व्यंग्य करता है और कहीं राजनेताओं और स्वार्थप्रेरित शोषक शक्तियों पर व्यंग्य करता है। कवि को लगता है कि इस प्रशासन तंत्र में साधारण आदमी की नियति है- आत्महत्या। इन कविताओं के कवि ने बड़े कारुणिक, राग-रंजित बिम्ब प्रस्तुत किए हैं।

परन्तु कवि मानता है कि आम आदमी अपनी दयनीय स्थिति का कारण स्वयं ही है क्योंकि उसमें वर्ग-संघर्ष की चेतना जागृत नहीं हुई, अभी भी वह धर्म, कर्म फल, ईश्वर और पूंजीवादी-व्यवस्था के भ्रमजाल में उलझा हुआ है, जबकि स्थिति यह है कि पूंजीवादी व्यवस्था के खिलाफ यदि कोई स्वर उठाता है तो उसे पागल कह कर दुत्कार दिया जाता है।

फिर भी कवि जनसाधारण की इस स्थिति से निराश होकर ही नहीं रह जाता, वह आम आदमी की उन चारित्रिक कमजोरियों का उद्घाटन करता है जिनके कारण वह अभावग्रस्त, विषमतापूर्ण और विसंगत जीवन जी रहा है।

कवि का विचार है कि भारतीय जन आत्म संतोषी है, धर्म भीरु है, अंधविश्वासों में जकड़ा हुआ है, उसमें वर्ग-संघर्ष की वृत्ति पैदा नहीं हुई, साहस और पुरुषार्थ की अपेक्षा वह भाग्य-भरोसे पड़ा रहता है और पूंजीवादियों के आडम्बर को न पहचान कर उनके वाग्जाल में उलझा हुआ आध्यात्मिक (भाववादी) कुहेलिकाओं में फंसा हुआ है।

इस व्यूह-जाल से निकालने के लिए कवि ने जनसाधारण पर तीखे व्यंग्य भी किए हैं, उसे झिंझोड़ कर नींद से जगाने का यत्न भी किया है, नवक्रान्ति के लिए उद्बोधन भी किया है ताकि रुग्ण मन: स्थिति को समाप्त करके नव संसार का सृजन किया जा सके। महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि नवजीवन-नवसृजन-नवनिर्माण के लिए आवश्यकता पड़ने पर वह विध्वंसक वृत्तियों और शक्तियों का भी योगदान लेना चाहता है क्योंकि अहिंसक आंदोलनों को पूंजीवादी

हिंसक शक्तियां दबा देती रही हैं। अत: कवि मार्ग और साधन को महत्व न देकर लक्ष्य को महत्व देता है।

पूंजीवादी शक्तियों के विरुद्ध वह युवकों को साहस, निश्चय, संकल्प और संघर्ष द्वारा नवक्रान्ति लाने की प्रेरणा देता है। आम आदमी को सचेत करता हुआ वह कहता है कि श्रम ही उसमें नवजीवन का संचार करेगा, हिम्मत से ही जीवन के दुखों को मिटाने की प्रेरणा मिलेगी। बल्कि पूंजीपति वर्ग की चालों के प्रति सजग करने के लिए वह पुजारी-पण्डों के जाल में न फंसने की प्रेरणा तो देता ही है प्रभु-इच्छा और कर्मफल को नकारने की भी प्रेरणा देता है।

वह पौराणिक आख्यानों के प्रमुख पात्रों के जीवनादर्शों से विसंगत हो गए आचरण पर चोट करके स्पष्ट करता है कि ऐसे आदर्श और आचरण-भ्रष्ट महामानवों के प्रति पूजा भाव बेकार है क्योंकि इन्हीं महामानवों का उदाहरण देकर पूंजीपति शक्तियां आम आदमी को उलझा कर अपना लाभ और स्वार्थ बटोर रही हैं। कवि तो ईश्वर तक को भी उपालम्भ देता है और नंग धड़ंग लोगों का पक्षधर हो उठता है, क्योंकि इन्हें ही वह सच्चा इन्सान मानता है और इन्हें जुझारू बनाने का संकल्प करता है।

कवि पूर्ण क्रान्ति के पक्ष में है, यह बात अलग है कि वह पूर्ण क्रान्ति के स्वरूप का उद्‌घाटन नहीं करता। जबकि वह गांधीवादी सुधारवाद में भी विश्वास नहीं रखता परन्तु वह शीघ्र ही अनुभव कर लेता है कि कविता से कुछ बदला नहीं जा सकता बल्कि स्थितियां और अधिक व्यंग्यात्मक हो उठी हैं। इसी कारण वह जन-जन के उद्‌बोधन की अपेक्षा व्यंग्य कविताएं लिखने लगता है। 'कांग्रेसी कीर्तन 'अर्थी', 'पैगाम', 'कहां हो' आदि महत्वपूर्ण कविताओं में व्यंग्य की धार काफी तीखी है।

वह जनता के अंधविश्वासों पर भी गहरा व्यंग्य कसता है और प्रभु से अनुकम्पा-दान की कामना लिए मंदिर जाने वाले लोगों पर चुटीला व्यंग्य करता है। भूख और नग्नता के विरुद्ध श्रम और पुरुषार्थ के बलबूते से लड़ने की अपेक्षा राम-भरोसे बैठे रहने की और प्रभु-भक्ति में लीन रहने की वृत्ति पर व्यंग्य करता हुआ कवि पाखण्डी साधुओं, हस्तरेखा-विशेषज्ञों और बावाओं के प्रति अंधश्रद्धा रखने वालों को भी नहीं बख्शता।

कवि इस तरह का व्यंग्य करे भी क्यों न ! क्योंकि वह मानता है कि स्वतंत्र और जागृत जाति का ही जीवन गौरवशाली होता है। जातीय गौरव के लिए ही स्वतंत्रता-संघर्ष हुआ था, जिसमें युवकों ने अपने प्राणों की आहुति दी थी और स्वतंत्र भारत का सुखद स्वप्न देखा था। परन्तु स्वप्न मात्र स्वप्न ही बन कर रह गया है, जन समाज-विरोधी जीवन-स्थितियों का शिकार हो कर रह गया है। कवि मोहभंग की स्थिति में पहुंचता है परन्तु वह निराश नहीं है, बदहाली, बेकारी, भूख, नग्नता, अशिक्षा और अनाचार का उन्मूलन करने के लिए आशा, आस्था, ढाढस का सहारा लेकर कर्म रत होने का आह्वान देता है, उद्योग की प्रेरणा भी देता है और मानता है कि ये सपने तभी साकार होंगे जब देश-विदेश में शान्ति होगी जबकि शान्ति नि:शस्त्रीकरण द्वारा ही संभव है, जब तक शस्त्र होंगे; विनाशक युद्ध होंगे, नवनिर्माण नहीं ध्वंस ही होगा, ऐसी स्थिति में सुख-सुविधा का स्वप्न बेकार है।

2.1.1.1.2. पक्षधरता कवि प्रो० सुभाष भारद्वाज जन-जन के सुख-दुःख की अभिव्यक्ति के प्रति निष्ठावान है। वह दुल्हन के मन में उमड़ती प्रिय-मिलन की आकांक्षाओं, विरहजन्य अनुभूतियों और पीड़ाओं को स्वर देना चाहता है परन्तु मात्र शृंगार गीत ही नहीं गाना चाहता बल्कि उपेक्षितों, शोषितों, पीड़ितों को अपना लेना चाहता है। पर-पीड़ा का अनुभव करता हुआ वह न सम्मान पाना चाहता है और न वैभव का दास बनना चाहता है, बल्कि जन-जीवन के अवरोधों को पाट देना चाहता है।

परन्तु कभी-कभी कवि भावावेश से ग्रस्त हो कर तर्क की अपेक्षा बढ़ चढ़ कर बोलने लगता है, यह भावावेश कवि की करुणा और निष्ठा को जोश के गुब्बारे में उड़ा देता है और काव्यभाषा बौद्धिकता के सारे तंत्र को तहस-नहस कर देती है, फिर भी 'तूफ़ानों से' कविता में कवि की निष्ठा महत्वपूर्ण है, अपनी इस निष्ठापूर्ण पक्षधरता के कारण वह गीतों में जीवन की सभी क्रियाओं को, जीवन के सभी हास, विश्वास को अभिव्यक्त करना चाहता है।

2.1.1.1.3. प्रेम, शृंगार और रूपाकर्षण की वृत्तियां- प्रो० सुभाष भारद्वाज की कविता का केन्द्रीय भाव यद्यपि प्रगतिवादी चेतना ही है, फिर भी उन्होंने प्रेम, शृंगार और रूपाकर्षण से सम्बंधित कुछ कविताएं लिखी हैं। इन वृत्तियों की अभिव्यक्ति उन्होंने गीतों और दोहों में की है। कवि वियोगजन्य पीड़ा को सार्थक अभिव्यक्ति प्रदान करता है। विरह-ग्रस्त प्रेमी प्रेमिका के लिए सावन भी दाहक है, यद्यपि वे सर्वस्व हार चुके हैं तदपि स्वाभिमानी इतने हैं कि न पराजय का कोई गम है न अपने सुख-दुख में वे किसी को शरीक करते हैं। कवि विरहजन्य पीड़ा और उपालम्भ की टीस भी अनुभव करता है, उसकी इस सारी समस्या का कारण है-रूपाकर्षण। फिर भी इस आकर्षण-पाश में बंधा प्रेमी बाधाओं की परवाह नहीं करता।

कवि प्रो० सुभाष भारद्वाज प्रणय के क्षेत्र में मात्र विरहजन्य पीड़ा का ही गायक नहीं, वह प्रणयजन्य हास्य-उल्लास का भी कवि हैं। क्योंकि वह जानता है कि विरह के घाव मिलन के क्षणों में भर जाते हैं।

कवि सुभाष भारद्वाज ने एकनिष्ठ प्रेम के गीत तो गाए ही हैं, सड़क छाप प्रेमियों के छिछोरेपन पर 'रूप का मोल' जैसी हास्य-व्यंग्य प्रधान सफल सार्थक कविता भी लिखी है, सम्पूर्ण कविता में हास्य और व्यंग्य की अच्छी जाली बुनी गई है-

'मैं लगा भागने तो पकड़ी लोगों ने मेरी नकटाई
'मत डरो बहन जी कहते थे, मानों सब थे उसके भाई'

परन्तु 'ताण्डव' में इस तरह की मात्र एक ही कविता है।

2.1.1.1.4. उपलब्धि- कहा जा सकता है कि प्रो० सुभाष भारद्वाज भारतीय जन-जीवन की समस्याओं का चित्रण करता है, अशिक्षा, अंध-विश्वास और धर्म, विश्वासजन्य कुरीतियों पर चुटीले व्यंग्य करता है। उसकी प्रगतिशील जीवन -दृष्टि उसकी कविताओं का केन्द्रीय भाव है। परन्तु जन-जन के प्रति उसकी करुणा और सहानुभूति कहीं-कहीं भावावेश से ग्रस्त होकर कविता के विचार-पक्ष को निर्बल भी करती है और काव्य-शिल्प को शिथिल भी

कर देती है।

प्रगतिवादी चेतना को गुम्फित करने वाली कविताओं में कवि छन्द की अपेक्षा लय, ताल, यति, गति के नियमों के अनुरूप समानधर्मा पंक्तियों को परस्पर जोड़ता हुआ भाव स्फीति की ओर बढ़ता जाता है, जिससे कविता की बुनावट दुहराव और आकार-विस्तार के दोष से ग्रस्त हो गई है परन्तु यही शिल्प कवि की निजी पहचान भी बनता है।

प्रो० सुभाष भारद्वाज ने इन कविताओं में बिम्ब धर्मिता की अपेक्षा सपाट बयानी को अपनाया है। परन्तु प्रेम, शृंगार और रूपाकर्षण सम्बन्धी गीतों के बिम्बों में सरसता, संगीतात्मकता और लयात्मकता है। ये गीत छन्दों में बंधे हुए हैं, इनका अप्रस्तुत विधान परम्पराभुक्त ही है।

2.1.2. छठे दशक की फुटकर कविताएं –हिन्दी कविता में 'प्रयोगवाद', 'नयी कविता' का रूप ग्रहण कर चुका था और 'नयी कविता' भी 'प्रयोगवाद' की तरह अनेक विदेशी काव्यान्दोलनों और विदेशी दर्शन-शास्त्र से प्रभावित हो रही थी। प्रगतिवादी चिंतन वाले कवि अपनी जगह पर कविता को अधिक से अधिक सम्प्रेष्य बना रहे थे जबकि 'नयी कविता' में दुरूहता और आत्मवादी प्रवृत्तियां काफी बल पकड़ रही थीं।

परन्तु जम्मू-कश्मीर में हिन्दी कविता का तेवर छायावादोत्तर छायावादी कवित्रयी के कवियों की कविता जैसा ही रहा, जिसमें निराशा, उन्माद और मादकता के साथ-साथ मांसल प्रणयाभिव्यक्ति कविता का विषय थी। फिर भी इस दशक में कश्मीर में 'प्रयोगवाद' 'नयी कविता' का मिला जुला भावबोध और शिल्प विकसित हो रहा था। इसलिए 'पद्यांजलि' में प्रकाशित कविताएं दोनों तरह के भावबोध और शिल्प से सम्बद्ध हैं।

स्पष्ट है कि इस दशक की कविता का मूल्यांकन 'परम्परागत भावबोध और शिल्प' तथा 'नया भावबोध और शिल्प' शीर्षकों के अन्तर्गत किया जाना ही तर्कसंगत रहेगा। इन फुटकर कविताओं का मूल्यांकन प्रस्तुत है।

2.1.2.1. परम्परागत भावबोध और शिल्प की फुटकर कविता- इस प्रवृत्ति से जुड़ी कविता अधिकतर जम्मू-प्रदेश में ही लिखी गई है लेकिन 'पद्यांजलि' में प्रकाशित कविता 'पंकज' के आधार पर कहा जा सकता है कि कश्मीर प्रदेश में भी इक्का दुक्का कवि ऐसी कविता लिख रहे थे। इन कविताओं का मूल्यांकन प्रस्तुत है।

2.1.2.1.1 दुर्गा प्रसाद काचुर की काव्य-पुस्तक 'अश्रुकण' 1960-61 ई० तक अर्द्ध मुद्रित ही थी परन्तु उसका प्रकाशित रूप अभी तक भी उपलब्ध नहीं है। इनकी कविता 'पंकज' छायावादी रंग, रूप और भावबोध की कविता है, अलंकार और प्रस्तुत विधान भी छायावादी ही है। यहां उनकी काव्य-भाषा सुलझी हुई है, बिम्ब सघन हैं, रूप, रस, गंध और ध्वनि सौंदर्य का अंकन प्रांजल है, सांस्कृतिक दृष्टि में औदार्य-तत्त्व मौजूद है। पंकज को कीच का भाग्योदय कहा गया है, पंकज के सुगंध, सौंदर्य को नादान शिशु की मृदुल किलकारी और शिशु की मादक जीवन गाथा माना गया है, एक उद्धरण देखें-

'प्रकृति का साक्षात् विनय। दूर गीत की सुमधुर लय।
शीतलता का वर संचय। दीन कीच का भाग्योदय।
संस्कृति का रसपूत हृदय।' (पद्यांजलि-पृष्ठ 9)

जम्मू प्रदेश में परम्परागत भावबोध और शिल्प की कविता पांचवें दशक से ही लिखी जा रही थी और हिन्दी साहित्य मण्डल, जम्मू की गोष्ठियों में पढ़ी जा रही थी। छठे दशक में भी यही भावबोध और शिल्प विकसित होता रहा है। इस भावबोध और शिल्प से सम्बद्ध 'पद्यांजलि' में अनेक कवियों की कविताएं प्रकाशित हुई हैं, जिनका मूल्यांकन प्रस्तुत है-

2.1.2.1.2. शान्ति गुप्ता का छठे दशक में कविता-संग्रह 'उर्मिला' प्रकाशित हुआ है परन्तु उपलब्ध नहीं। हां, 'पद्यांजलि' में कहा गया है कि कवयित्री प्रदेश के प्राकृतिक सौंदर्य से आकृष्ट रही है। प्रस्तुत कविता 'मधुर कितना था वह संसार' में उनका रहस्यवादी तेवर दिखाई पड़ता है परन्तु यदि रहस्यवादी आवरण हटा लिया जाए तो रोमांसजन्य विरहानुभूति की स्पष्ट झलक यहां मिल जाती है। कवयित्री जब तक अपने देव (प्रियतम) से अपरिचित थी, जीवन सुखी और उल्लासपूर्ण था। परन्तु जिस दिन देव (प्रियतम) का नीरव संदेश मिला, उसके सभी सुख-श्रृंगार सिमट गए, मिलनाकांक्षा के बदले वेदना मिली और वह देव की स्मृतियों में आंसू बहाने लगी।

कवयित्री का अनुभूति पक्ष रहस्यवादिनी महादेवी वर्मा से मेल खाता है। अप्रस्तुत विधान, छन्द-विधान और काव्य -भाषा उत्तरछायावादी काल के छायावादी कवियों जैसी ही है।

2.1.2.1.3. चन्द्रकान्त जोशी की पहली कविता 1944 ई० में प्रकाशित हुई थी। उनका हिन्दी कविता-संग्रह 'दुःख-सुख' (उर्दु लिपि में) छठे दशक में प्रकाशित हुआ है जो न उपलब्ध है और न ही हम उर्दू लिपि पढ़ सकते हैं। अतः 'पद्यांजलि' में प्रकाशित उनकी कविताओं '1857' और 'जीवन गीत' का मूल्यांकन ही यहां संभव है।

2.1.2.1.3.1. जीवन गीत का प्रस्तुत विधान छायादोत्तर छायावादियों जैसा है परन्तु भाषा में द्विवेदी युगीन स्पष्टता है। यह कविता निराशा से आशा की ओर प्रस्थान कर रही कवि-चेतना की उद्घोषक है और जनसाधारण के जीवन-संघर्ष के पक्षधर कवि की उदात्त आस्था की प्रतीक है, सार्थक जीवन दृष्टि की परिचायक भी। कवि आत्म-बलिदान देकर भी जीवन की महक और चहल-पहल को जिन्दा रखने का संकल्प किए हुए है और नैसर्गिक सौंदर्य की रक्षा के लिए जीना चाहता है।

2.1.2.1.3.2. '1857' कविता में कवि का चिंतन स्वस्थ है और वह हिन्दु-मुस्लिम सौहार्द्र में दृढ़ विश्वास रखता है। वह स्वतंत्रता-संघर्ष में जूझ रहे युवकों की संघर्ष-चेतना और लगन की भरपूर प्रशंसा करता है और स्पष्ट कहता है कि ये योद्धा हार-जीत की भावना के ऊपर उठ कर लड़े थे, जिनका एक मात्र लक्ष्य था-स्वतंत्रता। क्योंकि स्वतंत्र जातियां ही गौरव प्राप्त करती हैं, परतंत्र जातियों का कोई इतिहास नहीं होता और स्वतंत्रता के लिए बलिदान देने ही

पड़ते हैं, बलिदान से ही आशाएं सुफल होती हैं।

वीर भाव से सम्बन्धित कविताओं की उदात्तता को प्रायः जम्मू प्रदेश के कवियों का अंध-आवेश भ्रष्ट कर देता है परन्तु जोशी की प्रस्तुत कविता ऐसे अंध आवेश से मुक्त है, यहां भाव, भाषा और विचार में अद्भुत संतुलन है। कवि ने भाषा की प्रतीक-शक्ति की अपेक्षा भाव की उदात्तता को ध्यान में रखा है और देश भक्ति का उज्ज्वल उदाहरण इस कविता में प्रस्फुटित हुआ है।

2.1.2.1.4. श्यामदत्त 'पराग' छठे दशक के युवा कवि हैं जिनकी पहली कविता 1957 ई० में 'भारती' में प्रकाशित हुई थी। प्रस्तुत कविता 'पतन और उत्थान' की काव्य-भाषा, प्रस्तुत योजना और अलंकरण-पद्धति परम्परागत ही है। कवि का विचार यह है कि दम्भ मानवहन्ता है, दम्भ के कारण मानवीय मान-मूल्य भ्रष्ट हो रहे हैं, जिनके कारण समूचे आचार-व्यवहार में विसंगित पैदा हो रही है, मानव दानव होता जा रहा है।

कवि जनोद्बोधन करता है कि भाग्य-भरोसे रहने की अपेक्षा कर्मरत पुरुषार्थी बनें तो कंकरों से भी नवनिर्माण हो सकता है। परन्तु कविता में 'मानवता', 'दानवता' 'भावना', 'कर्त्तव्य' आदि शब्द गोल-मोल ही हैं, बौद्धिक पक्ष भी आधुनिकताजन्य नहीं, हां विसंगति की ओर अस्पष्ट ही सही संकेत तो है ही।

2.1.2.1.5. यश शर्मा मूलतया डोगरी के गीतकार हैं, 'पद्यांजलि' में उनकी दो रचनाएं प्रकाशित हैं। 'प्यार में आंसू भी होते हैं' कविता का प्रस्तुत विधान परम्पराभुक्त है, भावबोध और शिल्प भी पुराना ही है, कविता में प्रणयजन्य उपेक्षा के भाव को परम्पराभुक्त काव्य-रूढ़ियों के सहारे भाव-स्फीति मिली है, प्रेम की मादकता और हल्की-हल्की जलन का अच्छा चित्रण है, रकीब के प्रति अनुकम्पा के बावजूद कवि अपने प्रेम-पथ पर एकनिष्ठ-सा चला जा रहा है और उपेक्षाजन्य व्यथा को उपालम्भ के स्वर में व्यक्त करता है-

'रूप, चांद की शीतल किरणें। यौवन, इक जलती ज्वाला है।

इन दोनों का हास मधुर है। पर, मृत्यु देने वाला है' (पद्यांजलि पृ० 69-70)

प्रस्तुत काव्य-पंक्तियां पढ़ने-गाने में जितनी मधुर हैं, जीवन-मूल्यों की दृष्टि से उतनी आह्लादकारक नहीं। छन्द-नियोजन सुदृढ़ है।

2.1.2.1.6. पद्मा 'दीप' (सचदेवा) भी मूलतया डोगरी भाषा की कवयित्री हैं। 'पद्यांजलि' में प्रकाशित उनकी कविता 'जीवन का संगीत मधुर है' में पद्मा जी की जीवन-दृष्टि और संघर्ष-चेतना का उज्ज्वल रूप अभिव्यक्त हुआ है। वह जीवन के प्रति आस्थावान है और मानती हैं कि धरती के प्राणी का मन 'संघर्ष-प्रिय' है, इसी संघर्षशीलता के कारण उसमें आशाएं बनी रहती हैं, दुख की काली रात में ही सुख की रक्ताभ प्रात: छिपी रहती है। सम्पूर्ण कविता में आशाजन्य आह्लाद का स्वर है, काव्य-भाषा और प्रस्तुत विधान उत्तरछायावादी मादकता को रूपायित करता है। पद्मा की जीवन-दृष्टि का उदाहरण देखें-

'धरती के कण कण में सोया। चेतन जग जीवन का स्पंदन। मिट्टी की निश्चलता मृत्यु। ज़र्रों की गति ही तो जीवन' (पद्मांजलि पृ 78)

इसी परम्परागत भावबोध और शिल्प से सम्बद्ध पद्मांजलि में श्री गंगादत्त शास्त्री 'विनोद', शकुन्तला सेठ, शंकरशर्मा 'पिपासु' आदि छठे दशक के महत्त्वपूर्ण कवियों की कविताएं भी संकलित हैं। परन्तु ये सभी कविताएं इन कवियों के स्वतंत्र काव्य संग्रहों में पुनः प्रकाशित हुई हैं, अतः इनका मूल्यांकन यहां नहीं किया जाएगा। यहां केवल इन प्रकाशित रचनाओं का शीर्षक देकर आगे बढ़ा जा सकता है-

गंगादत्त शास्त्री 'विनोद' 'सोच रहा हूं मौन'
शकुन्तला सेठ- 'किसने दुनिया आज बदल दी'
शंकर शर्मा 'पिपासु'- 'अब तक मन की बात कही', 'जग के सुख का सपना ले'

2.1.2.1.7. मोहन लाल 'निराश' -कश्मीर का यह कवि यद्यपि 1951 ई० से कविता -कर्म कर रहा था परन्तु पहली कविता 'शान्ति विहग' 1957 ई में 'नया समाज' कलकता से प्रकाशित हुई। 1951 से 69 तक की इसकी कविताओं का संग्रह 'कृष्ण मेरा पर्याय', 1971 ई० में प्रकाशित हुआ। कवि 'निराश' का काव्य--विकास मूलतया परम्परागत भावबोध और शिल्प के प्रति उत्सुकता के फलस्वरूप ही हुआ है। परम्परागत भावबोध की इनकी एक कविता का मूल्यांकन प्रस्तुत है।

2.1.2.1.7.1. कहानियां और इतिहास पद्मांजलि में प्रकाशित इनकी प्रथम कविता परम्परागत भावबोध और शिल्प को प्रस्तुत करती है। कवि का विचार है कि जीवन की छोटी-बड़ी घटनाओं से कहानियां और इन कहानियों से इतिहास बनता है, मानव-मात्र की जिज्ञासा, प्रश्नाकुलता कब ? क्यों ? कैसे ? को जान लेने की आकांक्षा की पूर्ति-प्रकिया से ही इतिहास-प्रक्रिया विकासमान होती है।

अपने इसी कथ्य की अभिव्यक्ति के लिए मानव-जीवन के अनेक पड़ावों शैशव, यौवन, प्रणय और प्रणयजन्य अनुभूतियों और दाम्पत्य जीवन की आंख मिचौली, रूठ-मनौवल आदि से जुड़ी अनेक क्रीड़ाओं को आधार बनाया गया है। वात्सल्य, प्रणय, दाम्पत्य जीवन के सुख-दुःख और जीवन के अनेक रागरंजित आयोजनों के अनेक सुन्दर चित्र कविता में प्रस्तुत हुए हैं।

कवि का विचार है कि मानव-जाति का जीवन सदा द्वन्द्वग्रस्त रहा है जिसमें प्रलय-सृजन होता रहता है। उसका प्रणय-जीवन विश्वास-अविश्वास के झूले में झूलता रहता है। मानव-जीवन के प्रेम-घृणा, उल्लास-घुटन, सुख-दुःख, जन्म-मरण, सृजन-प्रलय आदि द्वन्द्वमयी जीवन-स्थितियों से जुड़े अनेक भावों को कवि कविता में समेट लेता है परन्तु सम्पूर्ण कविता में वह स्थिति चित्रण से ऊपर उठ कर किसी सार्थक जीवन-दृष्टि का विकास नहीं कर पाया, भाषा और शिल्प के आधार पर कविता अच्छी है।

2.1.2.1.8. पृथ्वी नाथ 'मधुप' इन की प्रथम कविता 'तुम कहां हो' 1950 ई० में प्रकाशित हुई थी, श्रीनगर में अभिनव हिन्दी लेखक मण्डल के संस्थापकों और संचालकों में से एक इस कवि को 1950 ई० के बाद कश्मीर में आरम्भ हुई हिन्दी लेखन-परम्परा का प्रथम कवि कहा गया है। इनकी कविता का भी आरम्भ परम्परागत भावबोध और शिल्प से ही होता है, परन्तु छठे दशक के अंत तक यह कवि भी नये भावबोध और शिल्प में लिखने लगा था। 'पद्यांजलि' में प्रकाशित तीन कविताओं में से यहां हम दो कविताओं 'ओ सलोनी' और 'आज मेरी मूक वाणी' का मूल्यांकन कर रहे हैं।

2.1.2.1.8.1. ओ सलोनी कविता में कवि की गृहस्थ जीवन की समझ अभिव्यक्त होती है। कवि के लिए प्रणय-प्राप्ति एक ऐसी उपलब्धि है जिसके लिए उसने आहों, आंसुओं, घुटन, कटुताजन्य मरणांतक पीड़ाओं को सहन किया है, प्रणयजन्य अनुराग, मधुरता, मादकता और स्वप्निलता को प्राप्त करने के लिए उसने भरसक जीवन-संघर्ष किया है और इस उपलब्धि के दिये को जलाए रखना चाहता है, क्योंकि यही दिया उन दोनों (पति-पत्नी) के पथ को आलोकित करेगा। दाम्पत्य जीवन के प्रतीक इस दिये को जलाए रखने के लिए कवि चाहता है कि पत्नी इसे स्नेह तेल से सिंचित करती रहे, जबकि इसे बुझाने के लिए अनेक दिशाओं से प्रभंजन उठने की शंका भी कवि के मन में है। संघर्ष, सुख-स्वप्न, प्रणय और जीवन-आकांक्षा का गुम्फित प्रतीक है 'दिया'। और कविता का आधार है प्रकाश और अंधकार के द्वन्द्व का सांस्कृतिक बिम्ब। कविता की काव्य-भाषा रोमांटिक गीतात्मकता के निकट है, कविता उपेन्द्रनाथ 'अश्क' की कविता 'दीप जलेगा' की याद करवा देती है।

2.1.2.1.8.2. आज मेरी मूक वाणी कविता में नये भावबोध और शिल्प को पकड़ने का यत्न है, परन्तु कविता की भाषा और भाव-भंगिमा परम्परागत भावबोध और शिल्प से मुक्त नहीं हो पाई। अस्तित्ववादियों ने मृत्युवरण को जीवन-मूल्य को समझने के उद्देश्य से सामने रखा है, मात्र निराशाजन्य अनुभूति के कारण मरणधर्मा हो जाना उन्हें स्वीकार नहीं। जबकि कवि 'मधुप' उपेक्षा, अजनबियत और निराशा के कारण मृत्युवरण तक के लिए तत्पर है परन्तु इसे किसी वृहद उद्देश्य के साथ नहीं जोड़ता। अनुभूति को जीवन-मूल्य से जोड़ना जरूरी है, जबकि कवि मात्र पीड़ा को व्यक्त करके ही रह गया है-

"वेदना, सिहरन, कसक, बस रह गई है जिंदगानी" (पद्यांजलि पृ० 76)

कविता का प्रस्तुत विधान परम्पराभुक्त ही है।

2.1.2.1.9. यश शर्मा की कविता 'पतझड़ की एक सांझ' में कवि ने छन्द की यति, गति, लय को छोड़ कर छन्द मुक्त शैली को अपनाया है, परन्तु प्रस्तुत-विधान परम्पराभुक्त है। प्राकृतिक उपकरणों से उपजने वाला उसका स्वप्न-सौंदर्य आंख झपकते ही छिन्न-भिन्न हो गया है। गतिशील होते हुए भी जीवन वही का वही रह गया है, यौवन, मादकता, चंचलता, नूतनता जो सत्य थी अब मात्र स्वप्न होकर रह गयी है।

विडम्बना यह है कि कवि इस निराशा से उबरता नहीं, टूटे हुए सपने पर मात्र आंसू

बहाकर रह जाता है। नया शिल्प अपना लेने के बावजूद भावबोध पुराना होने के कारण और जीवन-दृष्टि में रोमांटिकता के कारण कविता सार्थक होते-होते रह गई है।

2.1.2.2. नये भावबोध और शिल्प की फुटकर कविता हिन्दी कविता के इतिहास में 'प्रयोगवाद' और 'नयी कविता' के विकास का कारण नया भावबोध ही माना जाता है, जिस में भाव-पक्ष और विचार-पक्ष में संतुलन रखते हुए शिल्पगत प्रयोगों को महत्व मिला है जबकि प्रगतिवादी चिंतन के कारण कविता में से आदर्शप्रेरक भाववादी कल्पनातिरेक को नकारा गया है।

छठे दशक की हिन्दी कविता के केन्द्र में अस्तित्ववाद और मनोविश्लेषणवाद का अपना महत्व रहा है, परन्तु यहां भावबोध की व्याख्या के फेर में पड़ने की अपेक्षा यह कहना ही काफी होगा कि जम्मू-कश्मीर के हिन्दी कवि भी इस ओर आकर्षित हुए हैं। परन्तु यहां की कविता में इस नये भावबोध और शिल्प का विकास सातवें दशक में ही हो पाता है। जबकि छठे दशक में इस तरह की इक्का-दुक्का कविताएं ही लिखी गई हैं, जिनका मूल्यांकन प्रस्तुत है।

2.1.2.2.1. सत्यवती मल्लिक की 'पद्यांजलि' में प्रकाशित कविता 'हब्बा खातून की जीवन सन्ध्या' भाव, शिल्प और सम्प्रेषण की दृष्टि से इस दशक की उत्कृष्ट रचना कही जा सकती है, यद्यपि यह कविता स्वतंत्रता से पूर्व लिखी गई और नवम्बर 1951 में आयोजित 'हब्बा खातून दिवस' पर श्रद्धांजलि के रूप में पढ़ी गई तदपि प्रथमत: प्रकाशित छठे दशक में ही हुई है। उनकी काव्य साधना का अच्छा उदाहरण है ''हब्बा खातून की जीवन संध्या।'

हब्बा खातून कश्मीर की लोकप्रिय कवयित्री है, 16वीं शताब्दी की इस महान संत कवयित्री के प्रति लोगों में अब भी श्रद्धा और सम्मान का भाव है, लोग उन्हें मां कह कर सम्मान देते हैं। कवयित्री सत्यवती मल्लिक ने प्रस्तुत कविता में उनके महान् चरित्र को बड़े सान्द्र और आर्द्र बिम्बों में ढाल कर प्रस्तुत किया है, यहां हब्बा खातून कश्मीर की नारी जाति के सौंदर्य, हतभाग्य, निराशा और विरहजन्य पीड़ा का प्रतिबिम्ब बन कर उभरी हैं, वह सुकुमारी वैरागिन हैं जिसके तन पर न वस्त्र है न चेहरे पर हास्य, जिसकी सुन्दर कोमल देह धूलि में लोट रही है, केश राशि उलझी हुई है, आंखों में अतीत के वैभव की तस्वीरें हैं, परन्तु मुख से कश्मीर के दुर्भाग्य पर आहें निकल रही हैं।

कश्मीर की नारी जाति के शोषण के प्रति करुण कवयित्री 'हब्बा खातून' के बाह्य शारीरिक सौंदर्य का बिम्ब देकर ही शान्त नहीं हो जाती बल्कि उनके अन्तर्मन में गतिशील भावनाओं को भी बड़ी कुशलता से सघन बिम्बों में व्यक्त करती है। हब्बा खातून का पति, पुत्र, प्रिय और स्वदेश खो गया है जिनके विरहजन्य स्मरण को वह प्रकृति के अनेक उपकरणों में घुला मिला कर अपनी कविताओं (वाखों) के मृदु संसार का सृजन कर रही है।

श्रीमती मल्लिक के लिए हब्बा खातून साधारण नारी नहीं बल्कि कश्मीर की नारी जाति की सम्पूर्णता का प्रतीक है, वह सुन्दर है, सुकुमार है, शाहजादी है, पत्नी है, परित्यक्ता है, प्रेयिसी है, और प्रेम दीवानी है। इस प्रकृति-पुत्री का स्वाभिमान सतीसर जैसा निर्मल, आर्द्र,

गंभीर तथा गहन है, इसी स्वाभिमान के कारण वह मायके न जाकर मायके के निकट ही रुखी-सूखी चट्टान पर लेटी है। बचपन और यौवन से लेकर अपने विवाहोत्सव तक की तथा दुखद वैवाहिक जीवन और दुखद प्रणय-जीवन की मधुर-कटु स्मृतियां उसके अन्तर्मन को सता रही हैं, इसी कारण फूलों-सी नाजुक मां हब्बा खातून पत्थर जैसी संगदिल होकर लेटी हुई है।

यहां कवयित्री ने बड़े सधे हाथों से हब्बा खातून की हृदयस्थ भावनाओं-श्रृंगार, प्रणय, वात्सल्य, स्वाभिमान और करुणा आदि-को सान्द्र और आर्द्र बिम्बों में रूपायित किया है।

उसने उदासी, निराशा, परातंत्र्य, दुख आदि को व्यक्त करने के लिए कश्मीर के प्राकृतिक सौंदर्य के रूप में पतझड़ का भी चित्रण किया है परन्तु पतझड़ के उदासी भरे वातावरण से वह नवीन आस्था और आशा ग्रहण करती है कि जैसे पतझड़ के बाद वसंत आता है उसी तरह अब जमाना बदलेगा, नया दौर आएगा, देश स्वतंत्र होगा तो नयी हवा बहेगी, नव वसन्त फूलेगा, पद दलित नर-नारी जागेंगे तो हब्बा खातून की समाधि पर अंजलि भर-भर फूलों के हार चढ़ाएंगे।

स्वतंत्रताजन्य उल्लास, गर्व, स्वाभिमान, श्रद्धा, पूजा, अर्चना आदि अनेक भावनाओं को बांधते हुए बहुत ही उत्कृष्ट बिम्बों में सत्यवती मल्लिक की यह कविता इति श्री तक पहुंची है। कविता में भाव और विचार के संतुलन के साथ-साथ कवयित्री का चरित्र-नायिका के अन्तर्मन से तादात्मय और सम्प्रेषण का गुण कविता को उत्कृष्टता प्रदान कर गये हैं।

2.1.2.2.2. प्रो० पृथ्वीनाथ 'पुष्प' की प्रथम कविता 'दो दृश्य' शीर्षक से 1937 ई० में 'प्रताप' श्रीनगर में प्रकाशित हुई। 'पद्यांजलि' में संकलित कविताएं 'डर लगता है' नवम्बर 1959 ई० की और 'नवनिर्माणों की वेला' जनवरी 1960 ई० की लिखी हुई हैं।' जिनका मूल्यांकन प्रस्तुत है।

2.1.2.2.2.1. डर लगता है में नये भावबोध के प्रति कवि की जिज्ञासा और प्रयोगवादी ललक की झलक मिल जाती है, जबकि इसी यत्न में कवि की सार्थक जीवन-दृष्टि उलझ कर रह गई है। कवि को 'सच्चाई' से , 'हमदर्दी' से 'रुचिराई' से डर लगता है क्योंकि ये शब्द अर्थ भ्रष्ट हो चुके हैं, सच्चाई अब बहकाने लगी है, हमदर्दी कुण्ठित करने लगी है और रुचिराई छलने लगी है। हमदर्दी कुण्ठा को जगाकर संघर्ष-शक्ति को कुण्ठित करती है और 'शिव को शव' में बदल देती है, इसी तरह 'रुचिराई' छलना में पलकर मानव की भवश्री को कुत्सित कर देती है।

कविता में अति गूढ़ भाव है, जो सम्प्रेष्य नहीं हो पाया। पुष्प चौंकने का यत्न करते हैं और प्रत्येक पद के अंत में '!' चिन्ह लगा देते हैं। इस पद्धति से वह प्रयोगवादी ललक के कारण भाव और अर्थ को शब्द से अपर बना देते हैं।

2.1.2.2.2.2. नव निर्माणों की वेला! भाषा, भाव और विचारगत संतुलन की दृष्टि से उनकी उत्कृष्ट कविता है, जिसमें कवि ने स्वतंत्रता की रक्षा के लिए सतत सजग रहने की प्रेरणा दी है और देश के नव निर्माण के लिए सकाम कर्मरत रहने की आकांक्षा को अभिव्यक्ति प्रदान

की है। जीवन की धड़कन, गति और उल्लास को कवि बिम्बों में ढालता जाता है।

कवि बर्फीली जड़ता के नीचे बेसुध पड़ी वासन्ती सुषमा का आह्वान करता है। वह चेतना को निष्काम न रह कर सजग, सकाम कर्म द्वारा देश के निर्माण का उल्लासपूर्ण आह्वान देता है। वह मानव की साधना को अथक मानता है और कल्पना के चन्द्र लोक से अधिक धरती उसके लिए महत्वपूर्ण है।

कवि आवेश और उद्धत्तता को काबू में रखने की प्रेरणा देता है, राम जैसी मर्यादित शक्ति का आह्वान करता है, पंचशील के सिद्धांतों में आस्था रखता है।

कवि की चेतना प्रगतिशीलता से जुड़ी हुई है। उसमें जन--जन के प्रति कल्याण-कामना है। नये भावबोध तथा शिल्प को अपनाने के प्रति कवि सजग है।

2.1.2.2.3. मोहन 'निराश' का कविता- कर्म छायावादोत्तर छायावादीत्रयी की कविता जैसे भावबोध में आरम्भ होता है। परन्तु छठे दशक में ही वह नये भावबोध और शिल्प से जुड़ने का यत्न करने लगता है। 'पद्यांजलि' में उसकी अगस्त 59 से फरवरी 1960 तक की दो कविताएं 'दायरे और दायरे और दायरे' और 'पूरे चांद की रात' संकलित हुई हैं, जिनमें उसकी नये भाव बोध और शिल्प को पकड़ने की लालसा अभिव्यक्त हुई है। इन कविताओं का मूल्यांकन प्रस्तुत है।

2.1.2.2.3.1. दायरे और दायरे और दायरे कविता की भाषा जितनी सरल और स्पष्ट है, भाव उतना ही अधिक उलझा हुआ है, 'पत्थर' का प्रतीक उलझ गया है, पत्थर को पंख फिर पंख को पत्थर लगना आदि अपने आप में अद्वैत दर्शन की उलझन है। शायद कवि का आशय यह है कि अहंकारग्रस्त आदमी की सारी कोमल भावनाएं मर जाती हैं और वह पत्थर सरीखा हो जाता है, अहंकार ही उसके पंख हैं। ''पत्थर को पंख मिलते हैं तो पत्थर उड़ता चलता है क्योंकि पंख की प्रकृति है -उड़ना और उड़ान की अनेक गतियां होती हैं। कुछ अन्तराल के बाद पत्थर आ गिरा नीचे। और फिर पतन की भी गति होती ही है, पतनोन्मुख 'पत्थर' पानी की निचली तहों में उतर जाता है और अंत में रह जाती हैं 'पड़ गई शान्ति पर झुर्रियां, झुरियों के दायरे; दायरे। और दायरे। और दायरे।'' (पद्यांजलि पृ॰ 54)

भारतीय संस्कृति में जल को प्राय: जीवन का प्रतीक कहा गया है, जबकि यहां कवि प्रयोगवादी चेतना से ग्रस्त है, वह दूर की कौड़ी पकड़ने की चेष्टा में ब्रेक्टस का उपयोग करता है, शब्द के दुहराव से अपने कथ्य को स्पष्ट करने का यत्न करता है। परन्तु कविता की शिल्पगत निर्यात तो स्पष्ट है ही सम्प्रेषण में भी बाधा पहुंचती है।

2.1.2.2.3.2. पूरे चांद की रात मोहन 'निराश' की सार्थक लघु कविता है, जिसमें अनुभूति के स्फुरण को अति सुंदरता से अभिव्यक्ति मिली है। सपन के साथ कल्पना-उद्बोधक चांद का सुन्दर तालमेल बिठाया गया है, सम्पूर्ण कविता देखें-

'पथराई यादों को सरका। इधर-उधर को । पलभर-। तिलभर-। अरे, उगा है। सपन उगा है। दिवसों, दिवसों बाद उगा है;। चांद उगा है।'' (पद्यांजलि पृ॰ 75)

2.1.2.2.4. शशिशेखर तोषखानी नये भावबोध और शिल्प का छठे दशक का सबसे अधिक सार्थक और सिद्धहस्त कवि है। 'पद्यांजलि' में उसकी तीन कविताएं 'दो भाव चित्र', 'रिक्त!' और 'एक खूबसूरत दिन' प्रकाशित हुई हैं। इनका मूल्यांकन प्रस्तुत है।

2.1.2.2.4.1. दो भाव चित्र में कवि भोर और शाम के समय की दो अनुभूतियों को प्रस्तुत करता है, भोर के समय वह आह्लादित होता है, खुली बाहों के परिरंभण-पूर्ण कसाव को महसूस करता है, रूप-लावण्य की अर्थपूर्ण मुस्कान अपनी चौंध से उसे छलती है, उस की लावण्य-प्यास इन्द्रधनुष के पिघलते रंगों जैसी बहुआयामी होकर उसे स्वयं में डुबा रही है और वह समूचे मन-प्राण और बोध सहित मौन की गहराई में डूबता जा रहा है उसे अपनी चेतना रंग की लहरियों पर तैरती प्रतीत होती है।

अपने मन की इन सूक्ष्म भाव-अनुभूतियों के कारण बाह्य दृश्य भी उसके लिए आह्लादकारी हो उठे हैं, कवि रूपहले जाल में फंसा प्रकृति के रहस्य को पकड़ नहीं पाता।

'धूप यह, यह इन्द्रधनु, यह ओस/सत्य है, या नहीं है-या। छल रही है? दीठ को उस। सामने फैले क्षितिज की कोर! सत्य है या झूठ है?-या हैं पहेली-। गीत जो मेरे सिरहाने रख गई है भोर ?'

(पद्यांजलि पृ॰ 44)

कवि ने प्रकृति के बिम्बों के सहारे अपनी अनुभूति को पकड़ने के यत्न में आनुभूतिक मौन को अच्छी अभिव्यक्ति प्रदान की है, बिम्ब परस्पर गुंथे हुए हैं। कवि पर प्रयोगवादी कविता का प्रभाव लक्षित होता है। सुंदरता यह कि उनका कथ्य बिम्बों और अनुभूतियों में घुलमिल कर एकसार हो गया है।

परन्तु भोर के गीत यहां आह्लादिक हैं, उसके मन में रहस्य और कौतुक जगाते हैं; वहीं शाम के गीत कवि को उदास और अभिशप्त बना देते हैं। भोर के भाव चित्र में जहां आह्लाद, संयोगाकांक्षा और प्रकृति के रहस्य के प्रति जिज्ञासा के भाव झलकते हैं, वहीं शाम के भाव चित्र में उदासी, दर्द, निरुपाय विवशता, असमर्थता, संशय और व्यर्थता के भावों की झलक मिल जाती है। इस कविता के बिम्ब उदासी, निराशा, संशय को अपने भीतर समेटे हुए हैं।

जबकि कवि अपनी इस निराशाजन्य अनुभूति से उबरना चाहता है, दुनिया को कुछ देना चाहता है, परन्तु देने का उसका यह दम्भ या अभिमान भी कुछ नहीं कर पाता क्योंकि वह स्वयं ही संशयों में घिरा हुआ; चुक गया अनुभव करता है, जिंदगी की टूटन का अनुभव कर रहा है। प्रस्तुत भाव चित्र पूर्णतया नये भावबोध से सम्बद्ध है, बिना कुछ दिए चुक जाने की अनुभूति निराशा पैदा करती है, कवि आत्म विभंजन की अनुभूति से ग्रस्त होकर कहता है-

'ढूंढता फिर फिर वही मैं रूप-। जो कि मेरा था- कि जो मैं था-। मगर जो मैं नहीं हूं। जो कि बस आभास है उसका, कि जो था। जैसे सांझ की मिटती हुई-सी धूप,। जैसे शरद का बादल विरस निष्काम!'

प्रस्तुत भाव चित्र में असमर्थताजन्य घुटन, पीड़ा, ऊब, असहायता, निरुपायता, नीरसता की तीखी पीड़ाएं बिम्बों में गुंथी हुई हैं और इस निरुपायता के कारण स्वाभिमान टूट-टूट जाता

है। अस्तित्ववादी चिंतन का प्रभाव कवि चेतना पर है परन्तु ये सभी अनुभूतियां अकारण ही रह गयी हैं। हां, यदि अस्तित्वादियों की तरह यह भाव लिया जाए कि संत्रास अकारण, अनचाही स्थितियों से उपजता है तो कविता उत्कृष्ट है।

2.1.2.2.4.2. रिक्त! कविता में कवि अपरिचय की सीमा लांघ कर खुद को बांटता हुआ सभी का होना चाहता है। परन्तु बांटे क्या ? उसके पास न आह्लाद है और न ही आत्मा के उदित पुण्य सरीखा दर्द है, जिसे बांट दे। फिर भी वह अपने अनुभव का सत्य बांट देना चाहता है, नतीजा चाहे कुछ भी निकले-

'तुम्हारे वास्ते मैं तो। घृणा में, कीच में। अपमान में धंस कर। अछूता सत्य लाया हूं। उसे मैं। आज तुमको सौंपता हूं। फिर मुझे। सूली मिले या ताज कांटों का। सभी स्वीकार!' (पद्यांजलि पृ॰ 47)

वह कवि धर्मवीर भारती की कविता 'प्रमथ्यु गाथा' के प्रमथ्यु की तरह ही अपने अनुभव की ज्योति सौंपता है ताकि अब तक के बंद द्वार उन्हें भी दिख जाएं। वह कविता को नया मोड़ भी देता है कि दर्द ही दर्द को पहचान सकता है। परन्तु विडम्बना यह है कि कवि अपने दर्द को कोई नाम नहीं दे पाता। वह स्वयं को रिक्त महसूस कर के ही रह जाता है।

कवि के लिए दर्द आत्मा का उदित पुण्य है। कविता अंत में आकर उलझ जाती है, बल्कि अधूरी ही रह जाती है।

2.1.2.2.4.3. एक खूबसूरत दिन कविता में कवि खूबसूरत परन्तु अनजिए निकलते जा रहे दिन से उपजी अनुभूति को व्यक्त करता है। अस्तित्ववादी तो क्षण-क्षण को जीने की प्रेरणा देते हैं परन्तु कवि का तो पूरा दिन ही अनजिया रह गया है ।

वस्तुतः उसे यह खूबसूरत दिन अनायास ही मिला है, जिसकी क्वारी धूप के नर्म चुम्बन मन की टूट पर बिछल गए हैं, फूलों के गुच्छों के तरल स्पर्शों ने उसके प्राणों में बसे संशयों को धो दिया है। परन्तु कवि की दुविधा यह है कि इस खूबसूरत दिन का उपयोग कैसे करे, इसे अपने कोट में फूल-सा सजाए, या प्रियतमा के जूड़े में भर दे, या-

'इसे अपने घायल अहम की/बैसाखी बनाऊं या पंख ? / इस दिन का/ इस खूबसूरत दिन का क्या करूं ? /इससेअपनी निवर्सना कुण्ठाओं को ढकूं/ या /प्राप्ति की पताका बना/ मन में कंहीं लहराऊं ?' (पद्यांजलि पृ॰ 50)

इसी दुविधा में ग्रस्त कवि कुछ भी नहीं कर पाता और दिन निकल जाता है तो वह पश्चाताप करता रह जाता है-

'रस का अबाध एक झरना/ कहीं से/ मेरे लिए फूटा था/
मैंने अंजुरी दी। मगर पिया नहीं। ' (पद्यांजलि पृ॰ 51)

अभुक्त के प्रति यह पश्चाताप तो ठीक है परन्तु दुविधाग्रस्त रह जाना ही आदमी की नियति नहीं, जीवनहीनता से ग्रस्त कवि यहां 'नयी कविता' के फैशन को पूरी तरह अपना गया

है।

2.1.2.2.5. **रत्न लाल शान्त** की पहली कविता 'वर्षा' 1953 ई० में प्रकाशित हुई थी। छठे दशक से लिख रहे कवि का भावबोध और शिल्प नया ही है। 'पद्यांजलि' में 'चिनार' और 'खोटी किरणें' आदि दो कविताएं संकलित हैं। यहां हम 'चिनार' कविता का मूल्यांकन कर रहे हैं. 'खोटी किरणें' इसी शीर्षक से सातवें दशक में छपे कवि के स्वतंत्र कविता-संग्रह में पुनः प्रकाशित हुई है, अतः सुविधा के लिए वहीं इसका मूल्यांकन करेंगे। यहां 'चिनार' कविता का मूल्यांकन प्रस्तुत है।

2.1.2.2.5.1. **चिनार** यह कश्मीर का वृक्ष है, जिसका कश्मीरी कविता में सांस्कृतिक महत्व है। इस वृक्ष के पत्ते का ऊपरी पर्त गाढ़ा हरा और निचला पर्त सफेदी लिए होता है, जिसकी घनी छाया राहगीर को आराम देती है, पत्ते सूख कर लाल हो जाते हैं तो कश्मीर वादी का रक्ताभ सौंद्रर्य और भी बढ़ जाता है। कवि चिनार के पत्तों पर पड़ी सूर्य-किरणों का बिम्ब देता है-

'सतरंगी पंखों पर तिरकर। सूर्यदेव से लुक-छिप खिसकी।

मधुमयी किरणों के ये छत्ते।

ये चिनार के पत्ते।' (पद्यांजलि पृ० 57)

कवि प्रस्तुत कविता में प्रकृति और अनुभूति के प्रगाढ़ बंधन में बंधे बिम्ब देता है परन्तु मात्र पत्तों के रूप को ही रूपायिति दे पाता है। कविता का भाव और कथ्य उलझ गया है, प्रयोगवादी ललक स्पष्ट झलकती है।

2.1.2.3. **काव्यगत उपलब्धि** प्रो० सुभाष भारद्वाज और श्री शशि शेखर तोपखानी इस दशक की उपलब्धि हैं। छठे दशक की कविताओं के उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर कहा ज़ा सकता है कि इस दशक में जम्मू प्रदेश में परम्परागत भावबोध और शिल्प की कविता लिखी जा रही थी जबकि कश्मीर में कवियों का झुकाव नए बोध और शिल्प की ओर बढ़ता जा रहा था और इस क्षेत्र में उन्होंने अभिव्यक्ति के संदर्भ में कुछ सीमा तक सफलता भी पाई है।

इस परम्परागत भावबोध में रहस्यावादी प्रवृत्ति रोमांसजन्य ही है, भाषा में द्विवेदी युगीन सरलता है, प्रस्तुत विधान छायावादी रूपकों से ग्रस्त है, यहां संयोग के चित्र कम हैं परन्तु वियोग के क्षणों में इन सुखद अनुभूतियों का स्मरण किया गया है।

नये भावबोध से सम्बद्ध कविता का सफल कवि शशि शेखर तोपखानी है, जिसकी कविता 'नयी कविता' के कथ्य और शिल्प से मेल खाती है। इसकी कविता में अकारण उपजी अस्तित्ववादी मनः स्थितियों का भी अच्छा चित्रण मौजूद है।

2.2. कहानी : छठा दशक

छठे दशक के अंत तक जम्मू-कश्मीर में हिन्दी कहानी का लेखनकर्म कविता की अपेक्षा अत्यल्प है। 'गद्यांजलि' के 'आमुख' में प्रो० रामनाथ शास्त्री ने संकेत किया है कि इस

संकलन में जिन लेखकों की रचनाएं दी हैं, उनमें स्थायी रूप से इस क्षेत्र में साधना करने वालों की संख्या अधिक नहीं। फिर भी इन्हीं फुटकर साहित्य-प्रयत्नों के द्वारा रियासत में हिन्दी साहित्य-साधना की एक कोमल परम्परा आज तक चलती आ रही है। इसी परम्परा ने यहां नये लिखने वालों को प्रोत्साहित किया है।

परन्तु यह कहना अत्युक्ति न होगी कि 'गद्यांजलि' के कहानीकारों में से मात्र दो कहानीकार वेदराही और हरिकृष्ण कौल ही आगे तक भी कहानी लिखते रहे हैं, शेष संकलित छ: कहानीकारों ने अपनी एक-आध ही और कहानी प्रदेश की पत्रिकाओं में प्रकाशित करवाई है। जबकि सत्यवती मल्लिक और मोहन कृष्ण दर आदि कहानीकारों की क्रमश: छ: और तीन पुस्तकें छठे दशक के अंत से पहले ही प्रकाशित हो चुकी थीं। प्रस्तुत दशक की इन 16 मौलिक परन्तु अनुपलब्ध पुस्तकों में इन दोनों लेखकों की पुस्तकों के नामों का जिक्र किया जा चुका है।

प्रस्तुत पृष्ठों में इन्हीं आठ उपलब्ध कहानियों का मूल्यांकन किया जा रहा है जबकि इन लेखकों में से भी मात्र धर्मचन्द 'प्रशान्त' और रतन लाल 'शान्त' ही स्थायी रूप से प्रदेश में रह रहे हैं।

2.2.1. सत्यवती मल्लिक की 1947 ई० में प्रकाशित पुस्तक 'वैशाख की रात' से उद्धृत कहानी 'वंशी और चिट्ठी' परस्पर वियुक्त पति-पत्नी की वियोगजन्य पीड़ा की गाथा कहती है। खेतों में बिरायी करती थकी क्लांत युवती पत्नी का काम में मन नहीं लगता। उस पत्नी का उन्मुक्त लोकलाजहीन पत्र गलत अडरैस के कारण लेखिका को मिल जाता है। उधर लेखिका वंशी का स्वर सुनती है और अनुभव करती है कि वंशी वादक भी पराधीन है, हाथ-पैर बंधे हैं, पत्नी का पत्र न मिलने के कारण पत्नी से रूठा हुआ है! घर नहीं जाता और अपने हृदय के उन्माद को वंशीवादन द्वारा प्रकट करता है।

पत्र की पंक्तियों और वंशी के स्वर को आधार बनाकर, पांच खण्डों में विभक्त आत्म कथात्मक शैली में सत्यवती मल्लिक ने यह उत्कृष्ट कहानी लिखी है, यहां मिलनातुर प्रवासियों की विरहजन्य पीड़ा का हृदयद्राविक चित्रण हुआ है। लेखिका की दुविधा ही कहानी को सार्थक कहानी बना गई है।

2.2.2. मोहन कृष्ण दर की 'केसर के फूल' पुस्तक से उद्धृत कहानी 'घास का माया जाल' का विकास विवरण, स्मरण और स्वप्न-वर्णन जैसी शैलियों के सहारे हुआ है। कहानी के पात्र का चरित्र-विकास विरोधी स्थितियों में चल रहे जिजीविषा के संघर्ष और अन्तर्द्वन्द्व के फलस्वरूप हुआ है। प्रकृति की विकरालता में जीवन रक्षा के लिए फंसे सैनिक की परिस्थितिजन्य कठिनाइयों का, दुख का और हृदयस्थ अनुभूतियों का कहानी में बखूबी चित्रण हुआ है। प्रतीत होता है कि फूस की प्राणहीनता भी मानव हृदय में शुष्कता और एकाकीपन का भाव भर कर उसे दैन्य स्थिति में पहुंचा देती है। सारी कहानी सैनिक के भीतरी भय को स्वप्नवत् अभिव्यक्त करती चलती है, भटक कर वह जिस घास के सहारे बचाव कर रहा है, भयभीत हो कर उसी घास के मायाजाल में उलझ कर शत्रु के हाथ लग जाता है।

सैनिक के हृदयस्थ भय, भटकाव, जीवन-व्यथा, घरेलू सु-स्वप्नों के स्मरण और स्वप्न के कारण ही बंदी बन जाने की स्थिति का सशक्त और सार्थक चित्रण कहानी में हुआ है। सैनिक का भयभीत होना बेशक सैन्य अनुशासन के विरुद्ध है, परन्तु मानव-मन की नैसर्गिक वृत्ति के मनोविश्लेषण की दृष्टि से उत्कृष्ट कहानी है-'घास का मायाजाल'।

2.2.3. **दीपक कौल** की कहानी 'गोपी' जनवरी-फरवरी 1959 ई० की 'योजना' पत्रिका से उद्धृत है। यह कहानी है-दहेज के लालच के कारण प्रिय पति द्वारा की जा रही उपेक्षा से पीड़ित होकर पत्नी द्वारा पर-पुरुष के प्रति झुकाव के स्वीकार की।

माता-पिता की आज्ञा पाकर मोहन गोपी से प्रेम विवाह करता है। माता पिता दहेज न मिलने का उसे ताना देते रहते हैं। अंतत: मोहन भी उनकी बातों में आ जाता है। पत्नी अपने पति को समझाती है, 'तुम देखो तुम्हारा दहेज-गोपी पूरी मिली कि नहीं। यदि मिली है तो सब ठीक है।'

पत्नी पति से प्रेमियों जैसा अधिकार चाहती है परन्तु पति इसे बचपना कह कर टालता जाता है। धीरे-धीरे पति पत्नी में दूरी बढ़ जाती है। मोहन का चचेरा भाई मनोहर इस पति-पत्नी के बीच के तनाव को भांप जाता है और इस स्थिति का लाभ उठाना चाहता है, गोपी भी उपेक्षिता समझ कर मनोहर के प्रति आकर्षित हो जाती है, वैसे लेखक यह तर्क भी देता है कि मनोहर हंस मुख है। इस पड़ाव पर लेखक ने गोपी और मनोहर के हृदय में चल रहे प्रणयांदोलन का अच्छा मनोविश्लेषणपरक चित्रण किया है।

पात्रों के चरित्र का विकास उनके अन्तर्द्वन्द्ध और विसंगत वातावरण के प्रति उनकी मानसिक प्रतिक्रियाओं की बुनाई द्वारा किया है, दोनों के परस्पर आकर्षण को डर, भ्रम, चेहरे के बदलते रंगों, उठती-गिरती दृष्टियों और हृदयस्थ उबलती भावनाओं के द्वारा चित्रित किया है। विवाहिता द्वारा पर-पुरुष के प्रति आसक्त होने या न होने पर संकल्प-विकल्प और विचार-संघर्ष दिखाया गया है। अंतत: गोपी मानसिक संघर्ष के चरमोत्कर्ष पर पहुंच कर अपने दु:खद विवाहित जीवन को अपना भाग्य दोष कह कर ही संतुष्ट हो जाती है और जानबूझ कर अपने सामाजिक दायित्व के प्रति विमुख हो जाती है। परन्तु कहानी अंत तक पहुंचती हुई सहज विकास को खो देती है क्योंकि लेखक संयोग (Chance) के सहारे कहानी को सुखद और सुखान्त बनाना चाहता है।

2.2.4. **हरिकृष्ण कौल** की 'यक्ष और टोपी' 'योजना' से साभार उद्धृत कहानी है, जिसमें अभावग्रस्त कश्मीरी परिवार द्वारा इज्जत के सवाल पर स्वीकृत दासत्व का अच्छा चित्रण हुआ है। कहानी में मोहन और विजया नाम के दो बच्चों के परस्पर संवादों के द्वारा लोकविश्वास का संयोजन हुआ है। बच्चे कुबेर पूजा के दिन खिचड़ी खाने बैठे यक्ष की टोपी चुरा कर उसे गुलाम बना लेना चाहते हैं और उससे अपने परिवार के लिए धन-धान्य, महल और अन्य सुख-सुविधाएं प्राप्त करना चाहते हैं। बच्चों को पता है कि पहले किसी बहु ने यक्ष को टोपी देकर

दासत्व-मुक्त कर दिया था जिससे सारा परिवार पुनः निर्धन और अभावग्रस्त हो गया था। बच्चे अपनी भोली-भाली रूपा भाभी के प्रति शंकित हैं कि कहीं भाभी यक्ष को टोपी देकर उनकी की गई मेहनत को बेकार न कर दे। लेखक ने बड़ी सफलता से परिवार की सुखाकांक्षा को अभिव्यक्ति दी है।

रूपा चिढ़ती है कि उसका पति अपने चाचा जी से क्यों डरता है क्यों चाचा जी की सुविधाओं पर पत्नी की भावनाओं को कुरबान कर देता है? रूपा की सास जानती है कि धनवान चाचा जी ने अपने बीमार भाई को ऐसी खरी-खोटी सुना दी थी कि इस अपमान को न सह सकने के कारण ही उनकी मृत्यु हो गई थी। इस तथ्य के बावजूद सास क्यों चाचा जी से दबी-दबी रहती है ? रूपा चिढ़ती है कि घर के अन्य सदस्य भी क्यों चाचा जी के आदेश को टाल नहीं पाते ?

रूपा की सास और पति रूपा से ऋण के रहस्य को छिपाए रखने के लिए ही चाचा जी का दासत्व स्वीकार किए हुए हैं। तभी तो रूपा के व्यंग्य से कुढ़ कर उसका पति बच्चों को समझाता है 'टोपी कोई मामूली चीज नहीं, इज्जत की निशानी होती है और अपनी इज्जत बचाने के लिए प्राणी क्या नहीं करता ?'

कहानी अतिरिक्त फैलाव के बावजूद टोन-टैक्सचर के आधार पर सफल और सार्थक है। बच्चों की सरलता, पत्नी की खीझ, सास और पति की रहस्यमयी चुप्पी आदि का सशक्त वर्णन हुआ है, वार्तालाप, घटना-स्मरण और वर्णन शैली द्वारा कहानी का सहज विकास हुआ है।

'गद्यांजलि' में संकलित पूर्व प्रकाशित उपर्युक्त कहानियों के अतिरिक्त चार प्रथम बार प्रकाशित कहानियां हैं- 'मालिन', 'पानी और पत्थर', 'डोलमा' और 'नन्ही', जिनका मूल्यांकन निम्नलिखित है।

2.2.5. धर्मचन्द 'प्रशान्त' की कहानी **'मालिन'** नारी की सहज प्रकृति और सख्य भाव, उसके आकर्षक व्यक्तित्व तथा शील-स्वाभिमान की कहानी है। लेखक की पत्नी की सखी मालिन सांवली होते हुए भी छबीली है। लेखक का मित्र गोपाल बड़ा चुलबुला, हंस मुख 'नटखट' है। मालिन उसे आंखें गड़ाये देख फूलों का गजरा मेज़ पर फैंक कर चली जाती है। अगले दिन गोपाल मालिन की उपस्थिति में लेखक को बहाने से भेज देता है। जब लेखक लौटता है तो गोपाल की कमीज़ फट चुकी थी, उसके मुंह पर नाखून लगे थे, रुधिर बह रहा था। इसके बाद मालिन कभी नहीं आती। लेखक के मन में उसकी स्मृति आज भी ताज़ा है।

कहानी की भाषा सहज, सरल और भावोत्तेजक है, नारी के सहज सहानुभूतिपूर्ण हृदय, आत्म-विश्वास, पैनी निगाह और आत्म सम्मान की रक्षा के निमित्त जुझारू वृत्ति का सुन्दर और सक्षम चित्रण हुआ है। आत्मकथात्मक, विवरण और संयोग-नियोजन की शैली को अपनाया गया है, मालिन के चरित्र का विकास विभिन्न क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं द्वारा सम्पन्न होता है।

2.2.6. वेदराही की कहानी 'पानी और पत्थर' एक सम्पन्न विधवा के मिथ्य अभिमान और ठस्से से भरे रहन-सहन पर तीखे व्यंग्य की कहानी है। जबकि इस सम्पन्न विधवा (सरोज की मां) के बरक्स एक विधवा फूलां और उस की विधवा मां को रख कर कहानी का टोन और टेक्सचर बुना गया है।

कहानी में सम्पन्न और निर्धन औरतों के परस्पर संघर्ष का अच्छा चित्रण है, उनके परस्पर के संवाद और नोक झोंक तीखी, तेज तर्रार है तथा प्रभावशाली भी है जो कहानी को विकास भी देती है।

मकान मालिकन अपमान बोध से ग्रस्त है और फूलां की मां से मकान खाली कराने के लिए रमेश को उकसाती है। रमेश फूलां को कामुक निगाहों से देख-देख कर परेशान करता है। यहां फूलां के अन्तर्मन की उधेड़बुन का अच्छा चित्रण किया गया है, गरीब फूलां की शील-सम्मान की चिंता सहज और सराहनीय है।

रमेश और सरोज के परस्पर सान्निध्यजन्य आकर्षण का भी अच्छा चित्रण हुआ है, इसी आकर्षण-पाश में बंधा रमेश फूलां को भूल ही जाता है। लेखक ने सरोज की मां के व्यवहार में आए परिवर्तन को भी पुख्ता मनोवैज्ञानिक आधार दिया है।

एक दोपहर फूलां की मां द्वार की दरार से भीतर झांक कर सरोज और रमेश को प्रणयलीला रचाते देख लेती है । वह सरोज की मां को भी यह सब दिखा देती है। सरोज की मां बेहोश हो जाती है

फिर एक दिन मां के जेवर और संदूक में रखे नोट लेकर रमेश के साथ सरोज भाग जाती है, जिससे मकान मालकिन की जीवन भर की कमाई और मर्यादा लुट जाती है।

कहानी में वर्णन शैली को अपनाया गया है। शंका, प्रेम, घृणा, अपमान आदि अनेक भावों का सशक्त तथा मनोवैज्ञानिक चित्रण हुआ है। बेटियां सांझी होती हैं, उनका मान-सम्मान सांझा होता है, इसी तथ्य को उद्घाटित करने के लिए कहानी की तर्कसंगत बुनाई हुई है, मिथ्य अभिमान के कारण उपजा विरोधभाव धीरे-धीरे सम-वेदना की अनुभूति में बदलता हुआ पश्चात्ताप में ढलता चला गया है, कहानी एक तरह के नैतिक बोध को जागृत करती हुई चरमोत्कर्ष पर पहुंचती है, जिसमें निश्चित उद्देश्य के अनुसार पात्र और स्थितियां गढ़ी गई हैं।

2.2.7. जवाहर लाल कौल की कहानी 'डोलमा' अव्यक्त प्रेम की पीड़ा की कहानी है। जिसमें देवदासी बनी लड़की (जिसके लिए विवाह वर्जित है) की मनोव्यथा का कारुणिक चित्रण हुआ है। कहानी आत्मकथात्मक तथा विवरण शैली में लिखी गई है। देवदासी डोलमा के बाह्य सौंदर्य और विनम्र व्यवहार के प्रति लेखक और इस की मां भी आकर्षित हैं, मां चाहती है कि यदि वह पण्डित की लड़की होती तो बहु भी बना लेती। डोलमा के सौंदर्य, संयम और जिज्ञासा का वर्णन तो सीधे सादे शब्दों में किया गया है, परन्तु उसके अन्तर्मन में छिपी करुणा, जुझारूपन और अरक्षित के प्रति परेशानी के भाव क्रिया-प्रतिक्रिया के माध्यम से व्यक्त किए गए हैं।

लेखक देखता है कि उसके संदूक से मिली यह वही मूर्ति है जिसके समक्ष डोलमा झुकी हुई संयम की मूर्ति प्रतीत होती थी, पहले तो लेखक इस मूर्ति के रहस्य को नहीं समझ पाता फिर धीरे-धीरे वह डोलमा की मन:स्थिति का स्मरण करता है कि डोलमा उसके सामने स्थिर नहीं रह पाती थी, आंखें कभी ऊपर उठतीं तो शीघ्र ही झुक जाती थीं, तो क्या डोलमा उससे प्यार करती थी? परन्तु कह न पाती थी ?

फिर वह महात्मा बुद्ध की प्रतिमा के माध्यम से डोलमा के त्याग, संयम और करुणा को पहचान लेता है और उसे डोलमा का स्वर सुनाई पड़ता है, 'मैं गुम्पे में लामाओं के संग पली लड़की हूं। मैं जन्मते ही तथागत की शरण गई हूं। मैं देवदासी हूं, भिक्षुणी हूं। तुम्हारी नहीं हो सकती।'

अवैध संतान के हृदय में उपजे लज्जा-भाव, नैसर्गिक आत्म-वृत्ति के दमन के लिए किए गए उसके आन्तरिक संघर्ष का सशक्त चित्रण कहानी की उपलब्धि है इसे एक उत्कृष्ट कहानी कहा जा सकता है।

2.2.8. रत्न लाल शान्त की कहानी 'नन्ही' प्रणय सम्बन्ध को छिपाने के लिए की गई नारी की हृदयगत प्रतिक्रियाओं की मनोविश्लेषण प्रधान कहानी है। छोटी बहिन पारिवारिक मर्यादा के कारण प्रणय सम्बन्ध को छिपा रही है जबकि बड़ी बहिन इस रहस्य को खोल कर, छोटी बहन को मनचाहा पति दिलाने में उसकी मदद करना चाहती है। छोटी के संदेह और बड़ी की जिज्ञासा को उलीकने के लिए कहानी में विस्तार किया गया है, लगता है कि लेखक का उद्देश्य कहानी कहना नहीं मनोविश्लेषण करना है।

दो बहनों की हंसी-ठिठोली के धीरे-धीरे गम्भीर होते जाने के कारण उपजे वातावरण को बुनने की ही कोशिश की गई है, जिससे सम्प्रेषणीयता में कहीं-कहीं बाधा भी पहुंची है, पिता की रूढ़िवादिता के कारण बेटी अपनी प्रणयजन्य इच्छा का गला घोंट रही है। परन्तु प्रेम के आधार (प्रेमी) के दूर चले जाने पर छोटी की प्रेम की गंभीरता उजागर हो ही जाती है। नारी के मानसिक दमन का कहानी में अच्छा मनोविश्लेषणपरक चित्रण हुआ है।

2.2.9. कथागत उपलब्धि जम्मू-कश्मीर में छठे दशक में प्रकाशित आठ कहानियां ही उपलब्ध हैं। इन कहानियों में अधिकतर दमित प्रेम, वासना या अव्यक्त प्रेम का ही चित्रण मिलता है। हां, नारी के शील-सम्मान को नैतिकतावादी दृष्टि से देखा और संजोया गया है, गोपी और सरोज दो ही ऐसे नारी पात्र हैं जो अपनी-अपनी स्थितियों से संचालित और तर्कों द्वारा अनुमोदित हैं और विवाह-संस्था के विरुद्ध आचरण करते हैं।

इस दशक में कहानी में अधिकतर विवरण शैली, आत्मकथात्मक शैली, मनोविश्लेषणात्मक शैली को अपनाया गया है, कहीं-कहीं अतीत में घटित घटनाओं के स्मरण के सहारे भी कहानी का विकास किया गया है। इस दशक की उत्कृष्ट कहानियां हैं, 'वंशी और चिट्ठी' 'यक्ष और टोपी' 'पानी और पत्थर' और 'डोलमा'।

2.3. नाटक एकांकी नाटक : छठा दशक

इस दशक के नाटक या एकांकी नाटक प्रकाशित रूप में नहीं मिलते। हां, गोपीनाथ कौशिक का एक एकांकी नाटक 'गद्यांजलि' में प्रकाशित है, जिसका मूल्यांकन निम्नलिखित है।

2.3.1. **गोपीनाथ कौशिक** का एकांकी 'नयनाहुति' गद्यांजलि में संकलित है। सात 'सीन' में विस्तृत प्रस्तुत एकांकी में महाराज अशोक के पुत्र कुणाल की सौतेली मां द्वारा आंखें फुड़वाने और देश-बहिष्कृत करने के प्रसंग को नियोजित किया गया है।

एकांकी में एकनिष्ठ प्रेम की प्रशंसा, अनमेल विवाह के प्रति आलोचना, प्रणय के क्षेत्र में पाप या पुण्य, वासना या प्रेम, प्रेम या दमन आदि विचारों पर विचार विमर्श हुआ है और राजनीतिक छलकपट तथा नारी के कामोद्दीप्त क्रूर रूप का चित्रण हुआ है।

सात दृश्यों में विभाजित प्रस्तुत एकांकी साधारण ही है, पात्रों के मानसिक द्वन्द्व को न उभार कर संवादों द्वारा कथा ही कही गई है, संवादों में पात्रों की अन्तर्वृतियां मर गई हैं। पात्र मात्र कठपुतली हैं, जीवन संघर्ष की अपेक्षा आज्ञापालक से।

संदर्भ

1. रेत का सागर-प्रो० सुभाष भारद्वाज - भूमिका पृष्ठ !

3

सातवें दशक तक का जम्मू-कश्मीर का हिन्दी साहित्य

जम्मू-कश्मीर में हिन्दी साहित्य- प्रकाशन की दृष्टि से सातवां दशक महत्वपूर्ण है। इस दशक में जम्मू-कश्मीर अकादमी आफ आर्ट, कल्चर एण्ड लैंग्वेजिज से प्राप्त आर्थिक अनुदान से अनेक कवियों, लेखकों की रचनाओं की स्वतंत्र पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। अकादमी की पत्रिकाओं में भी इस दशक में अनेक फुटकर रचनाएं प्रकाशित हुई हैं। कहा जा सकता है कि पांचवें दशक से लिख रहे कवियों, लेखकों को पहली बार प्रकाशन की सुविधा मिली तो उनका डायरी बंद साहित्य प्रकाशित होने लगा। इस दशक में अधिकतर कविता-संग्रह ही प्रकाशित हुए हैं, कहानी तथा गद्य की अन्य विधाओं से सम्बद्ध रचनाएं इस दशक में फुटकर रूप में ही पत्रिकाओं में प्रकाशित हो पाई हैं। इन सब रचनाओं का मूल्यांकन निम्नलिखित है।

3.1. कविता: सातवां दशक

इस दशक में प्रकाशित कविता की मूल संवेदना और शिल्प छठे दशक की कविता के भावबोध और शिल्प से भिन्न नहीं है। परम्परागत भावबोध और शिल्प तथा नया भावबोध और शिल्प आदि दोनों ही अपने अपने विकास-क्रम में इस दशक की कविता में विद्यमान रहे हैं। अतः कविता का मूल्यांकन इन्हीं दो प्रमुख प्रवृत्तियों के आधार पर सुचारू और न्यायसंगत हो सकता है।

परम्परागत भावबोध और शिल्प के कविता-संग्रह हैं-

उल्लोल	(डॉ०) गंगा दत्त शास्त्री 'विनोद'	1963 ई०
ऋतु विहार	देवरत्न शास्त्री	1965 ई०
सुषमा	मनसाराम शर्मा 'चंचल'	1965 ई०
दो चान्द	शंकर शर्मा 'पिपासु'	1965 ई०
रुनझुन	ज्योतीश्वर 'पथिक'	1966 ई०
सागर के तीर	(डॉ०) ओमप्रकाश गुप्त	1967 ई०
सीमा का पंछी	शंकर शर्मा 'पिपासु'	1967 ई०

परम्परागत भावबोध और शिल्प के प्रबन्ध-काव्य-

शिवालोक	ब्रह्मचारी शिवप्रसाद त्रिपाठी	1968 ई.

नयें भावबोध और शिल्प के कविता-संग्रह हैं-

खोटी किरणें	डॉ० रत्न लाल (रैणा) शान्त	1965 ई०
रेत का सागर	प्रो० सुभाष भारद्वाज	1967 ई०
देखती आकाश आंखें	सुतीक्ष्ण कुमार आनन्दम्	1968 ई०

परम्परागत भावबोध के अन्तर्गत आने वाले कवियों ने उत्तर छायावादी रोमांटिक लहजे और व्यक्तिगत सुख-दुःख, राग-विराग, शृंगार और यौवन की अनेक कामनाओं को परम्पराभुक्त प्रस्तुत योजना तथा छन्दविधान द्वारा अभिव्यक्ति प्रदान की है जबकि नये भावबोध के अन्तर्गत आने वाले कवियों ने प्रयोगवादोत्तर 'नयी कविता' की मूल संवेदना को पकड़ने का यत्न किया है. इनका शिल्प भी छन्दमुक्त 'नयी कविता' जैसा ही है। अतः सुविधा के लिए इस दशक की कविता का अध्ययन इन्हीं दो प्रमुख शीर्षकों में अपेक्षित है।

3.1.1. परम्परागत भावबोध और शिल्प के कविता-संग्रह इस प्रवृत्ति के अन्तर्गत आने वाले अधिकतर कवि 1940 ई. के आसपास से कविता-कर्म कर रहे थे, डॉ० गंगादत्त शास्त्री 'विनोद', श्री मनसाराम शर्मा 'चंचल', श्री शंकर शर्मा 'पिपासु' आदि कवियों के लेखन-कर्म का तो प्रारम्भ ही 1940 ई० के आसपास का है, जबकि इस दशक के शेष कवियों ने छठे दशक में ही लेखन-कर्म का आरम्भ किया है। परन्तु इनकी कविता की संवेदना और शिल्प है परम्परागत ही। यहां हम इन कविता संग्रहों के प्रकाशन के कालक्रम से इनकी कविता का मूल्यांकन कर रहे हैं।

3.1.1.1. उल्लोल की कविताएं 1942 से 63 ई० तक के अन्तराल की रचनाएं हैं, इन में कवि गंगादत्त शास्त्री 'विनोद' का भावुक हृदय छन्दों के गठन और भाषा की चुस्ती की अपेक्षा भाव-भूमि की ओर झुका हुआ है। रोज़ी रोटी से जुड़े संघर्ष में मिल रही असफलता के कारण पैदा हुए विषाद का स्वर यहां प्रमुख है। प्रणयजन्य असफलता, उपेक्षा, अजनबियत की अनुभूति के कारण भी कवि के मन में नैराश्य का संचार हुआ है। इस व्यक्तिगत नैराश्य और पराजय-बोध को कवि ने भारतीय स्वतंत्रता-संघर्ष के दौरान जन-जन पर छाये नैराशय से जोड़ने का प्रयास किया है। कविता के प्रतीक, रूपक और प्रस्तुत-विधान परम्परागत हैं, विचार की अपेक्षा भाव ही प्रधान है और कहीं-कहीं भावुकता दोष भी आ गया है। इन कविताओं का मूल्यांकन प्रस्तुत है।

3.1.1.1.1. वैयक्तिक सुख-दुःख और नैराश्य कवि का जीवन विपदा, विवशता, एकाकीपन और छलकपट से पीड़ित रहा है और उसकी जीवन-गाथा मन में उपजी पीड़ा से अटी पड़ी है। उसके लिए सारे सांसारिक रिश्ते झूठे और स्वार्थ प्रेरित सिद्ध हुए हैं, विसंगतियों के कारण यौवन की अंगड़ाइयों का तूफान झूठा सिद्ध हुआ है, सारी रंगरलियां अंततः शमशान की ओर ही ले गई हैं, अभावग्रस्त जीवन सुखहीन और निराशाग्रस्त रहा है। कवि की ये दुःखानुभूतियां अनेक कविताओं में अभिव्यक्त हुई हैं।

परन्तु विपदा के समक्ष वह मात्र भाव-विह्वल है, उसकी संघर्ष-चेतना सुप्त है। इस सांसारिक मिथ्यत्व से त्रस्त, कटु अनुभूतियों और ठोकरों से दुखी होकर वह तेरा मेरा की भावना से विमुक्त होकर आत्मचिंतन तथा वेदान्त के अध्ययन की ओर उन्मुख हो जाता है। वह भौतिक सुख के लिए किए जाने वाले संघर्ष से विमुख हो कर आत्म-प्रसार करता हुआ जन-जन के कल्याण के लिए तत्पर होता है, जीवन को क्षण-भंगुर समझ लेने के बाद पर-दुख निवारण में ही अपने जीवन की सार्थकता मान लेता है। उसका दृष्टि-विकास निराशा से आशा की ओर नहीं

हो पाया, संघर्ष-शक्ति विकसित नहीं हो पाई, विचार तत्व की अपेक्षा मात्रकर्महीन भावुकता को प्रमुखता मिली है।

रोजी रोटी की भागदौड़ में उलझा कवि प्रियतमा पर रीझ कर भी मन से उसके साथ नहीं जुड़ सका। दुनियादारी से वह अनभिज्ञ था, इसमें भी उसे छलावा और विषमता ही मिली, अविश्वासजन्य बिछोह और अवसाद के कारण वह अकेले ही जीवन पथ पर बढ़ने का संकल्प करता है। गीतात्मक कविताओं में कवि की ये अनुभूतियां परम्पराभुक्त प्रस्तुत विधान द्वारा अभिव्यक्त हुई हैं। प्रणय क्षेत्र में मिली असफलता और उपेक्षा के कारण को भी वह समझ चुका है-

'मुझ में थी अतिभावुकता /तुझ में केवल थी लोलुपता।'

मात्र क्षणिक सुख के लिए वह पुनः इस जंजाल में फंसना नहीं चाहता बल्कि इस पथ को छोड़ मानव-कल्याण की ओर उन्मुख होकर बाधाओं से जूझना ही बेहतर समझता है-

'क्षण भर की इस झिलमिल में, /बलिदान न देना जीवन धन

3.1.1.1.2. प्राकृतिक उद्दीपन और कवि-अनुभूति प्रकृति के प्रति आकर्षित कवि प्राकृतिक क्रिया-व्यापारों में जीवन के सुख-दुःख, उल्लास-अवसाद की झलक देखता है, वह अलौकिक प्रियतम के दर्शन भी करता है और रहस्यवादियों की तरह उसे प्रकृति से अलौकिक सत्ता के संकेत भी मिलते हैं, जिनसे उसका हृदय रोमांचित होकर उल्लास से भर उठता है। प्राकृतिक दृश्यों के परिवर्तन को देख कवि के मन में अलौकिक सत्ता के प्रति जिज्ञासा पैदा होती है तो धरती पर के भूकम्प, पर्वतों की हलचल, समुद्र के तूफान में अलौकिक सत्ता ही क्रीड़रत प्रतीत होती है और वह उससे मिलनोत्सुक हो उठता है। उसे सारी प्रकृति में आनन्द ही आनन्द प्रतीत होने लगता है। इस स्थिति में कवि लौकिक प्रेम की दुखद प्रणयानुभूति से मुक्त न होकर लौकिक अलौकिक प्रेम की अनुभूतियों की जाली बुनने लगता है, अलौकिक सत्ता को रिझाने और प्रसन्न करने के लिए निर्धनता के कारण निराश कवि अश्रुकणों का अर्घ्य उपहार रूप में देना चाहता है। कवि की ये अनुभूतियां बहुत अच्छी तरह अभिव्यक्त हुई हैं।

कवि को प्राकृतिक सुषमा ने विशेष रूप में आकर्षित किया है, वर्षा और बसन्त ऋतुएं उसे आह्लादित करती हैं। इस संदर्भ से कवि ने अधिकतर कश्मीर के प्राकृतिक सौंदर्य को सराहा है। डल झील की लहरों को, हिम गिरि पर छाये बादलों को, बादाम और सेब के फूलों को, देवदार और चिनार की भीगी-भीगी कोमल पत्तियों को वर्षा ऋतु के पवन-झकोरों में लहराते, घुमड़ते, निखरते, झूमते, झूलते देखता है तो उसके मानस पटल पर कई स्मृतियां कौंध-कौंध उठती हैं, वर्षा ऋतु के प्राकृतिक दृश्यों का सौंदर्य मन को मोह लेता है। उसने प्राकृतिक दृश्यों के माध्यम से श्रृंगार, संघर्ष, कर्म, निराशा आदि के अनेक भाव स्फुरणों को अभिव्यक्त किया है।

कवि प्रकृति से सीखता भी है और उदाहरण के रूप में प्रकृति का चित्रण करके नयी सीख भी देता है। परन्तु प्रकृति के दृश्यों को देख कर भी वह जीवन के प्रति आशावादी और

आस्थावान नहीं बन पाता। संसार की क्षण भंगुरता के विरुद्ध उसे जीवन के प्रति ललक महसूस होती है परन्तु पक्षियों के कलरव में घुले अमृत रस को प्रतीत कर के भी वह निराश मन:स्थिति से मुक्त हो कर संघर्ष-चेतना को जागृत नहीं कर पाता-

'उड़ उड़ कर क्या खोज रहे हो,/ तृण तृण कर क्या जोड़ रहे हो,/ जिस पर इतना मोह भरा है, /वह है केवल लम्बा सपना/ पंछी नीड़ नहीं है अपना।'

3.1.1.1.3. जन-कल्याण की भावना और देश-प्रेम कवि की देश-प्रेम की भावना भी कविताओं में अभिव्यक्त हुई है परन्तु इन कविताओं की विशिष्टता यह है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के कवि का उल्लास सजग प्रहरी का उल्लास है, विजयोन्माद में ग्रस्त वह निद्रामग्न योद्धा नहीं। भारतीय संस्कृति, जातीय गौरव, धार्मिक सहिष्णुता, परस्पर सांझ, सौमनस्य और एकता की सीख देकर वह जन-कल्याण के लिए नवनिर्माण का आह्वान देता है, वह देश में व्याप्त दु:ख, त्रास, हिंसा, छल, कपट, भूख, आतंक, भीति, दम्भ, मद, पाखण्ड, ध्वंस तथा युद्ध लोलुप शक्तियों द्वारा पैदा की जा रही जीवन विसंगतियों के प्रति सचेत सजग है।

देश का नवनिर्माण कर रही शक्तियों को वह बाधाओं से सजग रहने की प्रेरणा देता है और उपेक्षित जन की पीड़ा के प्रति सह-अनुभूति को अभिव्यक्त करता है, वह सीमाओं की रक्षा के लिए भी चिंतित है और अपनी अकर्मण्य करुणा से दुखी भी। कविताओं का यह उपर्युक्त कथ्य शिल्पगत दुर्बलता के बावजूद उदात्त है, कहीं-कहीं संघर्ष-चेतना जोश-खरोश से परिपूर्ण है।

3.1.1.2 सुषमा की कविताओं में कवि श्री मनसाराम शर्मा 'चंचल' ने अपने पूर्व प्रकाशित कविता-संग्रह 'अश्रुमाला' से भी कुछ कविताएं संगृहीत कर ली हैं। कवि ने छन्द या लय में बांधे गए मानव हृदय के उद्‌गारों के अलंकृत रूप को कविता माना है। इन कविताओं में अधिकतर छन्द का निर्वाह हुआ है परन्तु कहीं कहीं छन्द टूटता भी है और कहीं कहीं टेक पंक्ति अपने ही पूर्व पद से भावगत अन्तर्विरोध भी पैदा कर देती है। प्रस्तुत-विधान छायावादी तथा परम्पराभुक्त ही है, शृंगार के संयोग पक्ष का चित्रण, स्मरण आदि किसी न किसी कामदशा या उपालम्भ के रूप में हुआ है।

इन कविताओं में विरहजन्य पीड़ा और विभिन्न कामदशाओं का चित्रण अधिक है। कवि की शृंगारिक वृति रोमांसवादी है जो दाम्पत्य जीवन के उत्तरदायित्व से मुक्त है। बल्कि कहीं-कहीं कवि का रोमान दाम्पत्य जीवन में सुरंग बिछा रहा प्रतीत होता है। इन कविताओं का मूल्यांकन प्रस्तुत है।

3.1.1.2.1. प्रणय और शृंगार-वृत्ति इनकी अधिकतर कविता में वियोगावस्था में संयोग-क्षणों का स्मरण होता है, मिलन स्थलियों में अकेले भटक रहे कवि को पूर्व काल की मिलन-स्मृतियां सताती हैं। अब तो उसके लिए प्रणय और कलह का भुक्त आनन्द मात्र स्मरण बन कर रह गया है। न मन में ठौर है न दिल में चैन, मात्र विरह की धधकती ज्वाला है। क्योंकि हठीली प्रेमिका ने उससे न मिलने की ठान रखी है, अत: अब विरह ही उसकी नियति है,

समूचा जीवन दुःख, त्रास, निराशा, विवशता, उपहास, उपेक्षा से दग्ध और कल्पनाहीन होकर रह गया है। कवि मानता है कि जीवन में हास-रुदन, रिक्तता-उल्लास आह की झुलसन और कल्पना का संसार भी मिलता है परन्तु उसे तो मात्र रुदन, रिक्तता, झुलसन ही मिली है, अनुराग नहीं मिला।

उसकी प्रेमिका समुद्र पार विवाहित जीवन जीती हुई अपने भाग्य पर गर्व करती इठला रही है, परन्तु अन्तस्तल में वह भी कवि के प्रति विरह के कारण व्याकुल है। अपनी इस वियुक्त प्रेमिका को वह उपालम्भ भी देता है और अपनी वस्तुस्थिति भी बताता है कि उसके उल्लास की अपेक्षा कसक, व्यथा, अश्रु मात्र ही रह गए हैं, हंसी की अल्हड़ता नहीं रही पास फिर भी वह प्रणय-मनुहारों को नहीं भूल पा रहा। जीवन का आह्लाद अब तो संताप बन कर रह गया है। विश्वास, श्रद्धा, अर्चना, सुख-मधुरता और उल्लासजन्य बातें अब करुण आलाप बन कर रह गयी हैं, जीवन का वरदान अब शाप होकर रह गया है। वैसे वह यह भी जानता है कि उसकी प्रियतमा भी उसी के समान व्याकुल है, उसका हृदय भी प्रेम से बिंधा हुआ है, स्मृतियों की मधुरता उसे भी डुबो रही है। शायद विरह की रीति यही है कि स्वर का लयताल बिगड़ जाता है, अधरों में तपिश है परन्तु प्रेम की गरमाहट नहीं।

3.1.1.2.2. स्वच्छन्द प्रेम की अभिव्यक्ति इन कविताओं में कवि की विरहानुभूति परम्पराभुक्त प्रतीकों और रूपकों के सहारे स्मृतियों और वस्तु स्थिति की त्रासदी को बिम्बित करती रही है। छन्द, लय, ताल और रसार्द्रता की दृष्टि से ये कविताएं सफल और सुगठित हैं परन्तु गैर जिम्मेदाराना भी हैं। इसी दृष्टि के कारण कवि में आवेश ग्रस्त होकर प्रेमिका के प्रति कटु-उक्तियां भी कहता है और ऐसे प्रेम को मिटा देना ही बेहतर मानता है जिसमें छल, जलन, आंसू, व्यथा, बदनामी और बरबादी ही शेष रह गई हो, जिस प्रेम में मिलने की कसक न हो, जिसमें एक तिल-तिल जले और दूसरा सदा ही छले, जिसमें अवसाद ही मिले ऐसे प्रेम का क्या लोभ?

परन्तु रूपाकर्षण में बंधा कवि प्रणयपाश से मुक्त भी नहीं हो पाता और वह किंकर्त्तव्य विमूढ़-सा होकर रह जाता है। मुग्धा प्रियतमा की उन्मत्त हंसी उसे रिझाती है तो वह हंसी-मौन की पहेली बनी प्रियतमा की आंखों की भाषा को बिना समझे अपना सर्वस्व हार जाता है। इसी रूपाकर्षण और समर्पण को चित्रित करता हुआ कवि आश्वस्त हो जाता है कि अब जीवन सुहाना हो जाएगा। इसी आश्वस्ति भाव के कारण विगत व्यथा, पीड़ा, कसक आदि को भूल कर वह प्रियतमा पर पूर्ण अधिकार की कामना करता है।

प्रेमिका यदि कुंआरी हो या पत्नी हो तो संयोग की आशा की जा सकती है परन्तु कवि 'चंचल' की कविताओं में प्रियतमा अधिकतर परकीया है, इस कारण यह सम्बंध अंततः त्रासद ही रहे हैं, विवाहिता के प्रति आकर्षण रखना असामाजिक-अनैतिक तो है ही, पत्नी के प्रति दायित्वहीन दृष्टि का परिचायक भी है। अतः ये कविताएं लय, ताल, तुक, छन्द आदि की दृष्टि से सुगठित होते हुए भी गैर जिम्मेदाराना दृष्टि के कारण श्लाघ्य नहीं कही जा सकतीं।

ऐसी ही स्थिति कवि की बहुचर्चित कविता 'सुना है' की है, जिसमें बीस वर्ष पहले की कमसिन प्रेमिका को छोड़ कर कवि सांसारिक प्रपंचों में खो गया था और अब अकेलेपन से पीड़ित होकर कल्पना करता है कि वह युवा हो गई होगी, कल्पना में ही उसके रूप को साकार करता हुआ कवि उसके शारीरिक सौंदर्य के साथ अपने प्रति उसकी हृदयस्थ प्रणयाकांक्षा के आलोड़न का चित्रण करता है, दृष्टिगत उच्छृंखलता के कारण कविता सराहनीय नहीं। कवि की दृष्टि रोमांटिक है, भाव और प्रस्तुत विधान परम्परागत है और दृष्टि दायित्वहीन।

3.1.1.2.3. प्रगतिशील चेतना- प्रगतिवादी संवेदना के अन्तर्गत कवि ने छन्द बद्ध सार्थक कविता 'मत समझो मुझ को कलाकार' में हास-शोक, प्रेय-श्रेय, भूख-प्यास आदि ऐन्द्रिय जरूरतों का सुगठित चित्रण किया है।

3.1.1.3. दो चान्द का कवि शंकर शर्मा 'पिपासु' 1940-45 ई० के आसपास से कविता-कर्म में जुटा रहा है। इन कविताओं में उनके संघर्परत जीवन के भावुक उद्गार हैं, उन्होंने सीधी भाषा में जो उनसे बन पड़ा अपने मन की अस्थिरता और निजी चिन्ताओं को कविता में प्रतिबिम्बित किया है।[1]

उनकी रचनाओं में अतृप्त, असन्तुष्ट तथा कभी-कभी निराश प्यार के जो स्वर मुखरित होते थे, उन्हें उस (तत्कालीन यानी 1940-45 ई० के आसपास) वातावरण में कोई प्रोत्साहन नहीं मिलता था। उल्टे उस प्रवृत्ति के कारण उन पर हंसी व्यंग्य के शूल फैंके जाते थे।[2]

वस्तुत: उपर्युक्त वातावरण में समाज सुधार, आचार-संहिता-विवेचन, देशानुराग, प्रकृति-चित्रण और छायावादात्मक रहस्यवाद या रहस्यात्मक छायावाद ही प्रदेश की कविता का विषय था। श्रृंगार, यौवन, अनुराग आदि विषय निषिद्ध थे।[3]

'पिपासु' का कवि-मन श्रृंगार, यौवन और अनुराग को ही अपनी कविता का विषय बनाता है। तत्कालीन काव्य-आदर्श को अप्राकृत मान कर वह उसका विरोध करता है। आदर्शवाद के कारण अप्राकृतिक दमन, मुक्त-मांसल-प्रणय पर लगने वाले अंकुशों और प्रणय-जीवन के मार्ग में आने वाले सामाजिक अवरोधों के विरुद्ध कवि ने भरसक उपालम्भ दिए हैं। कवि की दृष्टि रोमांसवादी है। उसकी भाषा सरल द्विवेदी युगीन काव्य-भाषा का स्मरण कराती है, प्रस्तुत विधान उत्तरछायावादी रोमांटिक कवियों के प्रस्तुत विधान जैसा है। इन कविताओं का मूल्यांकन प्रस्तुत है।

3.1.1.3.1. प्रेम की नैसर्गिक वृत्ति कवि के यौवनानुराग और प्राकृतिक प्रणय-निवेदन को उसका पागलपन कहा जाता था परन्तु वह इसे मानव-मन का नैसर्गिक क्रिया-व्यापार सिद्ध करता है। इसलिए वह प्राकृतिक संसार से उदाहरण, रूपक और प्रस्तुत विधान को ग्रहण करके खोखले आदर्शवाद पर चोट करता है। वह पौराणिक प्रणयी युग्मों के परस्पर अमर प्रणय का महत्व प्रस्तुत करता है । प्रणय के समक्ष साधना को वह कोई महत्व नहीं देता। आदर्शवाद से मुक्त वह अपनत्व खोकर नैसर्गिक प्रणय में लीन हो जाना चाहता है ।

उसकी दृष्टि में यौवन में अल्हड़ता है, उन्माद है और प्रणय-विह्वलता है परन्तु यदि यौवन उमड़ा पड़ रहा हो और प्रणयियों पर सामाजिक अंकुश हो तो यौवन मानो अभिशप्त होकर रह जाता है। प्रेमियों का मन उन्मन, प्रताड़ित और दुविधाग्रस्त होकर रह जाता है। इस प्रकार मिलनोत्सुक प्रेमियों के समक्ष सामाजिक मर्यादाएं बंधन बन कर उन्हें सालती हैं, जबकि प्रेमी प्रेमिका दोनों परस्पर अपलक-आकर्षित हैं।

कवि चाहता है कि यौवनोन्माद और प्रेमोन्माद से उमड़ती दोनों (प्रेमी-प्रेमिका) नदियां परस्पर मिलकर एक हो जाएं, अन्यथा यौवन बेजोड़ होकर रह जाता है, उसका सारतत्व जल कर राख हो जाता है। इसी कारण कवि प्रत्येक घर में और प्रत्येक व्यक्ति में प्रणय की महक को रची बसी देखना चाहता है, वह प्रेम का अटूट निर्वाह चाहता है, मिलनोत्सुकता में प्रेमोदीप्त होकर तीखी एकानुभूति में लीन हो जाना चाहता है ।

वह देहातीत अलौकिक प्रेम की अपेक्षा मांसल प्रेम को ही प्रेम मानता है। रूपाकर्षण में बंधा मूर्छित-सा वह योग-भोग के वैचारिक झमेले में न फंस कर भोग को महत्व देता है। परन्तु प्रिय-मिलन के लिए उपक्रम करता हुआ जब वह पथ-बाधाओं को काट कर अभिसार के लिए निकलता है तो या तो मिलन-स्थली पर पहुंच नहीं पाता या प्रियतमा के समक्ष निरीह-सा होकर रह जाता है या प्रेम-वीथियों में भटका हुआ मात्र गोपनीयता, मर्यादा और प्रियतमा की जग हंसाई से डर कर उसका पता तक नहीं पूछ पाता। इसी कारण कवि सामाजिक बंधनों के प्रति आक्रोश व्यक्त करता है। वह प्रेमजन्य निरीहता के प्रति प्रेमियों को सचेत करता है कि वे अपने प्रणय-जीवन की रक्षा के लिए सामाजिक अवरोधों को काट कर फैंक दें। अंततः दुखी हो कर कवि कहता है कि प्रेम का मार्ग कठिन है, इस चक्कर में न पड़ना ही बेहतर है अन्यथा आत्म विस्मृत होकर बावलों की तरह फिरना पड़ता है।

इन कविताओं में मांसल और स्वच्छन्द प्रेम को महत्व मिला है परन्तु प्रणय-मिलन के चित्र बहुत कम हैं, विरहजन्य पीड़ा, टीस, निराशा और विषमता का अच्छा चित्रण हुआ है। प्रणय की पीड़ा के फैलाव और बिखराव की अभिव्यक्ति के लिए कवि ने प्रकृति से परम्पराभुक्त प्रस्तुतों को ग्रहण किया है।

3.1.1.3.2. वैयक्तिक हर्ष-विषाद कवि 'पिपासु' ने व्यक्तिगत जीवन के हर्ष-विषाद, अभावजन्य उपेक्षा, व्यंग्य, अजनबियत की पीड़ा को झेला है। उसका जीवन सदैव संघर्षशील रहा है। व्यंग्य और कटुक्तियों की तीखी अनुभूति के कारण वह अपने हृदय को पत्थर हो गया महसूस करता है। प्रेम, सहानुभूति, ममत्व आदि शब्दों से उसे अब कोई फर्क नहीं पड़ता, उसे अकेलापन और दुख ही दुख मिले हैं। इसी कारण समूचे जीवम में मिलन या विरह का कोई अर्थ नहीं रह गया।

फिर भी वह उन्माद ग्रस्त-सा सुख-सपनों के गीत गाता रहा है क्योंकि वह अपना सुख-दुःख बांट कर सारे सुख-साधन न्योछावर कर के संसार को मीत बनाना चाहता रहा है और पुलकित प्राणों से मैत्री निभाना चाहता रहा है जबकि सर्वस्व गंवा कर भी उसे कुछ नहीं मिला,

गग रोग होकर रह गया है और वह स्वयं काल-पाश में बंध कर रह गया है।

अंतत: कवि सांसारिक भ्रम-जाल से मुक्त होकर साधक बना हुआ साजन (प्रभु) में लीन हो जाना चाहता है। व्यक्तिगत उपेक्षा से निराश होने की अपेक्षा वह और अधिक तपाग्नि में झुलसता हुआ इस सत्य का अन्वेषण कर चुका है कि इस संसार में प्राण प्राण में संघर्षण है, संसार छलनामय है और छल करता है, साम, दाम, दण्ड-भेद की चालें चलने के लिए तत्पर है। परन्तु उसे इनकी परवाह नहीं, वह साधना में तप कर स्वयं को खरा सोना बना चुका है और अपने पूर्व कर्मों का मूल्यांकन करता हुआ किसी सार्थक जीवन-दृष्टि तक पहुंचने के यत्न में लीन दिखता है।

प्रणय के क्षेत्र में किसी को किसी के हर्ष-विषाद की, सुख-दु:ख की चिन्ता नहीं। इसी उपेक्षाजन्य घनीभूत निराशा से पराभूत कवि अपने प्रणय-निवेदन को भूल पर पश्चात्ताप करता है और मानता है कि प्रकृति के सौंदर्य से आह्लादित होकर ही वह इस जंजाल में जा फंसा था। प्रियतमा के सौंदर्य, चालढाल और उसके हर्ष-विषाद का इस प्राकृतिक सौंदर्य से तालमेल बिठाता हुआ अनजाने और अनाहूत ही वह प्रणय-सूत्र में बंध गया था। कवि के अंधेरे जीवन में प्रियतमा बिजली की कौंध-सी चमक उठी थी परन्तु विडम्बना यह है कि उसे मिलन के वरदान की अपेक्षा विरह का अभिशाप ही मिला। भव-बंधनों में जकड़ा हुआ वह संघर्षरत होकर भी वह विवश ही रहा है, जीवनगत विषमता के कारण कुछ भी नहीं कर सका, सदा प्रतिकूलता बनी ही रही है। घनीभूत पीड़ा से ग्रस्त जीवन सूखे वृक्ष के समान रह गया है, जिस पर न पंछी बैठ कर गाते हैं, न बादल ही छा कर जग की प्यास बुझाते हैं, न श्रमिक ही जिसके नीचे विश्राम कर पाते हैं।

3.1.1.3.3. जीवन-दृष्टि का विकास पाषाण पूजा की अपेक्षा कवि किसी के श्रम हरण में, आंसू पोंछने में, किसी को हंसाने में, किसी की मुग्ध दृष्टि और प्रेम का भाजन बनने में जीवन की सार्थकता मानता है वह संसार को अपने स्नेह और ज्ञान से आलोकित करने, जीत-हार, सुख-दु:ख, यश-अपयश के झूले में झूलते हुए अपनी सुरभि को फैलाने में विश्वास रखता है।

कवि अपने कवि-धर्म को भी पहचानता है और चाहता है कि उसके गीतों की 'दिशाहीन' मिलनाकांक्षा, करुणा, मृदुलता बहकर जन-जीवन को उल्लास से सराबोर करती रहे, उसके गीत निश्छल मति और अविरल द्रुत गति से फूट कर अम्लान बहते रहें और धरती पर सरस सुधा बरसाते रहें, उसके गीत सुनकर जन-जन का हृदय आह्लदित हो उठे।

कवि विद्युत गति से कर्मरत होकर जीवन को सार्थक कर लेना चाहता है। निर्भय होकर वह अपने लक्ष्य तक पहुंचने के लिए पथ बाधाओं को दूर कर लेना चाहता है। वह आवेशग्रस्त न होकर सोच-विचार के बलबूते ऊबड़-खाबड़ पथों पर बढ़ना चाहता है। इसी दृष्टि के कारण छिछोरपन को त्याग कर वह गहन गंभीर हो उठता है।

वह जान गया है कि घोर वैयक्तिक जीवन से किसी को कोई लाभ नहीं पहुंचता।

'जीवन नद' कविता में कवि संकल्प करता है-

'नावें क्या जलयान चलेंगे, । जल-थल-चर इनसान पलेंगे । कृषि व्यापर चहुँ आन फलेंगे। धरणीधर के विपुल हृदय में मौन गति में अब बहने दो/ समतल धरती पर अब मेरा जीवन नद बहने दो।'

3.1.1.3.4. राष्ट्रीयता और देश-प्रेम कवि 'पिपासु' ने चीनी आक्रमण के विरुद्ध वीर भाव को पैदा करने के लिए सात कविताएं लिखी हैं। जिनमें जन-आह्वान के साथ-साथ देश की गरिमा, शूरवीरों के बलिदान, शत्रु को चेतावनी, भारतीय जीवन-मूल्यों में आस्था तथा विजय-कामना को सुगढ़ अभिव्यक्ति मिली है। यहां कवि का स्वर संतुलित है, सोच समझ से पूर्ण, मिथ्याक्रोश से मुक्त और गंभीर! और परम्पराभुक्त काव्य-रूढ़ियों को कवि ने भरसक त्यागा है, ये अच्छी कविताएं हैं।

3.1.1.3.5. निष्कर्ष और उपलब्धि 'पिपासु' जी की इन कविताओं में छंद लड़खड़ा जाता है परन्तु रसार्द्रता और भावगत तरलता का अभाव नहीं है। कवि का जीवन के प्रति दृष्टिकोण स्वानुभूति के उलझाव में विकसित हुआ है। इनमें मौलिकता का अभाव भी नहीं जबकि प्रस्तुत विधान परम्परागत है। मांसल प्रेमाभिव्यक्ति से कवि धीरे-धीरे जनकल्याण में जीवन की सार्थकता को ढूंढने की ओर उन्मुख होता है।

3.1.1.4. रुनझुन हिन्दी-उर्दू के परस्पर भेद को मिटाने के प्रयास में ज्योतीश्वर 'पथिक' के उर्दू लिपि में प्रकाशित 'कोमल कोमल गीत' संग्रह के बाद हिन्दी का प्रथम कविता-संग्रह है। इस कविता-संग्रह में कवि कविता में गद्य-भाषा की अपेक्षा लय को महत्व देता है, साहित्यिक खलीफाबाज़ी और विदेशी कृति या शैली की नकल को कविता के लिए घातक समझता है। उसकी दृष्टि में लय-तुक महत्वपूर्ण है परन्तु भावना विरुद्ध भाषा को तुक में बांधना अखरता है।[4]

कवि जीवन को हर एक कोण से परखना चाहता है, वह मानता है कि संघर्ष से प्राप्त अनुभव ही कल के जीवन-प्रवाह का आधार है, इसी उद्देश्य से वह सुख-दुख, धूप-छांह, जीवन के उतार-चढ़ाव, वेदनाएं, संवेदनाएं, रोमांच, जीवन-दृष्टि को अपने गीतों-कविताओं में ढालता है। वह न व्यथा पर पर्दा डालना चाहता है न पुलकित होने के बावजूद व्यथा का आडम्बर रचना चाहता है, भावुक होते हुए भी भावुकता को खुद पर सवार नहीं होते देना चाहता।[5] इन कविताओं का मूल्यांकन प्रस्तुत है।

3.1.1.4.1. रोमांटिक प्रणयानुभूति कवि 'पथिक' का भावबोध रोमानी है परन्तु आत्म पीड़ा और प्रवंचना में फंसे रहने के प्रति कवि का यह रूझान सराहनीय नहीं। प्रेम और श्रद्धा में वह भेद नहीं कर पाया फिर भी वह प्रेम को महत्वपूर्ण मानता है। उसकी निगाह में प्रेम साधना है, याचना और संवेदनापूर्ण समर्पण भी। वह मानता है कि प्रणय में दर्द भी होता ही है, यदि प्रणय में दर्द न होता तो पुण्यमयी ज़िंदगी में न उलझनें होतीं, न पाप होते, न प्रियतमाविहीन प्रेमी का कोई महत्व ही होता। परन्तु कवि 'पथिक' को प्रतीत होता है कि इस निष्ठुर दुनिया में

प्यार निभ नहीं सकता क्योंकि प्रेमियों के बीच चांदी की दीवारें हैं, बाधाएं हैं, प्रेम को लोग अपराध मानते हैं।

रोमांटिक कवियों की तरह 'पथिक' को भी प्रियतमा का साथ नहीं मिला, संयोग के क्षण नहीं मिले और विरहजन्य प्रणयानुभूतियां ही उसकी कविता की सम्पदा बनी हैं। अत: विरहजन्य बेचैनी, अभाव, कामना, आकांक्षा, त्रास, भय और प्रियतमा का स्मरण कविता में ढल आया है। निशा ढलती है तो कवि के मन में बेकली पैदा हो जाती है, कामना की आग सुलगती है क्योंकि न उसे मनमीत मिला है, न गीतों को स्वर मिला है, हृदय-भवन शून्य ही रहा है, फागुन की अरुण रंगोली भी विरह की पीड़ा को धधकाती है। मिलन-वेला में भी कवि अकेला अनुभव करता है। विरह-पीड़ित वह खोया-खोया बैठा है, मन में प्रिय की स्मृतियां हैं, आंखों में प्रणयनीर ढलक रहा है। प्रिय-मिलन का सपना भी उसे भयभीत कर रहा है क्योंकि वह नहीं चाहता कि उसके कारण प्रियतमा को किसी आपदा को, किसी बदनामी को झेलना पड़े। इसी कारण वह आत्मपीड़ा को भोगने के लिए तत्पर है। प्रेम-शून्य संसार में मानो विषपान के लिए विवश है, उसका प्यार टूटने के लिए विवश है।

अंतत: कवि अराजक होकर प्रेम-संसार को तबाह करने के लिए तुल जाता है, गीतों में अंगारे भर लेने का संकल्प करता है। परन्तु प्यार की यह जलन और आक्रोश उचित मान भी लिया जाए तो व्यक्तिगत असफलता के कारण राष्ट्रीय सम्पदा को साड़-फूंक देने वाला यह तेवर सराहनीय नहीं।

कवि 'पथिक' परकीया-प्रेम भी पाना चाहता है, उसके सपने सजाता है तो व्याहता परकीया के प्रति उसका प्रेम हास्यास्पद हो जाता है जबकि विवाहिता प्रेमिका भी अपने पूर्व प्रेमी से उसके करुण गीत, पुरानी यादें, प्रेम के बीते क्षणों को वापिस लेने आ जाती है क्योंकि इन गीतों से उसके हृदय में झंझावात आ जाते हैं, मन अंधकार की गहराइयो में डूबने लगता है। कवि ने इस प्रेमिका के हृदय का, उसकी लोकलाज का और मर्यादा का अच्छा चित्रण किया है, वह भी प्रेमी से बलिदान मांगती है। कवि भी इस प्रेमिका के प्रति न क्रूर है न कविता में छिछोरापन झलकता है। हां, कविता की प्रेमिका अवश्य पश्चात्ताप ग्रस्त है कि उसने पूर्व प्रेमी की निद्रा चुराई है, उसे प्रेमाग्नि में जलाया है, जबकि प्रतिदान में उससे प्रीति और जीवन की बहारें ही प्राप्त की हैं।

3.1.1.4.2. पर-दु:ख कातरता कवि 'पथिक' ने लोगों के दु:ख-दर्द, पीड़ा-करुणा, अंधकारमय भविष्य की आशंका, मृत्यु-भय से उपजे त्रास आदि का अनेक कविताओं में वर्णन किया है, परन्तु ये कविताएं अनेक तरह के अन्तर्विरोधों से ग्रस्त हैं। कवि नर्स के प्रति लोगों की छिछोरी भावना पर चोट करता है और सिनेटोरियम की बदहाली पर भी तीखा व्यंग्य कसता है, परन्तु ऐसे करुण वातावरण में यह छिछला व्यंग्य और आक्रोश कविता को आघात ही पहुंचाता है, सिनेटोरियम के यथार्थ का चित्रण करने के बहाने कवि का कर्त्तव्य खौफ या आतंक फैलाना नहीं है, बल्कि उसे तो जीवन ज्योति को जलाए रखने की नव प्रेरणा देनी चाहिए। परन्तु यहां कवि कर्त्तव्य-विमुख ही है। मानव-मात्र के कल्याण में सेवा-भाव से जुटी 'नर्स' को 'रातों की

रानी', कहना भी उसकी रुग्ण मानसिकता और गैर जिम्मेदार 'एटीट्यूड' को ही झलकाता है। कवि नर्स की करुणा, सेवाभाव, ममता, जन-कल्याण- कामना और पेशे की पवित्रता की प्रशंसा भी करता है और उन लोगों पर चोट भी करता है जो उसे 'सिस्टर' न कह कर वासनापूर्ण दृष्टि से देखते हैं।

मूलयता कवि की दृष्टि अस्तित्वादी मृत्यु-भय से ग्रस्त है और वह कविताओं में विचारान्विति की अपेक्षा भावान्विति की ओर ध्यान देना चाहता है परन्तु अभिव्यक्ति के स्तर पर यह कविता में उतर नहीं पाई। 'मरघट का पेड़' कविता में पुन: वह करुणा, चीत्कार और दु:खद मनोदशा को चित्रित करता है। 'पथिक' तो मन की इच्छा-आशंका के अनुरूप घुमड़ते बादलों में भी यमदूत को ही देखता है।

उसकी ऐसी ही रोमानी दृष्टि जीवन-संघर्ष के प्रति भी है, कवि को लगता है कि आदमी उदासी, थकन और भटकाव के लिए अभिशप्त है, आदमी अपनी ही लाश नीलाम करने के लिए विवश है, वह न रोता है न गाता है, फिर भी उसके मन में भाव-निर्झर है और कभी वह जीवन के भंवर में तैरता है, कभी डूबता है।

3.1.1.4.3. निष्कर्ष और उपलब्धि प्रस्तुत स्वच्छन्द कविताएं साधारण हैं, छन्दों में कुछ भावगत अन्तर्विरोधों के बावजूद उनके छन्दबद्ध गीत महत्वपूर्ण हैं, जिनमें एक अच्छे कवि की संभावनाएं मिल जाती हैं। कवि की दृष्टि रोमांटिक है, उसने विचार की अपेक्षा भाव को महत्व दिया है। भावों का यह कवि बोध के स्तर तक अभी अधिक ऊंचा नहीं उठ पाया। प्रस्तुत विधान परम्परागत ही है।

3.1.1.5. सागर के तीर कविता-संग्रह में कवि (डॉ०) ओमप्रकाश गुप्त छायावाद और रहस्यवाद की पूर्व परम्परा को ग्रहण करते हुए धीरे-धीरे प्रगतिवाद की ओर बढ़ा है। इन सभी छन्दबद्ध कविताओं में उसकी प्रणयभावना प्रकृति से सान्निध्य और व्यक्तिगत जीवन में सुख-सुविधाओं की प्राप्ति की तीव्र आकांक्षा के निमित्त रूपायित हुई है, उसकी काव्य-भाषा में उत्तरछायावादकाल की छायावादी कवित्रयी की काव्य-भाषा जैसी मादकता और सरस सरलता है, छन्द-शिल्प पर कवि का अच्छा अधिकार है परन्तु व्यक्ति-अहं के कारण उसकी कुछेक कविताएं भाव के स्तर पर दुरूह हो गई हैं जबकि कुछ कविताएँ वृथा विस्तार से ग्रस्त भी हैं।

3.1.1.5.1. प्रकृति और प्रणय कवि को विराट अलौकिक सत्ता आकर्षित करती है तो वह प्रकृति के उपकरणों से नारी का रूप उभारता है। प्रकृति के क्रिया-व्यापारों के पीछे छिपी सत्ता के प्रति उसमें जिज्ञासा भी है, जिसके कारण वह प्रकृति के भीतर छिपी प्रणयाकांक्षा को देखता हुआ उषा, रात्रि, सन्ध्या के चित्रों को उलीकता है और अपनी प्रणयाकांक्षा का आरोपण करता चलता। यहां उसके प्रस्तुत परम्पराभुक्त होकर भी नयापन लिए हुए हैं जो प्रियतमा की रूप सज्जा को नया निखार देते हैं। कवि प्रियतमा की परिचित्त दीप्ति को कण-कण में बिखरा देखता है, उसके सौंदर्य, यौवन और रूपाकर्षण में बंधा कवि मिलनाकांक्षा के कारण उभरे जीवन-यौवन के दिव्य उल्लास को हृदय में समेट नहीं पाता, परन्तु कभी कभी संदेहशील भी

हो उठता है कि प्रियतमा ही मिलन के मादक क्षणों को भूल गई है। इस संदेह को पाटने के लिए परस्पर की लज्जा और वस्तुतः क्योंकि दोनों प्रिय-प्रियतमा चिर सखा हैं। और कवि की ये भाव-अनुभूतियां उसे उनके प्रथम-मिलन के क्षणों का स्मरण कराती हैं। कवि की यह प्रणयानुभूति छायावादी कुहेलिकाओं में उलझती-सुलझती विकसित हुई है। और वह अनेक रूपकों द्वारा प्रणय को नैसर्गिक वृत्ति सिद्ध करना चाहता है।

इन प्रणयानुभूतियों में मिलनाकांक्षा, संयोग, संभोग और संभोगाकांक्षा का अच्छा चित्रण हुआ है। मांसल सौंदर्य प्रेमी को रूपाकर्षण में बांधता है स्थिति यह है कि विराट अलौकिक सत्ता भी धीरे-धीरे उसे मांसल प्रणय की आकांक्षा की ओर ही ले जाती है।

3.1.1.5.2. सकारण विरह भावना कवि जीवन-संघर्ष में उतरता है तो वह सुख-सुविधा के अर्जन का यत्न करता है। इस स्थिति में वह प्रणय के संभोग पक्ष को स्थगित कर के प्रकृति से ही संघर्ष और सुखोपभोग की सीख ग्रहण करता है। जब वह जान लेता है कि भूखे पेट प्रणय नहीं सधता। विलासिता को स्थगित कर वह सखी को द्वार-रास्ता छोड़ देने का आग्रह करता है क्योंकि जिंदगी की राह पर न उसे कुछ सोचना है न टिकना है ? उसे तो बस चलते ही जाना है। वह प्रणय और विलास को तो स्थगित करता है परन्तु एकनिष्ठ प्रेम को नहीं, बल्कि प्रेम की अभिलाषा को प्राणों में दबा कर वह उपलब्धियों के लिए संघर्ष का संकल्प करता है और सखी से निवेदन करता है कि वह बेचैन न होवे। 'फरवरी का एक दिन' कविता से उद्धरण देखें-

'लेकर हृदय में प्यार। दबाए प्राण की अभिलाषा करना मुझे संघर्ष। पर....../ मन में करो विश्वास/ (मेरी निराशा देख कर बेचैन न होना) कि मेरा प्यार बस/ तेरे लिए है।'

ऋतु परिवर्तन के साथ पशु-पक्षियों में हुई सुख-सुविधा जुटाने की हलचल उसे दुनियादार बनाती है तो वह देखता है कि जीवन कई तरह की विषमताओं में ग्रस्त है, विसंगतियों के कारण जीवन में पिपासा, क्रन्दन, बंधन और निराशा के कारण ध्वंस फैला हुआ है, इस स्थिति में असीम का ज्ञान प्राप्त करने की अपेक्षा मधुर, सुहानी,मादक जीवन बेला का उपभोग ही परमसत्य है। अतः वह चाहता है कि असमर्थताजन्य और पराजयजन्य मनः स्थिति से निकल कर बाहर आ जाए और अनमने भाव को छोड़ कर हृदय के मूल्य को अपनी कविताओं में गाए। क्योंकि यही कविता की असीम शक्ति है जो मिथ्यात्व की जड़ें हिला सकती है। परन्तु कवि की स्थिति यह है कि उसकी वीणा के तार टूट गए हैं, और वह हू-हू करते शमशानों में खामोश खड़ा है, कण्ठवरोध से ग्रस्त है।

इस स्थिति से उबर कर वह विलासिता को त्याग कर नवसृजन का आह्वान करने लगता है। वह युवा हृदय में आशा, व्यथा और उत्साह का गुंजन भरना चाहता है, अपनी संघर्षशक्ति के बूते अपना पथ बना लेना चाहता है और जीवन-धारा में बहता हुआ गाते रहना चाहता है, सागर की विषम तरंगों पर अपना साज सजाना चाहता है।

परन्तु कवि का गान निरुद्देश्य होकर भटक भी जाता है और कहीं-कहीं व्यक्तिवाद से ग्रस्त भावावेश और लक्ष्यहीन आक्रोश अराजक हो जाता है, 'मैं जग को ठुकरा कर चल दूंगा।' और 'गीत गाऊंगा' कविताएं इस भावावेश से ग्रस्त हैं।

कवि का प्रकृति चित्रण छायावादी-रहस्यवादी कवियों से प्रभावित है, प्रकृति के बदलते रंगों, दृश्यों, रूपाकारों के प्रति वह उन्हीं की तरह जिज्ञासु है और स्वेच्छा के अनुसार रूप और भाव को देखकर अभिव्यक्त करता है।

3.1.1.5.3. देश-प्रेम कवि ने देश-भक्ति की भावना को भी प्रकृति के माध्यम से व्यक्त किया है। चीनी आक्रमण के संदर्भ में लिखी कविताओं में कवि ने पराजित जन-मानस को पुनः संघर्ष का आह्वान दिया है। कवि की निराशा, पराजयजन्य तिक्तता, वैभवहीनता और प्रतिकार का संकल्प आदि एक साथ इन कविताओं में मौजूद है। परन्तु कवि बम, बंदूक और तोपों के विरुद्ध तीर-कमान उठाने की प्रेरणा ही दे सका है और वह पाकिस्तानी आक्रमण के विरुद्ध विजय- गौरव के उन्माद से ग्रस्त होकर कविता को भावावेश से ग्रस्त कर गया है।

3.1.1.5.4. निष्कर्ष और उपलब्धि - कुल मिला कर कवि का परम्परागत भावबोध और शिल्प इन कविताओं में धीरे-धीरे नये भावबोध और शिल्प की ओर पर्यवसित है। उसकी प्रणयानुभूति अहं-भावना से ग्रस्त है और कहीं-कहीं अतिरिक्त भावावेश के कारण निरूद्देश्य भी हो गई है। छन्दमुक्त की अपेक्षा छन्दबद्ध कविताएं अधिक आर्द्र और सुगठित हैं।

3.1.1.6. सीमा का पंछी के कवि शंकर शर्मा 'पिपासु' के लिए 'जीवन अभिशापों का मेला ही नहीं 'आग भी उगलता' है। उन्होंने जो देखा, भोगा और अनुभव किया उसे विचार भाव और अनुभूति के धरातल पर अभिव्यक्त किया। उनके जीवन की सरलता, सहजता और करुणा कविता में भी दृष्टि गोचर होती है। उनके गीतों में भावुकता भी झलकती है और जीवन के ज्वार-भाटे भी अभिव्यक्त होते हैं।[6] इन कविताओं का मूल्यांकन प्रस्तुत है।

3.1.1.6.1. समभाव जीवन-दृष्टि का विकास 'सीमा का पंछी' की कविताओं में जीवन की मादकता और कटुता साथ-साथ चलती है। प्राणों का आसव जीवन रूपी शराब में ढलता रहता है और कोई इसे हंस-हंस कर पी लेता है तो कोई इन मधु की बूंदों से पल दो पल ही मन बहला पाता है। इस जीवन-सत्य को स्वीकारता हुआ कवि जगत की सुख-समृद्धि की झलकियां देखता है और जीवन के सुख-दुःख को समभाव से भोग लेने की प्रेरणा देता है क्योंकि सत्य है कि प्राकृत-सत्य के विरुद्ध जीवन की परीक्षा उचित नहीं, सुख-दुःख, राग-विराग जीवन के साथ चलते रहते हैं, सदा सुखद स्थितियां नहीं रहतीं, न ही यौवन की गति सदा सुखदायी रहतीं है बल्कि समुन्नति का समय एक बार ही मिलता है, जिसे गंवाकर पछताना व्यर्थ है। यौवन भी एकबार ही आता है, अतः उसे सार्थक करके जीना चाहिए और जीवन तथा यौवन का सुख उपभोग करना चाहिए।

उसे अनुभव हुआ है कि संसार में विष ही विष है, जिसे सरलता से नहीं पिया जा सकता, यहां वज्रघात हैं, हिमपात हैं, सनसनाती हवाएं हैं जिन्हें जीना और बचे रहना असंभव

है। कवि का मन अधीर है, पीड़ा साल रही है, जग से ठुकराया वह दुखदाह से पीड़ित है। इस स्थिति में अभाव, विषमता और दु:ख ही जीवन-सत्य बनकर रह गये हैं, ऐसी स्थिति में भवसागर पार करना असंभव है परन्तु विवशता के कारण इच्छाओं का दमन नहीं किया जा सकता चाह और इच्छा ही जीवन का नाम है क्योंकि यदि चाह न होती तो आह भी न होती। इच्छाहीन जीवन तो एक क्षण भी नहीं जिया जा सकता। इच्छा से आशा है और आशा ही जीवन को संघर्ष-चेतना सौंपती है, जिससे व्यक्ति को जय-पराजय की अनुभूति होती है। ऐसे विसंगत संसार में कवि ईश्वर को उपालम्भ देता है कि उसके बार-बार अवतार लेने के बावजूद धरती पर पाप-ताप ज्यों का त्यों फैला हुआ है, क्यों रूप-सुधा के सामने भी आदमी अतृप्त रह जाता है?

3.1.1.6.2. जनकल्याण की भावना प्रभु से निवेदन या उस पर व्यंग्य से भी जब कवि की बात नहीं बनती तो वह जीवन-जगत के आह्लाद-विषाद को कविता का विषय बना लेने का संकल्प करता है। वह भोले बच्चों की बाल-क्रीड़ाएं देखकर आह्लादित हो जाता है! विरह पीड़ित अल्हड़ प्रियतमा को हंसाने, मनाने, मनुहार से रिझाने के लिए गाना चाहता है, भूखे, नंगे, त्रस्त मानव के प्रति सहानुभूति प्रकट करता हुआ वह गाने लगता है, वह सुंदर प्राकृतिक दृश्यों को देख उद्वेलित होता है तो अपनी आंतरिक अनुभूतियों और तात्कालिक प्रतिक्रियाओं को प्राकृतिक क्रिया-व्यापारों के सान्निध्य में ढाल कर गीतों में अभिव्यक्त करने लगता है और मान लेता है कि सुख-दु:ख या संयोग-वियोग का परस्पर द्वन्द्व ही जीनव-सत्य हैं जो उसके काव्य का आधार है।

3.1.1.6.3. प्रणय की नैसर्गिकता और जीवन-सत्य प्रणय को कवि ने मानव-मात्र की नैसर्गिक वृत्ति माना है जो जीवन की आवश्यकता है और जिसमें पाप और पश्चात्ताप की भावना का लेश मात्र भी नहीं, बल्कि मस्ती ही मस्ती है। प्रेम करना न कोई भूल है न पाप, इसमें जीत या हार का कोई अर्थ नहीं रह जाता, बल्कि जीत कर प्रणयी अपनी प्रेमिका के प्रति और अधिक करुण हो जाता है, उसकी वाणी में नवरस घुल जाते हैं, प्रणयानुभूति की तीव्रता उसके रोम-रोम को रोमांचित कर देती है। उन दोनों का व्यवहार परस्पर समर्पण और विह्वलता से पूर्ण हो जाता है, दोनों अपनापन (अहं) को भूल जाते हैं, मादक प्यार में वे निजत्व खो देते हैं और जब तक यह निजत्व को न खो पाएं सच्चे प्रेमी नहीं हो पाते।

कवि प्रियतमा के सान्निध्य को ही जीवन की सार्थकता मानता है और प्रियतमा को पाकर संसार को भी भूल जाना अच्छा समझता है क्योंकि वह मानता है कि बिना प्यार के भव-भार नहीं सहा जा सकता।

प्रणयानुभूति की इन कविताओं में तर्क-वितर्क का अच्छा सुगढ़ रूप मिलता है परन्तु कवि की दृष्टि रोमांटिक ही है। हां, इन कविताओं का छंद और शिल्प 'दो चान्द' की कविताओं से अधिक विकसित और संगठित है। प्रस्तुत और रूपक परम्पराभुक्त ही हैं।

3.1.1.6.4. देश भक्ति 'पिपासु' की देश-भक्ति से सम्बद्ध कविताओं का स्वर उद्‌बोधनपरक है। आक्रान्ता के विरुद्ध जूझने की प्रेरणा देता हुआ कवि तन-मन का मोह तजकर

मानवता का सिर ऊंचा करने और दानवता को मिटाने की बात कहता है। वह पंचशील के आदर्शों के साथ यह भी कहता है देश को सम्मान देने वाले नागरिक को देश भी सम्मान देता है। वह घुसपैठियों और आक्रामकों को चोर लुटेरे ही मानता है जो निहत्थे बाल, वृद्धों और महिलाओं के हत्यारे हैं तथा गांवों नगरों को उजाड़ते हैं, इनको कवि ललकारता है-

'मिट जाओ या नाक रगड़ कर धाक हमारी जानो। आड़े कौन कयामत कहते धूल सदा फिर छानो।'

3.1.2. परम्परागत भावबोध और शिल्प की फुटकर कविता इस दशक में कुछेक फुटकर कविताओं द्वारा भी परम्परागत भावबोध और शिल्प विकसित हुआ है। इस दशक में अकादमी की पत्रिका 'शीराज़ा' और वार्षिक पत्रिका 'हमारा साहित्य' ने कविता को प्रकाशित करने कराने में विशेष योगदान दिया है, 'हमारा साहित्य' में वर्ष भर में 'शीराज़ा' में प्रकाशित महत्वपूर्ण और स्थायी मूल्य की रचनाओं का ही पुनः प्रकाशन हुआ है। परन्तु यहां हम केवल उन कवियों की कविताओं का मूल्यांकन करेंगे, जिनका कोई स्वतंत्र कविता-संग्रह प्रकाशित नहीं हुआ अथवा हमें उपलब्ध नहीं हो सका। हां, फिलहाल हम उन कविताओं को यहां छोड़ रहे हैं, जो बाद के दशकों में कवियों के स्वतंत्र कविता-संग्रहों में प्रकाशित हुई।

इस दशक में हिन्दी कवियों की रचनाएं तो प्रकाशित हुई हैं, अहिंदी-लेखक कवियों की हिन्दी-कविताएं भी 'हमारा साहित्य' और 'शीराज़ा' में प्रकाशित हुई हैं। ऐसे अहिन्दी लेखक कवियों की हिन्दी कविताओं की सूची निम्नलिखित है-

श्री ओंकार सिंह 'आवारा'-'उमर पुकारती रही' 'मैं आवारा जन्म का।' 'धर्मशाला दा चेता' 'गीत'
श्री केहरि सिंह 'मधुकर'- 'शीशा'
श्री चमन लाल 'चमन'-'अमर नहीं होती सृष्टि अधूरी'
श्री दीनानाथ 'नादिम'- 'पेड़ छायादार'
श्री मक्खन लाल 'बेकस'-सलीब
श्री मान भार्गव- 'याद', 'संघर्ष'
श्री मोहम्मद यासीन-'गीत'
श्री यश शर्मा-'गीत', 'गीत'
श्री रहमान राही- 'मैं सोचा करता हूं'
प्रो० राम नाथ शास्त्री-'अमर निराला', 'ना समझी'
श्री राम लाल शर्मा-'संघर्ष'
श्री वेद पाल 'दीप'- 'सांझ'
श्रीमती सपनमाला-'शीशा'

हिन्दी लेखक कवियों की कविताओं की सूची निम्नलिखित है-
डॉ० गंगा दत्त शास्त्री 'विनोद'-'कर सका कुछ भी न पर' 'कौन नभ में मुस्कराया',

'स्वामी विवेकानन्द के प्रति'

श्री चन्द्रकान्त जोशी- 'अर्चना', 'अनजान पहचान', गीतों का ताना बाना', 'गीत के पहले बोल', 'मधुमास की प्यास', 'शून्य भासमान', 'नभ मन्थन'

श्री चन्द्रदत्त शर्मा 'इन्दु'-'गीत'

श्री जानकी नाथ कौल 'कमल' - 'मेरा हारिल', 'एकान्त', 'मैं'

जैड सेर्मा-'खिल जाएंगे फूल कंवल के'

श्री तारादत्त निर्विरोध- 'गन्धाते शूल', 'दर्द बोध 16 कविताएं'

श्री दुर्गादत्त शास्त्री-'दीप से', 'गीत'

श्री देवरत्न शास्त्री-'गीत', 'मूल परिवर्तन है युग का, 'सिकुड़ी धरती'

श्री नीलकण्ठ-'बुलबुल'

श्री बंसीलाल सूरी- 'सीम असीम'

श्री भूपेन्द्र कुमार 'स्नेही'- 'कश्मीर तुम्हारे बिना', 'गीत'

श्री मनसाराम शर्मा 'चंचल'- 'अंगार हूं मैं', 'साकार कल्पना', 'मैं पिपासित नाविक', 'नीलिमा मेरे गगन की, 'गज़ल'

श्री शंकर शर्मा 'पिपासु'- 'गीत', 'अब तो तुम्हें बता दूं', 'गीत', 'गीत', ''मेरा आधार''

श्री श्याम दत्त 'पराग'- 'एक दीप जलता है', 'गीत', 'गीत'

श्री श्रीवत्स 'विकल'- 'गीत', 'गीत', 'गीत'

सुश्री शकुन्तला सेठ-'उद्‌बोधन', 'गीत', 'गीत', 'अभियान गीत', 'गीत'

श्री पृथ्वी नाथ 'मधुप'- 'बौराये बादाम बसन्ती वायु चली'

कु० सरिता- 'लता'

श्री विजय 'सुमन'- 'सावन'

'हमारा साहित्य' के वार्षिक अंकों में सम्पादकों ने 'शीराज़ा' में प्रकाशित स्थायी मूल्य की रचनाओं को पुन: प्रकाशित किया है, यहां इन्हीं पुन: प्रकाशित रचनाओं का मूल्यांकन प्रस्तुत है।

3.1.2.1 चन्द्र कान्त जोशी का 'दु:ख-सुख' के बाद अभी तक कोई स्वतंत्र काव्य-संग्रह प्रकाशित नहीं हुआ परन्तु जोशी समर्थ कवि हैं, इसमें संदेह नहीं। 'हमारा साहित्य' के क्रमश: 1964, 65, 66,67, 68 और 1969 के वार्षिक के अंकों में उनकी पांच कविताएं प्रकाशित हुई हैं। इन कविताओं में उनकी काव्य-प्रवृत्तियों के साथ-साथ शिल्पगत कौशल के भी दर्शन होते हैं और जीवन-दृष्टि का भी परिचय मिल जाता है। यहां इन कविताओं का मूल्यांकन प्रस्तुत है।

3.1.2.1.1. अर्चना कविता में कवि की देशभक्ति की भावना अपने चरमोत्कर्ष पर है। इस मिट्टी की महक उसके रोम-रोम में बसी हुई है। उसका कहना है कि तप, त्याग, साधना और सत्य-शक्ति की विजय पताका इसी देश में फहरा रही है, माना कि स्वर्ग और मोक्ष यहां

नहीं परन्तु जीवन की सभी सुख-सुविधाएं यहीं हैं। ऐसे देश पर कवि अपना तन, मन, प्राण, मधुमय यौवन न्यौछावर करता हुआ जननी जन्म-भूमि का अपने रक्त-चन्दन से श्रृंगार करना चाहता है। कवि का छन्द-शिल्प और भाव उदात्त है।

3.1.2.1.2. अनजान-पहचान कविता में कवि को अनुभव हुआ है कि जिस जीवन-जगत को वह पहचाना-पहचाना-सा मान रहा था, जिसे अपनी आशा और अभिलाषा का आधार माने बैठा था, वही पहचान और रिश्ता नाता झूठा पड़ गया है, अब तो स्थिति यह है कि वह भीड़-भाड़ में अकेला रह गया है। इस उपेक्षाजन्य पीड़ा को सहता हुआ कवि अलौकिक (प्रभु) प्रिय को उपालम्भ देता है। कविता में जीवन-जगत के सुख-दु:ख और श्रृंगार तथा प्रणयजन्य सुख-दु:ख का सघन मिश्रण किया गया है।

3.1.2.1.3. गीत के पहले बोल में कवि मन-प्राण के आह्लाद का चित्रण रूपकों के माध्यम से करता है। मन-प्राण प्रणय-बंधन में बंधा नभ के फेरे काटता है परन्तु धरा की टेर उसे लौटने को विवश करती है तो वह यथार्थ को पहचानने लगता है। यहां कवि चाहता है कि गीतों में सुख-दु:ख का ज्ञान भूल कर स्वप्न और ज्ञानालोक भरे, तन-मन-प्राण से उनमें लीन हो जाए, उसके गीत की धार कभी न रुके और जगत-जीवन में निश्छल प्यार पले।

3.1.2.1.4. मधुमास की प्यास कवि की श्रेष्ठ कविता है, छन्द के संगठन और भाव की तरलता आदि गुण कवि के सिद्धहस्त होने के परिचायक हैं। प्रस्तुत विधान परम्पराभुक्त होते हुए भी भावविभोर करता है। ऋतुराज के आने पर मौसम की कांया बदलती है, पीत पराग लिए सौरभ के आंचल उड़ते हैं, युवा हृदयों में प्रणय संगीत क्षुधा की आग सुलगती है। बयार के संगीत के संग रंगों की होली मचती है और अनगाये गीत अधरों से फिसलने लगते हैं। गोरे अंगों से छुई--मुई सी लाज फूटती है, मुग्ध ललचाए नयन जैसे होश खो रहे हैं। नयनों से नयनों की कहीं-कहीं बात हो जाती है फिर भी पनघट प्यासे के प्यासे हैं। कवि के आह्लाद और प्रणयाकांक्षा का सुंदर सुगठित चित्रण देखें-

'पूर्ण हुए न दोहद जिनके, ऐसे खड़े अशोक।
इच्छा करते पद-प्रहार की, पा प्रभात आलोक।'

3.1.2.1.5. कश्मीर एक अनुभूति कविता में कवि कश्मीर की प्रकृति और लोकजीवन तथा नर-नारी के सौंदर्य का तत्सम शब्दावली में चित्रण करता है। कवि विशेषणों और संज्ञाओं की परस्पर संगति बिठा कर चौंकाहट, रोमांच, जिज्ञासा और हैरानी के भावों को जागृत करने का यत्न करता है, परन्तु कविता भाव की अपेक्षा शब्द-बोझिल हो गई है। छन्द की अपेक्षा लय को ध्यान में रखा गया है, कविता साधारण है। हां, नये भाव बोध और शिल्प के प्रति कवि के आकर्षण की परिचायक मानी जा सकती है।

3.1.2.1.6. नभ-मन्थन छन्द विहीन साधारण कविता है। कवि ने विज्ञान-ज्ञान और कला-शिल्प के पंखों को तोलते हुआ निर्भीक, साहसी, अटल विश्वासी, आधुनिक मानव की चन्द्र यात्रा की प्रशंसा की है और कहा है कि उसने सौर जगत, नक्षत्रों और प्रकृति के अनेक रहस्यों को उद्‌घाटित कर दिया है। पुराकाल में देवताओं ने समुद्र मंथन करके रत्नों का भण्डार

निकाला था अब आधुनिक मानव ने नभ-मन्थन करके जल-थल-अनिल-अनल को चकित कर दिया है। कवि मानव के श्रम की प्रशंसा करता है और बदलते मूल्यों का आकांक्षी है।

3.1.2.2. श्याम दत्त पराग की तीन रचनाएं क्रमशः 'हमारा साहित्य' के 1964, 67, 1968 के वार्षिक अंकों में प्रकाशित हुई हैं, जिनका मूल्यांकन प्रस्तुत है।

3.1.2.2.1. एक दीप जलता है कवि की छन्द-विहीन साधारण रचना है, चौरासी लाख कमरों (योनियों) में घूमते मानव-प्राण की बात कही गई है, रूपक अपूर्ण है, छन्द विहीन साधारण कविता है, भाव भी परम्परागत ही हैं।

3.1.2.2.2. बिन साजन सावन नहीं भाए गीत में छन्द, लय, ताल सुगठित है। वन-उपवन का वातावरण प्रणयाकांक्षा जगाने वाला है, नील गगन में बिजली चमकती है परन्तु प्रियतम रूठा हुआ है।

3.1.2.2.3. प्राण जलते रहे प्रेम की ज्वाल पर गीत में कवि स्थिति-वैपरीत्य को छन्दों में ढालता चलता है। यह कवि का श्रेष्ठ गीत कहा जा सकता है। कवि को लगता है कि प्राण प्रेम की ज्वाला पर जलते रहे हैं परन्तु रूप ने भावना को देखा नहीं। इसी तरह के वैपरीत्यों को समेटता हुआ कवि अभाव, उपेक्षा, अपहचान, अन्चीन्हा रह जाने की पीड़ा से ग्रस्त होकर परम्पराभुक्त प्रस्तुतों का नियोजन करता जाता है। रोमांटिक भावबोध की निराशाजन्य अनुभूतियों का अच्छा गीत है।

3.1.2.3. श्रीवत्स विकल (उधमपुरी) मूलतया डोगरी के श्रेष्ठ उपन्यासकार और कवि हैं। इन्होंने हिन्दी में भी कविताएं और कहानियां लिखी हैं। डॉ० गंगादत्त शास्त्री 'विनोद' ने इनकी रचनाधर्मिता पर लिखते हुए इनकी पुस्तकाकार रचनाओं की सूची इस प्रकार दी है 'वेदना के स्वर' (कविता-संग्रह), बहती नाव उखड़ते किनारे (कविता-संग्रह)। परन्तु डॉ० 'विनोद' ने यह स्पष्ट नहीं किया कि यह संग्रह प्रकाशित हुए हैं या पाण्डुलिपि रूप में ही हैं। वैसे यह पुस्तकें उपलब्ध नहीं हुईं। श्रीवत्स विकल की एक पुस्तक 'किसी से न कहना' पर अकादमी ने अनुदान दिया है, परन्तु प्रकाशित रूप में पुस्तक उपलब्ध नहीं। 15 फरवरी 1970 ईस्वी को 31 वर्षीय इस सशक्त युवा साहित्यकार का देहान्त हो गया।' इनका काफी साहित्य अनुपलब्ध ही है। 'हमारा साहित्य' के क्रमशः 1964, 65 1966 के वार्षिक अंकों में तीन गीत प्रकाशित हुए हैं। जिनका मूल्यांकन निम्नलिखित है।

3.1.2.3.1. तुम मेरे शत-शत बन्धन में गीत में कवि अलौकिक सत्ता के प्रति श्रद्धान्वित है, उसे अपनी सांस-सांस का परिचय चन्दन में लिख भेजा है। यहां कवि भावावेग को सशक्त बिम्बों में उंडेलता हुआ बढ़ता चलता है, परन्तु बिम्ब सुंदर और तरल होते हुए भी कथ्य उलझ गया है।

3.1.2.3.2. ओ नभ के नीरद, मत उमड़ो नयनों में गीत में कवि की रोमांटिक निराशा, एकाकीपन, घुटन और उत्पीड़न की अनुभूतियां व्यक्त हुई हैं। घन में तड़पने वाली बैरिन बिजुरी एकाकीपन में उतर रही है, बोझिल तन पर संध्याओं के पहरे हैं, यौवन काले सायों में घुट रहा

है, अभिलाषाएं बर्फ-सी शीतल होकर जम गई हैं। यहां कवि ने स्थिति वैपरीत्यों का अच्छा संयोजन किया है।

3.1.2.3.3. **मैं मधु की बुन्दिया बन जाऊं** गीत में कवि दुःखी और त्रासदे स्थितियों में जी रहे लोगों के प्रति संवेदना प्रकट करता है। वह प्रेम-निशा के मृदु सपने लेने वालों की पलक पटलों पर आ पड़े अंधेरे को अश्रुजल से धोना चाहता है. निराश लोगों की आंखों की निंदिया बन जाना चाहता है।

3.1.2.4. **ओंकार सिंह 'आवारा'** डोगरी भाषा का कवि प्रतीत होता है 'हमारा साहित्य' के 1964, 65, 1966 के वार्षिक अंकों में क्रमशः तीन हिन्दी कविताएं प्रकाशित हुई हैं। इनकी ये सभी कविताएं छन्दबद्ध हैं। इन कविताओं का मूल्यांकन प्रस्तुत है।

3.1.2.4.1. **उमर पुकारती रही** कविता में कवि की मनोभावना निराशाग्रस्त ही है। जीवन क्षण भंगुर है, घड़ी, पहर, दिवस कभी शोक तो कभी मोद में बीतते रहे हैं। चला-चली के नियम में बंधा कोई भी क्रूर-काल के हाथ से नहीं बचा है। अधिकतर कवि आह्लाद के बीच विषाद का सरस सफल चित्रण करता है, प्रस्तुत विधान परम्पराभुक्त है।

3.1.2.4.2. **देखो साथी किसी मोल पर पागल प्यार नहीं बेचूंगा** गीत में कवि घर-द्वार, जीवन के सब सुख बेचने के लिए तत्पर है परन्तु पागल प्यार नहीं बेचना चाहता, जीवन के दुर्गम पथ पर श्रम, अपनापन और जीवन का सर्वस्व हार कर भी वह संकल्पबद्ध है कि वह सावन का मतवाला यौवन, पूनम की उजली रातें, बालाओं के क्वारे गीत, उनकी मधुर, मनोहर, सुन्दर घातें बेच सकता हैं, प्रथम प्यार नहीं! अच्छी सरस कविता है।

3.1.2.4.3. **मैं आवारा जन्म जन्म का** गीत में कवि जीवन में मिले यौवन और प्रणय के पल पाकर भी उनका उपभोग नहीं करता, प्राकृतिक सौंदर्य के दृश्य उसके गीतों को आकर्षित करते हैं परन्तु वह नहीं रुकता। नील गगन ने उसे धोखा दिया, सागर ने अभिमान भरा दान दिया जिसे कवि ने स्वीकार नहीं किया, लोगों ने दीवाना कहा, उपहास उड़ाया, उंगलियां उठाई परन्तु कवि के पांवों को ये सुख-दुःख न बांध पाये। गीत के अंतिम पद पर पहुंचते हुए कवि पश्चात्तापग्रस्त है कि वह जीवन के प्रति आकर्षित तो रहा परन्तु इसे पहचान न पाया, इसका उपभोग न कर सका। छन्द-शिल्प की दृष्टि से आवारा की ये कविताएं सशक्त और श्रेष्ठ हैं।

3.1.2.5. **जैड 'सैमी'** की मात्र एक कविता 'हमारा साहित्य' के वार्षिक अंक 1964 ई० में प्रकाशित हुई है। मूल्यांकन प्रस्तुत है।

3.1.2.5.1. **खिल जाएंगे फूल कंवल के** कविता में कवि का रोमांटिक भावबोध ही व्यक्त हुआ है। कवि ने प्यार में जल कर देख लिया है, आशाओं के फूल मसल कर रह गए हैं। परन्तु प्रियतम के हंस देने से कमल के फूल खिल जाएंगे, इस आश्वति में कवि कहता है-

'तुम देखो जो प्यार से हमको! रख दें हम दुनियां बदल के।'

साधारण तुकान्त कविता है।

3.1.2.6. पृथ्वीनाथ 'मधुप' का 'हमारा साहित्य' के वार्षिक अंक 1964 ई० में प्रकाशित गीत 'बौराये बादाम बसन्ती वायु चली' नये भावबोध और शिल्प के कवि का आह्लादकारी गीत है। इस गीत में परम्पराभुक्त प्रस्तुतों के माध्यम से बसंत के दिनों की प्रकृति का चित्रण किया गया है। कवि यहां अपनी रोमांटिक शृंगारानुभूतियों को व्यक्त करता है। बादाम बसन्ती वायु में बौराये हैं, प्राणों ने नव अंगड़ाई ली है, पत्तों पर लाली छाई है, बसन्ती वायु नवजीवन का मधु लिए गज गामिनी स्त्री की तरह मंथर गति से चल रही है। कवि का मन इस सुंदर मनमोहक परिवेश में प्रफुल्लित हो उठता है, अनुभूतियां जाग उठती हैं। गीत का अंतिम पद देखें-

'अगिन लहरियां मानस में भी। उठीं मधुर, कल, मृदु भावों की, अब तो लो कर थाम, बसन्ती वायु चली!'

3.1.2.7. दुर्गा दत्त शास्त्री की तीन कविताएं 'हमारा साहित्य' के 1965, 67, 70-71 के वार्षिक अंकों में प्रकाशित हुई हैं। इनका मूल्यांकन प्रस्तुत है।

3.1.2.7.1. दीप से छन्दविहीन कविता है। कवि अंधेरे के विरुद्ध लड़ने का संकल्प करता है। कवि को बीहड़, अंधकार और आंधी के बगूलों में कंपकंपाते दीपक की लौ से आत्मबल मिलता है और वह धरती के पावन उपवन को निशाचरों द्वारा अपवित्र और विकृत न होने देने के लिए जूझने का संकल्प करता है। साधारण नैतिक बोध की परिचायक कविता है।

3.1.2.7.2. धरती पर प्यार लुटाऊंगा में कवि जन-कल्याण के लिए संकल्प बद्ध प्रतीत होता है। वह कहता है कि तुम चाहे कांटे बिखराओ, अंधकार फैलाओ, स्वार्थवश लड़ो, लड़ाओ मुझे इसकी परवाह नहीं, मुझे तो कांटे हटाने हैं। आदर्शवादी भावना ही कविता का मूल स्वर है।

3.1.2.7.3. तो मैं स्वर्ण-विहान करूंगा कविता में कवि कहता है कि महादम्भ का कुटिल भयंकर मोहक नर्तन हो रहा है, दुर्विलास और राग रंग चल रहा है, पशुता का अंधकार फैला हुआ है, आशाएं अपूर्ण रहती हैं, मधुमास दूर रहता है। इस त्रासद स्थिति से जीवन-जगत के निस्तार के लिए मैं महान यत्न करूंगा, रोती मानवता का सम्मान करने के लिए अपना यौवन, मस्ती, सुख-सपने, तन-मन-धन न्यौछावर कर दूंगा।

ये सभी साधारण कविताएं हैं, जिनमें कवि का बड़बोलापन ही झलकता है, काव्यगत सरसता, गंभीरता और दृष्टिगत परिपक्वता का अभाव है, साधारण आदर्शवादी रचनाएं हैं।

3.1.2.8. जानकी नाथ कौल 'कमल' की तीन कविताएं 'हमारा साहित्य' के क्रमशः 1966, 67 1969 के वार्षिक अंकों में प्रकाशित हुई हैं। इनका मूल्यांकन प्रस्तुत है।

3.1.2.8.1 मेरा हारिल साधारण कविता है, कसक भरी कल्पनाओं से कवि का हृदय उर्वरित है, मधुमय घट-धाराओं से दृग भरे रहते हैं। परन्तु कवि अवसाद से घिरा रहता है उसका मन जब गाना चाहता है तो स्रावों से भिद् (?) जाता है। कविता का प्रतीक विधान अस्पष्ट है, हारिल क्या है ? स्पष्ट नहीं हो पाता।

3.1.2.8.2 **एकान्त** कविता में कवि को लगता है कि मेला बन्द (?) हो गया है और वह अकेला रह गया है, जीवन में वह जी भर खेला है, अब जग के सुख-दु:ख छूट गए हैं, सभी नाते टूट गए हैं, विस्मृतियों ने मन के सभी माणिक लूट लिए हैं।'' कवि का स्वर अवसाद पूर्ण है।

3.1.2.8.3 **मैं** कविता में कवि इसी अवसाद और विषाद को अधिक स्पष्टता से व्यक्त करता है। यह छन्दविहीन कविता है, कवि स्वयं को ऐसी व्रीणा समझ रहा है, जिसके तार टूट पड़े (?) हों। वह स्वयं को अबला के व्यथित हृदय से फूट पड़ा रोदन-गीत भी समझता है।

ये तीनों कविताएं साधारण हैं कवि के आरम्भिक प्रयास मात्र! भाषा भी काव्यमय नहीं हो पाई। कविताएं क्या, ये साधारण असम्प्रेषित उद्गार हैं।

3.1.2.9 **देवरत्न शास्त्री** की तीन रचनाएं 'हमारा साहित्य' के 1967, '69, 1970-71 के वार्षिक अंकों में प्रकाशित हैं। इन में से दो कविताएं उसके काव्यसंग्रह 'सप्तपदी' में संकलित हैं। शेष रही एक कविता का मूल्यांकन प्रस्तुत है।

3.1.2.9.1. **मूल परिवर्तन है युग का** 1969 ई० में प्रकाशित कविता में कवि अपने प्रगतिकामी विचार को छन्दविहीन शिल्प में व्यक्त करता है। वह मानता है कि प्रत्येक जन में प्रति क्षण परिवर्तन हो रहा है, यह परिवर्तन आकर्षण, साहस, नूतनता, यौवन और बसन्त को जन्म देता है, इसी कारण हमारा युग युवा-युग कहलाता है। परन्तु कवि की मूल चिंता यह है कि प्रत्येक क्षण जन का अपने आप पर और अन्य ज़नों पर अविश्वास बढता जा रहा है। यह अविश्वास शांति का शत्रु है और मानव के लिए पीड़ादायक है। यह महाभय है, कवि अविश्वास की वृत्ति को मिटा देना चाहता है।

कवि का रुझान नव-युग के स्वीकार के प्रति तो है परन्तु कविता में तरलानुभूति का अभाव है, आदर्शवादी स्वर ही गूंजता है, दृष्टि और भावबोध परम्परागत ही है।

3.1.2.10 **मोहम्मद यासीन** का मात्र गीत 'सांझ भई और नील गगन पर।' 'हमारा साहित्य' के अंक 1968 ई० में प्रकाशित हुआ हैं, जिसका मूल्यांकन निम्नलिखित है।

3.1.2.10.1 **सांझ भई और नील गगन पर** कविता में कवि का भावबोध रोमांटिक ही है। बादल ऐसे झुक आए हैं जैसे गोरी ने मुख पर आंचल डाल लिया हो, ऐसे वातावरण में मन के हर्ष में एक कोमल परछाई उभरती है और मन रह-रहकर बोल उठता है, 'फिर उस गोरी के गांव चलो।' कवि बस्ती के बनजारों की रीति पर व्यंग्य करता है, जो अपने कंकर को शंकर और दूसरे के सोने को पीतल मान रहे हैं। वह विरहिण की पीड़ा का सुंदर चित्रण करता है, विरहिण ने मन के सूनेपन से डर कर सूने आंगन में अपनी छागल तोड़ दी है, गीत की एकतानता की अपेक्षा ग़ज़ल के शेयरों-सी भाव विभिन्नता है।

3.1.2.11 **विजय 'सुमन'** की 'लो उमड़ घुमड़ आया सावन' 'हमारा साहित्य' के अंक 1969 ई० में प्रकाशित हुई है। जिसका मूल्यांकन प्रस्तुत है।

3.1.2.11.1 लो उमड़ घुमड़ आया सावन में कवि रोमांटिक भाव बोध ही चित्रित करता है। कवि के मन में जिज्ञासा है कि रात क्यों काली है, बिजली क्यों चमकती है, बादल क्यों शोर मचाते हैं ? फिर उसे लगता है कि जब साधें जाग उठती हैं तो पतझड़ के भय को भूल कर मस्ती में डूबी बालाएं आमों की डाल पर झूलती हैं। अंततः कवि ऐसे सुखद वातावरण में अपनी प्रिया के अभाव का चित्रण करने लगता है। उसे निराशा में प्रियतमा के वादों का स्मरण आता है, उसे लगता है कि रस की इस दुनिया ने आंसू के डर का घर फूंका है (?) बूंदों की जलती ज्वाला ने मुझे बांहों में भर फूंका है। साधारण प्रेम गीत है।

3.1.3. नये भाव बोध और शिल्प की कविता सातवें दशक तक राष्ट्रीय स्तर पर हिन्दी कविता 'प्रयोगवाद' से बढ़ कर 'नयी कविता' के रूप में विकसित होकर लगभग साढ़े तीन दर्जन काव्य आंदोलनों में उलझती सुलझती 'समकालीन कविता' का रूप अपना चुकी थी, जिसमें कवि मार्क्सवादी चिंतन और राजनीति से प्रतिबद्ध-सा हो गया था और दैनिक जीवन के संघर्षों से उपजे अनुभवों को कविता में अभिव्यक्त करने लगा था।

इससे पूर्व की हिन्दी कविता में दुरूहता, प्रयोगाग्रह, बिम्बधर्मिता, प्रतीकों के रूप में दूर की कौड़ी लाने के यत्न हो रहे थे और मनोविश्लेषणवाद के नाम पर आत्म प्रलाप और कुण्ठाजन्य अभिव्यक्ति को महत्व मिल रहा था। भाव यह कि हिन्दी कविता में अराजकता फैली हुई थी। 'समकालीन कविता' के विकास के साथ-साथ यह अराजकता तलछट के रूप में नीचे बैठ गई तो सम्प्रेषणीयता का गुण उभर कर स्पष्टतर होने लगा।

जम्मू-कश्मीर के कुछ कवि पांचवें दशक से ही हिन्दी की मुख्य काव्य-धारा की कविता के स्वर और तेवर को पकड़ने का यत्न कर रहे थे परन्तु छठे दशक में ही प्रो॰ सुभाष भारद्वाज प्रगतिवादी काव्य-चेतना को पकड़ने में कुछ-कुछ सफल हुए जबकि 'नयी कविता' की काव्य-चेतना को शशिशेखर तोषखानी ही कुछ-कुछ पकड़ पाए।

सातवें दशक में श्री मोहन 'निराश', डॉ॰ रत्न लाल 'शान्त', श्री पृथ्वीनाथ 'मधुप' श्री सुतीक्ष्ण कुमार 'आनन्दम्' प्रो॰ सुभाष भारद्वाज आदि कवियों ने भी 'नयी कविता' के भाव बोध और शिल्प तथा काव्यचेतना को पकड़ने में रुचि दिखाई।

परन्तु काव्य-प्रवृत्ति के संदर्भ में यह काल संक्रान्त की स्थिति का दशक ही कहा जा सकता है क्योंकि कहीं कवियों का शिल्प नया है तो भावबोध परम्परागत है, कहीं भावबोध और शिल्प नया है तो प्रस्तुत विधान परम्परागत है और कहीं बोध की अपेक्षा रोमांटिक भाव को ही अभिव्यक्ति मिल सकी है, जबकि कहीं छंदविहीनता के नाम पर गद्य पंक्तियों को ही तोड़ कर लिख दिया गया है, जिसमें काव्यगत तरलता या भावसान्द्रता का अभाव खटकता है जबकि कहीं दुरूहता है और सम्प्रेषणगत दोष हैं।

3.1.3.1. नये भावबोध और शिल्प के कविता-संग्रह इस दशक में कुछ कवियों के स्वतंत्र कविता-संग्रह प्रकाशित हुए हैं तो कुछ कवियों की फुटकर रचनाएं ही प्रकाशित हो सकी हैं। यहां हम इस दशक में प्रकाशित कविता-संग्रहों की कविता का मूल्यांकन करेंगे। इस दशक में प्रकाशित कविता-संग्रहों की सूची निम्नलिखित है-

खोटी किरणें	–	डॉ॰ रत्न लाल (रैणा) 'शान्त'	1965 ई॰
रेत का सागर	–	प्रो॰ सुभाष भारद्वाज	1967 ई॰
देखती आकाश आंखें	–	श्री सुतीक्ष्ण कुमार आनन्दम	1968 ई॰

3.1.3.1.1. खोटी किरणें का कवि 'शान्त' कश्मीर के प्राकृतिक सौंदर्य को ऊब की हद तक जीते-जीते थक गया अनुभव करता है; अब वह प्राकृतिक सौंदर्य के आवरण में छिपी लोगों की वृत्ति को जानना चाहता है। वह अनुभव करता रहा है कि अभिव्यक्ति (कविता लिखने के बाद भी) ने उसके कथ्य को अकथित ही छोड़ दिया है। जब उसने लिखना शुरू किया तो 'नयी कविता' अपनी वस्तु और रूप दोनों को स्थिर कर चुकी थी।

प्रस्तुत संग्रह की कविताओं का सृजन 'नयी कविता' के भावबोध, शिल्प और प्रवृत्तियों के धरातल पर हुआ है। कवि प्रयोगशील है बल्कि कहना चाहिए कि प्रयोग की अतिरिक्त ललक के कारण उसकी कई कविताएं दुरूह हो गई हैं, कथ्य सम्प्रेषित नहीं हो पाता क्योंकि प्रतीकार्थ उलझ गए हैं, भाषा के अलंकरण तथा 'ओवरलोड' के कारण कई कविताओं का भावपक्ष दब गया है। इस संग्रह की कविता का मूल्यांकन निम्नलिखित है।

3.1.3.1.1.1. नयी मूल्य–दृष्टि और अस्तित्ववादी चिंतना 'शान्त जी' की प्रस्तुत रचनाओं को पढ़ने से पूर्व पाठक को 'नयी कविता' के कवियों, समीक्षकों और आचार्यों के बीच (बदली जीवन-दृष्टि, सौंदर्यबोध, व्यक्ति स्वातंत्र्य, मानव स्थिति, परिवेशगत विसंगति, मूल्यांकन के प्रतिमान, सम्प्रेषण-गुण आदि पर) हुई चर्चाओं का पुन: स्मरण कर लेना सुविधापरक रहेगा, क्योंकि कवि 'शान्त' की कविताएं इन प्रश्नों से जूझती हुईं उनके कथ्य, प्रयोगाकांक्षा, शिल्प और सौंदर्य तथा जीवनदृष्टि को अभिव्यक्त करती हैं।

कवि 'शान्त' ने अनुभव किया है कि प्राचीन जीवन-दृष्टि और प्रतिमान बदल गए हैं, प्राचीन सौंदर्यबोध अपना अर्थ खो गया है, इस प्राचीन सौंदर्यबोध के सूर्य की किरणें खोटी पड़ गई हैं, इनके सहारे आधुनिक जीवन को देखा परखा नहीं जा सकता। भाव यह कि नये उभर रहे सौंदर्यबोध और जीवनदृष्टि के समक्ष प्राचीन जीवन-संस्कार या संचित जीवन-अर्थ व्यर्थ हो गया है, प्राचीन संस्कार रूपी कमल को कवि अर्घ्य रूप में अर्चित नहीं कर सकता अब तो कीकर के फूल ही उसकी अर्चना के संदेशवाहक बन सकते हैं। कंटीले जीवन में आकांक्षाओं के फूटते गुब्बारों और अदृश्य हो रही किलकारियों के बावजूद कवि कीकर के फूल को आधुनिक भावबोध के कारण अतिरिक्त महत्व देता है, ये कीकर के फूल और धूपजीवी आकार ही उसकी अर्चना के बेहतर संदेशवाहक हैं।

कवि 'शान्त' इस विचार का उल्लेख करता है कि ईश्वर के प्रति अन्धी आस्था व्यक्ति के आत्मविश्वास, जीवनदृष्टि के विकास और अभिव्यक्ति के लिए घातक है। कवि द्वारा ईश्वर और कमल के फूल का नकार वस्तुत: प्राचीन सौंदर्यबोध का ही नकार है, जिसके बदले कवि व्यक्ति (चाहे वह लघु मानव ही हो) के स्वाभिमान, उसके आत्मविश्वास और संघर्षचेतना को महत्व देता है जबकि कवि यह भी जानता है कि संस्कार के धरातल पर यह प्राचीन सौंदर्यबोध

को ही जी रहा है। अतीत के प्रति संवेदनशील इस व्यक्ति की चेतना नयी जीवन-दृष्टि को नहीं पकड़ पा रही, कवि ऐसे व्यक्ति के प्रति अनुभूति के स्तर पर संवेदनशील और करुण है।

3.1.3.1.1.2. जीवनगत विसंगतियां और अस्तित्ववादी चिंतना हिन्दी की 'नयी कविता' पर पश्चिम के अस्तित्ववादी आंदोलन का विशेष प्रभाव पड़ा है। अस्तित्ववाद जीवनगत विसंगतियों में मानव अस्तित्व को पहचानने का आंदोलन है। अस्तित्ववादी मानते हैं कि आधुनिकीकरण और औद्योगीकरण के कारण मानवशक्ति बौना हो कर रह गई है, व्यक्ति स्वयं को उपेक्षाग्रस्त समझता हुआ अजनबियत, अकेलेपन, अलगाव, रिक्ति और निरर्थकताजन्य ऊब से ग्रस्त होकर रह गया है, इस स्थिति में वह स्वयं को अपरिचय, घुटन, असमर्थता, अन्त: विभाजित की स्थिति में अनुभव करता है और जीवन को सार्थकता से नहीं जी पा रहा।

इन विडम्बनाजन्य मानवघाती स्थितियों में अपने अस्तित्व को पहचान कर सार्थक जीवन जीने की आकांक्षा ही अस्तित्ववादी दर्शन की चिंताएं हैं, जिनकी अभिव्यक्ति अस्तित्ववादी लेखकों-कवियों-साहित्यकारों की कृतियों में हुई है। हिन्दी की 'नयी कविता' भी इस साहित्य-प्रवृत्ति से अछूती नहीं रही है।

'शान्त' ने भी अस्तित्ववादी विचारणा को अपनी कविता में समुचित स्थान दिया है। परन्तु हिन्दी के 'नये कवि' की तरह 'शान्त' भी उपर्युक्त रुग्ण मनोवृत्तियों में फंसा हुआ निराश कवि है, उसका प्राचीन संस्कारी मन इन स्थितियों और मनोवृत्ति के कारण दुविधाग्रस्त है, कोई सार्थक जीवन-दृष्टि नहीं विकसित कर पाया, मात्र रुग्ण मन: स्थितियों को बिम्बों में अभिव्यक्ति देना ही कवि-कर्त्तव्य नहीं होता, परन्तु यह कमज़ोरी 'शान्त' की कविता की ही नहीं, समूची 'नयी कविता' की कमज़ोरी है।

अस्तित्ववादी चिंतक मृत्यु के निकटतम पहुंच कर अस्तित्व के महत्व को पहचानना चाहता है और इस अनुभूति के कारण जीवन के प्रत्येक क्षण को अनुभूति के स्तर पर सार्थकतापूर्ण जीना चाहता है। उसकी इस मनोवृत्ति को क्षणवादी अवधारणा कहा गया है, जिसमें जीवन का मात्र वही क्षण सार्थक है, जिसमें किसी अद्वितीय अनुभूति की उपलब्धि होती है। अत: मृत्यु और जीवन के प्रति द्वन्द्वग्रस्त मानसिकता के कारण 'नयी कविता' में विचारविमर्श की एक काव्य- प्रवृत्ति ही विकसित हो गई है और कविता या साहित्य में ऐसी जीवन-विसंगत स्थितियों को कल्पना द्वारा खड़ा किया गया है, जिनके बीच यह बहस चलायी जा सके, 'अपने अपने अजनबी' और 'आत्मजयी' आदि कृतियों के शिल्प-संघटन में यह सब देखा परखा जा सकता है।

कवि 'शान्त' को अनुभव हुआ है कि उसने जीवन के क्षण जिए हैं परन्तु जीवन-वैविध्य को समेट नहीं सका, बल्कि ये क्षण ही उसको अन्त: विभाजित करते रहे हैं। उसके तन, मन, प्राण में ऐंठन, कसाव और तनाव पैदा करते रहे हैं। उसे भौतिकता से दूर खींच कर आत्म-साक्षात्कार के निकट नहीं ला सके। वह जी रहा है परन्तु संवेदनाहीन-सा, मन पर पत्थर की परतें जमी हैं और वह चट्टान जैसा अडिग दिखता है परन्तु 'भीतर से रीता' है।

इस आत्मबद्धता से मुक्त होकर वह चट्टानी परतों के बीच से अनावृत-अस्तित्व होना चाहता है जबकि अभी तक धारा को दिशा देने के मिथ्याभास से ग्रस्त है। वस्तुत: वह बाढ़ की बहती फेन में फंसा कंकड़ मात्र है, कालगति में बहने का पूर्ण अनुभव चाहता है, कालगति में बहता हुआ वह बंट रहे जीवन सौंदर्य के अनुभव को पकड़ कर समेट लेना चाहता है परन्तु उंगलियों के पोरों के बीच छलक रहे अनुभव को थामे रखने के लिए न वह उंगलियां सटा सकता है, न इसे मुट्ठी में भींच सकता है, अनुभूति का यह क्षण व्यर्थ-अप्रयुक्त-छूट जाता है।

कवि अन्त: विभाजित होकर निरर्थक जीवन जीने की अपेक्षा मृत्यु को अधिमान देता है क्योंकि मृत्यु ने कवि को आत्म साक्षात्कार के निकट खड़ा किया है, निरर्थक जीवन पर कवि मृत्यु को अधिमान देता है। मृत्यु के रहस्य को तो जानना चाहता है परन्तु मृत्यु के गंधहीन सेमल फूलों को दूर भी रखना चाहता है। यह विचार और भावगत अन्तर्विरोध कवि की दुविधा और कथ्यगत उलझन को ही प्रकट करता है, सत्य तो यह है कि कवि अपनी दुविधाजन्य स्थिति में न तो बरसाती नदी में घुलकर और न ही बरसाती धारों से छिद कर मरना चाहता है जबकि उसकी खाल में विष सांस-सी चलती ही रहेगी। वस्तुत: वह नैसर्गिक जीवन जीना और नैसर्गिक मृत्यु मरना चाहता है।

अस्तित्ववादियों की तरह वह भी जीवन की मरणधर्मा स्थितियों को आत्मघात के लिए प्रेरक कहता है परन्तु आत्मघात न कर वह इन स्थितियों को गीत के लिए कच्चा माल बना लेता है क्योंकि जीवन की विवशता, सिसकियों और निराशा को अपनी कविता में उतार देने से हो सकता है कि अन्याय, छीनाझपटी, बेईमानी और उपेक्षा से पीड़ित मानव-मात्र को वह न्याय, अधिकार और सत्कार के लिए जागरूक कर सके। हो सकता है उसे पढ़कर लोग पीड़ित मानव के प्रति संवेदनशील हो उठें, यह भी हो सकता है कि उसे पढ़कर निराश आदमी आशावान हो उठे, यह भी हो सकता है कि उसे कुछ भी न मिले और उसकी जीवन स्थितियां और अधिक बदतर हो जाएं। इस तरह कवि मुस्कराने और जीवन के गीत गाने की प्रेरणा देता है।

कवि 'शान्त' ने अस्तित्ववादी जीवनदृष्टि के अनुसार ही अपने विसंगत परिवेश को देखा है और माना है कि छिन्द्रान्वेषण की प्रकृति के कारण सहदय व्यक्ति समंग्रता को न देख कर शब्द-शब्द को छांट-छांट कर दुहरा-दुहरा कर परखते हैं, इसी कारण उन से सम्वाद स्थापित नहीं हो पाता। स्थिति यह है कि जीवन औपचारिक और अभिनय मात्र होकर रह गया है, मुस्कानें प्रयोजनवती हो कर रह गई हैं, अपरिचय-संवेदनहीनता, घुटन और निरर्थकता ने आदमी को आदमी से दूर कर दिया है, कोई किसी का सुख-दु:ख नहीं पूछता, सभी आपधापी के शिकार होकर एक दूसरे को रौंदते जा रहे हैं, भीड़ ही भीड़ है जो ठेलती, रौंदती, ठुकराती भिड़ती निकल जाती है, कोई किसी से वास्ता नहीं रखता, सहानुभूति नहीं रखता, अस्तित्व नहीं पहचानता बल्कि अपनी पहचान, अपनी अस्मिता (Identity) की रक्षा के लिए अराजकता फैलाना चाहता है। जीवन यांत्रिक होकर रह गया है, आदमी निरर्थकता से ग्रस्त होकर ऊब गया है, औपचारिकताएं उसे अकेला कर देती हैं, अकेलेपन की अनचाही स्मृतियों में लौटने के लिए विवश कर देती हैं।

वस्तुत: कवि अपने आत्मविभाजन से पीड़ित है, धरती और आकाश उसकी महत्वाकांक्षा को सीमित कर रहा है और उसका निजत्व उसकी आकांक्षा और सामर्थ्य सीमा के बीच दुहरा तिहरा होकर टुकड़ों में कट गया है। पुराने संस्कार सिर उठा कर सब लोगों से समरस भाव स्थापित करने और समरस होने की प्रेरणा देते हैं परन्तु उसका अन्तर्मन उसे पुन: झिंझोड़ कर अकेलेपन में धकेल देता है। उसके जीवन में कुछ नयापन भी तो नहीं। यहां कवि की विवशता का कारण उसकी असमर्थता या उसमें संघर्ष-चेतना का अभाव न होकर मात्र उसका आलस्य है, बाह्य छल-छद्म से घबरा कर कवि अन्तर्मुखी बन जाता है। 'मन की गौरैया' को परचाने का यत्न करके वह अस्तित्ववादियों की तरह रुग्ण मन:स्थिति का शिकार हो गया है। अब तो वह चाहता है गिलहरी जैसी सूरज की किरण को भीतर आने के लिए हवा उसकी खिड़की का पल्ला सरका दे ताकि धूप उसके कमरे के विषाक्त वातावरण को पावन कर दे।

कवि 'शान्त' की प्रणयानुभूति पर भी अस्तित्ववादी चिंतन का प्रभाव है। सार्त्र ने माना है कि प्रणय में उभयपक्ष को दबा लेने और उसका अपने लिए इस्तेमाल कर लेने की भावना बलवती होती है। परन्तु कवि 'शान्त' तो अपने इस कर्म और उपभोग पर पश्चात्ताप करता प्रतीत होता है। कवि परस्पर के प्रणयबंधन के भावसिक्त बिम्ब तो देता है परन्तु 'विगत प्यार' कविता में वह समझ लेता है कि आत्मबद्धता से ग्रस्त होकर उसने अपने प्रणय को मार दिया है, वह निज को बांट नहीं सका। जब यही अनुभूति उसकी चेतना में कीकर के कांटे की तरह चुभती रहती है तो वह संकल्प करता है कि अगर फिर कभी बहार आएगी तो वह आत्मबद्धता से मुक्त होकर निज को बांट देगा।

3.1.3.1.1.3. प्रकृति चित्रण कवि 'शान्त' ने कश्मीर की प्रकृति के कुछ स्थिर चित्रों में अपने भावात्मक तादात्मय के अच्छे बिम्ब प्रस्तुत किए हैं। झील, धूप, बर्फ, हरियाली आदि के बिम्ब 'झील की सांझ', 'बसंत गीत' 'महक का जन्म' आदि कविताओं में अनुभूति-प्रवण हैं। 'झील की सांझ' से एक उद्धरण–

> ''उस शिखर अकेली एक किरण/ अपनी लाली पर रीझ रही/ जमी बर्फ से छुड़ा रही अपने चरण/ कुछ खोज रही।''

3.1.3.1.1.4. निष्कर्ष और उपलब्धि कुल मिलाकर कहें तो 'शान्त' की ये कविताएं 'नयी कविता' की शिल्प-संवेदना के अन्तर्गत अस्तित्ववादी चिन्तन को प्रस्तुत करती हैं। कहीं-कहीं प्रयोगाधिक्य ने कविता को नुकसान भी पहुंचाया है, कहीं-कहीं रूपक और प्रतीक उलझ गए हैं, अस्तित्ववादी अन्तर्विरोध और 'नयी कविता' के गुण-दोष उनकी कविताओं में भी मिल जाते हैं।

3.1.3.1.2. रेत का सागर की कविताओं में प्रो॰ सुभाष भारद्वाज की काव्यात्मा तो 'ताण्डव' की ही है, अभिव्यक्ति का ढंग कुछ-कुछ बदल गया है। कवि ने 'नयी कविता' को फैशन के रूप में न अपनाकर उसे अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में ग्रहण किया है। कवि अकविता के नग्न और वीभत्स वर्णन और 'अति ऊब', 'अति कुण्ठा', 'अतिकाम' और 'अति यथार्थवाद' के धरातल से दूर रहा है, इस 'बीमार कविता' से बराबर बचता रहा है। उसकी इन

कविताओं का मूल्यांकन प्रस्तुत है।

3.1.3.1.2.1. मूल्यान्वेषण और संस्कार-शोधन की वृत्ति 'नयी कविता' की प्रमुख प्रवृत्तियों में से एक है- मूल्यान्वेषण और संस्कार शोधन का प्रयास। कवि सुभाष भारद्वाज की अनेक कविताओं में यह प्रवृत्ति लक्षित होती है। 'नये कवियों' की तरह उसे भी प्रतीत होता है कि जीवन के सांस्कृतिक-सामाजिक मान-मूल्य दिन प्रतिदिन भ्रष्ट हो रहे हैं। लोभ, मद, मोह, अहंकार और अधिकार-लिप्सा के कारण मानव अन्यायी और क्रूर होता चला गया है। वह सामाजिक और पारिवारिक आदर्श भूलता जा रहा है, इन आसुरी वृत्तियों के कारण वह आचरण-भ्रष्ट हो गया है। घृणा, ईर्ष्या, द्वेष की धधकती ज्वालाओं और युद्धों की विभीषका ने मानव मूल्यों का हनन किया है और स्नेह के मृदुल रिश्ते टूट गए हैं। जबकि आदमी ने न युद्धों की विभीषिका से कुछ सीखा है न ज्ञान-विज्ञान की उपलब्धियों से कुछ सीखा है, पौराणिक कथाएं पढ़-सुन कर भी आदमी का आचरण न पुंण्यमयी हुआ है न अनुरागमयी, न ही राम, लक्ष्मण, हनुमानादि के जीवनादर्शों से उसने कुछ सीखा है, बल्कि उसके मन में 'मंथरा' और 'कैकेयी' ही जन्म लेती रही हैं। उसकी असीम, विराट और अपरिमित शक्ति उसे उसी की किसी-न-किसी कमी के कारण उदासी, निराशा और खिन्नता में घेरे रहती है।

मानव आदिम युग से चलकर आधुनिक युग पर पहुंचा है। इस सांस्कृतिक यात्रा में वह अनेक अनमेल संस्कृतियों और विरोधी सभ्यताओं को परस्पर जोड़ता रहा है, अनेक बिखरे बिछुड़े भूखण्डों को वह जोड़ता रहा है, उसके अनेक सपने पूरे हुए हैं, परन्तु वह प्रमुख सपना अपनी इस सांस्कृतिक यात्रा के पहले पड़ाव पर ही भूल गया है, यह सपना था-सभी को सभ्य, भरपेट, वस्त्र सहित देखना। जबकि विडम्बना है कि मानव-जाति का एक बहुत बड़ा वर्ग अभी भी भूखा-नंगा, असभ्य और अशिक्षित है। इसी क़ारण सारी उन्नति, उपलब्धि बेकार और व्यर्थ है। मानव-मात्र में परस्पर समानता, प्रेम, एकता आदि का यह सपना मानव-जाति की सभ्यता की विकास-यात्रा के पहले पड़ाव पर ही छूट गया है, तिस पर तुर्रा यह कि मानव अपनी इस भूल को सुधारना नहीं चाहता, ऐसा भी नहीं कि भूल सुधारने के लिए उसे उसका अन्तर्मन कचोटता न हो परन्तु वह तो शायद अब इस भूल को पखारने में ही असमर्थ हो गया है क्योंकि वह निजी स्वार्थ, लोभ और लाभ की वृत्ति के कारण किसी को कुछ दे नहीं पाता।

इस मानवीय कमजोरी के साथ-साथ उसके मन में बसी मोक्ष की इच्छा भी उसे ठग रही है। भूखा-नंगा मानव अपनी मोक्ष-कामना के कारण आडम्बरकर्त्ताओं द्वारा ठगा जा रहा है। वह नवसृजन को छोड़ कर मात्र आत्मभक्त होकर रह गया है, सर्जक की भूमिका से उतर कर वह अहंकार और आत्मश्लाघा से ग्रस्त है और आत्ममुग्ध होकर रह गया है, उसकी संकल्पित प्रज्ञा में दरार है और समझौतावादी प्रकृति, झूठा दंभ और दिखावे की वृत्ति आ गयी है। इन्हीं कारणों से मानव अपने मन के भीतर मूल्यों की परख नहीं कर पा रहा। अत: कवि आम आदमी को सजग और सचेत करता है कि आदर्शों का झांसा देकर लूटने वाले स्वार्थी लोगों के झांसों में न आए क्योंकि स्वार्थी वर्ग अपने लिए सभी सुख-साधन समेट कर साधारण व्यक्ति को घृणा, द्वेष, ईर्ष्या की आग में धधकने के लिए छोड़ देता है और धरती को पुण्यमयी, रागमयी नहीं बनने

देता।

"मांग मत/ तू/ उस धरा से मोक्ष/ मार/ उस कमज़ोर को ,जो नीच/ तेरे बीच बैठा/ स्वयं तुझ को ठग रहा है।"

कवि सुभाष भारद्वाज ने नव मूल्यों के विकास में अवरोधक परिस्थितयों के साथ मानव-मात्र के अन्दर के भावों और आकांक्षाओं को भी मूल्य के विकास का अवरोधक माना है। व्यक्ति की कुण्ठाजन्य क्रूरता, अहंकारजन्य निष्ठुरता और आत्मरतिजन्य घमण्ड भी उसे अपने आप को, अपने आचरण को समझने-परखने में बाधा पहुंचाते हैं और इसी कारण वह सहज न रहकर खतरनाक हो उठता है।

"डरता हूं/ अगर कहीं/ मैं सुन्दर निकला/ तो वह सुन्दरता/पत्थर मुझे बना डालेगी।"

इन सभी मानव-कुवृत्तियों से छूटने के लिए कवि उपदेशों, संदेशों, आदेशों द्वारा हंकने की अपेक्षा व्यक्ति के आत्मचेतस् होने की कामना करता है क्योंकि हांका गया व्यक्ति ज्यों का त्यों गुंजलकों में फंसा रह जाता है। जब तक उसका अन्तर्मन नहीं जागता, वह आत्मचेतस् नहीं होता। जागृत दिखता हुआ भी वह अन्तर्मन में सोया रह जाता है। कवि व्यंग्य करता है कि जो स्वयं ही जागने के लिए तैयार न हो बल्कि तन्द्रा के नशे में आवर्त्त रहना चाहता हो, जिसकी पलकें मुंदी जा रही हों, फिलहाल उससे कोई उम्मीद नहीं रखी जा सकती। बल्कि कवि उस आम आदमी पर भी तीखे व्यंग्य करता है जो स्वाभिमान के विरुद्ध समझौता करके मृत्यु तुल्य जीवन जी रहा है और रोज़-रोज़ मृत्यु का अनुभव करके भी प्रतिक्रिया प्रकट नहीं करता।

इन कविताओं में कवि व्यक्ति के संस्कारों का शोधन करके उसे विशेष तरह के संघर्ष के लिए तैयार करना चाहता है, वह उसे साहसी, आत्मविश्वासी, स्वाभिमानी, सर्जक, संकल्पित-प्रज्ञ, विनयी, जागरूक, आत्मचेतस् और सशक्त व्यक्तित्व बना देना चाहता है ताकि वह सभी तरह के छलकपट को समझकर मानव-मूल्यों को परिष्कृत करे और जीवन के गतिरोधों के विरुद्ध संघर्षशील रहे। कवि का विश्वास है कि इस प्रकार के जागरूक व्यक्ति के समक्ष कोई अवरोध नहीं टिकेगा।

3.1.3.1.2.2. प्रगतिशील चेतना कवि सुभाष भारद्वाज मूलत: प्रगतिवादी चेतना का कवि है। वह जन-साधारण की छोटी-छोटी आकांक्षाओं और सपनों के बिखराव तथा अपूर्णता की दाहक पीड़ा को व्यक्त करने वाला कवि है। ग्राम्य जीवन और कस्बाई जीवन की प्रगतिशील जीवन-संवेदना उसकी कविताओं में जगह-जगह झलकती है। उसका हृदय गरीब मज़दूर, अपाहिजों और भिखारियों तक के प्रति करुण है। वह जानता है कि सम्भ्रान्त और सम्पन्न व्यक्ति या वर्ग के सामने गरीब की उमंगों का कोई महत्व नहीं क्योंकि यह सम्पन्न वर्ग साधारण आदमी को इस्तेमाल की वस्तु समझता है और उसे भूख, अतृप्ति और शून्य में छोड़ देता रहा है। इस साधारणजन की निरीहता, अभाव और शोषण के विरुद्ध कवि आम आदमी को जागने और संघर्षशील होने की प्रेरणा देता है।

कवि मानता है कि लोगों के अभावों और इनके जीवन की विषमताओं का कारण इनकी अपनी समझौतापरस्ती और अकर्मण्यता है बल्कि बुद्धिजीवी वर्ग भी उसे अपनी ही तरह अकर्मण्य बनाए हुए है। कवि व्यंग्य करता है कि जैसे क्रिया के बिना संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण पंगु और गूंगे रह जाते हैं, वैसे ही क्रियाहीन भाषाभाषी पंगु, मूक और अगतिशील होकर रह जाते हैं। ये स्वनामधन्य क्रियाहीन लोग ही साधारण जन की जीवनगत विभीषिका के कारण हैं, यही उनके विकास में अवरोधक तत्व हैं।

विडम्बना यह भी है कि उनकी संघर्षशक्ति का पूर्ण उपयोग नहीं होता, संघर्षरत पीढ़ी को अवरोध काटने का अवसर नहीं मिलता, यह युयुत्सु पीढ़ी अपने अधिकारों के लिए अनलड़े रह कर कुंठित हो रही है, इसके नेता इसे कर्त्तव्यपथ सुझाते हैं, युद्धोत्सुकता बढ़ाते हैं परन्तु अचानक ही किसी अभिशाप से ग्रस्त-सा संघर्ष घटित होने से पूर्व ही रुक जाता है। परन्तु संघर्ष के अनायास अनलड़े छूट जाने का कोई कारण नहीं दिया गया और स्थिति जस की तस बनी रह गई है।

कवि अस्तित्ववादी चिंतन से प्रभावित नहीं है बल्कि वह भारतीय जीवन दर्शन में आस्था रखता है और जीवन में सुख-दु:ख, राग-रुदन, सम-विषम, जन्म-मरण को समदृष्टि से देखता है, इन विपरीत्यों को परस्पर एकमेक कर देना चाहता है। विरहपीड़ा और मिलनोल्लास को उसने समदृष्टि से अपनाकर एकत्व, प्रेम और समता का संदेश दिया है। कुछ कविताओं में अस्तित्ववादी निराशा, अजनबियत की पीड़ा, विवशता, पराजय बोध, आत्मघात की कामना वाली रुग्ण मनोवृत्तियों का आभास झलकता है परन्तु यह विवशता दुर्भाग्यजन्य है। यहां कवि ने द्वन्द्वग्रस्त व्यक्ति की अन्तर्पीड़ा और जीवन पिपासाओं का अच्छा चित्रण किया है।

3.1.3.1.2.3. निष्कर्ष और उपलब्धि:—कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि 'रेत का सागर' की कविता में कवि का 'ताण्डव' वाला प्रगतिवादी आक्रोश ठण्डा पड़ गया है और वह आधुनिक मानव के अन्तस्तल में उतर कर उसका संस्कार शोधन करके उसे आत्मचेतस् व्यक्ति बनाना चाहता है और गंभीर चिंतन को पाठक के हृदय में पैवस्त करना चाहता है। यहाँ उसकी जीवन-दृष्टि पूर्णतया भारतीय है।

3.1.3.1.3. देखती आकाश आंखें की भूमिका में कवि हरिवंशराय बच्चन ने लिखा है कि 'आनन्दम्' में 'प्रसाद' और 'निराला' जी के प्रभाव के बावजूद मौलिक सूझ, मौलिक कल्पना और मौलिक अभिव्यक्ति के कई सबूत मिलते हैं, उन्होंने नए रूपकों के द्वारा कविता का आयाम और सहानुभूति का क्षेत्र बढ़ाया है, प्रेमानुभूतियों की ओर झुकी उनकी रोमानियत उनकी कविता को युगानुरूप अंदाज में आर्द्र बनाती है।[10]

'आनन्दम्' वस्तुत: जीवनानुभूतियों का कवि है, उसका छन्दशिल्प प्रयोगवादोत्तर हिन्दी कविता जैसा है, जिसमें अनगढ़ता का अपना सौंदर्य है। अनुभूति के रूपायन का उसने भरसक यत्न किया है परन्तु किसी विशेष जीवन-दृष्टि के अभाव में कुछ कविताएं तो मात्र प्रतिक्रियाएं बन कर रह गई हैं और कुछ अनुभूति की विरलता के कारण सूक्तियां बन कर रह गई हैं। जबकि

उनकी कुछ कविताओं का रूपक-विधान और बिम्ब-विधान बड़ा ही आकर्षक और भावसिक्त है।

उनके प्रस्तुत परम्परा-भुक्त प्रतीत होते हैं परन्तु हैं नहीं। उन्होंने प्रस्तुतों और प्रतीकों का नया विकास किया है। 'आनन्दम्' नये भावबोध और शिल्प के संक्रान्त-धरातल का ऐसा कवि है जो बोध, चेतना या चिंतन की अपेक्षा भाव को महत्व देता है।

3.1.3.1.3.1. कश्मीर-सौंदर्य कवि 'आनन्दम्' ने कश्मीर की वादी के प्राकृत सौंदर्य की पृष्ठभूमि में पल रहे लोक-जीवन का भावपूर्ण चित्रण किया है। उसने चिनार, सेब, अनार, अखरोट (डून) और बादाम के वृक्षों-पेड़ों के नाम ही नहीं गिनाए बल्कि उन्हें भावपूर्ण बिम्बों और जीवन की धड़कन तथा गमकती गंध में आवेष्टित करके प्रस्तुत किया है। इन स्थिर चित्रों की विरल काव्यानुभूति धीरे-धीरे अंतिम पंक्तियों तक पहुंचकर घनी अनुभूति का काव्यबिम्ब बन कर रोमांचित करती है। इस कवि-कौशल के कारण कविता का भाव-सौंदर्य एकदम निखर उठता है। यहां ग्राम्य युवती का सौंदर्य प्राणों को उद्वेलित कर देता है परन्तु कवि प्रकृति के सानिध्य के सहारे मात्र शृंगार-भावना को ही व्यक्त नहीं करता बल्कि प्रकृति से वह जीवन की ललक को अभिव्यक्त करना सीख लेता है। उसे प्रकृति से करुणामयी मां की ममता की भी अनुभूति होती है, जिसकी खुली गोद में जाते ही बंद कमरों की घुटनभरी जिंदगी की अनेकायामी अनुभूतियां प्रस्फुटित होने लगती हैं। ये अनुभूतियां कहीं सघन और तरल बिम्बों में प्रस्तुत हुई हैं तो कहीं काव्यानुभूति में विरलता भी है, कहीं किसी वृहद उद्देश्य का अभाव भी है तो कहीं शिल्पगत कमज़ोरी अखरती भी है।

3.1.3.1.3.2. सीमावर्ती प्रादेशिक भावना और मानव-मूल्य सीमावर्ती प्रदेश का कवि 'आनन्दम्' सीमा पर तैनात सैनिकों के मन में झांकता है और उनके मन में उपजी युद्धजन्य घृणा को क्षणिक उक्साहट मान कर युद्ध का विरोध करते हुए इस को कुण्ठाजन्य पाप समझता है। कवि मानता है कि दोनों पक्षों के सैनिकों के हृदय में समभाव, मैत्री, प्रेम, मानवमंगल की कामना आदि मानव-मूल्य संस्थित रहते हैं। इन मूल्यों के प्रति उनमें आस्था भी रहती है क्योंकि सीमा के आर-पार को लोगों की सभ्यता-संस्कृति, आचार-व्यवहार में कोई विशेष भिन्नता नहीं।

कवि का कहना है कि सीमा झूठ है, कुण्ठा और पाप है क्योंकि इसी सीमा के कारण युद्ध होता है, सैनिकों को उकसाने के लिए, उनका मनोबल बढ़ाने के लिए विरुदावलियां गाई जाती हैं, मोक्ष या हूरों का लालच दिया जाता है, उनके मान-सम्मान को इतिहासांकित करने का लालच दिया जाता है। युद्ध के समय दोनों पक्षों का सत्य अलग-अलग और अपना-अपना हो जाता है। अपने इस अलग सत्य की पक्षधरता के कारण वे जूझ मरते हैं और प्रेम, मैत्री, समभाव आदि मानव-मूल्य पीछे छूट जाते हैं। वस्तुतः सीमाएं किसी को इकाई में नहीं रहने देतीं, प्राणों से प्राणों को भिन्न करती हैं, परस्पर उक्साती हैं, भिड़ा देती हैं। अतः कवि चाहता है कि संस्कृतियों, सभ्यताओं, भाषाओं के कारण बनी सीमाएं स्वयंमेव ध्वंस जाएं। परन्तु क्या यह आदर्शलोक स्थापित हो सकता है ?

3.1.3.1.3.3. मानवजीवन की परिभाषा कवि 'आनन्दम्' ने अनेक कविताओं में जीवन को परिभाषित करने का भी प्रयास किया है। जीवन उसे अभिशापों का प्याला भी लगता है और प्रश्न की तरह सताता भी है। प्राकृतिक क्रिया-व्यापार की अनेक स्थितियां जीवन की परिचायक हैं, जिन्हें कवि अनुभव करता है। फिर भी उसके समक्ष जीवन प्रश्न-चिन्ह बनकर खड़ा रहता है। जब कवि प्रकृति के सर्जक रूप को और फिर प्रकृति के विनाशक रूप को देखता है तो जीवन के प्रति उसकी जिज्ञासा सृजन-विनाश के उल्लास-अवसाद में ढल जाती है। परन्तु मात्र सृजन-विनाश की प्राकृतिक क्रियाएं देख लेना ही जीवन नहीं बल्कि तन मन से जो भुक्त है वही जीवन है। भावों की जितनी बड़ी दुनिया में व्यक्ति संसरण करता है, उतना ही समृद्ध उसका जीवन है, जबकि इस तथ्य की ओर कवि कहीं भी संकेत नहीं कर पाया। वह तो बदल रही मन:स्थिति को ही जीवन मान बैठा है। जीवन को किसी वृहद उद्देश्य से जोड़ने की अपेक्षा कवि इस आत्मासक्ति और आत्मविरक्ति तक ही सीमित रखे हुए है। वह जीवन को संघर्ष न मान कर मात्र विनय ही मान बैठा है।

3.1.3.1.3.4. जीवनगत विसंगतियां कवि 'आनन्दम्' आदमी को ऐसा निरीह प्राणी समझता है जो अनकिए अपराधों का चिट्ठा मात्र बन कर रह गया हो जिसके अच्छे भविष्य पर किसी ने स्याही फेर दी हो, जिसके अच्छे कर्म फलित होने से पूर्व नष्ट कर दिए गए हों और जो अपने अनकिए अपराधों को ही देखने के लिए विवश हो।

कवि का विश्वास है कि प्राचीन मर्यादाएं अप्रासंगिक होकर रह गई हैं। प्रभु असमर्थ है, उसके प्रति व्यक्ति की आस्था डगमगा गई है, लोग प्रभु और कपोल-कल्पित नैतिकता से उपराम हो गए हैं। इन सभी मन:स्थितियों में उलझता-सुलझता कवि इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि कपोल-कल्पित प्रभु और नैतिकता की अपेक्षा ज़मीनी यथार्थ से जुड़ना जरूरी है, पदतल की वसुधा ही आशा का संदेश दे सकती है, लक्ष्य भ्रष्ट, दु:खी संतप्त और थके हुए मानव के जीवन को संवलायी वसुधा ही सांत्वना और सहानुभूति दे सकती है।

जीवन के प्रति कवि अन्तर्द्वन्द्वग्रस्त ही रहा है। वह अपनी सृजन-प्रक्रिया में सर्जक-मन को अन्तर्द्वन्द्वग्रस्त देखता है और मात्र उत्थान-पतन को चित्रित करने में उलझ कर रह गया है और जब इस अन्तर्द्वन्द्व से मुक्त हुआ है तो कर्म की अपेक्षा सुखद स्वप्नलोक में खो गया है, यथार्थ के प्रति आंखें मूद कर रह गया है। 'अन्तर्द्वन्द्व' और 'विश्व शांति पथ' कविताएं इस दृष्टिहीनता से ग्रस्त हैं और कवि की आस्था आश्वस्त नहीं करती। कवि का अनजाने, अनदेखे पदचिन्हों पर अनन्त की ओर बढ़ जाना एक समझहीन पर्याण ही तो है। न जाने वह किस नये युग को दिखाना चाहता है, उसका यह अनजाना नया लोक सुखद कल्पना ही है। जीवन वस्तुत: संसार में संसरण है, परस्पर का व्यवहार है, जबकि कवि व्यवहार की तर्कसंगत सीख न देकर मात्र चौंकाहट ही पैदा करता है।

कवि धीरे-धीरे 'नयी कविता' की अस्तित्ववादी बीमार मानसिकता की ओर भी बढ़ा है। उसे लगता है कि जीवन में कोई हलचल नहीं, कोई झंझा-तूफान नहीं, हम मात्र तपती सांसों के घूंट पी रहे हैं, बंद कमरों में जी रहे हैं, जिनके सांकल-कब्ज़ों को मुर्चा लग गया है, घुटन

बढ़ती जा रही है। परन्तु कवि इससे छूटने का तरीका बताता हुआ घर फूंक तमाशा देखने की उक्ति को ही चरितार्थ करता है, उद्धरण देखें–

''भीतर ही से/बल लगाकर/खिड़कियां/द्वार सब/तोड़ दो। अथवा/कमरे की ये/दीवारें ही फोड़ दो।''

3.1.3.1.3.5. प्रणयानुभूति का स्वरूप कवि 'आनन्दम्' का मन प्रणयजीवन और गृहस्थ प्रेम के दायित्व को चित्रित करने में रमा है, यहां उसके रूपक सार्थक और सुन्दर हैं और वह उत्कृष्ट कविताएं दे गया है। इन कविताओं में वह कर्म और संघर्ष को विशेष सौंदर्य सहित प्रस्तुत करता है। वह जीवन की विसंगतियों के बीच से उबर रहे कर्मरत मज़दूर को दाम्पत्य प्रेम का सफल साधक मानता है। यहां मज़दूर वर्कशाप में लोहे के टुकड़े को रेत रहा है, जबकि लोहे और रेती की खरराटों से हाथों पर पड़ी काली लकीरें उसे प्रेमिका की आंखों के काजल-सी प्रतीत होती हैं। कथ्य यह है कि कर्मलीन व्यक्ति के ही मधुर भाव सार्थक हैं, निठल्ले व्यक्ति के नहीं।

कवि ने जिजीविषा के कारण संघर्ष में लीन मछली का भी सुन्दर बिम्ब दिया है। 'एक भावरूपक' कविता में उसने मन की घुटन के विरुद्ध मन की विद्रोही वृत्ति का सार्थक रूपक प्रस्तुत किया है। बाह्य तामझाम की अपेक्षा वह मन की भीतरी अनुभूति को शिल्प और कथ्य का गठनात्मक एकत्व प्रदान करके उत्कृष्ट कविता के रूप में रूपायित कर देता है, यहां भी जिजीविषा का चित्रण बहुत सुंदर हुआ है, उद्धरण देखें–

'' ....बोल रहा है ढक्कन/ भापवश होकर। मांड बह रही है बाहर, परतों पर परतें/....../ घुटे-घुटे ज्यों/भाव हों मानव के!''

कवि 'आनन्दम्' ने कुछ कविताओं में रोमांटिक प्रणय का चित्रण किया है। परन्तु इन कविताओं में कवि वियोग पीड़ित व्यक्ति की मन:स्थिति में उतरने की अपेक्षा मात्र चौंकाहट पैदा करता है या व्यंग्य ही करता है। कुछ कविताएं ऐसी भी हैं जिनमें रूपाकर्षण, अभिसाराकांक्षा, प्रणयक्षणों का स्मरण और शृंगार-लिप्सा का परम्परा भुक्त प्रस्तुतों के द्वारा चित्रण हुआ है। यहां कवि मिलन के क्षणों के बिम्बों में प्रकृति को भी बांध लेता है यहां बिम्ब-सौंदर्य के साथ-साथ काव्य-अनुभूति भी अतुलनीय हो उठी है। इस रोमांटिक शृंगार और भावबोध के अन्तर्गत वह अनदेखे और उपेक्षित सौंदर्य वाली लड़की का अतिरिक्त सुंदर बिम्ब प्रस्तुत करता है, इस सुंदर लड़की को वह पाषाण बनी अहल्या के रूप में भी देखता है और मृत पड़ी कविता के रूप में भी इसी कारण आनंदम् की यह कविता (मृत कविता) सुंदर, सार्थक और उत्कृष्ट कविता की श्रेणी में रखी जा सकती है।

3.1.3.1.3.6. निष्कर्ष और उपलब्धि:–कुल मिलाकर 'आनन्दम्' की ये कविताएं नये शिल्प को विकसित करने के प्रयास के साथ-साथ भावबोध के स्तर पर भी नवीनता को संजोए हुए हैं। जम्मू की हिन्दी कविता को नया आयाम प्रदान करने में ये कविताएं सक्षम हैं।

3.1.3.2. नये भावबोध और शिल्प की फुटकर कविता सातवें दशक में 'शीराज़ा' और 'हमारा साहित्य' में अनेक कवियों की नये भावबोध और शिल्प सम्बंधी कविताएं प्रकाशित हुई हैं। इनमें से कुछ कवियों की ये रचनाएं उनके स्वतंत्र कविता-संग्रहों से पुन:-प्रकाशित हैं तो कुछ कवियों ने इन्हें अपने बाद के कविता-संग्रहों में प्रकाशित कराया है। 'हमारा साहित्य' के वार्षिक अंकों में स्थायी-मूल्य की रचनाएं पुन: प्रकाशित करने की योजना कार्यान्वित होती रही है। अत: इस दशक की फुटकर कविता के मूल्यांकन के लिए 'हमारा साहित्य' को ही आधार बनाया गया है। परन्तु यहां हमने सुविधा के लिए स्वतंत्र संग्रहों में पुन: प्रकाशित कविताओं को छोड़ दिया है। शेष, सभी प्रकाशित रचनाएं ले ली हैं, इसके अतिरिक्त श्री मोहन 'निराश' की रचनाएं भी ले ली हैं क्योंकि उनका संग्रह 'कृष्ण मेरा पर्याय' हमें उपलब्ध नहीं हो सका। चर्चित रचनाओं की सूची निम्नलिखित है–

1. डॉ० शशिशेखर तोषखानी – 'हमारा साहित्य' के अंक वार्षिक 1964, 65, 66, 67, 1968 में क्रमश: प्रकाशित रचनाएं हैं–'सूर्योदय एक प्रतीक्षा : एक संभावना,' 'विशाल पंखुड़ियों वाला फूल', 'उत्सुक तुम और यह टूटा रिकार्ड', 'मोम का पंख', 'डूबता हुआ शहर।'
2. श्री मोहन 'निराश' 'हमारा साहित्य' के वार्षिक अंक 1964, 65, 66, 67, 68, 69, 1970-71 में क्रमश: प्रकाशित रचनाएं हैं–'अनपढ़े हस्ताक्षर', 'हम बौने', 'गीत', 'बासी बातें', 'सूरज की नीयत', 'किसी और को अब आवश्यकता नहीं है मरने की', 'इतिहास के हाशिये से'।
3. श्री पृथ्वीनाथ 'मधुप' – 'हमारा साहित्य' के वार्षिक अंक 1969 में प्रकाशित रचना है–'दो गीत'।
4. डा० रत्न लाल 'शांत' – 'हमारा साहित्य' के वार्षिक अंक 1965, 1969 में क्रमश: प्रकाशित रचनाएं हैं–'गीत', 'दो गीत'। इन में से दूसरा गीत पुन: प्रकाशित है।
5. डॉ० रमेश कुमार शर्मा – 'हमारा साहित्य' के वार्षिक अंक 1967, 68, 1970-71 में क्रमश: प्रकाशित रचनाएं हैं– 'स्वाद', 'शिलाओं के अंकुर', 'अहरबल का पत्थर'।
6. श्री सतीशचन्द्र सांख्यधर – 'हमारा साहित्य' 1967 के वार्षिक अंक में प्रकाशित रचना–'झील दरपनी'।

7. श्री पृथ्वीनाथ 'पुष्प' – 'हमारा साहित्य' के वार्षिक अंक 1968 में प्रकाशित रचना–'मरने से पहले'।

8. डॉ॰ अभ्रब 'प्रेमी' – 'हमारा साहित्य' के वार्षिक अंक 1968, 1969 में क्रमश: प्रकाशित रचनाएं–'इन्द्रजाल', 'कुछ उजले कुछ धुंधले साये'।

9. श्री मान भार्गव – 'हमारा साहित्य' के अंक 1969, 1970-71 में प्रकाशित रचनाएं–'याद', 'संघर्ष'।

10. नये हस्ताक्षर 'हमारा साहित्य' के अंक 1970-71 में प्रकाशित कविताएं हैं– प्रिंस शर्मा–'धूल', राजेन्द्र मोहन कौशिक–'शाम और घुटन' प्रकाश 'प्रेमी'–'यह संभव नहीं है', मनमोहन सासन–'उसे देखा है'।

इसी अंक में प्रकाशित कवि रमेश मेहता, और जितेन्द्र उधमपुरी की कविताएं उनके स्वतंत्र संग्रहों में आ चुकी हैं। इस दशक की फुटकर कविता का मूल्यांकन प्रस्तुत है।

3.1.3.2.1. शशिशेखर तोषखानी छठे दशक के प्रतिष्ठित कवि हैं। इस दशक में प्रकाशित इनकी रचनाएं और भी उत्कृष्ट हैं। इनका स्वतंत्र कविता संग्रह प्रकाशित हुआ है परन्तु अनुपलब्ध है। अत: यहां हम इनकी फुटकर कविताओं का ही मूल्यांकन कर पा रहे हैं।

3.1.3.2.1.1. सूर्योदय एक प्रतीक्षा: एक सम्भावना कविता में कवि आश्वस्त है कि नया सूर्योदय होगा जो संदर्भच्युत यात्राओं को नया पथ, नया दर्द देगा, काई के कारण अंधी हुई दीवारों पर रंगों का नया बिम्ब फूटेगा, समूची वादी आज़ादी का सांस लेगी। प्रश्नों के उत्तर मिलेंगे।

कवि का स्वर आशाजन्य आह्लाद का है, बिम्ब और प्रस्तुत–विधान 'नयी कविता' का निकटवर्ती है। कवि इन आह्लादकारी दिनों के आने की प्रतीक्षा करता हुआ थोड़ा-थोड़ा संदेहग्रस्त भी है। छन्द, लय, ताल और शिल्प-संघटन के साथ-साथ भावानुभूति, प्रस्तुत और बिम्ब की दृष्टि से सार्थक छन्दबद्ध कविता है।

3.1.3.2.1.2. विशाल पंखड़ियों वाला फूल कविता में कवि भीड़ के पांवों तले रौंदे जाने से पूर्व ही लाल फूल को उठा लेना चाहता है, फूल का प्रतीकार्थ पूरी तरह खुलता तो नहीं परन्तु कविता के बिम्ब बड़े सुंदर और सार्थक बने हैं।

> ''एक विशाल लाल फूल। जिसका गंधमय आलोक/खौफ़नाक नुकीले सींगों पर गिर/
> लहु लुहान होता जा रहा है!''

लगता है कि कवि शहरी भीड़ और औपचारिकता के बीच से अपनी कोमल भावनाओं और महकते आलोकमयी ज्ञान को जैसे-कैसे बचा ले जाना चाहता है। कविता में भाव-अनुभूति और विचार का अद्भूत सामंजस्य है परन्तु विशाल पंखुड़ियों वाले लाल फूल का प्रतीकार्थ खुल जाता तो कविता और अधिक सम्प्रेष्य हो जाती, मुक्तिबोध की तरह हमारा कवि भी कहीं हृदय-कमल को ही तो प्रस्तुत नहीं कर रहा ?

3.1.3.2.1.3. उत्सुक तुम और यह टूटा रिकॉर्ड कविता में कवि रात के कुरूप शोर से बचने के लिए मात्र इस विश्वास से खिड़की बंद कर लेता है कि किसी दिन यह रंगों और गुलाब की हंसी में खुलेगी परन्तु उसका यह विश्वास भी न जाने कब का मर चुका है, अब तो रंगों और गुलाबों की प्रतीक्षा ही नहीं रही जबकि खिड़की खोलना तो मात्र अभ्यास बनकर रह गया है। कवि जान गया है कि वह खूबसूरत कथा, महकती हवा, रहस्यमयी सुंदरी, मंदिर, होठों पर चुम्बन आदि को कविता का विषय नहीं बना सकता जबकि पाठक और श्रोता यही सब पढ़ने-सुनने के लिए उत्सुक हैं। कवि ऐसे पाठक-श्रोता से क्षमा मांगता है कि वे रोज़मर्रा की चादर ओढ़कर सो जाएं।

"मुझे तुम्हें यह बताने का साहस आज नहीं रहा/कि जिन्दगी एक टूटे रिकॉर्ड-सी बेकार है। जो स्वप्न में भी बज नहीं सकता!"

कवि 'नयी कविता' के बोध को कविता में उतारता है और कवि धर्मवीर भारती की तरह रोमांटिकता को शब्दबद्ध करता है।

3.1.3.2.1.4. मोम के पंख कविता में 'नयी कविता' का प्रस्तुत विधान और बोध पक्ष पूर्णतया अपना लिया गया है, इस कविता में कवि का 'नयी कविता' का अध्ययन प्रतिध्वनित हो उठा है, कविता को पढ़ते हुए कुंवर नारायण, धर्मवीर भारती, नरेश मेहता का काव्य-संसार याद आ जाता है। 'मोम के पंख' कविता में कवि आदमी के व्यंग्यपूर्ण विसंगत जीवन को रेखांकित करने में सफल रहा है। यहां प्राप्ति का अर्थ है निश्चित मृत्यु, मोम के पंखों द्वारा सूरजमुखी (?) के देश जाने की आकांक्षा इतिहास का व्यंग्य है, जबकि हमारी चेतना इस व्यंग्य को झेल रही है, उद्धरण-

"भग्न पहिया हाथ में ले, चक्रव्यूहों को चुनौती दे रहा विश्वास/
गलत सपनों को समर्पित, फटी मैली पताका-सी सांस!

कवि जीवन में घर कर गए संदेह, प्रश्न, भ्रम, शून्य, निरर्थकता आदि का चित्रण करता हुआ आदमी की संकल्प-शक्ति की सार्थकता के आगे भी प्रश्न-चिन्ह लगा देता है। विसंगत वातावरण में, जब भ्रम, संदेह, प्रश्न, झूठ और अर्थहीन कुहासा फैला हुआ हो तो दृष्टि साफ नहीं रह सकती, बिम्ब-सृष्टि अधूरी रह जाती है, दिशाएं खो जाती हैं, आकारहीन कुहासा और सदियों दूर तक फैली काई कीच ही रह जाती है। ऐसी स्थिति में आदमी में आत्म विश्वास, संघर्षचेतना, साहस, आवेश आदि का कोई महत्व नहीं रह जाता। कवि प्रश्नों को पुनः उछाल देता है और असमर्थता बोध की ओर संकेत करता है। आधुनिक मानव की संघर्षचेतना के समक्ष आने वाले अवरोधों का बड़ी कुशलता से चित्रण किया है, बिम्ब और काव्य-भाषा प्रभावित होने के बावजूद मौलिकता का अभाव नहीं।

3.1.3.2.1.5. डूबा हुआ शहर कविता में कवि पुनः पुराने रोमांटिक भावबोध के समाप्त हो जाने की ओर संकेत करता है कि सूर्यास्त को ढोने वाले कंधे टूट चुके हैं, राक्षस की कैद से राजकुमारी को छुड़ाने वाले नायक की रहस्यकथा और सूरज से आलोकित आकाश डूब

गए हैं, बस गरज रहे अंधकार की आवाज़ ही सुनाई पड़ रही है। कवि इस स्थिति को अभिव्यक्त करता हुआ कहता है कि इस डूब की कहीं कोई खबर नहीं छपती, न नेताओं के भाषणों में ही इसका जिक्र होता है जबकि आदमी दिन-प्रतिदिन अकेला होता जाता है, वह अपने-आप में खो गया है। इस अंधकार में सभी दिशाओं सहित परिचित-अपरिचित आकृतियां डूबती जा रही हैं। कवि को आदमी का अकेलापन स्वयं में भी अनुभव हो रहा है क्योंकि वह स्वयं को आम आदमी से अलग महसूस नहीं करता। उसका यह अकेलापन कोई नहीं पहचान रहा, कहीं इसका जिक्र नहीं हो रहा। इस अकेलेपन और निरर्थकता के विरुद्ध लड़कर कोई सूरजमुखी (?) नहीं बोया जा सकता जो इस अंधकार-दृश्य को नया संदर्भ दे सके, कवि असमर्थता का अनुभव करता है कि उसका चाकू उसी के भीतर उतर कर उसे लहूलुहान कर रहा है और उसकी शब्द-संपदा तथा काव्याभिव्यक्ति भी असमर्थ होती जा रही है-

''अंधेरे में सब कुछ डूब चुका है। केवल हाथ-पांव मारते हैं कुछ शब्द/सहायता के लिए पुकारते हुए/ मैं उन्हें डूबने से बचा नहीं सकता/ क्योंकि मैं नहीं हूं हाथ/ मैं नहीं हूं पांव/ मैं नहीं हूं मन और मस्तिष्क/ मैं केवल आंख हूं/ जिसके भीतर डूब गया है एक पूरा शहर।''

3.1.3.2.1.6. निष्कर्ष और उपलब्धि शशिशेखर तोषखानी की लगभग ये सभी कविताएं अंधकार के विरुद्ध सूरजमुखी (?) की कामना से सम्बद्ध हैं, इन कविताओं में अंधकार के रूप में विसंगत जीवनस्थितियां हैं तो सूर्य के रूप में कुण्ठित संघर्ष-चेतना, आत्म-विश्वास, साहस, अहं, आवेश आदि। कवि मानव मात्र की सनातन संघर्ष चेतना को बदली हुई जीवन स्थितियों में असमर्थ और निरर्थक मान रहा है।

नयी कविता में अस्तित्ववाद से प्रभावित कवियों ने जिन रुग्ण मनःस्थितियों को चित्रित किया है, वही स्थितियां यहां भी पर्दे के पीछे हैं और कवि नये प्रतीकों, रूपकों और नए-नए बिम्बों के माध्यम से इन स्थितियों के प्रति अपनी प्रतिक्रियाओं को अभिव्यक्त करने में सफल रहा है। भाव और शिल्प परस्पर गुंथा हुआ है। अच्छी कविताएं हैं पर सूरजमुखी का प्रतीक काव्य पंक्तियों में स्पष्ट नहीं।

3.1.3.2.2. मोहन 'निराश' की 1951-69 तक की कविताओं का संग्रह **कृष्ण मेरा पर्याय 1971 ई०** में प्रकाशित हुआ है परन्तु हमें उपलब्ध नहीं हुआ। यहां हम उनकी फुटकर प्रकाशित रचनाओं को ही ले पा रहे हैं। इन कविताओं का मूल्यांकन प्रस्तुत है।

3.1.3.2.2.1. अनपढ़े हस्ताक्षर कविता में कवि आदमी के कर्मों की निरर्थकता और मानव-मूल्य की उपेक्षा से पीड़ित है उसे लगता है कि इतिहास में आदमी के कर्मों का जिक्र बेशक रहे परन्तु उसके हाथों की छाप और हस्ताक्षर अनपढ़े, अनसमझे ही रह जाएंगे।

वस्तुतः रचनाकर्म में जूझ रहे व्यक्ति की मनोभावना और मन के भीतर की क्रिया प्रतिक्रिया बिना समझे ही छूट जाती है। आदमी की निरर्थकता पर व्यंग्य करता हुआ कवि लिखता है कि उसके हस्ताक्षर संग्रहालय में एक विशेष फुटनोट के साथ रखे जाएंगे परन्तु हस्ताक्षर अनपढ़े ही रह जाएंगें।

3.1.3.2.2.2. हम बौने कविता में पुनः कवि आदमी की निरर्थकता, असमर्थता और बौनेपन को व्यक्त करता है, कवि को लगता है कि ज्यों-ज्यों हम पहाड़ी चोटी को छूने की आकांक्षा करते हैं अन्तर बढ़ता ही जाता है–

''अक्षर टूटते हैं जुड़ते शब्द। और आकाश-पृथ्वी के बीच/ अन्तर बढ़ जाता है।''

कवि 'अक्षर टूटते हैं जुड़ते शब्द' पदों में छिपे अर्थ को थोड़ा और खोल देता तो कविता दुरूहता से बच जाती।

3.1.3.2.2.3. सभी डूब गये गीत में कवि कबीर वाणी से प्रभावित प्रतीत होता है, सभी डूब गए हैं या ऊब गए हैं, या खूब गए हैं (?) केवल वही एक है जो नदी में बहाए दीप की तरह बह गया है., पहेली-चक्कर में रास्तों-राहों के अन्तरीप (?) की तरह रह गया है।

3.1.3.2.2.4. बासी बात कविता में कवि भावगत वैपरीत्यों को परस्पर सटाता हुआ जीवन में फैल गई विसंगति और अर्थहीनता को व्यक्त करता है। उसे लगता है कि शब्द, अर्थ यानी हर बात बासी हो गयी है, वितस्ता का पानी वुल्लर के पानी की तरह ठहर गया है, सुधा ज़हर हो गयी है, अपने ही घर में आदमी प्रवासी (अजनबी) हो गया है, सभी चेहरे इश्तिहारों की तरह हो गए हैं, स्वप्न यहां वहां सोए कुत्तों की तरह सो गए हैं।

विपरीत स्थितियों को कवि साथ-साथ तो बिठाता है परन्तु इस स्थिति वैपरीत्य का न कारण पकड़ता है न उस पर चोट करता है, कहीं-कहीं व्यंग्य अवश्य करता है। कवि ने आदमी के अन्तःविभाजन को भी देखा है।

''अर्थ पत्ते हैं चिनारों के हुये अंगार हैं। इस विभाजित अंगना की बेल पर पतझार है।''

लय ताल और नये भावबोध की समझ यहां दर्शनीय है।

3.1.3.2.2.5. सूरज की नीयत कविता में कवि ने सूरज की नीयत पर शंका और संदेह को व्यक्त किया है, उसे लगता है कि सूरज की नीयत में चोर आकर बैठ गया है, जो न जाने हमारे जीवन की किस सुविधा, किस प्रसन्नता, किस रोमांच, किस किस्से-कहानी, किस सपने, किस शुभ कामना, किस आकांक्षा-आकाश को चुरा कर ले जाए। अतः अपनी खिड़कियों की सांकल चढ़ा लो, द्वार बंद करके भीतर बंद हो जाओ।

इस विचार के बहाने कवि ने कश्मीर के लोक-जीवन और शंका-आकांक्षा का अच्छा और विस्तृत चित्रण किया है। यह चोर सूर्य क्या-क्या चुरा सकता है। एक उद्धरण देखें-

''या हो सकता है वह ले जाये/ तुम्हारी दृष्टि, बोध, आस्था, विश्वास तुम्हारा अस्तित्व/ और छोड़ जाये।/खंडहर बनाये घर में/तुम्हारे इन्सान का भग्नाविशेष।''

परन्तु कवि सूरज की चोर वृत्ति को ही उद्घाटित कर पाया है, सूरज क्या है ? यह नहीं स्पष्ट करता, शायद वह आदमी की सर्वग्रासी वृत्ति का प्रतीक हो।

3.1.3.2.2.6. किसी और को अब आवश्यकता नहीं है मरने की कविता में कवि कोलाज-शिल्प और 'अकविता' से प्रभावित प्रतीत होता है। कवि को लगता है कि वह मर

चुका है और शहर, सौध, प्राक्-आदिम राजधानियां, स्काइस्क्रैपर, कम्प्यूटर, 'सुदामा-वृत्त', कौरव, अंधी बनी गांधारी, लाल तिकोन नुमा घर, औपनिषदि- अहसास (?) आदि जो चमड़ी के नीचे रेंग रहे थे मानों नींद की गोली खाकर सो गये हैं, राहों के स्फिनिक्स सड़कों को निगल गए हैं (?)। इन बेतरतीब स्थितियों को चित्रित करता हुआ कवि नींद की गोलियां खाए व्यक्ति की मन:स्थिति और दृष्टि-भ्रम (illusion) को अभिव्यक्त करता जाता है। कविता की अंतिम पंक्तियों में कवि मूल कथ्य को समेटता है- नशेड़ी पीढ़ी के खण्डित असम्बद्ध सपनों को अच्छी कुशलता से पिरोया गया है परन्तु 'क्या यह कविता है?' का प्रश्न उठता है, मात्र चौंकाहट, असम्बद्ध बिम्ब, आत्म प्रलाप, आत्महत्या की वृत्ति और जुगुप्सा का चित्रण हिन्दी कविता में अकवितावादियों की ही देन है, कवि मोहन 'निराश' की कविता पर इसका घातक प्रभाव पड़ा है।

3.1.3.2.2.7. इतिहास के हाशिये से कविता में कवि ने आम आदमी की विवशता का अच्छा चित्रण किया है। कवि को लगता है कि उसे मौसम-बेमौसम अगवा करके बंद कमरों में छोड़ दिया जाता है और उसे अपना आप बलात्कृत प्रतीत होता है। ऐसी स्थिति में आदमी अपनी गर्भवती आत्मा को अखबारी सुर्खियों का जुआ पहनाकर स्वयं भी अगुवाकर्ताओं के साथ हो जाता है। कवि ने अंतिम पंक्तियों में व्यंग्य किया है-

''इस हरामज़ादी का गर्भ गिरा दो । अब के इसी को ले भागना है। इसी के साथ बलात्कार करना है।''

3.1.3.2.2.8. निष्कर्ष और उपलब्धि कुल मिलाकर मोहन 'निराश' की इन कविताओं में 'नयी कविता', 'अकविता' और इनसे जुड़े शिल्प और भाव पक्ष का एक आरम्भिक रूप मिल जाता है। कविता में दुरूहता है, प्रतीक अस्पष्ट हैं, वाक्यावलियों में उलझाव हैं।

3.1.3.2.3. डॉ० रत्न लाल 'शान्त' की 'हमारा साहित्य' में प्रकाशित कुछ रचनाएं 'खोटी किरणें' संग्रह से पुन: प्रकाशित हैं। यहां हम इन रचनाओं को छोड़ कर 'हमारा साहित्य' में प्रथमत: प्रकाशित शेष रचनाओं को ही मूल्यांकन के लिए ले रहे हैं।

3.1.3.2.3.1. उठती नजरों को बांध रहा गीत में कवि रत्न लाल 'शान्त' वर्तमान की दु:खद स्थिति में सुखद अतीत का स्मरण करता है। प्रकाश पर अंधकार की विजय की आशंका से ग्रस्त कवि को लगता है कि रंगों का जुलूस बढ़ा है परन्तु कवि-प्रसंग पीछे छूट गया है कोई उजले रंगों को ठण्डे हाथों से बुझा गया है खुले आकाश की कल्पना का विश्वास तक नहीं रहा। वह मानता है कि नियति निर्भय है, जिसके समक्ष मलयवातास और इतिहास की खिड़की नहीं खोली जा सकती। स्थिति यह है कि आकांक्षाओं के सुन्दर ऊंचे पर्वत चीख रहे हैं, इश्तिहार के अक्षर कालिख पाट रहे हैं। इस स्थिति में धूप में कुछ सांस लेने की आदत भूल जाएगी।

''चिपकाए विज्ञापन मुंह पर/कुछ कहना चाहे वर्तमान/लेकिन मेरे दरवाजे पर हल्दी में आंक गई अक्षर-/आंधी में तोल रही है पर रेखा एक प्रकाश की।''

3.1.3.2.3.2. संग तेरी सुरभित सांसों के गीत में कवि 'शान्त' प्रेम की अनुभूति को व्यक्त करता है कि जब सांसों के संग सपने उड़ जाएं, आंजुरी में बांधे बादल खिसक जाएं, आंसू पलकों की रेशमी मुस्कराहट में छिपकर सिसकें, होंठ पर उंगली धरे किसी की प्रतीक्षा में मौन पल रहा हो, भ्रम, छायाएं मन से खेल रही हों तब समझना मेरी आवाज़ तुम्हारे तन पर छा रही है-

''तभी समझना मेरी आवाज़ छा रही तेरे तन पर/एक उदास अनमने मन पर''

और कवि कहता है कि प्रियतमा के सपनों की बिखरी चांदी उसने अपनी झोली में चुरा रखी थी, जिसे उसने आतिथ्य देने की अपेक्षा अनजाने ही अश्रुकणों में गिरा दिया था।

3.1.3.2.3.3.. निष्कर्ष और उपलब्धि इन कविताओं में 'शांत' की कविता का एक नया तेवर सामने आया है। अच्छी कविताएं हैं।

3.1.3.2.4. 'पृथ्वी नाथ 'मधुप' का भावबोध गीतों में संक्रान्त की स्थिति में है। न पूरी तरह से नया न परम्परा प्राप्त । यहां दोनों रचनाओं का मूल्यांकन प्रस्तुत है-

3.1.3.2.4.1. कौन छिपा है मुझमें गीत में रहस्यवादी चेतना धीरे-धीरे जीवन की घुटन, बिखराव, अजनबीपन और टूटन की ओर बढ़ गई है। कवि अभी यह नहीं समझ पा रहा कि उसमें ऐसा कौन छिपा है जिसने उसका सब कुछ छीन लिया है, माटी के इस घट को क्यों उसने चौराहे पर ला पटका है, जीना दूभर हो गया है 'मैं' अनेक 'परायों' में बदल गया है, मेरा 'मैं' कैसे नजर में आए पता नहीं, जबकि सांस, काया, हृदय की धड़कन वही है। गीत में इस अस्तित्ववादी अवसाद को समेटते हुए कवि लिखता है-

''देह हृदय दोनों ही अब तो/चलती जीवित कब्र हो गए/दफन हुए जाते हैं
इन में/क्षण-क्षण मुर्दे नए औ नए।''

3.1.3.2.4.2. एक तीखी बेकरारी-सी हृदय में गीत में भी कवि उपुर्यक्त इसी अनूभूति को ही स्पष्ट करता है । दिल में दर्द चुभ रहा है, वह गलत संदर्भ में पिस रहा है, जैसे कि फूल का पौधा दह रहा है, अस्तित्व निरर्थक हो रहा है।

''ऊब उबकाई घुटन बिन कुछ नहीं है। बस निरर्थक लग रहा अस्तित्व अपना।''

3.1.3.2.4.3. निष्कर्ष और उपलब्धि इन दोनों रचनाओं में 'मधुप' अस्तित्वादी मनोवृत्तियों के निकटतर हुआ है और निरर्थक हो रहे अपने तथा मानव जीवन के प्रति चिंतित है। फिलहाल ये साधारण कविताएं हैं।

3.1.3.2.5. डॉ० रमेश कुमार शर्मा की तीन रचनाएं यहां प्रकाशित हैं। इन कविताओं से यहां की 'नयी कविता' को नये स्वर और तेवर मिले हैं। मूल्यांकन प्रस्तुत है-

3.1.3.2.5.1. स्वाद कविता में कवि ने मानव-मात्र के व्यवहार में आ गए छल-छद्म, करनी-कथनी में विसंगति तथा उसमें आ गई बेईमानी पर तीखी चोट की है। कवि आवश्यकता से अधिक मीठे व्यवहार से ऊब गया है। शहद-सी मीठी बातों से उसे सड़ांध की बदबू आने

लगी है क्योंकि मिठास के मूल में जहरीली कड़वाहट है। कवि इस सब वस्तुस्थिति पर चोट करता है और कहता है कि ऐसी मिठास से कड़वी, तीखी, सीधी, ईमानदार बात अच्छी है, जिसमें दोस्ती का दिखावा तो नहीं होता। कवि दोस्ती और प्यार की अपेक्षा भी नहीं करता क्योंकि ये गुण आदमी के खून और स्वभाव में रहा ही नहीं। वह चाहता है कि आदमी का असली रूप सामने रहे, वह प्यार की दिखावटी खाल उतार फैंके। कवि का कहना है कि आदमी को अपना स्वभाव बदलना चाहिए, अब उसके विसंगत स्वभाव और छदम्-वृत्तियों से ऊब हो लगी है।

"मेरी पीठ में से निकाल कर/अपनी दोस्ती के छुरे को/मेरे सीने में उतारो/मैं उस क्षण/ तुम्हारा मुंह देखना चाहूंगा! देखना चाहूंगा,/ कि क्या/उस वक्त तुम-मेरी नज़र से नज़र मिला सकोगे ?"

कविता गद्यात्मक हो गई है, जो नये मूल्यबोध के विकास की प्रेरणा देती है और आदमी के दोगलेपन पर तीखी चोट करती है। कवि ईमानदारी से मिले विष (?) पर भी संतोष करने के लिए तैयार है।

3.1.3.2.5.2. शिलाओं के अंकुर कविता में कवि की भाषा रोमांटिक बोध से ग्रस्त हो गई है। जिसमें थकन, झुंझलाहट, घुटन, काम-दमन की अनेक अनुभूतियों को कुशलता से पिरोया गया है । इस घुटन, थकान, झुंझलाहट, काम-दमन की वृत्तियों को भी वह महान समझता है और विश्वस्त है कि इन्हीं से जीवन अग्रसर होता है। जीवनाकांक्षा बलवती होती है, कविता बिम्बधर्मी हो गई है। अंत की पंक्तियां देखें-

"बिलपती शिलाओं के अंकुर जब/घूंघट खोल,/अपनी मुस्कानें बिखराते हों-/ भीम वट-शाखों को लज्जित कर। "

3.1.3.2.5.3. अहरबल का पत्थर -एक स्वगत कथन कविता में कवि ने अहरबल के पत्थर के माध्यम से मानव-जीवन की गाथा को बहुत कुशलता से पिरोया है। पत्थर युगों तक अटका पड़ा अजस्र जलधारा की धड़कन का संगीत सुनता सहता मौन खड़ा था, उसने युग-युगों से गोरे, सलज्ज, मिलन-रोमांचित सैलानियों की मृदु मंथर चरण चापों का सप्रेम सुना था। वह विवाह वेदी पर घूमती नव-वधू के झंकृत मन, यौवन भार, मन के भीतर की प्रेम फुहार, उमंग धार, लज्जा के बांध से उसकी टकराहट, संगीत, मन की मरोर और तन की कसक को साश्चर्य देखता, गुनगुनाता, मुग्ध-मौन पड़ा रहा था।

कवि ने यहां नारी के मन-तन और लाज, उमंग का बहुत ही सुंदर और भावोत्कर्ष से पूर्ण चित्रण किया है। कश्मीर की डरावनी वादियों का सुंदर चित्रण करता हुआ कवि जीवन-मूल्यों में पैदा हो रही विसंगति को बिम्बित करता है-

"किसी की पीठ में/छुप कर घुस जाने वाले/दोस्त के छुरे-सी जालिम बेदर्द चीखें।"

"उल्लू की व्यंग-भरी पुकार/बाज़ की झपट, निर्दोष पक्षी का, बेबस फड़फड़ाना, दम तोड़ना/ इन सबको सुनता, सिहरता, भयभीत व्याकुल, मौन मैं पड़ा रहा, बेबस मैं पड़ा रहा।"

पत्थर के माध्यम से आदमी की सम्पूर्ण संघर्ष-यात्रा के अकारथ चले जाने की पीड़ा को कवि करुणार्द्र होकर व्यक्त करता है-

"युगों की यात्रा-मैं पूरी कर चुका था/तुमने वहीं पहुंचा दिया/जहां से चला था/ फिर.........। टकराता, कराहता/अपनी चोटों से घाटी को गुंजाता/लहूलुहान, बेबस मैं/वहीं पहुंच गया हूं/जहां से चला था।"

कवि रमेश शर्मा कि यह उत्कृष्ट कविता है, जिसमें नारी-सौंदर्य, बीहड़ जंगलों और रास्तों के बिम्ब अत्यन्त विशाल और भावोत्कर्षकारी हैं।

3.1.3.2.6. सतीश चन्द्र सांख्यधर ने नये भावबोध को बाखूबी चित्रित किया है। यहां उनकी एक गीत रचना प्रकाशित मिलती है, जिसका मूल्यांकन प्रस्तुत है।

3.1.3.2.6.1. झील दरपनी में कवि को झील के तट पर की सन्ध्या, रात्रि और प्रात: दुखदायी प्रतीत होती है, किनारे की कुटिया सिमटी, सिकुड़ी-सी है, झील पर कुहासा छाया हुआ है, अधटूटी जर्जर, मंझोली-सी खटिया पर हांफ-हांफ कम्पती जवानी है, जिस पर शाम का धुंधलका धुंआंसा ठहर गया है।

गीत के सभी बिम्ब सुंदर, तरल और सुगठित हैं, परन्तु भाव और कथ्य अमुखर रह जाता है। अनुभूति का तीखापन बिम्बों को तो समेटता है परन्तु अभाव, वियोग या ऊब आदि अस्पष्ट रह जाते हैं। गीत का प्रात: सम्बन्धी अंतिम पद देखें-

"बनजारिन पूर्व की अलाव सुलगा गई/ जलतल पर सुनहरी मछरियां उतरा गईं/ धुंधआती गीली लकड़ियों-सा ढीठ/ मुंह चिढ़ाता सवेरा/ कुछ और कुहरा गया! दरपन सी झील पर / कुहासा गहरा गया।"

कवि का भावबोध बदल रहा है, शायद इसी कारण झील के किनारे की प्राकृतिक सुषमा से वह उदासी, अभाव , विरह, ऊब और अस्पष्टता की दुखद अनुभूतियों को ग्रहण कर रहा है। उत्कृष्ट गीत है।

3.1.3.2.7. पृथ्वीनाथ 'पुष्प' तीसरे दशक से ही रचना-कर्म कर रहे हैं। यहां इनकी एक कविता 'मरने से पहले' का मूल्यांकन प्रस्तुत है।

3.1.3.2.7.1. मरने से पहले कविता में कवि समाज, राष्ट्र, धर्म, सत्य, मानव- मूल्य के हित में जीवन जीने की प्रेरणा देता है। जीवन चाहे क्षण भर, दम भर का ही क्यों न हो सार्थक होता है। मरने से पहले ही मरने का भय लिए घुट-घुट कर जीना, जीना नहीं मात्र सहना है और अंतिम बार मरने से पूर्व बार बार मरने, झर जाने, जी को मार कर झर जाने के समान है। कवि जन-कल्याण में रत व्यक्ति के मरण को ही महत्वपूर्ण मानता है क्योंकि उसके अवशेषों का चुम्बन करके व्याकुल धरती भी उर्वर, श्यामल हो उठती है।

महात्मा गांधी की जन्म शताब्दी के उपलक्ष्य में लिखी इस श्रद्धांजलि में कवि का शिल्प नवीन होते हुए भी अप्रस्तुत और विचारपक्ष परम्परागत है। हां, क्षण भर का जीवन भी सार्थक

हो उठना आदि का यह चिंतन अस्तित्ववादियों से ग्रहण किया गया प्रतीत होता है। अनुभूति की अपेक्षा विचार महत्वपूर्ण हो उठा है, विम्ब विरल हैं पर सार्थक और सशक्त हैं।

3.1.3.2.8. डॉ० अयूब 'प्रेमी' की इस दशक में 'हमारा साहित्य' में दो रचनाएं प्रकाशित हुई हैं। उनका कविता-संग्रह अनुपलब्ध है। यहां इन्हीं दो कविताओं का मूल्यांकन प्रस्तुत है।

3.1.3.2.8.1. इन्द्रजाल में कवि ने विसंगत और उपेक्षित होते जा रहे जीवन की गति का चित्रण किया है। जैसे विडम्बना यह है कि टूटे बाजुओं वाला पक्षी-सा पूरा दिन व्यर्थ चला गया है, उसकी आकांक्षा, योग्यता, सन्निधियां व्यर्थ खो गई हैं, वह जीवन-वाक्य में अप्रयुक्त पद जैसा है। परन्तु इस उपेक्षा, निरर्थकता और पराजय के बावजूद जीवन गतिमान रहता है और थके लुटे से फिर लुटने की साध लिए लोग इन्द्रधनुषी सपने बुनते रहते हैं। साधारण कविता है।

3.1.3.2.8.2. कुंछ उजले कुछ धुंधले साये में कवि को लगता है कि झींगुरों की तान में घुटन भरा दर्द उमड़ आया है, अतीत के जुगनू तड़प-तड़प कर मरने लगे हैं, खामोश नभ थरथरा रहा है और प्रश्नों के बुलबुलों का मन ने गुनगुनाकर उत्तर दिया है, मौन ध्यान मग्न हो गयी है, इस तरह की विसंगतियों के बीच से जीवन के प्रति ममता, करुणा आदि के भावों को उजागर करने का यत्न किया गया है, कविता साधारण है, अनेक अन्तर्विरोधों से ग्रस्त! कवि का भावबोध रोमांटिक है।

3.1.3.2.9. मान भार्गव इस दशक का नया लेखक है। इसकी दो कविताएं 'हमारा साहित्य' में प्रकाशित हैं। जिनका मूल्यांकन निम्नलिखित है।

3.1.3.2.9.1. याद में कवि का भावबोध रोमांटिक है शिल्प नया अपनाया है। अनुभूति अमुखर रह गई है-

> ''तुम्हारी याद/ जब भी आई/ झील में विष घुला/ नदी में आग लगी/ दर्द का संगीत उभरा/ सागर के घाव खुले।''

3.1.3.2.9.2. संघर्ष कविता में कवि ने नक्सलवाड़ी क्रान्ति से बिम्ब ग्रहण किया है। कवि का आह्लाद, संघर्ष-चेतना और त्रासद अनुभूतियां विचारधारा से प्रतिबद्ध हैं। साधारण कविता है।

3.1.3.2.10. नये हस्ताक्षर 'हमारा साहित्य' के वार्षिक अंक 1970-71 में कुछ नये कवियों की प्रथम रचनाएं प्रकाशित हुई हैं परन्तु अभी ये सभी रचनाएं कच्ची और साधारण हैं, इनका ऐतिहासिक मूल्य ही कहा जा सकता है, काव्य-गुणों और जीवन-दृष्टि का यहां पूर्णतया अभाव है। ये कविताएं हैं-

श्री मोहन सिंह सासन- 'उसे देखा है'

श्री प्रिंस शर्मा- 'धूल'

श्री प्रकाश प्रेमी- 'यह सम्भव नहीं'

श्रीमती रमा बडयाल-'कसक'

3.1.4. प्रबन्ध काव्य : सातवां दशक

इस दशक में मात्र एक प्रबन्ध काव्य 'शिवालोक' प्रकाशित हुआ है। कवि ब्रह्मचारी शिव प्रसाद त्रिपाठी ने शिव के प्रति अपनी भक्ति भावना को यहां काव्याबद्ध किया है। प्रस्तुत काव्य का मूल्यांकन निम्नलिखित है-

3.1.4.1. शिवालोक महाकाव्य चौदह आलोकों और 85 शीर्षक उपशीर्षकों में विभाजित है। जिसमें भगवान शिव के महत्व को 'शिव पुराण' के आधार पर अभिव्यक्त किया गया है। महाकाव्य का माहात्म्य लिखते हुए कवि लिखता है

''मद-मोह-लोभ-रिपु, काम-क्रोध,/ होते हैं जिसको निरख नष्ट।/

वह शिवालोक अविकल विलोक, / होते हैं सकल विनष्ट कष्ट।''(पृ० 2)

कवि का मत है कि शिव-चरण में जाने से आधि-व्याधि, सब विघ्नों का निवारण होता है, सभी प्रकार की सुख-शान्ति मिलती है, मनोरथ पूर्ण होते हैं।

कवि ने महाकाव्य की शास्त्रीय मांगों को पूरा करने का यत्न किया है, शिव, गणेश, देवी आदि का मंगलाचरण गाने के बाद 'केनोपनिषद', 'लिंग पुराण' आदि से प्रमाण जुटाकर शिव को सुरों, ब्रह्मा और विष्णु आदि से सर्वोच्च सत्ता के रूप में प्रतिष्ठित किया है। शिव के प्रति प्रणति भाव लिए कवि प्रार्थना करता है कि उसे अप्रतिम प्रतिभा मिले, अज्ञान दूर हो, मन उन्नत हो, मति कुशाग्र हो, वह चारू चमत्कारिक रचना कर सके।

वह वरदान चाहता है कि वह स्वतंत्र रहे, कभी दीन दरिद्र न रहे, पवित्र, सम्पन्न देश और कुल में ही उसे पुनः जन्म मिले और कभी नारी देह न मिले-

''नारी-देह कभी, मत देना। कभी किसी का बनूं न दास।'' (पृ 16)

कवि ने गंगावतरण-क्षेत्र के प्राकृतिक सौंदर्य का वर्णन करते हुए 'कामायनी' के प्रभाव को अच्छी तरह पचा लिया है-

''था ऊपर-अविचल-सघन तुहिन, / या अधः तरल चल जल पवित्र। थे एक तत्व के दो स्वरूप, /शिव-जीव-तत्त्व सन्निम विचित्र॥''

कवि ने प्रकृति चित्रण में विशेष रुचि ली है, भाषा सामासिक है। महाकाव्य में उमा की तपस्या के अनेक क्रमोत्थान बड़ी कुशलता से चित्रित हैं, शिव को वर रूप में पाने के लिए तप में लीन उमा का मन जब त्रिगुणातीत हो जाता है तब वह शिव के आगमन के प्रति आश्वस्त हो जाती है।

उधर शिव दक्ष-यज्ञ में सती के भस्म होने के बाद यज्ञ ध्वंस करके गंगावतरण-क्षेत्र में कुछ गणों सहित आते हैं और समाधिस्थ हो जाते हैं। वह इस समाधि अवस्था में पूर्णतया स्वात्म मात्र के प्रति रत हैं। शिव समाधिस्थ हैं जबकि सुर असुरों से त्रस्त हैं, तारकासुर ने इनका सुख

राज्य छीन लिया है, वह शिव से अभय चाहते हैं परन्तु शिव के क्रोध से भयभीत, शिव को समाधि से जगाने से कतराते हैं। तब इन्द्र कामदेव और वसंत से मदद मांगते हैं। वसंत के प्रभाव से प्रकृति प्रफुल्लित हो जाती है और काम देव के प्रभाव से सारा जीव-जगत कामोद्वेलित होकर प्रणयाकांक्षी हो उठता है, शिव पर भी कामदेव के बाणों का प्रभाव होता है-

''काम-देव ने शिव-समीप जा, / देवों का उर-धर कल्याण ।

पुष्प-धनुप में काम-बाण रख, / छोड़े शिव को बना निशान ।'' (पृ० 26)

कुप्त होकर शिव कामदहन कर देते हैं और स्वयं अन्तर्धान हो जाते हैं, उमा शिव के वियोग में सन्तप्त हो जाती है और तन-मन इन्द्रियों और मति को एकाग्र कर शिव के ध्यान में लीन हो जाती है। इतने में शिव भी उमा से प्रभावित हो चुके हैं और कैलाश में जाकर नारद का स्मरण करते हैं और उन्हें उमा की परीक्षा लेने और उत्तीर्ण होने पर शिक्षादीक्षा देने के लिए भेजते हैं। 'उमा परीक्षा' शीर्षक में कवि की रुचि काफी जमी है, नारद शिव के विरुद्ध उमा को बहुत कुछ कहते हैं, कहते हैं कि शिव के पास न घर है न द्वार है, परिवार भी भूत-प्रेतों का ही है, शिव से तुम्हें कुछ नहीं मिलेगा। परन्तु उमा नारद को दुत्कार देती है और अपनी जिद्द पर टिकी रहती है।

'गिरिजा का अति कठिन तप' शीर्षक में कवि ने तप साधना के अनेक क्रमों को उद्घाटित किया है। अंततः उमा तीन सहस्र वर्ष तप में लगा देती है और अतुलनीय तप बल प्राप्त कर लेती है, अग्नि देव भी उनके समक्ष पराजित हो कर उन्हें मनचाहा वर प्राप्त कर लेने का वर देते हैं। उमा सर्वभूत विजयिनी हो जाती है। फिर भी शिव स्वयं वृद्ध विप्र के वेष में आकर शिव की अपेक्षा किसी अन्य देवता के वरण का परामर्श देते हैं। उमा पुनः कुपित हो उठती है। वह शिव द्रोही विप्र को डांट देती है।

''सावधान अब और कहा कुछ,। तो तेरी जिह्वा संस्तब्ध।

कर दूंगी शंकर निंदा का, / हो जाएगा फल उपलब्ध।'' (पृ० 39)

विप्र वेषधारी शिव का मन उमा को आशीर्वाद देता है और वह आकाशवाणी सुनती है कि उसे शिव की प्रीति प्राप्ति होगी।

उमा पुनः तप में लीन हो जाती है। फिर ब्रह्मचारी के रूप में शिव प्रकट होते हैं, उनका रूप मनोहर है। उनके शंख का नाद सुनकर जब उमा समाधि से उठती है तो उन्हें देख कर उनका मन आनन्द मग्न हो जाता है। वह ब्रह्मचारी की पूजा अर्चना करती है और तप बल के कारण संकल्प मात्र से ही मनचाही वस्तु प्रस्तुत कर ब्रह्मचारी बटु का सेवा-सम्मान करती है। ब्रह्मचारी उन्हें शिव प्राप्ति का वरदान देते हैं। उमा आनंदित मन से अपने परिवार जनों के बीच आ जाती है।

सुर शिव का स्तवन करते हैं कि उन्होंने सर्वकल्याण के लिए विषपान कर लिया था, जब कि हरि स्वयं विष से डर रहे थे। शिव स्तवन करते हुए देवता तारकासुर से उनकी रक्षा करने

का निवेदन करते हैं और चाहते हैं कि शिव विवाह की स्वीकृति दे दें। तब उनके कल्याणार्थ शिव विवाह की स्वीकृति दे देते हैं और देवता उमा के पिता हिमाचल को यह सुख- संदेश देते हैं।

हिमाचल राजा सपरिवार प्रसन्न हो जाता है। कवि ने हिमाचल के दो रूप दिए हैं- स्थावर और जंगम। । जंगम रूप मानवीकृत है, इसी तरह अन्य पर्वतों, नद - नदियों का मानवीकृत रूप प्रस्तुत किया गया है। हिमाचल की पत्नी मैना, पुत्र मैनाक, बन्धु सुमेरू आदि हैं। हिमाचल के पास मणियों की खान है, ऋषि, मुनियों, तपस्वियों की यह साधना स्थली है। हिमाचल विवाह की लग्न-तिथि निश्चित कर शिव के पास भेजते हैं। शिव नारद का आह्वान कर सभी लोकों और सुरों, असुरों, प्राणियों को विवाह का निमन्त्रण भेजते हैं।

बारात के लिए वायुयान बनाए जाते हैं। कवि बारात की साज सज्जा, शिव के स्वरूप वर्णन, वस्त्राभूषण, हिमाचल राजा के नग–अलंकरण, शिव के दर्शन के लिए आए लोगों के कोलाहल और उनकी मनोकामनाओं के वर्णन में खो जाता है। काफी विस्तृत वर्णन किया गया है।

हिमाचल दुल्हा रूप में आए शिव की पूजा अर्चना करते हैं, कवि के भक्ति- उद्गार यहां प्रस्फुटित हुए हैं। विवाह मण्डप में सभी ऋषि–मुनि - सुर - असुर उपस्थित हैं, ब्रह्मा स्वयं ऋषियों द्वारा विधि–विधान और कुलाचार के अनुसार विवाह करवाता है। इस लोकापवाद का निवारण किया जाता है कि शिव भूखे नंगे, निर्धन, आवासहीन हैं, बल्कि उन्हें सभी सिद्धियों का स्वामी माना जाता है। विवाहोपरान्त शिव शम्भु तीर्थ की रचना करते हैं, जिसमें हर प्रकार की सुख सुविधा है, प्राकृतिक सौंदर्य भी है।

'रति' चाहती है कि उसके पति 'काम' को क्षमा किया जाए, पतिहीना 'रति' की करुण पुकार पर शिव द्रवित हो जाते हैं और 'काम' को पुनर्जीवन देते हैं और उसे प्रत्येक प्राणी के हृदय में सूक्ष्म रूप में बसे रहने का वरदान भी देते हैं।

शिव विवाहोपरान्त बारात सहित कैलाश लौटते हैं । विदाई पूर्व पार्वती की मां और पिता की मनोव्यथा का अच्छा चित्रण हुआ है। कवि शिव लोक के प्राकृतिक सौंदर्य और जड़ी बूटियों का चिकित्सीय दृष्टि से महत्व बताता हुआ, मणियों, रत्नों आदि का वर्णन करने लगता है। वह मानसरोवर की सुन्दर प्राकृतिक छटा का मनोहारी वर्णन करता है। शिव लोक का वर्णन करते समय कवि 'कामायनी' के रहस्य और आनन्द आदि सर्गों से विशेष प्रभावित है, वह रामचरितमानस के उत्तरकाण्ड से भी प्रभावित है।

अंतत: शिव के पास विधि-हरि-इन्द्र और अन्य सुरगण आकर निवेदन करते हैं कि तारकासुर से उनकी रक्षा की जाए। शिव एवमस्तु कह कर उमा को अपना शुक्र प्रदान करते हैं, अग्नि समान दीप्त शिव–शुक्र असहनीय है

''असहनीय शिव–शुक्र उमा ने, । अग्नि–देव को किया प्रदान।

अग्नि-देव ने अग्नि कुण्ड में / जाकर स्थापन किया स-मान ।'' (पृ० 135)

इस तरह कार्तिकेय का जन्म होता है।

फिर कवि कार्तिकेय के सौंदर्य, शील, शक्ति का वर्णन करता है। कार्तिकेय को तारकासुर के विरुद्ध देव-संग्राम में सेनापति बना दिया जाता है। कार्तिकेय के साथ-साथ वीरभद्र और अन्य शिवगण भी युद्ध में भाग लेते हैं। तारकासुर महाबली और मायावी है तो देवसेना भी कम बली नहीं है। देवसेना तारकासुर की सेना के छोटे-मोटे दुर्ग जीतती चलती है और युद्ध की दृष्टि से उचित क्षेत्र में शिविर डालती है।

तारकासुर को तप के फलस्वरूप विधि से वरदान मिला है कि वह युद्ध में अपराजित रहेगा और उसे सुर-असुर, विश्व का वीर-वर्ग नहीं मार सकेगा। इसी कारण वह दुर्दम, अत्याचारी हो गया है। देवों का सारा ऐश्वर्य उसने छीन लिया है। वह मनुज-मांस भक्षक है, नारी शील अपहर्ता है, पशु-पक्षियों को भी खा जाता है, उसके अनुयायी असुर भी इसी कुवृत्ति के हैं, उसने घोषणा कर रखी है कि विवाह से पूर्व प्रत्येक कन्या को दो रात्रि के लिए उसे उपहार स्वरूप भेजा जाए। उसके अत्याचारों से सारा जीवजगत त्राहि-त्राहि कर रहा है। इसीलिए शिव देवताओं की पुकार पर करुणार्द्र हो जाते हैं।

सात दिन लगातार युद्ध चलता रहता है जिसमें वीरभद्र और विधि बारी-बारी से तारकासुर से लड़ते हैं और थक जाते हैं। युद्ध में अनेक दानव मृत्यु को प्राप्त करते हैं। तारकासुर भी इस पराजय से दुखी और भयभीत हो जाता है और अपने चुने हुए वीरों सहित युद्ध क्षेत्र में आता है। हरि के साथ युद्ध करते हुए तारक माया का उपयोग करता है। अंततः कार्त्तिकेय युद्ध क्षेत्र में उतरते हैं और तारकासुर के हज़ारों हाथों के खण्ड खण्ड कर देते हैं और तारकासुर का वध कर देते हैं। इस पर सभी दिशाएं प्रसन्न हो उठती हैं।

कार्त्तिकेय को सुर-सेना सम्मान सहित कैलाश पर शिव के पास ले जाती है, सभी शिव के दर्शन कर कृतकृत्य होते हैं। कार्त्तिकेय के सम्मान में सुर बालाएं नृत्य करती हैं। शिव की पूजा अर्चना में शिव के प्रति देवों की भक्ति भावना का अच्छा चित्रण है। अंत में कवि 'शिवालोक' रचना का महत्व प्रस्तुत करता है-

> ''जो इसे करेंगे पठन श्रवण / उनके अविकल दुख दुरित द्वन्द्व। सर्वथा दूर होकर रहेंगे।
> सब प्राप्त विभव सुख शिव अमन्द।'' (पृ० 173)

कवि ब्रह्मचारी शिवप्रसाद त्रिपाठी वृत्ति से ही साधु हैं, वह ब्रह्मचारी, हठयोगी और जड़ीबूटी के ज्ञाता चिकित्सिक हैं। अतः उनकी मनोवृत्ति लोकोत्तर आनन्द में रमी है। यद्यपि वह महाकाव्य की काव्य-शास्त्रीय आवश्यकताओं की पूर्ति करने का यत्न करते हैं। परन्तु उनका मन लोकोत्तर आनन्द में ही रमा है। उन्होंने तपस्विनी उमा और लोक-कल्याणकारी शिव के रूप का कुशल चित्रण किया है। प्रकृति का चित्रण लोकोत्तर आनन्द के लिए ही हुआ है। बारात और विवाह मण्डप के आयोजन के रूप में शिव की समृद्धि और सकल सिद्धियों के वर्णन में उनके श्रेष्ठत्व को प्रमाणित करने का प्रयास दृष्टिगोचर होता है। शिव को सर्वश्रेष्ठ सत्ता के रूप में स्वीकार कर उनके करुणाकर रूप के प्रति भक्ति-भावना को प्रस्तुत किया गया है। 'शिवालोक'

जम्मू-कश्मीर क्षेत्र का एक मात्र परन्तु अच्छा प्रबन्ध काव्य है।

3.2. कहानी : सातवां दशक

इस दशक में हिन्दी कहानी के विकास में श्री हरिकृष्ण कौल और श्री वेदराही ने विशेष योगदान दिया है. इन दोनों कहानीकारों की इस दशक में अनेक उत्कृष्ट कहानियां प्रकाशित हुई हैं। इन कहानीकारों के अतिरिक्त इस दशक में कुछ नये कहानीकार भी उभरे हैं। इस दशक में उर्दू, डोगरी और पंजाबी में लिखने वाले अनेक कहानीकारों ने भी इस दशक की हिन्दी कहानी के विकास में योगदान दिया है, इन अहिन्दी लेखकों की एकाधिक हिन्दी कहानियां पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई हैं।

जम्मू-कश्मीर अकादमी की पत्रिकाओं 'शीराज़ा' और 'हमारा साहित्य' में प्रकाशित कहानियों को ही यदि आलोच्यकाल की आधार सामग्री बनाया जाए तो प्रकाशित कहानियों की सूची काफी लम्बी बन जाती है। इन पत्रिकाओं के अतिरिक्त 'योजना' पत्रिका में भी कहानियां प्रकाशित होती रही थीं। अध्ययन की सुविधा के लिए इस दशक में प्रकाशित कहानियों को निम्नलिखित चार उपविभागों में बांटा जा सकता है-

1. उर्दू के लेखकों की हिन्दी में प्रकाशित कहानियां ।
2. डोगरी के लेखकों की हिन्दी में प्रकाशित कहानियां ।
3. कश्मीरी के लेखकों की हिन्दी में प्रकाशित कहानियां ।
4. हिन्दी के लेखकों की हिन्दी में प्रकाशित कहानियां।

'शीराज़ा' और 'हमारा साहित्य' में प्रकाशित इन कहानियों का अध्ययन इन्हीं शीर्षकों के अन्तर्गत सुविधापरक हो सकता है जो हिन्दी लेखकों की हिन्दी में प्रकाशित कहानियों के स्वरूप के विश्लेषण में भी सहायक हो सकता है। इन कहानियों का मूल्यांकन प्रस्तुत है।

3.2.1. उर्दू के लेखकों की हिन्दी में प्रकाशित कहानियां जम्मू-कश्मीर अकादमी की पत्रिका 'हमारा साहित्य' की योजना रही है कि 'शीराज़ा' में प्रकाशित स्थायी मूल्य की रचनाओं को 'हमारा साहित्य' में पुन: प्रकाशित किया जाए। इस योजना के अन्तर्गत उर्दू, डोगरी और कश्मीरी के लेखकों की हिन्दी में अनेक कहानियां पुन: प्रकाशित हुई हैं और सुगमता से उपलब्ध भी हैं। अत: इसी पत्रिका के अंकों में हिन्दी में प्रकाशित कहानियां आलोच्य सामग्री के रूप में ली गई हैं। हां, पाठकों की सुविधा के लिए 'शीराज़ा' और 'हमारा साहित्य' में प्रकाशित उर्दू लेखकों की हिन्दी में प्रकाशित कहानियों की सूची निम्नलिखित है-

श्री अख्तर मुहीउद्दीन- 'चूहे की मौत'

श्री अली मुहम्मद लोन-'पापी पुजारियों की संतान'

श्री ठाकुर पुन्छी-'दसौन्धा सिंह 'दर्दी' 'डबू जी', 'परिवर्तन' 'रात गई बात गई', 'हकूमत सिंह'

श्री पुष्कर नाथ-'जीते की मौत', 'एक तहसील मुहर्रर की दास्तान', 'हृदय का रहस्य', 'गलीचा', 'शिव की रात'।

श्री मोहन यावर-'अपनी अपनी सीमाएं', 'तीन लड़कियां तीन ट्यूटर'

श्री तेज बहादुर भान-'मजाक'

श्री नूर शाह-'जिन्दगी के लिए', 'बिन बरसे बादल'

श्री प्रेम कुमार कपूर- 'पानी के बाद'

'हमारा साहित्य' के संपादकों ने स्थायी-मूल्य को कहानी का आधार मान कर उपर्युक्त कहानियों में से मात्र श्री ठाकुर पुन्छी, श्री पुष्कर नाथ, श्री मोहन यावर की कहानियों को ही 'हमारा साहित्य' में पुनः प्रस्तुत किया है। इन्हीं कहानियों का अध्ययन हम प्रस्तुत कर रहे हैं।

3.2.1.1. ठाकुर पुन्छी की उपर्युक्त कहानियों में से 'हकूमत सिंह' को छोड़कर शेष चारों कहानियां 'हमारा साहित्य' के क्रमशः 1964,1965,1966,1967 के वार्षिक अंकों में प्रकाशित हुई हैं। जिनका मूल्यांकन निम्नलिखित है-

3.2.1.1.1. दसौंधा सिंह 'दर्दी' निम्नवर्गीय व्यक्ति की दुखद जीवन गाथा है, निम्नवर्ग का यह अध्यापक दसौंधा सिंह अनथक मेहनत से अच्छी नौकरी पा लेता है परन्तु उसकी जीवनाकांक्षाएं मर गई हैं और जिस्मानी आदत कुछ ऐसी बन गई है कि साफ सुथरे बंगले की हवा पानी उसे रास नहीं आते। दसौंधा सिंह 'दर्दी' ठाकुर पुंछी की उत्कृष्ट कहानी है जिसमें चरित्र-विकास टिप्पणियों, वर्णन, व्यंग्य और छोटे-छोटे परन्तु सार्थक संवादों द्वारा हुआ है। आत्म-चिंतन और सहज क्रियाओं को पिरो कर कहानी का विकास और चरित्र का विश्लेषण किया गया है।

बाप की शराबखोरी परन्तु पुत्र को पढ़ाने की आकांक्षा, मां की बहू पाने की आकांक्षा और 'दर्दी' का अपनी धरती से मोह, सम्पन्न परिवार की लड़की द्वारा उससे की गई फ्लर्टेशन और 'दर्दी' का अनमेल विवाह कहानी को समस्या प्रधान बना देते हैं। दसौंधा सिंह की जीवन गाथा करुणा-उत्प्रेरक है। कहीं-कहीं वर्ग-संघर्ष के प्रति लेखकीय चिंता भी प्रकट होती है, परन्तु लेखक निम्न वर्ग की दुखद स्थितियों का चित्रण करके नायक को वर्गगत संघर्ष में नहीं उतार पाया। भाषा, भाव और गठन की दृष्टि से उत्कृष्ट कहानी है।

3.2.1.1.2. डबू जी ठाकुर पुन्छी की प्रतीकात्मक कहानी है। 'डबू जी' एक आवारा पिल्ला है जो लेखक के सुख-दुख का भागीदार रहा है।

कुत्ते डबू जी के माध्यम से लेखक ने व्यक्ति की अपने से उच्च वर्ग में जाने के आकर्षण की वृत्ति पर अच्छा व्यंग्य किया है। ग्रामीण संस्कारों में पली लड़की शहर में ब्याहे जाने के बाद भी ग्रामीण संस्कार और अपना भोलापन नहीं छोड़ पाती और शहरी तामझाम और फिल्मी कुसंस्कारों के प्रति आकर्षित रोमांटिक वृत्ति वाले पति से मार खाती रहती है। लेखक व्यंग्य करता है कि कुत्ता तो अपने ग्रामीण परिवेश में लौटकर पुनर्जीवन पा गया है परन्तु लड़की के

लिए ग्रामीण संस्कृति मर गई है।

कहानी प्रतीकात्मक है, व्यंग्य के बाण चुटीले हैं, गांव और कस्बों में बढ़ रहे अजनबीपन और प्यार के नाम पर बढ़ रही छिछोरी वासना का अच्छा चित्रण हुआ है। परन्तु भाषा और शिल्प सौंदर्य के बावजूद कहानी बनते-बनते रह गई है। निबन्धात्मक कहानी में प्रभाव और विचार की एकतानता टूट रही है, हां कहानी का उद्देश्य और कथ्य स्पष्ट है।

3.2.1.1.3. परिवर्तन कहानी पुरुष जाति पर स्त्री जाति की विजय को द्योतित करती है, जिसमें रुप-आकर्षण और नैसर्गिक जरूरतों के कारण पुरुष पराजित हो जाता है। इस प्रणय कहानी को रोमांटिक दृष्टि से विकसित किया गया है। नारी- आकर्षण में फंसा पुरुष अपना नाम तक खो देता है। लेखक ने बड़ी खूबसूरती से रोमांटिक माहौल को गूंथा है, दृश्य और वार्तालाप जिज्ञासा पैदा करने में सक्षम हैं और कहानी को विकसित भी करते हैं।

नर-नारी के परस्पर द्वन्द्व का यहां अच्छा चित्रण हुआ है। पुरुष के विरोध, विद्रोह को अंततः नारी के समक्ष पराजित होना पड़ता है। कहानी भाव और भाषा की दृष्टि से अच्छी है परन्तु गठन कमज़ोर रह गया है। टिप्पणियों, विवरणों, वार्तालाप और सूचनाओं के ग्रन्थन से शिल्प विकसित किया गया है। कहानी में अन्तिम टिप्पणियां फालतू प्रतीत होती हैं।

3.2.1.1.4. रात गई बात गई कहानी में भी लेखक की रोमांटिक दृष्टि उभरती है। बस के दो सहयात्री, जो अपने अपने दाम्पत्य जीवन में दुःखी हैं, कुछ क्षणों के लिए निकटतर हो जाते हैं। दोनों को जंगल में एक साथ बैठ कर बातचीत करने और खाने पीने का मौका मिल जाता है। दोनों की आंखों में आत्मीयता और विचारों में उन्माद की भावना जागृत हो जाती है और दोनों परस्पर प्रेमिल स्पर्श करते हैं और अपने अपने घरों को लौट जाते हैं।

कहानी संयोगों के सहारे बुनी गई हैं, रोमांटिक वातावरण की बुनावट सुंदर है परन्तु स्वाभाविक नहीं लगती, भाषा में द्विअर्थी शब्दों का प्रयोग हुआ है। वर्णन शैली के साथ-साथ संवाद और पत्र शैली को भी अपनाया गया है। रोमांटिक और उच्छृंखल प्रेम- अनुभूति धीरे-धीरे नैतिक बोध की ओर बढ़ती है। कहानी में आए पत्रों की भाषा और विषयगत समानता नीरसता पैदा कर देती है। साधारण कहानी है।

3.2.1.1.5. निष्कर्ष और उपलब्धि कुल मिला कर कहा जा सकता है कि ठाकुर पुन्छी की दृष्टि रोमांटिक है। कहानी का शिल्प यथार्थ चित्रण की अपेक्षा कल्पना-प्रधान है और संयोगों के सहारे चलता है। हां, इन कहानियों में व्यंग्य बाण चुटीले हैं और समस्याओं की विविधता है। भाषा में अभिधा की अपेक्षा काव्यात्मकता मनमोहक है।

3.2.1.2. पुष्कर नाथ की 'जीते की मौत', 'एक तहसील मुहर्रिर की दास्तान', 'हृदय का रहस्य', 'गलीचा' आदि चार कहानियां 'हमारा साहित्य' के वार्षिक अंक 1964, 1965, 1966, 1967 में क्रमशः प्रकाशित हुई हैं। 'शिव की रात' कहानी 'शीराज़ा' में प्रकाशित है परन्तु फिलहाल अनुपलब्ध है। यहां हम 'हमारा साहित्य' में प्रकाशित कहानियों का अध्ययन प्रस्तुत कर रहे हैं।

3.2.1.2.1. जीते की मौत कहानी में सरकारी ठेकेदारों, इन्जीनियरों और क्लर्कों की अच्छी पोल पट्टी खोली गई है। कहानी का मूल कथ्य है- PWD के भ्रष्टाचार ग्रस्त तंत्र पर चोट ! कहानी में मृत्यु के बाद जीव को मिलने वाले स्वर्ग नरक सम्बन्धी विश्वास को फैंटेसी के रूप में प्रस्तुत किया है। कहानी अच्छी आधुनिक गरुड़ पुराण बन गई है।

फैंटसी और स्वप्न के रूप में लिखी इस कहानी में सरकारी काण्ट्रेक्टर के कुण्ठित मन और नैतिकबोध के कारण हुए दमन का अच्छा मनोविश्लेपणपरक चित्रण हुआ है। अनैतिक आचरण के कारण मिलने वाली सजा का भय प्राय: सामूहिक अवचेतन में समाया रहता है। इस अनैतिकता के भय और अन्तश्चेतन की यहां सुंदर अभिव्यक्ति हुई है। कहानी की शिल्प अन्तर्द्वन्द्व के चित्रण और वर्णनात्मकता के साथ-साथ व्यंग्यपरक कथनों के माध्यम से विकसित की गई है।

3.5.1.2.2. एक तहसील मुहर्रिर की दास्तान कहानी में भ्रष्टचार पर व्यंग्य और चोट है। यहां साधारण पढ़े-लिखे मुहर्रिर लम्बुराम की जीवन त्रासदी और अभाव पूर्ण जीवन का आत्मकथा-शैली में सुंदर सार्थक चित्रण हुआ है। लब्बुराम की पत्नी अपने पड़ौसी के शाहखर्च को देखकर पति को रिश्वत लेने के लिए उकसाती है और वह भोला-सा व्यक्ति रिश्वत लेने के आरोप में 'सस्पैण्ड' होकर रह जाता है। इस पर पत्नी का ताना है 'तुम तो जन्म से निकम्मे हो। तुम्हें रिश्वत लेना भी न आया।'

कहानी का शिल्प पटवारियों-मुहर्रिरों की बही-खातों के लेखन जैसा है, कहानी के शीर्षक 'अंतिम नोट' के अन्तर्गत व्यंग्य काफी तीखा हो उठा है। साधारण-सी कहानी इसी निष्कर्ष पर पहुंचाती है कि रिश्वत लेना पाप नहीं, रिश्वत लेकर पकड़े जाना ही गुनाह है।

3.2.1.2.3. ह्रदय का रहस्य पुष्कर नाथ की उत्कृष्ट कहानी है, जिसमें 'फ्लैश बैक' शैली का अच्छा उपयोग हुआ है। शब्द और अनुभूति की काव्यात्मक दुहरावट कहानी को सुंदरता और सुगढ़ता प्रदान करती है। भाषा और शब्द चयन तीखी प्रणयानूभूति के अनुकूल लगते हैं। कहानी अंत से आरम्भ की ओर चली है। जिसमें टूटती हुई जागीरदारी, जागीरदारियों के षड्यंत्रों और हवेलियों के पुराने पड़ रहे सौंदर्य और सामन्ती व्यवस्था के उतराव पर अच्छी टिप्पणियां करते हुए विवरण दिए गए हैं। परन्तु कहानी का मूल कथ्य है बाल विधवा रांनी जी के अन्तर्मन की व्यथा को उजागर करना।

विधवा रानी जी अपनी अतृप्त काम-वासना और प्रणयानूभूति का पारिवारिक पवित्रता और वंशगत मर्यादा के कारण दमन कर लेती है। कहानी में प्रौफैसर की अन्त: कामना भी पवित्र और मर्यादित है परन्तु वह रानी जी के रूप-दर्शन की लालसा पूर्ण होते ही उसके रूप-आकर्षण में बंध जाता है। वह रानी के प्रति अपनी प्रणय-कामना को दासी के समक्ष प्रकट कर देता है और अपराध बोध से ग्रस्त भी हो जाता है कि रानी जी की तपस्या भंग करके उसने अच्छा नहीं किया। उधर विधवा रानी जी भी मन ही मन इस प्रणयनिवेदन को स्वीकार किए हुए है परन्तु पारिवारिक और वंशगत मर्यादा उसके आड़े आती है। कामना और मर्यादा के बीच के द्वन्द्व में फंसी रानी जी की मनोव्यथा का यहां काफी सुंदर और सार्थक वर्णन हुआ है।

कहानी में रानी जी, प्रोफैसर और दासी तीनों के चरित्र के प्रति पूर्ण न्याय किया गया है। कहानी की भाषा, शिल्प और गठन सशक्त है । कहानी में रानी जी आत्म हत्या नहीं करती बल्कि मन ही मन घुलती हुई मर जाती है। नारी-हृदय की सशक्त अभिव्यक्ति और द्वन्द्व चित्रण के आधार पर 'हृदय का रहस्य' लेखक की सर्वोत्कृष्ट कहानी कही जा सकती है।

3.2.1.2.4. गलीचा कहानी में पुष्कर नाथ ने सरकारी पैसे और फर्नीचर की हेराफेरी में लगे हुए कर्मचारी, अफसर, राजनेता और ठेकेदारों के कूटनीतिक षड्यन्त्रों उनके परस्पर राग और रार के साथ-साथ उनकी दोषारोपण की वृत्तियों पर गहरी चोट की है। कहानी में हेराफेरी की सभी कड़ियों पर लेखक की विशद् और विश्लेषणपरक दृष्टि पड़ी है ।

विडम्बना यह है कि भ्रष्ट लोग अपनी चालाकी के बूते बच जाते हैं जबकि फंसता है तो बिलकुल गरीब आदमी, जिसकी सारे सरकारी तंत्र में कोई भूमिका नहीं परन्तु जो क्षणिक सुख को पाने के लिए वस्तुस्थिति को भूल जाता है और चुरा कर फेंक दिए हुए गलीचे पर हाथ फेरता हुआ तन्द्रिल अवस्था से झिंझोड़ कर गिरफ्तार कर लिया जाता है।

कहानी का गठन और एकतानता सुंदर और सुगढ़ है।

3.2.1.2.5. निष्कर्ष और उपलब्धि कुल मिला कर कहा जा सकता है कि पुष्करनाथ की ये कहानियां मूलतया सरकारी तंत्र में बढ़ रहे भ्रष्टाचार, रिश्वत, गबन और सरकारी कर्मचारियों द्वारा चालाकी से छूट जाने की वृत्ति की ओर संकेत करती हैं। ऐसा भी लगता है कि कहानीकार समझता है कि पत्नियां पतियों को ही रिश्वत के लिए उकसाती हैं। लेखक ने नारी हृदय की भी सशक्त अभिव्यक्ति की है। उनकी दृष्टि रोमांटिक भी और व्यंग्यपरक भी, भाषा और शिल्प भी काफी साफ सुथरा और प्रभावशाली है।

3.2.1.3. मोहन यावर इस दशक के उर्दू के नये लेखक हैं । हिन्दी में इनकी एक ही कहानी 'हमारा साहित्य' में प्रकाशित हुई है, जिसका मूल्यांकन निम्नलिखित है।

3.2.1.3.1. तीन लड़कियां तीन ट्यूटर कहानी 'हमारा साहित्य', के वार्षिक अंक 1965 में प्रकाशित हुई है।

कहानी में ट्यूटरों के अभावों का चित्रण, विवरण और टिप्पणियों द्वारा किया गया है। तीनों छात्राएं तीन अलग-अलग आर्थिक स्तर की हैं। तीनों ट्यूटर कहीं-कहीं अपनी-अपनी नैतिकता और स्वाभिमान में ग्रस्त हैं। कोई छात्रा फैशन द्वारा आकर्षित करने की ताक में है, कोई अहंकार और अमीरी-प्रदर्शन की वृत्ति से ग्रस्त है तो कोई निर्धनता के बावजूद ईमानदार और अपने कैरियर को बनाने की चिंता में ग्रस्त है। तीन अनुभवों के आधार पर बुनी गई कहानी व्यंग्यात्मक है परन्तु गठन और शिल्प कमज़ोर रह गया है।

3.2.1..4 उपलब्धि इन उर्दू लेखक हिन्दी कहानीकारों में रोमांटिक जीवन दृष्टि ही हावी रही है। कहानी की भाषा को गद्यात्मक बनाने की अपेक्षा काव्यात्मक बनाए रखा गया है। इन्होंने प्रतीक, स्वप्न और फैंटेसी का सहारा भी लिया है। फिर भी दसौंधा सिंह 'दर्दी', 'डबू जी', 'हृदय का रहस्य' और 'गलीचा' चार उत्कृष्ट कहानियां हैं। जिनका कथ्य और शिल्प

काफी हद तक कथारम्भ को पैदा करने वाला है और हिन्दी कहानी में प्रचलित शिल्प और संवेदना के निकट पड़ता है और जम्मू की हिन्दी कहानी को प्रभावित करता है।

3.2.2. डोगरी के लेखकों की हिन्दी में प्रकाशित कहानियां डोगरी के अनेक कहानीकारों की हिन्दी की कहानियां हिन्दी 'शीराज़ा' और 'हमारा साहित्य' में प्रकाशित हुई हैं। परन्तु यह कहना संभव नहीं है कि ये कहानियां मूलतया हिन्दी में लिखी गई थीं कि डोगरी से हिन्दी में अनुदित होकर प्रकाशित हुईं। फिर भी जम्मू-कश्मीर में हिन्दी कहानी के विकास क्रम में इन कहानियों का अपना योगदान है अतः इनका मूल्यांकन अपेक्षित है। इस दशक में प्रकाशित कहानियों की सूची निम्नलिखित है-

श्री राम नाथ शास्त्री- 'बदनामी की छांव'।

श्री नरेन्द्र खजूरिया- 'योग खण्डित', 'एक पत्ता पतझर का', 'तीसरे कालम में छपी तस्वीर'।

श्री चंचल शर्मा-'आंसू भीगे चावल', 'किसी से न कहना', 'टूटा-फूटा पति'।

श्री घनश्याम सेठी-'पारो', 'पछतावा'।

श्री बन्धु शर्मा-'परछाइयां'।

श्री गोपीनाथ कौशिक-'और दीपक बुझ गया'।

श्री भगवद प्रसाद साठे- 'खाली गोद'।

श्री मदन मोहन शर्मा-'पहाड़ी कौआ'

श्री मदन सिंह ठाकुर-'स्वर्ग सीढ़ी'

श्री वेदराही-'एक टूटा हुआ छाता', 'दीदी कब आएगी', 'एक पुल था', 'दरार', 'बर्फ', 'दुर्घटना', 'खास-उल-खास', 'आर्टिस्ट', 'अनुबन्ध'

उपर्युक्त सभी लेखकों की लगभग ये सभी कहानियां डोगरी में भी प्रकाशित हो चुकी हैं। और हिन्दी की पत्रिका 'हमारा साहित्य' के विभिन्न अंकों में प्रकाशित इन कहानियों ने प्रदेश के हिन्दी लेखकों को भी कहीं न कहीं प्रभावित किया ही है, इसी कारण इनका मूल्यांकन यहां अपेक्षित हो जाता है, जो निम्नलिखित है।

3.2.2.1. प्रो० राम नाथ शास्त्री की कहानी 'बदनामी की छांव' 'हमारा साहित्य' के अंक 1964 में प्रकाशित हुई है, जिसका मूल्यांकन निम्नलिखित है।

3.2.2.1.1. बदनामी की छांव कहानी में स्त्रियों की ईर्ष्या-द्वेष के कारण बदनाम हो रही सुन्दर साध्वी नारी सीता की जीवन-व्यथा का सर्वांग सशक्त चित्रण हुआ है। सीता का अद्वितीय सौंदर्य उसके पति लब्भू की कुरूपता से 'कन्ट्रास्ट' द्वारा उभारा गया है। सीता के सुन्दर केश, चमकता माथा, तीखी नाक, कमान-सी वक्र काली भौंहें, पतले गुलाबी होंठ, आकर्षक चेहरे पर मुस्कराहट का जादू, गालों में मुस्कराहट के साथ पड़ने वाले गढ़ों में न जाने कितने

चतुर, मूढ़ डूब जाएं। परन्तु इतनी सुन्दर पत्नी और कुरूप पति में परस्पर कोई सामंजस्य नहीं नजर आता।

मुहल्ले की औरतें उसके प्रति तरह-तरह की कहानियां गढ़ गढ़ कर उसे बदचलन सिद्ध करने पर तुली हुई हैं। परन्तु सीता को इन कहानियों की कोई परवाह नहीं, उसे किसी से कोई शिकायत भी नहीं बल्कि उसे अपने सौंदर्य पर मान ही है क्योंकि उसके सौंदर्य के प्रति ईर्ष्या रखने वाली औरतें जिज्ञासावश उसके पास आती हैं और कपड़े सिलवाती हैं, इस सिलाई से उसके घर का खर्चा आसानी से चल जाता है। इस तरह उसे तो झूठी बदनामी भी छाया देती प्रतीत होती है।

'बदनामी की छांव' शिल्प और संगठन के साथ-साथ मनोविश्लेषण की दृष्टि से भी उत्कृष्ट कहानी है। कहानी में कहीं झोल नहीं, भाषा भी सधी हुई है। विवरण, टिप्पणियों, आत्म चिन्तन, सूचनाओं तथा सम्वादों के माध्यम से कहानी की सशक्त बुनावट हुई है, भावगत गंभीरता और एकतानता का कहीं ह्रास नहीं हुआ। पात्रों के प्रति भी न्याय हुआ है और किशोर मन की जिज्ञासाओं, सौंदर्य, आकर्षण और नारी-मन की थाह का अच्छा चित्रण हुआ है। कहीं-कहीं तीखे व्यंग्य और मुस्कराहटों ने कहानी को रोचक बनाए रखा है।

सीता मेहनती, व्यवहार कुशल और सूझबूझ वाली ऐसी उत्कृष्ट नारी-चरित्र का प्रतिनिधित्व करती प्रतीत होती है जो अपनी सिलाई मशीन के पास बैठी-बैठी ही कहानी के सूत्रों को अपने गिर्द बुनने के लिए लेखक को विवश किए हुए है। बहुत ही सराहनीय और पठनीय कहानी है।

3.2.2.2. नरेन्द्र खजूरिया की उपर्युक्त तीनों कहानियां 'हमारा साहित्य' के वार्षिक अंक 1964, 1965, 1966 में क्रमश: प्रकाशित हुई हैं, जिनका मूल्यांकन निम्नलिखित है।

3.2.2.2.1. योग खण्डित कहानी में लेखक ने हास्यास्पद स्थितियों के माध्यम से लोक प्रचलित अंधविश्वास पर व्यंग्य तथा तीखी चीट की है। कथा नायक को रोना नहीं आता या वह रोना नहीं चाहता, मरी हुई सास पर रोना न आए- बात अजीब-सी तो है परन्तु..... खैर हंसी भी तो किसी असंगत व्यवहार पर ही आती है। और हास्य व्यंग्यकारों के लिए पत्नी से बढ़ कर हास्यापद चीज कोई है ही नहीं ! कथानायक रोती पीटती पत्नी के साथ ससुराल पहुंचता है तो चमत्कृत होकर रह जाता है।

कहानी का गठन और बीच-बीच मीठे हास्य प्रधान टहोके तो ठीक हैं, परन्तु व्यंग्य प्रधान इस कहानी में अस्वाभाविकता दोष खलता है जो कहानी को अंगभीर बनाता है। सम्वाद और तानें-तिश्ने काफी तीखे हैं और समयानुकूल हैं जो बूढ़ी तमाशबीन औरतों के स्वभाव को अच्छी तरह उद्घाटित कर देते हैं। साधारण कहानी है।

3.2.2.2.2. एक पत्ता पतझड़ का कहानी भी आत्मकथात्मक शैली में लिखी गई है। कथानायक नौकरी से बरखास्त मामूली कण्डक्टर है। वह पुलिया पर बैठा अपने दुर्भाग्य को कोस रहा होता है कि एक बारात वहां आकर ठहरती है जिसका दूल्हा कुरूप है जबकि उसकी होने वाली बीवी सुन्दर है। बुजुर्गों को चिंता है कि कहीं शादी ही न हुई तो ? इसी चिंता के

कारण वे कथानायक को दो दिन के लिए किराये पर ले लेते हैं। वह भी नकली दुल्हा बनने के लिए तैयार हो जाता है । शादी हो जाती है, दुल्हन घर ले आई जाती है। तदोपरान्त जो कुछ कथानायक ने देखा है, अनमेल विवाह पर चीख चिल्ला रही दुल्हन की जो करुण पुकार सुनी है, उसी का स्मरण और कथानायक का अपराध बोध कहानी में उतर आया है।

कहानी का गठन सुदृढ़ है, अबोध लड़की की पीड़ा का अच्छा और भाव-प्रधान चित्रण है। अनमेल विवाह की प्रथा और परिवेशगत विसंगति पर तीखा व्यंग्य किया गया है। यहां किसी अबोध दुल्हन की आंतरिक प्रतिक्रियाओं का अच्छा दोहन हुआ है। कथानायक कहीं न कहीं दुल्हन के प्रति करुण है। कहानी वर्णनों, टिप्पिणियों और चुस्त-दुरुस्त संवादों के सहारे विकसित होती हुई प्रभाव की एकतानता को बनाए रखती है। नरेन्द्र खजूरिया की यह उत्कृष्ट कहानी है।

3.2.2.2.3. तीसरे कालम में छपी एक तस्वीर वर्णन प्रधान व्यंग्यात्मक कहानी है, जिसमें नौसिखिया नाटक कलाकारों पर तीखा व्यंग्य किया गया है। यहां लेखक बड़े तीखे और चुस्त दुरुस्त वाक्यों द्वारा व्यंग्य करता है परन्तु साधारण नाटकबाज़ी से कहानी को सफलता पूर्वक उभार भी लेता है। कहानी में झूठी कलाकारी की अपेक्षा उदात्त गुणों को महत्व मिला है। यहां चरित्र का विकास सुंदर और सुगठित है। झूठे दंभ पर अच्छा और तीखा व्यंग्य किया गया है।

3.2.2.2.4. निष्कर्ष और उपलब्धि नरेन्द्र खजूरिया की इन तीनों कहानियों में अगंभीरता के द्वारा गंभीर बातें कहने का यत्न किया गया है। शिल्पगत अस्वाभाविकता और संयोगात्मकता इन कहानियों को कमज़ोर कर गई है। इस सबके बावजूद 'एक पत्ता पतझड़ का' उनकी एक उत्कृष्ट कहानी है। भाषा चुस्त और भावानुकूल है।

3.2.2.3. चंचल शर्मा की तीन कहानियां 'हमारा साहित्य' के वार्षिक अंक 1965, 1966, 1968 में क्रमशः प्रकाशित हुईं हैं। कहानीकार कवि-हृदय वाला है और कहानी में भावुकता को संजोता हुआ रोमांटिक प्रणयानुभूति को अभिव्यक्त करता है। कहानियों की भाषा काव्यात्मक है और संयोगों के सहारे कहानी को विकसित किया गया है।

3.2.2.3.1. आंसू भीगे चावल प्रणय कहानी है। भोली और गिरधारी बालपन के साथी हैं। विधवा होने के बावजूद भोली बचपन के साथी गिरधारी को पहले-का-सा प्यार करती है। क्षय-पीड़ित होने के बावजूद गिरधारी भी मरना नहीं चाहता क्योंकि भोली के चावल तो उसे इसी जीवन में मिलेंगे। भोली के पति जमादार रोमाल सिंह ने लड़ाई में मरते समय उसी के हाथों भोली के लिए संदेश भेजना चाहा था।

कहानी का गठन और संवाद सुंदर हैं परन्तु कथानक संयोगों पर आधारित है, भाषा भावातिरेक से ग्रस्त है, भावावेग पाठक को बहा ले जाता है। वातावरण का निर्माण टिप्पणियों द्वारा हुआ है और सहानुभूति तथा करुणात्मक वातावरण में प्रेम की सात्विकता और पवित्रता का भावुकताजन्य चित्रण हुआ है। असफल प्रेमी की कहानी है।

3.2.2.3.2. किसी से न कहना भी असफल प्रेम की कहानी है। बचपन की प्रेमिका का पति विवाह के पहले ही दिन मर गया है। प्रेमी अपराध-बोध में ग्रस्त है कि प्रेमिका के विवाह पर न जाकर उसी ने उसका अमंगल किया है। स्त्री की मान-मर्यादा और प्रणय-भावना के दमन की सुंदर कहानी है। प्रेमिका के प्रति नायक के आकर्षण और प्रेम की सात्विक भावना का भावुकतापूर्ण चित्रण हुआ है। विधवा के पुनर्विवाह के प्रश्न को भी उठाया गया है।

यद्यपि कहानी 'उसने कहा था' से प्रभावित है, कथानक विकास संयोगों पर आधारित है फिर भी पूर्वदीप्ति शैली के माध्यम से अन्तश्चेतन का मोहक चित्रण हुआ है। भाषा, भाव और गठन उत्कृष्ट है। नारी के मन की दमित कामना और मर्यादा-निर्वाह का हृदय-द्राविक चित्रण कहानी को अतिरिक्त भाव सम्पदा प्रदान करता है।

3.2.2.3.3. टूटा फूटा पति दाम्पत्य-प्रेम और कर्त्तव्य की कहानी है। फौजी राम सिंह द्वन्द्वग्रस्त है, लड़ाई में अपना दायां बाजू गंवा बैठा है, पत्नी पर बोझ नहीं बनना चाहता। सुखद अतीत की स्मृतियां भी उसे घर जाने से रोक रही हैं परन्तु मां की ममता के स्मरण के कारण वह बाहर टिक भी नहीं पाता। घर में मां उसका स्वागत करती है, पत्नी भी उसे विशेष सम्मान देती है।

दाम्पत्य प्रेम और कर्त्तव्यबोध की सशक्त तथा आदर्श प्रेरित कहानी है। पति-पत्नी के आदर्श प्रेम और उनके सुख-दुःख के सांझेपन को चित्रित किया गया है। दोनों पात्रों के चरित्र को उदात्त बनाए रखा है। कहानी में अपंग फौजी राम सिंह का अन्तर्द्वन्द्व और मनोविश्लेषण अच्छा है। कहानी की शैली उत्कृष्ट है।

3.2.2.3.4. निष्कर्ष और उपलब्धि इन तीनों कहानियों की भाषा काव्य-गुण लिए हुए है। कथानक के गठन में कल्पना और संयोगों का सहारा लिया गया है। परम्परा प्राप्त कथा-अभिप्रायों का उपयोग करके प्रेमी प्रेमिका की मनोवृत्तियों का आदर्शीकरण किया गया है। 'किसी से न कहना' उत्कृष्ट कहानी है।

3.2.2.4. घनश्याम सेठी की कहानियां 'हमारा साहित्य' के वार्षिक अंक 1966 और 1967 में, क्रमशः प्रकाशित हुई हैं। दोनों कहानियां गठन की दृष्टि से उलझी हुई हैं और 'नयी कहानी' के शिल्प से प्रभावित हैं।

3.2.2.4.1. पारो में आर्थिक अभाव से विवश होकर वेश्यावृत्ति में पड़ी दलित समाज की नारी की पीड़ा का सशक्त चित्रण हुआ । लेखक ने उन सभी स्थितियों-परिस्थितियों का विशद् वर्णन किया है, जिनके कारण पारो वेश्या बनने के लिए विवश है। स्थिति यह है कि अब तो पारो भी इस घिनौने खेल में रुचि लेने लगी है, उसका मन है कि वह सभी के आकर्षण का केन्द्र बनी रहे, उसका शरीर भरा-भरा रहे क्योंकि जितना अधिक गोश्त होगा उतना ही अधिक दाम मिलेगा। इसी कारण वह बेटे से भी छीन कर खा जाती है। पेशे में प्रतियोगिता के कारण वह आकर्षक और गोरी लड़कियों के प्रति ईर्ष्या भी रखती है।

उसे लोक लज्जा का भय भी है और वह कोठड़ी के बल्ब को तोड़ देना चाहती है ताकि अंधेरे में कोई उसे किसी के घर आते-जाते देख कर पहचान न सके। बदबू और गंदगी में रहना उसकी आदत बन चुका है, सफाई होते देख वह बेचैन हो उठती है। अपने अहं की संतुष्टि के लिए वह अपनी निंदक लड़कियों को उधार देकर गर्व भी महसूस करती है।

कहानी में पारो के चरित्र के अनेक बिन्दु उभरे हैं, जिनसे घटनाक्रम और विचारक्रम उलझ गया है। गठन उलझा होने के बावजूद पारो के अन्तर्द्वन्द्व और उसकी हृदयस्थ पवित्र भावना, नारी -मन की आकांक्षा और अपराधबोध से उपजी व्यथा और क्लेश का अच्छा चित्रण हुआ है। कहानी में गंदगी की सफाई के नाम पर भाषा का द्विअर्थी प्रयोग कर रहे जमादार के प्रति घृणा और विरक्ति कर भाव भी अभिव्यक्त हुआ है।

3.2.2.4.2. पछतावा कहानी में सौतेली बेटियों के प्रति सौतेली मां के व्यवहार को अभिव्यक्ति मिली है। बड़ी बेटी तो विवाह के झांसे में फंसी हुई है और सौतेली मां उसे आर्थिक शोषण का शिकार बना लेती है। ट्यूशन करके या उधार लेकर चाहे जैसे भी हो वह घर की जरूरतें पूरा करती है। सौतेली मां कपट और छल करती है और दोनों बेटियों को उनकी असली मां के विरुद्ध भड़का देती है। षड्यंत्र करके वह अपनी सौत के ज़ेवर भी हथिया लेती है।

विवाह की आशा और आश्वासन के कारण बड़ी बेटी ठगी जाती है जबकि छोटी बेटी सौतेली मां और बाप का विरोध करके प्रेम-विवाह कर लेती है। कहानी में बड़ी बेटी के पश्चाताप को और उसकी दमित विवाहेच्छा को सशक्त अभिव्यक्ति मिली है।

कहानी का विकास पूर्व दीप्ति शैली में हुआ है। संवाद, एकालाप, अतीत-स्मरण और आत्म चिंतन के साथ-साथ अन्तर्द्वन्द्व की पद्धतियों के सहारे कहानी का संयोजन किया गया है।

3.2.2.4.3. निष्कर्ष और उपलब्धि इन दोनों कहानियों का गठन थोड़ा बिखर गया है, भावान्विति से जुड़े वाक्य आगे पीछे यानी 'जम्बल्ड' हो गए हैं। कहानियों का 'टोन' अस्पष्ट रह गया है, 'टैक्सचर' उलझ गया है, अतः प्रभाव बिखर गया है। हां, नारी-मन की अन्तर्व्यथा संतुलित जीवन जीने की आकांक्षा के साथ-साथ विवाह की कामना का अच्छा मनोविश्लेपक चित्रण हुआ है।

3.2.2.5. गोपीनाथ कौशिक की मात्र एक कहानी 'और दीपक बुझ गया' प्रकाशित है, जिसका मूल्यांकन निम्नलिखित है।

3.2.2.5.1. और दीपक बुझ गया कहानी 103° से 106° बुखार में बड़बड़ाते मरीज के आत्म-संलाप के रूप में विकसित की गई है। बीमार व्यक्ति की आन्तरिक पीड़ा, उसकी प्रणयाकांक्षा, मां के प्रति उसके प्रेम और श्रद्धा की अनेक भावनाओं, जीवन की सुखद और कटु स्मृतियों और दिवास्वप्नों का मनोविश्लेषणात्मक चित्रण हुआ है। कहानी की भाषा भावुकता प्रधान है। 'टैक्सचर' ढीला-ढाला है।

मृत्यु शय्या पर पड़े मरीज के अन्तश्चेतन का मनोविश्लेपणवाद के सहारे चित्रण करते हुए रिश्तेनातों के खोखलेपन पर अच्छी चोट की गई है। कहानी में भावुकता को मयत्न पैदा किया गया है। कुल मिला कर यह साधारण कहानी ही कही जा सकती है। अर्द्धमूर्च्छित-सा मरीज नर्स में ही कभी मां तो कभी प्रेमिका और कभी बहन का रूप देखता है और अतीत को वर्तमान की तरह देखने लगता है।

3.2.2.6. मदन सिंह ठाकुर ' की एक मात्र कहानी 'स्वर्ग सीढ़ी' 'हमारा साहित्य' 1969 ई० में प्रकाशित हुई है । इस कहानी की डोगरी लेखक विशेष प्रशंसा करते रहे हैं।

3.2.2.6.1. स्वर्ग सीढ़ी कहानी में डुग्गर क्षेत्र के लोक विश्वास का चित्रण हुआ है। परलोक में सुख की आकांक्षा लिए परदादी जीवन में सभी प्रकार के सांसारिक दुखों को झेल जाती है। स्वर्ग जाने की आकांक्षा के लिए अनेक प्रकार की त्रासदियों से जूझती बढ़िया नरक के शोलों से खेलती रहती है, उसका जीवट सराहनीय है । पड़पोते के गले में छोटी-सी सोने की सीढ़ी डाल कर वह समझ रही है कि यह सीढ़ी उसे सीधे स्वर्ग तक ले जाएगी। पड़पोते के जन्म के क्षणों में बुढ़िया का उल्लास और नाम-संस्कार में बुढ़िया का बढ़ चढ़ कर हिस्सा लेना आदि उसकी आकांक्षा पूर्ति का प्रतीकवत् प्रतिनिधित्व करता है। ममता के गीत गाती हुई बुढ़िया अपने समूचे जीवन का स्मरण करती है।

लेखक ने पड़दादी के हृदय में छिपे भय, ममता, जीवन की कटुता, कर्मठता, चिढ़चिड़ाहट, प्रेम और निविड़ अकेलेपन की अनुभूतियों और क्रियाओं का सशक्त और मनोविश्लेषणपरक चित्रण किया है। बड़ी सहज, रोचक और करुणा से भीगी उत्कृष्ट कहानी है। बुढ़िया का अन्तर्मन बड़ी स्वाभाविक प्रतिक्रियाओं के सहारे अभिव्यक्त हुआ है।

3.2.2.7. वेदराही ने हिन्दी में 1970 ई० तक अनेक कहानियां लिखी हैं। उन्होंने हिन्दी और डोगरी में समान अधिकार से लिखा है। उनका कहना है कि 1970 ई० के बाद उन्होंने हिन्दी में लगभग नहीं के बराबर लिखा है। सातवें दशक में प्रकाशित कहानियों के आधार पर इन्हें अग्रिम हिन्दी कहानीकार भी कहा जा सकता है वैसे भी इनकी कहानियों में हिन्दी कहानी का स्वभाव और गठन अपने पूर्ण विकसित रूप में मिल जाता है।

सातवें दशक में 'हमारा साहित्य' के वार्षिक अंकों 1964,1965, 1966,1967,1968, 1969 में क्रमश: 'एक पुल था', 'दरार', 'बर्फ', 'दुर्घटना', 'खास-उल-खास', 'आर्टिस्ट' आदि छ: कहानियां 'स्थायी मूल्य' की कहानियां मान कर पुन: प्रकाशित की गई हैं, जिनका मूल्यांकन निम्नलिखित है। इन कहानियों का विस्तृत विवेचन 'शिवालिक क्षेत्र में हिन्दी कहानी: उद्भव और विकास' पुस्तक में देखें।

3.2.2.7.1. एक पुल था श्री वेदराही की श्रेष्ठ कहानी है, जिसमें ऋण के बदले निर्धन कृषक को जमीन और पत्नी तक को बंधक के रूप में रखना पड़ता है। विडम्बना यह है कि बनिया बड़ी चालाकी से उसकी पत्नी को हथिया लेता है। रतनो के अन्तर्मन के मंथन और पति के प्रति उसके निर्मल प्रेम की यह अद्भुत कहानी है। रतनो के सौंदर्य, सुखद सुहाग रात का

स्मरण करता हुआ रांझू घर और खेतों में उसके सहचर्य का स्मरण करता है और विवाह के लिए उधार लिए पांच सौ रुपए के बदले रतनो को बंधक-रूप में रखने की अपनी विवशता और मानसिक यातना का स्मरण करता है। वह रतनो के प्रति उपजी अनेक आशंकाओं का स्मरण करता है। कहानी में बड़े विशद् रूप में ग्रामीण परिवेश का चित्रण हुआ है।

वह बनिए की रखैल बनी अपनी पत्नी को देखता है परन्तु वह उसे पहचानती नहीं । वह बनिये की रखैल ही नहीं बल्कि उसके बच्चों की मां भी बन गई है। इस स्थिति पर रांझू को बनिए की बेईमानी पर गुस्सा आता है, उसे पत्नी की बेवफाई पर भी चिढ़ होती है। इसी क्रोध में वह वास्तविकता को जानने के लिए रात भर वहां रुक जाता है। रात भर वह रतनो के प्रति प्रेम से घृणा, पुन: घृणा से प्रेम की विरोधी भावनाओं के अन्तर्द्वन्द्व में ग्रस्त रतनो और बनिए की बातें सुनता रहता है। अंतत: वह जान जाता है कि बनिये ने ही मक्कारी की है जबकि रतनो के मन में अभी भी रांझू के लिए प्यार है, वह रांझू कां इन्तजार करती रही है, अब भी कर रही है परन्तु अपने बच्चों की ममता में भी फंसी हुई है।

'एक पुल था' वेदराही की उत्कृष्ट कहानी है। शिल्प और भाषा के साथ-साथ ग्रामीण जीवन की तार्किक पहचान करायी गई है। पात्रों का चरित्र-विकास बड़ा सुगठित और मनोविश्लेषण परक है। दीनू बनिये की मक्कारी, रांझू की निरीह ईमानदारी, रतनो की ममता और नारी-हृदय का सशक्त और अन्तर्मन को झिंझोड़ने वाला चित्रण है। रांझू का पत्नी-प्रेम और जीनव-जगत के प्रति समझदारी और बच्चे के कोमल स्पर्शों से उभरी उसकी अनुभूतियों को बड़ी कुशलता से बुना गया है। रांझू की भाव विह्वलता और रतनो की विवशता को क्षमा कर देने की वृत्ति का बड़ा तार्किक विश्लेषण किया गया है।

कुल मिला कर कहा जा सकता है कि 'एक पुल था' कहानी शिल्प, भाषा और लोक जीवन की दृष्टि से न केवल जम्मू-कश्मीर की बल्कि समूची हिन्दी कहानी की उपलब्धि है। जिसमें मानव-मन का तलस्पर्शी विश्लेषण और चित्रण हुआ है।

3.2.2.7.2. दरार मानव मन की भयजन्य कमजोरी और आत्मरक्षा की वृत्ति के कारण मानव-मूल्यों की हो रही उपेक्षा की सशक्त कहानी है। पाकिस्तानी हमले की पृष्ठभूमि में प्रसव पीड़ा से तड़पती पत्नी लज्या के प्रति चिंताग्रस्त ध्यानसिंह का चित्रण हृदयग्राही है। वह प्रसव के लिए लोगों से मदद करने को कहता है परन्तु लोग आक्रामकों से भयभीत हैं व अपने जान-माल और सामान को बचा कर भाग रहे हैं, चाह कर भी उसकी कोई मदद नहीं कर पाते । दाई भी अपनी घर-गृहस्थी लादे जा रही है और ध्यानसिंह को सलाह देती है कि वह पत्नी को साथ ले चले, रास्ते में प्रसव करवा लेगी। परन्तु वह ध्यानसिंह और उसकी पत्नी लज्या का इंतजार नहीं करती ।

लज्या की मानसिक पीड़ा, उसकी जिद और उसके प्रसव-संघर्ष का तो चित्रण किया ही गया है, ध्यानसिंह की मनोव्यथा और उपेक्षित निरीहता का भी हृदयग्राही चित्रण हुआ है। दहशतज़दा लोगों के सामूहिक मनोविश्लेषण को भी सशक्त अभिव्यक्ति मिली है।

कहानी का समूचा 'टैक्सचर' आतंकित लोगों की भागदौड़, तोपों की गरज़, गोलों के धमाकों, भौंकते हुए दौड़ते कुत्तों और मानवमात्र की दहशतजन्य मन: स्थितियों से बुना गया है परन्तु यह बुनावट इतनी घनी और सुदृढ़ है कि कहीं झोल नजर नहीं आता। आतंकित लोगों के मनोविज्ञान की प्रस्तुति के साथ-साथ ध्यानसिंह के अन्तर्द्वन्द्व के मूल में पत्नी के प्रति उसकी चिन्ता और बाह्य परिस्थितियों से जन्मी विवशता का अच्छा चित्रण हुआ है। इन स्थितियों के बीच से हड़बड़ाहट में ही उभर उठने वाली आत्मरक्षा और जिजीविषा की नैसर्गिक मनोवृत्ति का सुगठित और सकारण चित्रण हुआ है।

कुल मिला कर कहा जा सकता है कि कहानी का गठन सुदृढ़ है, कोमल मानवीय रिश्तों की बुनावट जितनी कुशलता से की गई है उतनी ही कुशलता से रिश्तों की टूट भी व्यक्त हुई है। आतंकित लोगों के सामूहिक मनोविज्ञान, जिम्मेदार पति की पत्नी के प्रति चिंता और व्यक्तिगत जीवन-रक्षा की भावना के बीच के द्वन्द्व, पत्नी लज्या की विवशता और पति की विवशता के बीच ममता को रख कर लेखक ने अच्छे और उत्कृष्ट द्वन्द्व को उभारा है। कुल मिला कर वेदराही की यह उत्कृष्ट कहानी है जिसमें कहीं कोई झोल नजर नहीं आता।

3.2.2.7.3. बर्फ कहानी में बड़ा आदमी बनने की महत्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए पत्नी की देह को सीढ़ी बना लेने वाले पति गोपी नाथ के घिनौनेपन पर वेदराही ने चोट की है। साथ ही साथ पत्नी की पीड़ा और पति के प्रति घृणा और उपेक्षा की मन:स्थिति का भी सशक्त चित्रण किया है।

गोपी एक सोचे समझे षड्यंत्र के तहत अपनी पत्नी को शराब पिला कर अफसर शादसाहब के हवाले कर देता है। लेखक ने पति द्वारा दिए गए धोखे से आहत पत्नी की मनोव्यथा का बड़ा भावपूर्ण चित्रण किया है। वह रात भर की सभी दुर्घटनाओं का स्मरण करती हुई यातना भोग रही है और प्रात: स्वयं को बर्फबारी की बौछारों में घिरी हुई महसूस करती है।

कहानी का अंत प्रतीकात्मक हो गया है। कहानी का कथानक विकास विवरण, 'फ्लैशबैक', स्मरण और प्रतीकात्मक वातावरण के चित्रण द्वारा हुआ है। व्यंग्य तीखा है। नारी का अन्तर्मन प्रतीकात्मक ढंग से व्यक्त हुआ है। पति के प्रति उसकी घृणा का सतर्क चित्रण किया गया है। उत्कृष्ट कहानी कही जा सकती है।

3.2.2.7.4. दुर्घटना में वेदराही ने विवाह से पूर्व किसी अन्य से दुल्हिन के यौन सम्बन्धों को कहानी का विषय बनाया है। हनीमून मनाने जा रहे नवदम्पति के परस्पर स्पर्शों को रोमांटिक दृष्टि से चित्रित किया गया है। बस में सफर कर रही पत्नी का आलस्य के कारण अंग-अंग ढीला है और जोड़-जोड़ खुल चुका है । पति के चाहने पर भी वह प्रकृति का नजारा नहीं देखती बल्कि शाल में गए पति के हाथ को वक्ष पर रखकर दबाए रखती है।

कहानी का विषय साधारण काम कुण्ठा की अभिव्यक्ति मात्र है। मध्यवर्गीय युवक की यौन सम्बन्धी ये कुण्ठाएं साधारण परन्तु स्वाभाविक हैं। वह चाह कर भी किसी लड़की से विवाह से पूर्व यौन सम्बन्ध नहीं स्थापित कर पाया और कुछ न कर पाने की दुर्बलता को महिमा

मण्डित कर रहा है। विडम्बना यह है कि वह अपने - आपको भाग्यशाली मानता है क्योंकि वह समझता है कि उसे अनछुई पत्नी मिली है जबकि उसका यही मान लेना उसके जीवन की सबसे बड़ी दुर्घटना है क्योंकि अभी भी पत्नी के हाथ में प्रेमी का दिया हुआ रुमाल खिड़की से बाहर फरफरा रहा है, जिसे वह हवा में उड़ा नहीं पाती।

नैतिक-अनैतिक के झमेले में पड़े बगैर देखें तो कहानी का 'टैक्सचर' और गठन सुदृढ़ और स्वाभाविक है। निम्मो के अन्तर्मन का चित्रण अच्छा है, अपने अवैध सम्बन्धों को छिपा लेना उसकी विवशता है जबकि उसकी प्रणय-प्रतिक्रियाएं अपना कच्चा चिट्ठा स्वयं ही खोल रही हैं, पति उसकी इन प्रतिक्रियाओं को समझे या न समझे यह महत्वपूर्ण नहीं। विवाह पूर्व के प्रणय-प्रसंग को दबा रही निम्मो की लगभग सभी प्रतिक्रियाएं मनोवैज्ञानिक धरातल पर उचित और तर्क-संगत हैं। कहानी अच्छी बन पड़ी है।

3.2.2.7.5. खास-उल-खास एक ऐसे कलाकार की कहानी है जो जीवन में संघर्ष करना नहीं चाहता । हां, वह हरेक ऐसी अय्याशी चाहता है जिसका स्वयं को हकदार समझता है परन्तु जो उसे मिली नहीं जबकि अपने से बड़ा हरेक आदमी उसे 'होक्स' लगा है। अपनी कुण्ठा के कारण जन्मी नफरत के कारण वह घटिया शराब पीकर अपने बच्चों और पत्नी को पीटता रहा है। भुखमरी से तंग आकर उसने आत्महत्या तक की सोची है। अंततः उसे संघर्ष से नफरत हो चुकी है और वह फिल्मी कलाकार नरेश कुमार का खामख्वाह खास-उल-खास बनकर दिखावटी जीवन जी रहा है। कलाकार नरेश कुमार के साथ-साथ घूमते फिरते हुए भी वह अपने प्रति लोगों की उपेक्षा और तिरस्कार को समझता है परन्तु नकार देता है। वह नरेश कुमार का बिना वेतन सैक्रेटरी है। वह चाहता है कि नरेश कुमार शादी करने की बजाए रोमांस लड़ाता रहे क्योंकि शादी के बाद उस की बीवी उसे घर के भीतर घुसने तक नहीं देगी। यदि कोई डायरेक्टर नरेश कुमार का लिहाज करके उसके सामने काम का प्रस्ताव रखता भी है तो वह डायरेक्टर से मिलने की अपेक्षा शराब पार्टी में जाना और नरेश कुमार से दस के नाम पर बीस रुपए लेकर गुजारा कर लेना बेहतर समझता है।

'खास-उल-खास' में लेखक ने फिल्म इण्डस्ट्री के बेकार परन्तु महत्वकांक्षी व्यक्ति की विवशता और चालाक हरामखोरी का करुण चित्रण किया है। हरामखोरी और शराब की लत के कारण वह काम के अवसर गंवा रहा है। उसके चरित्र की यह कमजोरी उसके प्रति करुणा की अपेक्षा व्यंग्य, उपेक्षा और तिरस्कार को ही पैदा करती है। 'टैक्सचर' की बुनावट में कोई कसर नहीं रही परन्तु 'टोन' भटक रहा है। अच्छी कहानी अंत तक पहुंचते-पहुंचते लड़खड़ा गई है।

3.2.2.7.6. आर्टिस्ट कहानी में वेदराही ने 25 वर्षों से फिल्मों में काम करते रहने वाले एक सफल और उत्कृष्ट अभिनेता के कला-जीवन के उतराव का चित्रण किया है और उसके जीवन में पैदा हुई तंगदस्ती और बदहाली का बड़ा त्रासद चित्रण किया है।

फिलहाल आर्टिस्ट रमा शंकर की विवशता यह है कि वह नौजवानों की जिज्ञासापूर्ण निगाहों और प्रश्नों के बीच से अपने इमेज को कैसे सुरक्षित रखे; कैसे अपनी निर्धनता और बदहाली को छिपाए और अतीत हो चुके महिमामण्डल को कैसे सुरक्षित रखे ? परन्तु जिस अदाकारी से वह इस स्थिति को संभाल लेता है उसे देखकर लेखक भी रोमांचित और चमत्कृत-सा होकर रह जाता है। कहानी का विकास सहज ढंग से हुआ है, टिप्पणियों और संवादों के माध्यम से कहानी बढ़ती है और बिना बहुत कुछ बोले ही अपने कथ्य को स्पष्ट कर जाती है। उत्कृष्ट कहानी है।

3.2.2.7.7. निष्कर्ष और उपलब्धि बेदराही की इन कहानियों के मूल्यांकन के आधार पर कहा जा सकता है कि इस दशक की हिन्दी कहानी के स्वरूप और संवेदना के विकास के लिए उनका योगदान बड़ा महत्वपूर्ण है। 'एक पुल था', 'दरार' और 'बर्फ' आदि कहानियों में उन्होंने नारी के हृदय का सशक्त और मर्यादित रूप प्रस्तुत किया है। 'दुर्घटना' में विवशताजन्य मानसिकता के कारण सच्च को अनकहा छोड़ रही नारी का रूप है जबकि 'खास-उल-खास' और 'आर्टिस्ट' में फिल्मी जीवन की त्रासदियों का सशक्त परन्तु अमुखर चित्रण है। सभी कहानियों के अपने-अपने तर्क हैं। लगभग सभी पात्रों से न्याय किया गया है, किसी का चरित्र-घात नहीं हुआ और मानवीय रिश्तों की टूटन को अच्छी सशक्त अभिव्यक्ति दी गई है। कहानी के 'टैक्सचर' के विकास के लिए किए शैलीगत प्रयोग भी सफल और सम्प्रेष्य रहे हैं।

3.2.3. कश्मीरी के लेखकों की हिन्दी में प्रकाशित कहानियां अक्सर कश्मीर के लेखकों ने कश्मीरी के साथ-साथ हिन्दी में भी कहानियां लिखी हैं और अपने आत्मकथ्य में इस तथ्य को स्वीकारा भी है। परन्तु दिक्कत यहां भी यही है कि प्रकाशित कहानियां मूलतया हिन्दी में लिखी गईं कि कश्मीरी से हिन्दी में अनुदित करके प्रकाशित की गईं।

सातवें दशक में कश्मीरी लेखक डॉ० हरिकृष्ण कौल की हिन्दी में छ: कहानियां 'दांव', 'ये चटोरे', 'नायक', 'विश्वास', 'हितचिंतक', 'गन्दी-बहार' 'हमारा साहित्य' के वार्षिक अंक 1964, 1965, 1966, 1967, 1968, 1969 में क्रमश: प्रकाशित हुई हैं। जबकि कश्मीरी लेखक डॉ० रत्न लाल 'शांत' की केवल एक हिन्दी कहानी 'तृप्त और अतृप्त' 'हमारा साहित्य' के अंक 1969 में प्रकाशित हुई है। यहां इन्हीं कहानियों का मूल्यांकन अपेक्षित है।

3.2.3.1. हरिकृष्ण कौल की कहानियों का हम प्रकाशन वर्ष-क्रम से मूल्यांकन प्रस्तुत कर रहे हैं इन कहानियों का विस्तृत विवेचन 'शिवालिक क्षेत्र में हिन्दी कहानी उद्भव और विकास' पुस्तक में देखें।

3.2.3.1.1. दांव कहानी में लेखक ने मध्यवर्गीय परन्तु महत्वाकांक्षी युवकों की अभावग्रस्त जिन्दगी के चित्रण के बहाने मित्रों के मन में घर करती जा रही अजनबियत को बुनने का सफल और सार्थक प्रयास किया है। कहानी का भावबोध नया है और कथानक-विकास की अपेक्षा टोन निर्धारित 'टैक्सचर' को महत्व दिया गया है।

अभावग्रस्त मित्र बुद्धिजीवी हैं, रेडियो के लिए नाटक लिख कर या ट्यूशन पढ़ा कर जेब खर्च की व्यवस्था कर रहे हैं और चाह कर भी किसी साहित्यिक पत्रिका का विशेषांक नहीं खरीद पाते और दुकानदार द्वारा अपमानित होने पर तिलमिला कर रह जाते हैं। दोनों ही युवकों ने अपनी-अपनी जेब में कुछ पैसे छिपा कर रखे हैं परन्तु आत्म-सुरक्षा की भावना से ग्रस्त वे परस्पर दूसरे की मदद नहीं करते। हां, वे मदद न कर पाने की झूठी विवशता और सहानुभूति का दिखावा करते हैं जबकि यही मित्र जुए में दो के चार, चार के आठ बना लेने की लालच और उकसाहट को दबा नहीं पाते।

कहानी में उकसाहट की मनोविश्लेषणात्मक प्रतिक्रिया और कौल की अनकही जरूरत तथा लालच का वर्णन तो है ही, कहानी के वाचक की अपनी उकसाहट भी अच्छी तरह व्यक्त हुई है। कहानी की भाषा 'टैक्सचर' को रूपायित करने वाली है, इसमें न बड़बोलापन है न निर्धनता को महिमामण्डित करने की वृत्ति, न कोई झूठा आक्रोश। मध्यवर्गीय युवकों की परस्पर मैत्री और महत्वाकांक्षाओं का सुगठित वर्णन हुआ है और मित्रों में आत्म-सुरक्षा की भावना के कारण उपजे अनकहे अजनबीपन की सशक्त अभिव्यक्ति हुई है। उत्कृष्ट कहानी है।

3.2.3.1.2. ये चटोरे कहानी में लेखक ने 'कन्ट्रास्ट' बुनने का यत्न किया है। प्रोफैसर सोमनाथ अनुभूतिप्रवण और आदर्शवादी व्यक्ति है जबकि उसकी पत्नी व्यवहारिक और दुनियादार स्त्री है।

प्रोफैसर की पत्नी बच्चे चमन के अभावों का कारण उसके मां-बाप की निर्धनता नहीं उनके चटोरेपन में मानती है और मानती है कि उसके मां-बाप खा पीकर पैसा उड़ा रहे हैं, बच्चे की चिंता नहीं करते। प्रोफैसर सोमनाथ इस बच्चे को अपनाना चाहता है तो उसकी पत्नी को अपना बांझपन सालता है। परन्तु फिर वह चमन की अपेक्षा अपनी बहिन के बेटे पिंकु को गोद लेने की बात करने लगती है।

कहानी में बच्चे चमन का स्वाभिमान अच्छा चित्रित हुआ है, उसके मां-बाप के प्रति किया गया व्यंग्य तीखा होने की अपेक्षा उपहास मात्र बन कर रह गया है। कहानी में कथोपकथन और स्थिति चित्रण अच्छा है परन्तु पात्रों का चरित्र-विकास और उद्देश्य अवरुद्ध-सा होकर रह गया है । प्रोफैसर की पत्नी के विचार बदलते नहीं, स्थिर-सा होकर रह गए हैं।

3.2.3.1.3. नायक कहानी में हरिकृष्ण कौल ने आदमी के खोखलेपन पर अच्छा व्यंग्य किया है। असंगत स्थितियों के चित्रण द्वारा ऊंच-नीच के भेदभाव की भावना, व्यक्ति-अहं और वर्गगत अहंकार को अभिव्यक्त करने के साथ-साथ तथाकथित सभ्य और सम्भ्रान्त व्यक्ति की गलाज़त पर चोट की है, अश्लील कामुकता को अंधेरे में छिपाए रखने की कुवृत्ति को खूबसूरती से चित्रित किया गया है। आदमी की छिपावल वृत्ति, चालाकी और वस्तु स्थिति से पलायन करने पर चोट की गई है। वैचारिक धरातल पर बहानेबाजी से कोई बहाना ढूंढ कर उपराम रह जाने की वृत्ति का सशक्त चित्रण इस कहानी का मूल कथ्य है।

कहानी 'अकहानी' आन्दोलन के शिल्प और संवेदना का अच्छा आभास देती है। आत्मचिंतन की शैली में आधुनिक जीवन की विसंगति और कला के क्षेत्र में आ गई विसंगति पर पैना व्यंग्य किया गया है। झूठे अहं के लुकाव-छिपाव और आदमी के भीतरी खोखलेपन की यह अच्छी कहानी है।'Unheroic Hero' कह कर ही लेखक आधुनिक जीवन में आदमी की अक्षमता की ओर संकेत कर रहा है। अच्छी व्यंग्य प्रधान कहानी है ।

3.2.3.1.4. विश्वास कहानी में लेखक ने बीमार बच्ची के पिता की चिन्ता का वर्णन करते हुए उसके मित्र डाक्टर द्वारा उसकी चिंता की उपेक्षा करने और अपने व्यक्तिगत स्वार्थ को महत्व देने की वृत्ति पर चोट की है। डाक्टर दहेज न मिलने की शंका से मंगनी तोड़ चुका है परन्तु अब पुन: जुड़वा देने के लिए बच्ची के पिता से याचना कर रहा है, जिसका मनोविश्लेषणात्मक चित्रण हुआ है।

डॉक्टर अपने प्रणय-प्रस्ताव के कारण बच्ची के पिता की बात की ओर ध्यान ही नहीं देता। दोनों के बीच असम्वाद की स्थिति है फिर भी सम्वाद चल रहा है। कहानी का 'टैक्सचर' और 'टोन' अच्छा है। डाक्टर और मरीज़ के रिश्तों में आए ठण्डेपन का डाक्टरों कें परस्पर के रूप-आर्कषण का और मरणशैया पर पड़े अनपढ़ मरीजों के पास खड़े-खड़े मसीहा समझे जा रहे डाक्टरों के छिछोरे प्रेमालाप का सशक्त चित्रण किया गया है और मरीज़ों के प्रति उनके अंगभीर रवैये पर तीखी चोट की गई है। कहानी की समस्याएं बहुआयामी हैं। डाक्टरों की उदासीनता का अच्छा व्यंग्यात्मक उद्‌घाटन हुआ है। रिश्तों के ठण्डेपन जैसी ही कहानी की भाषा भी ठण्डापन लिए हुए है। कहानी के कथ्य को भाषा की अपेक्षा मरीज़ों और पात्रों की प्रतिक्रिया ही ध्वनित कर रही है। अच्छी सशक्त कहानी है।

3.2.3.1.5. हितचिंतक कहानी में सहानुभूति की आड़ में भोली-सी लड़की के शारीरिक शोषण के लिए उत्सुक व्यक्ति की कुवृत्ति पर जोरदार व्यंग्य किया गया है। गिरधारी जया के पिता का अहसानमंद है, वह जया से विवाह करना चाहता था परन्तु बीच में जया की बड़ी बहिन भी थी। कश्मीर से बाहर वह भोपाल में सैटल हो गया है और अब विवाहित है, बच्चे भी हैं, आनंदमय जीवन जी रहा है। वह कश्मीर आया है और जया के पिता की दुखद जीवन स्थिति पर सहानुभूतिप्रवण हो जाता है।

एक भोली-सी लड़की को बरगला कर अपने रिश्तों को गलत मानने के लिए उकसा रहे गिरधारी के छिछोरेपन को ही कहानी के 'टैक्सचर' में बुना गया है, जिसमें गिरधारी अपना छिछोरापन बन्सी पर 'प्रोजैक्ट' करता प्रतीत होता है और मुंह बोली बहिन के नारी सौंदर्य पर आकर्षित हो रहा है। भाई बना गिरधारी जब उसके होठों का चुम्बन ले लेता है तो कहानी चमत्कारिक अंत पर पहुंचती है।

जया का गिरधारी द्वारा लिया गया चुम्बन गिरधारी के चारित्रिक खोखलेपन को तो खोल देता है परन्तु जया क्यों चुप रह जाती है ? यह अस्पष्ट रह गया है। कहानी के 'टैक्सचर' में कहीं न कहीं कोई कमज़ोरी है। कहानी का अंत व्यंग्यात्मक है परन्तु अधूरा है।

3.2.3.1.6. गन्दी बहार कहानी को 'हमारा साहित्य' के सम्पादक ने 'कश्मीरी कहानी' कहा है। कहानी में कश्मीर के ग्रामीण जीवन की उबाऊ और नीरस-सी जिंदगी का अच्छा सशक्त चित्रण हुआ है। ओमकार पटवारी है, गांव में पत्नी के साथ रहता है। ओमकार की पत्नी मैली कुचैली दिन भर कामकाज में लगी रहती है, जिसे देखकर नेरेटर सोचता है कि क्या उसका मन विद्रोह नहीं करता होगा? बच्चों की सांभ-सम्भाल करके उसकी पत्नी रात को अचानक साड़ी उतार कर सिर्फ पेटीकोट और ब्लाऊज में ओमकार के बिस्तर में जा घुसती है। वह देखता है और जुगुप्सा महसूस करता है, 'पशु भी पहले एक दूसरे को चाटते सूंघते हैं।'..........

कहानी में हैदर हंसमुख, खर्चीला, प्रकृति प्रेमी और ऊब से मुक्त है, उसे यांत्रिक जीवन को सार्थक बनाना आता है जबकि ओमकार और उसकी पत्नी को जीवन की यांत्रिकताजन्य ऊब का पता ही नहीं। वस्तुत: उन दोनों द्वारा अनपहचाना होने के बावजूद उन दोनों का जीवन यांत्रिक-सा होकर रह गया है। विडम्बना यह है कि दोनों में परस्पर प्रेम के क्षण भी यंत्रवत् संभोग के क्षण बन कर रह गए हैं।

कहानी वर्णन शैली में है। टिप्पणियों और सोच-विचार द्वारा कहानी को विकसित किया गया है। कश्मीर के ग्रामीण जीवन में धीरे-धीरे घर कर रही ऊब और यांत्रिकता को लेखक तो देख रहा है परन्तु ग्रामीणों को अभी तक इस स्थिति से कोई सरोकार नहीं।

3.2.3.1.7. निष्कर्ष और उपलब्धि कुल मिला कर कहा जा सकता है कि हरिकृष्ण कौल की इन कहानियों में कथानक के विकास की अपेक्षा 'टोन' निर्धारित 'टैक्सचर' को महत्व मिला है। कहानियों में संवाद और एकालाप या आत्मचिंतन की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। सीधे सादे विवरण से लेखक प्राय: बचता रहा है और पूर्व दीप्ति शैली या फैंटेसियों की ओर भी उसका विशेष रुझान नहीं। इन कहानियों की भाषा भी पूर्णतया गद्यात्मक है। हां, इन कहानियों में लेखक ने उद्देश्य को अमुखर रखा है। संवाद की अपेक्षा पात्रों की प्रतिक्रिया अधिक महत्वपूर्ण है। हिन्दी कहानी के क्षेत्र में 'दांव', 'विश्वास', 'गंदीबहार' का स्थायी महत्व माना जा सकता है।

3.2.3.2. डॉ० रत्नलाल 'शान्त' की इस दशक में मात्र एक कहानी प्रकाशित हुई है, जिसका मूल्यांकन प्रस्तुत है।

3.2.3.2.1. तृप्त और अतृप्त कहानी को 'कश्मीरी कहानी' कह कर 'हमारा साहित्य' अंक 1969 में प्रकाशित किया गया है। इस कहानी में कश्मीर के ग्रामीण परिवेश में रह रहे रिश्ते के दो भाइयों के परिवारों के साधारण जीवन का चित्रण किया है। एक परिवार अपने साधारण परन्तु अनुशासित जीवन में तृप्त है, उसकी आकांक्षाएं साधारण हैं, वह काफी सोच समझ कर खर्च कर रहा है और तृप्त है। जबकि उसी मकान में रह रहे दूसरे भाई का परिवार बराबर के वेतन के बावजूद अतृप्त है क्योंकि अतृप्त परिवार खर्चीला है, दिखावट और अय्याशी का शौकीन है। अपने भाई की कंजूसी और सात्विक व्यवहार का यह परिवार उपहास उड़ाता है और स्वयं दुखी रहता है। दोनों परिवारों में परस्पर 'कान्ट्रास्ट' बुन कर टिप्पणियों द्वारा कहानी

चुनी गई है।

कहानी काफी लम्बी है और फालतू के विस्तार के कारण कमज़ोर भी हो गई है. हां कश्मीरी हिन्दुओं के परिवारों के सदस्यों के परस्पर के रिश्तों. झूठे बड़प्पन के लिए अपने-आप को नुकसान पहुंचाने की वृत्ति, दावतों के खर्चे, दावतों में आने जाने के शौक और मामूली-सी शान दिखाने के लिए अपने ही सम्बन्धी की कोमल भावनाओं को ठेस पहुंचाने में न हिचकना, फिर इस हंसी उपहास की उपेक्षा करके अपने मार्ग पर बढ़ते रहने और जानते-बूझते हुए भी रिश्तों से जुड़े रहने की वृत्तियों का अच्छा और वर्णनात्मक चित्रण हुआ है। पारिवारिक जीवन के हंसी ठट्ठे और रूठ-मनौवल का भी अच्छा चित्रण हुआ है। कहानी का 'टैक्सचर' व्यक्तिगत चरित्र को उभारने की अपेक्षा परिवार के चरित्र के उद्घाटन की ओर बढ़ा है। साधारण कहानी है।

3.2.4. हिन्दी के लेखकों की हिन्दी में प्रकाशित कहानियां-1969 ई० में संतोष कौल का कहानी-संग्रह 'लक्ष्यहीन' प्रकाशित हुआ है। जो इस दशक का एक मात्र उपलब्ध हिन्दी कहानी संग्रह है। सातवें दशक में हिन्दी के अनेक नए कहानीकार उभरे हैं जो उर्दू, डोगरी और कश्मीरी के कहानी लेखकों जैसे कुशल तो नहीं परन्तु कहानी के विकास में योगदान देने के लिए उत्सुक जरूर हैं। 'हमारा साहित्य' के वार्षिक अंकों में नए हिन्दी कहानीकारों प्रकाशित कहानियों की सूची निम्नलिखित है -

लोचन बख्शी-'बेईमान का ईमान'

मनसाराम शर्मा 'चंचल'- 'ये बेरे', 'प्रायश्चित'।

विजय सुमन- 'मां'

दुर्गादत्त शास्त्री-'बहन की असीस'

उषा व्यास-'धुंधले शीशे'

कान्ता शर्मा-'अतृप्ति'

परन्तु हिन्दी के ये नये कहानीकार संभावना के स्तर से ऊपर नहीं उठ पाए, न ही उषा व्यास 'छवि' के अतिरिक्त कोई नाम कहानीकार के रूप में प्रतिष्ठित हो सका है। हिन्दी कहानी के विकास-क्रम में इन कहानियों का मात्र ऐतिहासिक महत्व है। इन कहानियों का मूल्यांकन निम्नलिखित है।

3.2.4.1. लोचन बख्शी ने काफी पहले कहानी लिखना छोड़ दिया है। उनकी एक मात्र प्रकाशित कहानी है, 'बेईमान का ईमान' जिसका मूल्यांकन प्रस्तुत है-

3.2.4.1.1. बेईमान का ईमान कहानी में रद्दी और बोतलें खरीदने वाले बूढ़े कबाड़ी के ढोंग और अधकचरी चालाकी का अच्छा चित्रण हुआ है। चरित्र-विकास पात्रों के संवादों, आत्म-परामर्श के स्वगत कथनों और टिप्पणियों के द्वारा हुआ है।

बूढ़े कबाड़ी की चाशनी भीगी बातों, संयमित व्यवहार और व्यापारिक ईमानदारी के कारण कहानीवाचक के हृदय में उसके प्रति सहानुभूति का भाव उभरता है। इसी सहानुभूति के कारण वह अपना नुकसान उठाकर भी बूढ़े की मदद करना चाहता है। बूढ़े के बाल-परिवार और सगे सम्बंधियों की कल्पना करके वह उसे पिता तुल्य समझता है और वैसा ही व्यवहार करना चाहता है जबकि बूढ़ा इस तरह के किसी मद् व्यवहार की अपेक्षा नहीं रखता।

रद्दी आदि खरीद कर बूढ़ा चला जाता है परन्तु अचानक उसकी ईमानदारी की पोल खुल जाती है क्योंकि उसकी फटी बोरी में से तराजू के नीचे लगाया गया चुम्बक गिर जाता है।

कहानी में व्यवसायिक बेईमानी और ऊपर-ऊपर से किए जा रहे ढोंग पर करारी चोट की गई है। बूढ़ा अपने ढोंग के कारण बड़ा निरीह लगता है और सहानुभूति का पात्र भी बन जाता है परन्तु अचानक उसकी बेईमानी प्रकट हो जाती है। जिससे कहानी वाचक का मन खिन्न हो जाता है। अच्छी चरित्र प्रधान कहानी है।

3.2.4.2. मनसाराम शर्मा 'चंचल' की दो कहानियां 'हमारा साहित्य' के वार्षिक अंक 1967, 1968 में क्रमशः प्रकाशित हुई हैं, जिनका मूल्यांकन निम्नलिखित है।

3.2.4.2.1. ये घेरे साधारण-सी कहानी है, जिसमें अनेक प्रश्न उछाले गए हैं- राधा के प्रति लोगों की छिछली सहानुभूति और उसी पर संदेह की वृत्ति, पुलिस की छीना झपटी और अत्याचार, राधा का अपराध-बोध में ग्रस्त हो जाना तथा शरमिंदगी महसूस करना आदि अनेक विचारों और स्थिति-चित्रण में लेखक उलझ-सा गया है। उसकी मानसिक पीड़ा, सभ्य संभ्रान्त के प्रति सहानुभूति तथा निर्दोष दलित वर्ग के प्रति क्रूरता आदि की अच्छी अभिव्यक्ति है परन्तु कहानी में मार्मिकता नहीं है।

3.5.4.2.2. प्रायश्चित कहानी में मध्यवर्गीय परिवार में प्रणय-विवाह की अस्वीकृति को चित्रित किया गया है। प्रणय-विवाह न कर पाने वाली बड़ी बहिन प्रायश्चित के रूप में छोटी बहिन का विवाह उसके मन-पसंद लड़के से करवा देती है परन्तु जीजा के हाथों अपमान झेलती है। कहानी टिप्पणियों, सम्वादों, स्मृति-चित्रण और आत्म-मंथन की पद्धति को अपना कर विकसित की गई है।

शोभा की मां और भाई प्रणय-विवाह के कट्टर विरोधी हैं। वे शोभा पर बंदिशें बढ़ा देते हैं क्योंकि वे उसे प्रेम-विवाह के प्रति उत्सुक अपराधिनी समझते हैं। शोभा न सुन्दर है न इतनी पढ़ी लिखी कि उसे अच्छा वर घर मिल सके, यह प्रणय-विवाह ही उसके लिए हितकर है परन्तु उसका प्रेमी कान्त भी तो अभी बेकार ही है। उधर बड़ी बहिन आत्मवंचना से ग्रस्त है क्योंकि विवशता के कारण वह अपने प्रेमी से विवाह नहीं कर सकी और किसी अन्य की पत्नी बनी है। ससुराल में उसका लम्बा चौड़ा उत्तरदायित्व है परन्तु वह अपने विवाह को मात्र नाटक, कपट और आत्मवंचन ही समझती है, इसी आत्मवंचना से मानसिक मुक्ति पाने के लिए वह शोभा का विवाह उसके प्रेमी से करवा देती है।

विवाह के बाद आर्थिक संकटों मे जूझने के कारण शोभा और कान्त को प्रेम के आदर्श खोखले और सारहीन लगने लगते हैं। इसी कारण कान्त हीनता की ग्रन्थि में ग्रस्त हो जाता है और शोभा से मार पिटाई करता है। अपनी कुण्ठा के कारण वह उसको मिले उपहार भी स्वीकार नहीं करता, शराब पीता है, एक बार तो शोभा की बड़ी बहिन का भी अपमान कर देता है जो शोभा को पढ़ा लिखा कर अपने पैरों पर खड़े होने के योग्य बनाने के लिए अपने साथ ले जाती है। अंततः कान्त भी सुधर जाता है।

कहानी आदर्शोन्मुख है, आत्म कथात्मक शैली में अभावग्रस्त और बेकार व्यक्ति के कुण्ठित हो जाने और कुण्ठा के कारण संदेहशील, लज्जाहीन, झगड़ालू, चिड़चिढ़ा और परनिंदक हो जाने का सशक्त चित्रण हुआ है। अंततः कान्त भी नौकरी पाकर लज्जाशील, सभ्य और सुसंस्कृत हो जाता है और पश्चातापग्रस्त होकर अपनी पारिवारिक जिम्मेदारी संभाल लेता है, सुखांत कहानी है।

3.2.4.3. विजय सुमन की एक मात्र कहानी 'मां' प्रकाशित हुई है। जिसका मूल्यांकन प्रस्तुत है।

3.2.4.3.1. मां कहानी में मरणासन्न मां की बीमरियों का जुगुप्सापूर्ण चित्रण करके करुणा को उपजाने का यत्न किया गया है। अभावग्रस्त पुत्र मां का इलाज नहीं करवा पा रहा और मां की मृत्यु के प्रति आशंकित है । लेखक ने पुत्र की हृदयस्थ भावना का अच्छा चित्रण किया है।

जुगुप्सा और करुणा को 'कांट्रास्ट' रूप में पिरोया गया है। कहानी अतिरंजना दोष के कारण कमजोर और अस्वाभाविकता दोष से ग्रस्त होकर रह गई है। जाने पहचाने कथा-अभिप्राय: और अंधविश्वास भी कहानी के स्थायी प्रभाव को कमजोर कर गए हैं। मृत्यु के उपरान्त क्रियाकर्म और अन्य खर्चों पर भी व्यंग्य किया है और मृत्यु के उपरान्त आत्मा की शांति के प्रति जिज्ञासा भी अभिव्यक्त हुई है। भावुकतापूर्ण कहानी है जिसका अंत अस्पष्ट रह गया है।

3.2.4.4. दुर्गादत्त शास्त्री की इस दशक में मात्र एक ही कहानी 'बहिन की असीस' 'हमारा साहित्य' के वार्षिक अंक 1968 ई० में प्रकाशित हुई है, जिसका मूल्यांकन प्रस्तुत है।

3.2.4.4.1. बहिन की असीस आदर्शवादी कहानी है। ड्राइवर सुजान सिंह के ट्रक से घायल हो कर प्रमोद बाबू अस्पताल में दम तोड़ देता है परन्तु सुजान सिंह के विरुद्ध बयान नहीं देता। सुजान सिंह पत्नी सहित उसकी सेवा करते हैं और बाद में प्रमोद के बच्चों का पालन पोषण करते हैं। सुजान सिंह निःसंतान है परन्तु प्रमोद की पत्नी को बहन बना कर घर में रखता है, उसके बच्चों पर खर्चा करता है। सुजान सिंह की पत्नी भी उसे ननद ही समझती है। सुजान सिंह के पुत्र होता है तो वह इसे बहन की असीस समझता है।

कहानी आदर्शोन्मुख है, वातावरण और सिख परिवार का अच्छा चित्रण हुआ है। पात्र उदात्त और मानवीय भावनाओं से गुम्फित हैं। पंजाबी भाषा का उपयोग तो ठीक है और पात्रों की मानसिकता और माहौल के अनुकूल है परन्तु शब्दों का रूप टकसाली नहीं है। कहानी संयोगों द्वारा विकसित होने के कारण सहज स्वाभाविक न होकर बनावटी-सी बन गई है। फिर भी

कहानी का 'टैक्सचर' अच्छा है।

3.2.4.5. कान्ता कुमारी शर्मा की एक मात्र कहानी 'अतृप्ति' 'हमारा साहित्य' के अंक 1969 ई० में प्रकाशित हुई है। मूल्यांकन प्रस्तुत है।

3.2.4.5.1. अतृप्ति कहानी में फैंटेसी का शिल्प अपनाया गया है। संवेदना और 'स्ट्रक्चर' की दृष्टि से कहानी ठीक ही है, भूख और अतृप्ति ही मानव-मात्र की उन्नति का कारण है, जिसे काफी अच्छी तरह दर्शाया गया है। यहां भौतिक सुख-सुविधा की तलाश में अपनी भूख प्यास को छोड़ कर भटक रही मानव-सभ्यता पर अच्छा तीखा व्यंग्य किया गया है। आदमी के पागलपन पर व्यंग्य ही सही परन्तु उद्देश्य की दृष्टि से कहानी अंत तक पहुंचते-पहुंचते अगति सूचक हो गई है।

3.2.4.6. उषा व्यास 'छवि' की एक मात्र कहानी 'धुंधले शीशे' इस दशक में प्रकाशित हुई है, जिसका मूल्यांकन प्रस्तुत है।

3.2.4.6.1. धुंधले शीशे 'हमारा साहित्य' के वार्षिक अंक 1969 ई० में प्रकाशित हुई है। कहानी दो सुहागिनों की व्यथा-कथा की परस्पर बुनाई के रूप में विकसित हुई है। गणेशी अशिक्षित मजदूरिन है, एक बच्चे की मां है, अपनी सौत, पति और सास द्वारा सतायी हुई है, मालिक भी उसे बुरी निगाह से देखता है। दूसरी सुहागिन पढ़ी-लिखी लैक्चरर है, प्रेम-विवाह करके पति के साथ हनीमून मनाने के बाद वह ससुराल जाती है तो पता चलता है कि उसका पति तो पहले से ही शादी शुदा है और दो बच्चों का बाप है।

वह अपनी सौत के भोलेपन, पति के प्रति उसके विश्वास और सद्व्यवहार से प्रभावित होकर उसके बच्चों के सुखद भविष्य की रक्षा के लिए अपना सुहाग छोड़ देती है। वह पति के विश्वासघात से दुखी है और उससे घृणा करती हुई उसे त्याग कर चली आती है।

गणेशी अपने बच्चों के पालन पोषण के लिए मेहनत कर रही है तो यह सुहागिन कालिज लैक्चरर भी बेटे को पढ़ा लिखा कर कृषि विशेषज्ञ बना देती है। बेटा विदेश से घर आ रहा है और वह अपने अतीत के स्मरण में लग जाती है। जीवन की अनेक मधुर और कटु स्मृतियां उसे घेरे हुए हैं।

यहीं से कहानी 'फ्लैशबैक' और भविष्य-कल्पना के दोहरे सूत्रों से पिरोयी गई है और संघर्षशील नारी की नारी-जाति के प्रति करुणा, देश के निर्धन लोगों और कृषकों की उन्नति की चिंता आदि अनेक समस्याओं से जुड़ जाती है और उसे मेज के शीशे पर टपके दो आसुंओं में से एक में बेटे शिरीष का हंसता मुस्कराता चेहरा दिखता है तो दूसरे में पश्चातापग्रस्त पति अमित का प्रतिबिम्ब ।

'धुंधले शीशे' उत्कृष्ट कहानी कही जा सकती है। संवाद, भाषा, गठन और सार्थक जीवन-दृष्टि के साथ-साथ नारी के अन्तर्मन की सशक्त अभिव्यक्ति इस कहानी में हुई है। चरित्र-विकास, वातावरण और पात्र के अन्त:, बाह्य स्वरूप का गुम्फन काफी अच्छा बन पड़ा है। संघर्परत नारी की गरिमा का हृदयग्राही चित्रण हुआ है। कहानी पढ़ते हुए मोहन राकेश की

कहानी 'सुहागिनें' का स्मरण हो आता है, फर्क यह है कि ये दोनों सुहागिनें पतियों के साथ-साथ अपनी अपनी सौतों से भी प्रभावित हो रही हैं।

3.2.4.7. **संतोष कौल** सातवें दशक में 'इस हमाम में' के अतिरिक्त फिलहाल एक मात्र उपलब्ध कहानी-संग्रह 'लक्ष्यहीन' प्रकाशित हुआ है। 12 कहानियों के इस संग्रह की लेखिका संतोष कौल ने मानवजीवन की लम्बी कहानी के कुछ क्षणों की स्मृति को कलम की तुलना से तोलने को कहानी कहा है। 'लक्ष्यहीन' की कहानियां लेखिका के प्रथम प्रयास हैं। इन कहानियों में कथानक का विकास संयोगों पर आधारित है, इनमें भावुकताजन्य अस्वभाविकता है, कहीं-कहीं पात्रों का गैरजिम्मेदाराना रवैया भी उभर आता है, मनोवैज्ञानिक कुण्ठा के नाम पर पात्र असामाजिक हो उठे हैं, टिप्पणियों द्वारा कहानी का विकास और पात्रों का चरित्र-चित्रण किया गया है, परन्तु ये टिप्पणियां कहानी में रच पच नहीं सकीं। फिर भी कुछ कहानियों की मौलिकता को नकारा नहीं जा सकता, इन कहानियों का मूल्यांकन निम्नलिखित है -

3.2.4.7.1. **जूठा दूध** कहानी में रमा untouched और Virgin नहीं जूठे दूध की तरह लुटी हुई परित्यक्ता है, जो अपनी जिन्दगी को बेमतलब और निराधार समझती है क्योंकि उसका सौंदर्य और आकर्षण जूठा हो चुका है।

कहानी का आरम्भ जितना आकर्षक और समस्या प्रधान था अंत तक पहुंचते-पहुंचते उतना ही अधिक गैरजिम्मेदाराना हो गया है। शायद लेखिका रमा के सौंदर्य और रूप-आकर्षण में फंसे अधेड़ व्यक्ति की वासना को उद्घाटित करना चाहती है। रमा भी अपनी शिष्या के पिता से यानी पराए पुरुष से इतनी अन्तरंग बातें करती है जो अस्वाभाविक और misplaced प्रतीत होती हैं।

3.2.4.7.2. **परिचय** कहानी में बस की सवारियों की परस्पर बातचीत में बस की भीड़भाड़, बढ़ती आबादी, मंहगाई, लड़कियों की फैशन परस्ती और उनसे छेड़-छाड़ की बढ़ रही प्रवृत्ति पर चोट करने के साथ वर्गगत सहानुभूति का चित्रण हुआ है और भारत-विभाजन के दौरान परिवार से बिछुड़े युवक की पीड़ा और परिवार की तलाश में हो रही भटकन को भी उकेरा गया है।

कहानी एकाधिक समस्याओं को समेटती हुई स्वयं बिखर गई है। ये समस्याजाल प्रभावान्विति में अवरोधक बन गया है। कहानी को निश्चित उद्देश्य की ओर ले जाने के लिए संयोगों का सहारा लिया गया है। हां, सामाजिक विकृतियों और समस्याओं को मनोवैज्ञानिक जरूरतों के अनुरूप ढालने का यत्न सफल है।

3.2.4.7.3. **यादें** कहानी में शहीदों की मां की आंतरिक पीड़ा का करुण चित्रण हुआ है। अतीत-स्मरण के रूप में बुढ़िया के दु:खों और शहीदों के सद्कर्मों को बुना गया है। परन्तु 'यादें' कहानी बन ही नहीं सकी बल्कि यह भावुकता पूर्ण निबन्ध ही कही जा सकती है।

3.2.4.7.4. **लौ** कहानी में 'जूठा दूध' कहानी की पृष्ठभूमि पुन: उभर कर सामने आई है। परित्यक्ता राधा के प्रति प्रेम होने के बावजूद नायक समाज का प्रतिरोध नहीं कर सका, वह अपनी

इस कायरता के कारण दुखी भी है। वह पुरुष के अहं और पौरुष की आंच के समक्ष नारी को झुकी हुई देखना चाहता था और अपनी इसी प्रवृत्ति पर दुखी है और अपराध-बोध से ग्रस्त है।

उसके अपराध-बोध की दूसरी पर्त यह है कि वह अपनी विवाहिता को भी नहीं अपना पाया, उसे सुहागरात का सुख भी नहीं दे सका, मात्र अपनी कुण्ठाओं के कारण वह पत्नी को अपनी पीड़ा में सांझीदार नहीं बना पाया। 'हार्ट अटैक' से वह मर जाता है तो उसका मित्र उसके घर पहुंचता है और देखता है कि उसी की प्रेमिका इस मृत सैनिक की पत्नी है।

कहानी में भावुकता दोष है और उद्देश्य के अनुरूप संयोग पैदा कर लिया गया है, चरित्र का विकास कार्य की अपेक्षा स्मृतियों के रूप में नियोजित है।

3.2.4.7.5. गांव में कहानी वर्णनात्मकता के लिहाज से अच्छी कहानी है। ग्रामीण सौंदर्य का अच्छा चित्रण है और यह चिंता भी स्पष्ट झलकती है कि शहरियों द्वारा ग्रामीण वातावरण और आचार-विचार बरबाद किया जा रहा है। कहानी के बीच कहानी कहने की प्रवृत्ति के कारण भाव की एकतानता में बाधा आई है, ऊपर-ऊपर से लादी गई स्थितियां और तर्कहीन बहानेबाजी कहानी में दरारें पैदा कर देती है।

नूरी और उसके पिता का चरित्र अच्छा और उदात्त है जबकि करीम बने विश्वनाथ की विलासिता को स्पष्ट न करके बुना गया बहाना कहानी को फिल्मी लेखन के लटकों से भर देता है। अच्छी भली कहानी संयोगों और बहानेबाजी के कारण बरबाद हो गई है।

3.2.4.7.6. जवाब साधारण सामाजिक कहानी है, जिसमें पुरुष धोखा देकर अपनी प्रेमिका से विवाह कर लेता है। प्रेमिका भी विवाहोत्सुक है क्योंकि उसने न तो प्रेमी की निम्नजाति की और न ही उसके दुहाजू होने की चिंता की है। वह यह भी नहीं जानना चाहती कि उसकी पत्नी कब, क्यों और कैसे मरी ? परन्तु यहीं यह प्रेमिका धोखा खा जाती है क्योंकि प्रेमी की पूर्व पत्नी तो अभी जीवित ही है।

कहानी ठीक ही है, संयोग यहां भी हैं और पात्रों का चरित्र-विकास भी कठपुतलीवत् ही है। उनके अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण नहीं हुआ। कोई औरत इतनी आसानी से पति के दूसरे विवाह को स्वीकार नहीं कर पाती, जिस व्यंग्य भाव से गौरी ने स्वीकार किया है।

कहानी नारी के प्राकृत स्वभाव के विपरीत चली गई है। हां, यह तथ्य अवश्य उभर आया है कि विवाह सोच समझ कर करना चाहिए, जल्द-बाजी में धोखा भी मिल सकता है।

3.2.4.7.7. लक्ष्यहीन कहानी में विलासी, उच्छृंखल व्यक्ति के दायित्वहीन जीवन से दुःखी उसकी पत्नी की व्यथा का चित्रण हुआ है। यह कहानी भी संयोग द्वारा विकसित हुई है।

बेटी अपनी मां को सजने संवरने और हंसमुख रहने की बात कहती है जबकि मां सामाजिक व्यवहार और नैतिकता का हवाला देती है। कहानी में बेटी और मां की परस्पर चर्चा काफी लम्बी तथा उबाऊ है । मां वस्तुत: अपने पति की उच्छृंखलता से दुखी है, पति उसके पास रहता नहीं।

पति की स्थिति यह है कि वह अपने दफ्तर की सुन्दर लड़कियों और ब्याहताओं के रूप-आकर्षण में फंसा हुआ है। वह तो अपनी बेटी को भी नहीं पहचानता और उसी पर आशिक हो जाता है। उसे मिलने वह उसके घर भी जाता है परन्तु वस्तुस्थिति का पता चलते ही भाग खड़ा होता है।

कहानी में बुजुर्ग सरवाल के चरित्र पर तीखी चोट की गई है। वार्तालाप लम्बे और बोझिल हैं परन्तु कथ्य को विकसित करते चलते हैं। नवयुवती चंचल की नारी सुलभ आत्म रति और प्रणयाकांक्षा का अच्छा चित्रण हुआ है। मां का चरित्र भी अच्छा है। बुजुर्ग आदमी के गैरजिम्मेदाराना व्यवहार पर अच्छी चोट है परन्तु उसकी विलासिता का कारण पुन: 'विश्वनाथ' की जैसी मानसिक उलझनों और दुर्बल प्रकृति में ढूंढा गया है, जो युक्तिसंगत नहीं लगता।

3.2.4.7.8. सुबह का भूला कहानी गठन की दृष्टि से अच्छी कहानी है, जिसमें घृणा और प्रेम का द्वन्द्व अच्छा बन पड़ा है। मुहम्मद अली के चरित्र में चमत्कारी परिवर्तन होता है, छैल-छबीला उच्छृंखल व्यक्ति फौज में भरती होकर दुश्मन का सामना करके महान हो जाता है।

परन्तु उसे धोखाबाज़ी करते, जुआ खेलते, झूठ बकते और चापलूसी करते हुए देखने वाली युवती के मन में अभी भी उसके प्रति घृणा मौजूद है। वह उसे महान् स्वीकार ही नहीं कर पा रही ।

नाला पार करते हुए वह फिसल गई तो बाजुओं में उठा कर मुहम्मद अली उससे प्रेम निवेदन करता है जबकि वह उसे पानी में धक्का देकर भाग आती है। भीगा हुआ मुहम्मद अली रात्रि के समय उसी के घर आ गिरता है। तब अपराध-बोध से घिरी हुई वह उसे गर्माहट पहुंचाने के लिए उसके बिस्तर में घुस जाती है और धीरे-धीरे अपने ही कपड़े खोल देती है और मुहम्मद अली से चिपट जाती है।

आत्म कथात्मक शैली में कही गई यह उत्कृष्ट कहानी है। मुहम्मद अली को घृणा करने वाली लड़की उसके देश प्रेम से प्रभावित हो जाती है और मन ही मन मुहम्मद अली से प्रेम करने लगती है और बहाने से ही सही वह शारीरिक समर्पण कर देती है।

हां नाले के प्रसंग का वर्णन 'बुद्धु का कांटा' कहानी का स्मरण करा देता है। नारी के अन्तर्द्वन्द्व का अच्छा मनोविश्लेषणपरक चित्रण हुआ है।

3.2.4.7.9. बयान कहानी में देशभक्ति और पति-प्रेम के बीच के द्वन्द्व को बुना गया है। गठन के लिहाज से यह अच्छी कहानी है। देश-भक्ति की भावना के वशीभूत पत्नी स्वयं ही अपने गद्दार पति की हत्या कर देती है और अदालत में अपना अपराध स्वीकार करती हुई बयान के रूप में सारी कहानी सुना देती है।

कहानी टिप्पणियों, अतिरिक्त भावुकता और अतिरिक्त दमन के कारण थोड़ी कमज़ोर भी पड़ गई है, फिर भी संदेहशील पत्नी की उत्सुकता का अच्छा वर्णन हुआ है। देशभक्ति की उदात्त भावना का भी कुशल चित्रण हुआ है।

3.2.4.7.10. पंछी उड़ गया कहानी में 14 वर्षीय कातिल को मृत्यु दण्ड देने के कारण जंज दुखी है। कातिल निर्लिप्त भाव से सज़ा सुन लेता है, जबकि वह निरपराध है, परन्तु अपराधी बने रहना चाहता है। इसी द्वन्द्व के बीच कहानी बुनी गई है।

अज्ञेय की मनोविश्लेषणवादी कहानियों से प्रभावित यह असफल कहानी है। पात्र चयन कमज़ोर है और कहानी अस्वाभाविक दोष से ग्रस्त है। वल्कि अस्भाविकता दोष और संयोगों के कारण कहानी फिल्मी कथानक होकर रह गई है जो पूर्णतया विकसित नहीं हो सका।

3.2.4.7.11. सिर्फ एक शर्त पर में भूत-प्रेतों के भय का मनोविश्लेषणात्मक चित्रण हुआ है। कहानी के बीच कहानी कहने की वृत्ति यहां भी मौजूद है। औरतों की परस्पर बातचीत के माध्यम से भूत-प्रेतों के आसपास के रहस्यमय वातावरण की अच्छी बुनाई हुई है। डर का चित्रण सहज है और मनोविश्लेषणवादी जरूरतों के अनुरूप है। कहानी सहजता से चरम बिन्दु की ओर बढ़ी है। अच्छी कहानी है।

3.2.4.7.12 देखने पर कहानी में भी भूत-प्रेतों और जादू टोने के वहम का चित्रण हुआ है। भूत-प्रेतों की मौजूदगी और जादू टोने का वर्णन वार्तालाप के माध्यम से हुआ है। भूत-प्रेत के साये के कारण पगला गई औरत के प्रति सहानुभूति का भी वर्णन हुआ है। कहानी का उद्देश्य सहजता से और रोचकता से स्पष्ट कर दिया गया है। परन्तु पत्नी की पति को डराने की मंशा स्पष्ट नहीं होती, न ही पगला गई औरत के किसी मनोचिकित्सीय कारण का द्योतन हुआ है। खैर जो है, उसी में कहानी सफल और बिना किसी दरार की है।

3.2.4.7.13. निष्कर्ष और उपलब्धि कुल मिला कर कहें तो संतोष कौल की कहानियों में मनोविश्लेषणवादी कुण्ठाओं के कारण उपजे व्यवहार का चित्रण तो है परन्तु ऐसे व्यवहार के कारणों को नहीं खोजा गया। सामाजिक समस्याओं की ओर मात्र संकेत किए गए हैं। फिर भी गठन, भाषा और अन्तर्द्वन्द्व की दृष्टि से 'सुबह का भूला' उत्कृष्ट कहानी है।

3.3. उपन्यास : सातवां दशक'

सातवें दशक में जम्मू-कश्मीर में हिन्दी में कोई विशेष उपन्यास प्रकाशित नहीं हुआ।

क्षेमलता बख्लू के दोनों उपन्यास 'झील और कमल', 'कश्मीर की धरती' क्रमशः 1967, 1968 में प्रकाशित हैं। इसी दशक में उपन्यास 'प्रतिदान' और 'उपासना' भी प्रकाशित हुए हैं परन्तु क्षेमलता बख्लू के दोनों उपन्यास फिलहाल अनुपलब्ध हैं। अतः शेष दोनों उपन्यासों का मूल्यांकन प्रस्तुत है। वस्तुतः उषा व्यास 'छवि' का 1968 ईस्वी में प्रकाशित उपन्यास 'प्रतिदान' इस दशक की एक मात्र उपलब्धि कहा जा सकता है जबकि 'उपासना' का प्रकाशन 1970 ई० में हुआ है।

3.3.1. प्रतिदान उपन्यास में पात्रा ऋतु की समूची जीवन-व्यथा को चित्रित किया गया है परन्तु इसे उपन्यास की नायिका नहीं कहा जा सकता क्योंकि यह स्वयं परिस्थितियों से मात्र विवश पात्र है। श्यामल की वृद्धा मां इसे भोली-भाली ग्रामीण युवती समझ कर अपने घर में रख लेती है ताकि यह शहरी गंदगी और कुदृष्टि से बची रह सके। ऋतु का सेवाभाव और

मालकिन का उसके प्रति स्नेहभाव ही दोनों के बीच ऐसी कड़ी है जो ऋतु को उसी घर की सदस्या बना देती है। ऋतु को अपनी मां की कोमल स्मृतियां और मृत भाई का स्मरण इस घर से जोड़े रखता है।

श्यामल पूना में नौकरी कर रहा है, वह सुसंस्कृत युवक है। श्यामल के पुराने सहपाठी की मौसेरी बहन दीपा उसके प्रति आकर्षित है, दीपा की मां भी उसके आकर्षण को पुख्ता करने के अवसर देती है क्योंकि श्यामल उसे भी पसंद है। परन्तु श्यामल दीपा को छिछोरी, फैशनग्रस्त लड़की ही समझता है और भरसक उससे कतराता है। श्यामल जब भी उसके घर जाता है, वह प्रणय निवेदन-सा करती प्रतीत होती है।

श्यामल ऋतु के सेवा भाव और स्नेहिल व्यवहार से प्रभावित होता है । वह ऋतु द्वारा भेजी राखी मां को दिखाता है। मां-बेटे दोनों को ऋतु प्रिय लगती हैं, दोनों ऋतु को अपने अपने ढंग से अपना लेते हैं।

पूना में श्यामल को पड़ौसिन भाभी चाय-पानी देती है, दोनों के बीच श्रद्धा और स्नेह का रिश्ता है। उधर उसकी बीमारी के बारे जानकर दीपा रात भर जाग-जाग कर श्यामल की तीमारदारी करती है और उसे लुभाने के सभी यत्न करती है। परन्तु दीपा के प्रति श्यामल के विचारों में कोई परिवर्तन नहीं आता। जब दीपा की मां बीमार हो जाती है तो व्यवहार के नाते श्यामल मिलने जाता है परन्तु दीपा को मां की चिंता नहीं, वह तो श्यामल का सान्निध्य चाहती है, जिससे वह कतराता है। दीपा की बीमार मां भी उसे दीपा से विवाह का प्रस्ताव रखने का यत्न करती है, परन्तु श्यामल स्थिति भांप कर उठ कर चला जाता है।

श्यामल की मां को देहरादून से आया रिश्ता पसंद है और श्यामल भी मां की इच्छा को स्वीकार कर लेता है। विवाह हो जाता है परन्तु श्यामल के मन में दीपा के प्रणय-निवेदन को अस्वीकार करने का अपराधबोध है। इसी अपराधबोध से ग्रस्त वह पत्नी की ओर देखता तक नहीं। जब दुल्हिन स्वयं ही घूंघट उठा देती है तो दीपा को देखकर श्यामल क्रोधावेश से ग्रस्त हो जाता है । उसे लगता है कि दीपा आदि ने उसे धोखा दिया है। जबकि दीपा का तर्क है कि उसे भी इस स्थिति का पता नहीं था, मामा ने शादी कर दी तो वह विवश दुल्हिन बन गई। परन्तु श्यामल उसे स्वीकार नहीं कर पाता।

ऋतु उन्हें निकट लाने का बहुतेरा यत्न करती है परन्तु श्यामल से मिले अपमान के कारण दीपा उच्छृंखल हो उठती है। वह घर का कोई काम नहीं करती, सास ननद से ठीक व्यवहार नहीं करती। पति-पत्नी में मन मुटाव चलता रहता है, समझौता कराने की ऋतु की कोशिशें व्यर्थ चली जाती हैं।

एक दिन बर्तन साफ करने वाली महरी दीपा को बता देती है कि ऋतु श्यामल की सगी बहिन नहीं। तब ऋतु के प्रति दीपा का व्यवहार बदल जाता है, वह नौकरानी समझ कर उससे काम लेती है। अंततः दीपा श्यामल और ऋतु के बीच के भाई बहिन के पवित्र रिश्ते पर संदेह करती है। ऋतु को इससे बड़ा दुख होता और वह घर छोड़ देती है।

ऋतु लखनऊ में ठाकुर साहब के पोते विक्की की आया बन जाती है। ऋतु का स्वभाव कोमल है, बिन मां का बच्चा विक्की उससे घुलमिल जाता है और उसे ही मां समझने लगता है, ऋतु भी दयावश और ममत्व के कारण उसे पुत्रवत् प्रेम करती है। ठाकुर साहब भी ऋतु के व्यवहार और शान्त पवित्र व्यक्तित्व से प्रभावित हो जाते हैं और उसे बेटी तुल्य प्रेम देते हैं।

ऋतु के मन में विक्की के पिता के प्रति सहानुभूति है क्योंकि वह मृत पत्नी की स्मृतियों में खोया रहता है, उसके समक्ष ऋतु नारी-सुलभ लज्जाशीला है। विक्की का पिता धीरे-धीरे ऋतु के प्रति आकर्षित हो जाता है, ऋतु के मन में भी कोमल भावना है परन्तु वह प्रकट नहीं करती न ही इस आकर्षण को टाल पाती है।

उधर दीपा के प्रति श्यामल और अधिक क्रूर हो जाता है, दीपा की उच्छृंखलता और आवारागर्दी बढ़ती जाती है और एक दिन श्यामल उसका गला पकड़ लेता है, उस पर पिस्तौल तान देता है क्योंकि वह न उसके काबू में रहना चाहती है न घर छोड़ देने के लिए तैयार है। अंततः श्यामल के क्रोधावेश से डर कर दीपा उसका घर छोड़ कर कहीं चली जाती है।

श्यामल की मां ऋतु के वियोग और पुत्र की गृहस्थी की बरबादी को न सहन करती हुई एक दिन देह छोड़ देती है और मरते-मरते श्यामल को देशभक्ति का स्मरण कराती है, उसे भारत माता के हवाले कर देती है।

श्यामल भारत माता को ही अपनी मां समझने लगता है और पाकिस्तान के हमले के दौरान सेना में भरती हो जाता है। लेफ्टीनैंट बना श्यामल बड़ी बहादुरी से लड़ता है। अंततः निहत्था ही शत्रु से मुठभेड़ करता है, उसे खत्म कर देता है, शत्रु मरता-मरता भी उसे शदीद जख्मी कर देता है।

ऋतु के पूछने पर विक्की का पिता राजेश बताता है कि कोई सैनिक बड़ा शदीद घायल हुआ है, खून की कमी के कारण मरणासन्न है, उसके ग्रुप का खून मिल नहीं पा रहा।

वह आया के दर्जे से ऊपर उठ कर घर की सम्मानित सदस्या बन गई है। राजेश को अपने प्रति आकर्षित समझती है, स्वयं भी मन ही मन राजेश को समर्पित है। शारीरिक समर्पण की अपेक्षा मन के समर्पण को विशेष महत्त्व देती है ।

ऋतु का खून घायल के खून के ग्रुप से मेल खा जाता है। डाक्टर उसे बधाई देता है और वह सेवा भाव से उत्साहित होकर काफी खून दे देती है। घायल के प्राण बच जाते हैं परन्तु खून अभी और चहिए। डाक्टर कहता है कि ऋतु के शरीर से और अधिक खून लेना उसके लिए खतरनाक है परन्तु वह डाक्टर को उत्साहित करती है कि भारत माता की रक्षा के लिए, देश के जन-जन की रक्षा के लिए घायल हुए सैनिक के प्राण उसके प्राणों से अधिक मूल्यवान हैं!

उधर नर्स बन गई दीपा ऋतु की सेवा करती है, उससे अपने किए की क्षमा मांगती है, ऋतु भी दीपा के प्रति पुनः करुण हो जाती है और उसे भाभी का दर्जा दे देती है। दीपा नहीं जानती कि श्यामल कहां है ? उसे तो इतना ही पता है कि मां मर गई थी।

घायल सैनिक को होश आ जाता है। डाक्टर उससे मिलता है और ऋतु के बलिदान की चर्चा करता है, घायल अपने प्राण दाता को देखना चाहता है। जैसे ही घायल ऋतु को देखता है तो चिल्ला उठता है जीजी-जी----जी तुम कहां चली गई थी। ऋतु आंखें खोलती हैं और देखती है कि घायल सैनिक श्यामल है।

यहां भाई बहिन का मिलन बड़ा करुणोत्पादक है। श्यामल को देख कर नर्स बनी दीपा उसके पावों में पड़ जाती है। परन्तु श्यामल उसे क्षमा करने के लिए तैयार नहीं। ऋतु ही दीपा को क्षमा करवा देती है। श्यामल दीपा को पत्नी के रूप में स्वीकार कर लेता है।

श्यामल ऋतु के प्रतिदान को देख कर विशेष प्रभावित है। ऋतु रक्तदान को नमक हलाली का सबूत सिद्ध करती हुई प्राण त्याग देती है। राजेश, श्यामल, दीपा, ठाकुर साहिब, विक्की और डाक्टर सभी उसके बलिदान पर अश्रु बहाते रह जाते हैं।

उपन्यास के कथानक का गठन सशक्त है। पात्रों के चरित्र-विकास और क्रिया-प्रतिक्रिया के लिए पुख्ता मनोवैज्ञानिक आधार प्रस्तुत है। कथानक के मोड़ों की स्थितियां काफी जानी पहचानी लगती हैं। इसी कारण कहीं-कहीं कथारूढ़ियों के उपयोग का आभास होता है। कथाविकास में और पात्र के चरित्र तथा मन:स्थिति के विश्लेषण में कहीं-कहीं 'फ्लैशबैक' पद्धति का अच्छा उपयोग हुआ है।

ऋतु और श्यामल के चरित्र में उदात्त तत्वों और आदर्श को पिरोने के लिए किसी विशेष अन्तर्द्वन्द्व को चित्रित नहीं किया गया, उन्हें सहज ही आदर्श चरित्र मान कर प्रस्तुत किया गया है।

लेखिका ने ऋतु के प्रति लिखा भी है ''इस कृति की नायिका धीरता, वीरता, सौम्यता, विनम्रता तथा गांभीर्य की प्रतिमूर्ति ऋतु को मैंने बहुत निकट से देखा और जाना है। उसके नयनों में मैंने सदैव सजलता पायी है, कभी हर्ष की कभी विषाद की। कर्त्तव्य को ही अपना चरम लक्ष्य मान उसे पालती हुई सुख दु:ख की इन्द्रधनुषी छाया में जीवन बिता वह लौट गई ....।'' वह आगे लिखती है कि नारी उत्सर्ग एवं ममत्व का प्रतिरूप है। उसके जीवन का सार्थक्य इसी में है कि वह अपनी ममता की शीतल स्निग्ध छांव में इस पीड़ित विश्व को दुलराए। ऐसा मेरा अपना विश्वास है....''

दीपा की मां का व्यक्तित्व भी अनुभूति और कर्त्तव्य के इन्हीं धागों से बुना गया है। दीपा ही भटकी हुई नारी है, जो आधुनिका है और फैशन-परस्त है, वह सेवा, श्रद्धा, स्नेह का दिखावा करके श्यामल को आकर्षित करना चाहती है। दीपा रूप- गर्विता है जो श्रद्धा, सेवा, प्रेम से श्यामल को अपने वश में नहीं करती, बल्कि पति से मिली उपेक्षा को अपना अपमान समझ कर उच्छृंखल हो जाती है। अंतत: वह अपनी मूर्खताओं के लिए क्षमा मांगती है तो उसके हृदय-परिवर्तन को देखकर ही ऋतु उसकी सिफारिश करती है, श्यामल उसे क्षमा कर देता है।

श्यामल का चरित्र भी आदर्श पुरुष वाला चरित्र है। वह मां के प्रति श्रद्धालु है, दीपा की मां के प्रति वह सम्मानजनक व्यवहार करता है, पड़ोसिन के प्रति श्रद्धा और स्नेह रखता है, जूठन खा रही भिखारिन स्त्री को सम्मान देता है, उसे ऋतु के लिए खरीदी साड़ी तक दे देता है। ऋतु

के प्रति उसका प्रेम अटूट है। वह कर्त्तव्य परायण और व्यवहारिक व्यक्ति है, जो अपने विचारों के प्रति दृढ़ तथा दृढ़ संकल्पी भी है। युद्ध क्षेत्र में वह अनुशासित सैनिक है और अपनी सेना की टुकड़ी का वह आदर्श नायक है। वीर पुरुष के गुण उसमें मौजूद हैं।

पुरुष पात्रों में ठाकुर साहिब का भी महत्व है। वह ममतामय दादा है, बाप है और नौकरों का संरक्षक स्वामी है, वह मृत वहु के प्रति ममत्व रखता है और उसकी निशानी विक्की को बड़े प्रेम से पाल रहा है, पुत्र राजेश के प्रति उसका व्यवहार मैत्रीपूर्ण है। वह अपनी पीड़ा को वीणा की झंकार में घुला देता है। वह विक्की के लिए ऋतु को आया के रूप में रखकर ही निश्चिंत नहीं हो जाता बल्कि ऋतु को निगरानी करने के बाद ही संतुष्ट होने पर बेटी तुल्य स्वीकारता है और उसकी सुख सुविधा का ध्यान रखता है।

ठाकुर साहिब का बेटा राजेश भी आदर्श पति है, वह अपनी मृत पत्नी की स्मृतियों में खोया रहता है, उसके औदात्य को देखकर ही ऋतु उसके प्रति सहानुभूति प्रवण हो उठती है। वह भी अपमे पिता की तरह ही ऋतु के प्रति सरंक्षक-भाव रखता है और ऋतु को उसकी मन-पसंद शाल लेकर तोहफा देता है, पैसे कम होने के कारणं ऋतु शाल नहीं खरीद पाई थी, यह वह समझ लेता है और ऋतु को आत्मस्वाभिमानी समझ कर ही बहाने से शाल 'गिफ्ट' के रूप में देता है।

राजेश के मन में ऋतु के प्रति श्रद्धा है जो धीरे--धीरे ऋतु की कर्त्तव्य परायणता और विक्की के प्रति उसके स्नेह के कारण प्रेम में बदलती है। परन्तु यह प्रेम वासनाजनित न होकर ऋतु के ममत्वपूर्ण व्यवहार और पवित्र तथा संयमित आचरण के कारण सहज आकर्षण के रूप में पनपा है, मात्र रूप आकर्षण और शारीरिक भूख के कारण नहीं। इसीलिए ऋतु उससे अपनी नारी-मन की वृत्ति पर खुलकर बात कर देती है। राजेश संयमी प्रेमी है और सरंक्षक भी।

ऋतु के चारित्रिक गुणों को तो लेखिका ने स्वयं ही उद्धरित कर दिया है। परन्तु उसके इन गुणों का विकास न दिखा कर सहज चित्रण ही किया गया है। ऋतु किसी अन्तर्द्वन्द्व में फंसे बगैर अपने चरित्र को प्रस्तुत करती जाती है, यहां कहीं वह अन्तर्द्वन्द्वग्रस्त हुई है, वहां विरोधी स्थिति पर अपनी इच्छानुसार काबू न पाकर पलायन कर गई है। मां की मृत्यु के बाद वह अपना पैतृक घर और सम्पत्ति छोड़ देती है। दीपा द्वारा लांछन लगाने के बाद भाई की अनुपस्थिति में ही सोई हुई श्यामल की मां के चरण छू कर घर छोड़ देती है। इन स्थितियों में वह अन्तर्द्वन्द्व से ग्रस्त नहीं मात्र खिन्न मन: है। वह परिस्थितियों से लड़ती नहीं दीखती, मात्र सेवाभाव से अपने कर्त्तव्य को पूर्ण करती जाती है और अपने संरक्षकों से प्रेम, स्नेह, श्रद्धा और अपनत्व अर्जित करती जाती है।

कथानक का विस्तार अनेक शहरों में हुआ है। जीमापुर, इलाहाबाद, पूना, लखनऊ, कानपुर, अंबाला, कश्मीर, सहारनपुर, नैनीताल आदि अनेक शहरों; क्षेत्रों में कहानी के सूत्र बिखरे पड़े हैं जो 'फ्लैशबैक' और साक्षात् वर्णन के जरिये एकसूत्र हुए हैं। परन्तु इन स्थलों का भौगोलिक, प्राकृतिक वर्णन न होकर मात्र नाम ही लिया गया है। जहां कहीं प्रकृति का चित्रण

हुआ है वहां भाषा में तत्सम शब्दावली का प्रयोग किया गया है। जहां कहीं गांभीर्य का चित्रण है वहां भी भाषा तत्सम शब्दावली से पूर्ण है। साधारण वातावरण को भी तत्सम शब्दावली ने बोझिल कर दिया है।

उपन्यास के सम्वाद आम बोल चाल की भाषा में हैं और बच्चों की तुतलाहट की अभिव्यक्ति के लिए शब्दों को तोड़ा गया है। कहीं-कहीं संयोगों और चमत्कारों के रूप में कथारूढ़ियों का इस्तेमाल हुआ है। प्रेम विशेषकर नर-नारी के प्रेम की अभिव्यक्ति के स्थलों का चित्रण बड़े संयम और आदर्शवादी ढंग से रूपकों और तत्सम शब्दावली में किया गया है।

कुल मिलाकर कहें तो 'प्रतिदान' उपन्यास में लेखिका का औपन्यासिक शिल्प सुदृढ़ है। अन्तर्द्वन्द्व का सहारा न लेते हुए चरित्रों का विकास सहज और प्राकृत है। प्राकृत लेखिका की इच्छा है और इसी इच्छा के कारण पात्रों की नियति का पूर्वाभास हो जाता है। कथानक-विकास में फिल्मी प्रभाव भी दृष्टिगोचर होता है। प्रथम उपन्यास होने के बावजूद यह उनका अच्छा उपन्यास है।

3.3.2 उपासना नवंबर 1967 ई० में लिखित प्रेम सागर भारती का उपन्यास है परन्तु यह उपन्यास फरवरी 1970 ई० में प्रकाशित हुआ है। 'उपासना' मूलतया सामाजिक उपन्यास है जिसमें दहेज समस्या के कारण पनपनेवाली अन्य अनेक आर्थिक, सामाजिक और नैतिक समस्याओं का विशद् चित्रण हुआ है। साथ ही साथ शराबखोरी के कारण होने वाले नैतिक पतन और परिवार-विघटन के चित्रण को भी अभिव्यक्ति मिली है।

कथानक का विकास अन्तर्कथाओं के माध्यम से हुआ है। इन कथाओं के कारण उपन्यास एकांगी न रह कर संकुलता पकड़ता गया है। यद्यपि उपन्यास आदर्शवाद की प्रस्थापना करता है तथापि लेखक ने कहीं भी अतिरेकपूर्ण कल्पना का सहारा नहीं लिया, घटनाएं और पात्र यथार्थ जिंदगी से सहजतापूर्ण सम्पर्क बनाए हुए हैं।

त्रिलोकीनाथ समूचे कथानक का नायक है जिसने दहेज प्रथा की कटुता भोगी है। उसकी बहिन सोमा के विवाह में दहेज का 20 हजार रुपया जुटाने के लिए उसके पिता को अपने मालिक की रकम चुरानी पड़ी थी। मालिक के आ धमकने पर पुलिस बुला लिए जाने के भय और सोमा के भविष्य तथा परिवार की प्रतिष्ठा को होने वाली हानि से भयभीत होकर त्रिलोकीनाथ को अपने पिता के मालिक के सामने गिड़गिड़ाना पड़ा था और अपनी व्यक्तिगत जमानत पर ही चुराए गए 20 हजार रुपये को 10 प्रतिशत ब्याज पर ऋण के रूप में बदलवा लेने के लिए समझौता करना पड़ा था। इसी गम और आत्मा पर बेइज्जती के बोझ के कारण पिता जी मर गए थे।

इस कटु अनुभव के कारण ही त्रिलोकीनाथ ने दहेज न लेने की सौगन्ध खाई है और दहेजप्रथा-उन्मूलन के निमित्त 'उपासना' नाम की समाज सुधारक संस्था खोली है। अपने कर्मठ व्यक्तित्व, आदर्शवादी व्यवहार और जनकल्याण की वृत्ति के कारण वह सामाजिक प्रतिष्ठा ग्रहण कर चुका है। उसने अपने विवाह पर भी दहेज के नाम से कुछ नहीं लिया है।

उपन्यास का कथानक विवाहोपरान्त दुल्हन के स्वागत से ही आरम्भ होता है। त्रिलोकीनाथ विवाह को सौदेबाज़ी नहीं मानता जबकि उसकी विवाहिता बहिन सोमा का कहना है कि भाई के ससुर को अपनी बेटी को पहनने के आभूषण तो देने ही चाहिए थे क्योंकि सभी की दृष्टि पड़ती है।

परन्तु त्रिलोकीनाथ के पिता जी ने सोमा के विवाह के बाद आत्मग्लानि के कारण जहर खा लिया था और मरते समय उससे वचन लिया था कि उसे दहेज प्रथा के विरुद्ध संघर्ष करना है, समाज के माथे से इस कलंक को धो देना है, पिता की तरह भीरू न होकर सच्चाई और निष्ठा से आगे बढ़ना है, आदर्श विवाह करना है, दहेज के रूप में एक कौड़ी भी नहीं लेनी है बल्कि इस कुप्रथा को जड़ से उखाड़ फैंकने में सर्वस्व लगा देना है।

जबकि सोमा का पति दीनदयाल दहेज के मामले में कसर नहीं खाता, वह हठी और क्रोधी स्वभाव का व्यक्ति है और अपने पिता जी की मृत्यु के बाद से अपने इसी स्वभाव के कारण व्यापार में नुक्सान उठा रहा है। वह मानता है कि मनुष्य का एक ही धर्म है--स्वार्थ। हर एक बात, काम और रिश्तेदारी में स्वार्थ ही है, यद्यपि विवाह को पवित्र नाता कहते हैं परन्तु वह भी स्वार्थ से अछूता नहीं। दीनदयाल का तो कथन है कि उसने विवाह किया तो लोकसेवा की भावना से नहीं, उसे पत्नी की आवश्यकता थी, यह उसका स्वार्थ था। जबकि उसकी पत्नी को सारा जीवन काटने को किसी का आश्रय चाहिए था-यह उसका स्वार्थ था, संतान....दोनों के स्वार्थ का प्रमाण है।' अपने इसी विचार के कारण वह आत्महत्या करने की अपेक्षा समाज का तिरस्कार करके आनन्द में जीने का निश्चय कर लेता है और मकान को बेचने का सौदा कर लेता है और पत्नी को टैलीग्राम दे देता है 'फार यू डैड.....डोंट कम'।

विवाह से पूर्व दीनदयाल शराब पीता था परन्तु सोमा ने छुड़ा दी थी जबकि सोमा की अनुपस्थिति में उसने फिर से शराब पीना, शराबियों को घर बुलाना शुरू कर दिया था। जब सोमा अपने घर पहुंची तो अंदर शराबियों की महफिल जमी हुई थी। चारों शराबी उसे ही ललचाई दृष्टि से देख रहे थे और उसकी भुकुटियां तन गई थीं।

शराब की झोंक में दीनदयाल का इतना नैतिक पतन हो गया है कि वह अपनी पत्नी सोमा को शराबियों की साकी बनने के लिए विवश करता है, काफी अनर्गल बकवास के बाद वह अपनी ही पत्नी को पर-पुरुष तक की अंकशायिनी बनने के लिए कहने लगता है। तब क्रोधित सोमा इसे पत्नी का ही नहीं बल्कि समूची नारी जाति का अपमान कहती है और सिसक ने लगती है। जबकि दीनदयाल को उसके सतीत्व पर शक है, उसे शक है कि मायके में उसका कोई प्रेमी है और अब वह पति की जायदाद संभालने आई है, जबकि वह इसे अपनी जायदाद से एक फूटी कौड़ी तक नहीं देगा।

वह सोमा के दोनों बच्चों-संजय और मुन्नी को पिता का अधिकार कह कर अपने पास रख लेता है और बच्चों को बहलाता है कि उनकी मां बदमाश है, उन दोनों को मार देना चाहती है। पति के इस नैतिक पतन से पीड़ित और अपमान के घूंट पीकर सोमा बच्चों को कहीं छोड़ कर

भाई त्रिलोकीनाथ के पास लौट आती है। यहां उसे पूर्ण सम्मान और स्नेह मिलता है परन्तु भाई के कहने पर भी सोमा पति को तलाक देने के लिए तैयार नहीं ।

दीनदयाल पत्नी की परवाह किए बगैर अपना सारा धन शराबखोरी में लुटा रहा है। वह नगरपालिका का इलैक्शन लड़ने के लिए भी पैसा गंवा रहा है और इलैक्शन का 'मैनीफैस्टो' है- शराब में मिलावट नहीं हो, शराबियों को पीने-पिलाने की जगह और अन्य सुविधाएं मिलें। इन्हीं अनर्गल और असामाजिक कार्यकलापों में लगा वह सारा धन गंवा देता है, स्वार्थी मित्र भी उसका साथ छोड़ देते हैं तो वह मित्रों की अपेक्षा समाज को ही दोष देता है। वह अपने बेटे को भी शराबी बना देता है, बेटी मुन्नी के बारे उसके विचार हैं कि वह बड़ी होकर स्वयं शराब पिलाना शुरू कर देगी।

एक दिन मुन्नी घर से भाग जाती है तो उसके पीछे लगा गुण्डा उसे बेहोश करके प्राचीन खण्डहर में ले जाता है और तहखाने में लोहे की सांकलों से बांध देता है। यहां गुण्डों का गिरोह बच्चों को अपंग करके उनसे भीख मंगवाता है। इसी नीयत से मुन्नी का अपहरण किया गया है परन्तु इन्हीं लोगों के बीच शिब्बु नामक सत्रह वर्षीय युवक है जिसने अपनी बहन के शव पर हाथ रखकर उसका बदला लेने की सौगन्ध खाई है। मुन्नी को देखकर शिब्बु के मन में मृत बहन के प्रति प्रेम उमड़ता है। उधर जब मुन्नी को बेहोशी की हालत में जीप में लिटाया जाता है और एक गुण्डा उसे अपने मास्टर के पास ले जा रहा होता है कि पुलिस के हत्थे चढ़ जाता है, पुलिस इंस्पैक्टर के साथ ही नेकराम नामक वकील बैठा है जो नि:संतान है, वह मुन्नी को बेटी के रूप में अपना लेता है।

बद्रीनाथ तथाकथित समाजसुधारक है परन्तु उसने सोमा के बाप के सामने 20 हजार रुपए के दहेज की मांग रखी थी इसी कारण रिश्ता नहीं हुआ था । बद्रीनाथ त्रिलोकीनाथ के विचारों और समाज सुधारक कर्मों की प्रशंसा करता हुआ उसका अभिनंदन करता है परन्तु त्रिलोकीनाथ निर्भीकता से कह देता है कि समाज सुधार के नाम से चलने वाली (मौजूदा) संस्थाएं ही कुरीतियों का जन्म स्थल हैं, लोग सभा की आड़ में महान बन जाते हैं और जनता की आंखों में धूल झोंकते हैं। सेठ धनराज समाज सुधार सभा का अध्यक्ष है परन्तु निर्धन परिवार से रिश्ता नहीं जोड़ना चाहता। सेठ धनराज का पुत्र देवराज त्रिलोकीनाथ के विचारों से प्रभावित होकर उसका शिष्य बन जाता है।

त्रिलोकीनाथ सोमा के पति से मिलने जाता है ताकि दोनों में समझौता करवा दे परन्तु वहां उसे दीनदयाल के हाथों अपमानित होना पड़ता है। त्रिलोकीनाथ खून के घूंट पीकर लौट आता है। सोमा को भाई के अपमान का पता चलता है तो वह दु:खी हो जाती है।

त्रिलोकीनाथ की पत्नी रेणु को भुखमरी और आदर्शों के दोनों पाटों के बीच पिसना पड़ रहा था, जिससे उसका हृदय विद्रोह कर उठता है। बात बढ़ते-बढ़ते बढ़ जाती है कि यदि दो रोटी भी नहीं कमा सकते तो विवाह क्यों किया, या उसे आदर्श चुनने होंगे या पत्नी को चुनना होगा। रेणु ने तो यहां तक कह दिया कि सोमा उसके पत्नी के अधिकार छीन रही है कि यदि

दीदी से इतना ही प्रेम है तो उन्हें घर में भूखा क्यों रखे हुए हैं? पत्नी के ताने को सुन कर त्रिलोकीनाथ सौगन्ध खाता है कि वह अब खाली हाथ नहीं लौटेगा।

रेणु तो यही चाहती थी, उसने पति की भावनाओं और संकल्प शक्ति को जागृत करने के लिए यह सारा नाटक रचा था। परन्तु सोमा यह सब सुनकर चोरी से घर त्याग देती है।

सोमा बाग में बेंच पर बैठी होती है कि बूढ़ा माली उससे सहानुभूति व्यक्त करता है कि यह संसार बहुत पापी है, यहां सज्जनों के वेश में दुष्ट रहते हैं। इस तरह बरगला कर वह उसे अपने झोंपड़े में ले जाता है और खाने में धतूरे की गोलियां डाल कर उसका शील भंग करने का यत्न करता है। सोमा काफी छीना झपटी के बाद भाग निकलती है। श्वानपाल को कुत्ते पालने का शौक है। उसी के पास सोमा को नौकरी मिल जाती है। श्वनपाल के माध्यम से ऐसे पगलाए पूंजीपतियों पर व्यंग्य-सा उभरता है जो अपने बच्चों से अधिक कुत्तों को महत्व देते हैं। अपने धन को निर्धनों, लाचारों पर खर्च करने की अपेक्षा ऊलजलूल की हरकतों पर बरबाद करते हैं। सोमा श्वानपाल की बेटी से विशेष लगाव रखती है और एक दिन श्वानपाल के कुत्ता प्रेम से तंग आकर श्वानपाल की बेटी सविता सहित उसका घर छोड़ कर अनाथालय में नौकरी कर लेती है।

सोमा का कहीं पता न चलने पर पवित्र-हृदया रेणु आत्म ग्लानि का शिकार हो जाती है, त्रिलोकीनाथ को डेढ सौ रुपए की नौकरी मिल जाती है और वह पत्नी को सांत्वना देता है कि सोमा के जाने का दोष उस पर नहीं, शायद ईश्वर की यही इच्छा थी, अतः दुर्भाग्य पर रोने की अपेक्षा उसका डट कर मुकाबला करना चाहिए। उधर देवराज जानता है कि त्रिलोकीनाथ डेढ़ सौ रुपए की नौकरी से गुजारा नहीं कर पा रहा, वह अपने पिता के पास उसे पांच सौ रुपए की नौकरी लगवा देता है और त्रिलोकीनाथ पर का 20 हजार रुपए का कर्ज भी पिता से कह कर माफ करवा देता है। पुलिस को किसी अज्ञात स्त्री की लाश मिलती है तो त्रिलोकीनाथ समझता है कि सोमा की ही वह लाश है, वह लाश की अंत्येष्टि कर के फूट-फूट कर रोता है जबकि सोमा अनाथालय में नौकरी कर रही होती है।

उधर दीनदयाल ने सारा धन लुटा दिया है परन्तु वह मित्रों की बेवफाई को दोष न देकर समाज को ही दोष देता है। उसका बेटा संजय भी अब पियक्कड़ बन चुका है और मुंहजोर भी हो गया है। उसका मित्र रतन संजय को नौकरी दिलाने का झांसा देकर उसे रेशमीबाई के कोठे पर बेचने के लिए ले जाता है परन्तु रास्ते में एक शराबी गुण्डा उसे धमका कर भगा देता है। तभी से संजय उसी गुण्डे के पास रहने लगता है।

दीनदयाल पाखण्डी साधु बन कर महान बन जाना चाहता है, देवनगरवासियों में धीरे-धीरे उसका साधुवेश चर्चा का विषय बन ज़ाता है, स्त्रियों में उसका विशेष प्रभाव है। कोई स्त्री पति के लिए दवा ले जाती है, कोई सन्तान के लिए आती है, कोई घरेलू झगड़ों के निपटारे के लिए आती है जबकि दीनदयाल मन ही मन लोगों के इस भोलेपन पर मुस्कराता रहता है, वह ईश्वर प्राप्ति अथवा मोक्ष के लिए साधु नहीं बना है, वह तो भोलीभाली जनता को ठग रहा है।

नेकराम देवनगर का प्रसिद्ध वकील है, लाला ज्योति प्रसाद उसका मित्र है। आयकर के मुकदमे के बारे वह नेकराम से पूछने आता है और मुन्नी (सोना) को देखकर अपने पुत्र राजेन्द्र के लिए उसका रिश्ता मांग लेता है। नेकराम वस्तुस्थिति बता देता है कि किस तरह तेरह वर्ष पूर्व उसने पुलिस इंस्पैक्टर से मुन्नी को लेकर बेटी के रूप में अपना लिया था।

एक दिन वकील नेकराम अपनी बेटी सोना के साथ शापिंग के लिए बाजार में होता है कि शेरा चायखाना के निकट से निकलता है, शेरा चायखाना में चाय नहीं चाय के नाम पर शराब बिकती है। शेरा अपनी गद्दी के पास बैठे शराब पी रहे 20-22 वर्षीय युवक रामू को उकसाता है कि इस वकील ने उनकी बिरादरी को तंग कर रखा है, इसे सबक सिखाने के लिए इसकी जेब काटना होगा। अंततः वह नेकराम का बटुआ हथिया कर शेरा के पास पहुंचता तो शेरा उसके गले में लाकेट न देख कर उसे लाकेट की याद दिलाता है। शेरा के कहने पर भी रामू लाकेट की परवाह नहीं करता तो शेरा उसे डांट डपट कर लाकेट ढूंढने भेज देता है।

श्वान-प्रेम त्याग कर श्वानपाल अपनी वसीयत सोमा के नाम कर देता है। श्वानपाल के मर जाने के बाद सोमा सविता की पढ़ाई के लिए 20 हजार रुपया अलग रख लेती है और 5000 रुपए का ड्राफ्ट भाई त्रिलोकीनाथ के नाम गुमनाम ढंग से भेज देती है । शेष धन सम्पत्ति अनाथालय के नाम दे देने का निश्चय कर लेती है। अनाथालय की पुरानी प्रबन्धिका अनाथालय छोड़ देना चाहती थी अतः अब सोमा को ही प्रबन्धिका भी बना दिया गया है।

त्रिलोकीनाथ सोमा के हैण्डराइटिंग को पहचान कर प्रसन्न हो जाता है कि उसकी बहन जीवित है, रेणु को उसकी पड़ोसिन अनुराधा ने बता दिया है कि दीनदयाल साधु बन गया है।

त्रिलोकीनाथ पर किसी ने घातक हमला किया है, वह घबराया हुआ घर आया है और अपने बच्चे तथा परिवार के प्रति चिंतित भी है, उसे संदेह है कि कोई उसका शत्रु बन गया है क्योंकि उसने कइयों की अनुचित मांगें पूरी नहीं होने दी। लियाकत छटा हुआ बदमाश था परन्तु क्षय रोगी था और रहमत अपनी बहन का विवाह उसके साथ नहीं होने देना चाहता था। त्रिलोकीनाथ ने रहमत की बहिन जीनत का विवाह हिन्दु लड़के से करवा दिया था। फिर उसने लियाकत का विवाह भी करवा दिया था परन्तु लियाकत ने अपने अपमान का बदला लेने की ठान रखी थी। पुलिस को भी लियाकत पर संदेह है क्योंकि वह पिछले दिनों ही जेल से छूटा है।

त्रिलोकीनाथ नेकराम का मेहमान बनता है, वह प्रशंसकों से घिरा होता है, ज्योतिप्रसाद त्रिलोकीनाथ का साला है दोनों में हंसी मजाक होता है और बात धीरे-धीरे गंभीर होती जाती है, अंततः बच्चों को अपंग बना कर भीख मंगवाने वाले गिरोह के खिलाफ मुहिम छेड़ने की चर्चा होने लगती है। त्रिलोकीनाथ अपने निष्ठावान युवकों द्वारा मदद देने के लिए तैयार है।

तभी अचानक बिजली गुल हो जाती है और त्रिलोकीनाथ पर घातक हमला होता है, जिसमें उसका कंधा गंभीर रूप से घायल हो जाता है। नेकराम अंधेरे के बावजूद आक्रमणकारी को जकड़ लेता है परन्तु वह छूटकर भाग जाता है, अंधेरे के कारण वह पहचाना भी नहीं जाता।

सोना त्रिलोकीनाथ के पट्टी बांध देती है. पुलिस आती है और आश्वासन देकर चली जाती है।

रामू को बस स्टैंड पर सोना दिख जाती है। जैसे ही वह उसके गले में पड़े लाकेट की ओर देखता है तो उसके पीछे लग जाता है । सोना उससे पीछा छुड़वाने के लिए सोमा को सब कुछ बता देती है। सोमा के पूछने पर दोनों अपने लाकेट को अपना अपना बताते हैं। रामू सोमा को देखकर चुम्बकीय आकर्षण की अनुभूति को महसूस करता है और अपनी सारी व्यथा-कथा सुना देता है। सोमा उसे जेबकटी और अन्य बुरे धन्धे छोड़ देने तथा दूसरों की आत्मा को दुःखी करना छोड़ देने की सलाह देती है।

शिवदत्त वस्तुतः शिब्बू ही है, वह बताता है कि बच्चों को अपंग बनाने वाले गिरोह का मुखिया वकील नेकराम ही है और उसी ने त्रिलोकीनाथ पर हमला किया था, शिब्बु ने नेकराम को रंगे हाथों पकड़ लिया था परन्तु उसने इसी को आक्रमणकारी के रूप में फंसा देने की चाल चली तो वह भाग निकला। त्रिलोकीनाथ सारी बात सुन कर चौंक उठता है और उसे पुलिस सुपरिटेन्डैन्ट के घर ले जाता है।

साधु दीनदयाल सोना के सौंदर्य से विशेष प्रभावित होता है और गुरु मंत्र लेने से पूर्व शिष्या को तन, मन, धन सब कुछ समर्पित कर देने का उपदेश-सा देता है और उन्हें दूध पिला कर भेजना चाहता है। सोना को कुछ संदेह-सा होता है और दोनों सहेलियां मिल कर दीनदयाल को ही बेहोशी की दवा मिला दूध पिलाकर बेहोश कर देती हैं और उसका मुंह काला कर देती हैं। अब दीनदयाल के पास कुटिया छोड़ कर भाग जाने के सिवा कोई चारा नहीं था। परन्तु वह सोना के सौंदर्य को भूल नहीं पाता।

गोली चलती है और नेकराम जख्मी हालत में कमरे से बाहर निकलता है पुलिस उसे घेर लेती है। नेकराम अपने अपराध स्वीकार कर लेता है। वह अपनी बेटी सोना को निर्दोष कह कर उसे अपना लेने की प्रार्थना करता है और आत्महत्या कर लेता है।

सोमा अपने पति, बेटी और बेटे संजय उर्फ रामू को पहचान लेती है। सोना का विवाह राजेन्द्र से हो जाता है। नेकराम की सम्पत्ति को शिवदत्त के हवाले करके अपंगों के लिए दस्तकारी का स्कूल खोल दिया जाता है । दीनदयाल अपनी बेटी (सोना) और पत्नी से क्षमा मांग कर पश्चात्ताप करता है और सपरिवार रहने लगता है, देवराज का पिता सेठ धनराज भी देवराज और मालती के विवाह को स्वीकृति दे देता है।

उपन्यास का कथानक काफी गठा हुआ है। इसका सहज विकास हुआ है। यह परम्परागत औपन्यासिक शिल्प और समस्याओं को लेकर लिखा गया सार्थक उपन्यास है।

3.4. नाटक, एकांकी नाटक, रेडियो नाटक : सातवां दशक

जम्मू-कश्मीर में नाटक साहित्य का सृजन अत्यल्प ही हुआ है। पत्रिकाओं में इनका प्रकाशन भी नहीं के बराबर है। 'शीराज़ा' और 'हमारा साहित्य' के विभिन्न अंकों में श्री नरेन्द्र खजूरिया का नाटक 'प्यासी धरती', श्री मोती लाल केमु का नाटक 'रंगे', श्री सुतीक्ष्ण कुमार आनन्दम का अप्रकाशित नाटक 'पागल' जो बाद में 'सांझे मंच पर' नाम से 1981 ही प्रकाशित

हुआ है। इस दशक में डॉ० ओम प्रकाश गुप्त के एकांकी नाटक पत्रिकाओं में तो नहीं पुस्तक रूप में प्रकाशित हुए हैं। इस दशक में प्रकाशित नाटक हैं -

डॉ० ओम प्रकाश गुप्त - 'युद्ध और शान्ति'

श्री नरेन्द्र खजूरिया- 'रास्ता कांटे और हाथ'

श्री मोती लाल केमु- 'तीन असंगत एकांकी'

इन नाटकों में से 'रास्ता कांटे और हाथ' शीर्षक पर लिखा नाटक मंचित हो चुका है। इसी संग्रह का नाटक 'प्यासी धरती' पर पहली डोगरी फिल्म 'गल्ला होइयां बीतियां' आधारित है। 'गहरी नदिया की धार' रेडियो से प्रसारित हो चुका है। मोती लाल केमु के नाटक भी मंचित हुए हैं। विशेषकर 'नंगे' नाटक। डॉ० ओम प्रकाश गुप्त के एकांकी शायद मंचित नहीं हो सके। इन सभी नाटकों का मूल्यांकन निम्नलिखित है।

3.4.1. युद्ध और शान्ति डॉ० ओमप्रकाश गुप्त के युद्ध और शान्ति सम्बन्धी चार एकांकी संगृहीत हैं। जिनका मुख्य उद्देश्य है 'भारतीय संस्कृति में निहित शान्ति और वीरता की भावनाओं का सामंजस्य प्रस्तुत करना। संग्रह का नामकरण एकांकियों के उद्देश्य के अनरूप हुआ है। जबकि संग्रह में इस नाम से कोई एकांकी संकलित नहीं है। पहले तीन एकांकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर लिखे गए हैं जबकि अंतिम एकांकी 'होली' स्वतंत्र भारत में पाकिस्तानी घुसपैठियों के विरुद्ध जन जागरण पैदा करने की भावना को समाहित किए हुए है।

ऐतिहासिक एकांकियों के पात्रों से जुड़ी घटनाओं की ऐतिहासिकता की अपेक्षा उनमें भाव संहिति की ओर विशेष ध्यान दिया गया है। शिल्प की दृष्टि से 'लोहे से लोहा' को छोड़ कर शेष तीनों को एकांकी कहा जा सकता है। 'लोहे से लोहा' एकांकी रूप में विकसित नहीं हो पाया । चारों एकांकियों की मूल भावना है-युद्ध के आकांक्षी वीरों के चरित्र की उज्ज्वलता का चित्रण और शान्ति की कामना सहित उदात्त भावों की अभिव्यक्ति, चारों एकांकी इसी भावना से लिखित और नियोजित हैं, भावान्विति की एकतानता बनी रही है। इन एकांकियों का मूल्यांकन निम्नलिखित है।

3.4.1.1. अशोक का शोक चार दृश्यों में विभाजित एकांकी है जिस में कथानक कलिंग-विजय के बाद सम्राट अशोक के हृदय-परिवर्तन की घटना के नियोजन से विकसित किया गया है। पहले दृश्य में कलिंगवासियों की वीरता, स्वदेशभक्ति, अटल अभिमान और अजय शक्ति की सूचना पाकर अशोक क्रुद्ध है। अशोक को गर्व है कि उसकी खड्ग की धार से रक्त नहीं धुलता, उसमें पितामह चन्द्रगुप्त का तेज और महामति आचार्य चाणक्य की नीति निवास करते हैं और आर्य ध्वज अशोक के हाथों और अधिक यशस्वी हुआ है।

दूसरे दृश्य में अशोक की चिन्ता है कि देश के महान् छोर पर यदि कलिंग अपनी निरंकुशता बनाए रखे तो उसके पूर्वज क्या कहेंगे? जबकि अभी तक अशोक की वाहिनी विजयी नहीं हुई। अचानक बौद्ध भिक्षुणी अशोक को चौंका देती है कि आचार्य चाणक्य ने न किसी की स्वतंत्रता को कुचलने का आदेश दिया था न उनके शान्ति और अहिंसा के प्रचार में कोई प्रपंच

था जबकि अशोक की वाहिनी स्त्रियों के सतीत्व, शिशुओं की मुस्कान, वृद्धों की शान्ति नव युवकों के अरमान और आशाओं को कुचलने में व्यस्त है फिर भी यह कलिंग-विजय में असमर्थ होगी। यह बौद्ध भिक्षुणी सैनिकों में कोई भेद भाव किए बगैर घायलों की सेवा शुश्रुषा कर रही है।

तीसरे दृश्य में सेनापति सूचना देता है कि ऐसा भंयकर युद्ध पहले कभी नहीं हुआ जबकि बौद्ध भिक्षुणी ताना देती है कि अभी कितना नरसंहार शेष हैं ? वह आर्य अनार्य में भेद को स्वीकार नहीं करती। वह स्वाधीनतापूर्वक अपने लाभ और लक्ष्य की प्राप्ति चाहने वालों को ही आर्य कहती है और क्रोध पर विजय पाने के लिए कहती है क्योंकि क्रोधावेश में सत्य का ज्ञान नहीं हो सकता, वाहिनी शान्ति स्थापित नहीं कर सकती क्योंकि लहू से भीगी धरती में विप्लव के अंकुर ही फूटते हैं। वस्तुतः आपसी सद्‌भावना और मैत्री ही चिरशान्ति और सुख की साधक होती है।

'चौथे दृश्य' में अशोक रक्तरंजित धरती को देख कर, घायलों के चीत्कार को सुन कर पश्चात्तापग्रस्त हो जाता है और कलिंगवासियों को उनका विजित राज्य लौटा देता है, उनसे प्रेम और सहानुभूति प्रकट करता है, त्रस्त जंनता पर वह राज्य करने का अधिकार नहीं चाहता। वह संकल्प करता है कि प्रेम और अहिंसा के माध्यम से वह विश्वभर में भारत की कीर्ति का प्रसार करेगा, मानवता के सुख और आनन्द के लिए कार्य करेगा, इस कार्य में पूर्वज भी उसे आशीर्वाद देंगे, आपसी मित्रता और सद्‌भावना चिरशान्ति और सुख की साधक होगी।

एकांकी के संवाद चुस्त और भाव संहिति को लिए हुए हैं। सूचनाओं और संवादों के साथ-साथ नेपथ्य के चीत्कार और नेपथ्य के गीतों द्वारा समुचित प्रभाव को प्रस्तुत किया गया है। लेखक का यह उत्कृष्ट एकांकी है।

3.4.1.2. सम्राट पृथ्वीराज एकांकी में तीन दृश्य हैं और अंतिम दृश्य में एक लम्बा गीत भी है, जिसमें एकांकीकार की अपनी मनोभावना को सशक्त अभिव्यक्ति मिली है।

पहले दृश्य में पृथ्वीराज मुहम्मद गौरी को फटकारता है कि उसकी पगड़ी पृथ्वीराज के सामने सोलह बार झुकी है। पृथ्वीराज अपने आप पर गर्वित है क्योंकि उसकी संस्कृति ने लोगों को शान्ति से जीना और औरों को जीने देने तथा अभिमान से मरना सिखाया है, आज हाथ में तलवार नहीं तो गौरी यह न समझ ले कि हिन्दोस्तान की तलवार टूट चुकी है।

पृथ्वीराज उसे फटकारता है 'तुम हमारी आंखों से दूर हो जाओ, मेरे देश की हवाओं में जहर भर देने वाले, हमारी आंखें तुम्हारी क्रूर आकृति देखना पसंद नहीं करती।' तभी क्रोध से आग बबूला हुआ गौरी पृथ्वीराज की आंखें निकाल लेने का आदेश दे देता है।

दूसरे दृश्य में भाव विह्वल चंद्रबरदाई को पृथ्वीराज सांत्वना देता है कि जब तक कवियों में बलिदान गीत लिखने की शक्ति है, लाखों चौहान पैदा होते रहेंगे, रही बात आंखों की तो वह हमारे आपसी बैर में पहले ही जल गई थीं।' वह आत्महत्या के लिए तत्पर होता है परन्तु चन्द्रबरदाई उसे रोकता है कि आत्महत्या पाप है, शत्रु से बदला लेना ही राजपूत का कर्त्तव्य है'।

यहीं पृथ्वीराज इस एकांकी के मूल कथ्य को स्पष्ट करता है कि भेदभाव ने वीर मां को बेड़ियों में जकड़ दिया है, प्रांतीयता से ऊपर उठ कर जब भारतवासी एक देश, एक राष्ट्र, एक पथ से एक लक्ष्य को ओर बढ़ेंगे तभी मां स्वतन्त्र होगी, तभी मां स्वतंत्र रह पाएगी।'

गौरी पृथ्वीराज की तीरंदाजी का मजाक उड़ाता है तो चन्द कह देता है कि सम्राट को निशाना साधने के लिए आंखों की जरूरत नहीं।

तीसरे दृश्य में गौरी के दरबारी पृथ्वीराज की विवशता पर हंसते हैं। चन्द्रबरदाई उपहास की परवाह किए बिना गीत गाता है। जिसमें मानव मंगल की कामना की, नवनिर्माण की भावना की, शान्ति और परस्पर एकता की भावनाओं की अभिव्यक्ति हुई है। गौरी भी चन्द्रबरदाई के काव्य-कौशल की, उसकी दिलेरी और साफगोई की प्रशंसा करता है, वह देश की वीरता की भी प्रशंसा करता है और पृथ्वीराज को कौशल दिखाने के लिए उकसाता है।

चन्द्रबरदाई कहता है कि सम्राट सुलतान की ताली की आवाज पर ही तीर चलाएंगे, किसी मातहत के हुक्म पर नहीं।

अंततः चन्द्रबरदाई पृथ्वीराज के कान में फुसफुसा कर गीत गाता है। टकोरे पर चोट लगते ही पृथ्वीराज का तीर सुलतान की छाती में जा लगता है। तभी 'भारत माता की जय' के नारे से चन्द पृथ्वीराज के सीने में कटार भोंक देता है और बाद में अपने सीने में। गौरी पृथ्वीराज को धोखेबाज कह कर गिर पड़ता है।

इस एकांकी में आधुनिक युग की जरूरतों के अनुसार पात्रों के संवादों में एकांकीकार की सिसृक्षा की प्रतिध्वनि मिल जाती है। संवाद और कथ्य नियोजन परस्पर घुला मिला है। अच्छा एकांकी है।

3.4.1.3. लोहे से लोहा एकांकी पूर्णतया विकसित नहीं हो पाया। एक ही दृश्य में कथ्य और संदेश को संवादों के माध्यम से व्यक्त कर दिया गया है। जिसमें शिवा जी को उनके समर्थ गुरु राम दास समझा रहे हैं कि यह समय अकबर का राज्यकाल नहीं है कि हिन्दुओं पर जजिया नहीं होगा कि गो ब्राह्मण और अबला की रक्षा होगी। इस समय तो राज-मद से अभिभूत शत्रु सेनाएं बढ़ेंगी तो न जाने क्या क्या जुलम ढाएंगी? लक्ष्मी और नारी, इन दो प्रलोभनों से कौन बचा है ? विजय, और विजय, और विजय के साथ धन और विलास-प्रतिशोध की भावना से वशीभूत सैनिक भले बुरे का भेद नहीं कर पाते। गुरू उसे समझाते हैं कि उसके सैनिक मातृभूमि की रक्षा हेतु और उसकी स्वतंत्रता के लिए बलिदान के इच्छुक हों, धन पिपासु नौकर नहीं। गुरु का उपदेश संदेश थोड़ा कटु है। गुरू के कथन से एकांकी का उद्देश्य स्पष्ट हो जाता है 'लोहे से जूझने के लिए लोहे की जरूरत है बेटी और लोहे को जब तक भट्ठी में नहीं पिघलाओगे, तब तक कुछ नहीं होगा।'

एकांकी में पुनः देशभक्ति, उदात्त लक्ष्य तथा निःस्वार्थ संघर्षशक्ति के लिए उत्साहित किया गया है। साथ ही सांस्कृतिक मूल्यों की रक्षा के लिए आह्वान किया गया है। संवाद काफी लम्बे हैं परन्तु हैं कथ्य-उद्घोषक।

3.4.1.4. होली एकांकी में चार दृश्य हैं जिनमें स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देश की उन्नति की अवरोधक वाह्य ताकतों के विरुद्ध एक जुट हो रही संघर्ष-शक्ति को चित्रित किया गया है। एकांकी में आदर्शवादी भावनाओं का समाहार हुआ है जो पात्रों के चरित्र-विकास और संवादों में स्पष्ट झलक उठती हैं। एकांकीकार ने काफी गीत और कविताएं भी एकांकी में संकलित कर दिए हैं।

'पहले दृश्य' में फसल की कटाई के लिए तैयार बैठे कृषक हैं और 15-16 वर्षीय अल्हड़ युवक राधे का प्रवेश होता है, इनकी पृष्ठ भूमि में नेपथ्य का गीत है, जिस में देश के प्राकृतिक सौंदर्य, शृंगार-कामना के उल्लास और खेतों की हरियाली का वर्णन हुआ है। राधे के गीत में धरती मां की प्रशंसा और देश-भक्ति की भावनाएं आप्लावित हैं। राधे जन-संकल्प और संघर्ष-शक्ति के प्रति स्पष्ट कहता है कि युवक फौजियों को बारूद और राशन देने चौकियों पर जाया करेंगे, दुश्मन को रगड़ देंगे।'

'दूसरे दृश्य' में नेपथ्य के संगीत में होली की मस्ती का और वीरता का वर्णन है। अब तो लड़कियां भी देशभक्ति के गीत गाती फिरती हैं। गीत में शहीदों के बलिदान, देशभक्ति, देश रक्षक युवकों की सजगता का चित्रण है। इस दृश्य में सोफिया और वृद्ध कृषक के संवादों में आक्रामकों की मक्कारी का भी वर्णन है जो कहते तो यह हैं कि उन्हें आजादी दिलाने आए हैं परन्तु आते हैं लूटने, फसलें जलाने, स्कूल, कालेज , अस्पताल तोड़ने।

'तीसरे दृश्य' में वृद्ध किसान से सिपाही बातें करते दिखाये गये हैं। 'हम आजाद कश्मीर' से आए हैं, तुम्हें आजाद कराने।' सिपाही चाहता है कि वृद्ध किसान सात आठ लोगों के खाने और रहने की व्यवस्था कर दे जबकि वृद्ध यह सब करने के लिए तैयार नहीं । वृद्ध कहता है कि वे सभी लोग आजाद हैं, उनके यहां स्कूल हैं, कालेज हैं, अस्पताल हैं। अंततः क्रोध और असुरक्षा की भावना के कारण ये घुसपैठिए वृद्ध कृषक को गोली मार देते हैं।

रामहसन और सिपाहियों में गोलीबारी होती है । तभी मिलिट्री की गाड़ी की आवाज सुन कर घुसपैठिए पलायन करना चाहते हैं परन्तु उनका सरदार नहीं मानता । घुसपैठिए उसे ही मारकर आत्म समर्पण कर देते हैं। यहीं स्पष्ट हो जाता है कि इन सिपाहियों को बरगला कर यहां भेजा गया था ।

'चौथे दृश्य' में वृद्ध शहीद किसान के इर्द गिर्द खड़े लोगों के समक्ष रामहसन वृद्ध की प्रशंसा कर रहा है कि उसने खुद मर कर नगर को बचाया है। सोफिया के पालन पोषण, पढ़ाई लिखाई और सेवा शुश्रुषा के लिए तथा उसके खेतों को बोने के लिए सभी तैयार हैं। उसकी कालिज की पढ़ाई और होस्टल के खर्च के लिए कालिज का प्रिंसीपल सरकारी इमदाद की घोषणा कर देता है क्योंकि सोफिया पूरे हिन्दोस्तान की बेटी है। 'हिन्दोस्तान की जय', 'सोफिया की जय' के नारों पर पर्दा गिरता है और नेपथ्य में संगीत उभरता है, जिसमें धरती मां के लिए मरने वाले शहीदों की प्रशंसा की गई है।

3.4.1.5. निष्कर्ष और उपलब्धि कुल मिला कर कहा जा सकता है कि 'युद्ध और शान्ति' के एकांकी भाव, शिल्प और उद्देश्य की दृष्टि से अच्छे एकांकी हैं जिनमें गीतों और कविताओं के माध्यम से देशभक्ति और मौजूदा राष्ट्रीय आदर्शों का सशक्त संयोजन हुआ है। संवाद रोचक और भाव-स्फीति लिए हुए हैं।

3.4.2. रास्ता कांटे और हाथ नरेन्द्र खजूरिया का अकादमी का नाटक प्रतियोगिता का प्रथम पुरस्कार प्राप्त नाटक है और संग्रह भी ज.क. अकादमी से पुरस्कृत है। इस संग्रह के तीनों नाटक या मंचित हैं या रेडियो से प्रसारित हैं। लेखक के देहान्त (18-4-1970) से पहले उनका 'सात एकांकी' संग्रह भी प्रकाशित हुआ है परन्तु फिलहाल उपलब्ध नहीं है। उनके प्रस्तुत नाटक-संग्रह का मूल्यांकन निम्नलिखित है।

3.4.2.1. रास्ता कांटे और हाथ सामाजिक नाटक है, जिसमें सद्-असद् के बीच संघर्ष को दिखाकर देश के नवनिर्माण की भावना को गूंथा गया है। जीवन-दृष्टि आदर्शवादी है और हृदय-परिवर्तन के लिए प्रेरित करती है। सुधारवादी चेतना के अन्तर्गत धर्म और कर्मकाण्ड के माध्यम से लोगों को ठगने और मूर्ख बना कर अपना स्वार्थ साधने वाले ढोंगियों, पाखण्डियों और धूर्तों पर सीधी-सच्ची चोट की गई है।

रसायनी स्वामी ऐसे ही ठगों का प्रतिनिधित्व कर रहा है जो लालची व्यापारियों को मिलावट करने के तरीके बता कर भ्रष्ट करता है और फिर उन्हें 'ब्लैक मेल' करता है और पैसे वसूलता है। उसकी चालबाजी में फंस कर सीधा सादा परन्तु लालची व्यापारी उसके हाथों की कठपुतली बन कर रह जाता है, मनोरथ राम ऐसे ही व्यापारी का प्रतिनिधित्व करता है। और उसका बड़ा बेटा रसिया बचपन से ही दबंग और पढ़ाई-लिखाई के प्रति अरुचि वाला है, वह पिता के मिलावटी घी के व्यापार में सांझीदार है, बल्कि अब उसी ने व्यापार संभाल रखा है और हर प्रकार का जोखिम उठाकर पैसे बटोर रहा है।

अपनी इस कुवृत्ति के कारण वह अपने पढ़े लिखे कृषि-विशेषज्ञ परन्तु गांव के नव-निर्माण के लिए प्रतिबद्ध छोटे भाई ज्ञान के विरुद्ध है, वह उससे झगड़ता भी है और समझता है कि उसका ज्ञान पारिवारिक व्यापार और इज्जत को नुक्सान पहुंचा रहा है क्योंकि यदि रास्ते पक्के हो गए तो लोग घी आदि स्वयं शहर में बेच आएंगे, यदि लोग पढ़ लिख गए तो उनकी ऊलजलूल द्वारा फैलाए भ्रम में नहीं फंसेगे, यदि लोग खेती के नये वैज्ञानिक तरीकों से वाकिफ हो गए तो सुखी सम्पन्न हो जाएंगे और उन लोगों की इज्जत नहीं करेंगे।

वह मिलावटी घी सीमा से पार ले जा रहा होता है कि पुलिस पीछे लग जाती है। उसका एक आदमी पकड़ा जाता है, परन्तु वह बच-बचाकर आ जाता है। बाप-बेटा दोनों ही पुलिस की पकड़ से भयभीत हैं और समझते हैं कि ज्ञान और उसके सहयोगियों ने ही उन्हें फंसाया है। इस संदेह के कारण वह जनकल्याण के कार्यों में संलग्न पंचायत और ज्ञान आदि को कोई चंदा नहीं देते बल्कि उनके काम में रोड़े अटकाने की कोशिश करते हैं। स्थिति यह है कि रसिया अपने भाई ज्ञान से विवाह के लिए मांग ली गई युवती गंगा पर भी कुदृष्टि रखता है।

सड़क का काम चला रहे गंगा के मुंह बोले भाई रोशन अली को बारूद से उड़ा देने की योजना बनाई जाती है, जिसे सुन कर गंगा उसे बचा लेती है । रसायनी स्वामी से रिश्वत लेकर बारूद लगाने वाला व्यक्ति पश्चाताप के कारण आत्महत्या करने के लिए नदी में छलांग लगा देता है, परन्तु उसे लोग बचा लेते हैं और क्षमा कर देते हैं। रसायनी स्वामी मनोरथ राम को डरा कर सारा धन समेट कर भाग चलने को विवश-सा कर देता है परन्तु अंततः वे दोनों पकड़ लिए जाते हैं और पुलिस बात स्पष्ट कर देती है कि रसायनी स्वामी वेश्या का हत्यारा है। मनोरथ राम का धन ज्ञान को मिल जाता है और साथ ही पिता का संदेश भी कि इसे जन-कल्याणार्थ खर्च कर दिया जाए। रसिया भगौड़ा हो जाता है।

नाटक सुखांत है। कथानक-संयोजन सुदृढ़ है और सद् के खिलाफ असद् पात्रों के षड्यंत्रों, उनकी घबराहट और क्रियाशीलता के द्वारा धीरे-धीरे भावोत्कर्ष की ओर बढ़ता जाता है। संघर्ष की स्थितियां स्वाभाविक हैं।

नाटककार की नाटकीय चेतना प्रत्येक संवाद और क्रिया में द्योतित हो रही है। उद्देश्य भी उदात्त है। पात्रों का चरित्र-विकास स्वाभाविक है। पात्र व्यक्ति के चरित्र के गुण-अवगुण को तो प्रस्तुत करते ही हैं अपनी वर्गगत विशेषताओं को भी प्रस्तुत करते हैं। देश के नव-निर्माण के समक्ष आ रहे सभी अवरोधों का समाहार करते हुए कथानक का सृजन और विकास किया गया है। तीन अंकों में विभाजित नाटक के प्रत्येक अंक में अनेक दृश्य हैं जो मनोरथ राम की हवेली के एक कमरे में ही घटित हो रहे हैं। दृश्य विभाजन भी बड़ा मामूली-सा है । पात्र अपनी भूमिका का निर्वाह करके एक दरवाजे से निकल जाता है तो दूसरा पात्र आ जाता है । इस तरह बिना व्यवधान के पूर्ण रोचकता सहित और कार्यगत निरंतरता को लिए हुए नाटक चरमोत्कर्ष पर पहुंचता है। संकलनत्रय और रंगमंचीयता की दृष्टि से भी नाटक सफल है। संवाद भी समस्या सूचक हैं और समस्या विकासक होने के साथ -साथ पात्र की मानसिकता और चरित्र के उद्घोषक भी।

यदि त्रुटि है तो यही कि सद् पात्रों की मदद कोई अज्ञात शक्ति ही कर रही है। परिस्थितियां कुछ ऐसी घटित हो जाती हैं कि वे असद् पात्रों की क्रूरता, कपट और षड्यंत्रों का शिकार नहीं होते और बिना कोई संघर्ष किए असद् पात्रों को उनके कुकर्म का फल दिला देते हैं। उनके हाथ में कथानक-विकास का सूत्र लगभग नहीं है न ही वे स्वयं को Defend करते हैं। कहा जा सकता है कि नाटक खलनायक प्रधान है और खलनायक है रसायनी स्वामी, जिसका सहायक है रसिया और कुछ हद तक मनोरथ राम। सेवकराम की भूमिका स्वामी भक्त नौकर की ही है जो स्थितिजन्य विद्रोह ही कर पाता है। अच्छा नाटक है।

3.4.2.2. गहरी नदिया की धार रेडियो नाटक है, जिसमें नवनिर्माण के पथ की अवरोधक शक्तियों की षड्यंत्रकारिणी बुद्धि और कुकर्म अभिव्यक्त हुए हैं क्योंकि नाटक रंगमंच के लिए नहीं लिखा गया इसलिए नदी की कलकल ध्वनि और चप्पु की ध्वनि तथा गीत संगीत के सहारे वातावरण को जीवंत बनाए रखने का यत्न किया गया है।

नाटक नाविकों के जीवन पर लिखा गया है। पुल बन जाने के कारण नाविकों की कमाई और रोजगार तबाह हो सकते हैं। इसी कारण फूलां का मंगेतर रसिया नाविकों को पुल बनने के विरुद्ध भड़काता है जबकि नाविकों का बीमार मुखिया रमैया पुल को आम जनता के लिए सुविधाकारी मान रहा है। उसका तर्क है कि इससे इलाके की तरक्की होगी, रही जीविका तो बटवार भी तो खेती कर सकते हैं या कोई अन्य व्यवसाय अपना सकते हैं। गंगुआ मुखिया का बेटा है फूलां बेटी है, जो समाज सुधारक बाबू के कल्याणकारी व्यवहार के कारण उसके प्रति श्रद्धा रखती है वह तेज तर्रार भी है और नौका द्वारा बाबू को नदी पार ले जाती है।

फूलां का मंगेतर रसिया जेल से लौटता है तो संयोग से वह फूलां को बाबू को नदी पार कराते देखता है । इसी से वह इसके प्रति ईर्ष्या द्वेष से ग्रस्त हो जाता है। उसे दुख है कि जेल में बारह बरसों में उससे कोई मिलने नहीं आया । जब पता चलता है कि फूलां उसी की मंगेतर है तो वह उस पर अपना अधिकार जमाने लगता है और पूछता है कि गंगुवा क्यों नहीं नाव चलाता? वह क्यों रात के अंधेरे में गैर मर्दों को नदिया पार कराती है ? परन्तु जब फूलां उसकी परवाह नहीं करती तो वह धर्म-कर्म का हवाला देने लगता है।

इसी ईर्ष्या के कारण रसिया लोगों को बाबू के खिलाफ भड़काता है और पुल और बाबू के विरुद्ध पंचायत बिठा लेता है। जिसमें फैसला होता है कि कोई नाविक बाबू को नदी पार नहीं कराये। परन्तु फूलां इस बहिष्कार की परवाह नहीं करती, वह रसिया की कुल्हाड़ी तक का सामना कर लेती है और उसे धकेल कर एक तरफ फैंक देती है। रसिया लोगों को रिजक के नाम पर भड़काता है, वह पुरखों का धन्धा छोड़ कर खेती करने के लिए तैयार नहीं।

खैर, रसिया के विरोध के बावजूद पुल बनने लगता है, लोग भी श्रमदान करते हैं। रसिया की पेश नहीं चलती तो वह षड्यंत्र करके पुल जलाने की कोशिश करता है। परन्तु फूलां रात के अंधेरे में ही पुल पर पहुंच जाती है। उसे दुःख होता है कि रसिया के साथ उसका भाई गंगुआ भी मिला हुआ है। पुल में बारूद लगा दिया गया है जिसे पलीता लगना ही बाकी है परन्तु फूलां के बीच में आने से अवरोध पैदा हो जाता है। काफी संघर्ष होता है, जिसमें गंगुआ ही अपनी बहन फूलां को नदी में गिरा देता है। इसी बीच पुलिस पहुंच जाती है और गंगुआ तथा रसिया पकड़ा जाता है। फूलां की बलि सहित पुल बनाने का जन-यज्ञ पूर्ण होता है।

नाटक के भोजपुरी भाषा का और गीतों का सुन्दर उपयोग हुआ है। नाटक के संवाद और चर्चाएं समस्या उद्घोषक हैं और पात्रों के चरित्र का परिचय भी दे देते हैं परन्तु पात्रों का चरित्र क्रमिक विकसित न होकर स्थिर-सा रह गया है। यहां किसी का हृदय-परिवर्तन नहीं हुआ, पात्र अपने-अपने जीवन तर्कों का सार्थक प्रतिनिधित्व करते हैं। नाटक रंगमंच की दृष्टि से नहीं लिखा गया।

स्पष्ट कथ्य यह है कि जन-कल्याण के कर्म में व्यक्तिगत ईर्ष्या-द्वेष की कुवृत्तियां ही आड़े आ रही हैं। रसिया इन्हीं कुवृत्तियों का प्रतीक है। बड़ा सुखद आश्चर्य है कि 'रास्ते कांटे और हाथ' का खलनायक रसिया 'गहरी नदिया की धार' के रसिया जैसा ही अपराधी, कामुक,

षड्यन्त्रकारी बुद्धि वाला है। नाम के अनुरूप तबीयत से भी वह रसिया ही है। 'रसिया' दोनों नाटकों में टाईप्ड खलनायक बन गया है। नाटक में मांझी की बेटी फूलां का चरित्र बड़ा सशक्त और प्रेरणास्पद है।

3.4.2.3. **प्यासी धरती** नाटक 'हमारा साहित्य' के वार्षिक अंक 1968 ई० में 'प्यास' शीर्षक से प्रकाशित हो चुका है और इसी नाटक पर डोगरी की पहली फिल्म 'गल्ला होइयां बीतियां' बन चुकी है। नाटक की अपेक्षा 'फ्लैशबैक' में लिखी यह कहानी अधिक प्रतीत होता है। हरिया प्यास से छटपटा रहा है और अपनी पत्नी देवकी पर खीझता है कि बादल नहीं बरसते, पानी नहीं मिलता, अकाल पड़ने की शंका से वह पागल-सा हो उठता है। देवकी को पति का डांटना जायज ही लगता है क्योंकि वह प्यार भी तो बहुत करता है। परन्तु ताल-तलैया सूख जाने के कारण पति-पत्नी के बीच का प्यार भी सूख-सा जाता है।

उसके मायके में पानी की कमी न थी, वह धान के पौधे रोप रही थी कि भाई ने उसकी सगाई की सूचना दी थी और कहा था कि दहेज में और सब कुछ तो देंगे ही पानी की कूल भी देंगे। ठण्डे पानी की कूल उसे भैया की याद दिलाती रहेगी और ससुराल की बंजर जमीन भी हरियाली से भर जाएगी। देवकी का रिश्ता उसने हरिया की बहन सरजू के बदले में लिया था। सरजू का ब्याह देवकी के छोटे भाई गणेश से होना मान लिया गया था परन्तु सरजू का भाग्य खोटा कि गणेश की मृत्यु हो गई तो सरजू का ब्याह देवकी के चाचा से करने की मांग आई, जिसे देवकी और देवकी के देवर चन्दू ने नकार दिया। हरिया ने तो परम्परा, रीत और वायदे का बहुतेरा वास्ता दिया परन्तु चन्दू भी अपने विचार पर अड़ा रहा और देवकी भी, इस कारण भैय्या ने उससे रिश्ता तोड़ लिया। इस घटना के दो बरस बाद भी कूल ज्यों की त्यों है और देवकी के ससुराल के लोग पानी के बिना तड़प रहे हैं। देवकी संकल्प कर लेती है कि अपने प्राण देकर भी गांव में पानी पहुंच जाए तो घाटे का सौदा नहीं है, पानी पीते कोई नाम तो लेगा। इसी निश्चय को लेकर वह पति को सोया छोड़ गैन्ती और फावड़ा लेकर निकल पड़ती है।

नाटक नुमा कहानी काफी सशक्त है। जिसके कथानक में लोक साहित्य के कथा-अभिप्राय का सुंदर संयोजन हुआ है 'राजे दी कूहल' गाथा से प्रेरित इस कथानक में बटांदरे के विवाह को झगड़े का कारण माना गया है। देवकी का चरित्र बड़ा जानदार है, वह नारी की तपस्या, पति के परिवार के प्रति प्रतिबद्धता और अनमेल विवाह के विरोध का सशक्त प्रतीक बन कर उभरी है।

3.4.2.4. **निष्कर्ष और उपलब्धि** जम्मू-कश्मीर में 'फ्लैश बैक' पद्धति के सहारे नाटक लिखने का पहला प्रयोग यहां मिलता। संवाद बड़े चुस्त और भावोत्कर्षकारी हैं। उद्देश्य जन-कल्याण और नवनिर्माण के लिए सर्वस्व बलिदान कर देने की उदात्त भावना को स्पष्ट करना है। अच्छे नाटक हैं।

3.4.3. **तीन असंगत एकांकी** श्री मोती लाल केमु के प्रस्तुत एकांकी-संग्रह का प्रकाशन वर्ष नहीं दिया परन्तु उन्होंने 'दो शब्द' में यह स्वीकार किया है कि उन्होंने ये एकांकी

1963-64 ई० के मध्य बड़ौदा में लिखे। इनमें से एक एकांकी 'नंगे' सर्वप्रथम 'हमारा साहित्य' अंक 1966 ई० में प्रकाशित हुआ। यह एकांकी बड़ौदा में मंचित भी हुआ है। मंचन के कुछ फोटोग्राफ्स संग्रह में संकलित हैं। शेष दोनों नाटक 'दर्पण अंत:पुर का' और 'सन्ध्या बीती' का अभिनय हुआ या नहीं जिक्र नहीं किया गया। हां, केमु साहब ने कहा जरूर है कि ये एकांकी रेडियो B.B.C. लंदन से भी प्रसारित हुए हैं। इन एकांकियों का मूल्यांकन प्रस्तुत है।

3.4.3.1. दर्पण अन्त:पुर का व्यंग्य प्रधान नाटक है, जिसमें हास्य का पुट मिला कर लोकराज्य पर चोट की गई है। लेखक ने लोक रंगमंच और शास्त्रीय नाटक के तत्वों का कुशलता पूर्वक समायोजन किया है। जिसमें सूत्रधार और नर्तकी की भूमिका का निर्वाह क्रमश: रंगीला और रंगीली करते हैं। इन दोनों की नाटक और दर्शकों के बीच त्रिशंकु जैसी स्थिति है। नाटक की भाषा 'खिचड़ी रस' की रचना करती है।

नाटक के आरम्भ में दर्शकों को आकर्षित और उत्प्रेरित (Motivate) करने के लिए भाण्डों जैसे हास्य-व्यंग्य और असंगति-कथन आदि का सहारा लिया गया है और इसी माध्यम से नाटक को प्रस्तावित किया गया है। रंगीला रंगीली की गीत पंक्तियों से स्पष्ट हो जाता है कि वे नाटक के रूप में लोकरंग, लोक भावना, लोक नाटक, लोक वेश आदि में एक अजूबा-सा तमाशा लेकर आए हैं। जिसमें खिचड़ी रस की रचना की गई है। नाटक के प्रारम्भ में ही परस्पर हास्य और व्यंग्य करते हुए रंगीला रंगीली राजा और रानियों का परिचय देते हैं और एक दूसरे के हास्य-व्यंग्य को बेलगाम होने से रोकते टोकते भी हैं। उनके व्यंग्य कथन द्वारा राजकाज में फैली असंगतियों का चित्रण होता चलता है, अगांभीर्य और गांभीर्य के बीच छिड़ा परस्पर का द्वन्द्व चरमोत्कर्ष की ओर बढ़ता जाता है।

राजा साल भर में एक बार रानियों सहित जनता को दर्शन देता है, नगरवासी खाली हाथ दर्शनार्थ नहीं आते क्योंकि धन के बिना चलना असंभव है, दोनों रानियों को वस्त्राभूषण भी चाहिए। यहीं स्त्री की आभूषणप्रियता पर भी व्यंग्य किया गया है। यहां सत्ताहित मोह की अपेक्षा लोकहित मोह को महत्व दिया जाता है और लोकराज्य में मौजूद विसंगतियों पर चोट की गई है। मौजूद लोकराज्य में अनुभव की अपेक्षा व्यक्ति की पूजा हो रही है। देश के सब से अधिक अनुभवीव्यक्ति को चुनने के लिए दरबार लगता है तो सुरक्षा की चीज़ की तरह राजा रानियां ताला बन्द होकर दरबार में आते हैं। राजा की सुरक्षा की चाभी महामंत्री के पास है।

प्रथा के अनुसार राजा को वर्ष में एक बार किसी आदमकद महादर्पण के सामने खड़े होकर अपनी राजस शानशौकत को निहारना होता है। वस्तुत: यह महादर्पण प्रतीक है- जनता के समक्ष उत्तरदायित्व और राजा के आत्मालोचन का। महादर्पण जनता का प्रतीक भी प्रतीत होता है, जिसके समक्ष राजा की मूर्खताएं प्रतिबिम्बित होती हैं। राजा अपने मिथ्या अहंकार, ढोंग, क्षुद्रता, कायरता, संदेह वृत्ति आदि को महादर्पण में देखता है।

दर्पण में राजा खुद को बार-बार मरता देख रहा है और बार-बार पुन:जीवित भी हो जाता है। यहां लेखक मर रही सामन्ती व्यवस्था की ओर संकेत करता प्रतीत होता है। बार-बार

शोक सभा होती है, महामंत्री जनता को सारे कामकाज बंद रखने का आदेश देता है। बार-बार रानियां विलाप करती हैं और शोक की अपेक्षा अगंभीर हास्यपूर्ण भावनाओं को व्यक्त करती हैं। राजा पुनर्जीवित होकर बार-बार टैक्स लगाने के आदेश देता है।

राजा के मूर्खतापूर्ण भौंडे व्यवहार द्वारा लेखक ने प्रजातंत्र की राजकीय व्यवस्था और शासन प्रणाली की खामियों पर अच्छा व्यंग्य किया है। स्पष्ट है कि भारतीय लोकराज्य व्यक्ति पूजा से ग्रस्त है, लोकराज्य होते हुए भी सामन्ती शासन प्रणाली ही चल रही है जबकि राजा, महामन्त्री, रानियां, सभासद सभी मूर्ख हैं जो प्रथा-पालन के नाम पर अनेक अनर्गल असंगत कार्य करते हैं और इन कार्यों में उनका मिथ्य अहंकार ही दृष्टिगोचर होता है। आम तौर पर लोक कथाओं में राजा को मूर्ख परन्तु महामंत्री को चतुर दिखाया जाता है। इसी कथा-अभिप्राय के अनुसार नाटकीय व्यवहार और राजा की मूर्खताएं नियोजित की गई हैं। राजा का बार-बार मरना और पुनर्जीवित होना काल-परिवर्तन और समस्या-परिवर्तन के रूप में भी अपनाया गया है .। राजा की वृद्धावस्था, युवावस्था, बाल्यावस्था की मूर्खताओं के माध्यम से शासन प्रणाली की विसंगतियों और चोरी, घूसखोरी, चोर बाजारी आदि और इन सब में राजा के योगदान का अच्छा व्यंग्यात्मक चित्रण हुआ है। नाटक में रेल गाड़ी के खेल का प्रतीकात्मक उपयोग हुआ है। राजा रेल गाड़ी का इंजन है तो रानियां, महामंत्री, सभासद रेल गाड़ी के डिब्बे । राज काज इसी खेल-खेल में चल रहा है। देश उन्नति करता जाता है और साथ ही साथ चोरी, रिश्वतखोरी, भाई भतीजावाद, कमीशन की बुराइयां पनप जाती हैं, चोर कभी राजा, कभी रानियां, कभी महामंत्री, कभी सभासदों के रूप में आता है।

अंततः जनता की भीड़ राजमहल की दीवारें फांद कर भीतर घुस आती है, पुलिस भी उसे रोक नहीं पाती । राजा भीड़ में दबकर मर जाता है, महामंत्री की बात कोई नहीं सुनता, सभासद कुचले जाते हैं, भीड़ रानियों को घसीट कर ले जाती है, उनकी चीख पुकार को अनसुना कर दिया जाता है और तब रंगीला रंगीली को भीड़ में खो जाने का संकेत कर देता है अन्यथा वे भी कुचले जाएंगे।

प्रस्तुत नाटक में लेखक ने लोकशैली, लोकरंग के सफल उपयोग से विसंगति का अच्छा चित्रण किया है। हास्य-व्यंग्य तथा भावविरुद्ध वाक्यावलियों के परस्पर संयोजन द्वारा लेखक का मन्तव्य बड़ा सशक्त ढंग से उद्घाटित हुआ है। लोकगीत और लोकनृत्यों द्वारा भी कथ्य की अभिव्यक्ति हुई है।

मोती लाल केमु का यह सफल और उत्कृष्ट नाटक है, जिसमें कथानक का कोई महत्व नहीं, न ही नाटक के कथानक-गठन की ओर ध्यान दिया गया है बल्कि प्रयोगधर्मी इस नाटक में मौजूदा जनजीवन की सभी समस्याएं और विसंगतियां एक ही मंच पर प्रस्तुत हो गई हैं। नाटक में प्रतीकात्मकता का सुदृढ़ और अर्थगर्भित उपयोग हुआ है।

3.4.3.2. संध्या बीती एक समस्याधर्मी नाटक है। नगरपालिका के पार्क के इस्तेमाल के माध्यम से लेखक ने व्यक्ति और समाज के जीवन की एकाधिक विसंगतियों को सफल

अभिव्यक्ति दी है।

श्री वास्तव महंगाई के प्रति सोचता हुआ संगतरे के छिलकों को छिपाने के लिए उल्टे पड़े खाली गमलों का उपयोग करता है, इसी छिपात्र वृत्ति के कारण वह सर्दी को भी नकारता जाता है। वह आसव के निवेदन को अनसुना करता है, उसे अंग्रेजी शब्द के अर्थ नहीं समझाता। आसव शायर हैं, मजदूरी भी करता हैं। उसने प्रधान की रिहायशगाह पर खिजात्र रंगी दाढ़ी वाला एक बूढ़ा देखा है जो उसे लाल रीछ प्रतीत होता है। इस लाल रीछ पर आसत्र नज्म लिखना चाहता है। इस लाल रीछ ने प्रधान से सुरक्षा मांगी थी परन्तु पुलिस ने उसे खदेड़ दिया था जबकि वह प्रधान की कार के सामने बिछ गया कि वह उसकी आबरू की रक्षा करे, कि लोग उसे लूट रहे हैं। प्रधान कार के बाहर आया तो आसव ने उसके हक में नारे लगाए, उससे अंग्रेजी लफ्जों के मानी पूछे। आसव ने खुद अंग्रेजी में दरख्वास्त लिखी है परन्तु विडम्वना यह है कि उसे नहीं पता कि उसने क्या लिखा है।

प्रधान और सरकारी अफसर ने आसव से उसके दादा द्वारा बनवाये मकान का आधा हिस्सा खरीद लिया था ताकि सड़क बन सके। प्रधान ने दस-दस रुपये के नोट देने शुरू किए, आसव ने चादर पसार दी, नये-नये नोटों से भुजाएं भारी हो गईं। आसव को लगा कि वे कीमत से ज्यादा अदा कर रहे हैं, वह सारा दिन आधे बचे मकान के कमरे में चटाई पर नोट फैला कर उन्हें कुरमुराता रहा, नोट गिने नहीं ताकि मकान का पूरा मूल्य ज्ञात न हो जाए।

तभी अंधेरे में मुस्कराते फूल-सा, नहीं धूल के कण जैसा बूट पालिश करने वाला लड़का आ जाता है। खम्बों को लात मार कर वह बल्ब जला देता है फिर इस चमत्कार पर हंस पड़ता है। लड़के का कोई नाम नहीं, वह अपने बाप को नहीं जानता, मां कोई काम नहीं करती थी, बस फिरती रहती, सभी उसे गुजरी कह कर पुकारते, छोटी मूंछों वाले ड्राइवर के अनुसार कोई बड़ी मूंछों वाला ड्राइवर उसे ले गया। श्री वास्तव आसव को समझाता है कि धरती को लोगों को सौंप दो ताकि लोग एक दूसरे से सट कर, सिमट कर, लपट कर न चल सकें, बाहें फैला कर चल सकें, नजरें बचा कर चल सकें। प्रत्येक व्यक्ति अपना व्यक्तित्व बचा कर चल सके।

लड़का जानता है कि जमाने में लोगों के बूटों की नोक, जबान की नोक और मूंछों की नोक चमकाने से आदमी का रुतबा बढ़ता है। जीवन भार है, श्रम-भार, भ्रम-भार, शापग्रस्त आदमी, पापग्रस्त आदमी गठरी बांधता है, खोलता है, जीवनक्रम चलता रहता है। लड़का मां की तरह ही किसी भी बस की खिड़की खोल कर सो जाता रहा है। लड़का अपने काम धाम के बारे बताता है कि वह साइकल में फूंक भरता रहा है और फूंक मार कर दिखाता है। आसव उसके व्यंग्य को समझ जाता है कि आदमी हवा से भरा फूला फूला रहता है।

आसव की बीवी थी, लड़का था जो गोली खाकर मर गया, बीवी पागल होकर मर गई। हां, लड़का आजादी की खातिर मरा, मारा गया, शहीद हुआ और वह अकेला रह गया। सभी अकेले रह जाते हैं। साथी बिछुड़ जाते हैं, टिकटें कटती जाती हैं, बंटती जाती हैं, टिकटें छपती

जाती हैं, सफर चलता रहता है। बेघरों के लिए मुसाफिर खाना होना चाहिए ताकि कोई बेटी अपने बाप से न छूट जाए, इसलिए उसने प्रधान को दरख्वासत लिखी। आसव को बालक के लौटने का इंतजार है, फूल तो उसने तोड़ा है मगर खुद झाड़ी के पास ही सो गया है, माली ने उसे डराया होगा। क्या था इसका नाम ? तुमने अपनी जुबान निगल डाली, क्यों, क्या तुम्हारी जुबान......

नाटक में मनुष्य जीवन की अनेक समस्याओं और विसंगतियों पर फैंटेसी शिल्प द्वारा व्यंग्य किया गया है। महंगाई, भाषा, भाषा की अर्थहीनता, नेता और प्रशासन की मिली भगत, साधारण दुखी और शोषित व्यक्ति की उपेक्षा, लेखकों शायरों का इस व्यवस्था के प्रति समझहीन विद्रोही भाव, धन का लालच, सरकारी कल्याणकारी योजनाएं, नगरीकरण और अजनबियत, शहीदों के प्रति दिखावटी श्रद्धा और सम्मान, ठेकेदारों की अमीरी, अनाथ बच्चों की विवशता, अनाथ औरतों के प्रति व्यभिचार की वृत्ति, दिखावटी दबदबा, व्यक्ति की नामहीनता, अस्तित्व का नकार और चतुर्दिक फैला संत्रास आदि अनेक जीवनगत विसंगतियों को एक साथ प्रस्तुत किया गया है। बार-बार अंग्रेजी शब्दों के अर्थ पूछना और बात को उलझा देना वस्तुतः भाषागत विसंगति के साथ-साथ अगंभीरता पैदा करके चोट करने के लिए प्रयुक्त किया गया नाटकीय उपकरण मात्र है। अनेकायामी नाटक है।

3.4.3.3. नंगे नाटक की मूल समस्या है- आदमी की पहचान का खत्म होते चले जाना। आदमी की पहचान उसके टिकट, उसकी वेशभूषा, उसके सर्टीफिकेट और तामझाम के सामान से ही हो रही है। उसका समूचा व्यक्तित्व और अस्तित्व इन बाह्य वस्तुओं में ही सिमट कर रह गया है। इस बाह्य रूप के बिना उसका वर्चस्व, बुद्धि, प्रतिभा, संघर्ष-चेतना का नकार हो रहा है, उसे पागल--सा करार दे दिया जाता है।

नाटक की मूल घटना की कल्पना करके लेखक अंगभीर वाक्यावलियों द्वारा स्थिति पर चोटें करता चलता है। कल्पना यह की गई है कि रेलगाड़ी के बाथरूम में घुसे आदमी का सामान उसके साथ बैठी कोई लड़की उतार लेती है और उसे तौलिया दे देती है। तौलिया लपेटे नंगे आदमी को बगैर टिकट यात्री समझ कर पुलिस चौकी लाया जाता है।

उसकी विडम्बना यह है कि उसे रात्रि के समय नंगा सोने की आदत है। वह पुलिस चौकी में अपनी आदतों, अपनी टिकट, अपने सर्टिफिकेट, अपने समान के बारे बताता है और इस सबकी मांग करता है परन्तु पुलिस उसकी किसी बात पर विश्वास नहीं कर रही। बेचारा रतिरमण अपने इस सारे सामान के चोरी हो जाने से अधूरा महसूस कर रहा है, अपने आपको निर्दोष साबित करने के बहुतेरे तर्क दे रहा है।

स्थितिजन्य फूहड़ता का तर्कसंगत चित्रण बता देता है कि रतिरमण बेकसूर है, वह बी.ए. पास है, न कमजात, न बदजात, बल्कि असलजात भारतीय है, जो पुलिस इंस्पैक्टर सरकारी वर्दी वाले टिकट कलैक्टर पर विश्वास कर रही है और उस अर्धनग्न पर विश्वास नहीं कर रही जबकि उसके कपड़े, बक्स, बिस्तर, टिकट, सर्टीफिकेटस, पूरा का पूरा व्यक्तित्व चुरा

लिया गया है, जिसके बिना वह अधूरा है।

चौकी के सिपाही तक उस पर विश्वास नहीं करते, कोई सज्जन गाड़ी में नंगा होकर सो सकता है उन्हें मलाल है कि टिकट कलैक्टर ने रिश्वत की उम्मीद छोड़कर उसे पुलिस के हवाले कर दिया। उन्हें यह भी मलाल है कि सांझ बेकार हो गई, नहीं तो साइकिल सवारों से कुछ न कुछ मिल ही जाता।

पुलिस के कपड़ों में उसे अपना आप बेढंगा लग रहा है। वह स्वयं को अधूरा, फजूल की चीज़, तुच्छ, निरर्थक वस्तु समझ कर घुटन महसूस कर रहा है, एकान्त और अकेलेपन की पीड़ा से घुटा जा रहा है। इसी घुटन, ऊब, निरर्थकता और अकेलेपन के बुखार में वह सोये पड़े पुलिस-कर्मियों को रस्सी से बांध देता है। वर्दी के बूते पर पुलिस मैन बना वह सिविल ड्रेस वाले सोये पड़े पुलसियों को बांध लेता है, उन्हें चोर मान लेता है। खूब धमा चौकड़ी मचाता है कि उनके पास कोई वर्दी नहीं, वे सब नंगे, साधारण आदमी हैं, फूहड़ हैं, सभी चोर की मदद करते हैं, जुर्म करते हैं।

रतिरमण अपनी कोठरी के साथ के कैदी को देख कर समझता है कि उसे रतिरमण की निगरानी के लिए 'प्लांट' किया गया है । कैदी उसे समझाता है कि शांत हो जाए, हर नया यहां पहले-पहल तूफान मचाता है फिर बर्फ की तरह ठंडा हो जाता है, अंधेरे का आदी हो जाता है। परन्तु रतिरमण वैसे ही शोर मचा रहा है। वह झंकार है, कोहराम है, हलचल है, टंकार है, ध्वनि है।

व्यक्तित्व एक मुखौटा है जिसके दो रूप होते हैं, धूप रूप प्रखर है जिसे देखते ही आंखें चुंधिया जाती हैं। छाया रूप सभी देखते हैं पर उसका मुखौटा उतर चुका है, उसका आवरण चुराया गया है, उसे अर्ध नग्न लाया गया है, अधूरा लाया गया है। रतिरमण प्रेम को वासना का आवरण कहता है, शिष्टाचार के बन्दों ने वासना की नग्नता छिपाने के लिए प्रेम को एक वर्दी बनाया है, प्रेम को अमर निष्कलंक, सशक्त और वासना से उच्च कहा जाता है। मां बाप का संतान के प्रति प्रेम मात्र लगाव की कड़ियां हैं जो पराई नारी के साथ जुड़ गई होंगी, हम वासना के मारे, आकर्षण के शिकार होकर प्रेम का स्वांग करते हैं, प्रेम का अभिनय करते हैं। असली मुख अंदर और नकली मुखौटा सामने क्यों ?

दूसरा कैदी चित्रकार है। वह एक अमीर और प्रभावशाली आदमी की लड़की से प्रेम करता था। जब तक वह स्वयं गवाही न देगी, इलजाम उसके विरुद्ध जाएगा क्योंकि उसके बाप ने चित्रकार को चोर कहा है। वस्तुतः जब उसने जान लिया कि लड़की उस के प्रति आकर्षित है तो चित्रकार ने उसके घर जाना बंद कर दिया, वह एक मध्यवर्गीय मामूली आदमी उसके अयोग्य था परन्तु वह लड़की उसके पास आने लगी, उसे चित्र बनाते हुए एकटक देखा करती, उसकी मुख मुद्रा चित्रकार को बहुत भली लगती। उसने उसका चित्र बनाया था।

रतिरमण चित्रकार को उकसाता है तो वह कह देता है कि धीरे-धीरे उसने लड़की के न्यूड बनाना शुरू कर दिए, जिन्हें बेचकर खूब धन कमाया, मकान लिया, स्टूडियो बनाया। फिर

दूसरे शहर में प्रदर्शनी हुई, वे दोनों वहां गए। सात दिन बाद लौटे। फिर सातवें दिन उसने भाग चलने के लिए कहा लेकिन चित्रकार नहीं माना, लड़की निराश हो गई परन्तु उसके पास आती रही। एक दिन वह उसका न्यूड चित्रित कर रहा था कि किसी ने दरवाजा खटखटाया। वह स्क्रीन के पीछे कपड़े पहनने चली गई। दरवाजे पर उसका बाप खड़ा था। चित्रकार डर गया था कि बाप क्या कहेगा परन्तु बाप ने कुछ कहा नहीं, चित्र देखता रहा और कीमत पूछी। परन्तु चित्रकार उन चित्रों को बेचना नहीं चाहता था, उनके प्रति मोह था, आत्मीयता थी। जबकि बाप अपनी बेटी की परछाइयां उन चित्रों में देख रहा था।

बाप के जाने के बाद लड़की एकदम घबराई हुई थी, अधमुई-सी उसकी बांहों में गिर कर सिसक-सिसक कर रोती रही फिर अपने घर चली गई और कभी नहीं लौटी। और चित्रकार उसके अमीर और प्रभावशाली बाप के षड्यंत्र में फंस गया और यातनाएं सह रहा है लेकिन उनके बनाए झूठ का इकरार नहीं कर रहा, 'मैं मरना स्वीकार करूंगा किन्तु झूठे आरोप कभी कबूल नहीं करूंगा।'

चित्रकार उसे रोकता है, समझाता है कि वह इन्स्पैक्टर का आदमी नहीं है, 'ये सभी जाग गए तो सख्ती करेंगे, बांध देंगे।' परन्तु रतिरमण को तो अपनी अकर्मण्यता की थकान जला रही है। उसे प्रतीत होता है जैसे, वह इन्स्पैक्टर की वर्दी, टोपी, कमरबन्द को जला रहा है और वह आग-आग चिल्ला उठता है कि शोर सुन कर सभी जाग पड़ते हैं, नंगे अधनंगे 'बुझा दो बुझा दो', चिल्लाने लगते हैं। परन्तु इन्सपैक्टर वस्तुस्थिति देखकर परेशान हो उठता है और पूछता है कि इस मजाक से रतिरमण को क्या मिलता है।

प्रात: डाक्टर आता है। उसे मैडिकल टैस्ट लेने के लिए बुलाया गया है। सरकारी खर्चों पर मैडिकल एग्ज़ाम क्यों हो रहा है, रतिरमण इन्स्पैक्टर पर व्यंग्य करता है और डाक्टर को कहता है कि उसने सभी पुलसियों को नींद में चलते देखा है। इन सभी ने अपनी अपनी वर्दियां उसके पैरों पर फैंक दीं, टोपियां फेंक दीं....जूते.....नहीं जूते नहीं फैंके। इन्हें जगाया गया तो इन्होंने उसके हाथ पांव बांध दिए जबकि वह बिल्कुल ठीक है, उसका दिमाग ठीक है, हां बदन तप रहा है, दर्द हो रहा है, उसके कपड़ों, टिकट, प्रमाण पत्रों की चोरी हो गई है। उसका व्यक्तित्व चुराया गया है, वह अधूरा है, उसे इनकी वर्दी नहीं चाहिए, इसमें वह बेढंगा लगता है, अजीब लगता है । उसे अपने व्यक्तित्व, के छिन जाने का बुखार है, उसे अपने व्यक्तित्व से लगाव है, आत्मीयता है, अपनापन है, अपने कपड़ों और सर्टिफिकेटस के छिन जाने का दर्द है, वह अधूरा है, नंगा है, अपने व्यक्तित्व, दायरे से अलग है, वह केवल केन्द्र बिन्दु रह गया है।' और रतिरमण डाक्टर को भी एब्नार्मल कह देता है। इन्स्पैक्टर को ताना देता है कि वह उसके विचारों का पोस्टमार्टम करवाना चाहता है।

तभी चेतना प्रवेश करती है, रतिरमण को देखती है। रतिरमण चेहरा छिपा लेता है। वह इन्स्पैक्टर को रतिरमण का टिकट दिखाती है और खेद व्यक्त करती है कि स्टेशन समीप आ रहा था तो उसने सब सामान बांध लिया था लेकिन रतिरमण (मदन) लैटरिन में थे। वे गाड़ी में पहली बार मिले थे। 'जी नहीं। अब इस टिकट की कोई जरूरत नहीं। अब हमारा नया सफर

शुरू होगा। हम दोनों नई टिकटें खरीदेंगे।' उसे दुःख है कि रतिरमण को सामान की सूचना दिये बगैर चले जाने से परेशानी हुई, उसकी मानहानि हुई , उसके व्यक्तित्व की चोरी हुई। परन्तु यह सब जल्दबाजी में हुआ । उसके पास रतिरमण का पता भी नहीं था, उनके बक्स को वह कैसे खोल सकती थी।

तभी रतिरमण चेतना द्वारा लाए कपड़े बदल कर आ जाता है। इंस्पैक्टर उसे जाने की इजाजत दे देता है परन्तु अभी भी वह सच्चाई नहीं जान पाया तो रतिरमण उसे कहता है 'इंस्पैक्टर ! सच्चाई योग्यता और असलियत, कपड़ों में नहीं, वर्दियों में नहीं, सर्टिफिकेटों में नहीं, नम्बरों में नहीं, टिकटों में नहीं। नहीं है इन सब में.....आदमी में है। और अगर आदमी में भी नहीं है तो कहीं नहीं।.....हो सकता है कि बन्दी कैदी के कथन में सच्चाई हो, सत्य हो, यथार्थ हो। इंस्पैक्टर, हो सके तो उसको मुक्त कीजिएगा।

नाटक में संवाद की अपेक्षा जोश और तर्क के सामंजस्य के आधार पर बुनी गई चर्चाओं का विशेष महत्व है जो रोचक तो हैं ही, विचारोत्तेजक भी हैं। इन चर्चाओं में अनुभूति की तीव्रता भी है और अपने गिर्द आवरण डालने की वृत्ति भी, विशेषकर चित्रकार का आत्मकथन इस संदर्भ में महत्वपूर्ण है और उसे उकसाने के लिए रतिरमण के कथन भी महत्वपूर्ण हैं। अच्छा सुगठित और प्रभावोत्पादक नाटक है।

3.4.3.4. निष्कर्ष और उपलब्धि कुल मिला कर कहें तो मोती लाल केमु के ये तीनों नाटक जम्मू-कश्मीर की नाटक विधा की सशक्त उपलब्धि हैं, प्रयोगधर्मिता की दृष्टि से भी और नये भावबोध की दृष्टि से भी। उन्हें नयी संवेदना का प्रदेश का पहला नाटककार मान लेने में कोई अत्युक्ति नहीं।

3.4.4. कांप कांप रहा चक्रबन्धु सुतीक्ष्ण कुमार आनन्दम् ने भी सातवें दशक में नाटक लिखे हैं। इनका नाटक 'पागल' 1966 ई० में लिखा गया, जो 'हमारा साहित्य' के 1974 ई० के अंक में 'सांझे मंच पर' नाम से प्रकाशित हुआ और तदोपरांत 1981 ई० में प्रकाशित नाटक संग्रह 'आखरी पन्ने' में संकलित हुआ। इसी दशक में उनके कुछ काव्य-नाटक या गीति-नाट्य 'भीनी भीनी चली हवा' (श्रावण 1966 ई०) 'बगिया में केसर फूला रे' (बसंत पंचमी 1968 ई० से जम्मू रेडियो से प्रसारित) 'कांप कांप रहा चक्रबन्धु (दिगम्बर 1970 ई०) और 'ज्योतिपर्व' (दीपावली 1971 ई० को रेडियो जम्मू से प्रसारित) आदि गीति नाट्य लिखे गए। दिसम्बर 1972 ई० में इन सभी गीति-नाट्यो को 'कांप कांप रहा चक्रबन्धु' के नाम से प्रकाशित कराया गया ।

यह स्पष्ट है कि 'ज्योति पर्व' के अतिरिक्त ये सभी गीति नाट्य इसी दशक के हैं। 'कांप कांप रहा चक्रबन्धु' के गीति नाट्यों को लेखक विद्याभूषण अग्रवाल ने 'प्रथम परिचय' के अन्तर्गत 'पद्य रूपक' कहा है परन्तु 'आखरी पन्ने' में 'लेखक की अन्य पुस्तकें' के अन्तर्गत उसे संगीत रूपक माना गया है। इन्हीं रचनाओं का मूल्यांकन निम्नलिखित है।

3.7.4.1. भीनी भीनी चली हवा 1966 ई० में लिखित नाट्य को भाव नाट्य माना गया है, जिसमें पावस ऋतु के गीतों में प्रस्तुत किया गया है।

संगीतकार आकांक्षा करता है कि उसकी सारी उर-पीड़ा धुल जाएगी, कण-कण हंस देगा, धरती मुस्कराएगी। और वह भावावेग में बादल को सम्बोधित करता है कि धरती प्यासी है, तपते क्षणों की तपन बुझा दे । मेघ गरजते हैं, बरसते हैं तो संगीतकार आह्लादित हो उठता है कि अमृत बूंदे बरस रही हैं, नवल कोंपलें सरस रही हैं।

संगीतकार के शब्दों को सुन कर नर-नारी भी समूहगान करते हैं। संगीतकार यह सुनता है तो प्रिय के प्रति विरह पीड़ा को गाने लगता है। उसे उसकी याद दग्ध कर रही है, आंखों में वेदना छलछला रही है क्योंकि वह प्रवासी है, निष्कासित है जबकि वह समय बड़ा मनोहारी था जब दोनों मधु-सरिता के तट पर साथ-साथ बैठे थे।

पद्य रूपक में फ्लैशबैक उभरता है तो राजन अपनी बेटी को पर-पुरुष के साथ देख दुविधा में पड़ जाता है। वह स्वयं तो शक्तिहीनता का अनुभव करता है परन्तु द्वारपाल को बेटी के प्रति सूचना लाने के लिए उकसाता है। द्वारपाल सूचना देता है कि राजकुमारी संगीतकार के साथ गा रही है। राजन को विश्वास नहीं। वह द्वारपाल पर व्यंग्य-सा करता है कि उसके मन में विकार है, गुरु शिष्या को पढ़ाते हैं या वासना में रत रंग चढ़ाते हैं। वह आवेश में कहता है कि वह चाहे तो संगीतकार को प्राण दण्ड दे सकता है परन्तु फिर संगीत धन नहीं फल सकेगा, अतः उसे राज्य की सीमा से निकाल देता हूं। राजकुमारी क्षमा मांगती रह जाती है। फ्लैशबैक समाप्त हो जाता है।

संगीतकार का स्वर उभरता है कि विदा होकर भी प्रिय बिन जीना अच्छा नहीं लगता, वह अपनी व्यथा-कथा भेजना चाहता है और मेघराज को संदेश वाहक यक्ष के रूप में पहचान कर संदेश देता है । इस संदेश में विरह व्याकुल प्रिय को चित्रित किया गया है, महाकवि कालिदास को रिपीट किया गया है। थोड़ा परिवर्तन के साथ ! और फिर अंतिम गीत में मिलनाकांक्षा की झलकी है, अच्छा संगीत नाटक है। नाटककार को गीतकार के रूप में पहचाना जा सकता है।

3.4.4.2. बगिया में केसर फूला रे पद्य रूपक वसंत पंचमी 1968 को रेडियो से प्रसरित हुआ है।

चहचहाते पक्षियों, जल प्रपात के कल कल स्वरों, बांसुरी के स्वरों आदि पर एक नर नींद से जाग कर विस्मयता पूर्ण प्रसन्नता व्यक्त करता है कि वन उपवन केसरिया बाना पहने निखर उठे हैं, परिमल गंध महक रही है। उसके पास खड़ी प्रिया को भी आज सगुन शुभ लगता है। फिर समूह गान की धीमी लय उभरती है कि रवि-रश्मियों का मनोहर गान, जलप्रपात की कर्ण प्रिय नाद, मानों नव वर्ष का गीत गा रहे हों।' हर ठांव बसंती हो गया है।

उर्वशी हंस रही है, यौवन हंस रहा हैं। चंचला, चपला दोनों सखियां आ रही हैं। उर-उर में प्यार जगाने के लिए सम्बोधित कर रही है कि मन मिलेंगे तो भाव खिलेंगे, वीणा-वादिनी

प्रसन्न होकर वरदान देगी।

नर-नारी समूह गान में झूम-झूम कर गाने, ढोल की थाप पर नाचने और परस्पर स्नेह की प्रेरणा दी गई है। प्रिय प्रिया दोनों के अंग-अंग पर नया ही रंग चढ़ा हुआ है।

प्रिया को लगता है रामगिरि आश्रम में कोई वियोगी प्रवासित यक्ष की भांति विरहाग्नि में तप रहा है। फिर वियोगी नर का गीत उभरता है कि विधुर का जीवन कैसे कटे ?

प्रिय का स्वर उभरता है कि मधु हास, तरंगित यौवन, आनन्दमय हर्षमय क्रीड़ाएं सब किस लिए हैं ? किस लिए कली हंस रही है, डाल-डाल ने किस लिए शृंगार किया है? फिर नारी समूह का स्वर उभरता है कि वसंत धन्य है, पुण्य धरा उसी के लिए तरसती है तो वसंत उमड़ती, सरसती आ जाती है। साधारण पद्यरूपक है। बसंत आगमन के दौरान संयोग और वियोग का चित्रण हुआ है।

3.4.4.3. कांप कांप रहा चक्रबन्धु दिसम्बर 1970 में लिखित है इसे 'एक पात्री नाटक' यानी (Monologue) कहा गया है । जिसमें लेखक मूलत: मृत्यु से भयभीत है। चारों दिशाएं जो मन को भाती थीं, इन्द्रधनुषी रंगों में अनुराग बांटा करती थीं वे ही अब भयदायिनी-सी विकराल हो रही हैं। सूर्यास्त के समय की लाल-लाल लवरें मानों धधक रही हैं। चक्रबन्धु (सूर्य?) का तन मन कांप रहा है, कभी ज्योतिषी ने उसके सूर्य को बलवान कहा था और कहा था कि इसी बली सूर्य के कारण वह सुरक्षित है, पर यही सूर्य अस्त हो रहा है। जिसके अस्तागत होने के साथ-साथ उसकी गति मन्द पड़ रही है ।

नौ भैंसों द्वारा खिंचते रथ पर कोई महारथी क्षितिज की लपटों में से उभर कर सूर्य को काटने के लिए तीखी उड़ान भर रहा है तो क्या अनचाहा अवसान सचमुच ही निकट आ रहा है क्या विज्ञान, यंत्र, मंत्र, तंत्र के इस युग में सती अनुसूया-सा कोई पराक्रमी सूर्यास्त को रोक नहीं सकता? मृत्यु का महारथ मानो निकटतर आता जा रहा है। कौन जाने जिस प्रदेश में यह मृत्यु उसे ले जाएगी वहां उल्लुओं, चमगादड़ों, राजहंसों का नगर होगा ? वह चिंतिति है कि क्या उसका भौतिक सम्बन्ध टूट जाएगा ? क्या अब वह नहीं रहेगा।

उन सबका क्या होगा जिनके लिए इच्छाएं, आकांक्षाएं, आशाएं, छल, ममता, उपेक्षा, न जाने उसने क्या-क्या भोगा और सहा है। वह भाई बहन का स्नेह पहचान नहीं सका, मित्रों से आघात पर आघात ही मिले, तिरस्कार वाक्य ही सुने हैं, तो क्या सभी तृष्णाएं क्षीण हो जाएगी? क्या ऊब, घुटन, घेराव से जीवन मुक्त होगा? क्या कोई नया धर्म उपजेगा जिसमें सभी मानव होंगे ? क्या उसके सपनों का समाधान होगा ? क्या उसकी वे सफलताएं, आस्थाएं, अधिकार, पत्र जिनमें उसके व्यक्ति की चर्चाएं हुईं, बचेंगे?

वह मानता है कि जन्म से ही वह रोता रहा है, मंदिरों, मस्जिदों, गुरुद्वारों, गिरजाघरों में खूब रोया है परन्तु यह रोदन रुग्णमन का नहीं उसकी पावन आत्मा का है, इसलिए नया है। इस रोदन के बावजूद नयनों में अश्रु नहीं, मन में स्नेह नहीं, यह रोदन बिल्कुल नया है।

अस्त होता सूर्य कुछ ही क्षणों में तन्दूरी लपटों में रोटी-सा घिर जाएगा और इधर कुत्तों की भीड़, चीलों के झुण्ड जीभें लटकाए, चोंचें खोले नयन उभारे फंदे को उसकी ओर बढ़ता देख झूल रहे हैं जबकि उन्हीं कुत्तों के बीच उसके अपने कुत्ते राकी और पीटर दोनों रो रहे हैं कि उसके बाद उन्हें कौन खिलाएगा, कौन दुलरायेगा, कौन उन्हें बेवक्त भौंकने पर टोकेगा ? कुत्ते सब कुछ देख रहे हैं परन्तु प्रियतमा को इस सबका ज्ञान नहीं। यह भी अच्छा ही है क्योंकि वह प्रियतमा को अपना नेह नहीं जता पाया उसे देख देख कर सदा जी में ही मुस्काता रहा, ताजमहल बनाता रहा।

अब यही काफी है कि प्रियतमा उसे हरजाई नहीं समझेगी जबकि प्रियतमा के लिए अभी भी उसके मन में प्यास है, बल्कि पहले से भी अधिक प्यास है। उसे संतोष है कि उसकी रचनाओं में प्रेमिका के उद्धरण अधिक नहीं हैं, किसी कारण वे अधूरे भी हैं जिन्हें वह देख नहीं पाएगी। कौन जाने प्रियतमा ने भी उससे नेह किया है ? परन्तु उसे यह भी ज्ञात है कि उसने उसकी रचनाओं का कथ्य सराहा है, उसकी मुस्कराहट का मंदहास से उत्तर दिया है, अपनी सखियों में उसकी चर्चा की है।

हां, यदि इसी नाते वह उसकी रचनाएं आंकेगी तो उनमें उसकी घुटन और चीत्कार के सिवा कुछ भी नहीं मिलेगा, यद्यपि इन रचनाओं में कुछ श्रृंगार गीत भी हैं और हां, यदि वह चाहे कि महाप्रस्थान से पूर्व अपनी सभी रचनाएं उसे समर्पित कर दे, जबकि ये तो उसे पहले ही से समर्पित हैं परन्तु स्वीकृति अभी तक भी अपेक्षित रही है।

उसे लगता है कि उस पर कनखियों से मुस्काया जा रहा है, प्रकाशक भुनभुना रहा है, बेचने के उत्तरदायित्व पर ग्रन्थ छापने के लिए मान रहा है और लालच भी दे रहा है कि जिस जिस की पुस्तक उसने प्रकाशित की है उस उस को पुरस्कार मिला है परन्तु बिक्री के नाम पर पुस्तकें दीमक चाट रही हैं और कुछ लोग सोच रहे हैं, जाता है तो जाने दो, गई बला समझो, इसके बिना भी काम चल सकता है। तनिक शोक व्यक्त कर देंगे।

और महारथ का सारथी अट्टहास में डूब रहा है। नौ की नौ भैंसें अपनी दुम हिला रही हैं। सूर्य तिल भर दिख रहा है, गले में फंदा पड़ने ही वाला है। कौओं का झुण्ड उड़ता आ रहा है, चीलों का दल अनाप छनाप गा रहा है, कुत्ते तैयार हो रहे हैं। ये सभी रात भर उत्सव मनाएंगे, उसका तन बदन नोच डालेंगे। राकी और पीटर शोकाकुल हैं, उनकी पूंछें लटक गई हैं, जबकि अपने पराये किसी को भी उसके इस अनचाहे महाप्रयाण का ज्ञान नहीं है, आज तक वह किसे बुलाता रहा है, जबकि कोई अकेला नहीं, अकेला है तो वही, वही भरी भीड़ में अकेला है, यह अकेलापन ही सबसे बड़ा सत्य है। यहां सभी अकेले हैं, भरी भीड़ में अकेले हैं।

संभवत: वीरो गाय को सब ज्ञात है, वही हक्की बक्की अपनी बछिया को निहार रही है। संभव है दोनों चिंतित हैं कि आज वह अपने हिस्से का ग्रास बचा कर देने नहीं आया।

सूर्यास्त हो चुका है, अंधकार छा रहा है, क्षितिज की गोद में अंगार धधकती लाल लाल लपटें मारती ज्वाल कुछ ही क्षणों में सिमट जाएगी ठंडी हो जाएगी, चीलों, कौओं कुत्तों में

प्रसन्नता की लहर दौड़ गई है, वे उत्साहित हो उठे हैं। उसका श्वास अटक रहा है, कुत्ते कदम कदम आगे बढ़ रहे हैं। सारथी अट्टहास लगाता फंदे की डोर खींच रहा है।

3.4.4.4. निष्कर्ष और उपलब्धि कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि पहले दोनों पद्य रूपकों में प्रकृति के सुखद और उल्लासकारी रूप का चित्रण हुआ है और वियोग की मामूली-सी झलक है। नाटककार कालिदास से प्रभावित है। परन्तु 'कांप कांप रहा चक्रवन्धु' उसका सशक्त एक पात्री पद्य नाटक है। जीवन के यथार्थ अनुभव और सांसारिक छल-कपट, स्नेह, तृष्णा, घुटन, अकेलेपन की तीव्र अनुभूतियों का सार्थक बिम्बों में यहां चित्रण हुआ है। यही गीति नाट्य उसकी उत्कृष्ट रचना है।

संदर्भ

1/2 दो चान्द शंकर शर्मा 'पिपासु' भूमिका

3. शंकर शर्मा 'पिपासु' व्यक्तित्व एवं कृतित्व सुभाष भारद्वाज भूमिका

4/5 रुनझुन ज्योतीश्वर पथिक भूमिका

6. सीमा का पंछी शंकर शर्मा पिपासु भमिका

7. शीराज़ा डॉ॰ गंगादत्त शास्त्री 'विनोद' का आलेख

8. खोटी किरणें डॉ॰ रत्न लाल 'शान्त' भूमिका

9. रेत का सागर सुभाष भारद्वाज भूमिका

10. देखती आकाश आंखें सुतीक्ष्ण आनन्दम् भूमिका

4

आठवें दशक तक का जम्मू-कश्मीर का हिन्दी साहित्य

आठवें दशक के आरम्भिक दो चार वर्षों में कुछ ऐसा साहित्य भी प्रकाशित हुआ है जो मूलतया सातवें दशक में लिखा गया था, इस साहित्य को संक्रान्तिकाल का साहित्य कहा जा सकता है क्योंकि ऐसे साहित्य में परम्परागत भावबोध और शिल्प धीरे-धीरे पीछे छूट रहा है और नये भावबोध और शिल्प के प्रति लेखक आग्रहशील हैं, कविता के क्षेत्र में इस दशक में नये प्रयोग हुए हैं। परन्तु कथा साहित्य की भावभूमि में परिवर्तन नहीं हुआ है। इस दशक के साहित्य का मूल्यांकन निम्नलिखित है।

4.1. कविता : आठवां दशक

इस दशक में नये पुराने कवियों के अनेक काव्य-संग्रह प्रकशित हुए हैं, जिनका अध्ययन यहां अपेक्षित है।

4.1.1 सहस्त्रमुखी स्वर्गीय श्री बंसी लाल सूरी की 1970 (देहांत तिथि 14-9-1970 ई०) तक की कविताओं के संग्रह 'सहस्त्रमुखी' का प्रकाशन ज०क० अकादमी द्वारा 1975 ई० में हुआ, जिसमें कुल 66 कविताएं संकलित हैं, संग्रह में अंकित रचना-तिथियों के अनुसार इन कविताओं का रचनाकाल जुलाई 1966 से जुलाई 1970 तक का है।

इनकी कविताओं को श्री धर्मचन्द 'प्रशान्त' ने 'गद्यगीत' कहा है। इन गद्यगीतों में अद्वैतवाद, अहंब्रह्मास्मि और सगुण-निर्गुण के अभेदत्व को काव्यानुभूति की सरसता से सींच कर अभिव्यक्त किया गया है। इन रचनाओं का मूल्यांकन प्रस्तुत है।

4.1.1.1 प्रभु, सृष्टि का स्वरूप और मनुष्य बंसीलाल सूरी ने सृष्टि को उद्भव और विलय का निरंतर खेल माना है और उद्भव-विलय को परस्पर एक दूसरे के अण्डकोष कहा है जो आत्माभिव्यक्ति के लिए तड़पते रहते हैं, इन दोनों का ही सौंदर्य गुप्त और गौण रह जाता है परन्तु दोनों की ही स्वतंत्र सत्ता है, फर्क है तो जागृति और सुषुप्ति का, इन्हें पृथक समझना मात्र भ्रम हैं।

कवि ने सारे संसार अर्थात् सृष्टि को प्रभु का स्वरूप माना है और संसार तथा सांसारिक सम्बन्धों को प्रभु की लीला भी कहा है और इसे प्रभु-इच्छा भी कहा है जो अपनी इच्छा की अभिव्यक्ति के लिए ही वन, उपवन आदि प्राकृतिक उपकरणों की पृष्ठभूमि का निर्माण करते हैं। इस सृष्टि के रंगमंच का नायक और अन्य पात्र भी प्रभु के ही रूप हैं। वही इस नाटक का सूत्रधार भी है। यही महानतम कलाकार, चित्रकार, संगीतकार और नर्तक है, सर्जक भी है और ध्वसंक भी।

इसी की इच्छा के अनुरूप इस रंगमंच पर विभिन्न पात्रों का प्रवेश और प्रस्थान होता है। समूची प्रकृति में प्रभु के ही क्रियाकलाप हैं, संसार रूपी रंगमंच पर उसी का अखण्ड रासनृत्य चल रहा है। नक्षत्र और तारागण इसी नृत्यलीन कृष्ण की चमकती, मुंदती, दिपती आंखों की रश्मियां या नृत्यलीन गोपियां हैं, क्षण-प्रति क्षण नर्तक गोप-गोपिकाएं कभी दीप्त हो जाते हैं तो कभी घोर तिमिर-आवरण में लुप्त हो जाते हैं, दीप्ति और लुप्ति का यह खेल चलता रहता है। नृत्यक्रम के साथ-साथ सृजन (दीप्ति) और प्रलय (लुप्ति) होता रहता है।

कवि ने अनजान, भोले और निरीह मनुष्य की यथार्थ जीवन-समस्याओं का पौराणिक बिम्ब के साथ अच्छा तालमेल बिठाया है। मनुष्य स्वयं भवसागर की लहरों में पल्लव के सहारे अंगूठा चूस रहा है और लहरों में बह रहा है जबकि सागर की लहरें उस की भावना के प्रति सर्वथा निरपेक्ष रहती हैं।

मनुष्य का तो अपने प्राणों पर भी स्वामित्व नहीं। वह इनका स्वामित्वहीन स्वामी है क्योंकि प्राण न तो उसे विरासत में मिले हैं न उसने स्वयं अर्जित किए हैं। यह सम्पदा उसे श्वेत-श्याम (दिन-रात) दो पक्षों वाले समय की स्फुरित मुद्रा के एवज़ में मिली है।

मनुष्य-शरीर को कवि ने मात्र किराये का मकान माना है। इस मकान की कोई नींव नहीं, यह कभी भी धराशाई हो सकता है। जब तक आत्मा इस मकान में रहती है, इसे सजाती, संवारती, पुष्ट करती हुई मानो इसका किराया चुकाती है। शरीर में ऐसी कौन-सी शक्ति है जो हम में आर्कपण पैदा करती है, क्यों हमारा रंग रूप और सौंदर्य मुग्ध कर लेता है? आकर्पण, लाज, हर्प, ईर्ष्या, रोप, क्रोध, संदेह, अनुराग, प्यार, भावुकता, उल्लास और सौंदर्यप्रियता आदि का उपज-स्थान इन्होंने हमारी देहों में कहा है।

अंततः वे इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि कोई एक अनानुभूत अव्यक्त सत्ता है जिसकी बांसुरी की तान हम में ये सभी भाव पैदा करती है और जिसके बिना आदमी मृतक है। उन्माद, हर्ष, विषाद, मिलन, वियोग, प्यार, निकृष्ट, उत्कृष्ट आदि अनेक भावों का सर्जक मानव-हृदय ही है। अन्तर्मन के ये भाव शरीर के रोम-रोग से प्रस्फुटित होकर अभिव्यक्ति पाते हैं।

स्पष्ट हो जाता है कि मनुष्य शरीर आत्मा के कारण ही आकर्षक और भाव-सर्जक बनता है और आत्मा का स्रोत है प्रभु अमूर्त्त, असीम का स्त्रोत प्रभु ही है जो सृष्टि के उद्भव और विलय का कर्त्ता है, उसका रासनृत्य चल रहा है, सारी प्रकृति और सृष्टि उसकी लीला है, उसी की इच्छा की अभिव्यक्ति है।

कवि प्रभु-प्रकृति और मनुष्य को एकमेक करता है, उसे अभेद सिद्ध करता है, अद्वैत दर्शन को स्वीकार करता है परन्तु अहं ब्रह्मस्मि (मैं ही ब्रह्म हूं) की दार्शनिक अवधारणा के अन्तर्गत कवि मनुष्य में ही ब्रह्म के स्वरूप को भी स्वीकार करता है। अहं ब्रह्मस्मि की अवधारणा के अन्तर्गत कवि का विचार है कि कृष्ण का विराट रूप मनुष्य की अपनी ही भाव-अभाव, सुख-दुःख, इच्छा-अनिच्छा की प्रतिछाया मात्र है। भगवान स्वयं में इतना महत्वपूर्ण नहीं, जितनी महत्वपूर्ण मनुष्य की कल्पना-शक्ति है। इसी कल्पना-शक्ति के कारण भिन्न-भिन्न देवी-देवता मनुष्य के गुणों और सम्पदाओं के प्रतीक हैं।

कवि का विचार है कि जब मनुष्य अभावग्रस्त होता है, सम्पदाहीन, निरक्षर, कलाहीन, ज्ञानहीन, संततिहीन होता है तो विराट क्लेवर (भगवान, ब्रह्मा, कृष्ण) में इन गुणों के प्रतीक देवी-देवताओं का पतन हो जाता है परन्तु जब मनुष्य में ये सभी गुण पैदा हो जाते हैं तो विराट क्लेवर में देवी-देवताओं का पुनार्गमन हो जाता है।

वस्तुत: कल्पना-शक्ति के अनुसार व्यक्ति निर्गुण-निराकार को सगुण-साकार रूप देने के लिए अपने ही रूप-सौंदर्य, हाव-भाव को आरोपित करने लगता है। मनुष्य की उदण्डता यह है कि देव मूर्तियों, मुद्रित चित्रों और दर्पण में अपने प्रतिबिम्ब को देखता हुआ अपने से कोई भिन्नता नहीं कर पाता, देव मूर्तियों और उसके अपने प्रतिबिम्ब की सौंदर्य रेखाएं समान हैं।

अर्द्ध नारीश्वर की अवधारणा पर भी कवि ने विचार विमर्श किया है। मनोविज्ञान में एनिमा और एनिमस हारमोन का जिक्र आता है और ये दोनों हारमोन स्त्री-पुरुष में होते हैं। इन्हीं के बढ़ने या कम होने से पौरूष और स्त्रैण भाव की अधिकता या कमी स्वीकारी गई है। अर्द्धनारीश्वर की परिकल्पना को इस तथ्य के आधार पर भी समझा जा सकता है। परन्तु प्रतीत होता है कि कवि ने इस अवधारणा को मनोविज्ञान की अवधारणा-आत्मरति-स्वरति की अवधारणा-के अनुरूप समझने का यत्न किया है। आत्मरति के अन्तर्गत व्यक्ति स्वयं ही भोक्ता और भोग्य होता है और आलम्बन उद्दीपन की आवश्यकता भी नहीं रह जाती।

भोग्य और भोक्ता के अद्वैत हो जाने की उपर्युक्त कल्पना में पुन अहं ब्रह्मास्मि की अवधारणा ही काम कर रही है। द्वैत का कारण वस्तुत: दृष्टिभ्रम ही माना गया है। कवि भी पृथकतावादी दृष्टि को भ्रम मानता है, अहं-विस्तार या अहंविलय अर्थात् 'प्राण-प्रलय' हो जाता है तो जीव (व्यक्ति) आनन्दमय स्थिति में पहुंच जाता है। इस स्थिति में ही आत्मा और ब्रह्म परस्पर लीन होकर एकाग्र हो जाते हैं, प्राण-प्रलय के आनन्दमय मिश्रण की सुखानुभूति में खोकर 'अहंब्रह्मस्मि' हो जाता है।

सगुण की अपेक्षा कवि निर्गुण असीम को अधिक महत्व देता है और मानता है कि ब्रह्म को सगुण सीमाबद्ध करके उसकी क्षमता और योग्यता को सीमित करके उसके प्रति अन्याय किया जा रहा है, इससे प्रभु की स्वैच्छिक स्वरूप-निर्माण की योग्यता और क्षमता कुण्ठित कर दी जाती है।

4.1.1.2 आत्मा परमात्मा का परस्पर सम्बन्ध द्वैतवादी अवधारणा को कवि ने आत्मा-परमात्मा के बीच के परस्पर आकर्षण और प्रणयाचार के माध्यम से अभिव्यक्ति दी है। इस अवधारणा के अन्तर्गत कवि ने आत्मा और परमात्मा के बीच लिंग भेद को स्वीकार नहीं किया। आत्मा कभी प्रेमिका है तो कभी पत्नी और परमात्मा कभी प्रेमी है तो कभी पति। परन्तु कभी-कभार यह क्रम उल्ट भी जाता है परमात्मा प्रेमिका या पत्नी बन जाता है और आत्मा प्रेमी या पति और जब दोनों परस्पर एकरंग हो जाते हैं, एकत्व ग्रहण कर जाते हैं तो अर्द्धनारीश्वर या 'अहंब्रह्मस्मि' हो जाते हैं अर्थात् उनके बीच द्वैत का भाव मिट जाता है।

द्वैतवादी अवधारणा की अभिव्यक्ति के लिए कवि को लौकिक प्रणयोद्‌गारों और लौकिक प्रेम के रूपकों और उदाहरणों का सहारा लेना पड़ा है। आत्मा अपने प्रेमी को पाने के

लिए यत्नशील होती है तो इस मिलनाकांक्षा की पूर्ति के समक्ष सभी लौकिक अवरोध समाप्त प्राय: हो जाते हैं।

प्रेमिका के रूप में कवि-आत्मा धरती पर है तो प्रेमी-परमात्मा आकाश की अगम्य ऊंचाई पर, दोनों के बीच मिलन की कोई सीढ़ी नहीं, विशेषकर प्रेमिका के पास तो मिलन का कोई साधन नहीं, यदि कोई साधन है तो प्रेमी-प्रभु के पास ही, वही प्रेम-रज्जु नीचे लटकाए तो प्रेमिका (आत्मा) प्रेमी (परमात्मा) के दुर्ग में जा पहुंचे। 'प्यार रज्जु' कविता में कवि ने लौकिक रूपक के माध्यम से प्रेमिका की मिलनाकांक्षा का अच्छा चित्रण किया है। प्रेमी (परमात्मा) को एकटक निहारती हुई प्रेमिका (आत्मा) के रोम-रोम में आंखें उग आई हैं। स्थिति यह है कि गिरिजा त्रिनेत्र महादेव को मुग्ध दीठ से निहारती हुई 'असंख्य नयनी' हो गई है। उसके रोम-रोम में आंखें उग आई हैं, फिर भी एक निष्ठ प्रेम के कारण उसे अपने प्रेमी (परमात्मा) का एक ही रूप दिखता है।

प्रेमिका (आत्मा) की आत्म-प्रेरणा और प्रभु का आकर्षण परस्पर समानार्थ हो गए हैं और आत्मा अनायास प्रभु की ओर खिंचती चली जाती है, उसके सामने से रूप की भयानकता और मनोहरता या सौंदर्य-असौंदर्य की सीमाएं लुप्त हो जाती हैं, स्नेह आलिंगनातुरता या दुत्कार-भय की परवाह नहीं रह जाती, स्नेह-अस्नेह का मिश्रण हो जाता है और आत्मा निरन्तर प्रभु की ओर बढ़ती जाती है।

लौकिक प्रेमी प्रेमिका से रूठकर निष्ठुर, निर्दयी और पाषाण-हृदय हो सकता है और प्रेमिका (लौकिक) उदासी में उसे ताने देती रह सकती है जबकि परमात्मा-प्रेमी आत्मा-प्रेमिका से कभी नहीं रूठता, कभी उससे विमुख नहीं होता, उसका आलिंगन अटूट है और वह प्रतिदान में कुछ मांगता भी नहीं। अत: आत्मा-प्रेमिका सदैव प्रफुल्लित रहती है।

प्रेमी अपनी प्रेमिका (परमात्मा) के लावण्य, माधुर्य, आकर्षण, अनुराग आदि अनेक गुणों को अपने आकार-प्रतिमा में समाविष्ट कर लेता है और अपनी विरहाग्नि को इस मिलनामृत-जल से बुझा लेता है। परन्तु यह मिलन-सुख अधूरा रह जाता है क्योंकि आत्मा परमात्मा की ऊंचाई तक नहीं पहुंच पाती और वह अनुराग-तीव्रता और परिपूर्ण भावोत्तेजना के बावजूद शून्य अंतरिक्ष को ही चूम कर परमात्मा के सकल क्लेवर को चूम लिया मान लेती है, उसे लगता है कि परमात्मा उसके आलिंगनपाश से लुप्त हो जाता है। पुन: कहा जा सकता है लौकिक-ससीम अचानक अलौकिक-असीम सत्ता में बदल जाता है, कवि की अवधारणा यह भी है कि परमात्मा उसे रिझाने, भरमाने, उसके मनोरंजनार्थ या उसे आतंकित करने के लिए अनेक कौतुकपूर्ण रूप धारण करते हैं।

4.1.1.3. प्रभु सत्ता और साम्प्रदायिक कर्मकाण्ड कवि ने सकाम आराधना को महत्व नहीं दिया न ही साम्प्रदायिक चिंतन को बल्कि कवि की अवधारणा है कि व्यक्ति के कल्याण-अकल्याण, रक्षा-अरक्षा की शर्तें प्रभु स्वयं निधारित करते हैं, अपने कर्त्तव्य की अवधि का निर्धारण भी वह स्वयं करते हैं, उन्हें किसी प्रकार का दोष भी नहीं दिया जा सकता, उनकी शर्तें भी अप्रत्यक्ष हैं, व्यक्ति को इन शर्तों का ज्ञान नहीं होता। बल्कि व्यक्ति जो अच्छा-बुरा कार्य

करता है वह भी किसी अप्रत्यक्ष की प्रेरणा के कारण ही, कवि यह भी मानता है कि मनुष्य को फल के प्रति नहीं सोचना चाहिए क्योंकि वह तो निमित्त मात्र है। महाभारत के अर्जुन की तरह अपनी इसी अवधारणा के कारण कवि कातिल और उसे मृत्युदण्ड देने वाले जज को भी अप्रत्यक्ष प्रेरणा से ही संचालित मानता है।

'अर्जुन ही अर्जुन' कविता में कवि कहता है कि मानव-मात्र तो क्या देवी-देवताओं के अन्तर्मन में भी हिंसा की वृत्ति विद्यमान है। इस हिंसा वृत्ति के कारण प्रत्येक व्यक्ति अर्जुन है, अत: अप्रत्यक्ष प्रेरणा का निमित्त मात्र है जो अनजाने ही इस हिंसा वृत्ति की अनियंत्रित अन्त: प्रेरणा से विवश होकर नरवध करता है। कवि हिंसा वृत्ति को नैसर्गिक और पारम्परिक वृत्ति मानता है परन्तु इसे सामाजिक संस्कार नहीं दे पाता। मनुष्य का यह पशु तुल्य व्यवहार घृणा का पात्र ही रहेगा। कर्मकाण्डों के आधार पर लोग मानव मानव में परस्पर ईर्ष्या द्वेष और साम्प्रदायिक घृणा ही फैलाते हैं उनके कल्याण के लिए कुछ नहीं आते।

4.1.1.4. प्रणयभावना कवि बंसीलाल सूरी ने नर-नारी की परस्पर प्रणय-भावना को भी अपनी विचारगत अभिव्यक्ति दी है। उन्होंने नारी के शील, सौंदर्य, लावण्य और प्रियतम के प्रति उसकी बलिदान-भावना की काफी प्रशंसा की है। सूरी साहब की 'नारी' रूपगर्विता भी और अपने ही रूप-सौंदर्य द्वारा भुक्ता भी। वह अपने लावण्य को साजन का प्रतिद्वन्द्वी भी मानती है क्योंकि जब वह सोई हुई होती है तो उसका लावण्य अवसर पाकर अपने आप पर अनुरक्त होकर कलोलरत हो जाता है। जबकि विचित्रता यह है कि उसके प्रियतम उसकी सुंदरता को अपना प्रतिद्वन्द्वी नहीं मानते न ही उस पर क्षुब्ध होते हैं बल्कि और अधिक घनिष्ठता से वह उसके प्रति आकर्षित हो जाते हैं।

'प्रणय श्रेय' कविता में नारी अपने प्रियतम को सौंदर्य का महासागर मानती है और अपने रूप-लावण्य को इसी महासागर से मिला हुआ उधार मानती है। इसी से वह सौभाग्यवती हुई है, उसका महत्व बढ़ा है, उसके सौंदर्य को महत्वपूर्ण माना गया है। यहां कवि नारी के एकनिष्ठ प्रेम को प्रतिबिम्बित करने में सफल हुआ है। प्रेमोन्माद में खो गयी नारी के मस्तिष्क में प्रियतम का नाम अटक कर रह गया है और सांस के साथ-साथ प्रिय का नाम उसकी नस-नस में पवित्रता को संचरित कर रहा है, उसके अंगों को सबल बनाता हुआ रोम-रोम में शीतलता भर देता है।

नारी को कवि ने एकनिष्ठ प्रेमिका के रूप में ही नहीं देखा उसे सहस्त्रमुखी भी कहा है। वह प्रणय, स्नेह, सख्य और भगिनी-प्रेम लुटाती है। उसे अपना घर प्रिय है, समाज के प्रति उसे अनुराग है, स्वदेश पर वह अपनी जान लुटाती है, विश्व के कण-कण पर वह प्यार लुटाती है घर के अनुचरों पर अनुकम्पा और पशुधन पर प्यार न्योछावर करती है। इन अनेक रूपों (सहस्त्रमुखी रूप) में संसार में सुशोभित होने के बावजूद वह स्वयं को साधारण नारी ही मानती है।

'आभार' कविता में कवि स्पष्ट करता है कि साध्वी पत्नी अपने साधारण पति को प्रेरित करके महान और यशस्वी व्यक्तित्व में बदल सकती है, वह मात्र विलास का साधन ही नहीं है। साधारण दम्पति तो देह-विलास से तृप्त होकर काल के अंधकार में लुप्त हो जाते हैं

परन्तु रत्नावली जैसी पत्नी रामबोला को तुलसीदास जैसा अमर बना देती है, जो विलास-वृत्ति से मुक्त होकर असंख्य अशान्त हृदयों को तृप्त करता है।

'अपूर्ण घूंघट' में कवि ने नारी के शील और लज्जा की प्रशंसा की है और माना है कि लज्जा का आवरण और उसका ढका-अधढका सौंदर्य उसे और अधिक आकर्षक बना देता है. इस अधदेखे अनन्य रूप सौंदर्य और लावण्य पर व्यक्ति आसक्त हो जाता है।

कवि ने 'सजावट' कविता में नारी को पुरुष के जीवन में अखण्ड आकर्षण का केन्द्र माना है। नारी के प्रति नर में सनातन आकर्षण है और दोनों में परस्पर संयोग भी सनातन है, नारी के बिना नर अधूरा है उसका व्यक्तित्व नितांत अपूर्ण है। नारी को पाने के लिए वह अनेक प्रेम-संकेत करता है, धन सम्पदा लुटाता है, छल-बल का प्रयोग करता है, कई अपराध तक कर जाता है। नर-नारी के परस्पर सनातन आकर्षण और सम्भोग वृत्ति को सृष्टि के अस्तित्व के लिए कवि परमावश्यक मानता है।

कवि ने रोमानी श्रृंगार के अन्तर्गत प्रेमी युगल के परस्पर आकर्षण, अनुराग, मिलनकांक्षा और मर्यादामय प्रेम का चित्रण अपनी कविता 'प्रतिछाया-मिलन' में किया है। जिसमें गली-बाजारों की आंख मिचौनी का चित्रण अनुभूतिजन्य और भावपूर्ण है, बिजली के प्रकाश के कारण बनी परछाइयां तो मिलनालिंगन द्वारा प्यार-तृप्ति पा लेती हैं, जबकि प्रेमी प्रेमिका दोनों के क्लेवर अलग-अलग रह कर उन्हें विरहग्रस्त करते हैं। दोनों परस्पर आकर्षित-से दोनों बढ़ रहे हैं परन्तु अचानक प्रेमिका के हृदय में लोक लज्जा का भाव जागृत होता है और वह प्रेमी के निकट से सरक जाती है, मानों परछाइयां मिलकर बिछुड़ जाती हैं। 'वियोग भला या मिलन' कविता में कवि ने विरह को वरीयता दी है क्योंकि विरह में प्रतीक्षा, उत्सुकता, वेदना, तड़प और आंसू रहते हैं, प्रियतमा के स्वागत के लिए प्रेमी का समूचा अस्तित्व गतिशील रहता है।

4.1.1.5 दाम्पत्य श्रृंगार सुखद दाम्पत्य जीवन के लिए कवि पति-पत्नी दोनों का समानधर्मा और सम-आकांक्षी होना जरूरी समझता है। समान हर्ष, विषाद, आकर्षण, आकांक्षाएं, भावना, कामना ही दोनों को एकरंग करती हैं, पत्नी का सौंदर्य और पति का प्यार जब एकरूप हो जाये तो दाम्पत्य जीवन सुखद-सफल हो जाता है। 'पत्नी के प्रति' कविता में जब पति प्रेम-दृष्टि से उसे देखता है तो वह विश्व की सुन्दर रमणियों में से एक महसूस है। यहां पत्नी के प्रति श्रद्धा, स्नेह, प्रेम की भावपूर्ण अभिव्यक्ति हुई है।

'बिना रोक प्रवेश' कविता में पति के प्रति पत्नी के एकनिष्ठ प्रेम और अनुराग की अभिव्यक्ति हुई है। परन्तु यहां काव्यानुभूति क्षीण है और भाव अमुखर रह गया है। पत्नी तो पति के लिए पर्दों में छिप कर अपने सौंदर्य की रक्षा कर रही है जबकि पति के मन में संदेह है कि पर्दे के पीछे पता नहीं क्या हो रहा है।

शैक्सपीयर की सॉनेट 'टू-लव' के भाव का सशक्त और आर्द्र पुनः प्रस्तुतिकरण 'लावण्य और प्यार' कविता में हुआ है। लावण्य क्षण-भंगुर है जबकि प्यार अमर। यौवन ही जीवन नहीं यौवन-सौंदर्य स्वास्थ्य और समृद्धि का बंदी है जबकि प्यार जीवन-अवस्था के

प्रतिबंधों से मुक्त है, जीवनावस्था के भेद की प्यार के समक्ष कोई मान्यता नहीं। वृद्धा को अपने यौवन काल का स्मरण आता है कि वह सौंदर्य-साम्राज्ञी रही है, उसके युवा सौंदर्य को अनेक लोलुप दृष्टियों ने देखा है। फिर उसे शादी और सुहागरात के उत्सुक प्यार और अटूट आलिंगन-पाश का स्मरण आता है, पति की मुग्ध दृष्टि और गोरे कपोलों तथा मुस्कराते होठों का स्मरण आता है।

परन्तु इन रोमांचक अनुभूतियों को बीते वर्षो बीत गए हैं। पति-पत्नी दोनों पर वार्धक्य आ गया है परन्तु दोनों का परस्पर प्यार सागर में प्रकाश-स्तम्भ की भांति मौजूद है, उन्हें परस्पर के साहचर्य से गर्व की अनुभूति होती है, वियोग की कल्पना से उनका रोम-रोम कांप उठता है। अब भी वृद्धा पत्नी यौवनपूर्ण अरमानों से प्रेरित होती है और पति को रिझाने के लिए शृंगार करती है।

'याद के बंदी' कविता में दाम्पत्य आदर्श को अभिव्यक्त किया गया है। जिसमें अपने विवाहोत्सव का स्मरण करती हुई एक विधवा स्मृतियों में खो जाती है, उसे जय-माल-उत्सव का स्मरण आता है, अन्तर्जातीय विवाह के कारण हुए विरोध और दाम्पत्य की प्रणय-क्रियाओं का स्मरण आता है। परन्तु अब जब वह अकेलेपन में अपनी युगल-क्रीड़ाओं के चलचित्र को देखती है तो उसे पति की रिकार्ड की गई क्रीड़ाओं और स्वर से सूनापन टपकता प्रतीत होता है, अथाह शोक सागर में डूबी हुई अंततः वह याद की दुनिया में स्वयं को पति के साथ महसूस करती है। प्रेम की इस तीव्र अनुभूति के अन्तर्गत वह अपने आप में पति के सम्पूर्ण चरित्र को अनुभव करने लगती है।

4.1.1.6 व्यक्ति-स्वातंत्र्य कवि ने व्यक्ति-स्वातंत्र्य और लेखकीय स्वातंत्र्य के प्रति भी अपने विचार प्रकट किए हैं। अन्तर्प्रेरणा के अनुरूप कर्म की छूट कवि को अतिप्रिय है जबकि मौजूदा जीवन की स्थितियों में व्यक्ति बंधनयुक्त है। अप्रजातांत्रिक देशों में जन्मे लेखकों को स्वतंत्रतापूर्वक लिखने की छूट नहीं, उनकी आत्माबंदी है, उद्‌गारबंदी है, शासनादेश के प्रतिकूल वह कुछ भी लिखने के लिए स्वतंत्र नहीं अन्यथा उसकी नागरिकता और प्रतिभा तक छीन ली जाती है। 'बंदी उद्‌गार' कविता में कवि ने लेखकीय स्वातंत्र्य के पक्ष में विचार प्रकट किए हैं और साम्यवादी देशों में लेखकों पर लगे अंकुशों की भर्त्सना की है। परन्तु कवि यह स्पष्ट नहीं करता कि लेखक को कैसी और कितनी स्वतंत्रता चाहिए।

कवि ने अन्तःप्रेरणा को ही स्वातंत्र्य माना है, अन्तःप्रेरणा में ही देवत्व निहित है, यही मानव के सदाचरण की प्रेरक है। परन्तु विडम्बना यह है कि अन्तः प्रेरणाजन्य आभा, प्रतिभा, लज्जा और स्वत्व स्वार्थ के कारण लुट गया है, इसका दिव्य चीर अपहृत हो रहा है। लेखक की अन्तः प्रेरणा भी स्वार्थ प्रेरित हो गई है। सत्चरित्र और दुष्चरित्र में भेद करने की क्षमता वह खो चुका है। 'जंगलराज' कविता में कवि नैसर्गिकता में स्वांतन्त्र्य को देखता है और आदमी की नैसर्गिक स्वतंत्रता में तथाकथित सभ्य समाज को बाध्य मानता है। शहरी संस्कृति में कवि को अराजकता, अनीति, अत्याचार, परतंत्रता और असभ्यता दिखती है जबकि जंगल-राज्य में अराजकता, अनियमितता तथा अवैध विधान नहीं, सब कुछ नैसर्गिक है पल्लव की सुगन्ध, गंध,

सभ्यता आदि में स्वातंत्र्य है।

कवि प्रत्येक प्राणी को उसका स्वातंत्र्य और उन्हें समानता देना चाहता है, गणतंत्र और समानता के युग में वह किसी को अतिरिक्त सम्मान देने और मिथ्याभिमान से ग्रस्त होने की छूट नहीं देते, किसी को अतिरिक्त प्रभुत्व या नृपाभिमान न देकर मानव-मानव में बराबरी और कर्त्तव्य परायणता की भावना जागृत करना चाहते हैं। कवि प्रत्येक ऋतु और प्रत्येक व्यक्ति का महत्व उसके कर्त्तव्य और मानवमात्र के हित (ब्रह्माण्ड-हित) के अनुसार आंकने के लिए कहता है। वस्तुत: कवि मानवमात्र में समानता के आधार पर उसे स्वातंत्र्य भी देना चाहता है।

4.1.1.7 व्यवसायिक मानव के मन का चित्रण कवि ने विभिन्न व्यवसायों के साथ जुड़े लोगों के शब्द-चित्र भी कविताओं में उरेहे हैं, गायिका, भिखारिन, वकील, अध्यापिका आदि के अच्छे शब्द-चित्र दिए गए हैं। 'गायिका' कविता के माध्यम से कवि इस सिद्धांत का प्रतिपादन करते हैं कि संगीत हृदय को आंदोलित करता हुआ ब्रह्माण्ड में समा जाता है और पुनः प्रतिक्रिया-स्वरूप काव्योद्‌गार बन कर फूट आता है, गायिका तो इस प्रक्रिया का माध्यम मात्र है, उसे काव्योद्‌गार के मर्म से कुछ लेना नहीं। वह तो अपने चंचल संकेतों और अंगक्रियाओं द्वारा प्रशंसकों की भावना को नचा देती है। जबकि गायिका स्वयं तो इस रोमांच से निरपेक्ष गाती रहती है। कविता काफी उलझ गई है।

भिखारिन के प्रति अपने उद्‌गार व्यक्त करता हुआ कवि कहता है कि सभी लोग अपने-अपने स्वार्थ से बंधे हुए हैं। भिखारिन की इष्ट देवी है-लक्ष्मी, जिसे पाने के लिए उसने अपनी प्रतिभा को बलि चढ़ाया है। उसे किसी से मिले दुत्कार या सत्कार की कोई परवाह नहीं। वह जानती है कि वह सुन्दर है परन्तु स्वयं को किसी कुदृष्टि से बचाए रखने के लिए जानबूझ कर अपने लावण्य को दारिद्रय में छिपाए रखती है। वह आत्माभिमान लुटा कर लक्ष्मी पाती है जबकि लोग लक्ष्मी बलिदान द्वारा आत्म-कल्याण कमाते हैं।

कवि ने 'मुक्ता चयन' कविता में वकील के (अपने ही) पेशे पर भी शब्द-चित्र लिखा है, वकील अपने वादियों के भाग्य को संवारने के बदले उन से धन प्राप्त करता है। उसके पास मानव, देव, दानव आदि अनेक वृत्तियों के लोग आते हैं और वह उनमें कोई भेद किए बिना उनके भाग्य को संवारने की चेष्टा करता है। धन के बदले वह उनकी सभी चिंताओं को मोल लेता है, जिनकी उसे निष्ठपूर्वक पैरवी करनी चाहिए परन्तु स्वयं निर्लेप रहना चाहिए।

अध्यापिका को कवि पुष्पवाटिका की मालिन कहता है जो बच्चों में सुरभि, भावुकता, जिज्ञासा, दूरदर्शिता, सुकुमारता और महादेव-सी सरलता प्रस्फुटित करती है, अध्यापिका की स्थिति यह है कि वह भी कभी ऐसी ही कोमल कली थी परन्तु अब प्रफुल्ल कुसुम है, जिस पर रसिक भंवरे अपनी रसिकता न्योछावर करने के लिए उत्सुक जान पड़ते हैं जबकि उसने तो अपने प्रियतम को अपने हृदयरूपी कमलफूल की पंखुड़ियों में बंदी बना लिया है।

कवि ने जन्मान्ध व्यक्ति की पीड़ा का भी वर्णन किया है। जन्मान्ध व्यक्ति अपने देव को देख नहीं पाता जबकि उसी की ओर रुख किए ध्यान मग्न रहता है, उसका शैशव, यौवन, प्रौढ़त्व सब तिमिरमय है, स्पर्श और शब्द के सहारे वह तिमिर को प्रकाश में बदलने की चेष्टा

करता है परन्तु उसके ज्ञान के प्रकाश की रश्मियां भी तिमिरमयी हैं, वह सुकर्म-कुकर्म में भेद नहीं कर पाता। परन्तु वह अपने आप को धन्य समझता है क्योंकि समाज में वह अकेला ही अंधा नहीं, समाज भी किसी न किसी अंश तक अंधा है जो अपने सीमित संसार से आगे नहीं देख पाता।

4.1.1.8 **धरती से प्रेम** कवि धरती को ही स्वर्ग मानता है। वह मानता है कि धरती पर ही जीवन है, जो सुख सुविधाएं धरती पर हैं, वे अन्य किसी भी नक्षत्र पर नहीं। यही वह कल्पित और रोमानपूर्ण सुरलोक है, जिसमें अप्सराएं नृत्यशील हैं। प्यार, सौंदर्य और लालित्य का प्रसार यहीं है, स्वर्गलोक तो मात्र कल्पना है, स्वप्न है, जिसका निर्माण या सृजन अभावों और असंभव के विरुद्ध ध्येय बनाकर किया गया है। काव्यरूढियों को आधार बना कर लिखी गई 'कपट प्रदर्शनी' सरस कविता है जिसमें कवि धरती को जीवनमय और सुख-सुविधा के समक्ष स्वर्गलोक सिद्ध करता है। वह तो धरती के ही सुख-दु:ख में खो जाना चाहता है। इसी पर प्यार, सौंदर्य, मादकता, संगीत, नृत्य, रोदन आदि में खोया रहना चाहता है, इसी भव में वह गतिशील, संवर्षशील बना रहना चाहता है 'सौंदर्य यात्रा' कविता में वह इन्हीं विचारों को अधिक सुन्दर और सरस अभिव्यक्ति प्रदान करता है और जीवन-यात्रा को जिज्ञासा, कामना, भावना, आकांक्षा, अनुमान, कल्पना और अज्ञात-असीम की सौंदर्य-यात्रा मानता है। इस यात्रामार्ग पर उसे वृक्ष, खेत, नदी-नाले, मंदिर-मस्जिद, कृषक-गडरिये और उनके पशुधन के अनेक दृश्य-मिलते हैं। इस यात्रा में अनेक अज्ञात पड़ाव आते हैं जबकि वह इस यात्रा के अन्तिम पड़ाव और यात्रा की अंतिम सीमा भी नहीं जानता। धरती पर के जीवन के सुख-दु:ख, बधाई-शोक, प्यार-घृणा, जन्म-निधन आदि को वह समभाव से देखता है। कवि की आस्था इसी धरती के सुख-दुख से सम्बद्ध है वह किसी स्वर्गलोक में विश्वास नहीं रखता।

वह इस धरती पर के जीवन के अन्तर्विरोधों और विसंगतियों को दूर भी करना चाहता है। इस संदर्भ में कवि ने परस्पर भाईचारा और धार्मिक सहिष्णुता को महत्व देकर धार्मिक अंधविश्वासों और विडम्बनात्मक रीति-रिवाज़ों से ऊपर उठ कर मानव-प्रेम को महत्व दिया है और मानव-मात्र की समान आकांक्षाओं और भावनाओं के बीच उठ खड़ी होने वाली झूठी दीवारों का तिरस्कार किया है। वह पूछता है कि सच्चे और मानवीय परिणय पर प्रतिबन्ध क्यों? कवि का विचार है कि वेषभूषा व्यक्ति की लाज ढांपती है, उसे पाश्विकता से मुक्त करती है और सभ्य, सुसंस्कृत मानव का रूप देती है, वेश भूषा ही व्यक्ति की नागरिकता की पहचान कराती है, वेशभूषा की भिन्नता व्यक्ति, जाति, धर्म, संस्कृति की अलग पहचान स्थापित करती है परन्तु विडम्बना यह भी है कि वेशभूषा ही इनके भीतर के मानवत्व तथा देवत्व को छिपाकर भ्रम पैदा करती है और उन्हें परस्पर लड़ाती है।

जीव-जीव में रुचि, खानपान तथा रहन-सहन की भिन्नता होती ही है परन्तु इन सभी जीवों के अन्तर में बैठी सत्ता समान है, कवि उस सत्ता को पहचानने के लिए उत्सुक है जो प्रत्येक जीव में वेग भरती है। वह मानता है कि सम्पूर्ण मानव जाति के अन्तर्भाव समान हैं। व्यक्ति-व्यक्ति की भावनाओं में कोई अन्तर नहीं इसलिए मानव-मानव समान हैं, अन्तर्भावों

की परस्पर समानता के आधार के कारण ही आकाशवाणी (ब्रह्मवाणी) किसी भेद-भाव के बिना सभी लोगों के हास्य-रुदन, रोष-उपालम्भ, शोक-उत्तेजना, श्लाघा-अश्लाघा से जुड़ी सामग्री प्रस्तुत करती है और लोक-लोक की आन्तरिक भावनाओं के मध्य कोई अन्तर नहीं मानती। इस अर्थ में आधुनिक काल की आकाशवाणी या ब्रह्मवाणी एकता के प्रतीक के रूप में काम कर रही है। कवि मानता है प्रत्येक मानव के अन्तप्राण में किसी एक ही सत्ता का दर्शन होता है, वाह्यडम्बर तो परस्पर ईर्ष्या द्वेष को ही पैदा करते हैं।

4.1.2 **खोया चेहरा** पृथ्वीनाथ 'मधुप' की 1962 से 69 तक की कविताओं का संग्रह 'खोया चेहरा' मार्च 1973 में प्रकाशित हुआ। इन 36 कविताओं का शिल्प सुगढ़ है, अनेक नये बिम्ब जुटाती हुई इन कविताओं में छिद्र कम ही हैं। शब्दावृत्ति, चिन्हावृत्ति, ब्रेक्ट्स का उपयोग इनकी प्रयोगशीलता का द्योतक तो है परन्तु न इन कविताओं में प्रयोगातिरेक है न ही दुरूहता। भावबोध बिल्कुल नया है, जो छठे-सातवें दशक की हिन्दी की मुख्य काव्यधारा के भावबोध और शिल्प से मेल खाता है। व्यक्ति की अन्तर्विभाजित मन:स्थिति का सुंदर संयोजन इनकी कविता का कथ्य है। इन कविताओं का मूल्यांकन निम्नलिखित है।

4.1.2.1 **कश्मीर-सौंदर्य और लोकजीवन** कश्मीर की पृष्ठभूमि वाली कविताओं में प्राकृतिक सौंदर्य और लोक-जीवन के रंग-बिरंगे बिम्ब तो हैं परन्तु कवि सुखद कल्पनाओं में खो जाने की अपेक्षा वहां के जन-जीवन की त्रासदियों, विसंगतियों और विडम्बना को सफल, भाव-प्रणव और सहज बिम्बों में अभिव्यक्त करता है। कश्मीर के वनस्पति जगत और धार्मिक सौहार्द्र के प्रति कवि की ललक, राग और सात्विक लगाव उसकी कविता 'रस-मज्जन' में अच्छी अभिव्यक्ति पा गया है। केसर-कुसुमों का लहराता सौंदर्य, पक्के अम्बरी सेबों की ललाई वास, चिनारों के दहकते लिबास, कुरान और वेद की ऋचाएं, लल्ल और नुन्द ऋषि के 'वाख' कवि की आत्मा को थिरकाते हैं।

कवि अनेक कविताओं में कश्मीर की वादी के प्राकृतिक सौंदर्य के प्रति अपने निष्ठापूर्ण प्रेम को सुगढ़ काव्याभिव्यक्ति प्रदान करता है। इनके स्थिर बिम्बों में भी अनुभूति की धीमी-धीमी गति है, जिसकी अपनी ही एक ऐसी लोच और आकर्षण है जो कविता को साधारण गद्य के धरातल से ऊपर उठा ले जाता है।

प्रकृति की विभिन्न क्रियाओं में कवि को अपनी आकांक्षाओं का पुनर्जन्म होता प्रतीत होता है, कवि अनुभूति को ही पुनर्जन्म कहता है। कवि मन की सहानुभूति को प्रकृति के सान्निध्य में अच्छी तरह पकड़ता तथा व्यक्त करता है, उसके लिए व्यक्ति का सुख और दु:ख प्रकृति की पृष्ठभूमि में भी दृष्टिविगत नहीं हुआ। यहां वसंत का सौंदर्य अभावग्रस्त जीवन में ललक तो पैदा करता है परन्तु इस सौंदर्य को भोग लेने का सामर्थ्य आम आदमी में नहीं है। यहां के उपेक्षित व्यक्ति के प्रति कवि की निष्ठापूर्ण सहानुभूति है और आस्था है-नैसर्गिकता के प्रति, वह व्यक्ति के स्वाभिमान के प्रति चिंतित है।

कवि जीवन की विषमताओं को प्राकृतिक सौंदर्य के आकर्षण के बावजूद नहीं भूलता,

उसे जीवन की उमस और उबकाई में प्रकृति भी नहीं छुड़ा पाती, हरी दूब और नीले आकाश को भोग लेने के बाद उसे पुन: बासी, बेरंग, सड़ांध भरी रात से जूझना पड़ता है; उमस और परती धरती मानो उसकी नियति बन गई है।

प्राकृतिक सौंदर्य की अपेक्षा कवि प्राकृतिक सौंदर्य के सान्निध्य में उपजी अनुभूति के क्षणों को महत्व देता है और मानता है कि क्षण बीत जाने पर अनुभूतिजन्य सौंदर्य अपनी समग्रत: सहित दुबारा नहीं लौटता।

4.1.2.2. मरणधर्मा रुग्ण मन:स्थितियों का चित्रण हिन्दी कविता में अस्तित्ववादी चिंतन के प्रभाव के अन्तर्गत ऊब, घुटन, संत्रास, अजनबीपन की स्थितियों का काफी चित्रण हुआ है। कवि 'मधुप' की कविता में भी इन रुग्ण मन:स्थितियों की अभिव्यक्ति हुई है, कहीं-कहीं तो इन मन:स्थितियों के कारण ढूंढे गए हैं परन्तु कहीं-कहीं मात्र वस्तुस्थिति का चित्रण कर दिया गया है।

'खोज' कविता के बिम्ब सुगढ़ हैं जबकि सकून बाहर नहीं मन के भीतर ही कहीं होता है। कविता में कवि मानव-मूल्यों में पैदा हुए विघटन और विसंगतियों की ओर संकेत नहीं कर पाया जबकि विडम्बना यह है कि आदमी कृत्रिमता का चश्मा पहने हुए जी रहा है, ऐसा आदमी आत्म-साक्षात्कार का साहस कर ही नहीं पाता। प्राय: इसी कृत्रिमता के कारण व्यक्ति-व्यक्ति में परस्पर दृष्टि-भेद, अविश्वास और अजनबीपन पैदा होता जा रहा है और आदमी को जन-जीवन में घुटन, ऊब, टूटन और अजनबीपन भोगना पड़ रहा है।

घर, दफ्तर, सड़क सभी जगह ऊब ही ऊब छाई प्रतीत होती है, मन उचट गया है, हवा में सांस घुट रही है, पानी की तासीर बदल गई है, उन्मुक्त आकाश और मुट्ठी भर दूब नहीं मिलती । जीवन का प्रत्येक क्षण उमस और सूनापन बनता जा रहा है। ऐसी अजनबियत के साथ-साथ कवि अन्तर्विभाजन को भी चित्रित कर रहा है। आदमी बाह्य परिस्थितियों के कारण अजनबियत का शिकार तो हुआ ही है, अपने अन्तर्विभाजन के कारण भी पराया हो गया है। मशीनों से घिरा हुआ भी वह संत्रस्त हो उठा है।

कवि मशीनीकरण के कारण आदमी के अस्तित्व के प्रति चिंता प्रकट करता है। परन्तु यह तथ्य वह भूल गया है कि मशीनीकरण स्वयं में खतरनाक नहीं, इससे देश का नवनिर्माण आसानी और तीव्रता से हो सकता है। खतरनाक है तो मात्र वह व्यवस्था जो अधिक लाभांश की ललक में आदमी की अपेक्षा मशीन को वरीयता देती है और मज़दूरों की छंटनी कर देती है। कवि ने मशीनीकरण को तो मानवीय अस्तित्व के लिए संकट माना है परन्तु व्यवस्था पर चोट नहीं की।

कवि खो गए राग तत्व, बन्धुत्व और परस्पर पहचान को ढूंढ रहा है क्योंकि वह अपना वास्तविक चेहरा तक नहीं पहचान पा रहा। उसका समूचा जीवन कृत्रिमता से भरा है। फिर भी आश्चर्य है कि हर मोर्चे पर बुरी तरह पराजित और क्षत-विक्षत होकर भी वह जीवित है?

अस्तित्ववादियों की तरह कवि को प्रतीत हुआ है कि ईश्वर मर गया है और मरा भी निपूता ही है, न उसे आग को सौंपा गया है, न खाक को, न ही उसका कोई उत्तराधिकारी रहा है, इस स्थिति में कोई नियम-नियामक सत्ता नहीं रह गयी, चतुर्दिक् अधर्म, अन्याय और असत्य ही रह गया है। यह मूल्यहीनता भी अजनबीपन को पैदा करती है और आदमी की नैतिकता, शिक्षा, संस्कार आदि प्राचीन मान-मूल्यों का अब कोई मोल नहीं रहा, सभी खोटे सिक्के हो गए हैं बल्कि स्थिति यह है कि गुरुओं और पुरखों की सीख मौजूदा व्यवस्था में विसंगत होकर रह जाती है। अनैतिकता ने आदमी की आदमियत छीन ली है। मैत्री, प्यार, खून का रिश्ता और नातेदारी आदि की बातों पर अंधकार छा गया है, आदमी की जीवन स्थिति बदतर हो गई है। अब भूख, कुण्ठा, असन्तोष, क्षोभ पर भाषणों, नारों, इश्तहारों द्वारा अंकुश नहीं लग पा रहा। धार्मिक नेताओं का क्रिया-व्यवहार भी विसंगत, नकली और घृण्य है, यह झूठे और मक्कार संत महंत अपने बासी उपदेशों की अकर्मण्यता की जंजीरों में कस कर मानव मात्र को अवनति की ओर धकेल रहे हैं और आदमी आत्मविश्वास को त्याग कर निठल्ला बैठा मौन प्रार्थना में जुटा रह जाता है इससे उसकी जीवन स्थिति बद से बदतर होती जा रही है।

4.1.2.3 जीवनगत विसंगतियां और प्रणय-भावना पूंजीवादी व्यवस्था को कवि व्यक्ति की शृंगारवृत्ति और प्रणयाकांक्षा के लिए घातक मानता है। उसे प्रणय-भावनाएं उकसाती तो हैं परन्तु रोज़ी-रोटी के लिए भटक रहे उसके मन पर भद्दे दड़ियल दांतों वाले पूंजीपति की गुस्सैल आंखों का आतंक छाया रहता है। उसके प्रणय-क्षण खो जाते हैं।

> ''कोई प्यारा प्यारा कुनकुना। नर्म परस। मेरी नस-नस में बिजली दौड़ा कर। झुरझुरी पैदा कर कहीं खो गया!!!!''

घर की दीवारों की उठ गई सफेदी, लंगड़ी बाजूहीन कुर्सी, खाली बर्तन और सूनी आंखें फाड़े चूल्हा और अनचुकाई बिलें सताती रहती हैं। नव वर्ष के साथ उसकी आयु घटती जा रही है और जिम्मेदारियां ज्यों की त्यों पड़ी हैं।

> ''समय बीत रहा। आयु-सोपान की पौड़ियाँ चढ़ रहीं हैं। बेटियां । और यहां पेट से ही फुर्सत कहाँ?''

स्पष्ट है कि 'मधुप' ने इन कविताओं में रचनाकाल की मुख्य काव्य-धारा की जन-मानसिकता और शिल्प को न केवल पकड़ा ही है उसे काव्यगत रसार्द्रता सहित सफलता पूर्वक अभिव्यक्ति भी दी है, अस्तित्ववादी नकार की पृष्ठभूमि में कवि अस्तित्व की तलाश के प्रति उत्सुक है।

4.1.3. नौका का इतिहास सुतीक्ष्ण कुमार आनन्दम् की 1970 ई. तक की कविताओं का संग्रह 'नौका का इतिहास' 1974 ई. में प्रकाशित हुआ जिसमें कुल 31 कविताएं संकलित हैं। इन कविताओं में आनन्दम् का भावबोध पुराना छायावादोत्तर छायावादी कवित्रयी के भावबोध जैसा ही है। परन्तु 'नयी कविता' जैसा शिल्प विकसित करने के प्रति भी कवि चिंतित प्रतीत होता है।

यहाँ कवि कुछेक नये रूपकों का सफल विकास करता हुआ नवीन चिंताओं और जिज्ञासाओं का भी सुरुचिपूर्ण काव्यांकन करता है। परन्तु उनकी कविता को व्यंग्य का तीखा तेवर नहीं मिल पाया, फिर भी जम्मू की हिन्दी कविता को नये शिल्प और नये तेवर से परिचित कराने में इनका योगदान सराहनीय है। इनकी कविता का मूल्यांकन प्रस्तुत है।

4.1.3.1 कश्मीर-सौंदर्य और लोक-जीवन कश्मीर की वादी के प्राकृतिक-सौंदर्य और लोकजीवन तथा लोकरंग का कवि दीवाना है। वह जेहलम के शान्त प्रवाह में नौका चला रहे नाविक को सौभाग्यशाली मानता है क्योंकि जब वह लोल लहरियों के साथ जीवन-गान गाता है तो वितस्ता के ओर-छोर रबाब के स्वरों में रंगे हुए मधुर गीत को सुनने लगते है। नाविक के ये गीत झंझाओं, आंधियों, मंझधारों और तूफानों से जूझने की प्रेरणा देते हैं और फलों में रस उंडेलते हैं।

नाविक के गीतों के बीज उसकी नेहभागिन के हृदय में निरंतर अंकुरित होते रहते हैं और वह प्रणय के आभास और मिलन की रागिनी में अपनी सुध-बुध भूल जाती है। नाविक की इस उर्वशी की आंखें गतिशील हैं, कंगन बजते हैं और प्रणय-आह्वान का स्वर गूंजता है।

कश्मीर-सौंदर्य के प्रति लिखी इन कविताओं में लोक के जीवन के लय-ताल से जुड़े अनुभवों का प्रतीक है 'नौका का इतिहास' जो गतिशील हुआ बढ़ता जा रहा है, यहां कुछ बिम्ब नये तथा टटके हुए हैं परन्तु कुछ कविताएं मात्र चौंकाहट पैदा कर के रह जाती हैं और अपूर्ण प्रतीत होती हैं। बेंत की पल्लवहीन उदास-उदास-सी झुकी-झुकी डालियां चिनार के तने से लिपटने के लिए उत्सुक हैं और सफेदे के पेड़ उन पर पहरा दे रहे हैं। रास्ते अवाक् हैं, डालियां धीमा-धीमा सांस ले रही हैं और चहुं ओर छाये मौन को गीत गाती हवा झकझोरती है।

प्रकृति के इन बिम्बों में कवि जीवन की अनुभूति का संयोजन करता है। 'स्फूर्ति जागेगी' कविता में वह शरद ऋतु के दौरान के वादी के लोक जीवन का अच्छा चित्रण करता है। लोग खिड़कियां, द्वार, रोशनदान, छोटी-से छोटी दरार तक बंद करके गर्म शयनागारों में खो गए हैं, चिमनियों से निकलता धुआं मानो समस्त व्योम को गरमाने का संकल्प किए हुए और जमी हुई नदियों में डोंगे और हाउस बोट परस्पर आलिंगनबद्ध ठहरे हुए-से हैं जबकि इस स्थिर वातावरण की सतह के नीचे-नीचे यह आस्था भी क्रियामान है कि ऊपरी सतह पिघलेगी तो चारों ओर स्फूर्ति जगेगी।

उनकी कविता 'नयी सुबह का गीत' और अधिक स्पष्ट और काव्यात्मक है। प्रकृति के साथ प्रणयानुभूति का घालमेल करके यहां कवि ने प्रणय के सुन्दर बिम्ब दिए हैं। हां, कुछ बिम्बों और मन:स्थितियों में दुहराव हुआ है और गद्यात्मकता के प्रति बढ़ रहे रुझान के कारण कविताएं विस्तार-लोभ से ग्रस्त-सी हो गई हैं फिर भी कवि की दृष्टि सैलानी न रह कर लोकजीवन को भीतर तक भेदती और समझती है और कश्मीर के जीवन तथा लोकरंग का सुंदर आह्लादपरक चित्रण करती है।

यहां तक कवि की अनुभूति की ग्रहण-प्रक्रिया का सम्बंध है, उस पर कोई अंकुश नहीं लगाया जा सकता परन्तु अनुभूति के काव्यगत बिम्बीकरण की दृष्टि से कुछेक कविताएं काफी कमज़ोर हैं।

कवि को प्रकृति से नव-सृजन की प्रेरणा मिलती है, बीत रही आयु में प्रकृति से आश्वासन मिलता है कि पिक जहां जाती होगी वहीं गाती होगी। प्रकृति के सहज स्वरूप के माध्यम से वह परस्पर मेल मिलाप की प्रेरणा भी देता है। कवि प्रकृति में आध्यात्मिक सत्ता के भी दर्शन करता है और पाठक को मुग्ध कर लेता है। यहां आध्यात्मिक सत्ता कवि के लिए चिर प्रतीक्षित है, जिसे न पाना ही पाना है, न पीना ही पीना है। इसी आध्यात्मिक सत्ता को वह उपालम्भ भी देता है तो प्रकृति के माध्यम से ही, उद्धरण देखें-

"पर/ मेरे जीवन में/ खिला नहीं कोई फूल/ जो दे मुझको अनुराग/
अंकवार ले/ अपनी बाहों में। यदि मिला भी कुछ/ तो प्यास/ हे देव/ प्यास ही प्यास।"

इन कविताओं में प्रकृति के उपकरणों का सुंदर, सार्थक और पूर्ण अर्थगर्भित रूपकों के विकास के लिए उपयोग किया गया है। प्रकृति की पृष्ठभूमि में अनुभूति का संयोजन अच्छा हुआ है। आनन्दम् की रूपक-विकास की प्रतिभा का सुखद दर्शन इन कविताओं में होता है।

4.1.3.2. जीवनगत विसंगतियां और मानव मन: स्थितियों पर व्यंग्य कवि आनन्दम् ने जीवन-जगत में आदमी को विसंगतियों में फंसा हुआ भी माना है। अभावों, मरीचिकाओं, घुटन, सूनेपन के कारण मानव-मनीषा अनेक प्रकार के अन्तर्द्वन्द्वों में ग्रस्त है और मानवजीवन निर्णयहीन होकर ही जिया जा रहा है, उसे तो लगता है कि आदमी पर्वतीय कटाव और सुनसान मरुस्थल के बीच फैली खाई में फंसा हुआ है, हरेक दिशा सहमी-सहमी है, तरु-पात झर रहे हैं, डालियां कड़कड़ कर रही हैं, जड़ों का रस सूख रहा है, उजली पीठ मानो अंधकार ढो रही है और वह हां या न, है या नहीं, हूं या नहीं के भ्रमिक प्रश्नों में जूझ रहा है।

इस स्थिति में आदमी से न चिंतन होगा न सृजन, न सृष्टि की दुल्हन सजेगी न वह जीवन-सुख का उपभोग कर सकेगा। विवशता के कारण संयम टूट-टूट जाता है और आतुरता में उछलते-कूदते, लटकते-अटकते पांव फिसल-फिसल जाते हैं, कहीं कोई ठांव नहीं, शांति की चाह पूर्ण नहीं हो पा रही। विचार और अनुभूति के चित्रण के लिए कवि ने अच्छा बिम्ब-विकास किया है, राम सरीखे भटकते व्यक्ति का एक उद्धरण देखें-

"संयत करता/ समस्त इंद्रियों को/ स्वर्ण मृग की चाह में/ घूम रहा राम-सा नर/ आधि-व्याधि के चक्कर में/ जाने किस वैदेही के कारण/ दण्डक बन की राह में/ परन्तु/ व्यवस्थित संयम/ फिसल जाता/ विवशताओं की खाड़ी में/ सींग फंस जाते जब/ सोचों की झाड़ी में"

विडम्बना यह है कि वह स्वयं को तैरती लाश समझता है, जिसे न कोई संकेत मिलता है न द्वीप और न ही सहारा। प्रश्न है कि कवि लाश है तो उसे दिखेगा भी क्या ? इस कर्महीन स्थिति का कोई मूल्य नहीं। अतः संघर्षशीलता से पलायन की यह वृत्ति मानव-मात्र के लिए घातक है, इसी रुग्ण मनोवृत्ति के कारण वह स्वयं को कमरे में बंद कर लेता है।

अतीत के कटे-फटे पैवन्द लगे ज्ञान को बांचता, दुविधा ग्रस्त-कभी पुरानी लंगड़ी मेज़ की उपेक्षा करता हुआ तो कभी बाप-दादा के समय के घिसे-पिटे आह्लाद या दर्द के रिकार्ड्स सुनता हुआ या मन ही मन उलझनों से जूझता अर्थात् ख्याली पुलाव पकाता हुआ। ऐसी पलायनवृत्ति किसी भी प्रगतिकामी समाज और व्यक्ति के लिए घातक होती है। परन्तु वस्तुस्थिति गहन, विषम और अराजक है, सद् पर असद् भारी हो गया है, बहुमत चमगादड़ों, गीधों, रीछों, बंदरों और उल्लुओं के पक्ष में चला गया है। इस स्थिति में अगंतुक भी अपनी सोच के बावजूद अपनी सभ्यता-संस्कृति और भाषा को भूल कर बहुमत की भाषा सीख लेता है कि जब उजाला साथ न दे तो उल्लुओं के स्वर सुनने पड़ते हैं, चमगादड़ों की बस्ती में रहना पड़ता है।

कवि लोक-लीक पर व्यंग्य करता है कि लोग कठपुतलों जैसे हैं, वे वही करते हैं जो डोर कहती है, वे मात्र हांके जाने की भाषा के अतिरिक्त दिशा-ज्ञान को आवश्यक नहीं समझते।

''मैं–जैसे/बह जाए/ चन्द्रभागा के छल्लों की लपेट में/शहतीरियों के साथ।
एक बल्ला/किसी अभागी छत का ।''

प्रस्तुत बिम्ब सुन्दर होते हुए भी सार्थक नहीं। इसी तरह जीने मरने का विचार त्याग कर अंधे जोश में युद्धोन्मत्त हो जाना भी उचित नहीं–

''युद्ध छिड़ा जोश और जवानी का/मछुओं के जाल में होती खींच-तान/कौन जाने यह भेद,/जाल सशक्त है या मच्छ प्रबल है। कूद जाने का भाव अमर है।''

अंधे और बेसमझ जोश से भरे समर में तो मानव जीवन की नियति के समक्ष प्रश्न चिन्ह लग ही जाता है।

कवि कमरे के बंद द्वार और खिड़कियां खोल कर बाहर आने की प्रेरणा देता है, आदमी को कुण्ठा मुक्त होने और विषमता, मूढ़ता, अंध-मानसिकता, ग्रन्थियों, चिर वेदनाओं, उलझनों, यातनाओं और अभिशापों से बाहर आने और साम्प्रदायिक घिस्सियों से बाहर निकल कर भावुकता की अपेक्षा बुद्धि का उपयोग करने के लिए सचेत करता है क्योंकि जीवन-जगत खिली कलियों का गमला नहीं, बुद्धि के इस युग में न जाने किस कली में तक्षक का डंक छिपा हो। कवि व्यंग्य करता है कि नेता प्रायः लोगों के दुःख दर्द से भी मुंह छिपाए फिरते हैं परन्तु बातें अधिक करते हैं, देखा-देखी अधिक बातें करना कवि की भी आदत भी हो गयी है और मज़बूरी भी ।'बापू' से उद्धरण देखें–

''मैं सौ बातें करूंगा/क्योंकि/तुम्हारे जाने के पश्चात/मैंने जब से होश सम्भाला/तब से सीखा/बातें करना/बातें बनाना/क्योंकि करना था जो/वह तुम कर गये। देश को आज़ादी दे गये/ फिरंगी भाग गये/ बहुरंगी रह गये।''

कवि आधुनिक जीवन में गुरु शिष्य के परस्पर सम्बन्ध पर भी व्यंग्य करता है कि उन में अंतर छू मंतर हो गया है । इस संदर्भ में 'तुम्हारे नाम' कविता उत्कृष्ट कविता कही जा सकती है। यहां चित्रित गुप्त-वासना का काव्यात्मक सौंदर्य सराहनीय है, नैतिकता का प्रश्न यहां बेकार

है, परस्पर आकर्षण के नियति तक पहुंचने की प्रक्रिया भी सुंदर है, सहपाठी चंचल होकर हंसते खिलखिलाते, फुसफुसाते और खिसक जाते हैं तो कविता का काव्य- भाव अपनी चरम परिणति पर पहुंचता है।

4.1.3.3 देश प्रेम युद्धजन्य वीर भाव की कविताओं का स्तर जोश-खरोश का सूचक है, जिसमें संयम पूर्ण संघर्ष, कर्म और विजय की कामना प्रतिबिम्बित नहीं होते। मात्र उतावलेपन और भालों से आधुनिक युद्ध नहीं जीते जा सकते और न ही मात्र शहीद होने के लिए युद्ध लड़े जाते हैं। 'संदेश' कविता इन दोनों कमजोरियों से ग्रस्त है परन्तु 'बापू के नाम' कविता इस संदर्भ में सार्थक और उत्कृष्ट कविता कही जा सकती है।

'नौका का इतिहास' की कविताओं के उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर कहा जा सकता है कि कवि की संवेदना में नवीनता का पुट है, परन्तु विचार पक्ष अभी उतना सबल नहीं हो पाया, कवि कहीं-कहीं भावातिरेक में वह जाता है तो कविता की सार्थकता को नुकसान पहुंचता है। कुल मिलाकर यहां प्रकृति और लोकरंग के बिम्ब बड़े सशक्त और सुन्दर हैं।

4.1.4. प्रश्न तुमसे आदर्श पियूष उर्फ़ डॉ. आदर्श की 1969 से 71 तक की कविताओं का संग्रह है 'प्रश्न तुमसे' 1975 ई. में प्रकाशित हुआ, जिसमें 36 कविताएं संकलित हैं। जिन्हें कवि वर्तमान के शब्द चित्र कहता है , जिनमें आत्माभिव्यक्ति द्वारा अपना आज बांध रहा है क्योंकि जैसा वह आज है कल नहीं रहेगा, मानसिक स्थिति, सोचने का ढंग, अनुभूतियां सभी बदलेंगे। उदास पलों में उसका व्याकुल मन आत्माभिव्यक्ति के लिए मचलता है, 'ट्रैजिडी' में रुचि के कारण पीड़ा में क्षणिक ही सही सुख मिलता है यद्यपि दुख की अवधि असीम होती है। वह मानव की दयनीय दशा को देखकर भी दुखित द्रवित हुआ है और भावुक मन असहाय-सा रो उठा है।[1] कवि की उपर्युक्त पंक्तियों के अनुरूप उनकी विचारानुभूतियों की काव्यात्मक अभिव्यक्ति इन कविताओं में तरल और बिम्बात्मक है। प्रणयानुभूति की तीव्रता विरहजन्य पीड़ाओं और स्मृतियों में झलकती है। इन कविताओं का मूल्यांकन प्रस्तुत है।

4.1.4.1 प्रणय-भावना कवि प्रेमी प्रेमिका दोनों के अन्तर्मन के परस्पर समर्थन को ही प्रेम मानता है, इसमें आत्मा बुद्धि को और बुद्धि मन को प्रेरित करती है। इसी धारणा के अंतर्गत कवि समर्पण को प्रेमियों के परस्पर ऋण के रूप में व्यक्त करता है कवि प्रेम को दैहिक कम आत्मिक या सात्विक अधिक मानता है । परन्तु परस्पर समर्थनमय इस सात्विक और पवित्र प्रेम के पथ में समाज बाधाएं खड़ी कर देता है तो विवशता के कारण निष्ठुर होकर प्रेमिका प्रेमी को ठुकरा देती है।

प्रेमी सामाजिक शृंखलाओं में बंधा-सा, चौराहे पर कुचला-सा, कुण्ठित-सा हो गया है फिर भी उसके अधरों पर मुस्कराहट है क्योंकि प्रेमिका की आंखों में उसने विवशता के आंसू देखे हैं और अपने प्रति लहराते नेह के सागर को भी देखा है। परन्तु ऐसी निरीहताजन्य मन:स्थिति में वह अपने रचना कर्म में स्मृति को ढाल नहीं पाता, स्मृति को कविता में उतार लेने की उसकी आकांक्षा फलीभूत नहीं हो पाती। इसी कारण वह अपने गीतों से संन्यास ले लेता है,

जबकि यही गीत उसे बहुत भाते थे।

इस प्रणयजन्य अनुभूति को अभिव्यक्त करता हुआ कवि विरहजन्य पीड़ा को एकालाप की तरह गाने लगता है कि वह छला गया है इसी अनुभूति के कारण , उसका मन खण्डित और उदास सुलगता है।

वह सहानुभूति और परस्पर के सम्बन्ध जाल से मुक्त, अकेला और अनाम रह जाना चाहता है, वह नहीं चाहता कि कोई अपने दिए किसी नाम से उसे सम्बोधित करे, उसके अधूरेपन की वेदना के दंश का उपचार करे। परन्तु उसकी यह मन:स्थिति प्रशंसनीय नहीं। जब उसे अपनी सुधि आती है तो पता चलता है कि वह इतना बिखर गया है कि अब स्वयं को बीन नहीं पाएगा बल्कि कांटों में उलझ कर रह जाएगा। इस अनुभूति के कारण आत्मपीड़ा को और अधिक निखारने की नीयत से वह पुनः विरहानुभूति में खो जाता है और प्रियतमा की पीड़ा देखकर उसके रोदन से आनन्दित होने लगता है। वह पर-दुख से कातर न होकर आनन्दित होने लगता है क्योंकि प्रियतमा ने स्वेच्छा से उसके प्रणय को नकारा है, स्वेच्छा से उसे त्यागा और भुला दिया है, वह निजी कामनाओं की पूर्ति के लिए मस्ती में भरी बरसाती नदी सरीखी नए रास्तों पर चली गई है। प्रियतमा तो उसे जल के किनारे छोड़कर अपनी मांग में किसी और का सिन्दूर भर कर चली गई है और वह गहन उदासी के क्षणों में चेतना की अतल गहराइयों में डूबता चला गया है। अनकहे का भारीपन उसकी चेतना को झिंझोड़ रहा है और वह समझ गया है कि वह दीपक जला कर बैठा रहेगा परन्तु प्रियतमा नहीं आएगी। कविता का एक उद्धरण देखें-

"देहरी द्वार पर/घर की हर दीवार पर/ज्यों ही रक्खे मैंने/ये नन्हे-से दिये/लगा त्यों/ तम के गहरे पत्ते पर/तुमने/उजले से हस्ताक्षर किये।/किन्तु सोचता हूं/इतनी कजलाई रात की पर्त्तों को/ ये दीपों के कांपते कर/क्या हटा सकेंगे?"

4.1.4.2 जीवनगत विसंगतियों का चित्रण कवि आदर्श पियूष ने व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवन में घर कर गई विसंगतियों का चित्रण भी इन कविताओं में किया है। उसे प्रतीत होता है कि जीवन छल कपट से भर गया है, अपनत्व का भाव मर गया है, आशा की किरण दिखती नहीं। परन्तु उसकी इस बेबस, कर्महीन सोच से कुछ सुधरने वाला नहीं। जब निराशा, अविश्वास, अकेलापन और उपेक्षा की अनुभूति अकारण और अकर्मण्य ही हो तो उसे रुग्ण मनोवृत्ति ही कहा जाएगा जो अस्तित्ववाद को फैशन की तरह अपना लेने के कारण पैदा हुई है।

जीवन की यह विसंगतिजन्य रागात्मकता भावुकता की स्थिति तक जा पहुंची है, उदासी, अंधकार और रुदन अकारण हैं, प्रश्न अभिव्यक्ति के धरातल पर न उभर कर आंसुओं के द्योतक मात्र बन कर रह गए हैं। अधूरेपन की पीड़ा की अभिव्यक्ति सुंदर है परन्तु यह पीड़ा भी अकर्मण्यता के कारण निरर्थक रह गई है। कवि कर्म किसी निराश और कर्मविहीन व्यक्ति के मन को मात्र दिलासा देकर पूर्ण नहीं हो जाता। ऐसी कर्मविहीन निराशा व्यक्ति को उदासियों के जाल में घेर लेती है, उसके स्वप्न-संसार और भावना के महल आंसुओं में बह कर रह जाते

हैं और भावना की अर्थी पर बेवसी 'नये कफ़न' चढ़ा कर रह जाती है।

विवशताजन्य उदासी, निराशा, अकारण घुटन और निरर्थकता की मरणधर्मा वृत्तियों से मुक्ति के प्रयत्न तो कवि करता है परन्तु कारण को सही-सही न पहचान पाने के कारण, सही जगह चोट न कर पाने के कारण ये प्रयत्न फलीभूत नहीं हो पाते. उसके पास अनेक आकांक्षाएं थीं, अनदेखे कुंआरे सपने थे, बादलों को तितली-सा उड़ कर छू लेने की चाहत थी परन्तु वह तो अब मात्र अकेलेपन और अजनबीपन से ग्रस्त होकर रह गया है। उसका 'बंजारा मन' दिशा भ्रमित-सा है और व्यक्तित्व अर्न्तविभाजित-सा। इसी शीर्षक की कविता का कवि-निष्कर्ष देखें-

''चलता है मन के/बंजारों का काफिला/भ्रमित दिशा भ्रमित ज्ञान/मंजिल को

कठिन मान/कह दो/क्या नहीं बढ़ा/तन-मन का फासला ?''

तन-मन के बीच फासला तो बढ़ेगा ही, जब तक हम निराकरण करने की अपेक्षा आकांक्षा अवरोध से ग्रस्त, मूक दर्शक बने आत्मपीड़ा से विमूढ़ हुए बैठे रहेंगे। यह भी तथ्य है कि कवि मानव-मात्र के अरमानों, आकांक्षाओं और पीड़ाओं का साझीदार बन कर अजनबियत और अकेलेपन के त्रास से मुक्त होना चाहता है, वह जीवन के प्रति आस्थावान भी है परन्तु अकर्मण्यताजन्य विवशता और निराशा की अनुभूतियों से जकड़ा हुआ है, उसकी संवेदना पंगु होकर रह गयी है।'पंगु संवेदना' कविता विवेक की अपेक्षा आवेश में ढल कर रह गई है, और हां, उसने जीवन में कई स्मृतियां संजोयी हैं जिनमें जीवन की सुखानुभूति भी है, कड़वाहट और सूनापन भी है, हास्य और माधुर्य भी है परन्तु इन सभी अनुभूतियों ने मन की कोमलता को नष्ट करके उसे पाषाण मन बना दिया है।

जब वह आत्मालोचन करता है तो अतीतगामी हो जाता है और अतीत की व्यथाजन्य पीड़ा की अभिव्यक्ति को ही अपने कवि कर्म में श्रेयस्कर समझे बैठा है। कवि आदर्श 'पियूष' पीड़ा का अटेरन ही ओटता रहा है बल्कि ऐसा उसने सायास किया है। उसने उपेक्षा झेली है, चिकनी शिलाओं पर सिर पटका है, सभी सपने टूट गए हैं, टेरता हुआ यौवन दूर चला गया है और वह अकेला रह गया है परन्तु अकेलेपन की यह सजा उसे व्यर्थ नहीं मिली, वह इस योग्य अपराधी भी है क्योंकि उसने किसी के दुख का निराकरण नहीं किया।

कवि को जब यह दृष्टि मिलती है तो उसकी कविता में जुझारूपन भी आने लगता है, अब वह दुखी है कि कविता जीवन-सत्य से दूर हो गई है और कवियों ने तड़पते, छटपटाते, पीड़ा से बिलबिलाते मानव-मात्र की यंत्रणा को अभिव्यक्ति देने की अपेक्षा अश्लीलता और नग्नता पर वाह-वाही लूटते हुए कविता को अपनी आजीविका का साधन बना लिया है।

4.1.5 खुले कमरे बंद द्वार कवि रमेश मेहता का कवि-कर्म 1969 ई. के आसपास आरम्भ होता है और कविता-संग्रह 'खुले कमरे बन्द द्वार' मई 1972 ई. में प्रकाशित हुआ है जिसमें 38 कविताएं संकलित हैं। इन कविताओं में अधिकतर कवि जीवन-जगत की वस्तु-स्थिति का चितेरा है। जीवन की विसंगतियों, विडम्बनाओं और विद्रूप का चित्रण चाहे पाठक

को कोई दृष्टि न दे उसे इन विद्रूपताओं के प्रति सचेत तो कर ही देता है। अधिकतर प्रकृति के बिम्ब स्थिति सूचक हैं, कहीं-कहीं इन बिम्बों में राग-अनुराग की आर्द्रता भी है और अनुभूति का सघन संयोजन भी हुआ है जबकि कुछ बिम्ब तो बौद्धिक ऊहापोह का परिचय देकर ही रह जाते हैं, हां, जीवन-स्थितियों पर व्यंग्य करने का यत्न इन कविताओं का उद्देश्य प्रतीत होता है। इन कविताओं का मूल्यांकन प्रस्तुत है।

4.1.5.1 जीवन-दृष्टि का विकास कवि जीवन को 'उधार का जीवन' समझता है, माना गया है कि व्यक्ति के जीवन का मूल समाज है, जिसमें संसरण करता हुआ वह जीता है परन्तु उसके भाव और अभिव्यक्ति अपनी है, फिर भी जीवन की पहचान हृदय और वाणी के परस्पर ताल मेल से ही अभिव्यक्त होती है, लयताल और अभिव्यक्ति के स्तर पर पूर्ण होते हुए भी यह कविता दृष्टि देने की अपेक्षा ' !' चिन्ह लगा व्यंग्य ही है। 'टूटा हुआ मकान' कविता में वह जीवन को सुनसान राह पर अकेला खड़ा मकान समझता है जो अनजान छल और प्रवंचना से ग्रस्त है और अस्तित्व को बनाए रखने की बाध्यता से विवश है तथा दुविधा में जकड़ा अपने सम्पूर्ण विनाश की घड़ियां गिनता हुआ खड़ा है। उसका एकान्त बढ़ रहा है, इस एकान्त में सुख-स्वप्न का संसार टूट गया है, मां का प्यार बीती बात हो गया है और जीवन में जो भी आया है वह अपार दु:ख देकर चला गया है। लय-ताल और संरचनात्मक सौंदर्य के आधार पर यह अच्छी कविता है परन्तु पुन: जीवन दृष्टि का अभाव खलता है। जीवन के प्रति यह एकान्त उदासीनता ही अभिशाप है जो देखा नहीं गया, एकान्त की यह अनुभूति कारणहीन है। 'एक जीवन अभाव ग्रस्त' कविता प्रभावान्विति और शिल्प के धरातल पर सुगठित है, थोड़ी-सी संघर्षचेतना भी उभरी है परन्तु अभावों की प्रकृति नहीं उभरती और दृष्टि भी संघर्षोन्मुख न होकर पूजा, श्रद्धा और समर्पण वाली ही है।

इन कविताओं में निष्क्रिय उदासी, सुखद अतीत का स्मरण, अकारण विवशता, अनपहचानी प्रवंचना, अनजाना छल और दुविधा के साथ-साथ त्रासद अकेलापन झलक उठे हैं परन्तु यहां संघर्षहीनता है तथा सही-सही कारण की पहचान नहीं हो सकी। हां, स्थिति-चित्रण अच्छा है और सशक्त भी परन्तु इसे सार्थकता और उद्देश्यात्मकता अभी नहीं मिल पाई।

4.1.5.2 जीवन-यांत्रिकता और मन:स्थितियों का चित्रण कवि हृदय के खुले कमरे के बंद द्वार को खोलता है और उदासी, वीरानी, कर्महीनता और संघर्षहीनता का त्याग करता हुआ समाज से नाता जोड़ता है, वह अपने निविड़ अकेलेपन को तोड़ता है और आस-पास के जीवन को विवादास्पद देखता है। दुनिया के लोग, लोगों की धारणाएं विवादास्पद हैं इसी कारण वह भी विवादास्पद कविताएं रचता है, मित्रों को लड़ा देता है और निकट खड़ा मज़ा लेता है। यहां कविता का व्यंग्यभाव नहीं उभरता, न ही विवाद छेड़कर मज़ा लेने की वृत्ति श्लाघ्य है, विवाद सार्थक भी तो हो सकते हैं।

सतही दृष्टि के बावजूद कवि धीरे-धीरे ही सही जीवन की गहराई में उतरने लगता है और 'एक रचना' कविता में व्यंग्य करता है कि लोगों ने नए मकान बनाए हैं परन्तु इन मकानों की खिड़कियां और वातायन बन्द पड़े हैं। वस्तुत: इसी कुण्ठा के कारण ही व्यक्तित्व

में दरारें आ रही हैं। व्यक्तित्व-विभाजन का कारण कुण्ठा ही है जो हमारे व्यवहार को प्रभावित करती है।' इसी कुण्ठा के कारण वासनापूर्ण चेहरों पर नैतिकता का मुखौटा लगा कर व्यक्ति अनेक रूपों में संघर्षमय जीवन जी रहा है परन्तु यह संघर्ष जीवन के लिए नहीं अपनी कुर्बानी को छिपाए रखने के लिए ही किया जा रहा है।

धीरे-धीरे जीवन की समझ बढ़ने के साथ-साथ कवि इसकी गहराई में उतरता है और 'वसन्त आगमन' कविता में दफतर के यांत्रिक-सा हो गए जीवन पर व्यंग्य करता है कि दफतरी कामकाज में उलझा व्यक्ति ऋतु परिवर्तन का आनन्द नहीं ले पाता। वसन्त आगमन लोगों के भीतर उल्लास नहीं भरता, मात्र क्षणिक चौंकाहट भर कर रह जाता है क्योंकि आगे निकल जाने की होड़ ने आदमी को यंत्र-सा बना दिया है और इसी होड़ के कारण घुटन, अजनबीपन, अकेलापन आदमी में घर करता जा रहा है और यहां उदार और सही सोच वाले आदमी की उपेक्षा हो रही है। कवि मानता है कि व्यक्ति के जीवन-पथ पर समाज अनेक बाधाएं पैदा करता है, उसके व्यवहार पर अंकुश लगाता है परन्तु वह इन 'कॉमो' व 'फुलस्टापों' की अवहेलना करते हुए विना कोई परवाह किए बढ़ता (बढ़ता नहीं बिछलता?) चला जाता है। उद्धरण देखें–

''यात्री रुका/ कुछ क्षण ठिठका/ और फिर/ इन सबसे बिना डरे/ 'कामों' व 'फुलस्टापों'/ पर। 'इनवर्टेड-कामों'/ की बर्फ गिरा/ उस बर्फ पर/ बिछलता चला गया/ अपनी गति/ अपनी राह।''

प्रयोग और विम्ब की दृष्टि से कविता सुन्दर है परन्तु बर्फ पर बिछलना संघर्षहीन घिसट जाना ही प्रतीत होता है। संघर्षशीलता की दृष्टि से कविता सार्थक नहीं बन सकी। 'कागज़ी' कविता में कवि ने आदमी के खोखलेपन पर व्यंग्य किया है। कवि कहता है कि जब बादाम, अखरोट, नींबू कागज़ी हैं तो इन्सान क्यों कागज़ी न हो।

4.1.5.3 राजनीतिक विसंगतियों का चित्रण कवि रमेश मेहता ने राजनेताओं के दोगलेपन पर भी चोट की है कि नेताओं के आह्वान पर मज़दूर हड़ताल करेंगे, भूख-प्यास सहेंगे, गोलियों की बौछार सहेंगे, उन्हीं के नाम 'पे-रोलों' से कटेंगे । जबकि नेता विरोधियों से मिल कर शराब आदि पियेंगे। और यदि हड़ताल सफल हो गई तो यही नेता सामने आकर जय जयकार करवा लेंगे। उद्धरण देखें–

''और/ उन कामगारों की तपस्या का/ सारा श्रेय/ यह अनाधिकारी/ समेट ले जाएंगे/ बिना/ किसी हिचक/ बिना विचार।''

विडम्बना यह है कि कामगार मज़दूर अपने इन नेताओं की चालबाज़ी और दोगले चरित्र से अवगत नहीं हैं। कवि सरकार पर भी व्यंग्य करता है। सरकार जनता को लाठी चार्ज, अश्रुगैस या गोली द्वारा दबा देती है। तिस पर तुर्रा यह कि यह दमन जनता की बेहतरी के नाम पर किया जाता है। यहां कवि सरकार के दोगले चरित्र की ओर भी संकेत करता है। उसका मानना है कि ग्रामीण लोग शहरों में बसने की प्रवृत्ति से ग्रस्त हैं, जबकि यह शहरी प्रगति सुखद

नहीं क्योंकि जंगल कट रहे हैं। लोग शहरों में भीड़ लगा रहे हैं, शहर मरघट हो रहे हैं, जहां जिंदा भूत नाच रहे हैं, कुछ अतृप्त आत्माएं बेचैन-सी सोई हुई सड़कों पर कुछ ढूंढती हुई भटकती रहती हैं।

4.1.5.4 प्रकृति और प्रणयानुभूति कवि ने प्रकृति और प्रणयानुभूति को सुन्दर, सघन और आर्द्र बिम्बों में जीवन-सत्य के अनुरूप ढाला है। सुख-दुःख के परस्पर विरोधी भावों को जोड़ता हुआ कवि कहता है कि कभी-कभार ऐसे क्षण भी आते हैं जब कलिका रोती है परन्तु फूल मुस्कराते हैं, सुख छलना या माया बन कर रह जाता है और दुःख चिरसंगी हो जाता है। इस तरह प्रणय जीवन में यह सुख-दुःख, मिलन-विरह चलता रहता है।

प्रकृति के रूप और स्पर्श में उसे प्रियतमा के सौंदर्य और अंग-स्पर्श की अनुभूति होती है। झरने की जलधार के नीचे उसे प्रियतमा के पुलक स्पर्श का आनन्द मिलता है, श्यामल मेघों में उसे प्रियतमा की अलकों की सुगंध अनुभूत होती है, पर्वतों की ऊंची बर्फीली चोटियों में उसे प्रियतमा के श्वेत चमकते उरोजों का अहसास होता है और घाटी में लहराती नदी की धारा में मानो प्रियतमा की बांहें समायी हुई हैं–

"देवदार और चीड़ों में/ दृष्टिगता होती हैं/ तुम्हारी/ मांसल जंघाएं/

और पक्षियों के कलरव में/ सुनाई देती है/ वाणी मधुर, तुम्हारी।"

कवि की प्रणयानुभूति आर्द्र है जिसके कारण कवि परम्पराभुक्त रूपकों, बिम्बों और प्रतीकों के सहारे प्रियतमा को पुकारता है कि वह उसे नयनों की मदिरा पिलाए, मृदु होठों के प्याले छलकाये, श्यामल अलकों से उसे घेर ले। प्रणयानुभूति से सम्बद्ध इन कविताओं में परम्पराभुक्त प्रस्तुतों के कारण कहीं-कहीं प्रेम की सात्विकता उच्छृंखलता में भी बदल गई है, कुछ कविताएं विस्तार-लोभ के कारण कमज़ोर भी हुई हैं, कुछ गद्यात्मक भी, भावगत सौंदर्य भी इन तथाकथित लम्बी कविताओं में उत्कृष्ट नहीं रह पाया। जबकि उनकी लघुकविताएं अधिक सुंदर और सार्थक हैं–

"सांसें जब/ महक उठीं भावों के लगे/ अम्बार/ और तभी/ छेड़ गई/

फाल्गुनी बयार/ गा उठीं सभी दिशाएं। "प्यार। प्यार। प्यार"।"

4.1.6. बयार के पंखों में कवि 'निर्मल' विनोद की 1974 ई. तक की कविताओं का संग्रह 'बयार के पंखों में' 1978 ई. में प्रकाशित हुआ। प्रकाशन-क्रम की दृष्टि से यह उनका दूसरा संग्रह है, रचना-क्रम में (शायद) पहला। इन कविताओं का मूल्यांकन निम्नलिखित है।

4.1.6.1 प्रणयानुभूति का विकास इन कविताओं में बिम्बधर्मी प्रयोगात्मकता काफी निखरी हुई है और प्रणयानुभूति की अभिव्यक्ति गद्यात्मक होती गई है। इनकी प्रणयानुभूति संस्कारजन्य वर्जनाओं के प्रति झिझकती हुई आगे बढ़ी है। कवि को प्रतीत होता है कि आत्म सौंदर्य से प्रेरित हुए बिना व्यक्ति प्रणयक्षेत्र की ओर नहीं बढ़ पाता, शायद इसी कारण आत्म-सौंदर्य की प्रशंसा सुनकर उसका सरापा सिहर उठता है, कोमल अनुभूति की सिहरन के कारण

वह प्रियतमा की अलकें सजाने को आतुर हो उठता है, स्वप्नों का सौंदर्य छूने के लिए वह उतावला हो उठता है। परन्तु अभी तक कवि संस्कारगत वर्जनाओं की कैद में है, इन वर्जनाओं की पीड़ा को वह परखता रहा है, इसी कारण वह अपनी प्रणयानुभूति को दबा लेने का यत्न करता है। परन्तु जैविक-जरूरतों के कारण अधिक देर तक दूर नहीं रहा जा सकता क्योंकि वासना प्रकृति की माया है। वह वासना से दूर भागता है परन्तु बुद्ध की तरह प्रस्थान भी नहीं कर पाता और वर्जनाजन्य कुण्ठाओं से ग्रस्त रोता रह जाता है। वह जान गया है कि वर्जनाएं और संस्कारगत मान-मूल्य ह्रासशील हैं, परदादा के युग की बूढ़ी ढोलक जैसे, वर्जना की इस कैद से वह बाहर निकल आना चाहता है और कच्ची उम्र के अपने कामों और संस्कारों पर लजाने लगा है।

बस इस संकल्प के साथ वासना से दूर स्नेह-प्रणय से पगा उसका निर्मल मन प्रणय के सपने बुनने लगता है, कल्पना के पंखों पर बैठ कर वह आकाश की नीलिमा से संसर्ग का आनन्द लेने लगता है, वह आवरण का हरेक झीना आंचल धरा पर फैंक देता है और सम्भोग-क्षणों के प्रति ललक उठता है, वह संकल्प-सा करता है-

''जब कभी/ गगन की नीलिमा को/ अपने वस्त्र हीना होने का बोध होगा/ धरा पर गिर अपने आभरण संजोने/ जब वह नीचे झुकेगी, उसी क्षण/ उसके अधरों पर/ गुलाबी रंग पोत दूंगा/ और उसका कमसिन सौंदर्य/ मेरा होगा/ यथार्थ में/ मेरा होगा'' (पृ० 19-20)

, परन्तु मिलन-क्षणों में भी वह अधिकतर संभोग-सुख नहीं भोग पाया, अन्यमनस्क ही रहा है, अभिसार के दौरान भी घर-बाहर के बीच के द्वन्द्व में फंसा रहा है, मिलन-क्षणों में भी वह किसी और ही लेखे-जोखे में फंसा रहा है, प्रिय-मिलन के क्षण उसे कम ही मिले हैं, अधिकतर वह प्रतीक्षा ही करता रहा है, खिड़की खोले जाली के पीछे से प्रियतमा के आने वाली पगडण्डी को देखता और बिसूरता रहा है। यह निश्चित भी नहीं कि प्रियतमा आएगी। उसने प्रियतमा के घर के निर्जन कपाटों को देखा है (जबकि पीछे मुड़कर देखना मर्दों का काम नहीं) और उसकी दृष्टि बुझी-बुझी-सी लौटती रही है, उसने निरंतर प्रियतमा को खोजा है परन्तु अहसास पर चोट ही पड़ी है। ढोलक की थाप पर गाए जाने वाले 'सुहागों' को वह सुनता रहा है और इन्हीं सुहागों में उसने प्रियतमा का शोख स्वर भी सुना है, जो लोहड़ी की बसंती लपट-सा ऊंचा उठ कर उसके कानों की नर्म 'लवों' को धीरे से छूकर उसकी देह में सिहरन का संचार कर गया है। परन्तु प्रियतमा का कहीं पता नहीं, यह भी ज्ञान नहीं कि वह रोती है या गाती है, उसके प्रति क्या सोचती है?

फिर भी कवि इस अर्धमिलन को महत्वहीन नहीं मानता। न ही वह प्रेम को जग जाहिर होने देना चाहता है, क्योंकि भेद खुलते ही क्यामत आ खड़ी होगी। वह चाहता है कि सावधानी बरतते हुए लौटती बयार के पंखों में छिपा कर प्रेमिका उसके खत का उत्तर भेज दे परन्तु जब कुछ भी नहीं बन पाता, प्रणयोत्तर तक नहीं मिलता तो कवि कहने लगता है कि वह जहां भी रहे खुश रहे, हां जब संध्या या भोर हो या जब धरा-आकाश क्षितिज में फाग मनाएं, या जब पक्षी नीड़ों में आने जाने लगें तो उन पलों में इस एकाकी पंख का ध्यान कर लिया जाए,

अपने घर के आंगन में जीवन की तपती दुपहरियों में खिले गेंदे जैसा ही खिला हुआ उसका युवा-प्रेम याद कर लिया जाए।

4.1.6.2 जीवनगत विसंगतियों का चित्रण कवि ने जीवन और जगत की विसंगतियों को भी अभिव्यक्ति दी है। यहां कहीं-कहीं मात्र-स्थिति चित्र हैं तो कहीं-कहीं तीखा व्यंग्य अंतस को बींध जाता है। उसे लगता है कि हम भीतर ही भीतर खोखले हो गए हैं, हम स्वयं छलावे में फंस रहे हैं, औरों को भी फंसा रहे हैं और घोर अवसरवादिता से ग्रस्त हम ढोल की तरह बज सकते हैं, दुल्हिन की तरह सज सकते हैं, इस 'समाजवादी' आधुनिक युग में दोगला व्यवहार फूल-फल रहा है, जीवन-व्यवहार में भोला, निश्छल, निर्विकार, कर्मठ, भला मानस ढूंढने से भी नहीं मिल रहा, सभी लोगों ने अपने वास्तविक चेहरों को छिपा कर मुखौटे ओढ़ रखे हैं, जिन पर भिन्न-भिन्न रंगों को पोत लिया गया है और अभिनय करते-करते सहज भाव की वृत्ति ही मर गई है और कवि व्यंग्य करता है कि कैसे लोगों पर विश्वास करें, नकली चेहरों की ओट में वे घात पर घात करते फिरते हैं और वे मोल बिके वोट जैसे हो गए हैं।

कवि आधुनिक बुद्धिजीवी को कवि बीमार घोड़ा मानता है जो पोस्टरबाज़ी का चारा चरता है, उसका व्यक्तित्व भूखा-नंगा और कुण्ठाओं से ग्रस्त है, खोखली व्यवस्था के कारण वह विवश है, शोर और बौद्धिक व्यापार में जुटा रहता है। स्थिति यह है कि रोजी-रोटी की भाग दौड़ से थक कर या तो अपनी शिक्षा-दीक्षा की उपाधियां फाड़ कर फैंक देता है या रेलगाड़ी के नीचे सिर रख कर मृत्यु की डिग्री हासिल कर लेता है। यहां शैतान की आन्त की तरह असंतोष बढ़ता जा रहा है, हर गांव जल रहा है, हर शहर सुलग रहा है और समस्याएं ज्यों की त्यों मुंह बाए खड़ी हैं, ऐसी स्थिति में यदि कोई व्यक्ति प्रभुसत्ता (व्यवस्था) के प्रतीक सूर्य को गाली देता है तो अनर्थ नहीं करता। सूर्य के समक्ष माथा नहीं झुकाता बल्कि उस पर थूक कर, उसे गाली देकर गर्वित होता है तो गलत नहीं करता। उद्धरण देखें-

"सूर्य ! / अब नहीं लगते देवत्व की भव्य मूर्ति तुम ! / या i/ आशीष देते भगवान सच तो यह है (कि) लगते हो-/ चीनी मिथक के-/ [लपतपाती जीभों वाले] हिंस्र जन्तु;/ आग उगलते शैतान!"

कृष्ण के मिथक को कवि नया अर्थ नहीं दे पाया। वह बंशी पर थिरकती उंगलियों और रथचक्र में खुसी उंगली की चुनचुनाहट का अच्छा बिम्ब देता है परन्तु राग और आग के संगम कृष्ण को मंत्रणा में प्रवृत्त नहीं होने देना चाहता। सूर्य और कृष्ण दोनों ही व्यवस्था या राजनेता के प्रतीक बन कर उभरे हैं। मौजूदा व्यवस्था में यदि किसी को नेता से मार पड़ रही है तो कमजोर व्यक्ति को ही। मौजूदा व्यवस्था और नेता बहुत चालाक हैं, बिना किसी तलवार-ढाल के जन-जन को विवश किए हुए हैं और 'एंग्रीयंगमेन' के नारों को सुनने से साफ बच जाते हैं। कुछ कविताओं में कवि व्यवस्था या नेता पर चोट न करके लोगों की पलायन वृत्ति पर चोट करता है। वह युवा वर्ग की छिन रही सहज मुस्कान के प्रति भी चिंतित है परन्तु इन सभी स्थितियों को कच्चे माल की तरह ही इस्तेमाल कर पाया है। अंततः वह चुनाव प्रक्रिया पर चोट करता है।

''पांच बरस तक-/रोते-पीटते, गिड़गिड़ाते-फुफकारते हैं व्यवस्था को नकारते, फुफकारते हैं/ और ऐन मौके पर-/फिर धोखा खाते हैं पहले की भूल सहज ही दुहराते हैं।'' (पृ 64)

कुल मिलाकर इन विसंगतियों का कोई हल देने की अपेक्षा और संघर्षोन्मुख होने की अपेक्षा कवि नये ढंग से जीने का संकल्प करके रह जाता है।

4.1.6.3 प्रयोगधर्मी वृत्ति प्रयोगधर्मी वृत्ति के कारण कवि सूर्य के अनेक बिम्ब विकसित करता है। सूरज कहीं उसे दिसम्बर की यौवन भरी दुपहर में ठण्डा सा घिसा हुआ पीला-पीला बीस पैसे का सिक्का प्रतीत होता है तो कहीं कोहरे की ओट में अपने सभी कर्तव्यों को भूला साधनारत उदासी बाबा प्रतीत होता है और कहीं वह जेठिया दोपहर का प्यासा पथिक है जो स्वयं प्यासी धरती से दो घूंट पानी मांग रहा है।

परन्तु उपर्युक्त इन विम्बों में अनुभूतियां अमुखर रह गई हैं। शब्दों के प्रतीकार्थ को खोले बिना विम्ब व्यर्थ-सा प्रतीत होते हैं, जिनमें कोई ज्ञानदृष्टि भी नहीं उभरती, सिवा एकाधविम्ब के शेष शब्दचित्र ही हैं। कुल मिला कर 'नयी कविता' की एकाधिक प्रवृत्तियों को समेटने का अच्छा प्रयास किया गया है।

4.1.7 पत्थरों का दरिया प्रयोगशील कवि 'निर्मल' विनोद के 1976 ई. में प्रकाशित काव्य-संग्रह 'पत्थरों का दरिया' में गीत, ग़ज़ल, दोहा, कविता आदि विधाओं में लिखी 51 रचनाएं हैं। प्रकृति, प्रणय, देशभक्ति के साथ-साथ आधुनिकताजन्य ऊब, अकेलापन, यांत्रिकता और व्यवस्थाजन्य संत्रास की अनुभूतियों को उसने व्यंग्य के धरातल पर प्रस्तुत किया है। जीवन यथार्थ से टकराता हुआ कवि इन युगीन स्थितियों से स्वतंत्रता चाहता है परन्तु यह स्वातंत्र्य कामना रोमांटिक दृष्टि का संस्पर्श पाकर भावार्द्र ही हुई है, संघर्षोन्मुख नहीं।

4.1.7.1 प्रकृति और प्रणयानुभूति का मिथुनीकृत स्वरूप यहां प्रकृति-चित्रण अनुभूति के संश्लिष्ट स्वरूप को उभारता है तथा अनुभूति और प्रकृति परस्पर अन्योन्याश्रित हैं। प्राकृतिक सौंदर्य में अनुभूति का नियोजन, संयोजन और सघन बिम्ब-विकासन से सम्बद्ध कवि कौशल सशक्त है। उसकी विम्ब-जोड़न प्रक्रिया काफी सजग है, कवि बिम्बों को पांत-दर-पांत जोड़ता चलता है, जिससे जीवन-स्थितियां परस्पर सिमटती हुई स्पष्टतर होती जाती हैं, तब अचानक कोई एक पंक्ति इन बिम्बों की लड़ी में आ घुसती है और अर्थ स्फोट प्रदान करके गीत को सार्थक बना देती है। सतही दृष्टि से देखने पर ये बिम्ब फोटोग्राफ-सा प्रतीत होते हैं परन्तु किसी एक शब्द के प्रतीकार्थ के खुलते ही पाठक रोमांचित हो उठता है।

धूप इस प्रकृति का साधारण उपकरण है। कवि अनेक गीतों और कविताओं में इसे नये-नये प्रतीकार्थ देता है और अपनी अर्थ विस्तारक वृत्ति का परिचय देता चलता है। कवि जीवन की जटिलता और क्षण-भंगुरता के साथ-साथ उसके सौंदर्य को बिम्बित करने के लिए पीपल के नोकदार पत्तों पर पड़ रही संध्या की धूप का सहारा लेता है और कहता है कि यह क्षणिक सुनहरी सौंदर्य घड़ी दो घड़ी बाद अंधेरे में डूब जाएगा। इस गीत के बिम्बों में क्रियात्मकता की अपेक्षा चमत्कार की वृत्ति चौंकाहट पैदा करती है।

जब रिश्ते-नाते गीत रहे हों, यौवन अनव्याहा हो, मन को दु:ख दाह रहा हो, जीवन निरर्थक-सा प्रतीत हो रहा हो और मिलन-क्षणों के लिए मन तरस रहा हो तो यही धूप निर्लज्ज निर्वसना हो कर सांपिन की तरह डंसती है।

कहीं यह धूप उसे मुग्धा-सी भी प्रतीत होती है और कवि सावन के बादल और मुग्धा धूप की परस्पर आंख मिचौनी को देखता है तो उसे लगता है कि बिजली का पोल उदास और निराश खड़ा है, जिससे अकेलापन काटे नहीं कटता, मन चंचल और व्याकुल हो उठता है। यहां कवि मन के भीतर की छटपटाहट और प्रकृति के इन अनेक कटे-कटे बिम्बों को परस्पर सटाते हुए आगे बढ़ता है। उसकी छटपटाहट, उदासी, निराशा और वियोगजन्य अकेलेपन की पीड़ा को बड़ी स्फीत गति से समेटती और नियोजित करती हुई अभिव्यक्ति अपनी चरमसीमा पर जा पहुंचती है।

कवि यौवन के मिलन-क्षणों के लिए तड़पता है, ओस नहाई सुबह उसे भूले क्षणों का स्मरण करा देती है, उसके अनभोगे सपने न फूलते हैं न मुरझाते हैं और न उसे गुम हुए दिन भूलते हैं न वे दोनों परस्पर मिल नहीं पाते हैं तो कवि असमंजस में फंस कर रह जाता है। यहां धूप (शर्मीला यौवन) की तपिश के अनुभूतिप्रवण बिम्ब सुन्दर हैं और भाव के चरमोत्कर्ष पर तीव्रगति से पहुंचने की ललक ने गीत के शिल्प-सौंदर्य को और अधिक बढ़ा दिया है, संरचना सुगढ़ है।

धूप के उपर्युक्त बिम्बों और सम्बद्ध गीतों में कवि ने शब्द-स्थिति और शब्द की सार्थकता को सूक्ष्मता से पहचाना और परखा है। ये शब्द-स्थितियां अर्थ का स्फोट तो करती ही हैं पाठक के मन में रोमांच भी पैदा करती हैं। परन्तु धूप के ये बिम्ब कवि की रोमांटिक दृष्टि के ही परिचायक हैं, रोमांटिकता के भी मात्र एक पक्ष-प्रणय के परिचायक!

भावबोध से जुड़ी आधुनिक मन: स्थितियों की अभिव्यक्ति के लिए भी कवि ने धूप के बिम्ब प्रस्तुत किए हैं, इस प्राकृतिक उपकरण के साथ उदासी, निराशा, ऊब आदि शब्दों को लगा कर भाव को सशक्त अभिव्यक्ति दी गई है। यहां अनेक शब्द प्रतीकार्थ लिए हुए हैं जैसे-जंगल चुप हैं, आंगन-द्वार ठिठकें हैं, आकाश बांझ जुलूसों के नारों से ऊबा, आक्रोश बंजर, उर्वरा धरती पर मातम और सड़ांध आदि। इस तरह प्रकृति और प्रतीक परस्पर मिल कर जिस बिम्ब को विकसित करते हैं, वे काफी टटके और सार्थक हैं।

परिवेशगत संघर्षहीनता और निष्क्रियता को झकझोरते हुए कवि जेठिया धूप को कोसता है-

"धूप-/ पापिनी बड़ी/ जेठिया/ कटते नहीं प्रहर/ नीम उदास, खड़ी मन मारे/ पत्ती-पत्ती ठहरी/ अंगिया खोल, पड़ी छाया में/ बंजारिन दोपहरी/ आता जाता नहीं एक भी रहज़न या रहबर" (पृ 51)

धूप यदि यौवन का प्रतीक है तो यौवन अभुक्त रह गया है, यदि संघर्षशक्ति का प्रतीक है तो वह बांझ आक्रोश बन कर रह गयी है जो परिवेश की निष्क्रियता और सन्नाटे को

तोड़ती नहीं। धूप टुकड़े-टुकड़े हो गई है जबकि यांत्रिकता टूटने वाली नहीं, जीवन भर अभावग्रस्त आदमी जीने के लिए विवश है।

उपर्युक्त सभी कविताओं और बिम्बों में 'धूप' शब्द का प्रतीकार्थ बदलता ही गया है। जो कवि भी प्रतीकार्थ विकासन की वृत्ति का परिचायक है।

प्रकृति को उपकरण के रूप में प्रयुक्त करते हुए कवि ने परम्पराभुक्त रूपकों, उपमाओं और परम्पराभुक्त बिम्बों का भी उपयोग किया है। ऋतु-बदलाव कवि की अनुभूति के लिए उद्दीपन के रूप में काम करता है। 'धूप' के अतिरिक्त पतझड़, बसंत, सावन आदि संज्ञाओं और ऋतुओं को भी कवि अपने गीतों में जगह देता है। पतझड़ उसे व्याकुल करता है फिर भी वसंतागमन की आशा वह छोड़ता नहीं। प्रकृति के चाक्षुष बिम्ब और ध्वनि बिम्ब देखें-

''ठूंठ होतीं फुनगियां गम्भीर/ नग्न होता, अर्द्धनग्न शरीर/ व्यर्थ सब संताप, मधुवातास-/ झुलायेगा भुजा भर,/ गुलमुहर झरने लगा है-/ सर-झर-झर''

प्रकृति की परिवर्तनशीलता के पूर्ण वृत की ओर संकेत करता हुआ कवि ढाढ़स बंधाता है और प्रकृति के साधारण रूप से भीतरी आलोड़न और आत्म मंथन के लिए उद्धीप्त वह उदासी से जूझने की प्रेरणा देता है।

जब वसंत की बयार चलती है, अमराइयों में कोयल कुहुकती है, वृन्तों में यौवन दहकने लगता है, सेमल झूमने लगते हैं, भ्रमरों का दल छेड़छाड़ के लिए निकल पड़ता है, सरसों के खेत लहराते हैं, लता पीपल के गले मिलती है, मौसम नशा पिये रहता है तो कवि के छन्द स्वत: फूट निकलते हैं। इन उपर्युक्त परम्पराभुक्त प्रस्तुतों के नियोजन के बाद कवि अल्हड़ ग्राम्यबाला की चंचलता को बिम्बित करता है तो मन में कई प्रकार की अनुभूतियां जागृत हो उठती हैं और जब उसकी संयोगाकांक्षा बलवती हो उठती है, कुंआरी उमंगों के फूल टटकने महकने लगते हैं, प्राकृतिक सौंदर्य में उल्लास, मस्ती, प्रणयाकांक्षा की प्रतीति होती है, मोह का नशा पीकर बावरी मौलसरी झूमती दिखती है और गांव का माहौल उल्लसित करता है तो सभी गिले-शिकवे भुलाकर वह प्रियालिंगन के लिए पुकार उठता है।

प्राकृतिक गंधों को पहचानता और मांसल अनुभूतियों का वायवीकरण करता हुआ कवि गद्यात्मक पंक्तियों में काव्यात्मक तरलता और भाव को कुशलतापूर्वक अनुस्यूत कर देता है। कवि को गन्धाते चीड़वन में प्रियतमा के मदिर-से स्पर्श, तन्वन्गी देह की रोमांचभरी सिहरन का और आशंकाग्रस्त-सी रह-रह कर कांप उठती प्रिया को दिए आश्वासनों का स्मरण हो आता है तो प्रकृति के उद्दीपन और प्रणयक्षणों के स्मरण से अभिभूत कवि विशेषणों के सहारे खूबसूरत बिम्ब खराद लेता है और इन बिम्बों में सटायी गई एकाध पंक्ति के कारण अचानक ही सारा गीत अर्थ की चमक से दीप्त हो उठता है।

वर्षा में भीगते प्रणयियों की अनुभूति और प्रियतमा की अलसायी, बोझिल तरलायित पलकें जब मुंदती खुलती हैं तो कवि सुमधुर ध्वनि बिम्बों को उकेरता है। यहां वह स्वर-संधान के लुभावने कौशल द्वारा प्राकृतिक-सान्निध्य के परिप्रेक्ष्य में प्रिया के रोमांचित सौंदर्य का अच्छा

चित्रण करता है। वह अनबोए सपनों का धान उगाना चाहता है और प्रेमपगे प्राणों की धड़कन सुनने की आकांक्षा को बिम्बित करता हुआ शब्दों की मसृणता से अजीब मिठास पैदा कर लेता है।

परन्तु स्मृतिजन्य ये अनुभूतियां जागृत होकर जब अनबुझी प्यास बनी रहती हैं तो मिलन-क्षणों में वह प्रियतमा को अनबोली नहीं रहने देना चाहता, उसकी चुप्पी उसे भली नहीं लगती। जब तक रूप की धूप जवान है, नयनों में अनदेखी बिजलियां हैं, देह-बदन चन्दन-कस्तूरी जैसा महकता है, मन-वचन में संजीवनी--सुधा है, वह चाहता है तब तक सपनों से नाता जुड़ा रहे। इस इच्छा के लिए वह प्रणयालिंगन और चुम्बन का आमन्त्रण देता है-

''आंचल की ओट करो आऊं/ आचमन के लिये होंठ फरके/ मौन ही सही, दो आमन्त्रण/ नीची-भर नज़रें ये करके/ मेरी सौगन्ध लाज छोड़ो/ मंजिल है दूर, मिली गली नहीं- ताल सरीखी चुप्पी भली नहीं।''

कवि रूप, रस, गन्ध और स्पर्श की मसृणता को बाखूबी पहचानता है परन्तु प्रिय-मिलन के क्षण उसे कम ही मिले हैं। अधिकतर उसकी आंख विरहजन्य पीड़ा से नम रही है, चाहे पलाश वन दहके, बबूल इतराये, कचनार सोंधे, हरसिंगार गदरायें उसे तो यह सारा प्राकृतिक सौंदर्य अधिकतर बेपेंदा लोटा-सा प्रतीत होता रहा है, मानो सभी ऋतुओं के झरने जम गए हों। मिलन के उसके सभी प्रयास और साधन किसी दुर्वासीय श्राप के कारण व्यर्थ हो गए हैं फिर भी मिलन-क्षणों की सिहरन, ठिठुरन, छेड़छाड़, अनस्पर्शे अधरों के चुम्बन और अलहड़ताजन्य अदाएं वह भुला नहीं पाया बल्कि प्रणयजन्य मोहकता और रूप-लावण्य के निखार को औचक और मुग्ध-सा देखता रहा है।

प्रकृति के परिप्रेक्ष्य और उसके आलम्बन, उद्दीपन, उपमा-उपमान आदि के प्रस्तुत विधान के द्वारा कवि ने प्रणयानुभूति के विविध रूपों और कामजन्य मनः स्थितियों का खूबसूरत चित्रण किया है। इन काव्य-पंक्तियों और काव्य-बिम्बों में अनुभूति और प्रकृति परस्पर घुलमिल गई है। रोमांटिक मानसिकता से सम्बद्ध होते हुए भी ये गीत अपनी भाव-प्रवणता और रागात्मक तरलता के कारण हिन्दी गीत साहित्य की महत्वपूर्ण सम्पदा कहे जा सकते हैं।

4.1.7.2 देशप्रेम कवि की देशभक्ति से सम्बद्ध कविताएं इनकी आंतरिक प्रेरणा से प्रसूत तो हैं, परन्तु तत्सम शब्दावली और विशेषणों के बोझ तले बुरी तरह दब गई हैं, काव्यगत तरलता की अपेक्षा चमत्कार वृत्ति और शब्दक्रीड़ा की वृत्ति कविता के लिए घातक हो उठी है।

कवि का रुझान भारतीय संस्कृति के स्वरूप के प्रस्तुतिकरण और गौरव गान की ओर रहा है, कर्मण्यवाद का पोषक कवि इसी को ईश्वर-आराधना और अर्चना मानता है और मानता है कि उत्तम भावना से कर्म करते हुए देश को समृद्धि और नव-सृजन के पथ पर ले चलें, इस पथ पर वह रुकना ही नहीं चाहता। वह मानता है कि भारत-भू पर सभी सम्पदाएं उपलब्ध हैं, धरती का सौंदर्य अमिट और अतुलनीय है।

कवि को भारतीय संस्कृति का उजास प्रिय है। वह अपनी इसी धारणा और कामना के कारण देश की उनति के लिए पूर्ण सजगता सहित लीन रहने का संकल्प करता है। प्रस्तुत पंक्तियों में निराला जी की कविता 'श्यामा के प्रति' की प्रतिध्वनि सुनी जा सकती है, परन्तु कवि की मौलिक और पवित्र भावना पर संदेह नहीं किया जा सकता-

"खेत-कारखाने-सीमा पर/ श्रम-स्वेद में नहा, यहां कर मैं भाग्यवासी, माता के स्वप्नों को साकार कर रहा/ मैं मां का शृंगार कर रहा। (पृ 54)"

4.1.7.3 जीवन-यांत्रिकता और रुग्ण मनः स्थितियों का चित्रण कवि ने जीवन और जगत में फैली घुटन, संत्रास, ऊब आदि को भी अभिव्यक्ति प्रदान की है। उसे लगता है कि लोग दोहरापन जी रहे हैं, भीतर से जंग खाए, भूखे-प्यासे हैं परन्तु दिखते हैं बौखलाए हुए। दोगलेपन के कारण इनकी वास्तविकता समझ में नहीं आती, ये मुख्यधारा से कटे हुए, टेढ़ी चालें चलते हैं।

"लोग, लोग कैसे हैं ? समझ नहीं आता। बेपरवा मनुआ है, मगर तिलमिलाता।

संग-संग सटे, मगर हटे हुए लोग। बड़े छटे हुए लोग" (पृ 40)

लोगों के स्वभाव में आई अजनबियत, छल, कपट और विसंगत दोगलेपन की वृत्ति पर व्यंग्य न करके कवि सीधे-सीधे चोट करता है। उसे लगता है मौलिकता का दावा करने वाले लोग मात्र उल्था कर रहे हैं, मानो सारी शर्म, हया घोल कर पी गए हैं, समाज को नयी दिशा और दृष्टि देने का दावा करने वाले बुद्धिजीवी भी किताबी रस्में ढो रहे हैं, अपमान का विष पीते हुए स्वयं को शिव जैसा महिमामण्डित कर रहे हैं, स्वार्थ के कारण उनके सभी मानदण्ड बदल जाते हैं। परस्पर सन्देह के कारण शब्द अर्थहीन हो गए हैं और इसी अर्थहीनता के कारण अब तो अनभोगा और अनलिखा ही सुंदर रह गया है। सन्देह की वृत्ति ने मनु-संतान को घातक जीवन-व्यवहार में ढाल दिया है, संदेह की वृत्ति के कारण आदमी का अस्तित्व और उसका नाम तक अर्थहीन हो रहा है, वह अपना परिचय खो बैठा है, रसभरी हवा नीरस हो गई है।

विडम्बना यह है कि व्यक्ति इस विडम्बन जीवन-स्थिति से बड़ा उपराम-सा हुआ समझौता करके रह जाता है, इसे बदलने की चेष्टा नहीं कर रहा और दुविधा की तीव्र धारा में डूबने के सिवा उसके पास कोई चारा ही नहीं रहा। कवि चतुर्दिक जीवन में संदेह, परायापन और धूल-धकक्ड़ ही देख रहा है, जीवन भूल-भुलैया हो गया है। जागते हुए भी सोये रहना, क्षणिकाएं बांचना और आंखों में सपनों का अंजन लगा लेना ही तो जीवन नहीं।

कवि जीवन-पथ की दुविधाओं और पीड़ाओं से घबराया हुआ शैशव की स्मृतियों में खोकर मां के अंक में लौटने की आकांक्षा करता है क्योंकि वहां यौवन के बंधन नहीं होंगे, वहां जीवन निर्बाध होगा। वह मां की गोद में जाना चाहता है क्योंकि उसका जीवन बबूल और पलाश का मिला जुला रूप ही रहा है।

परन्तु पलायन की यह स्थिति अधिक देर टिकती नहीं। माना, जीवन अभिशप्त है परन्तु रो-रो कर आपा खोने से बेहतर है क्षण दो क्षण ही सही जीने की चाह पाल लेना, थोड़ी-सी ही सही, सार्थकता संजो लेना कोई गुनाह नहीं। वस्तुत: इस विचार और स्थिति तक पहुंच कर कवि भूखी-प्यासी जन-चेतना को संघर्षशील होकर तख्त, ताज़ उड़ा देने के लिए आह्वान देता है और शांत, समतल, अचल सुख की अपेक्षा संघर्ष को ही जीवन मानने के लिए आह्वान देता है-

''जीवन क्या? संघर्ष रहित जो, जिसमें कोई नहीं झमेला। जीवन अभिशापित है तो क्या?''

कुल मिला कर 'निर्मल' विनोद की ये सार्थक और सशक्त कविताएं है।

4.1.8 अंतिम युद्ध की चाह बलनील देवम के सितम्बर 1977 में प्रकाशित कविता-संग्रह 'अन्तिम युद्ध की चाह' में 57 कविताएं संकलित हैं। जिन में 'आपातकाल की घोषणा' की स्थिति से पूर्व की भारतीय राजनीतिक स्थिति में जन्मी आर्थिक और सामाजिक जीवन-विसंगतियों का विरोध करके उनका लेखा-जोखा अभिव्यक्त किया गया है। कवि ने समूचे देश को खण्डित, ज्वालामुखी पर खड़ा, भयंकर अजदहे के मुंह के पास आ पहुंचा है महसूस किया है और माना है कि यहां अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता नहीं रही, व्यक्ति कोल्हु के बैल जैसा आंखों पर पट्टी बांध कर चलता रहने के लिए विवश है।

इस संग्रह की अधिकतर रचनाएं राजनीतिक जागृति और संघर्षोन्मुख चेतना को प्रतिध्वनित करती हैं और अपनी शक्ति-साहस के अनुसार व्यूह-छेदन की प्रेरणा देती हैं। मूल्यांकन देखें।

4.1.8.1 राजनीतिक जागरूकता और संघर्ष-चेतना कवि को प्रतीत होता है कि लोकतन्त्र की आड़ में शासन ने हर नागरिक को उसके लोकाधिकार का वध करके उसे आतंकित कर दिया है। आदमी सही ज़िंदगी जीने में असमर्थ, निरर्थकता-बोध से ग्रस्त है। ये भ्रष्ट सत्ताधारी जीवन, सृष्टि, क्रान्ति आदि के सूचक सूरज की मृत्यु चाहते हैं, इनकी संक्रामक चालों और कुकर्म ने देश को जीर्ण-शीर्ण कर दिया है और लोगों की मानसिकता पर अवसाद छा गया है क्योंकि यहां सत्य की जीभ खींच ली जाती है, सड़ांध भरी जेलों में अमानुषिक यातनाएं दी जाती हैं, निरन्तर संघातों से बुद्धितत्व को मिटा दिया जाता है, विदेशी मानसिकता वाले सत्ताधारी वर्ग ने बोलने का अधिकार छीन लिया है।

इसी स्थिति के विरोध में हर एक अंतस चिन्गारी बन चुका है जो इनकी नस-नस को चीर कर रख देगा, भ्रष्ट सत्ताधारियों के शरीर के चिथड़े उड़ा देगा। सत्तासीन से कवि चुनाव, वोट, बहस, भाषण, आश्वासन, शान्ति, 'गरीबी हटाओ समाजवाद लाओ' के नारे नहीं चाहता, मात्र रोटी चाहता है अन्यथा डरे-डरे से चेहरे जब रौद्ररूप धारण कर लेंगे, ढीली बांहें वज्र-सी हो जाएंगी तब क्या होगा? क्योंकि जब परवर्तनकामी जनचेतना सहने की सीमा को लांघती है तो विनाश ही होता है, यहां जनजीवन अभावग्रस्त है, विसंगत है, व्यक्ति के चेहरे पर खुशी दिखती है जबकि उसके भीतर दहकती पीड़ा है। राम के आदर्श, त्याग, बलिदान और मर्यादित जीवन को सत्तासीन वर्ग अपनी-अपनी आवश्यकताओं की कसौटी पर तोल रहा है और ये लोग 'इतिहास' बन जाना चाहते हैं।

परन्तु आक्रोश का व्यर्थ बह जाना उचित नहीं, समीचीन स्थिति का इंतजार करते हुए इसे संभालना जरूरी है, तपती रेत पर लोटते हुए चैतन्य को बनाए रखना जरूरी है, विवश जीवन आत्मघात के समान है, विस्फोटक आवाज़ का दम न टूटे, न ही सपने भूख पर न्योछावर हों, ऐसा घुटा-घुटा-सा स्वप्नहीन जीवन जीने वाला व्यक्ति आत्मपीड़ा को ही भोगता रह जाता है। वस्तुत: जनजीवन में कवि इसी तरह की विवशता को देखता रहा है और अनुभव करता है कि लोगों ने अपने गले आप दबा रखे हैं, वे अपनी आवाज़ को आप पी रहे हैं और इस विद्रोहहीन स्थिति के कारण उनकी दयनीय स्थिति अनदिखी और उपेक्षित रह जाती है। नाखूनों तक उतर आई पीड़ा के बावजूद आदमी दयनीय होकर रह गया है, भूखी-नंगी भटकन रोम-रोम को सुन्न कर जाती है। कवि जन-जन को इस स्थिति से उबरने के लिए आह्वान देता है।

जीने की आकांक्षा प्रेतों की तरह भटकी हुई है और नयी पीढ़ी दुविधा ग्रस्त है, इसे नेतृत्व नहीं मिल रहा। अत: अनिर्णय के कारण कभी-कभी इनके हाथों की रायफलें पीछे घूम जाती हैं। सत्ता वस्तुत: भ्रष्ट, भ्रमित युवा वर्ग के आक्रोश और विद्रोही तेवरों को लालच में फंसा कर स्खलित कर रही है।

कवि को प्रतीत होता है कि देश का युवा वर्ग मूर्छित सवार-सा घोड़े पर बैठा रहा है, वल्गा उसके हाथ से छिटक का आवारा भटक रही है। ऐसी स्थिति में घिसटते घिसटते बौना हो गए आदमी के अस्तित्व का अर्थ ही व्यर्थ हो गया है और वह वास्तविक लड़ाई को भूल कर अपने-आप से ही लड़ाई लड़ता रह गया है। विडम्बना यह कि सत्ता तो आदमी को अपने-आप में ही उलझाए रखती ही है, बल्कि उसे अपने-आप के खिलाफ लड़ने के लिए भी प्रेरित करती है और नैतिक-अनैतिक, इतिहास-परम्परा, धर्म-अधर्म आदि खोखले हो चुके शब्दों पर बहस कराके जन-जन को अपने-आप से उलझाए रखती है जबकि न इतिहास और परम्परा से सीखने की जरूरत है न अतीतजीवी होने की, जरूरत है तो वर्तमान स्थिति को पहचानने की।

अपने-आप से अपने ही भीतर की वैचारिक लड़ाई का कोई लाभ नहीं, न ही इसे क्रान्ति कहा जा सकता है, यह तो भ्रम मात्र है, जिसमें फंसा हुआ आदमी स्वयं को संघर्षशील और अस्तित्वशील मान रहा है जबकि वास्तविकता यह है कि नैतिक-अनैतिक की उलझन में फंसे-फंसे उसका आक्रोश स्खलित हो जाता है।

कवि लोकनायक जयप्रकाशनारायण के नेतृत्व में चले छात्र आंदोलन की ओर संकेत करता है। कवि कहता है कि घोड़े को विवश करके इतना दौड़ा दिया जाए कि यह थक कर गिर जाए, व्यवस्था चरमरा जाए क्योंकि इस चरमरा रही व्यवस्था में भौतिक और वैज्ञानिक उपलब्धियों या कृषि-विकास योजनाओं और आर्थिक कार्यक्रमों का साधारण आदमी को कोई लाभ नहीं मिल रहा बल्कि आदमी तो मनोलीन विचारणा में धकेल दिया जाता है। अभी समय सत्ताधारी वर्ग की मुट्ठियों में कैद है। जबकि विडम्बना में ग्रस्त जन-साधारण ने ही इसे बार-बार सत्ता सम्भालने का अवसर दिया है, मात्र इस आशा से कि इस बार यह उसके जीवन को सुधार देगा। इसी कारण उसने बार-बार धोखा खाया है जबकि नेता हर बार मौका समेट कर सत्तासीन होते ही अपनी शक्ति के प्रदर्शन या मात्र स्वाद के लिए साधारण-जन की पहचान छीनने में लग जाते

हैं।

कवि जानना चाहता है कि क्यों ये नेता विक्षुब्ध होकर खाइयां खोद रहे हैं? जन-साधारण के रास्ते में अवरोध पैदा कर रहे हैं? क्यों ये विद्रोही लेखन पर प्रतिबंध लगा रहे हैं? जबकि यह प्रतिबन्ध न तो सदैव कवि का भाग्य हो सकता है, न विद्रोही तेवर दबे ही रह सकते हैं उनका अन्याय अंतत: उन्हीं के सिर चढ़ कर बोलेगा। इसी आश्वस्ति भाव के अन्तर्गत कवि ऐसे नेता वर्ग को सचेत करता है कि वह विद्रोही की शक्ति, प्रेरणा, आशा और अपराजेय साहस के अजस्र स्रोत सूर्य का सामना नहीं कर सकेगा। टूटने, बिखरने, खोने या अस्तित्वहीन होने के बावजूद हार जाना इस विद्रोही सूर्य का गुण नहीं। एक न एक दिन इस सूरज का विस्फोट उन्हें दग्ध कर देगा। अत: नेता वर्ग को इस शाश्वत सत्य की अनदेखी नहीं करनी चाहिए।

आपातकाल की घोषणा से पूर्व और आपातकाल के दौरान की मौजूदा जीवन स्थितियों में जनमानस का स्थिति-चित्रण, उसके अवरोधक तत्वों और कुण्ठित संघर्षशक्ति आदि के चित्रण के अतिरिक्त कवि सत्तासीन वर्ग के दमनचक्र और उसकी तमाशायी वृत्ति पर भी चोटें करता है। कवि की इस तरह की कविताएं काफी सशक्त हैं। ऐसी कविताएं लिखने के उपरान्त कवि 1977 ई. के चुनाव के बाद के एक राजनीतिक दल-विशेष के विजयोल्लास का चित्रण करता है।

इन कविताओं में वह जनशक्ति को सजग रह कर संघर्षोन्मुख रहने की प्रेरणा देता है और सजग भी करता है कि जनशक्ति अपनी ही बनाई दीवारों में कैद न हो जाए, वह अपनी मौलिकता और स्वच्छन्दता का कभी भी हनन न होने दे। वह जनशक्ति की प्रशंसा करता है कि उसके एक ही प्रयास से चिरस्थायी प्रतीत होने वाला अंधकार छंट गया है, सूर्य की किरणों ने भी इस जनशक्ति का अभिनंदन किया है और अब देश का कण-कण नवयौवन से नाच उठा है, चेहरों पर प्रसन्नता उमड़ आई है।

कवि जन-नेताओं की प्रशंसा भी करता है क्योंकि उनके श्रम, त्याग, रक्त-बलिदान से विजयश्री का इतिहास लिखा गया है। परन्तु वह उन्हें सचेत भी करता है कि अपना नाम इतिहास में दर्ज कराने के लालच में नहीं फंसना चाहिए, इस लोभ के कारण उनकी यह विजय भी सबसे बड़ी हार बन जाएगी। कवि राष्ट्र-देवता के पुजारी लोकनायक जयप्रकाशनारायण की भी प्रशंसा करता है कि उसने आतंक का पारदर्शी शामियाना उखाड़ फेंका है। परन्तु अभी बहुत कुछ करना है, मांसपेशियों में अपार शक्ति का संचय करना है, गति में अवरोध नहीं आने देना है, देश अभी तक घायल है, बलिदानों को गिनाकर उन्हें उनका मूल्य नहीं मांगना, मूल्य-स्वरूप विश्व का ऐश्वर्य नहीं मांगना। कवि तत्कालीन सत्ताकामी नेताओं को सचेत करता है

और/ न ही तुम्हें सोचना है/ कि/ मैंने किया है बलिदान। (पृ० 74-75)

कवि की राजनीतिक चेतना इन कविताओं में काफी स्पष्ट और स्फूर्त है।

4.1.8.2 जीवन-यंत्रणाओं का विरोध कवि ने तत्कालीन जन-जीवन के अभावों, यंत्रणाओं, कुण्ठाओं और विसंगतिग्रस्त आदमी की पीड़ा को भी अभिव्यक्त किया है। उसे

लगता है कि आकांक्षाओं से बिंधा, व्यथाग्रस्त आदमी कभी कभार अपने-आप पर ही हंस पड़ता है, क्योंकि वह जी नहीं रहा मात्र सहक रहा है। विडम्बना यह भी है कि नैसर्गिक वृत्ति को त्याग कर वह प्रकृति के साथ बलात्कार करने के लिए उतारू हो उठा है, दिन प्रति-दिन असभ्य होता जा रहा है, पांव के नीचे की धरती की नैसर्गिकता को त्याग कर उसने प्रकृति के दोहन के लिए सभ्य-असभ्य सभी भेद मिटा दिए हैं।

कवि मानव और मानव-समाज की इस कुवृत्ति के कारण को पहचानने की कोशिश करता है परन्तु स्वयं को प्रश्नों की सलीबों पर क्षत-विक्षत होकर टंगा हुआ अनुभव करता है। उसका मन सहम कर रह गया है। कवि इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि आदमी के स्वार्थ के कारण उसके अभाव ही हैं। उसे कांटों से भरी जमीन ही मिली है, मशीनीकरण के यंत्रणाजन्य कांटों से भरी जमीन पर लोटने और घावों को सहलाने के सिवा कोई चारा नहीं है जबकि मशीनीकरण धीरे-धीरे आदमी को निरर्थक या फालतू चीज़ बनाए जा रहा है, इसी कारण कविता के बीच का आम आदमी भी आदमी न होकर मात्र शब्द-जाल-सा बन कर रह गया है, वह कविता का विषय नहीं बन पाया। परन्तु कवि मशीनीकरण को भाववादी दृष्टि से ही देख पाया है। उद्धरण देखें-

"इस मशीनीकरण युग ने/ मुझे इस कदर/ शिथिल बना दिया है कि/ मैं बदलाव की बात/ सोचने के बाद/ हो जाता हूं/ अस्तित्वहीन/ और/ कांटे, कांटे ही रहते हैं/ तथा घाव, घाव" (पृ 99)

4.1.8.3 सहज व्यक्तित्व के विकास की आकांक्षा अध्यात्मवादियों की तरह आम आदमी 'मैं' को खोजता हुआ अंतहीन भीतरी छटपटाहट और अव्यक्त मृगतृष्णा के कारण असहज हो गया है। कवि को उसकी असहजता का कारण नहीं मिल रहा, वह या तो अपनी आंतरिक उपलब्धियों की उपेक्षा के कारण असहज हो गया है या अकारण ही। और उसका यह 'मैं' विभु होते हुए ही निराकार है, प्रथम पुरुष की संज्ञा पाकर जो अहंभाव से जकड़ा अक्खड़ बना फिरता है, जबकि कहा नहीं जा सकता कि उसका मैं उसे मिलेगा भी या नहीं, फिर भी उसकी यह तलाश जीवन प्रयन्त चल रही है। विडम्बना यह है कि उसकी 'मैं' की खोज अर्थात् स्व-अन्वेषण मात्र अध्यात्मावादी होकर रह गई है। उसे इस छलावे से मुक्त होना होगा।

कवि मानता है कि आदमी के मन में ही सब कुछ है परन्तु इस तथ्य को जानता हुआ भी वह दौड़ता, भागता, उछलता, समुद्री लहरों की तरह उफ़नता रहता है और चाहत के छलावे, मृगतृष्णा की पिपासा में फंसा हुआ है। मृगतृष्णा से बच कर कवि उसे अपने भीतर के इस अन्धेरे, 'मैं' की अन्धवृत्ति से लड़ने की प्रेरणा देता है । भीतर की इस अन्धवृत्ति से लड़ने के लिए वह किसी तेज तर्रार नाख़ून, नुकीले दांत या बारूदी शस्त्र-अस्त्र की जरूरत नहीं मानता। जबकि इसी भीतरी अंधकार पर विजय पा कर ही आदमी अपने जीवन को सार्थक बना सकता है अन्यथा वह स्वार्थ और 'मैं' 'मैं' की अन्धवृत्ति से ग्रस्त पर-दोष ढूंढने में फंसा रह जाएगा।

कवि आदमी के व्यक्तित्व में घर कर आई हीनता की ग्रन्थि को भी व्यक्ति के सामाजिक व्यक्तित्व के लिए घातक मानता है। इसी कुण्ठा के कारण समाज की इकाई होते हुए भी वह समाज को गला-सड़ा कह कर गालियां देता है। कर्महीन होकर कायरता से ग्रस्त हो रहे इस आदमी का व्यक्तित्व विकसित नहीं हो पा रहा। 'मैं' की अपेक्षा कवि समाज-कल्याणार्थ समर्पित व्यक्तित्व को ही सार्थक मानता है। वह सार्थक जीवन के लिए अहंकार का विस्तार करके प्रेम और भाईचारा की भावना के विस्तार को महत्व देता है क्योंकि बबूल के वृक्ष भी प्रेम के वटवृक्ष में नासूर पैदा करने में असमर्थ होने के कारण आत्मसमर्पण कर देते हैं। अत: कवि चाहता है कि जन-जन की मंगल कामना को कवि कविता में बुन ले क्योंकि फिलहाल कविता सन्नाटा बुनने के समान ही है। कुल मिलाकर कवि आधुनिक व्यक्ति की सारी यंत्रणा, निराशा, विसंगति और ऊब का कारण उसकी अन्धमनोवृत्तियों को मानता है और वह अध्यात्मजन्य अंधवृत्तियों आदि से मुक्त होकर आत्म-विस्तार करके जीवन को सार्थक बनाने की प्रेरणा देता है। एक उद्धरण देखें-

"आओ सखे!/ हम तुम दोनों/ बन जाएं/ एक ऐसी सुगंध-/ जिसकी महक/ युग-युग तक महकती रहे/ हर चेतन के अन्त: करण में-/ औ सृष्टि का अणु-अणु/ विमोहित हो जाए जिससे,/ एक ऐसी ही सुगन्ध" (वृ 81)

4.1.8.4 देशज समस्याओं का चित्रण कवि देश की कुछ अन्य समस्याओं के प्रति भी अपनी चिंता व्यक्त करता है। वह अपने मां-बाप के प्रति आधुनिक संतानों के व्यवहार से दुखी है और बढ़ रही आबादी के प्रति भी जनता को सचेत करता है कि इस भयंकर समस्या को समझते हुए आंखें खोल कर सोच समझ कर जिएं।

कवि भारत भूमि को महान संस्कृति और देवी-देवताओं की क्रीड़ा स्थली मानता है और इसे वैभव की पराकाष्ठा पर पहुंचाना चाहता है। जबकि अभी भी देश पर अनेक प्रकार की समस्याओं के बादल छाये हुए हैं।

4.1.8.5 प्रणयानुभूति का स्वरूप-विकास इस संग्रह में कुछ कविताएं प्रणयानुभूति से भी सम्बंधित हैं। कवि की धारणा है कि प्रेमी-प्रेमिका की परस्पर की आत्म-गंध से भरी हवाएं जीवन को सुखद बनाती हैं, अन्यथा जीवन निरर्थक होकर रहेगा। दोनों की आत्म-गंधें आंगन में मचलती, बहकती, गुनगुनाती रहें तो जीवन सुखद होगा। प्रियतमा की शुभ्र बांहों, करांगुलियों, अधखुले नयन पटों, भूरी आंखों के समन्दर, अधर कोरों का थरथराना तथा वक्षस्थल में दहकती, धधकती, प्यार की आंच का आभास भी गन्ध भरी हवाओं में मिश्रित हो तो जीवन के सभी स्वाद जान लिए जा सकते हैं।

प्रेमिका से उपहार-स्वरूप मिली कलम से लिखे शब्द को कवि साधारण शब्द नहीं मानता, इन शब्दों में उसे प्रियतमा की मुस्कराहटों, अधखुली पलकों के सुखद इतिहास का आभास मिलेगा और इस कलम से रचे, बुने, कहे गए शब्दों में 'मैं' और 'तुम' आदि दोनों के पावन मिलन की गन्ध होगी। प्रियतमा की प्रतीक्षा में वह सोच रहा है कि मद-मत्त होकर चन्द-

किरणें प्रेमिका के चन्द्र-गात से लिपट लिपट जाएंगी, चूमेंगी, अभ्यर्थना करेंगी। परन्तु वह आई ही नहीं क्योंकि उसके आने का विश्वास बरगद की तरह खड़ा रहा है और चन्द्र-किरणें सिसक-सिसक कर लौटती रही हैं। जिन्हें उसकी प्रतीक्षा के कारण उसने भोगा तक नहीं–

"और/उनका स्वाद/ मुझ से कभी भी/ चखा नहीं गया/ उनका कुंवारापन अक्षत रहे/ इसलिए/ कभी नहीं उंडेला उन्हें/ अपने भीतर" (पृ 127)

विरह के इन क्षणों में कवि चाहता है कि प्रेमिका आए और रेशे-रेशे को टटोल कर आनन्द-लहरियों का वरण करे क्योंकि वह अंधे जंगलों में खो गया है और तृष्णा उसे उच्च शिखरों को पाने के लिए उकसाती रही है और पांवों के नीचे खड़खड़ाते हुए पत्ते उसे आंशिक अनुभूति ही दे पाए हैं।

अंततः वह इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि आत्मबद्ध अहं और अपूर्णता ही प्रणय-सम्बंधों में तनाव पैदा करते हैं। हम चाहते तो यह हैं कि अपना रेशा-रेशा सौंप दें और उसका रेशा-रेशा अपनाकर परस्पर एकाकार हो जाएं परन्तु यह चाहत प्रायः अंधे तपते रेगिस्तान में भटक जाती है और हम एक बूंद सुख भी ले दे नहीं पाते, सर्वस्व समर्पण का मात्र भ्रम पाले रहते हैं, हमारे परस्पर के सारे समझौते बेकार चले जाते हैं चाहे भीतर ही भीतर हम एक दूसरे के प्रति कितने भी आर्द्र क्यों न रहें। स्पष्ट है कवि प्रणय को जरूरी मानता है परन्तु अहं से मुक्त होकर किया गया समर्पण ही सुखद हो सकता है। कवि स्वच्छन्द अर्थात् रोमांटिक प्रेम की अपेक्षा दाम्पत्य प्रणय को ही महत्व दे रहा है और उसी की अभिव्यक्ति कर रहा है।

4.1.9 सेतुओं की खोज डॉ. ओमप्रकाश गुप्त के 1978 ई में प्रकाशित काव्य-संग्रह 'सेतुओं की खोज' में 38 कविताएं संकलित हैं, जिनमें भावगत तरलता की अपेक्षा जीवन की विसंगतियों को परस्पर सटाकर बौद्धिक चिंतना द्वारा संगति ढूंढने का यत्न किया गया है। इन कविताओं में अराजक व्यवस्था के कारण पैदा हो रहे अजनबीपन और मरणधर्मा अंधवृत्तियों से बाहर निकल आने की बलवती आकांक्षा शब्द पाती है। कुछ कविताओं में दाम्पत्य जीवन से जुड़ी प्रणयानुभूति का चित्रण भी हुआ है परन्तु है अत्यल्प ही। इन कविताओं का मूल्यांकन प्रस्तुत है।

4.1.9.1 विडम्बनात्मक जीवन-स्थितियों का चित्रण कवि महसूस करता है कि कोई उसके अंगों को प्यार से चापता नहीं, न निहारता है, बहोरों जैसे मीनारों पर आकर रुक गई हैं, स्थिति यह भी है कि दो दिन के लिए प्रियतमा कहीं चली जाती है तो वह कायर-सा रो पड़ता है, क्षणिक विरह तक सहन नहीं कर पाता, हर चीज़ को छूता हुआ प्रियतमा के परस को तलाशता है, सारे बिम्ब खो जाते हैं, मन का खालीपन असह्य हो जाता है, उसके मन में धीरज का बांध वर्षा की बूंदों के संचर रहे पानी के कारण टूट-टूट जा रहा है। मिलन-क्षणों के प्रति विश्वास टूट रहा हो तो उम्मीद का एक क्षण भी महत्वपूर्ण हो जाता है।

इन कविताओं में प्रणयानुभूति की अभिव्यक्ति पूर्ण भाव-चक्र के रूप में नहीं बल्कि भाव-दीप्ति के रूप में हुई है, भाव-चित्रों का क्रम टूट-टूट जुड़ता है और उलझी आधुनिक

मानसिकता का द्योतक बन गया है, रूप-सौंदर्य की छोटी-छोटी झलकियों के साथ गृहस्थ जीवन की विवशता और एकनिष्ठ निर्भरता का अच्छा चित्रण हुआ है।

4.1.9.2. सुखद अतीत का स्मरण भारत विभाजन से पैदा हुए सामाजिक विघटन की पीड़ा को कवि ने बचपन में भोगा है। झंग के शरणार्थी के रूप में उसने अपनी मिट्टी के प्रति लगाव और जड़ से उखड़ने की निविड़ पीड़ा को करुणापरक बिम्बों में अभिव्यक्ति प्रदान की है। उसे लगता है कि पीछे छूट गई अपनी मिट्टी से उठती सोंधी गन्ध कुछ और ही थी, धरती की बिछलाहट कुछ और ही थी, मेंढकों की टरटराहट का शोर भी कुछ और ही था। इस मनःस्थिति में उसे बार-बार उजड़ने वाला यह घर अपना घर नहीं लगता। जड़ से उखड़ने की पीड़ा से ग्रस्त कवि नये रागबन्ध को जोड़ रहा है उसको कभी न टूटने देने का संकल्प करता है-

"मगर आज/ मैं दादा की तरह सपने नहीं देखूंगा/ इस कली को/ किसी मन्दिर में नहीं चढ़ाऊंगा/ क्योंकि/ किराए का यह कमरा मुझसे छूट जाए,/ यह मेरे लिए असह्य है।" (पृ० 43)

इन कविताओं में कवि-हृदय की आर्द्रता पूर्ण संयम सहित अभिव्यक्त हुई है, कोई झूठा आक्रोश या आवेश यहां नहीं है।

4.1.9.3 जीवन-यंत्रणाएं और राजनीतिक भटकाव स्वतंत्रतापूर्व की जीवन-स्थितियों में स्वातंत्र्योत्तर भारतवर्ष में भी कोई विशेष बदलाव नहीं आया है, लोगों के सुखद स्वप्न पूर्ण नहीं हुए बल्कि चतुर्दिक टूटन और बिखराव बढ़ गया है। इस मोहभंग को कवि ने विरोधी जीवन स्थितियों को परस्पर सटा कर अनुभूति और विचार के बीच संतुलन स्थापित करने वाली रचना -प्रक्रिया के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। बसंत आया है परन्तु शायद बहारों को जंग लग गया है, नकली उमंग, नकली मुखौटों पर वैसी ही है जैसे बसंत से पहले थी, अधखिले गुलाब प्रत्येक सवाल के गलत जवाब जैसे प्रतीत होते हैं, चतुर्दिक टूटन और मिथ्याभास ही है, जनता मात्र स्वप्न ही देख पा रही है। जड़ता, ऊब, अनास्था के विष को आंख मूंद कर पीते रहना, या पीपल के पत्तों की तरह फड़फड़ा कर खामोश हो जाना या विधाता की क्रूरता से हार कर माथा झुका लेना या नींव चटख गई दीवार की तरह बोझ उठा देने से इन्कार कर देना आदि पंक्तियां विसंगत जीवन-स्थिति का चित्रण तो हो सकती हैं परन्तु यह सब समस्या का हल नहीं, युग संचित आस्थाएं और विश्वास टूट भी जाएं तो आकाश की ओर देखना ही छोड़ देना श्रेयस्कर नहीं बल्कि संघर्षोन्मुख कर्म-प्रेरणा ही कवि-कर्म का लक्ष्य रहना चाहिए।

कवि को लगता है कि जो स्वातंत्र्योत्तर नया युग पैदा हुआ है वह कोख से ही टेढ़ा है, गगन में शान्ति के नारे गूंज रहे हैं, गांधी, ईसा, बुद्ध के नाम और बुत ऊंचे दामों पर बिक रहे हैं। परन्तु आदमी भीतर ही भीतर टूटता जा रहा है शील, सदाचार चुप्पी साधे पड़ा रह गया है। पुराना दकियानूसी युग पीछे छूट रहा है और नया मुर्दा, मूल्यहीन युग सामने आ खड़ा हुआ है। हमने इतिहास से कुछ नहीं सीखा बल्कि उसके स्वर्णिम पन्ने फाड़ कर किश्तियां बना ली हैं। जीवन की सच्चाइयों से विमुख होकर हम विदेशी सहायता पर टिके रह रहे हैं। कर्म की अपेक्षा दिखावे के लिए ही हम अपने कंधों पर डांडें रखे रहे हैं और बैठे-बैठे ही थक गए हैं। कवि

जनशक्ति की विरोधी सत्ता और सत्ताधारियों के षड्यंत्र को पहचानने लगता है तो उसे लगता है कि प्रश्नों, समस्याओं को तौला जाने लगा है परन्तु वस्तु-स्थिति में अभी परिवर्तन नहीं आया। अभी सारी भीड़ दहलीज़ पर आकर ही रुक गई है और खिड़कियों के भीतर से स्थिति को जस की तस बनाए रखने के षड्यंत्र की आवाज़ वैसे ही आ रही है। किसी बैताल के परामर्श से किसी विक्रमादित्य (सत्ताधारी या व्यवस्था) ने देश की जन-शक्ति का सिरोच्छेदन कर दिया है, जनशक्ति की बुद्धि, सोच-समझ की शक्ति को कुण्ठित कर दिया है और सोच-विचारहीन इस सिरकटे कबन्ध जैसी जनशक्ति की सभी योजनाएं फुटपाथों द्वारा लील ली जाती रही हैं। कवि जनशक्ति की पलायन-वृत्ति का कारण व्यवस्था अर्थात् सत्ताधारी वर्ग को मानता है।

गुरु, कवि, नेता आदि सभी बुद्धिजीवी जनशक्ति को भरमाए रखने वाली व्यवस्था के पुर्जे हैं जो षड्यंत्र में लगे रहते हैं और पलायनवृत्ति को बनाए रखना चाहते हैं। यहां व्यवस्था के स्वरूप-चित्रण में कवि ने लोक-साहित्य की अनुषंग तांत्रिक-क्रियाओं का अच्छा उपयोग किया है, कहीं-कहीं तांत्रिक चमत्कार काव्य-पंक्तियों में दीप्त हो उठते.हैं। सत्ता और जनशक्ति के बीच के रिश्ते संदेह के रिश्ते हैं, व्यवस्था के पेचों को लोग पहचान ही नहीं पाते, उन पर चोट भी नहीं कर पाते, व्यवस्था मायावी दैत्य है जो पकड़ में आने से पहले ही अपना खेमा उठा कर लुप्त हो जाता है। यह व्यवस्था धर्म बैल जैसी भी है, युवा पीढ़ी इस बैल के प्रति लापरवाह है, बच्चे इससे डरते हैं जबकि बड़े बूढ़े पुराने संस्कारों के कारण इसे पूज्य समझते हैं। अत: अब स्थिति यह है कि अपने बैलपन के नशे में यह चौराहों में सींग अड़ाता फिरता है, जिससे रास्ते अवरुद्ध हो जाते हैं।

सत्ताधारी आश्वस्त भी है कि उसकी अटारी इतनी ऊंची है कि वनैली हवाएं उस तक नहीं पहुंच पाएंगी। स्पष्ट है कि जनशक्ति सिरकटे कबन्ध की तरह भटकने के लिए विवश है, उसकी व्यथा-कथा अनसुनी, अनदिखी रह गई है। विडम्बना यह भी है कि जनशक्ति का बिका हुआ-सा पक्ष भी कवि का रास्ता रोक लेता है और कवि इस कबन्ध के कारण मायावी दैत्य तक पहुंच ही नहीं पाता तो चोट कहां करे?

4.1.9.4 संघर्ष-चेतना का विकास कवि अंतत: जन-शक्ति के प्रति ही आश्वस्त होता है क्योंकि वह समझने लगता है कि मौजूदा जीवन स्थितियों को दूर करने में नेता असमर्थ हैं, उनके सारे दावे झूठे पड़ गए हैं और वही दावेदार जो 'अनहलक' की आवाज़ लगाते थे अब गिलौरियां बेचने के गीत गाते फिरते हैं, इनकी निरर्थकता पहचान कर कवि जनशक्ति के गतिरोधों को पहचानने का यत्न करता है कि क्यों हमारे हिस्से का आलोक कोई अन्य पी जाता रहा है? कवि इस तरह के अनेक प्रश्न उछालता है परन्तु क्यों का हल नहीं ढूंढता, न ही सत्ता, व्यवस्था या नेता पर चोट करता है न ही जनशक्ति के अवरोधक तत्वों की पहचान करा पाता है। हां, जब वह जनशक्ति के प्रति आश्वस्त होता है तो 1977 ई. के राष्ट्रीय चुनाव को अपने ढंग-विशेष से रेखांकित करने लगता है-

''सहसा हवाओं ने दिशा बदली/ गुम्बद से एक आवाज़ उभरी। श्रमिक ने आराम नहीं/ काम मांगा/ किसान ने/ दुगुने जोश से/ हल का हत्था थामा/ भीड़ ने पहचान ली अपनी सत्ता/

और कहा–/ अजनबी हवाओं के पास/ अब नहीं तुरूप का पत्ता'' (पृ० 19)

कवि को लगता है कि चिनारों की आग, चंदन की बयार तथा धूप के गीत अब उसके साथ हैं, नवक्रान्ति के सूत्रधार भी तो जनशक्ति की कर्मण्यता को देख कर आशान्वित हो गए हैं, इन कविताओं में कवि ने द्वन्द्व की जाली बुनने का भरसक यत्न किया है और मोहभंग की स्थिति के विभन्नि रूपों को प्रस्तुत किया है। साथ ही साथ उसने मूल्य-विघटन, चारित्रिक-स्खलन, व्यवस्था-रूप और व्यक्ति के विचारहीन भावुकताजन्य आक्रोश की निरर्थकता को स्पष्ट किया है, व्यवस्था के मायावी रूप का अच्छा उद्‌घाटन किया है।

4.1.9.5 अजनबियत और मानव-मूल्यों का ह्रास कवि ने ऊब, घुटन, संत्रास, अजनबीपन और नगरीकरण के कारण पैदा होने वाली बेकारी और उससे पैदा हुई कुण्ठाओं, आवेश और अन्य मरणधर्मा मनोस्थितियों को भी अभिव्यक्ति प्रदान की है। ऊबजन्य निरर्थकता और निरर्थकताजन्य ऊब के कारण निकट बैठी प्रियतमा को छूने से रोमांच तक नहीं होता, हर मांसल स्पर्श भुरभुरा-सा लगता है, हर विश्वास ठगा जा रहा है, जीवन यांत्रिक-सा होकर रह गया है, लज्जा, रोमांच, पहचान, स्पर्श, चुभन और अस्तित्व के एहसास मर गए हैं।

कवि को अजनबियत सालती है जो हमारे परिवेश, सभ्यता, व्यवस्था और संवेदना तक में घर कर गई है। धर्म बिजूखा बन गया है, सारा ढर्रा बदल गया है, रंग-बेरंग हो गया है। हवा में विष भरी अमराइयां तैरती हैं, मन्दिरों में लूट मची हुई है और आदमी खतरा टल जाने की प्रतीक्षा में खोया हुआ है। यह स्थिति बद से बदतर होती जाएगी, एम्बुलेंस कारों में बलात्कार होने लगेंगे, सूरज कचरे से भरी नदियों में नहाकर बदबूदार हो जाएगा। कवि इस तरह की अनेक त्रासजन्य कल्पनाएं करता चलता है क्योंकि आने वाले कल को वह अधिक से अधिक काला महसूस कर रहा है। एक उद्धरण देखें–

''सभी लताएं/आत्म-केन्द्रित होकर/विरोधी सैक्स की जरूरत नकार देंगी/ तितलियां/ प्रसव की पीड़ा के बिना ही/क्षण भर इतरा कर मर जाएंगी। और फूलों के रंग/उनका नंगापन ढकने से/इनकार कर देंगे।'' (पृ० 52-53)

इन सभी त्रासद अनुभूतियों का कारण अजनबीपन ही है। कवि यह भी मानता है कि नगरीकरण और औद्योगीकरण के कारण हमारे लोक जीवन में भी अवरोध आ रहा है, विकास के सोपानों पर चढ़ते हुए आदमी की नैसर्गिक संवेदनाएं मर रही हैं, मनोवृत्तियां सहज, नैसर्गिक रूप में अभिव्यक्त नहीं हो रही हैं–

''लोक गीत के/पके नींबुओं की उठान/ अपना अनछुआ सौंदर्य/ कैसे बचा लेती है। मैं नहीं जानता।'' (पृ० 47-48)

लोग स्वयं को आवरणों में ढांप रहे हैं, लोग कुण्ठित हो रहे हैं, नैसर्गिकवृत्ति को अभिव्यक्त नहीं होने देते। कवि कुण्ठामुक्त कविता नहीं रच पाता, कुण्ठाओं की नग्नता को उघाड़ नहीं पाता और वही विद्रूप जीवन अभिव्यक्त करने के लिए बेचैन है, जिसे वह जी रहा है। वह स्वयं को संदर्भों से कटा हुआ महसूस करता है, क्योंकि हर कोई अजनबी अनजान हो

गया है, सरलता खो गई है, फबन लुट गई है, नग्नता नाचती है और सभी की व्यथा-कथा अनसुनी, अनकही रह गई है।

इस सारे अनुभूतिगत और विचारगत आलोड़न के बावजूद कवि जीवन की सार्थकता को पूरी तरह नकार भी नहीं पाता। मशीनी गड़गड़ाहट में भी इसे कुछ ऐसे क्षण मिल जाते हैं जिसमें किसी की आंखें नज़र आती हैं और इन क्षणों के सहारे कितनी ही लम्बी घड़ियां अनायास गुज़र जाती हैं, पसीने से पिघलती ज़िंदगी अचानक फूल की पांखुरी बन जाती है और खम्बे पर बुझा हुआ लैंप आंख मार कर मुस्करा देता है।

फिर फरवरी के दिनों की बदल रही रुत उसे रोमांचित करती है। अंगड़ाते यौवन में नई अभिलाषा जन्म लेती है, गूलरों पर कागों की कांव कांव है और अमराइयों में कोयल कूकती है। अब जीवन इतिहास के नए मोड़ पर चल निकला है। और उसने स्वयं भी अपने दाएं हाथ की उंगलियों से बाएं हाथ की उंगलियों को छुआ है और अजनबी हो चुके स्पर्श से सांत्वना पाई है। अस्तित्व की इस अनुभूति से वह गंधों पर एकाधिकार पाने का लालची हो उठता है और इस गन्ध की ओर बढ़ी अजनबी दृष्टि का तिरस्कार करता है।

इस तरह कवि प्रणय के धरातल पर स्वयं को अजनबीपन से मुक्त कर लेता है, सारी यांत्रिकता भूल जाता है, हृदय का उल्लास उसे गृहस्थ जीवन के लिए सुविधा जुटाने के लिए कर्मरत कर देता है और कर्मलीन व्यक्ति ऊब आदि से मुक्त हो जाता है। परन्तु यह मुक्ति व्यक्तिगत मुक्ति है जबकि उसके परिवेश में हर आदमी टूट रहा है, टूटन का कारण है बेकारी, फूहड़ता और भाई भतीजावाद, जिस के कारण अन्याय हो रहा है और इस अन्याय से उपजी हैं- मानसिक पीड़ाएं। विडम्बना यह है कि युवा पीढ़ी के पास व्यर्थ के इन्ट्रव्यु और निरर्थक हड़तालों के सिवा कोई रचनात्मक काम नहीं रह गया, और इन लोगों की बौखलाहट का हाल यह है कि ये हर भले आदमी को चोर समझ लेते हैं। जबकि इन किशोर राजहंसों के पंखों पर झर रही धूप जैसी भी है अपनी है, उसे अपनाकर सही दिशा देनी होगी और इनके प्रति जवाबदेह होना होगा।

कवि हरेक व्यक्ति को द्वीप समझता है और जीवन को महासागर। प्राचीन सांस्कृतिक अवशेषों को वह इन्हें परस्पर जोड़ने वाले सेतु मानता है। कवि रूपक का विकास करके कहता है कि वसंत में जब-जब पंखुड़ियों की मुस्कान बिखरी है, पवन ने इन टापुओं के पराग को परस्पर एक दूसरे के मुख पर पोता है और मानव-अन्तर ने अकुला कर घटाएं छू ली हैं। कवि इन मानव टापुओं को परस्पर जोड़ने और इनके अजनबीपन को दूर करने वाले सेतुओं की तलाश करने के लिए आह्वान देता है

कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि कवि ने अजनबीपन के कारणों की खोज नहीं की, मात्र जीवन-स्थितियों को उभारा है और जन-जीवन के प्रति सजगता को पैदा करने का यत्न किया है। बौद्धिकताजन्य रस की दृष्टि से ये सार्थक कविताएं हैं।

4.1.10 सप्तपदी देवरत्न शास्त्री के मई 1978 ई० में प्रकाशित काव्य-संग्रह 'सप्तपदी'

में 'सात पदों' में विभाजित 33 रचनाएं हैं। अधिकतर रचनाएं छन्दोबद्ध हैं, प्रस्तुत विधान परम्पराभुक्त है, भावबोध आधुनिकताजन्य न होकर उत्तरछायावादी प्रगतिवाद वाले तेवर लिए हुए है। प्रभु-भक्ति, वीरता, अतीत-स्मरण, देश का नवनिर्माण, प्राकृतिक सत्य आदि के परिवेश में मानव जीवन की व्याख्या की गई है, शृंगारवृत्ति और प्रणयानुभूति के साथ-साथ कवि सामाजिक विसंगतियों का परिचय देता है । इन कविताओं का विवेचन प्रस्तुत है।

4.1.10.1. अलौकिक के प्रति जिज्ञासा प्रथम पद 'विभु' में कवि कहता है कि अलौकिक सत्ता ही सृष्टि-सर्जक है, आत्मा उसी की अनुचर है, मानव-हृदय में अलौकिक सत्ता ही भाव-जागृत करती है, इसी के निर्देश से सब कुछ क्रियमान है, यही सत्ता मानव-मात्र को बंधनग्रस्त करती है और यही उसे बंधनमुक्त भी करती है, इसी के निर्देशानुसार कर्मों के फल के रूप में मानव जन्म धारण करता है। आत्मा कभी स्वच्छ जल है, कभी मलिन कीचड़ है, कभी धरती से लिपटता है, कभी गगन को छूता है, कभी मुखर होकर भी गौण रह जाता है। मिट्टी का-सा यह अस्तित्व प्रभु-अनुकम्पा से ही मिलता है। अद्वैत अलौकिक सत्ता आत्मा को अपने से अलग कर द्वैत भाव को पैदा करती है। आत्मा परमात्मा है तो अभेद परन्तु संसृति के कारण उसमें भेद का भाव पैदा होता है।

इन कविताओं में आत्मा और परमात्मा के प्रति चिंतन परम्परागत ही है, असीम में ससीम की कल्पना करके कवि ने प्रभु के प्रति अपने उद्‌गारों की अच्छी अभिव्यक्ति की है।

4.1.10.2 देश-प्रेम और जन-कल्याण की भावना द्वितीय पद 'उद्‌बोधन' की कविताओं का मूल भाव वीरता का है। यहां कवि ने देश की सीमाओं की रक्षा, जातीय मान-सम्मान और स्वतंत्रता की रक्षा के लिए सजग रहने का आह्वान किया है। कवि युवा शक्ति के प्रति आश्वस्त है परन्तु उसे सचेत सजग रखना चाहता है। यहां कवि वीरता का संस्कार ही जगा रहा है, क्रिया के प्रति उतना सजग नहीं, युद्ध का जोश दिलाता है परन्तु जन शक्ति के अस्त्र-शस्त्र भाला-तलवार ही हैं जो टैंक तोपों के समक्ष अप्रासंगिक ही हैं।

जोश के दूसरे किनारे पर पहुंच कर कवि देश के नव निर्माण की प्रेरणा भी देता है। धैर्य, गहनता, मर्यादा, तेज, गुरु-गर्जन, मधुरता, स्नेह आदि गुणों का जन-जन में संचार करके देश द्रोहियों का नाश कर देना चाहता है। स्नेहविहीना धरती पर कटुता, नीरसता, शुष्कता, क्रूरता और विनाश की कुवृत्तियों ने जीवन में विसंगतियां पैदा कर दी हैं, कवि को लगता है कि स्नेहहीन जीवन में न दृढ़ता रहती है न मधुरता बल्कि शुष्क परस तन-मन को दग्ध करते हैं।

इन कविताओं का प्रस्तुत विधान परम्पराभुक्त है। परम्पराभुक्त मुहावरों, काव्य-रूढ़ियों, लोकोक्तियों का अच्छा उपयोग हुआ है परन्तु कहीं-कहीं पदों में परस्पर अन्तर्विरोध भी पैदा हुए हैं।

4.1.10.3 अतीत स्मरण तृतीय पद 'अतीत' में कवि ने भारत के गौरवमय अतीत का स्मरण किया है। कवि का स्वर उद्‌बोधन परक है। असद् पर सद् की विजय कविताओं का मूल कथ्य है। प्रजा वात्सल्य, साम्प्रदायिक प्रेम और एकता का भाव पैदा करने के लिए कवि ने

अतीत काल के चर्चित सभी शासकों-महात्माओं के लोकरंजक गुण और भारतीय मूल्य-परम्परा को प्रधानमंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू में समाहित मान लिया है। कवि भारतीय संस्कृति के सद्गुणों का समाहार उन्हीं में देखता है और जनोद्बोधन करता है कि उन्हीं के आदेशों पर चलें, तभी हमारी वंदना सफल होगी। नेहरू जी यहां मात्र व्यक्ति नहीं, प्रतीक-पुरुष हैं, अतः व्यक्ति पूजा के आक्षेप का प्रश्न ही नहीं उठता।

'महाभारत' कविता में महाभारतकालीन जनमानस की दुविधाओं, आकांक्षाओं और अवरोधों तथा असद् वृत्तियों का चित्रण किया गया है और दीन-हीन भूखे-प्यासे जन को अन्याय, हिंसा, अत्याचार के दनुजों के चंगुल में फंसा बताया गया है, जिसे मुक्त करने के लिए कृष्णावतार होता है। अंततः कवि इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि आधुनिक भारतीय जनजीवन में पुनः महाभारतकालीन विसंगतियां आ गई हैं। राजसत्ता शकुनि, दुर्योधन, दुशासन आदि भोग-लोलुप क्रूर और अन्य का स्वत्व छीन लेने वाली अंधवृत्तियों के कारण बेहया होकर अर्द्धनग्न नाच नाच रही है। इस विसंगत स्थिति के बावजूद कवि आश्वस्त है कि जन-आकांक्षा अवरुद्ध नहीं रहेगी, जन-शक्ति पुनः जागृत होगी, जीवन का मोह छोड़ कर वीर युवक पुनः जूझ पड़ेंगे।

4.1.10.4 स्वतंत्र्य-संघर्ष और नवनिर्माण की भावना चतुर्थ पद 'वसुधा' की कविताओं में कवि ने स्वातंत्र्य-संघर्ष के दौरान दी गई कुरबानियों का स्मरण करते हुए कहा है कि आज़ादी प्राप्त करने के बाद भी जन-आकांक्षाएं पूर्ण नहीं हुईं, अतीत वाली सुख-समृद्धि नहीं लौटी जबकि स्वातंत्र्योपरान्त जन-गण के मन में नवजीवन स्पंदित हो उठा है, उल्लास और आनन्द छा रहा है। कवि की धारणा है कि इसी धरती पर सभी सुख-सुविधा उपलब्ध हो सकती हैं, किसी और लोक की कल्पना करना व्यर्थ है। इन कविताओं का स्वर भी उद्बोधनात्मक है। भाषा और भाव-अभिव्यक्ति साफ-सुथरी, मैथिलीशरण गुप्त की शैली जैसी है।

4.1.10.5 व्यक्ति और प्रकृति पंचम पद 'मनु-पुत्र' में पांच कविताएं हैं, जिनमें कवि ने जीवन-मृत्यु, प्रकृति-चक्र और परिवर्तनशीलता की अवधारणा के अन्तर्गत मृत्यु-भय से मुक्त होकर मानवजीवन को उल्लासमय बनाने की प्रेरणा दी है। कवि मानता है कि जीवन में मृत्यु और मृत्यु में जीवन परस्पर समाया रहता है, यौवन-जर्जरता, मदिरा-विष, मिलन -विरह साथ-साथ चलते हैं, जग-जीवन की इस वास्तविकता को न समझ कर लोग माया-भ्रम में फंसे रहते हैं जबकि मानव इतिहास परिवर्तनजन्य है अतः रोने-धोने का कोई लाभ नहीं। भविष्य के प्रति उत्सुकता से कोई फर्क नहीं पड़ता, उदास होने का कोई लाभ नहीं, उदासी व्यर्थ है क्योंकि जीवन परिवर्तनशील है। कवि आदमी के अहंकार भाव पर भी चोट करता है कि अहंकार ने उसे स्वार्थांध बना रखा है, उसके हृदय में कुवृत्तियां पैदा हो गई हैं, 'मैं', 'मैं' और लालच ने उसके जीवन की सारी सरसता को छल लिया है, कवि कहता है कि इन्हीं व्यक्तिवादी कुवृत्तियों ने उसे कैद कर रखा है, इस कैद से उसे बाहर निकलना होगा और जन-जन में साम्य, नवसाहस, नवप्राण को संचरित करना होगा, उसे वर्ग-भेद से मुक्त होना होगा क्योंकि प्रकृति से ही मानव स्वतंत्र है, आदिम काल से कोई किसी का दास नहीं था, अब क्यों एक वर्ग ने लोगों के अनथक श्रम को इस्तेमाल करके दूसरे वर्ग को दास बना रखा है?

4.1.10.6 शृंगार और प्रणयानुभूति षष्ठ पद 'युगल' में पांच कविताएं हैं जिनमें कवि की शृंगार-वृत्ति तथा प्रणयानुभूति मुखरित हुई है। कवि की धारणा है कि यदि प्रणय और शृंगार की अनुभूति न होती तो यह धरा का जीवन ही न होता, धरती वीरान ही रह जाती। कवि ने चन्द्रमा को प्रिय और धरती को प्रियतमा के रूप में रखकर अनेक परम्परा भुक्त रूपकों द्वारा प्रणयानुभूतियों को अभिव्यक्ति प्रदान की है। यहां अधिकतर शृंगार का वियोग पक्ष ही चित्रित हो सकता था जो सहज स्वाभाविक है।

परन्तु यहां कवि संयोग पक्ष का चित्रण करता है वहां प्रकृति का उद्दीपन रूप अच्छा चित्रित हुआ है, वहां चन्द्र हंसता है, धरती का बदन खिल उठता है, होठों से मधुरता झरती है। मिलन क्षणों में विरहजन्य आकुलता, दु:खद चांचल्य समाप्त हो जाता है, मिलन-क्षणों के उल्लास में प्रत्येक क्षण मादक हो उठता है, आंखों से मिलन-सुख के अश्रु बह निकलते हैं। सागर चन्द्रमा की ओर उछलने लगता है।

इन प्रेम-कविताओं के पदों में कहीं-कहीं भावगत अन्तर्विरोध भी हैं। इसी पद में कवि ने महाकवि कालीदास की अमरकृति 'मेघदूत' के आधार पर 'कब आयेंगे पिया हमार' संगीतिका लिखी है। जिसमें विरह पीड़ित यक्षिणी की मनोव्यथा का सुंदर चित्रण हुआ है। प्रकृति के उद्दीपन के सुंदर चित्र उभरे हैं। वर्षा, तूफान और मेघों का गर्जन यक्षिणी के हृदय को प्रिय-मिलन के लिए आंदोलित करता है, रोमांचित यक्षिणी की रोमांच, उत्सुकता, जिज्ञासा आदि अनेक भाववृत्तियों का कवि सुन्दर अंकन करता है, यहां मेघ नारी-मन की प्यास को बुझाने की अपेक्षा और अधिक भड़का देता है। कवि ने यक्ष के मन में भी उतरने का भरसक यत्न किया है और लोकजीवन के सुरम्य चित्र प्रस्तुत किए हैं। यक्ष-दम्पत्ति की मिलनोत्सुकता यहां काफी अच्छी चित्रित हुई है। गीतिकाव्य पर आधारित यह अच्छी उत्कृष्ट संगीतिका बन पड़ी है।

4.1.10.7 जीवनगत विसंगतियों पर व्यंग्य– सप्तम पद 'उन्मुक्त' में कवि की छ: कविताएं हैं, जिन में कवि सामाजिक जीवन और मानव-मूल्यों के दैनंदिन ह्रास पर आक्रोश प्रकट करता है और कहीं-कहीं तीखी व्यंग्योक्तियां भी देता है। कवि की दृष्टि प्रगतिशील है किसी 'वाद' से जुड़ी हुई नहीं। वह निर्धनता, गंदगी, शोषण, साम्प्रदायिक वैमनस्य, सामंती सोच, स्वातंत्र्य-संग्राम के सेनानियों की शोचनीय स्थिति, नेता-गणों की स्वार्थांध कुवृत्तियों और मानव-मन में घर कर गई कुवृत्तियों और बेहूदगी, बेशर्मी, दिल्लगी तथा अजनबियतजन्य अलगाव की प्रवृत्तियों पर भरसक चोट करता है।

कवि ने इन कविताओं में भेड़ियों, अजगरों, रीछों, चीतों, कीड़ों को प्रतीकवत् प्रयुक्त किया है, ये सभी जानवर व्यक्ति की अंधवृत्तियों के प्रतीक हैं। नेता की ढिठाई पर भी अच्छी व्यंग्यपरक चोटें की गई हैं–

''मेरा तो बस काम है इतना/बिना उस्तरे बिना कैंची के/पोरों से बस मूंड ही लेना भेड़ें सारी। जगत-नाई मुझको जानो तुम/डरते क्यों हो ? जल्दी आओ/मैं तो सब की सेवा करता/धीरे, धीरे, बढ़ते जाओ।'' (पृ० 96)

'उन्मुक्त' की कविताओं में कवि छन्दविधान को त्याग छन्दमुक्त शिल्प अपनाता है परन्तु नयीं संवेदना के बावजूद उसका शिल्प परिपक्व नहीं है। इन कविताओं का मूल्यांकन प्रस्तुत है।

4.1.11 बादलों में कैद सूर्य आज़ाद कुमार मानव 'नाहर' के 1979 ई. में प्रकाशित प्रथम काव्य-संग्रह 'बादलों में कैद सूर्य' में 1974 से 78 ई. तक लिखी 63 कविताएं संकलित हैं। कवि की काव्य-संवेदना अभी संक्रान्त की स्थिति में है, जिसमें क्रान्ति का स्वर बड़ा जोशीला है, कहीं-कहीं बालकृष्ण शर्मा नवीन जैसा ओजस्वी, भाषा भी काफी 'गोल-मोल' है। कवि ने दानव, मानव, नर-नाग, देव-दैत्य, असुर, आर्य, यक्ष, रक्ष जैसे शब्दों का डट कर प्रयोग किया है परन्तु शब्द के अर्थविश्लेषण की ओर ध्यान नहीं दिया। मूल्यांकन प्रस्तुत है।

4.1.11.1 क्रान्ति-चेतना अर्थात् पूंजीवादी व्यवस्था का विरोध क्रान्ति हिंसक विद्रोह नहीं बल्कि ज्ञान, न्याय, समानता, परस्पर प्रेम, सहानुभूति, सहिष्णुता आदि जीवन-मूल्यों के पुनर्स्थापन की कामना मात्र है। कवि शोषण के विरुद्ध साहस, संघर्षशक्ति और आत्म-स्वाभिमान को जगाकर जूझने की प्रेरणा देता है। वह भाग्यवाद का त्याग कर पौरुष अपनाने और अन्याय, अविश्वास, परतंत्रता की समाधि से जागने की प्रेरणा देता है। वह क्रीत दासों को ललकारता है, वह वीरता, निःस्वार्थ कर्म, जागृति का संदेश देता है और हिंसक अत्याचारों का विरोध करता है।

उसकी अवधारणा है कि ऐसी अहिंसक क्रान्ति दानवता का अंत करके मानवता का संदेश देती है, शोषण का पंजा तोड़ती है। इसी क्रान्ति-चेतना के अन्तर्गत कवि उन शक्तियों को धिक्कारता है जिनके कारण आदमी शोषित है, भूखा-नंगा है और लाचार पशु की भांति हांका जा रहा है, ये शोषक शक्तियां जोंकों की तरह उसका रक्तपान कर रही हैं, उसके मान-सम्मान को नीलाम कर रही हैं, उसे अज्ञान और अन्याय के अन्धकार में धकेल रही हैं, शान्ति, शान्ति की रट लगा कर उसे क्रान्ति से रोक रही हैं। कवि इन शोषक शक्तियों का चेहरा उघाड़ता है और पूंजीवादी शक्तियों, शासन-व्यवस्था, प्रशासन और उसकी मशीनरी का गलत उपयोग करने वालों को शोषक के रूप में देखता है।

कवि को प्रतीत होता है कि इन शोषक शक्तियों के कारण जन-मानस में भयंकर संत्रास फैल गया है, दीन-दलित को धिक्कारा जा रहा है, निम्नवर्ग के पास कोई काम नहीं, मध्यवर्ग शोषित है, बेकारी से ग्रस्त लोग पिस रहे हैं, चतुर्दिक निराशा है, परहित के प्रति कोई कुछ नहीं सोचता। शासन-व्यवस्था मानवघाती हो उठी है, उसकी बची-खुची हड्डियों पर पूंजीपति शासन कर रहा है, वासनापूर्ति के लिए विवश ममता का आंचल खींचा जा रहा है, सिक्कों के लालच में बाप बेटी की लुटती इज्जत देख रहा है और सहन कर रहा है।

बच्चे भूखों मर रहे हैं, कवि को लगता है कि शासन व्यवस्था अपने सभी शक्तिसाधनों से जन-जन का दमन कर रही है, आंसू गैस, लाठीचार्ज, मीसा, नज़रबंदी, जेल, फांसी आदि के सहारे युवाशक्ति का दमन कर रही है जबकि बुर्जुआ, चमचे, तस्कर, जमाखोर इस व्यवस्था में मजे कर रहे हैं, रेडियो दूरदर्शन के माध्यम से सत्य की अपेक्षा झूठ उगला जा रहा है, लुढ़क रही

अर्थव्यवस्था की कमज़ोरियों को भाषणों द्वारा छिपाया जा रहा है, शिक्षा-प्रणाली निठल्लापन पैदा कर रही है और बुद्धिजीवी भूखों मर रहा है, तड़प रहा है। कवि ऐसी सम्पूर्ण व्यवस्था को बदल देना चाहता है और व्यवस्था पर भरपूर चोटें करता है, वह नेता और संसद पर व्यंग्यमय चोट करता है। दास कर्म कर रही कवि-कलम को भी कवि दुत्कारता है।

4.1.11.2 जनशक्ति का आह्वान अनेक जीवन-विसंगतियों के बावजूद कवि जनशक्ति के प्रति आश्वस्त है, उसकी क्षमता को पहचानता है। परन्तु क्यों यही जनशक्ति नपुंसक हो गई है, दिशाहीन है, क्यों यह विप्लवनाद नहीं करती? ये धंसी आंखें क्यों क्रोधानल से उबल नहीं पड़तीं ? क्यों सूखे हाथ निजबल से उठ खड़े नहीं होते?

इन प्रश्न-लड़ियों के बाद कवि जनता को सम्बोधित करता है कि लम्बी, काली, अंधेरी, ऊंची जेलें भरने से कुछ नहीं होगा। सत्ता उलटाने से उलटती है, स्वतंत्रता मांगने से नहीं ताकत से प्राप्त की जा सकती है। वह जन-जन को आह्वान देता है कि दुर्बलता को त्याग कर उसे शक्ति से नाता जोड़ना चाहिए। कवि मार्क्सवादी चिंतन की अपेक्षा जयप्रकाशनारायण और लोहियावाद से प्रभावित है तथा कहीं-कहीं राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की विचाराधारा का पुट देकर अपनी क्रान्ति-चेतना को सम्बलित कर रहा है। कविताओं की भाषा में ओज है परन्तु कहीं-कहीं अतिरिक्त आवेश भी। हां तत्कालीन जन-जीवन की विसंगतियों का अच्छा यथार्थपरक चित्रण अतिवादी दोष के बावजूद इन कविताओं का सौंदर्य बढ़ा देता है, कवि 'नाहर' ने उपर्युक्त क्रान्ति-चेतना के अन्तर्गत जन-जीवन की विसंगतियों को देखा है और व्यक्ति को अपनी भीतरी कमज़ोरियों से जूझने की प्रेरणा दी है, जबकि सोच-समझ से हीन मुण्डहीन-सा व्यक्ति तो अपना ही रक्त पी कर उल्लसित हो रहा है। वह दृष्टिहीन है, अज्ञानी है और संदेह, शंका और भ्रम की अंधी मनोवृत्तियों से ग्रस्त है, इसी कारण वह शोषण का शिकार हो रहा है। इन कविताओं का स्वर अधिकतर उद्‌बोधनपरक है और शिल्प छन्दोबद्ध।

4.1.11.3 विसंगतिग्रस्त जनजीवन का चित्रण कवि 'नाहर' ने छन्द हीन कविताओं में भारतीय जन-जीवन की मौजूदा विडम्बनाओं का चित्रण अधिक सधे हुए स्वरों में किया है। यहां जोश या आवेश की अपेक्षा कवि चिंतनशील हो उठा है और आम आदमी की वास्तविक जीवन-स्थितियों पर कहीं-कहीं व्यंग्य भी करता है और कहीं-कहीं आक्रोश भी प्रकट करता है।

कवि देखता है कि दिन भर के श्रम से छूट कर श्रमिक-मज़दूर गन्दी बस्तियों में गोलाकार पाइप-खण्डों में सो जाने के लिए विवश हैं, जबकि इनकी पत्नियां अपनी जर्जर अवस्था के बावजूद बच्चों के भरण-पोषण के लिए शरीर बेचने के लिए विवश हैं, कभी-कभी पुलिस कर्मी भी उनकी विवशता का लाभ उठा लेते हैं-

''खींचता है ग्राहक/उसे अपनी ओर/उधर/ 'नाईट डयूटी' का सिपाही/पाने को उसे/लगाता है जोर/वसूलने को जुर्माना/उसके अनैतिक कार्यों का।'' (पृ०35)

रात के अंधेरे में मज़दूर औरतों से बलात्कार होते हैं जबकि ऐसे शोषण का विरोध

करने वालों को पुलिस मार देती है, औरतें कन्धों पर अवैध सन्तान उठाए भीख मांगती हैं, सीताओं का अपहरण हो रहा है। इसी तरह की अनेक अतिवादी पंक्तियां इनकी कविताओं में भरी पड़ी हैं, जो कवि के अतिरिक्त आवेश को ही घोषित करती हैं।

कवि यह भी देखता है कि अभी भी देश में सामन्तवादी सोच मौजूद है, आदमी को स्वामीभक्त कुत्ता समझा जा रहा है, व्यक्ति को कुत्तों से नुचवा दिया जाता है परन्तु इस सामन्ती सोच वालों का विरोध करने वाला कोई नहीं।

कवि ने 1975 ई. के आपातकाल को भारतीय जन-जीवन की एक विडम्बना ही माना है, मानो भारतवासी के भाग्य में पतझड़ ही लिखा गया हुआ है। कवि इस काल की राजनीति पर चोट करता है-

"क्योंकि/खाद-अधिक/फूल कम हैं/और/भारतवासी मुरझाये हैं/क्योंकि।

मन्त्री अधिक/जनता कम है" (पृ० 40)

1977 ई. में हुए सत्ता-परिवर्तन को कवि जनक्रान्ति मानता है। परन्तु उसे दुःख है कि इस सत्ता परिवर्तन के बावजूद जीवन-विसंगतियां ज्यों की त्यों बनी रही हैं, लोग आसमान से गिरकर खजूर पर अटक गए हैं, संघर्षशक्ति को गंवा कर ठण्डे मटकों जैसे हो गए हैं। जनता ने क्रान्ति-भ्रान्ति, कलुष-कान्ति का भेद समझा ही नहीं, उसी कारण सम्पूर्ण क्रान्ति दिग्भ्रमित हो कर रह गई है, हर मुख पर ताला है, हर लम्हा काला है। लोकतंत्र से विश्वास ही उठ गया है क्योंकि सत्ता परिवर्तन का राजनेताओं के अतिरिक्त जनता को कोई लाभ नहीं पहुंचा-

"वही लाठियां वही गोलियां/पुराने मेंढक नई बोलियां/जनता अब भी रोती है।

पार्टी संसद में सोती है/बुद्धि जकड़ी है यंत्र से/उठा विश्वास लोकतंत्र से।" (पृ० 70)

कवि ने जीवन की विसंगतियों का चित्रण ग़ज़ल तो नहीं 'अज़ल' के शेयरों में भी किया है। यहां परस्पर विरोधी स्थितियों को जोड़ कर अर्थ के स्फोट के माध्यम से उदासी, ऊब और निरर्थकताजन्य अनुभूतियों को चित्रित किया है। इन शेयरों का भावबोध उर्दू शायरी से काफी प्रभावित है और दृष्टि रोमांटिक है कवि ने विशेषणों के सहारे भी अतिरंजना और उदासी को चित्रित किया है। कवि को लगता है कि उम्मीदें ज़र्द पत्ते-सी झड़ गई हैं, हकीकत डरी-डरी-सी है, भविष्य गहन अन्धकार में डूबा हुआ है। इन अज़लों में जीवन की विडम्बनात्मक स्थितियों का अच्छा चित्रण है।

4.1.11.4 कवि-कर्म का स्वरूप कवि ने कविता-कर्म पर भी कुछ कविताएं लिखी हैं। वह चाहता है कि उसे विद्रोह का लेखक होना चाहिए, उसे मानव-मात्र में समानता का भाव जगाना चाहिए, उसे छुआछूत और धर्मपाश को काट फैंकना चाहिए, कवि राजाश्रय लेकर कविता-कर्म करने वाले को निज़ी स्वार्थ में डूबा कहता है।

कवि श्रृंगार रस की अपेक्षा जीवन की विसंगतियों को समझने और उन पर लिखने की प्रेरणा देता है क्योंकि जब लोगों की नस-नस भूख से अकड़ रही हो तो श्रृंगार रस के गीत कैसे

गाए जा सकते हैं? कवि ने गीत को स्वयंभू ही माना है। गीत स्वयं ही बजता है शब्द, भाव, पंक्तियां स्वयं उभरती जाती हैं। हां, वह वातावरण के साथ-साथ कवि-बुद्धि और कवि-मन के परस्पर सामंजस्य को गीत-रचना के लिए जरूरी मानता है।

कवि लेखकीय स्वातंत्र्य की मांग भी रखता है, इसके लिए वह कोई समझौता नहीं करना चाहता, संघर्षों से चूर, लक्ष्य से दूर, खालीपेट होने के बावजूद न स्तुतिगान लिखना चाहता है न किसी के तलुवे चाटने की प्रवृत्ति का पोषण करता है। उसे दु:ख भी है कि उसके गीत किसी के काम नहीं आए।

4.1.11.5 प्रणयानुभूति का स्वरूप 'नाहर' की कविताओं में प्रणयानुभूति का चित्रण भी हुआ है। कवि मानता है कि सम्पूर्ण जीवन में प्रेम व्याप्त है, यहीं धड़कन, तड़पन, विद्रोह और मोह है, यहीं उमंग, तरंग, जलन, अग्न, ग़म, दम है, यहीं जीवनमूल है, यहीं भूल है। कवि जीवन तथ्यों और भाव-मनोवृत्तियों को परस्पर गूंथता हुआ, कुछ अच्छी कविता भी लिख गया है, जिसमें सार्थक व्यंग्य-सा भी उभरता है। कवि की प्रणय-भावना स्वच्छन्दवादी है जिसमें मांसलता और उन्माद को विशेष महत्व मिला है।

कवि प्रणय-क्षेत्र को बीहड़ भयानक भी कहता है और यौवन-युद्ध भी, जिसमें प्रेमिका का रूप बार-बार लुभाता है और घायल करता है, रूप-आकर्षण उसकी विरहाग्नि को भड़काता भी है और उसे आनन्दित भी करता है। रूप-आकर्षण के कारण ही गलियों-बाज़ारों में आवाज़ें कसने जैसी छिछोरी हरकतें भी होती हैं। परन्तु अधिकतर ये प्रणयकविताएं साधारण हैं और भावबोध उर्दू शायरी वाला रोमांटिक।

4.1.12 आहत चीड़ें श्री अशोक जेरथ के 1979 ई. में प्रकाशित काव्य-संग्रह 'आहत चीड़ें' में 35 कविताएं हैं। 'चीड़ें' यहां जन-साधारण का प्रतीक हैं। इन कविताओं में आहत जन-साधारण की पीड़ाओं का चित्रण हुआ है। कवि की व्यक्तिगत महत्वकांक्षाओं की अभिव्यक्ति तो हुई ही है, इनमें असफलताजन्य कुण्ठाओं के कारण अतिरिक्त उदासी भी झलकती है और विवशताजन्य पलायन तथा नियतिवाद इन कविताओं को रूपायित करता जाता है। राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में यातना भोग रहे व्यक्ति की मन: स्थितियों, उसके आक्रोश और निरर्थकताजन्य अनुभूतियों को कविताओं में विशेष महत्व मिला है। कवि नये भावबोध को पकड़ने का प्रयास करता है। उसकी प्रणयानुभूति का चित्रण प्राकृतिक पृष्ठभूमि में हुआ है परन्तु प्राकृतिक क्रिया-व्यापार के बिम्बीकरण में कहीं-कहीं अनुभूति दब गई है। और कविता एक अजाना-सा माहौल निर्मित करके समाप्त हो जाती है। प्रणयानुभूति सम्बंधी बिम्ब परम्पराभुक्त हैं, अधिकतर विरहजन्य स्मृतियों का चित्रण कविता का कलेवर बना है। इन कविताओं का मूल्यांकन प्रस्तुत है।

4.1.12.1 प्रणयानुभूति का स्वरूप प्रेमिका का पत्र प्राप्त करके कवि को प्राकृतिक क्रिया-व्यापार में उल्लास की अनुभूति होती है। सूर्योदय और सूर्यास्त को देखता हुआ वह मिलन के क्षणों की स्मृतियों में खो जाता है, प्रेमिका की गंध, बरगद की घनेरी छांव, उछाले गए

चिनारों के सहस्रों टुकड़ों को लोक लेने की आकांक्षा और छटपटाते सूरज को अंजुली में समेट कर चोली में छिपा लेने की प्रिया की अनेक क्रियाएं कवि के स्मृति पटल पर बिम्बित हो उठती हैं। रजनीगन्धा की बास, मन्द-मन्द बयार, चतुर्दिक सन्नाटा, बन्द होती खिड़कियां और झोंपड़ियों के हिल रहे द्वार उसे याद आते हैं।

परन्तु अतीत के ये मिलन क्षण कवि के पास बुढ़ाए हुए समय की तरह लौटे हैं, न जाने लिदर की सप्तधारा को पुकारती प्रियतमा का बिम्ब कहां खो गया है। विरह के कारण न कुछ सूझ रहा है न ही कुछ पहचाना जा रहा है। अस्तित्व का हर एक पल खिसक कर रात की स्याही में खो जाता है, भावनाओं के कोमल ओस कणों को तीखे शूल चुभते हैं। प्राकृतिक क्रिया-व्यापारों में कवि को मिलनोत्सुकता प्रतिबिम्बित होती दिखती है परन्तु वह जीवन की इस रौनक में भी विरह की शूल और चुभन को भोगने के लिए विवश-सा है। रीते-रीते जीवन की निरर्थकता में वह उदासी और निराशा से घिरा हुआ है परन्तु स्मृति में आंसू नहीं बहा पाता। ये बिम्ब कवि के मन में स्मृतियों की टीसों को व्यक्त कर देते इन बिम्बों में घनी उदासी की झाईं झलक-झलक उठती है, परम्पराभुक्त होते हुए भी ये बिम्ब अच्छे लगते हैं।

कवि कल्पना करता है कि उसके पत्रों को प्रेमिका ने पढ़ लिया होगा, अलिखे भावों को समझ लिया होगा, संकेतों, विवरणों, वृतान्तों में छिपी अभ्यर्थना को जान लिया होगा। इसी आश्विस्तभाव के कारण कवि ने विरहजन्य अनुभूतियों के अनेक नये बिम्ब प्रस्तुत किए हैं। जब वर्षा उसके अन्तर्मन तक को भिगो देती है तो वह विरह--पीड़ा भोग रहे अधसोए पक्षियों के सुन्दर बिम्ब प्रस्तुत करता है। विरह के बाद पक्षियों को मिले मिलन--सुख से अपनी मिलनकांक्षा का तादातमय स्थापित कर लेता है और प्रकृति का सम्पूर्ण सौंदर्य और उल्लास प्रेमिका पर न्योछावर कर देना चाहता है।

कवि ने प्रणयागत विसंगतियों और लोकाग्रह पर कुछ चोटें भी की हैं। उसे दु:ख है कि प्रेमिका ने उसकी प्रणयानुभूति की तीव्रता को महत्व नहीं दिया, उसकी ईमानदारी पर विश्वास नहीं किया, उसको दिए गए फूलों को उसने कांटे ही समझा। इस तरह प्रणयक्षेत्र के चतुर्दिक छाए लोग भी कवि को अनुदार, छिछले, नाटे और बौने लगे हैं, ये लोग बबूल जैसे प्रहरी बने रहे हैं। कंटीली अनुदारता का यह अच्छा बिम्ब हैं। इन्हीं के बहकावे में आकर फूल भी खुल कर बंद होने लगते हैं। कवि ने प्रणयक्षेत्र में आ घुसने वाले किसी तीसरे का चित्रण 'एक नये सूरज की तलाश' कविता में किया है जिसमें रूपक अच्छा बन पड़ा है, बिम्बों में नयापन झलक उठा है और संघर्ष-चेतना भी बलवती हो उठी है।

प्रणय कविताओं के कुछ बिम्ब काफी सुन्दर बन पड़े हैं, कहीं--कहीं परम्पराभुक्त बिम्बों में नयापन संजोया गया है, कुछ बिम्ब अनुभूतिहीन फोटोग्राफ जैसे भी हैं, कुछ उलझ भी गए हैं, जो भावतत्व को उलझा देते हैं, क्रियापदों का अल्यल्प उपयोग भी बिम्बों की सार्थकता को आघात पहुंचा रहा है। कवि बिम्बों की अपेक्षा जीवन के स्मृति-कणों को महत्व देता है, ये स्मृति-कण दूर-दूर तक फैले हुए हैं और कवि जीवन को संचालित करते हैं। इन कविताओं का शिल्प कुछ ऐसा उलझा हुआ है कि अचानक कोई भाव या कोई पंक्ति चमक उठती है और

प्राकृतिक सान्निध्य के अन्तर्गत पाठक के मन में कुछ नया बो देती है।

4.1.12.2 वैयक्तिक महत्वकांक्षा का स्वरूप इन कविताओं में कवि की कुछ व्यक्तिगत महत्वकांक्षाएं और कुण्ठाएं भी अभिव्यक्त हुई हैं। इन कविताओं का भाव पक्ष और बोध पक्ष 'नयी कविता' जैसा है। बिम्ब विधान 'नयी कविता' की झलक देता है और कवि अन्तर्विरोधी भावों और अकारण अन्तर्द्वन्द में ग्रस्त है। उसे हंसने से अपने घटने का अहसास होता है। उसका हंसना और रोना अपनी अपूर्ण रह गई महत्वकांक्षाओं के कारण है, वह बड़ा आदमी बनना चाहता है परन्तु निचली सीढ़ी से ही टकरा कर जहां का तहां खड़ा रह गया है। नियति और भाग्यपाश में बंधा-सा सारा जीवन यांत्रिकताजन्य ऊब से और निरर्थकता में ग्रस्त होकर रह गया है, वह जीवन का अर्थ भूल गया है और मृत्यु का भय उसे त्रस्त किए हुए है। अविश्वास, धोखे और लांछन के कारण वह पीड़ित है, अकेलेपन का दर्द भोगने के लिए वह विवश है। वह खोखले नारों से बाहर निकल जाने के लिए उत्सुक है। निरर्थक ही सही परन्तु उसका जीवन सतत गतिमान है। जीवन में प्रत्येक नया वर्ष खालीपन की ऊब लिए निकल जाता है। कवि जिंदगी की उखड़न से ऊबा हुआ पलायन करने लगता है। चीखते भोंपुओं, रक्त के धब्बों, बढ़ते अंधकार, धुंधली राहों और कुहासे में छुपे पत्थरों से उसे कोई सरोकार नहीं रह जाता। इस तरह वह विरोधी स्थितियों को कोंचना चाहता है परन्तु मात्र अनुभूति के स्तर पर। नियति और भाग्यपाश में बंधा हुआ-सा वह संघर्ष से पलायन कर रहा है।

कवि की निरर्थकताजन्य ऊब का कारण है-बेकारी। बेकारी की घनीभूत पीड़ा से ग्रस्त वह अपने परिवेश के प्रति क्रोध और ईर्ष्या की वृत्तियों को अभिव्यक्त करके रह जाता है, जीवन के शुरू में ही वह हारता रहा है, भाग्य का कांटा उसके घर में आकर नहीं ठहरता। परन्तु विडम्बना यह है कि कवि अपने आक्रोश को संघर्षचेतना से पूर्ण कर्म में नहीं ढालता और कर्मशील न होकर वह भाग्य-भरोसे पड़ा अन्तर्दाह को भोगता रहता है।

वह किसी भी खूबसूरत लैण्डस्केप को देखकर, मखमली घास को ढूंढ कर वहीं बस जाना चाहता है परन्तु स्वयं मखमली घास उगाने के लिए कर्मशील नहीं। अत: प्रतीक्षा, इस मात्र निकम्मी प्रतीक्षा से क्या होगा ? इस प्रतीक्षा की छुअन कैक्टस के कांटों की चुभन जैसी टीस पैदा करके ही रह जाएगी, संघर्षहीन रह कर मात्र संघर्ष की कल्पना करना और दिग्विजय के सपनों को बिखेर देने से तो कुछ नहीं होता। संघर्षहीन जीवन में ऊब, घुटन, संत्रास आदि की स्थिति बनी ही रहेगी। अकर्मण्य सोच का उद्धरण देखें-

''बाकी बचे हैं कुछ टूटे पाषाण स्तम्भ/दु:ख, पीड़ा, वेदना, घृणा और निराशा/जिनके बीच लाठी की सहायता से/घूम फिर रही है क्षीण आशा/ढूंढ रही है भालोबाशा भालो बाशा'' (पृ० 60)

4.1.12.3 संघर्ष-चेतना का स्वरूप-विकास कवि ने शोषण का विरोध भी किया है, इन कविताओं को राजनीतिक चेतना का स्पर्श अतिरिक्त निखार प्रदान करता है। कवि प्रकृति में भी शोषण-प्रक्रिया को देखता है, वह देखता है कि ओक के पत्ते झरकर देवदार की फर पर आ

बैठे हैं जबकि देवदारों के भार ने चीड़ों को दबा रखा है और चीड़ें आहत हो रही हैं। वृक्षों के इस परस्पर के आश्रय की प्रक्रिया में कवि ने शोषण की प्रक्रिया का रूपकीकरण कर लिया है, वृक्ष अलग-अलग सामाजिक-वर्गों के प्रतीक बन गए हैं। 'लोकराज' में कवि शोषण की इसी प्रक्रिया को देखता है, इसी से तादात्मय स्थापित करके वह शोषण को लोकराज की नियति घोषित कर रहा है। अच्छा रूपक है परन्तु कवि ने यहां आम आदमी के शोषण और उसके भय को ही अभिव्यक्ति प्रदान की है, निम्नवर्ग के भय, त्रास और शोषण की ओर ध्यान नहीं दिया। यहां झाड़ियां उपेक्षित रह गई हैं, वे पीड़ा को रोमांच के स्तर पर ही सुनती हैं और कुंचित होकर तटस्थ हो जाती हैं।

नक्सलवाड़ी के किसान आंदोलन से भी किसान की स्थिति नहीं बदली, उसके हल का कुन्दा धरती में फंस कर टूट गया है और हाथ में मात्र हत्था रह गया है किसानों की संघर्षहीन जिजीविषा का कोई अर्थ नहीं, संघर्षशील होकर कर्म न करने में कोई श्रेय नहीं, साधारण आदमी पूंजीपतियों के ढोंग के चंगुल में फंस कर रह गया है, तोंदवाले पूंजीपति अपना पाप बो जाते हैं और बिके हुए-से बुद्धिजीवी इन्हीं पूंजीपतियों का गुणगान करते रहते हैं।

कवि आज के राजनेताओं के दोगलेपन, उनके झूठे आश्वासन, उनके हवाई सर्वेक्षणों पर भी चोट करता है। वह 1977 ई. के सत्ता परिवर्तन की ओर भी संकेत करता है, यहां कवि सुन्दर रूपक प्रस्तुत करता है कि नागफनी ने गुलाब से अपना अधिकार मांगा है।

इस क्रान्तिकारी चुनाव में महापुरुष बौने बन गए हैं, पोथियां व्यर्थ हो गई हैं। कवि छुट भैया नेताओं को बरसात के बाद बढ़ जाने वाली चींटियां कहता है और बड़े नेताओं को कनस्तर तक कह देता है। ये कनस्तर चींटियों से अच्छे हैं जो जीवित हैं और बजते भी हैं, परन्तु चींटियों की कतारें बिलकुल बह गई हैं या पत्थरों की विरलों में समा गई हैं, इन चींटियों (छुट भैया नेताओं) की कौन मदद करेगा? बड़े नेता तो स्वयं सहायता मांग रहे हैं, अपने खोए सत्ता-अधिकारों को पुनः प्राप्त करना चाहते हैं-

''हमारा प्रभुत्व हो/ये हमारा जय-घोष करें/कतारें बनती रहें,/टूटती रहें/पर पत्थर/ये भण्डार/ ये नेतागिरी के अजस्र स्रोत/अटल अचल रहें'' (पृ० 54)

परन्तु 1977 ई. के सत्ता-परिवर्तन के बाद भी कोई विशेष फर्क नहीं पड़ा, सारा जनसंघर्ष निरर्थक होकर रह गया है। कवि इस निरर्थकता के कारण को नहीं ढूंढ पाया। उसे यही प्रतीत हुआ है कि खाली ऐंटेना पर भिन्न रंग और आकार वाला कोई दूसरा पक्षी आ बैठा है परन्तु पक्षी है तो पक्षी ही।

इन कविताओं का शिल्प 'नयी कविता' जैसा है, भाव और बोध भी नया है। कवि जन-साधारण की जीवन-विसंगतियों को चित्रित करता है परन्तु व्यंग्य और संघर्ष का तेवर पूरी तरह निखर नहीं पाया।

4.1.13 आग जल रही है 1980 ई. में प्रकाशित श्री बलनील देवम् के दूसरे काव्य-संग्रह 'आग जल रही है' में अगस्त 1977 से सितम्बर 1978 तक में लिखी 51 कविताएं

संकलित हैं। 1977 ई. की जनक्रान्ति (राष्ट्रीय चुनाव) से पूर्व के और इसके बाद के जन-जन की स्थिति का इन कविताओं में विस्तृत वर्णन हुआ है। कवि की राजनीतिक चिंता और संघर्ष-चेतना की यहां अच्छी अभिव्यक्ति हुई है। कवि ने जनता के संस्कार-शोधन का प्रयास किया है। उसका मूल स्वर विद्रोह और क्रान्ति का है।

तत्कालीन जन-संघर्ष में अनुर्वरता का आभास प्राप्त करके कवि सोचता है कि यह संघर्ष निरर्थक होकर रह गया है क्योंकि बीज, मिट्टी और मौसम कुछ इस तरह का है कि पेड़ नहीं उगाया जा पाता, जो उगता है वह पीले और बीमार पत्तों की कोख मात्र होता है। सारा वातावरण दहशत की यातना के सागर में डूब जाता है, हवा नमकीन हो जाती है, इस पेड़ को काट कर वह उदास मन से जड़ों में आग लगा कर नदी में बहा देता है और नदी मानो उसी के प्राणों को बहाए जा रही है। इन कविताओं का मूल्यांकन प्रस्तुत है।

4.1.13.1 राजनीतिक संघर्ष-चेतना का स्वरूप-विकास कवि आम आदमी के होठों पर खिलती मुस्कराहट के पीछे की पीड़ा के कम्पन को समझ रहा है। वह जानता है कि गर्म दुपहरियों की धूप और ठिठुरन से कांपती रातें ज्यों की त्यों हैं, नंगे जिस्मों को ढांपने का बंदोबस्त अभी तक नहीं हुआ। परन्तु विडम्बना यह है कि लोगों की भूख को शान्त करने की अपेक्षा लोगों में बिस्मिल्लाह के शहनाई वादन से मन बहलाने की वृत्ति पैदा की जा रही है। कवि नहीं चाहता कि रोटी के नाम पर आदमी का शोषण हो, उसकी भावना और शक्ति का वस्तु की तरह इस्तेमाल हो, इस तरह तो जीवन में जीने जैसा कुछ नहीं रहेगा।

कवि सीधी सपाट जिंदगी से ऊबड़-खाबड़ परन्तु संघर्षशील जिंदगी को बेहतर मानता है और पल-पल मारने वाली मौत को दफना कर जीने के लिए आह्वान देता है। विवश-सा व्यक्ति मृत्यु तुल्य जीवन जीने का लिए विवश किया जा रहा है, यातना और भटकन के सिवा उसे कुछ नहीं मिल रहा जबकि मृत्यु की पहचान ही सही जिंदगी की शुरूआत है, आदमी के पास जब तक व्यूह भेदक पुरुषत्व नहीं होता उसका जीवन असहाय रहता है, सारे सुख स्वप्न सूखे पत्तों की तरह झर जाते हैं। आदमी की संघर्षहीनता पर कवि चोट करता है-

"चक्रव्यूह-दर-चक्रव्यूह/फंसा है मांस का पुतला/निस्पंद/निर्जीव/निष्प्राण/बस ! मृत्यु के अनन्त सान्निध्य की/प्रतीक्षा में/और हर पल/भय की चादर में लिपटा हुआ।" (पृ० 64-65)

निश्छल मासूमियत भी आदमी के लिए घातक है, जब तक आदमी निश्छल मासूम रहेगा, अपनी सुरक्षा की जिम्मेदारी स्वयं नहीं उठाएगा, उसके सुख-स्वप्न सूखे पत्तों की तरह झड़ते ही रहेंगे, उसका बोया हुआ कोई भी बीज सदाबहार दरख़्त नहीं बन पाएगा।

विरासत से मिली मासूमियत के कारण ही आदमी अपनी पराजय को आश्चर्यचकित होकर देखता रहा है, वह पराजय का कारण जान नहीं पाया। युद्ध के दौरान वह अपने विरुद्ध हो रही साजिशों को पहचान नहीं पाया, बल्कि पराजय को ही वह अपनी नियति मान बैठा है।

विडम्बना यह है कि आधुनिक तंत्र ने आदमी को मानसिक स्तर पर क्षत-विक्षत करके उसे व्यक्तित्वहीन बना दिया है, उसके कर्त्तव्य बोध को छीन कर, उसे निरीह बना कर

छोड़ दिया है, जबकि परम्परा बोध उसे क्रूर नहीं होने देता, उसका कर्त्तव्यबोध दुविधाग्रस्त हो गया है। उसके भीतर का परिंदा फड़फड़ाता तो है परन्तु उड़ नहीं पाता। इस संघर्षहीनता के कारण ही वह शोषित है, भूखा-प्यासा और निर्धन है।

आदमी शोषक-शक्तियों की दया पर टिक कर फूल-फल नहीं सकता, शक्तियां अपनी मानवघाती वृत्ति को नहीं त्यागतीं बल्कि उन्होंने तो शोषित आदमी की मासूम और निश्छल सोच की जड़ें काट कर उसे जड़हीन बना दिया है। वह जिंदगी की नदी के किनारे खड़ा हुआ भी जीवित नहीं रह गया, उसके सारे अरमान मर रहे हैं और वह अपनी सामाजिक भूमिका का निर्वाह नहीं कर पाता।

उसके भोले-भाले समर्पण के प्रति कवि उसे सचेत करता है कि ऐसे समर्पण का कोई अर्थ नहीं क्योंकि शोषक शक्तियां उसे बरगला कर पशु तुल्य समझ कर वधशाला की ओर ले जाती हैं। पूर्ण आस्था, विश्वास और आशाओं के कारण जब वह आंख मूंद कर स्वयं को किसी के हवाले कर देता है तो यातना और यंत्रणा ही झेलनी पड़ती है क्योंकि जन-जीवन-विरोधी शक्तियां कपटी और चालाक हैं।

ऐसी जीवन-विरोधी स्थितियों में आदमी या तो आत्मघाती हो जाता है या उसमें पर-घाती भेड़िया-वृत्ति आ जाती है, जिसमें आदमी और भेड़िए में फर्क नहीं रह जाता, वह आत्मा से बलात्कार करता है और नुकीले दांतों, दाढ़ों से चीथ लेता है। कवि इस भेड़िया-वृत्ति के विरुद्ध संघर्ष की चेतावनी देता है। जन-विरोधी शोषक शक्तियों की भेड़िया-वृत्ति के विरुद्ध कवि दृढ़ व्यक्तित्व को ही कल्याणकर सिद्ध करता है। विडम्बना यह है कि उसे आदमी नहीं हथियार के रूप में इस्तेमाल किया जा रहा है। वह है तो हथियार पर तीखा धारदार नहीं, कापुरुष है, उसे पुरुषश्रेष्ठ बनने नहीं दिया गया ताकि वह अपनी विडम्बन जीवन स्थितियों को क्षत-विक्षत न कर सके।

कवि मौजूदा इतिहास-बोध को नकारता है। वह मानता है कि गलत इतिहास-बोध हमारे लहू में रच बस कर हमें कापुरुष और नपुंसक बना रहा है। मौका परस्त लोगों ने हमारी मासूम मुस्कराहटों की पवित्रता को अपवित्र सिद्ध कर दिया है। कवि उस इतिहास को सुनना चाहता है जिसमें उसके अपने रक्त के निशान हों, उसकी गौरवशाली प्रेम-कथाओं की शाश्वत खुशबू हो, जिसमें उसके मर्म का महान जीवन-तत्व हो, जो मीठी-मीठी लोरियां सुना कर उसके हृदय में अकम्पित भाव जगाता हो। इस इतिहास-बोध को वरीयता देता हुआ वह गले-सड़े, विक्षिप्त, अकर्मण्य और लिजलिजे इतिहास को सूर्य की भट्ठी में फैंक देना चाहता है।

कवि मानता है कि जब तक आदमी अपनी ही अन्धी मनोवृत्तियों से संचालित रहेगा, अपने मन में ही सुख की तलाश करेगा तब तक वह वास्तविक जीवन नहीं जी सकेगा। जबकि बाहर का जीवन, दूसरे के दु:ख को पीकर सुख बांटने में निहित है।

अत: हम सीलन भरे अंधेरे की घुटन से मुक्त होने के लिए सूर्य बन कर चमकें क्योंकि प्रकाश अंधेरे को भी इन्द्रधनुषी रश्मियों से सराबोर करके जीवनमय कर देता है। इसी धारणा के

अन्तर्गत कवि सामूहिक संघर्ष की चेतना का आह्वान देता है और जीवन को गति देने की कामना करता है।

कवि संकल्प करता है कि अपने हाथों को हथियार बनाना होगा, अपनी मुद्राओं में पुंसत्व लाना होगा, अपने हक छीनने होंगे और चाँदनी रात में बहती बयार की तरह जीना होगा। हमारे जिन जन्मजात अधिकारों को तिकड़मबाज़ी से छीन लिया गया है उन्हें वापिस लेने के लिए हमें कोई समझौता नहीं करना। बल्कि कवि शोषक वर्ग को ललकारता है कि अब तक तुम संघर्षशील लोगों की आक्रोशपूर्ण मुद्राओं को नपुंसक हिजड़ों की मुद्रा समझते रहे थे, तिकड़मबाज़ी से छीने अधिकार इन्हें लौटाने के लिए तैयार नहीं हो पाते थे, राजतंत्र की शक्ति भी तुम्हारे साथ थी, इसी राजकीय सत्ता के शस्त्रों से लैस होकर तुमने उनके हाथों की अंगुलियां काट डालीं, पांवों के तलुवे छेद दिए, उनके दिमाग को नपुंसक बना दिया और तुम लोग प्रसन्न होकर स्वयं को शाश्वत सूर्य समझ रहे थे, धरती से नभ तक अपना फैलाव अनुभव कर रहे थे लेकिन सत्य अधिक दिन तक नहीं दबता। यह तुम्हारी मूर्खता ही है कि उसे सोया समझ कर तुम उसे निरंतर कोंच रहे हो, तुम्हें अभी भी होश नहीं आया। जबकि उसके भीतर ही भीतर कहीं आग जल रही है, जिसे अभी तक वह भीतर ही भीतर सहलाता पुचकारता चला जा रहा है, इस आग को भीतर से बाहर का रास्ता मिलते ही सन्नाटे फट पड़ेंगे, आकाश सिंदूरी हो जाएगा। कवि शोषकों को सचेत करता है कि भयभीत होकर तुम उसके सीने पर आंसू बहाओगे परन्तु यह आग तुम्हें क्षमा नहीं करेगी। कवि आदमी के भीतर की आग और उसके जीवन के तेज के तेवरों को पहचान लेने की चेतावनी देता है-

"पर घोड़ों पर बैठी आग/कुचल देगी तुम्हें, नालों से/और फिर पी जाएगी तुम्हें।

उसके अन्दर का तेज़/किसी भी अंधेरे कोने को/नहीं करेगा माफ।" (पृ 14)

लेकिन शोषक शक्तियां नहीं संभलतीं तो जन-शक्ति उदासीनता और उदासी को त्याग कर संघर्षशील हो उठती है। भीतरी आग भड़क उठती है और 1977 ई. की जनक्रान्ति में सत्ता परिवर्तन होता है। कवि इस जनक्रान्ति की गौरवशाली विजय पर उल्लास व्यक्त करता है।

4.1.13.2 राष्ट्रीय चुनाव के बाद के राजनीतिक प्रपंच और आम-आदमी की जीवन-त्रासदी लोकनायक जयप्रकाशनारायण के नेतृत्व में 1977 ई. का चुनाव होता है और सत्ता परिवर्तन होता है। जनक्रान्ति (राष्ट्रीय चुनाव) सफल होती है, परन्तु विडम्बना यह है कि जन-जीवन की त्रासद स्थितियां ज्यों की त्यों बनी रहती हैं, आज़ादी का ढिंढोरा पीटने से भी यातनाओं का व्यूह-भंग नहीं हो पाता। कवि का मानना है कि यह जन-क्रान्ति भी निरर्थक होकर रह गई है। नेता अपनी-अपनी डफ़ली पर बेसुरा राग अलाप रहे हैं और जनता की; जो उनकी ज़मीन थी, उपेक्षा कर रहे हैं, क्रान्ति, निर्माण, समष्टि आदि की बातें ज्यों की त्यों रह गई हैं। क्रान्ति एक असुखद भ्रान्ति बन कर रह गई है-

"और, गंध की हो रही है बंदरबांट/उनके घरों के तहखाने महक रहे हैं।

एक महक के साथ।" (पृ० 7)

और एक ऐसा राजनीतिक अध्याय आरम्भ हो जाता है, जो पुनः सिंह-हृदय में कायरता पैदा कर देता है, जीवंतता खत्म हो जाती है, उजाले की परिभाषा निगेटिव हो जाती है। अतः पुनः सोच मुट्ठी में कैद हो गई है, या अर्द्धतनी मुट्ठी में घुल कर रह गई है जबकि इन्हीं तनी हुई मुट्ठियों से ज्वालामुखी फूटे हैं। यही संघर्षशक्ति पुनः दुविधाजन्य कुण्ठा से ग्रस्त हो रही है और विडम्बना यह कि खूंखार दरिंदों की जमात सुदृढ़तर होती जा रही है। ऐसी स्थिति में खूनी क्रान्ति का अंदेशा भी हो सकता है क्योंकि अभी भी जन-आक्रोश जिंदा है, छटपटाहट खत्म नहीं हुई। परन्तु विडम्बना यह है कि जन-क्रान्ति के इस नन्हे युग का मसीहा लोकनायक अशक्त-सा अपने घर में उदास, दीवारों के बीच नितांत अकेला पड़कर अव्यक्त त्रासदी जी रहा है, देश उससे कट गया है, जिन्होंने उसे मसीहा माना था वही उस के प्रति लापरवाह हो गए हैं, उसका द्रवित गीलापन उन्हें द्रवित नहीं कर पा रहा, क्रान्ति की बात करते समय वह प्रायः निराश हो उठता है, देश को पुनः आह्वान देने और सही क्रान्ति की बात समझाने में वह स्वयं को असमर्थ अनुभव कर रहा है, उसके अन्तस में दहाड़ते समुद्र की गर्जना उसमें अपने तक ही सीमित होकर रह गई है फिर भी कवि उसके प्रति और जन-शक्ति के प्रति आश्वस्त है कि कुछ न कुछ अवश्य होगा।

परन्तु जब कवि का सपना पुनः घटित नहीं होता तो वह जीवन के प्रति उचाट हो जाता है क्योंकि पूर्ण और निष्ठावान समर्पण का अर्थ कोई जानने नहीं देता, जीवन सही जीवन नहीं रह गया और नागरिक सभ्यता से त्रस्त होकर वह प्रकृति की गोद में चला जाना चाहता है परन्तु ये पंक्तियां कवि के पलायन की द्योतक नहीं हैं, वस्तुतः जीवन से उसका प्यार अभी जिंदा है, जो फैले हुए उन्मुक्त आकाश में उड़ान भरना चाहता है। बन के किसी पेड़ की तरह उग कर वह पक्षियों का नैसर्गिक संगीत सुनना चाहता है, उन्मुक्त हवा के दुलार भरे थपेड़े महसूस करना चाहता है। कुल मिलाकर जीवन की विसंगतियों से मुक्त होकर पूर्ण निष्ठा सहित, किसी ऊंचे पहाड़ से बलखाती नदी की तरह महासागर में समर्पित हो जाना चाहता है। परन्तु ऐसा स्वच्छन्द और मुक्त नैसर्गिक जीवन मिल नहीं रहा, चतुर्दिक दुःख ही दुःख है और वह चाहता है कि निरर्थक हो रहे जीवन को, अंतस के अंधेरे कोनों को प्रकाशित करके, सार्थक कर दिया जाए। लेकिन वह यह सब सोच कर ही रह जाता है कुछ कर नहीं पाता, उसे बेबसी का उपचार मिल नहीं रहा, हृदय से फूट रहा दर्द का गीत ज्यों का त्यों है। यातना-सुरंग से बाहर निकल कर कवि हरे-भरे खेतों की ओर नहीं जा पाता।

इन्हीं जीवन-विसंगत स्थितियों और दुःखों से घबराया हुआ कवि कभी प्रकृति की शरण में जाता है तो कभी प्रभु की तलाश में भटकता है। यह प्रभु कहीं तो उसे प्रेमिका प्रतीत होता है और कहीं उन्मुक्त आकाश, कहीं वह उसी में स्वयं को आलिंगनबद्ध अनुभव करता है। यही उसका सर्वस्व है, उसी से अनुभूति की शक्ति मांगता है, इसको धन्यवाद देना चाहता है जबकि जानता है कि यह धन्यवाद भी तो औपचारिक ही है।

4.1.13.3 प्रणयानुभूति का स्वरूप 'आग जल रही है' संकलन में प्रणयानुभूति से सम्बंधित भी अनेक कविताएं हैं, जिनमें वियोग की अपेक्षा संयोग की सुखदानुभूतियों और

उल्लास का चित्रण हुआ है। वियोग के क्षणों में कवि संयोग-क्षणों का स्मरण करता है तो प्राकृतिक परिवेश और स्वच्छन्दता के बावजूद उदास हो जाता है, यह उदासी उसकी प्रेमिका के प्रति अतिरिक्त निष्ठा और तरल संवेदना को ही व्यक्त करती है। जब फागुनी धूप रेशे-रेशे में उतर आती है, तब उसे प्रियतमा याद आती है। वह अनुभूति के स्तर पर प्रियतमा को आत्मलीन किए हुए है, उसे बस प्रियतमा के सिवा कुछ नहीं दिखता। मानो जीवन पहाड़ी से गिरते झरने की मानिंद प्रियतमा को समर्पित है और समर्पण का यह सिलसिला अबाध गति से चलता रहेगा।

प्रणयानुभूतिजन्य इस समर्पण के दौरान 'तुम' का दर्द भी सांझा तथा 'एक' हो उठता है, क्योंकि 'मैं' में नहीं 'तुम' हो चुका है और 'मैं' अपने भीतर का सारा अमृत 'तुम' के विष को पीकर 'तुम' को दे चुका है। वस्तुतः वह प्रियतमा के दुःख-संताप के सारे विष को पी जाना चाहता है।

वह उपकृत-सा है क्योंकि जिद्दी स्वभाव वाली सीधी-सादी-सी लड़की उसके प्रति बावरी हो, खुद न जीकर क्षण-क्षण उसी के लिए जीती रही है, उसी की कामना में व्रत रखती रही है। उसके प्रति निराश नहीं रही बल्कि घोर तपस्या में लीन रही है जबकि वह स्वयं आत्म-प्रवंचना में क्षण-क्षण टूटता संयम के व्यूह तोड़कर खुद को खण्डित करता रहा है।

अपने प्रति प्रिय के उदार विश्वास और आस्था, उसे पाने के दृढ़ संकल्प और एक निष्ठ प्रेम, प्रिय की कल्याण कामना के निमित्त रखे उपवास और त्यागमय तपस्या के कारण कवि प्रियतमा से उपकृत-सा है और उसके सभी दुःख और विष पीकर उसे सुख देने का संकल्प किए हुए है।

कवि अनुभव के इस धरातल पर पहुंचा है कि प्रणय में निजी अहं का कोई स्थान नहीं, अहं प्रेम के लिए घातक है, अहं प्रेम-पात्र की उपेक्षा करता है, जिसकी प्रतिक्रिया में प्रेम-पात्र की भी कोमल भावनाएं मर जाती हैं और अहंजन्य उपेक्षा दोनों को परेशान करती है, उपेक्षिता प्रेमिका यदि एकनिष्ठ प्रेम का परित्याग करके वासनाग्रस्त हो जाए तो स्थिति अत्याधिक विस्फोटक और घातक हो सकती है क्योंकि नारी की कोख ही सृष्टि की संरचना करती है, वही जीवन का मूल स्रोत है। अतः दोनों अहं का त्याग करें, परस्पर समझौता करके जीवन की वासंती यात्रा की शुरूआत करें। अन्यथा अपने-अपने जिस्मों में कैद होकर रग-रग में संचरित स्मृतियों की पीड़ा भोगने के लिए अभिशप्त होना पड़ता है, नींद गुम हो जाती है, रग-रग पर पीड़ा का इतिहास सिमटा रह जाता है, आदमी सभी अर्थ खोकर शून्य हो जाता है, समय कटता नहीं, जबकि उत्सुक-सी प्रियतमा सर्वस्व-समर्पण के लिए तैयार बैठी रह जाती है-

''पर तुम अब भी आ जाओ/रात के इस अन्तिम प्रहर में/तो स्वागत करेंगे/मेरे फफकते होंठ/मेरी छातियों का/बेपनाह दर्द/कर देगा सम्पूर्ण समर्पण/ओ मेरे भोले प्रियतम।'' (पृ० 107)

कवि स्पष्ट करता है कि ताज महल बना देना प्यार की अन्तिम कसौटी नहीं बल्कि पूर्ण निष्ठा सहित अहं-त्याग कर हृदय की सुगन्ध को न्योछावर करना प्रेम की कसौटी है, रोम-रोम

से सहभागी के चिरंजीवी होने की कामना करना, उसकी पूजा करना ही कसौटी है। एकनिष्ठ विश्वास और पूर्ण आस्था सहित उदार त्याग की भावना से सिक्त होकर प्रिय के ही प्रेम के प्रति सर्वस्व सहित समर्पित हो जाना ही प्रेम की कसौटी है। ये अच्छी कविताएं हैं।

4.1.14 धूप की तरह खिला वर्तमान बलनील देवम का 1980 ई. में 'धूप की तरह खिला वर्तमान' काव्य-संग्रह प्रकाशित हुआ है, जिसमें प्रणय सम्बंधी 20 नयी कविताएं हैं जबकि दो पूर्व प्रकाशित संग्रहों से ली गई हैं। यहां जीवन में प्रणय के महत्व को अभिव्यक्त किया गया है। इन कविताओं में अनुभूति की तरलता का अच्छा संयोजन हुआ है। इन कविताओं का मूल्यांकन प्रस्तुत है।

4.1.14.1 प्रणयानुभूति का स्वरूप-विकास कवि प्रियतमा से उपकृत-सा है। वह प्रियतमा से अंजुरि भर हंसी मांग रहा है जबकि उसे देने के लिए अपने पास उदासी के सिवा कुछ भी नहीं और विडम्बना यह है कि इस उदासी का कारण भी वह नहीं जानता। परन्तु प्रियतमा के सान्निध्य में वह जन्म-जन्म की उदासी भूल जाता है, अधरों पर हंसी बन कर प्रियतमा छा जाती है, उसके प्राणों की खुशबू कवि के प्राणों में समा जाती है और यह सब अचानक ही होता है।

प्रियतमा की सागर-सी गोद में पड़ा और उसकी कांपती उंगलियों के स्पर्श में वह सारी उदासी भूल जाता है, उसकी आंखों में देखता हुआ वह सूक्ष्म तक जा पहुंचता है, सौंदर्यशास्त्र का रहस्य समझ लेता है, प्रणयानुभूति को जी लेता है, खुशबू की तरह सभी जगह फैला रहता है। इस अमुखर प्रणयानुभूति की अभिव्यक्ति के लिए कवि फन्तासीपूर्ण कल्पना करता है और प्रेम के नाम पर वह अपने भीतर से बाहर और बाहर से भीतर तक यात्रा करता है।

वक्त ने मानो कोई करिश्मा किया है क्योंकि विधि विधान तथा ज़मीन-आसमान बदल गया है। न कोई हवा को चीरते पंखों को काटता है, न रोम-रोम से फूटते गीतों की गर्दन दबोचता है मानो अब दिन बदल गए हैं क्योंकि दोनों परस्पर मिलन का अटूट सुख भोग रहे हैं जबकि जन्मों पहले दोनों का साथ छूट गया था। प्रेमी बदल गए वक्त के प्रति उपकृत है और उसे दिली सलाम कहता है, उसके जीवन का हर एक लम्हा अब अपना न रह कर मुहब्बत की देवी के नाम अर्पित हो रहा है और प्रेमिका की रूह की खुशबू उसकी रूह की खुशबू के साथ मिल गई है। अब उसे कोई चिंता नहीं क्योंकि उसे विश्वास है कि उनकी मुहब्बत का फूल सारी उम्र महकता रहेगा।

वह आसमान छूती चोटियों पर प्रेमिका के साथ बर्फ का घरौंदा बनाना चाहता है क्योंकि वह आश्वस्त है कि उनके पवित्र प्यार की गर्मी से यह घरौंदा पिघलेगा नहीं, वहां सफेद फूल सुर्ख अंगारों की तरह दहकते रहेंगे, कृष्ण की बांसुरी की धुन पर ठगी-ठगी मुग्ध राधिका की भांति वे क्षण बहुत मासूम होंगे और वे दोनों एक दूसरे के हृदय के भीतर धड़कते रहेंगे। कवि **मिलन-क्षणों** का चित्रण करता हुआ लिखता है-

"**इस बार सर्दियों में**/हमारे जिस्मों ने छुआ है एक-दूसरे को/और

हमारे जिस्मों के भीतर बहती/रक्त की गर्म नदी/उछल कर बही है आकाश की ओर।''

कवि प्रणयपथ को सुगम भी नहीं मानता क्योंकि यह जीवन-यात्रा बहुत लम्बी, अंधी और भयानक है, अनन्त पीड़ाओं से लिथड़ी और आंसुओं से भरी है जो बिना श्रद्धा और समर्पण के पूरी नहीं हो सकती और यदि इस यात्रा में प्रेमिका का मासूम हृदय फट जाए तो प्रेमी को कोई माफ नहीं करेगा। वह प्रेमी को चेतावनी देता है कि उनके प्रणय सम्बंधों में दरकन न आए।

प्रियतमा की देह के माध्यम से कवि अलौकिक, आध्यात्मिक अनुभूतियों को भी ग्रहण करता है और देह के पार वह जो कुछ देखता है वह उसके तार-तार को बजा देता है और उसे तितलियों की तरह उड़ाता है।

''माध्यम तो देह ही है न/इसलिए चूमता हूं उसे/और चाटता हूं, जैसे शहद।'' (पृ० 38)

कवि मांसल प्रेम को अस्वीकारता नहीं बल्कि उसी से अलौकिक अनुभूति की ओर बढ़ता है। प्रथम चुम्बन के उपरान्त ही वे दोनों जैसे समाधिस्थ हो गए हैं, सूरज भी उन्हें देखकर मुस्कराता है, इन क्षणों का संगीत उन्हें आत्मा में बजता अनुभव होता है, वह स्वयं नशीली आग की नदी में नहाया था, उसके रोम-रोम में भी प्रथम चुम्बन का अलौकिक स्वाद भरा है। मांसल प्रणय को कवि सूक्ष्म अनुभूतियों तक ले जाना चाहता है- ऐसी अनुभूतियों तक-जो दोनों के रोम-रोम को खुशबुओं से महका दे-

''अधखुली पलकों के बीच हैं जो तुम्हारी/हल्की भूरी अखियां/उन्हें जी भरकर छलकने दो खुशी से/और बहने दो सुख, मेरी नस-नस में। अपनी अंगुलियों के पोरों से/मेरी देह का स्पर्श करके/सुनाओं मुझे कंपकंपी का संगीत/और नथुनी को चूम कर/आत्मा तक थरथराने दो मुझे।'' (पृ० 43)

कवि प्रणय में मांसलता को तो स्वीकारता है परन्तु प्रेम को नंगा नहीं देखना चाहता, न ही लोगों की गन्दी छिछली कुदृष्टि को महत्व देता है, न उनकी अफवाहों की परवाह करता है। उसके लिए तो प्रणय में प्रेम, श्रद्धा, निष्ठा, मासूमियत, ईमानदार और निष्ठावान समर्पण है, सुख दु:ख का पूंर्ण सांझापन है और यह प्रणयानुभूति समूचे जीवन बल्कि जन्म-जन्मान्तर तक छाई रहती है। इसी प्रणयानुभूति के अन्तर्गत वह प्रेमिका को आश्वस्त करता है-

''और जब हम पहुंचेंगे अपनी मंजिल पर/हमारे तितलियों से रंग बिरंगे पंख/उग आएंगे और हम/आकाश के पार गुम हो जाएंगे/अफवाहों को ठेंगा दिखाकर,/समाज को त्रिशंकु-सा छोड़ कर।'' (पृ० 44)

कवि की प्रेम कविताओं में यथार्थ की अपेक्षा रोमांटिकता का स्वर अधिक मोहक है।

4.1.15 इस बार शायद महाराज कृष्ण संतोषी का 32 कविताओं का संग्रह 'इस बार शायद' 1980 ई. में प्रकाशित हुआ। इन कविताओं में कवि का निजत्व, हंसी-उल्लास, दु:ख दर्द आदि जन-साधारण की इन वृत्तियों के साथ ऐसा गहरा तादात्मय स्थापित करके अभिव्यक्त हुआ है कि उसे जन-साधारण की मानसिकता और पीड़ा से अलगाया नहीं जा सकता। शायद

इसी कारण इन कविताओं में दुरूहता नहीं, सम्प्रेषणीयता और साफगोई का अतिरिक्त गुण है। झेलने का दर्द, प्रवंचना को समझ और उदासी इन कविताओं की भावभूमि है और शिल्प तथा संवेदना 'नयी कविता' जैसी। इन कविताओं का मूल्यांकन प्रस्तुत है।

4.1.15.1. जीवन-यंत्रणाओं और विडम्बनात्मक स्थितियों का चित्रण कवि को लगता है कि मौजूदा व्यवस्था दु:खदायी है, यहां सुख की इच्छा करना बगावत करने के समान है, यहां सभी को एक समान नियमों के अन्तर्गत यन्त्रणा दी जाती है. कोई व्यक्ति इस यंत्रणा और जलन से मुक्त नहीं। कभी मौसम तो कभी तकदीर की तलवार से आहत संत्रास और आतंक झेलता प्रत्येक व्यक्ति सूखी रोटी और बासी नींद के लिए गर्दन झुका कर हथेली फैलाता है, जिजीविषा की अपेक्षा आत्म-मुक्ति का राग अलापता है।

इस स्थिति में जिंदगी, देश, राजनीति, साहित्य, संस्कृति पर कैसे विचार-विमर्श करें? यहां आग की सल्तनत है, जो सब को जलने का आदेश देती है। यह व्यवस्था तेज़ाब की तरह व्यक्तित्व को गला देती है, आदमी इसके चंगुल में फंसा हुआ छटपटा कर रह जाता है। समर्पण वृत्ति और विद्रोहहीनता के कारण ही व्यक्ति का भविष्य अनिश्चित है। अच्छी फसल का वादा करने वाला बीज व्यवस्था रूपी तेज़ाब में गल जाता है या व्यवस्था रूपी ऊंट के पांव के तले दब जाता है-

''और मेरा अब कोई भविष्य है/तो सिर्फ इतना/शायद किसी ऊंट के पैरों से/बाहर निकल आऊं/किसी चिड़िया की चोंच में/समा जाऊं।'' (पृ० 25)

परम्परा में आग और सूरज जिजीविषा का प्रतीक है परन्तु कवि इन्हें मौजूदा व्यवस्था के रूप में प्रतीकित करता है। परम्परा से प्राप्त सौंदर्यबोध को नकारता हुआ कवि सूर्योदय को जिजीविषा के ऐसे निरर्थक संघर्ष का आरम्भ मात्र मानता है जो अंतत: आत्महत्या के लिए विवश कर रहा है। यहां सूर्योदय सुन्दर गुलाब-सा नहीं खानाबदोश औरत है, जिसके समक्ष नपुंसक होना शर्मनाक ही नहीं अपराध भी है। यहां सूरज देवता सदृश नहीं जिसका हाथ जोड़ नम्रता से स्वागत किया जाए, बल्कि पछाड़ फैंकने का इच्छुक सांड है और दिन के हिंसक दांत आत्मा तक को मांस की तरह काटते हैं। कवि इस सांड (यानी सूरज जो दाहक है और व्यक्तिघाती व्यवस्था का प्रतीक है) को पछाड़ देने का आह्वान करता है और समर्पण वृत्ति पर चोट करके संघर्षचेतना को जागृत करना चाहता है-

''हाथ जोड़ना बंद कर दो/सूरज को नुकीले सींगों से पकड़/फैंक आओ/कमज़ोर आदमियों के चौराहे पर।'' (पृ० 8)

सूरज की अपेक्षा कवि संघर्षचेतना को ही अंधकार को दूर करने वाली रोशनी मानता है जबकि विडम्बना यह है कि इस रोशनी का अनादर करके हम आत्म-कुण्ठित होकर रह गए हैं और जिंदगी बदतर होती जा रही है। तिस पर तुर्रा यह कि जिंदगी में परिवर्तन की किसी को कोई खबर तक नहीं। दिन को हमने हरामी बच्चा समझ कर फेंक दिया है अत: समय का बासीपन त्याग कर नवीनता की शुरुआत करने की अपेक्षा किसी सुखद घटना की आशा करना

व्यर्थ है। अब तो बस खामोशी की तंग सुरंग में जीना ही नियति बन गया है या कवि को लगता है कि उसकी सब सुखद घोषणाएं और दावे झूठे पड़ गए हैं, किसी स्वप्न या अरमान की कल्पना करना भी बेकार है। जीवन में मरण तुल्य ठण्डक आ समायी है, जिसे वह जिजीविषा की धूप में सेंकना चाहता है परन्तु विडम्बनात्मक जीवन स्थितियों से उसे यही ठण्डक उपहार स्वरूप मिली है, अब तो बदलता मौसम गाली जैसा प्रतीत हो रहा है और प्रत्येक व्यक्ति अपने-आप को मन ही मन बिक्री का माल समझ रहा है, उसकी आत्मा मांस की तरह बिक रही है।

स्थिति यह है कि मसीहा भी चुप हैं क्योंकि वे भी जानते हैं कि लोगों ने अपने भीतर की जीवन-नदी (संघर्षचेतना) की उपेक्षा कर दी है और अब तो आदमी ठहरा हुआ पानी या मात्र अखबार का आंकड़ा होकर रह गया है । वस्तुत: जल-जीवन का प्रतीक माना जाता है और नदी जीवन-धारा की। जबकि अब आदमी का जीवन सैलाब का जल बन कर सडांध युक्त हो रहा है। कवि मानता है कि पहाड़, दरिया, समन्दर या भयंकर खाइयों में भटक कर या आग से दहकती पगडंडियों पर भटक कर जिंदगी की तलाश करने की आवश्यकता नहीं, न ही नये सूरज, चांद या नये नक्षत्रों का निर्माण करने की आवश्यकता है, बल्कि आदमी को अपने भीतर झांककर आत्म-मूल्यांकन और आत्म-शोधन में जिंदगी की तलाश करनी होगी और पराश्रित या पराङ्मुखी होने की अपेक्षा आत्म-संशोधन में जिंदगी को तलाशना होगा।

परन्तु ऐसा नहीं हो पा रहा, मरणधर्मा मन:स्थितियों के शिकार आदमी का अस्तित्व बेकार और निरर्थक होता जा रहा है, जीवन के अहसास के लिए वह सड़कों पर अकारण घूमता हुआ पुराने पोस्टरों के शब्द दुहरा रहा है, जिंदगी के 'वैक्यूम' में से कविता को टटोलने का व्यर्थ प्रयास कर रहा है और पराजय बोध से ग्रस्त हो रहा है। वह पराजित ही नहीं असुरक्षित भी है। कवि को लगता है कि उसकी उपस्थिति बेकार ही जगह घेर रही है, उसका अस्तित्व निरर्थक और अनुपयोगी होकर रह गया है, जबकि किसी समय वह 'केरोसिन' के पीपे की तरह उपयोगी था। स्पष्ट है कि कवि इस मानवघाती व्यवस्था पर चोटें करता चलता है, जिसमें आदमी पंगु, निरर्थक और अस्तित्वहीन-सा होकर रह गया है, साथ ही साथ कवि ने व्यक्ति की संघर्षहीनता, ढुलमुलपन, विनम्र समर्पण की वृत्तियों पर चोट की है। वह चोट करता है कि आदमी ने जीवन नदी की खुद ही उपेक्षा कर दी है तो कोई मसीहा उसकी क्यों मदद करेगा ?

4.1.15.2 त्रासद मानव-नियति आधुनिक व्यवस्था के कारण जन-जीवन में घर कर गई ऊब, यांत्रिकता, अजनबीपन और विसंगति का चित्रण भी कवि ने किया है, उसे लगता है कि अविश्वास, शंका, अवहेलना ने परस्पर स्नेह की वृत्ति में विष भर दिया है, आदमी जीवन से तटस्थ होकर रह गया है। विडम्बना यहां तक आ पहुंची है कि कार्यालयों की मनहूसियत से ऊबे कर्मचारी बुलबुल के अमरगान की कद्र तक नहीं कर पाते क्योंकि कार्यालयों में तो सूरज की किरण तक जंगा जाती है, इस स्थिति में कर्मचारी की प्रतिक्रिया कैसे सुखद हो सकती है।

कवि को प्रतीत होता है कि इस व्यवस्था में आदमी पूर्णतया यांत्रिक-सा होकर रह गया है। खालीपन और अन्तर्विभाजन से ग्रस्त वह यंत्र-चालित-सा घर चलाता है, दफ्तर में काम करता है, कविताएं सुनाता है, परन्तु सब जगह खालीपन ही उसका प्रतिनिधित्व कर रहा है।

विडम्बना यह है कि आशीर्वाद के रूप में भी उसे खालीपन की ही आशीष मिलती है।

उसे लगता है कि अब जीवन स्थितियां हमवार नहीं रही हैं, मामूली से सुख के लिए भी भटकना पड़ रहा है, युवा पीढ़ी के पास तो जिंदगी का अर्थ तक नहीं रह गया, उसका समूचा जीवन पतझड़ग्रस्त-सा है। लगता है जैसे डूबते सूरज के साथ ही राहें खो जाती हैं, मौसम की चिंताएं मस्तिष्क से धुल जाती हैं, न आकाश प्रेरित करता है न कोई कविता ही पीड़ित करती है। विडम्बना यह है कि इन दुःखद स्थितियों में भी यदि वह आनंद-विभोर होना चाहे तो अकेलापन भी नहीं भोग पाता। वह चाहता है कि कोई उसके अकेलेपन से ईर्ष्या न करे और वह सभी बंधनों से मुक्त होकर अकेलेपन में ही सही जी ले, परन्तु यह जीवन भी संभव नहीं। ऐसे पतझड़ग्रस्त जीवन में वह बसंत का इंतजार करता हुआ पतझड़ की कविता लिखता रह जाता है, परन्तु इसका भी कोई लाभ नहीं और बसंत के स्वागत में नगारे बजाने का भी कोई लाभ नहीं।

सारे जहां का दर्द कवि के हृदय में समा रहा है, पराये घाव को भी वह वैयक्तिक पीड़ा की तरह भोग रहा है और अनुभूति के प्रांगण में गुलाबों का इंतजार कर रहा है ताकि लोगों में गुलाब बांट सके। वह लोगों के दुःख को अपनी कविता का विषय बनाना चाहता है क्योंकि रोमानी ग़ज़लों में लोग उपेक्षित रह गए हैं और जिंदगी की भयावहता से भाग कर लोग स्वयं को नशे के हवाले कर रहे हैं, सुखद मृत्यु के स्वप्न संजो रहे हैं। स्वच्छ वातावरण के अभाव में जिंदगी सुधर नहीं पा रही, आदमी को अब किसी वीरान जगह में राख ही होना है।

विडम्बनाजन्य इन स्थितियों के बावजूद कवि आश्वस्त है कि कोई न कोई आदमी ऐसा है जो फालतू घास की तरह अंधेरे को काटता हुआ रोशनी के अंकुर बो रहा है और उत्पादन के क्षणों में हो रहे कोलाहल को मानवता का वरदान समझता है। आम आदमी अपने भीतर की शंका और आकांक्षा के बीच के तनाव के पुल को वह पहचानता है, वह अपनी विवशता को जानता है फिर भी शिकायत नहीं कर पाता, न चाह कर भी सब दुःख दर्द सहे जा रहा है, वह कट रहे जंगल के दर्द को समझता है, आशा के हरेपन को छोड़ भी नहीं पाता और मौन साधे रह जाता है। उसकी ममता ही उसे दुविधाग्रस्त किए हुए है। आदमी के भीतर का ममत्व उस मां की ममता जैसा है जो बिना हिचकचाहट ममत्व के कारण अपना सर्वस्व ही किसी अन्य के जीवन के लिए न्योछावर कर देती है।

"तुम नदी भी हो/मगर कब किसी मछेरे को/मना किया है तुमने/जाल फैलाने से/सतह के नीचे/हालांकि तुम हर उस बार/रोती भी हो/जब निकाली जाती है/कोई नन्हीं मछली" (पृ 36-37)

कवि को दुःख है कि विघटन की यह प्रक्रिया रोकी नहीं जा रही। जीवन का मेला उखड़ता जा रहा है, यदि ह्रासशील दृश्य भी खत्म होने ही हैं तो इनके प्रति दुविधाजन्य ममत्व का कोई लाभ नहीं। कवि इस ममत्व को त्याग कर अन्तर्मुखी वृत्तियों से बाहर आ जाने का आह्वान देता है। उसे लगता है कि इसी वृत्ति के कारण आदमी छला जा रहा है, वह वैयक्तिक सुख के लिए अन्य के सुख की परवाह नहीं कर रहा, उसे उपेक्षित कर रहा है और यह

व्यक्तिवादी सोच साधारण अन्तर्मुखी व्यक्ति के लिए घातक स्थितियां पैदा कर रही है और जिंदगी निरर्थकता, ऊब और यांत्रिकता के कारण टूट-टूट कर बिखर रही है और आदमी मात्र मौसम और तकदीर को दोष दे कर रह जाता है। वह न तो जिंदगी के निराश क्षणों के रेगिस्तान में अधजली बुझी लकड़ी-सा पड़ा रहना चाहता है न ही आत्मा को पसीने से तरबतर अश्व की तरह निरर्थक दौड़ाए रखना चाहता है। आत्मघाती निराशा की इस स्थिति से उबर कर वह अपने तथा साधारणजन के जीवन को सार्थक बनाने के लिए विशाल वृक्ष की तरह फैल जाना चाहता है-

"मैं होना चाहता हूं/तब एक वृक्ष विशाल/फैलाना चाहता हूं। अपनी शाखें/महसूसना चाहता हूं निश्चिंत/मौसम का स्पर्श/पक्षियों के झकझोरने से/झूमना चाहता हूं/डाल-डाल" (पृ० 57-58)

स्पष्ट है कि कवि व्यवस्था को ही आदमी की ऊब, निरर्थकता, जीवनगत यांत्रिकता तथा अजनबीपन का कारण नहीं मानता, वह उसके दुविधाग्रस्त ममत्व और मनोवृत्तियों को भी विघटन-प्रक्रिया का तीव्र कर्त्ता मानता है और इन अन्धी मनोवृत्तियों से मुक्त होकर जीवन को सार्थक बनाने की प्रेरणा देता है। कवि का भावबोध और शिल्प नया है और संवेदना साधारणीकृत। अच्छी कविताएं हैं परन्तु कहीं-कहीं कुछ काव्य-खण्ड दुरूह और असंगति दोष से ग्रस्त भी हैं।

4.1.16 डूबे हुए सूरज की तलाश 1980 ई. में प्रकाशित अशोक कुमार के कविता-संग्रह 'डूबे हुए सूरज की तलाश' में कुल 40 कविताएं हैं। जिनमें प्रणयानुभूति और जीवन-संघर्ष की अनुभूतियों के साथ-साथ सामाजिक यथार्थ से जुड़ी काफी कविताएं हैं। चिंतन और शैल्पिक संतुलन के बावजूद कहीं-कहीं अनुभूति की शून्यता का दोष खटकता है, अनुभूति की राह से गुजरे बिना कविता गढ़ने का कोई लाभ नहीं, न ही विचार कविता और अस्तित्ववादी रुग्णता की पैरवी करने की जरूरत है, अस्तित्ववादी रुग्ण मनोवृत्तियों ने इनकी कविता को काफी प्रभावित किया है। निरर्थकता, संत्रास, ऊब, घुटन जैसी वृत्तियां पैदा होकर कविता के संघटन में अकारण ही दरार डाल रही हैं।

4.1.16.1 मानवी अस्तित्व की चिंता जनजीवन में फैले अभाव, निर्धनता, यांत्रिकता और रोजी रोटी की भागदौड़ में मानव-मात्र के कोमल रिश्ते टूट रहे हैं। आर्थिक अभावों के कारण पारिवारिक राग-अनुराग के बंधन टूट रहे हैं, व्यक्ति की निजी कुण्ठाएं भी कोमल रिश्तों के लिए घातक हो रही हैं। इन मूल्यघाती जीवनस्थितियों से कवि परिचित है परन्तु उसकी अनुभूति अंतश्चेतन के धरातल पर आंदोलित नहीं हो पाई। जीवन स्थितियों का चित्रण अच्छा है परन्तु रागात्मक सम्बंधों से अलगाव का कोई विशेष कारण नहीं है। मात्र मरणधर्मा मनोवृत्तियों की सूचना ही मिल पाई है, अलगाव का कोई महत्वपूर्ण और सार्थक उद्धेश्य स्पष्ट नहीं हो पाया।

कवि को लोग फुटपाथों पर मौन साधे चलते पुतले प्रतीत होते हैं, जिनके स्पंदन, जीवन-प्राण और रक्त-संचार का वह परीक्षण करना चाहता है परन्तु इंजैक्शन की सूई रक्त की

बूंद लिए बिना लौट आती है। जीवन की यांत्रिकता और ऊब से ग्रस्त आदमी उसे पुराना खोटा सिक्का प्रतीत होता है जो चाय के प्यालों और घूमती फाइलों में जीवन व्यतीत कर रहा है, जिसके लिए ऋतुएं अतीत स्मृतियां मात्र हैं। जो जीवन-संघर्ष वह कर रहा है वह न उसका अपना है न अपने लिए है बल्कि वह तो किसी अन्य के लिए मात्र उपयोग की वस्तु होकर रह गया है। उसका यह तथाकथित जीवन-संघर्ष उसी के लिए घातक हो गया है। मशीनीकरण के कारण भी आदमी यांत्रिक-सा जीवन जी रहा है, विवशता और निराशा से घिरा वह जीवन की जड़ता से त्रस्त है, वह अजीब संत्रास से घिरा रहता है, साधारण मृत्यु या जलकर मरने के बीच कोई फर्क नहीं रह गया। बदलाव दिखता है परन्तु कुछ नहीं बदलता, बदलता है तो मात्र सोचने का ढंग, गोली भी चलती है तो कुछ नहीं होता, चहारदीवारी के अन्दर खोखले घरों का क्रन्दन तह-दर-तह जमता रहता है और प्राण फड़फड़ाते रहते हैं। आदमी घिसे हुए बेकार पुर्जे से अधिक कुछ नहीं जो सन्नाटे और शोर दोनों में ही मिसफिट हो गया है और स्वयं को बचा लेने की मजबूरी से विवश भी है। वह नई भोर की अंतहीन प्रतीक्षा कर रहा है। जबकि मुर्दा अहसास के कंधों पर टिकी शाम भी उससे दूर हो जाती है।

परन्तु कवि आदमी की इन उपर्युक्त विषम जीवन-स्थितियों के कारण पर कहीं कोई चोट नहीं करता न ही कारण को उभारता है, मात्र वस्तुस्थिति को उजागर करके रह जाता है। हां वह विषमता से घिरे आदमी के भीतर की जिजीविषा और जागृत हो रही संघर्षचेतना की ओर कहीं-कहीं संकेत अवश्य करता है। यह जिजीविषा क्षणिक आह्लाद देती है। परन्तु संघर्षहीनता के कारण चेतना की जागृति पुनः विडम्बनाग्रस्त हो जाती है।

चेतना की जागृति के साथ-साथ बुद्धि का आकाश फैलता है परन्तु वह क्षण-प्रति-क्षण रिसता जा रहा है क्योंकि वह पराजय बोध से ग्रस्त हो गया है। उसने आकाश पर आवारा बादलों का बहुमत और आधिपत्य देखा है, इनकी शरारतों के कारण उसके आंगन में कभी चांदनी नहीं नाची उसका आंगन असुरक्षित है जिसमें वह हरेक अव्यवस्था को निमंत्रण दे सकता है?

बल्कि आंगन में चूहों और चीटियों द्वारा बनाए गए छिद्रों का जमघट है। गलियों का ढेर, शब्दों का कूड़ाकरकट, रातभर में टूट गए मिट्टी के खिलौनों को पत्नी ने उठा कर कूड़ेदान में फैंक दिया है। यहां कवि का आंगन समूचा देश और टूटे हुए खिलौने देश के कुण्ठित टूटे हुए नागरिक प्रतीत होते हैं और इस आंगन के गुलाब का पौधा भी फूलों से अधिक कांटे ही देता है, पौधों की दो डालों में से एक सूखी हुई है अर्थात् लोगों का एक वर्ग जीवन शून्य है। इस आंगन जैसी ही स्थिति कवि के शहर की भी है जिसमें तनाव और संत्रास फैला हुआ है। यहां कवि ने अच्छा रूपक तैयार कर लिया है।

कवि को चतुर्दिक् घुटन, ऊब, संत्रास, असमंजस, विसंगति की अनुभूति होती है, वह परिवेशगत विरोधाभास को न पहचान पाने के कारण अपनी कविता को पूर्णविराम देने के लिए विवश हो रहा है। महत्वाकांक्षाओं का आकाश कभी खत्म नहीं होता, चाहे जितना उड़ लें अंततः धरती के यथार्थ पर उतरना ही पड़ता है। विडम्बना यह है कि नीड़विहीन पक्षी धरती के यथार्थ से घबरा कर आकांक्षाओं में ही गुम हो गया है और महत्वकांक्षाओं के आकाश में ही

कहीं गिर जाना चाहता है, जबकि अन्तश्चेतन में छिपी जिजीविषा अभी मरी नहीं है। अन्तश्चेतन में चमकती जिजीविषा उसे जीने के लिए प्रेरित करती रहती है। कवि जीवन-विरोधी स्थितियों का चित्रण करता है परन्तु इन जीवन-स्थितियों के कारण को नहीं ढूंढता, न ही उन पर चोट करता है।

4.1.16.2 आर्थिक विषमता और जीवन-यथार्थ कवि ने युवा वर्ग की बेकारी और उसकी आर्थिक विपन्नता को उसके घर-परिवार और दाम्पत्य जीवन के साथ-साथ उसकी प्रणयानुभूतियों के लिए भी घातक माना है। आर्थिक विपन्नता के कारण आदमी के मन के सभी कोमल तंतु टूट बिखर रहे हैं और रिश्तों की कोमलता समाप्तप्राय हो रही है। जीवन के सभी क्षेत्रों में उसे अपमान और उपेक्षा झेलनी पड़ रही है। वह आत्म-प्रवंचित व्यक्ति है, उसके जर्जर ठूंठ तन पर ऋतु-परिवर्तन के बावजूद मृदुल बसंत नहीं आता बल्कि बैल गाड़ी वाला इसकी सूखी डाली को तोड़ कर बिना विश्राम किए आगे बढ़ जाता है। दाम्पत्य जीवन में भी उसे चोट खाए अहं की पीड़ा भोगनी पड़ रही है, वह पत्नी को भरपेट भोजन नहीं दे पाता, तन ढांपने को कपड़ा नहीं दे पाता।

''जब बार-बार पानी पी कर/डकारें लेती हो/तब मेरा महारथी होने का गर्व टूटता है/.../ अनचाहे वातायनों से/लुकते छिपते तुम्हारे अंग/दिखलाई देने पर/मुझे अपने नंगा होने का बोध होता है/सोचता हूं/तुमसे, अपने आप से भागना/एक नाटक ही था,/आत्म प्रवंचना थी'' (पृ० 19-20)

उसका जीवन प्रणयविहीन है और निरर्थकता की पीड़ा तीव्र है। परन्तु इन क्षणों में वह स्वयं को घुन लगे गेहूं-सा अनुभव करता है जो गोदाम के अंधेरे में काई में बिखरा पड़ा है और निरर्थक है। जब उसे अचानक प्रेमिका के सान्निध्य का ध्यान आता है तो उसके शरीर के सभी अंगों में स्फूर्ति आ जाती है। उसे प्रतीत होता है कि हवा उसकी ओर सरक आई है, उसका अस्तित्व फैल गया है, वह भरापुरा हो उठा है और जीवन के प्रति आश्वस्त हो उठा है, लेकिन उसे ऐसी अनुभूति कम ही हुई है। उसे तो प्रणय-जीवन में अधिकतर अजनबियत ही मिली है, प्रणय-क्षेत्र में वह अभिशप्त-सा रहा है, सैक्स की गरमाहट महसूस कर उसने कोटर बनाने की सोची थी और वह चोंच में तिनका लिए उड़ता रहा है परन्तु एक दिन अनुभव हुआ कि चोंच ने चहकने और दाना चुगने की नैसर्गिक शक्तियां ही गंवा दीं, जबकि उड़ने के बावजूद वह क्षितिज को नहीं पा सका, उसे कहीं कोई जगह नहीं मिली ताकि वह कोटर बना सके क्योंकि सभी जगहें पहले ही अलाट हो चुकी थीं।

मौसम आते हैं परन्तु उस पर वांछित पीले फूल अंकुरित नहीं होते। मौसम फूलों पत्तों को स्पर्श करता है परन्तु कैक्टस किसी अर्थहीन लिखावट से सुसज्जित बोर्ड-सा उपेक्षित रह जाता है। हवा किवाड़ों को धक्का देकर लौट जाती है और वह अपनी इस उपेक्षा का कारण भी धीरे-धीरे जान लेता है। वह जब प्रेमिका को मोल-तोल करते देखता है, कीमती कारों के प्रति उसका लालच देखता है तो उसका मोहभंग हो जाता है। बदल गए दृष्टि-बोध के कारण आंसू बहते हैं, वह बैलों के गले से घण्टियां उतार देता है और उस पीपल को ही काट देता है जिस

पर उसने प्रेमिका के साथ झूला झूला था।

प्रणय के क्षेत्र में मिली इस उपेक्षा की तीव्रानुभूतियों के कारण वह प्रणय की कोमल भावना को तिलांजलि देकर जीवन-संघर्ष में जूझने का संकल्प कर लेता है. उसका क्षुब्ध रति भाव उसे जीवन-संघर्ष की ओर धकेल देता है। उसे आर्थिक अभाव के कारण ही उपेक्षित होना पड़ा है। वस्तुत: जीवन-संघर्ष में जूझने के लिए शौर्य चाहिए, वीर्य चाहिए जिसे वह कौंच के बीजों से प्राप्त करता है और नंगे बदन भिड़ों से भिड़ जाता है।

4.1.16.3 राजनीतिक छलकपट और मानव-जीवन की त्रासदी कवि अशोक कुमार ने राजनीतिक छलकपट पर, नेताओं के खोखलेपन पर, उनके खोखले नारों पर, उनके दोगलेपन पर भी चोटें की हैं, उसने विडम्बनात्मक व्यवस्था को खत्म कर देने की इच्छा प्रकट की हैं। इन कविताओं में कवि हिन्दी की मुख्य काव्यधारा से बहुत अधिक प्रभावित है। शिल्प-संघटन की सुदृढ़ता के बावजूद इन कविताओं में अनुभूति की तपिश कम ही है और प्रामाणिकता का अभाव खलता है। पराई दृष्टि पर विश्वास के कारण वह अपने- आप से छला गया है, यदि वह अपनी दृष्टि का उपयोग करता तो कम से कम मोहभंग की स्थिति में तो न पहुंचता। इस विडम्बनात्मक स्थिति ने तो मानो उसकी जन्मजात प्रवृत्तियों को ही उससे छीन लिया हो। अब वह कार्बनडायक्साइड और ऑक्सीजन दोनों में जी सकता है, मिट्टी और जड़ों का अभाव उसे सालता नहीं, उसका अपनत्व का भाव कुचला जा चुका है। नेता के प्रति उसमें अविश्वास बढ़ रहा है, उसकी विषैली वास्तविकता से उसका परिचय बढ़ रहा है जबकि बदलाव की इस स्थिति से नेता डर भी रहा है। परन्तु अभी तक विस्फोटक स्थिति पैदा नहीं हुई, लोग अभी भी मार्गदर्शक की तलाश में हैं, जबकि वे अपने सामर्थ्य की भी तलाश कर रहे हैं। अत: एक न एक दिन नेता को जवाबदेह होना पड़ेगा। कवि जान गया है कि उसकी गर्दन से टपकता लहु बगीचे के एक मात्र पौधे को सींच गया है।

कवि को लगता है कि देश का महत्वपूर्ण नेता बूढ़ा हो गया है जैसे सूरज अस्त होकर जल में डूब गया हो, कवि डूबे हुए सूरज की तलाश करता है और एक फैंटेसी का निर्माण करता है जो काफी उलझ गई है।

जीवन-विपरीत वस्तुस्थिति को कवि बदलकर नवसृजन के लिए कसमसाता दर्द अनुभव करता है, उसके रोम-रोम से खून रिसता है, भौहें तन जाती हैं, विचारों की सिलवटें माथे पर उभरती हैं, माथा प्रकाशमय अरुण-सा चमकता है, आंखें दरारों में भी देखती हैं और वह अन्वेषक बन कर नव-सृजन करना चाहता है। अनुभूति के इन्हीं क्षणों में उसे लगता है कि रूप-रूप अब फहर उठा है, ठूंठ ने भी मृदुल अंगड़ाई ली है और वह आश्वस्त है कि अब सभी पहरे झड़ जाएंगे परन्तु सुखद सौंदर्य और आनंद के ये क्षण अधिक देर नहीं टिकते क्योंकि विसंगतियों में घिरा व्यक्ति जीने के लिए विवश कर दिया गया है, व्यवस्था की आकर्षक चोटियों पर लगी जड़ी बूटियाँ विष उगलती हैं और स्थिति यह है कि ठूंठ भी नर भक्षी हो गए हैं, पहाड़ की हवा बांझ होकर आदमी को नपुंसक बना रही है। व्यवस्था के इस चरित्र का उद्घाटन करता हुआ कवि लिखता है–

''इस पहाड़ की हवा बांझ है/घाटी में दो कदम चलने के बाद/धूप लड़खड़ा जाती है। यहां की लताएं बदचलन हैं/इसीलिए पतझड़ बिना बुलाए/चला आता है/और सुना है/यहां के ठूंठ नर भक्षी हैं/ हर यात्री नपुंसक हो जाता है।''

इन कविताओं में कवि का प्रतीक विधान अच्छा है और अर्थ-स्फोट करने वाला है। हां, कहीं-कहीं काव्य-पंक्तियां अर्थ की दृष्टि से भ्रामिक भी हो गई हैं और कुछ पंक्तियों में प्रतीकों में, हिन्दी की मुख्य काव्यधारा का बड़ा सीधा पर नव-सृजन-पूर्ण प्रभाव दिख जाता है।

4.2 कहानी : आठवां दशक

आठवें दशक में हिन्दी के कहानी-क्षेत्र को उर्दू कहानीकार पूर्णतया छोड़ चुके थे और डोगरी के प्रतिष्ठित लेखकों ने भी यह क्षेत्र लगभग त्याग दिया था। हां, इस दशक में डोगरी लेखक धर्मचन्द 'प्रशान्त', जितेन्द्र उधमपुरी और अश्विनी मगोत्रा की क्रमशः 'कमरा नं. आठ', 'कलाकार', 'पानी पर पग चिन्ह' आदि तीन कहानियां प्रकाशित हुई हैं।

इस दशक में पंजाबी के लेखक सत्य प्रकाश आनन्द की मात्र एक कहानी 'इज्जत' प्रकाशित हुई है जबकि पंजाबी के एक अन्य कहानीकार सरदार दीदार सिंह की उत्कृष्ट कहानी 'घुटन' के अतिरिक्त उनका स्वतंत्र हिन्दी कहानी-संग्रह 'धुंधलके' प्रकाशित हुआ है। सरदार दीदार सिंह लगातार हिन्दी कहानी लिख रहे हैं अन्तः उन्हें हिन्दी लेखकों में रखना अधिक तर्कसंगत है।

कश्मीरी के कहानीकार रत्नलाल 'शान्त' की मात्र एक हिन्दी कहानी 'कर्फ्यू' प्रकाशित हुई है, जो उत्कृष्ट कहानी है जबकि हरिकृष्ण कौल को पूरी तरह हिन्दी कहानीकार मान लेना अधिक तर्कसंगत है। उनकी तीन कहानियां 'भ्रातृघाती', 'अगले दिन' और 'गुलमोहर' के अतिरिक्त स्वतंत्र कहानी-संग्रह 'इस हमाम में' के बाद इस दशक में 'टोकरी भर धूप' प्रकाशित हुआ है, जिसमें उपर्युक्त कहानियां संकलित हैं परन्तु यह संग्रह फिलहाल उपलब्ध नहीं। यह हिन्दी में लगातार लिख रहे हैं।

स्पष्ट है कि इस दशक में नए पुराने हिन्दीतर हिन्दी कहानीकार और नये हिन्दी कहानीकार लगातार हिन्दी कहानी को समृद्ध कर रहे हैं। परन्तु सत्यवती मलिक, कान्ता शर्मा, गोपीनाथ कौशिक, मनसाराम शर्मा 'चंचल', संतोष कौल, अयूब प्रेमी, दुर्गादत्त शास्त्री आदि पिछले दशकों के कहानीकारों की इस दशक में प्रकाशित कहानियों के रचनाशिल्प और संवेदना में कोई विशेष परिवर्तन नहीं आया, इन्होंने पुरानी रचना परिपाटी और दृष्टि का ही पिष्टपेषण किया है।

जबकि इस दशक में उभरे नये कहानीकारों में शिल्प की परिपक्वता न होते हुए भी अनुभव की नवीनता है, दृष्टि का पैनापन है और आदर्श की अपेक्षा यथार्थ जीवन-जगत की विसंगतियों के चित्रण के प्रति उनमें प्रतिबद्धता-सी दिखती है।

इन नये कहानीकारों की इस दशक में दो-दो, तीन-तीन कहानियां ही प्रकाशित हुई हैं बल्कि किसी-किसी की तो एक ही, फिर भी इन कहानियों में यथार्थ की अनुभूति और अनुभव

की मौलिकता स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है, यद्यपि कुछ कहानियां बहुत ही कच्ची हैं और कुछ कल्पनातिरेक से ग्रस्त होने के कारण विश्वसनीय भी नहीं रह गईं।

वैसे तो छठे दशक में ही 'नयी कहानी' का रचना-शिल्प 'व्यक्ति-मूड' की शैली में विकसित हो गया था और सातवें दशक के आरम्भ में ही 'अकहानी' का आंदोलन चल निकला था तदोपरान्त अनेक कहानी आंदोलन चल पड़े थे परन्तु जम्मू-कश्मीर में इन आंदोलनों का कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। हां, 'अकहानी' का शिल्प-विधान, पात्र के वैयक्तिक 'मूडस' की बुनाई, अस्तित्ववादी चिंतन के 'टोन' और मनोविश्लेषण का प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष प्रभाव इन नये कहानीकारों पर अवश्य पड़ा है।

कहा जा सकता है कि यदि देश के हिन्दी लेखक विदेशी कहानियों से प्रभावित हुए हैं तो जम्मू-कश्मीर के हिन्दी कहानीकार देशज विदेशज दोनों प्रकार की कहानियों से प्रभावित हुए हैं। इन कहानीकारों ने बहुदा पूर्व दीप्ति, फैंटेसी, दिवास्वप्न आत्म-मंथन और अन्तर्द्वन्द्व आदि की शैलियों को अपनाते हुए शिल्प के स्तर पर नये प्रयोगों को कहानियों में अपनाया है और कहानी के शिल्प-विकास के प्रति अपना रुझान दिखाया है।

इस दशक में प्रकाशित स्वतंत्र कहानी-संग्रहों की सूची निम्नलिखित है-

(डॉ.) ओम प्रकाश गुप्त-	लहर-लहर हर नैया नाचे (1971 ई.) एस. चन्द्र एण्ड कम्पनी (प्रा.) लि. दिल्ली-55
(डॉ.) अर्जुन नाथ रैणा-	केसर के फूल (1973 ई.) ज्ञानमंदिर, दिल्ली-16
सरदार दीदार सिंह-	'धुंधलके' (1973 ई.) मल्होत्रा ब्रदर्ज़, जम्मू तवी
श्री ओम गोस्वामी-	'निर्वासित' (1974 ई.) गोस्वामी पुस्तक प्रकाशन, जम्मू-4
बलनील देवम-	उल्कापात-1974
राज भल्ला-	'ये तस्वीरें' 1978
(डॉ.) हरिकृष्ण कौल-	'टोकरी भर धूप'
श्री नरेन्द्र खजूरिया-	'रोचक कहानियां', 'रास्ते में', 'काम्पती देह डूबता दिल'।

डॉ. हरिकृष्ण कौल और श्री नरेन्द्र खजूरिया के उपर्युक्त कहानी-संग्रह फिलहाल हमें उपलब्ध नहीं।

इसी दशक में युवा हिन्दी लेखक संघ, जम्मू और हिन्दी साहित्य मण्डल, जम्मू की पत्रिकाओं 'घोषवती' और 'मधुरिमा-प्रतिभा पुष्प' का प्रकाशन आरम्भ हुआ। इन पत्रिकाओं में भी कुछ कहानियां प्रकाशित हुई हैं। इसके अतिरिक्त 'प्रिज्मों में बटी किरणें', 'देवदार की छाया तले', 'नीलजा', 'अधूरी कहानी का हीरो' आदि कहानी-संग्रहों में भी अनेक नये-पुराने लेखकों की कहानियां प्रकाशित हुई हैं। 'शीराज़ा', 'हमारा साहित्य' और 'योजना' आदि पत्रिकाओं में भी अनेक कच्ची-पक्की कहानियां प्रकाशित हुई हैं।

1974 ई० तक के 'हमारा साहित्य' के अंकों में यद्यपि 'स्थायी मूल्य' की कुछ कहानियां 'शीराज़ा' के अंकों से पुन: प्रकाशित हुई हैं तो कुछ प्रथम बार भी प्रकाशित हुई हैं, ये सभी कहानियां 'स्थायी मूल्य' की मानी गई हैं, इसी तर्क के अन्तर्गत इन्हें प्रकाशित या पुन: प्रकाशित किया गया है। तदोपरान्त 1975 से 1982 ई. तक के 'हमारा साहित्य' के किसी अंक में कोई कहानी प्रकाशित नहीं हुई क्योंकि ये सभी अंक किसी 'एक विधा विशेष' के साहित्य अथवा लोक साहित्य के मूल्यांकन सम्बंधी निबंधों को लेकर संकलित किए गए हैं। कुल मिलाकर इस दशक में पिछले दशकों के कहानीकारों की प्रकाशित फुटकर कहानियों की सूची निम्नलिखित है–

सत्यवती मलिक–	'पान सुपारी' ('शीराज़ा' जून/71)
धर्मचन्द प्रशान्त–	'स्मृति' (शीराज़ा जून/71), 'कमरा नं. आठ' ('हमारा साहित्य'/1970-71)
कान्ता शर्मा–	'स्वार्थ के घेरे' ('शीराज़ा' जून/71)
अयूब प्रेमी–	'वह क्षण नहीं, आया' ('शीराज़ा' दिसम्बर/73) 'दुहरी टूटन' ('हमारा साहित्य' 1973)
विजय सुमन–	'लक्ष्यहीन' ('शीराज़ा' जून/74)
गोपीनाथ कौशिक–	'पुरुषयार के घाट पर' ('शीराज़ा' दिसम्बर/ 74)
मनसाराम शर्मा 'चंचल'–	'सामान्तर रेखाएं' ('शीराज़ा' मार्च/75)
सन्तोष कौल–	'सूनी पगडण्डियों के साये में' ('हमारा साहित्य' 1974), 'कुछ घुलते हुए क्षण' ('देवदार की छाया तले'–1976)
(डा.) रत्न लाल 'शान्त'–	'कर्फ्यू' ('हमारा साहित्य' 1974)
(डा.) हरिकृष्ण कौल–	'भ्रातृघाती' ('हमारा साहित्य' 1970-71), 'अगले दिन' 'हमारा साहित्य' 1973), 'गुलमोहर' ('शीराज़ा' सितम्बर/79)
दुर्गादत्त शास्त्री–	'मुरझाए फूल महक उठे' ('हमारा साहित्य' 1972), 'परित्यक्ता', '(हमारा साहित्य' 1973) 'प्रायश्चित', '(प्रिज्मों में बटी किरणें'–1974)

पिछले दशकों के उपर्युक्त कहानीकारों की कुल 18 कहानियां इस दशक में प्रकाशित हुई हैं।

इस दशक में उभरे नये कहानीकारों की प्रकाशित कहानियों की सूची निम्नलिखित है–

1. सरदार दीदार सिंह–	'घुटन' ('हमारा साहित्य' 1970-71), 'पत्नी और प्रेमिका' ('शीराज़ा' दिसम्बर/71), 'अनकही' ('हमारा साहित्य' 1973).
2. सुरेश शर्मा 'राम'–	'और कहानी पूरी हो गई' ('हमारा साहित्य' 1970-71)

3. जितेन्द्र उधमपुरी– 'कलाकार' ('हमारा साहित्य' 1970-71)

4. सत्यप्रकाश आनन्द– 'इज्जत' ('हमारा साहित्य' 1970-71)

5. श्री शिवरैना– 'मन के कोने से ('मधुरिमा' प्रतिभा पुष्प द्वितीय, मई 1971) 'कलाकार' ('शीराज़ा' सितम्बर/73) 'सन्नाटा' ('नीलजा-4' 1978-79 अंक)

6. अशोक (अश्क) जेरथ– 'विडम्बना' ('शीराज़ा' सितम्बर 1971)

7. कृष्ण चन्द्र कायस्थ– 'घुटन' ('शीराज़ा' 1971)

8. राज ध्यानपुरी उर्फ (डॉ) राज कुमार–'घुटन' ('हमारा साहित्य' 1972)

9. सुदर्शन सागर (वशिष्ठ) 'उजाला' ('हमारा साहित्य' 1972)

10. अश्विनी मगोत्रा– 'पानी पर पग चिन्ह' ('हमारा-साहित्य' 1972)

11. कु. ललिता पण्डिता– 'ममता' ('हमारा साहित्य' 1972)

12. राज भल्ला– 'ये फाइलें और यह कतारें' ('हमारा साहित्य' 1973), 'पांचवी और अंतिम मौत' ('शीराज़ा जून/73), 'सिकुड़े कोनों का अल्बम' ('प्रिज्मों में बटी किरणें'–1974), 'परछाइयों की यादें ' ('शीराज़ा' जून/74)

13. ज्योतीश्वर पथिक– 'बड़े शहर के लोग' ('हमारा साहित्य' 1973), 'दायरे' ('हमारा साहित्य' 1974), 'एक मछली जेहलम की' ('प्रिज्मों में बंटी किरणें' 1974) 'गीली दीवार' ('शीराज़ा' सितम्बर /75)

14. 'निर्मल' विनोद– 'और एक निर्णय' ('हमारा साहित्य 1973'), 'एक टुकड़ा चैन' ('प्रिज्मों में बटी किरणें' 1974), 'जलतरंग' ('देवदार की छाया तले' 1976), 'सहज-असहज', 'खिड़की से झांकता दर्द' (अधूरी कहानी का हीरो 1978)

15. जगमोहन– 'दबा हुआ लावा' ('हमारा साहित्य' 1973), 'एक फैला हुआ बरगद एक घुटी हुई सांस' ('प्रिज्मों में बटी किरणें', 1974)

16. उर्मि कृष्ण– 'दूरी' ('शीराज़ा' जून/73)

17. अवतार कृष्ण राजदान– 'कीमती चीज' ('शीराज़ा' सितम्बर/73), 'चंचल लहर मुक्त धारा' ('शीराज़ा' सितम्बर/74) 'सौगात' ('नीलजा'-4, 1978-79)

18. देवरत्न शास्त्री– 'सब्जी की दुकान' ('शीराज़ा' दिसम्बर/73)

19. डॉ. नरेश– 'खाली बोतल' ('शीराज़ा' दिसम्बर/73)

20. अशोक जेरथ– 'देवदार और देवदार' ('शीराज़ा' सितम्बर/74), 'एक बिखरी हुई शाम' ('देवदार की छाया तले' 1976), 'अपराजेय' ('शीराज़ा' सितम्बर/79)

21. कुल भूषण– 'संतुलन का अभाव और एक चोट' ('शीराज़ा' मार्च/74)

22. आनन्दम्– 'तेन्दुआ' ('प्रिज्मों में बटी किरणें' 1974), 'लहरों का जाल' ('शीराज़ा' दिसम्बर/74)

23. डॉ. ओम प्रकाश गुप्त– 'माथे की रेखाएं' ('प्रिज्मों में बटी किरणें' 1974)

24. रमेश मेहता– 'संदर्भहीन' ('प्रिज्मों में बटी किरणें' 1974), 'अधूरी कहानी का हीरो', 'एक मादा प्रतिशोध' ('अधूरी कहानी का हीरो' 1978)

25. दयानन्द शर्मा– 'मेकअप' ('प्रिज्मों में बटी किरणें' 1974)

26. छत्रपाल– 'छिटकी हुई इकाई' ('शीराज़ा' दिसम्बर/74)

27. अलंकार– 'टूटा हुआ एहसास' ('शीराज़ा' दिसम्बर/74), 'अस्तित्व की रेखाएं' ('शीराज़ा' सितम्बर/75)

28. अनिल सहगल– 'कोहरे में से' ('शीराज़ा' जून/75)

29. (डॉ.) मनोज– 'एक वार कई घाव' ('मधुरिमा प्रतिभा पुष्प' 7, जून/75)

30. फकीर चन्द निर्मोही– 'परछाई' ('मधुरिमा' प्रतिभा पुष्प 9,12/75), 'एक कहानी' ('देवदार की छाया तले'–1976)

31. ओ. पी. शर्मा 'सारथी'– 'आदमी और सलीब' ('मधुरिमा' प्रतिभा पुष्प 8-9, दिसम्बर/75), 'सड़क की यातना' ('देवदार की छाया तले' – 1976)

32. डॉ. गंगा दत्त 'विनोद'– 'दादी' ('देवदार की छाया तले'–1976)

33. बलनील देवम्– 'भरा पूरा पुरुष' ('देवदार की छाया तले' 1976)

34. आजाद कुमार मानव 'नाहर'–'एक जूते की आत्मकथा' ('मधुरिमा' प्रतिभा पुष्प 7, जून/75), 'अवतरण' ('देवदार की छाया तले'1976)

35. इन्द्रजीत सिंह 'पुजारी'– 'एक दिन का सूर्य' ('देवदार की छाया तले' 1976)

36. विजय रोकड़ी– 'ढलती शाम के साथ-साथ' ('देवदार की छाया तले' 1976)

37. सुभाष शर्मा– 'जेम्स एक पैथेटिक कैरेक्टर' ('देवदार की छाया तले' 1976)

38. गणेश भार्गव– 'ज्वार भाटा से उतरते हुए' ('देवदार की छाया तले'1976)

39. राज ऋषि शर्मा– 'गुमे हुए दरख्तों के बीच' ('देवदार की छाया तले' 1976)

40. अमरनन्दा– 'घर की ओर' ('देवदार की छाया तले' 1976)

41. नीलम खोसला- 'अलगाव', 'बोधिसत्व' ('अधूरी कहानी का हीरो' 1978)

42. निर्मल कुसुम 'काचरू'- 'व्यवस्था का दोष' ('नीलजा'-4, 1978-79)

43. डॉ. सोमनाथ कौल- 'एक घण्टे लम्बी सड़क की नियति' ('नीलजा' 4, 1978-79)

44. मोहन लाल बाबू- 'स्नेह पाश' ('नीलजा' -4, 1978-79)

45. राजेन्द्र जेरथ- 'चट्टान' ('मधुरिमा' प्रतिभा पुष्प 1975)

इन कहानियों का मूल्यांकन प्रकाशन-क्रम और प्रकाशन वर्ष के क्रम के अनुसार एक लेखक की सभी कहानियों को एक साथ रख लिया गया है ताकि लेखक की सभी कहानियों का मूल्यांकन भी हो सके और हिन्दी कहानी के विकासगत इतिहास को भी दृष्टि से ओझल न होने दिया जाया।

इन फुटकर कहानियों ने प्रदेश की हिन्दी कहानी के विकास में विशेष योगदान दिया है, जिसका विश्लेषण यथोचित स्थान पर किया जाएगा। इन फुटकर कहानियों में से कुछ फुटकर कहानियां पिछले दशक के पुराने लेखकों की हैं, इसके अतिरिक्त 1979 ई० तक प्रकाशित इन कहानियों ने स्वतन्त्र कहानी-संग्रहों की कहानियों और प्रकाश्य सामग्री को प्रभावित किया है। अत: पहले इन कहानियों का विश्लेषण करें तो अधिक उचित होगा। तदोपरांत ही इस दशक के कहानी-संग्रहों की कहानियों का विश्लेषण अधिक उपयुक्त रहेगा क्योंकि इन कहानियों ने आगामी नये लेखकों को प्रभावित किया है, इनकी अनेक कहानियों में इनका प्रभाव लक्षित होता है। इन संग्रहों की कुछ कहानियां 1970 ई. से पहले ही लिखी जा चुकी थीं। अत: प्रकाशन-क्रम के अन्तर्गत विश्लेषण करने से 1971 के बाद की कहानी के संक्रान्त के बिन्दु भी स्पष्ट हो जाएंगे। इस दशक का पहला संग्रह 1971 ई. में प्रकाशित हुआ है। इस दशक में प्रकाशित हिन्दी कहानियों का मूल्यांकन प्रस्तुत है।

4.2.1 पुराने कहानीकारों की फुटकर हिन्दी कहानी—आठवें दशक के उपर्युक्त श्रेणी के कहानीकारों की प्रकाशित कहानियों की सूची दी जा चुकी है। अब इन कहानियों का मूल्यांकन ही अपेक्षित है, जो निम्नलिखित है।

4.2.1.1 धर्मचन्द 'प्रशान्त' की इस दशक में 'स्थायी मूल्य' की कहानी 'कमरा नं० आठ' 'हमारा साहित्य' में प्रकाशित हुई है, जिसका मूल्यंकन निम्नलिखित है।

4.2.1.1.1 कमरा नं. आठ धर्मचन्द 'प्रशान्त' की आदर्शवादी कहानी है, जिसमें टी.वी. अस्पताल की एक आदर्श नर्स चम्पा के नारी हृदय में समायी ममता, स्नेह, सेवा, दया और सहानुभूति की भावनाओं का चित्रण हुआ है। चम्पा के स्नेही स्वभाव को उसकी आसक्ति और नारी-प्रेम समझ कर एक मरीज़ मोहन उसके मोहपाश में बंध जाता है। पात्र परिचय से आरम्भ हुई कहानी में सम्वादों द्वारा चरित्र-विकास किया गया है। कथानक-गठन, भाषा और भाव के स्तर पर कहानी उदात्त और पूर्ण है। नारी-हृदय की उज्ज्वलता का अच्छा आदर्शप्रेरक

रूपायन हुआ है। कहानी में जिज्ञासा और अन्य कोमल भावनाओं का सहज और रोचक विकास हुआ है। कहानी का अंत रोचक और सार्थक बन पड़ा है।

4.2.1.2 **दुर्गादत्त शास्त्री** की तीनों कहानियों के पात्र आदर्शवादी हैं। इनकी कहानियों मूल्यंकन निम्नलिखित है–

4.2.1.2.1 **मुरझाए फूल महक उठे** सुखान्त कहानी है। गिरधारी की मेहनत, परिवार के प्रति जिम्मेदारी की भावना और ईमानदारी का आदर्श चित्रण हुआ है। घरेलू जीवन की भावनाओं और उत्तरदायित्व से सम्बंधित यह आदर्शप्रेरक कहानी है जो दु:ख से सुख की ओर बढ़ी है। कहानी के मुख्य पात्र की संघर्षशीलता के साथ-साथ गुरूजनों के उपदेशों और अनुकम्पा का अच्छा स्थिति-अनुकूल संयोजन हुआ है। कहानी अंत तक आते-आते पथभ्रष्ट तो होती है परन्तु बुढ़िया का कारुणिक चित्रण अंत को सार्थक कर जाता है। लेखक रिश्ते-नातों से ऊपर उठ कर मानव-मात्र के प्रति सहानुभूति और प्रेम को पिरोने में सफल रहा है। भाषा और भाव के कुशल संयोजन के बावजूद आदर्शप्रेरित संयोगों की वजह से कहानी की विश्वसनीयता को आघात पहुंचा है।

4.2.1.2.2 **परित्यक्ता** कहानी में परित्यक्ता तो नहीं वंचिता लड़की की जीवन-त्रासदी को अभिव्यक्ति मिली है। लड़की मंजू मोहन की वाग्दत्ता है। मोहन मिलनसार, मधुरभाषी, शील-सौंदर्य का धनी और आधुनिक विचारों का युवक है, जो पहले अपनी बहिन की शादी करना चाहता है फिर अपनी। उसकी वाग्दत्ता अपनी होने वाली ननद के विवाह में भाग लेती है, काम काज भी संभालती है और बीमार पड़ी रहने वाली सास की सेवा भी करती है। होने वाली ससुराल और पास-पड़ोस के लोग उसके इस व्यवहार से प्रसन्न हैं। परन्तु उसका दुर्भाग्य यह है कि महत्वकांक्षी मोहन मंजू को त्यागकर अपने उज्ज्वल भविष्य के लिए अफसर की बेटी से शादी की हामी भर लेता है जबकि वह मंजू को वह टालता रहता है।

वंचिता मंजू की अन्तर्भावनाओं का यहां सशक्त चित्रण हुआ है। होने वाली ससुराल के पड़ोस की वृद्धा के उपदेशों में मंजू से हुए विश्वासघात की सूचना मिलती है, साथ ही आत्महत्या न करने का उपदेश। कहानी अतीत-स्मरण के रूप में नियोजित हुई है। कथ्य स्वाभाविक है परन्तु गठन में काफी झोल हैं फिर भी इनकी पिछली कहानियों की तरह पात्रों पर आदर्श थोपे नहीं गए। उपदेश-वाक्यों के कारण सहज विकसित कहानी कमजोर पड़ गई है। शीर्षक 'परित्यक्ता' की अपेक्षा 'वंचिता' होता तो अधिक सार्थक रहता। हां, मंजू की मनोभावनाओं और शंकाओं का सशक्त चित्रण हुआ है।

4.2.1.2.3 **प्रायश्चित** कहानी में व्यक्ति की अन्तर्भावनाओं के चित्रण के साथ-साथ प्रेम की अनुभूति का भी अच्छा चित्रण हुआ है। परन्तु यह प्रेम धीरे-धीरे कृतज्ञ भाव के कारण परस्पर स्नेह और सहानुभूति में बदल जाता है। इन भाव-अनुभूतियों का उत्कृष्ट चित्रण यहां मौजूद है। शास्त्री जी की भाषा यहां लड़खड़ाती है परन्तु भाव उदात्त हैं और शिल्प में प्रयोगशीलता और पूर्वदीप्ति शैली का अच्छा संयोजन हुआ है। कल्पनातिरेक के कारण कुछ भूले भी हुई हैं।

दुर्गादत्त शास्त्री की उपर्युक्त सभी कहानियों में साम्प्रदायिक सौमनस्य, मानव-मात्र के प्रति प्रेम, समाजोत्थान की कामना, परस्पर स्नेह, सहानुभूति, दया, करुणा, सहयोग और कर्त्तव्यनिष्ठा आदि भावनाओं के सामंजस्य के अन्तर्गत पात्रों का चरित्र-विकास हुआ है। इन भावनाओं को अवरुद्ध करने वाली वृत्तियों के निवारण के लिए उपदेशक स्वर उभरे हैं, शायद इन्हीं कारणों से इन्हें आदर्शवादी कहानीकार कहा जाता रहा है।

4.2.1.3 हरिकृष्ण कौल जम्मू-कश्मीर के प्रतिष्ठित हिन्दी कहानीकार हैं। 'शीराज़ा' में हरिकृष्ण कौल की कहानियों पर समीक्षात्मक निबन्ध लिखते हुए डॉ. निजामुद्दीन ने लिखा है कि हरिकृष्ण कौल ने सबसे पहले उर्दू में 'भैया' कहानी लिखकर कहानी लेखन का आरम्भ किया, फिर हिन्दी और उसके बाद कश्मीरी में कहानी लिखने लगे।

1953 ई. में इनकी पहली हिन्दी कहानी साप्ताहिक हिन्दोस्तान में 'उस पत्थर की कहानी' नाम से छपी। 'नया पथ' लखनऊ में छपी इनकी कहानी 'एक टका एक ट्राइसिकल' को यशपाल ने काफी सराहा था। खैर, इस दशक में इनका दूसरा कहानी-संग्रह 'टोकरी भर धूप' (1976 ई.) प्रकाशित हो चुका है। 'टोकरी भर धूप' कहानी 'साप्ताहिक हिन्दोस्तान' से साभार 1983 में जम्मू-कश्मीर अकादमी की पत्रिका में भी प्रकाशित हुई है। इन सभी कहानियों का विस्तृत विश्लेषण 'शिवालिक क्षेत्र में हिन्दी कहानी का उद्भव और विकास पुस्तक में देखा जा सकता है। 'टोकरी भर धूप' की इतर प्रकाशित कहानियों का मूल्यांकन निम्नलिखित है-

4.2.1.3.1 भ्रातृघाती कहानी में हमशक्ल जुड़वा भाई अपने भाई की हत्या करने के तीसरे दिन उसके दफतर जाता है और उसकी निंदा करके अपने खोखलेपन और बौनेपन को छिपाने का यत्न करता है। अफसर के सामने वह अपने भाई के रुतबे और सम्मान को गिरा देना चाहता है। वह मृत भाई को आवारा और गैरजिम्मेदार साबित करने की कोशिश करता है। अपनी ईर्ष्या, द्वेष और हीनता की कुण्ठा के कारण वह मृत भाई के गुणों को अवगुणों के रूप में स्मरण करता है और अपने अपराध कर्म (भाई की हत्या) का भी स्मरण करता है। वह भाई के अफसर की चापलूसी करने लगता है और अफसर उसे प्लाट लेने के लिए दरख्वास्त देने को कहता है, प्रसन्न होकर वह चाहता है कि अफसर उसकी पुस्तक पर भूमिका लिखे।

कहानी में संवाद तो पृष्ठभूमि का ही विकास करते हैं, कथ्य तो पात्र के आत्म मंथन द्वारा उभरता है। हां, यहां लेखकीय चापलूसी और छलकपट पर अच्छा व्यंग्य किया गया है। साहब शख्सी राज्य का प्रतीक है तो मृतक भाई प्रजातंत्र का। हत्यारा भाई महत्वकांक्षी परन्तु सत्तासम्पन्न लोगों के प्रति चापलूस व्यक्ति का प्रतीक प्रतीत होता है, जिसके माध्यम से चरित्र के खोखलेपन, ईर्ष्या, द्वेष और स्वार्थ के लिए भाई तक का गला घोंटने की वृत्ति पर करारी चोट की गई है। यह कहानी बहुआयामी है, अनेक तरह की समस्याएं एक-साथ उभार दी गई हैं। चरित्र-प्रधान यह कहानी आत्ममंथन और फैंटेसी के सहारे विकसित हुई है।

4.2.1.3.2 अगले दिन कहानी औपन्यासिक शिल्प को लेकर चली है। जिसमें प्रदेश की शिक्षा पद्धति पर अच्छी चोट की गई है। दो बच्चे सुले और मखना बीसियों वर्षों तक एक

ही कक्षा में पड़े रहते हैं। वे अध्यापकों से पिटाई भी झेलते हैं और उनकी हरामखोरी का भी शिकार होते हैं। बच्चों का भोलापन और अध्यापकों की क्रूरता का परस्पर टकराव लगभग सारी कहानी में तना-सा रहता है।

दोनों के घर में खाने-पीने का सुभीता नहीं। दोनों ही कान्वेट स्कूल की नीली आंखों वाली लड़की और उजली टांगों वाले लड़के को देख-देख कर चाहते हैं अपना जीवन भी वैसा ही सुखी-सम्पन्न हो । वे नीली आंखों वाली के प्रति आसक्त भी हैं और उसे अपनी उपस्थिति भी जताना चाहते हैं। स्कूल में भी अपनी उपस्थिति जताने के लिए वे शरारतें करते रहते हैं।

स्कूल प्राइमरी से लोअर मिडल, लोअर मिडल से हाई हो जाता है। पुराने अध्यापक रिटायर हो जाते हैं, नेहरू के बाद इंदिरा का शासन आ जाता है, नीली आंखों वाली और उजली टांगों वाले का परस्पर विवाह भी हो गया है, वे अपने बच्चों को कार में स्कूल छोड़ने और ले जाने आते हैं परन्तु सुले और मखना अभी तक भी चौथी कक्षा में ही हैं। उनकी उम्र नहीं बढ़ती, बेवकूफों और दल्लिदरों की उम्र नहीं ही बढ़ती उन्हें पहाड़े भी याद नहीं होते।

कहानी छोटी मोटी उपन्यासिका का रूप-बंध अख्तियार कर गई है और 'सुले' और 'मखना' साधारण बच्चे न रहकर एक वर्ग विशेष का प्रतीक बन गए हैं। कहानी में अगंभीर हंसी मजाक और कुछ तकिया कलाम के दुहराव से रोचकता और सहजता को बनाए रखा गया है और व्यक्ति-चरित्र की अपेक्षा वर्ग-चरित्र को प्रस्तुत किया गया है। अच्छी सशक्त कहानी है।

4.2.1.3.3 टोकरी भर धूप एक मां पोझकुज की कहानी है जो बड़ी बहू के पास से छोटी बहू के पास दिल्ली में आई है। बड़ा बेटा निर्धन है, घर का खर्चा मुश्किल से चला पाता है। वह उसकी पत्नी को वह बदकिस्मत मान रही है और बड़ी बहू के कर्मों को उनकी गरीबी का कारण मानती है। छोटा बेटा बड़े की अपेक्षा सम्पन्न है उसे दिल्ली में सरकारी फलैट मिला हुआ है। पोझकुज छोटे बेटे के पास आई है। दिल्ली की धूप उसे पसंद है परन्तु दिल्ली का रहन-सहन और खुलापन उसे पसंद नहीं, इस माहौल में वह स्वयं को एडजैस्ट नहीं कर पा रही। घर में छोटे बेटे के व्यवहार से वह संतुष्ट भी है परन्तु वह दोनों भाइयों के आर्थिक स्तर में तुलना-सी करके बड़े पुत्र के प्रति चिंतित है, उसके बच्चे के प्रति भी उसकी ममता उमड़ती है। इसी कारण अंततः वह अपनी ही कुण्ठाओं और 'अनऐडयेस्टिड' होने की अनुभूति से ग्रस्त होकर कश्मीर लौट जाना चाहती है।

कहानी में बुढ़िया की कुण्ठाओं का सशक्त चित्रण हुआ है, साथ ही साथ दिल्ली के लोगों में बढ़ रहे अजनबीपन और अकेलेपन की पीड़ा का चित्रण भी हुआ है। अच्छी चरित्र प्रधान कहानी है। भाषा में स्थिति के अनुकूल ठण्डापन भी है और तिक्त-अनुभूति तथा उपहास की स्थितियों को भी अच्छी तरह उजागर किया गया है। पोझकुज 'आर्द्रा' का प्रतिबिम्ब प्रतीत होती है।

4.2.1.3.4 गुलमोहर कहानी में अजनबियत, अकेलेपन और तेज़ रफ्तार जिंदगी में मर रहे प्रेम और व्यक्तिगत कुण्ठाओं के कारण मर रही कोमल अनुभूतियों का चित्रण हुआ है।

पंद्रह महीनों के प्रेम पूर्ण और समृद्ध जीवन में सुधा अतीत के अभावों को भूल गई है परन्तु वह अभावों और मान मर्यादा की स्मृतियों से पूर्णतया छूट नहीं पाई। गुलमोहर के नीचे पड़ा हुआ गोल-गप्पे बेचने वाला लड़का उसे अपना भाई ही प्रतीत होता है, जिसे वह दिल्ली की बिल्डिंगों और दुकानों की चकाचौंध में उलझकर भूल गई है। गुलमोहर का पेड़ लालसाओं का प्रतीक-सा है, परन्तु इन लालसाओं को उसने पहचाना नहीं था।

कथ्य यह है कि रोमांस के ये थोड़े से क्षण भी कवाब में हड्डी की तरह गोल-गप्पे वाले की उपस्थिति से बरबाद हो रहे हैं, रसभंग हो रहा है। दोनों का प्रेम का 'मूड' बरबाद हो रहा है। अंततः दोनों ही प्रेम-प्रक्रिया को दस-पंद्रह दिन के लिए स्थगित कर रहे हैं।

अच्छी प्रतीकात्मक कहानी है जिसमें व्यक्ति के अन्तर्मन और बाह्य जीवन की विसंगति का अच्छा 'कान्ट्रास्टिंग' चित्रण हुआ है।

कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि इनकी कहानी 'अगले दिन' में कश्मीर के निरीह शैशव की बरबादी और आर्थिक स्तर-भेद के चित्रण के साथ-साथ बच्चों, युवकों की आकांक्षाओं का चित्रण है तो शेष तीनों कहानियों में व्यक्ति के अन्तर्मन का सशक्त चित्रण हुआ है। 'टोकरी भर धूप' इनमें से उत्कृष्ट कहानी है।

4.2.1.4 रत्नलाल 'शान्त' 'गद्यांजलि' में प्रकाशित कहानीकार हैं। प्रस्तुत दशक में इनकी एक ही कहानी प्रकाशित हुई है, जिसका मूल्यांकन निम्नलिखित है।

4.2.1.4.1 कर्फ्यू कहानी में श्रीनगर में लगे कर्फ्यू के दौरान लोगों को होने वाले कष्टों का, जनता के नुक्सान का, पुलिस के दोगले व्यवहार का, मध्यप्रदेश से आई पुलिस और कश्मीर की पुलिस के परस्पर रिश्तों आदि का चित्रण करके कश्मीर की पुलिस की अनुशासन की स्थिति पर व्यंग्य-सा उभारा गया है। विडम्बना यह है कि लोग भी स्थिति के अनुसार दोनों पुलिसों के पक्ष-विपक्ष में विचार रखने के लिए विवश हैं। हिन्दू और मुस्लिम दिखावे के लिए ही परस्पर जुड़े प्रतीत हो रहे हैं और एक-दूसरे के रुतबे से अपना स्वार्थ सिद्ध करने की फिराक में हैं। सभी कुछ दबी-घुटी स्वीकृति और नकार के रूप में चल रहा है। हालात यह है कि सामने-सामने तो इज्जत की जाती है, परस्पर सौहार्द्र के लिए झूठे किस्से और बहानेबाज़ी ढूंढी जाती है परन्तु जूठन छिपाई जाती है।

कहानी में सामाजिक दोगलेपन को अभिव्यक्त किया गया है। काफी 'बोल्ड' कहानी है परन्तु अमानवीय कहीं नहीं। आदमी में वर्गगत मनोविज्ञान का सशक्त चित्रण कहानी को उत्कृष्ट बना देता है। त्रासद जीवन-स्थितियों में आदमी के अन्तश्चेतन और अभिव्यक्ति के बीच की विसंगति पर अच्छी व्यंग्यात्मक चोट की गई है। कथ्य को 'टेबल-टाक' की अपेक्षा सोमनाथ की सोच और स्थिति जन्य टिप्पणियों के माध्यम से उभारा गया है। यदि 'टेबल-टाक' झूठ है तो सोमनाथ की प्रतिक्रियाएं सच हैं। इन दोनों का 'कांट्रास्ट' बड़ी कुशलता से बुना गया है।

गठन, शिल्प, भाषा और स्थिति-चित्रण की दृष्टि से कहानी उत्कृष्ट है परन्तु कथारस लम्बी चर्चाओं और प्रतिक्रियाओं के बीच दब-सा गया है। वैसे कहानी कथारस के लिए नहीं सामाजिक मनोविज्ञान के विश्लेषण के उद्देश्य से लिखी गई प्रतीत होती है। अच्छी कहानी है।

4.2.1.5 संतोष कौल का प्रथम कहानी-संग्रह पिछले दशक में प्रकाशित हुआ है, जिसका मूल्यांकन किया जा चुका है, यहां उनकी इस दशक में प्रकाशित कहानियों का मूल्यांकन निम्नलिखित है ।

4.2.1.5.1. सूनी पगडण्डियों के साये में कहानी में गूंगी लड़की के प्रति प्रेम और उसके रूप-आकर्षण के बावजूद उससे विवाह न करने वाले स्वयं अपाहिज हो गए व्यक्ति की अन्तर्वेदना अभिव्यक्त हुई है। कहानी का वाचक अपनी भूल पर पश्चातापग्रस्त है, प्रेम-प्रसंग और उसकी उपेक्षा का स्मरण कर रहा है।

कहानी मोनोलॉग शैली में है, परम्पराभुक्त अलंकरणों का उपयोग प्रकृति और नारी-सौंदर्य में परस्पर तादात्मय स्थापित करने के लिए किया है। साधारण प्रेम कहानी के माध्यम से विकलांग व्यक्ति के अन्तर्मन में झांक कर उसके प्रति करुण सोच के लिए विवश किया गया है।

4.2.1.5.2 कुछ घुलते हुए क्षण कहानी में बीमार आदमी की मानसिकता का चित्रण हुआ है। सहानुभूति की आकांक्षा रखने वाले उपेक्षित व्यक्ति की अतीत की स्मृतियों को महत्वाकांक्षी व्यक्ति की निगाह से देखा गया है और रिश्तों के खोखलेपन को चित्रित किया गया है। दाम्पत्य जीवन की दरारों का चित्रण करके व्यक्तिगत अहं को दरारों का कारण माना गया है, पति के हृदय की कुढ़न और पत्नी द्वारा उसकी अप्रत्यक्ष मदद और सहानुभूति को कहानी में संजोगों के सहारे चित्रित करके चमत्कार पैदा करने का यत्न किया गया है। साधारण कहानी है, भाषा और कथ्य तो ठीक है परन्तु शिल्प कमज़ोर है। बीमार आदमी की मनः स्थिति की बुनाई ठीक ही है।

4.2.2. नये कहानीकारों की फुटकर हिन्दी कहानी आठवें दशक में उपर्युक्त श्रेणी के कहानीकारों की प्रकाशित कहानियों की सूची दी जा चुकी है। अब इन कहानियों का मूल्यांकन ही अपेक्षित है। जो निम्नलिखित है।

4.2.2.1 सुरेश शर्मा 'राम' कवि दत्तू की वंशज परम्परा से सम्बद्ध है, उनकी एक मात्र प्रकाशित कहानी का मूल्यांकन निम्नलिखित है।

4.2.2.1.1 और कहानी पूरी हो गई कहानी अज्ञेय की कहानी से प्रभावित है, जिसमें कम वेतन पाने वाला लेखक कहानी-लेखन से मिले पारिश्रमिक से घर के जरूरी खर्चे पूरे करता है। 'कान्ट्रेक्ट' के अनुसार उससे तीसरी परन्तु अंतिम कहानी पूरी नहीं हो पा रही। उसे आर्थिक अभाव विवश कर रहे हैं, 'कांट्रेक्ट' रद्द हो जाने की आशंका भी परेशान कर रही है परन्तु दिमाग खाली-सा है, कोई प्लाट नहीं सूझ रहा और वह अपनी ही बेटी के प्रणय सम्बन्ध को किसी अन्य लड़की के प्रणय सम्बंध पर 'प्रोजैक्ट' करने लगता है।

लेखक की व्यक्तिगत दुविधाएं उसके लेखन को कैसे प्रभावित कर सकती हैं, यही विचार कहानी के गठन और शिल्प को विकसित करने में मददगार हुआ है। अभाव के कारण ही पिता को बेटी का प्रेम-विवाह स्वीकार हो रहा है। विवाह की आकांक्षा से ग्रस्त लड़की की मनोव्यथा और स्थितिजन्य प्रतिक्रियाओं का अच्छा संयोजन हुआ है और वैयक्तिक विवशता तथा सामाजिक सरोकार आदि के दो पाटों के बीच पिस रहे परिवार का उद्‌घाटन भी कुशलता से किया गया है।

4.2.2.2 जितेन्द्र उधमपुरी मूलत: डोगरी का लेखक है। इस दशक में उसकी एक कहानी प्रकाशित हुई है। जिसका मूल्यांकन निम्नलिखित है।

4.2.2.2.1 कलाकार कहानी प्रकृति चित्रण के सहारे आगे बढ़ी है और कला-साधना को बड़ा रोमांटिक-सा महत्व प्रदान करती है। कला-साधना के पीछे प्रणयोत्सुकता और प्रेमिका के रूप को तराश लेने की आकांक्षा को कहानी का आधार बनाया गया है। साथ ही साथ प्रेम सम्बंधों के सामाजिक-पारिवारिक नकार की त्रासदी को चित्रित किया गया है।

कहानी की भाषा और प्रकृति-चित्रण रोमांटिक भावुकता से ग्रस्त है, कथानक स्थितिगत 'कान्ट्रास्ट' से बुना गया है, झूठे और दिखावटी कलाकारों की क्रूरता पर अच्छा व्यंग्य भी किया गया है। साधारण आदर्शप्रेरक कहानी है।

4.2.2.3 सत्य प्रकाश आनन्द मूलत: पंजाबी के लेखक हैं। यहां उनकी एक हिन्दी कहानी प्रकाशित हुई है, जिसका मूल्यांकन निम्नलिखित है।

4.2.2.3.1 इज्जत कहानी में बचपन की मैत्री के महत्वहीन होते जाने की व्यथा का चित्रण हुआ है। मिनिस्टर बन गया व्यक्ति अपने बचपन के मित्र को घर बुला कर अपमानित-सा कर रहा है, उसे महत्वहीन साबित कर रहा है, टैलीफोन के नम्बर घुमा-घुमा कर उस पर अपना रौब जमा रहा है, मित्र के साथ भी राजनीतिक गोटियां भिड़ा रहा है। कुल मिलाकर यही कहानी है।

परन्तु अपमानित व्यक्ति के समूचे जीवन और दोनों की बालपन की मैत्री और उससे जुड़ी घटनाओं को स्मृतियों के द्वारा कुशलता से बुना गया है। व्यक्ति के मन का सशक्त मनोविश्लेषण होने के कारण कहानी सशक्त बन गयी है। बचपन का भोलापन, पारिवारिक अनुशासन में कुलबुलाते बच्चों की मन:स्थिति, उनकी छोटी-छोटी शरारतों और फिर युवा अवस्था के थोड़े-बहुत किस्सों, गप्पबाज़ी की स्मृतियों, अपने दाम्पत्य जीवन और आर्थिक संघर्ष के बीच भी स्वाभिमान को बनाए रखने की जिद्द को परस्पर नियोजित किया गया है।

मिनिस्टर मित्र को मिलने जा रहे और मिलकर आ रहे व्यक्ति की दो ध्रुवों पर टिकी मन:स्थितियों के सशक्त चित्रण के साथ-साथ राजनीति द्वारा कोमल भावनाओं की हो रही हत्या को कहानीकार ने स्पष्ट और सार्थक अभिव्यक्ति दी है। मानव-मूल्यों के विघटन और ह्रास की ओर संकेत करके मूल्यों के प्रति आस्था और विश्वास को भी उकेरा गया है। स्वाभिमानी व्यक्ति की अन्तर्व्यथा, परिवर्तनशील मानव-मूल्यों से न जुड़ पाने की व्यथा आदि की कथ्यगत

मौलिकता के कारण कहानी उत्कृष्ट बन गई है, जो भाषा की लड़खड़ाहट के बावजूद अपनी गठन शैली के कारण पाठक के अन्तर्मन को छू लेती है।

4.2.2.4 शिव रैना की इस दशक दो साधारण-सी कहानियां प्रकाशित हुई हैं, जिनका मूल्यांकन निम्नलिखित है।

4.2.2.4.1 मन के कोने से साधारण कहानी है जिसमें सुखी दाम्पत्य का नुस्खा समझाया गया है कि पत्नी को पति का मानसिक मेकअप समझकर अपने आपको उसके अनुरूप ढाल लेना चाहिए। कहानी आदर्शवादी प्रेरणा देती है, भाषा और शिल्प साधारण है। विवाह-पूर्व अपनी ईर्ष्या, द्वेष और हीनता की कुण्ठा के कारण की गई देख-रेख पर भी रोचक टिप्पणी की गई है।

4.2.2.4.2 सन्नाटा कहानी में रहस्यात्मक वातावरण की बुनाई काफी सुगठित है, कहानी में रोचकता और जिज्ञासा के साथ-साथ डॉक्टर के कर्त्तव्य के प्रति भी न्याय हुआ है। कहानी दुनिया भर की सबसे छोटी लघु कथा वाले कथ्य को लेकर बुनी गई है । जिज्ञासा, रोचकता और रहस्य की बुनावट के संदर्भ में देखें तो इस में कहीं कोई झोल नहीं, अच्छी कहानी कही जा सकती है।

4.2.2.5 सुदर्शन सागर की इस दशक में एक मात्र प्रकाशित कहानी है 'उजाला', जिसका मूल्यांकन निम्नलिखित है।

4.2.2.5.1 उजाला कहानी वातावरण चित्रण से आरम्भ हुई है, चार पांच घरों वाले पहाड़ी गांवों में बदल रहे सामाजिक विचारों का कुशलतापूर्वक चित्रण किया गया है। युवती के प्रति आकर्षण को बड़े संयम और सादगी से चित्रित किया गया है। प्रकृति के सुन्दर चित्र कहानी-विकास की पृष्ठभूमि बने हैं-परन्तु वर्तमान और 'फ्लेश बैक' का परस्पर तादात्मय कमजोर रह गया है।'

कहानी में विवाह-पूर्व स्थितियों का चित्रण करते हुए रहस्य, रोमांच और रोचकता के गुणों का अच्छा समाहार हुआ है, भाषा साफ-सुथरी और प्रभावोत्पादक है, छोटी-छोटी महीन 'डिटेल्स' अच्छी और भाव के लिए विकासकारी हैं। कहानी का अंत सुखद और प्रतीकात्मक है 'एक का भला सरबत का भला' की कामना अभिव्यक्त हो जाती है।

4.2.2.6. अश्विनी मगोत्रा मूलतः डोगरी कहानीकार हैं। 'हमारा साहित्य' में इनकी एक हिन्दी कहानी प्रकाशित है, जिसका मूल्यांकन प्रस्तुत है।

4.2.2.6.1 पानी पर पग चिन्ह वातावरण प्रधान कहानी है। वातावरण के विकास में लेखक उलझ भी गया है। कहानी का नायक स्वतंत्रता का संग्रामी है, वह अतीत जीवन की कुछ महत्वपूर्ण घटनाओं का स्मरण करता है कि कैसे उसने जेलर की हत्या की थी और फिर पुलिस से आंख मिचौली करता हुआ एक टोली का सरदार बन गया था, फिर कैसे गिरफ्तारी और दस साल की सजा ? परन्तु देश की आजादी के साथ उसे भी कैद से छुटकारा मिल गया था।

इन सभी घटनाओं का वह फैंटेसीवत् स्मरण करता है और आज़ादी के बाद की हिन्दोस्तानी जनता की कुवृत्तियों पर चोट करता है। जनता का एक वर्ग इतना सम्पन्न है कि विलासी हो गया है जबकि दूसरा वर्ग भूखों मर रहा है। कहानी का अंत प्रभावोत्पादक है, अंतिम पंक्ति में कुत्ते के भौंकने की अपेक्षा कुत्ते के रोने का वर्णन करके कहानी को प्रतीकात्मक सार्थकता प्रदान की गई है। फैंटेसी के कारण शिल्प और कथ्य उलझता है परन्तु अंत काफी सार्थक है, 'फ्लैश बैक' के साथ मौजूदा वातावरण का संयोजन कहानी को बोझिल बना गया है।

4.2.2.7 कुमारी ललिता पण्डिता की ममता सम्बंधी एक साधारण कहानी है, जिसका मूल्यांकन निम्नलिखित है।

4.2.2.7.1 ममता कहानी तीन खण्डों (चिन्हों द्वारा विभाजित) में विस्तृत कहानी है जिसमें बांझ स्त्री के मातृत्व को भावुकतापूर्ण अभिव्यक्ति दी गई है। प्राकृतिक सौंदर्य की पृष्ठभूमि में माधुरी अपने अपनाए गए पुत्र को खेलते देखती है तो उसे अपूर्व शान्ति और गर्व की अनुभूति होती है, जबकि उसकी सास अपनी सम्पति को इस पराए के बच्चे पर नहीं लुटाना चाहती, परन्तु माधुरी का बच्चे से अथाह प्रेम है, वह उसी के प्रोफैसर का बेटा है। पत्नी की मृत्यु के बाद प्रोफेसर ने बेटे को माधुरी को सौंप दिया है। यहां मातृत्व की अनुभूतियों का विशद् चित्रण हुआ है। बच्चे के कारण माधुरी अपने घर-परिवार को त्याग देती है। परन्तु कल्पना और अभिव्यक्ति का सुदृढ़ आधार होने के बावजूद कहानी में रोचकता और नयापन नहीं आ पाया।

4.2.2.8 ज्योतीश्वर पथिक की एकाधिक कहानियां इस दशक में प्रकाशित हुई हैं, जिनका मूल्यांकन निम्नलिखित है।

4.2.2.8.1 बड़े शहर के लोग कहानी का कथ्य यह है कि सभी का अपना--अपना दर्द है और अपनी-अपनी सलीब। लेखक दिल्ली की बस के कण्डक्टर, कालेज के लड़कों, टैलीफोन-आप्रेटर प्रतिभा, अल्ट्रा माडर्न लड़कियों, अपंग पेन्शेनर सूबेदार प्रेम सिंह, मिसेज-मिस्टर सूदन, कामरेड वीरपाल आदि अनेक लोगों के जीवन की छोटी--छोटी झलकियों को पिरोते हुए समाज में बढ़ रही फैशनपरस्ती, मूल्यहीनता, घूसखोरी, महंगाई और चरित्रहीनता पर चोट करता चलता है।

चलने को बस दिल्ली की सड़क पर चल रही है लेकिन लेखक की मानसिकता जम्मू शहर से ही जुड़ी रही है, भाषा अनुभव से जुड़ी न होकर कथ्य के अनुरूप काल्पनिक है। लेखक का विचार है कि अपने अहं को संतुष्ट करने वाली तितलियों का खर्चा साथ खड़े हिप्पीकट भंवरों की जेबों के सहारे चलता है। महानगरीय जीवन पर व्यंग्य अच्छी तरह उभर गया है।

4.2.2.8.2 दायरे कहानी में लेखक ने नारी-मन के भीतर पैठने का अच्छा यत्न किया है। अनकहे प्रेम की करुण परन्तु सफल अभिव्यक्ति हुई है। अपने मम्मी-पापा से डामिनेट नहीं होने का दावा करने वाली प्रतिभा लड़की को गाय भैंस नहीं मानती कि उसे उसकी मर्जी के बिना चाहे जिस खूंटे से बांध दिया जाए। प्रतिभा का चरित्र सबल है और विद्रोही भी। परन्तु वह भी अपने प्रेम को सीधे-सच्चे ढंग से व्यक्त नहीं कर पाती। कहानी के वाचक का विवाह जब

प्रतिभा की दीदी से हो जाता है तो वह कहानी के वाचक के प्रति घृणा और विद्रोह के भाव से भरी हुई दीदी के प्रेमी से विवाह कर लेती है क्योंकि वह कहानी वाचक से प्रेम करती रही है परन्तु कह नहीं पाती जबकि दीदी अपने प्रेमी से विवाह कर लेने की हिम्मत नहीं जुटा पातीं। दोनों युवतियां मध्य वर्गीय संस्कारों से ग्रस्त हैं, विद्रोह का दावा करती हैं परन्तु विद्रोह नहीं करतीं। कहानी में भाषा, संवाद, शिल्प और संवेदना के साथ-साथ नारी-मन की अभिव्यक्ति भी अच्छी हुई है। 'दायरे' को पथिक की उत्कृष्ट कहानी कहा जा सकता है।

4.2.2.8.3 एक मछली जेहलम की रोमांटिक भाव भूमि पर लिखी साधारण त्रासदी है। कहानी का स्वर आदर्शवादी है और अंत कारुणिक।

जरीना का प्रेमी रशीद युद्ध के कारण शहीद हो जाता है जबकि रशीद और जरीना के विवाह की स्वीकृति मिल चुकी थी, दोनों एक दूसरे के हो चुके थे । परन्तु परिस्थति ऐसी पैदा हुई कि जरीना की सभी सहेलियां ब्याही गईं और वह जेहलम की मछली की तरह नदी की लहरों में अकेली रह गई।

कहानी में बाह्य आक्रमणों के कारण प्रेम-सम्बंधों पर पड़े कुप्रभाव का चित्रण हुआ है। प्रेमिका के हृदय की उदासी और जीवनगत व्यर्थता का अच्छा चित्रण हुआ है।

4.2.2.8.4 गीली दीवार कहानी में प्रेमी अथवा पति दोनों में से एक के चयन की दुविधा का चित्रण हुआ है। नारी-मन के समर्पण सम्बन्धी द्वन्द्व को बुना गया है। मन से प्रेमी को स्वीकार किए हुए द्रौपदी उसी की हो चुकी है, पति की अनुपस्थिति में वह प्रेमी के साथ रातें भी बिता आई है जबकि पति को इस सबका पता है, वह क्षय रोग से पीड़ित है, पत्नी को अपने प्रेमी से विवाह कर लेने के लिए मनाने की कोशिश करता हुआ मर जाता है। भावुकता के कारण उपजे अन्तर्द्वन्द्व पर द्रौपदी विजय पाती है और अंततः मरे हुए पति के प्रति अपना कर्त्तव्य निभाती है।

कहानी रोमांटिक कल्पनाओं और रोमांटिक दृष्टि-बोध से विकसित की गई है, जिसमें सामाजिक आदर्श को वरीयता देने के लिए ही ताना-बाना बुना गया है। पति अय्यर और प्रेमी पिल्ले के बीच केन्द्र-बिन्दु की तरह खड़ी द्रौपदी की मानसिक यातना को पिरोने की कोशिश की गई है। साधारण कहानी है।

ज्योतीश्वर 'पथिक' की इन सभी कहानियों में रोमांटिकता और यथार्थ-जीवन के बीच द्वन्द्व को अभिव्यक्त करने की वृत्ति मिलती है और नारी-मन की गहराई में उतरने का यत्न किया गया है। भाषा और भाषाजन्य भाव की दृष्टि से किसी सोची समझी योजना के अन्तर्गत लिखी कहानियों में लेखक पात्रों की मानसिकता पर हावी रहा है। 'दायरे' उनकी उत्कृष्ट कहानी कही जा सकती है।

4.2.2.9 'निर्मल' विनोद की इस दशक में पांच कहानियां प्रकाशित हुई हैं, जिनका मूल्यांकन निम्नलिखित है।

4.2.2.9.1 और एक निर्णय कहानी में भाषा के सहज बहाव और कथारस को शिल्पगत प्रयोग के आग्रह के कारण आघात पहुंचा है। कोई छात्र शहर में कमरा किराए पर ले लेता है। कमरा पार्टीशन्ड है, उधर की ओर नव दम्पति रह रहा है, दोनों में मारपीट, हंसी-रुलाई चलती रहती है और एक दिन उनकी सम्भोग के दौरान की सिसकारियों और खुसर-फुसर से लड़का परेशान हो जाता है।

कहानी का अंत स्थिति-चित्रण और उद्दीप्त वासना के रूपायन से होता है। साधारण मनोविश्लेषण-पद्धति से प्रेरित कहानी है, जो हरिकृष्ण कौल की कहानी 'गन्दी बहार' के सम्भोग के दृश्य का स्मरण करा देती है।

4.2.2.9.2 एक टुकड़ा चैन कहानी में फैंटेसी के शिल्प पर विशेष ध्यान दिया गया है। अखबारी कतरनों, फिल्मी दृश्यों, अस्पताल के दृश्यों का परस्पर असंगत घालमेल करके दाम्पत्य जीवन की विसंगति को चित्रित करने का यत्न किया गया है परन्तु बात और कथ्य अस्पष्ट रह गए हैं।

'अकहानी' आंदोलन से प्रभावित इस कहानी को कहानी नहीं कहा जा सकता। घटनाओं, स्मृतियों, स्वप्नों, बिम्बों, प्रतीकों में कोई एकान्त सूत्रात्मकता नहीं, हां हस्पताल में पड़े बीमार आदमी की मानसिकता के तौर पर कथ्य पिरोया जाता तो अच्छा रहता।

4.2.2.9.3 जलतरंग कहानी में बेकार व्यक्ति की कोमल भावनाओं की उपेक्षा, घर-बाहर की उसकी भटकन और अभावग्रस्त मन:स्थिति को बुनकर कहानी का क्लेवर विकसित किया गया है। जिसमें कथा तत्वों की अपेक्षा काव्यात्मक वाक्यों के टुकड़े अधिक महत्वपूर्ण हो चुके हैं। कहानी का मूल स्वर विवशताजन्य आक्रोश की अभिव्यक्ति है। कहानी जीवनगत असंगतियों से घबराए मानव-मन के विभिन्न 'मूड्स' की कताई बुनाई होकर ही रह गई है।

कहानी का अंत प्रतीकात्मक है। स्थिति ज्यों की त्यों शराबी व्यक्ति को गिरने से रोकने और फिर 'मर साले' कह कर छोड़ देने की ! टुकड़े-टुकड़े जोड़ कर मन:स्थिति को चित्रित करने का शिल्प विकसित करने के यत्न में कहानी 'फैंटेसी' का रूप अख्तियार कर जाती है। भाषा में काव्य-गुण आ समाया है।

4.2.2.9.4 खिड़की से झांकता दर्द भाषा, शिल्प और संवेदना के आधार पर अच्छी कहानी है। क्षय-पीड़ित व्यक्ति घर-परिवार के सदस्यों से उपेक्षित-सा बाल्कनी में बैठा अपना मन परचाता रहता है। उसकी आन्तरिक पीड़ा का सहज, मानवीय धरातल पर चित्रण हुआ है परन्तु क्षय रोग का कारण बड़ा रोमांटिक-सा है-प्रेमिका से विवाह न हो पाना! जबकि इस समस्या के पीछे है प्रेमी की अपनी कायरता, स्टैण्ड न ले पाने की कमजोरी। फिर भी प्रेमिका की प्रेमी के प्रति हमदर्दी है, उसकी बेबसी और कायरता के प्रति सहानुभूति है।

अपनी सामाजिक, पारिवारिक उपेक्षा और अकेलेपन से पीड़ित यह प्रेमी विवाहित-प्रेमिका के प्रति सोचना पाप समझता है फिर भी सोच रहा है। अच्छी कहानी है, आदमी के भीतर बैठ गए अकेलेपन, उपेक्षा और अपराधबोध का सुगठित चित्रण हुआ है। प्रणय की तीखी

परन्तु जिम्मेदार अनुभूतियों से संचालित कहानी का गठन, सामाजिक दायित्व के प्रति सोच और वैयक्तिक अनुभूतियों का संयोजन कहानी को कारुणिक परन्तु सार्थक बना गया है।

4.2.2.9.5. सहज असहज लेखक की उत्कृष्ट कहानी कही जा सकती है जिसमें युवा व्यक्ति की संघर्ष-यात्रा और असमर्थता-बोध का सशक्त चित्रण हुआ है। कहानी का ताना-बाना मध्यवर्गीय परिवार के सुखद-दुःखद अनुभवों से बुना गया है। महंगाई और बाजार में वस्तु-अभाव से जूझते हुए परिवार, रिश्वतबाजी से जूझते परन्तु पुराने नैतिक मान-मूल्यों के प्रति जुड़े रहने वाले व्यक्ति की तीखी और त्रासद जीवन-अनुभूतियों और इस सबसे जुड़ी व्यक्ति की व्यथा की बुनाई अच्छी है। पढ़े-लिखे सुसंस्कृत व्यक्ति का वह आक्रोश निकम्मा है जो मात्र भुनभुना कर रह जाता है। कहानी की भाषा और शिल्प काफी सशक्त और उदात्त है।

कुल मिला कर कहा जा सकता है कि 'अकहानी' के शिल्प और 'नयी कहानी' की रुग्ण मनःस्थितियों के रोमानी चित्रण से ऊपर उठता हुआ लेखक धीरे-धीरे ही सही जीवन-यथार्थ को पकड़ता हुआ 'सहज-असहज' में अपनी बात कहने में समर्थ हो जाता है। इस कहानी में भाषा भी अभिधात्मक है, काव्यात्मकता को लेखक ने छोड़ दिया है। उनकी उत्कृष्ट कहानी कोई है तो 'सहज-असहज' ही।

4.2.2.10 रमेश मेहता की इस दशक में मात्र तीन कहानियां प्रकाशित हुई हैं, जिनका मूल्यांकन निम्नलिखित है।

4.2.2.10.1 संदर्भहीन कहानी में हड़ताल और बंद के कारण दिल्ली में फंसे और अपनी गर्लफ्रैंड के पास जा रहे 'टूरिंग जॉब' वाले व्यक्ति की मानसिकता का चित्रण हुआ है। अर्पिता के साथ बैठ कर वह नौकरी की च्वाइस, नौकरी मिलने में बाधाएं, बाधाएं दूर करने वाली एप्रोच और अन्य महत्वकांक्षाओं की बातें करता रहा है और वह देख चुका है कि किसी अन्य से अपनी शादी की बात पर कैसे सकुचा कर अर्पिता उससे परे हट गई है और ताना भी देती रही है कि शादी की अपेक्षा भिन्न-भिन्न प्रांतों की लड़कियों से इश्क लड़ाने की उसकी आदत है, वह वैरायटी का इच्छुक है।

कहानी का यह सारा हिस्सा अतीत स्मरण के रूप में पिरोया गया है। अमरेश देखता है कि अभी भी अर्पिता वैसी ही आकर्षक और अल्हड़ है, उसमें कोई बदलाव नहीं आया। वह बड़े खलूस और आत्मीयता से उससे मिलती है और बुद्धा गार्डन चलने का प्रोग्राम बन जाता है ताकि कुछ मौज मस्ती हो, इन्ट्रटेनमेन्ट हो। अर्पिता कपड़े बदलने के लिए भीतर चली जाती है तो अमरेश अकेलेपन में कल्पना में ही अर्पिता को कपड़े उतारते, निर्वस्त्र होते देखता है।

अर्पिता घर से बाहर उससे अलग रहती है, उसे बाजू नहीं पकड़ने देती। बाहर सड़क, टैक्सी, बस, पार्क आदि में वह उससे सट कर बैठना चाहता है परन्तु आतंकित है, बुद्धा गार्डन में वह गुण्डों के आतंक से संत्रस्त है, एकान्त कोने में वे बैठ नहीं पाते तो वह स्वयं ही किसी रेस्तरां में चलने का न्यौता देता है। वहां भी वह अन्यमनस्क-सा ही रह जाता है। अपने-आप में गुम अपने प्रेम को अभिव्यक्त नहीं कर पाता। लम्बे अर्से तक साथ-साथ रहने के बावजूद

अर्पिता की इच्छाओं को समझने के बावजूद अमरेश अपने-आप में खोया-सा रह जाता है, प्रेम की अभिव्यक्ति नहीं कर पाता।

कहानी अंत तक पहुंचते-पहुंचते व्यंग्य-सा बन जाती है कि आदमी वर्तमान को जीने की अपेक्षा अतीत और भविष्य की खामख्याली में ही उलझा रह जाता है, फिर भटकन के सिवा उसकी और कोई नियति नहीं। उसका अकेलापन स्वनिर्मित अकेलापन है। हां, हड़तालों, गुण्डई आतंक, एकान्तहीनता और काफी हाउस में भी दूसरों की निगाहों से घिरा होने की अनुभूति के कारण रोमांसहीन जीवन जी रहा है शायद यही उसकी नियति है। यह एक अच्छी और बहुआयामी कहानी है।

4.2.2.10.2 अधूरी कहानी का हीरो कहानी में 'संदर्भहीन' कहानी की तरह ही आदमी के अन्तश्चेतन में समाये गुण्डई आतंक और त्रासजन्य अकेलेपन की सार्थक बुनाई हुई है। भय और त्रास की स्थितियों को तर्कसंगत परिणतियों पंर पहुंचाया गया है। चाकूबाजी के कारण घबराई हुई पत्नी पति को रात को जल्दी लौटने के लिए कहती है।

पति रात को ग्यारह बजे घर लौटते हुए आतंकित है कि न जाने किस गली से कोई गुण्डा निकल कर उसके पेट में चाकू घुसेड़ देगा या कोई गाड़ी उसे रौंद जाएगी या कोई शराबी फाकामस्ती की लहर में उसे लूटने के लिए हत्या कर देगा। वह बेसुरे गीत गुनगुनाने लगता है ताकि कोई उसे भयभीत न समझे। वह मृत्यु से नहीं बल्कि पीड़ा और विधवा पत्नी की असहाय अवस्था की शंका से घबराया हुआ है, घर पहुंचता है तो दफ्तर में हुई झड़पों और साहब की धमकियों से आतंकित हो उठता है।

खुले चाकू की संस्कृति क्या उसे जिंदा रहने देगी ? यही इस कहानी का कथ्य है और इसी आतंक में जी रहा आदमी नितांत अकेला, असम्पृक्त होकर रह गया है। चेतन अचेतन के दृढ़ गठबंधन के द्वारा लेखक ने जीवन पर बढ़ रहे बाह्य दबावों और भय की अन्तर्वृत्ति का सशक्त चित्रण किया है।

4.2.2.10.3 मादा प्रतिशोध पति-पत्नी के दाम्पत्य जीवन के बीच पसर गए तनाव की कहानी है। पत्नी नारी-स्वातंत्र्य की पोषक है और पुरुष के वर्चस्व को चुनौती देती है, वह कुछ-कुछ सैक्स लिब्रेशन की भी पोषक है। परन्तु उसके ये सभी विचार प्रतिक्रिया स्वरूप ही पैदा हुए हैं, संस्कार के धरातल पर वह भारतीय मां ही है जो सैक्स के मामले में बेटी को शोषित नहीं होने देना चाहती। वह चाहती है कि उसकी बेटी पुरुषों को अपने संकेतों पर नचाए। पति-पत्नी में इसी मुद्दे पर ठनी हुई है।

कहानी में लम्बे संवाद, समस्या पर 'लाउडथिंकिंग'-सा प्रतीत होते हैं। विडम्बना यह है कि पति को पता चल गया है कि विवाह से पूर्व पत्नी के अन्यत्र सम्बन्ध रहे हैं, विवाह तो उसके लिए ढाल मात्र है। उसे लगता है कि उसकी बेटी मुन्नी ने अपनी मां से यौनाचार के सभी ढंग सीख लिए होंगे। वह पत्नी को टोकता भी रहा है कि उसका एक दूसरे की बांहों में झूलते जाना और मुन्नी का उसके कामुकतापूर्ण दृश्यों का हिसाब रखते चले जाना किसी एक कोण से

गलत भी है। परन्तु पत्नी इसे उचित समझती है, कामी, लोलुप और घृणित पुरुषों पर विजयी होने के लिए वह बेटी को सब कुछ सिखा चुकी है–'पहले मुझे पुरुषों के संकेतों का अनुसरण करना पड़ता था अब मैं सारे खेल का संचालन स्वयं करूंगी मेरी मुन्नी भी संचालन करेगी सच!'

खैर! अंतत: पति एक 'विशफुल' कल्पना करता है कि उसकी पत्नी ने बेटी को गुण्डे लड़कों से घिरे देखा और महसूस किया कि वीकर सैक्स अंतत: वीक ही होता है और वह यह देख कर रोने लगी, उसे रोती कलपती देख पति अपनी विजय पर प्रसन्न है और गर्व का अनुभव कर रहा है। वह कल्पना करता है कि अब पत्नी मान गई है कि मुन्नी को सब कुछ सिखा देने के बावजूद अपने पुरातन संस्कारों के चलते वह विवाह से पूर्व सैक्स की खुली छूट नहीं दे सकेगी 'और फिर अनिच्छा से किसी के साथ समागम !'

कहानी का अंत 'विशफुल ड्रीम' ही है। कहानी समस्या का फिलहाल ही प्रस्तुत कर पाई है। न ही पत्नी के चरित्र का पति द्वारा किया गया मनचाहा विकास किसी तर्कसंगत परिणति पर पहुंचा है। ऐसा लगता है कि कहानी गलत कोण से शुरू हुई है अत: अस्वाभाविकता-दोष आ गए हैं। जो है कहानी का फिलहाल ठीक ही है।

कुल मिला कर कहा जा सकता है कि रमेश मेहता की इन कहानियों में आदमी के अन्तश्चेतन में उतरने और उसे व्यक्त करने के अच्छे यत्न हुए हैं। आतंकजन्य त्रास त्रासजन्य आतंक आदमी के व्यवहार को कुण्ठित किए हुए हैं और आदमी अपने-आप में अकेला पड़ता जा रहा है। शिल्प और भाषा के स्तर पर 'अधूरी कहानी का हीरो' उनकी उत्कृष्ट कहानी कही जा सकती है। 'संदर्भहीन' में भावनाओं की बारीक अभिव्यक्ति और बुनाई सुंदर और सार्थक रही है।

4.2.2.11 अलंकार की मात्र एक कहानी इस दशक में प्रकाशित हुई है, जिसका मूल्यांकन निम्नलिखित है।

4.2.2.11.1 टूटा हुआ एहसास कहानी में चेतन अचेतन को परस्पर जोड़ कर शब्दों की कमखर्ची का फार्मूला अपनाते हुए व्यक्ति के अन्त: और बाह्य रूपों को खोलने की चेष्टा की गई है। कलाकार कामतानाथ सात सालों बाद उसी फ्लैट में पहुंचता है जहां वह अपनी प्रेमिका को धक्का देकर मार चुका है, वह अपने इस पुराने एहसास से जुड़ना चाहता है। कलाकार स्पष्ट करता है कि उसकी प्रेमिका उसकी पत्नी बनना चाहती थी जबकि वह उससे प्यार करता था उसके शरीर से नहीं।

फ्लैट के नये किरायेदार की खुले स्वभाव वाली पत्नी मिसेज़ श्रीवास्तव प्रेम में यौन सम्बन्धों प्रेम को महत्व देती है। वह लम्बे समय तक चलने वाले भावात्मक प्रेम को पसंद नहीं करती। मिसेज़ श्रीवास्तव की इस चर्चा को चित्रकार उसकी ओर से शारीरिक-प्रेम का न्यौता समझ लेता है। इसी कारण उसे चांटा खा कर, धक्के खाकर, बेइज्जत हो कर फ्लैट से उतरना पड़ता है।

कहानी फैंटेसी शिल्प में लिखी गई है। प्रेम और वासना के बीच की महीन भेदक

लकीर को उजागर किया गया है। कलाकार के झूठे दिखावे, यथार्थ और कल्पना के बीच के द्वन्द्व और कलाकार की कमज़ोरी तथा लोलुपता पर अच्छी व्यंग्यपूर्ण चोट की गई है। चित्रकार को भावुकतापूर्ण परन्तु चालाकी से किए गए आलिंगन के कारण पड़ने वाला थप्पड़ कहानी का महत्वपूर्ण पड़ाव है जो नारी-शील, उसके मन की आकांक्षाओं, शरीरगत शोषण के विरुद्ध संस्कारों को एक साथ उजागर कर देता है।

कहानी में अनेक विचार बिन्दु हैं जो पूरी तरह विस्तार न पाकर झलक दिखाते हैं और लुप्त हो जाते हैं। परन्तु कहानी के लम्बे संवाद उबाऊ हैं और मिसेज़ श्रीवास्तव का चरित्र स्वाभाविक नहीं। कलाकार और मिसेज़ श्रीवास्तव अपने-आप को जिस ढंग से 'प्रोजेक्ट' करते हैं वह भी सम्बंधों में परस्पर घालमेल पैदा करता है। साधारण कहानी है।

4.2.2.12 सुतीक्ष्ण कुमार आनन्दम् की इस दशक में एक ही प्रकाशित कहानी मिलती है, जिसका मूल्यांकन निम्नलिखित है।

4.2.2.12.1 तेंदुआ कहानी में आदमी के अन्तर्मानस में बसी भय की वृत्ति को फैंटेसीवत् चित्रित किया गया है। तेंदुआ और बाज़ त्रास के प्रतीक हैं, मुर्गा शौर्य और आनन्द की वृत्ति का कमजोर-सा प्रतीक है। गुलाब प्रेम भावना का प्रतीक है तो बबूल घृणा और चुभन का प्रतीक है।

विडम्बना यह है कि त्रासग्रस्त आदमी त्रासद स्थितियों की शरण में जाकर जकड़े जाने के लिए विवश है। चतुर्दिक बबूल ही उग रहे हैं, घृणा, मारकाट और आदमी की आखेटक वृत्ति मानवीय सम्बंधों में जुगुप्सा पैदा कर रही है। विवशताजन्य सम्बंधों का निर्वाह जुगुप्साकारी है, चाय में पड़ी मक्खी की तरह !

परन्तु इस तरह की फैंटेसीवत् कहानियों में व्याख्या की गुंजाइश रहती है, यही कमजोरी सम्प्रेषण में बाधक हो जाती है। 'तेंदुआ' में बात और अधिक स्पष्ट कही जाती तो उचित था कहानी की भाषा काव्यात्मक और प्रतीकात्मक है जो कहानी विधा के अनुकूल नहीं।

4.2.2.13. ओम प्रकाश गुप्त की प्रकाशित कहानी-पुस्तक के अतिरिक्त यह एक मात्र स्वतंत्र प्रकाशित कहानी है, जिसका मूल्यांकन निम्नलिखित है।

4.2.2.13.1. माथे की रेखाएं में 1971 ई. के भारत-पाक युद्ध की पृष्ठभूमि है। जिसमें एक मुस्लिम भारतीय नागरिक खालिद की देशभक्ति और उस पर उठने वाले संदेहों और छेदने वाले तानों का चित्रण हुआ है। खालिद के अन्तश्चेतन, हिन्दू मित्र के परिवार के प्रति उसके रागात्मक स्नेह, सौहार्द्र और कोमल वृत्तियों का करुण और आदर्शप्रेरित चित्रण हुआ है।

खालिद के अन्तश्चेतन में चली 'स्ट्रीम आफ कांशियसनेस' के रूप में कहानी का विकास होता चलता है और वातावरण, घटनाक्रम, ताने-तिश्ने, व्यक्तिगत रागानुराग और देशप्रेम की भावनाओं को समेटती हुई कहानी उत्कृष्ट बन गई है। परन्तु लेखक का आदर्श बालिका अनु द्वारा व्यक्त बाल-आदर्श ही है। समाचार पत्रों ने न जाने कितने खालिदों को संदेह की मार से कुण्ठित किया होगा, न जाने कितने ख़ालिदों को बाल-सुलभ सीधी-सच्ची अनौपचारिक

चुनौतियों और हास्य-व्यंग्यों का सामना करना पड़ा है। अच्छी सार्थक कहानी है।

4.2.2.14 दयानन्द शर्मा की इस दशक में मात्र एक प्रकाशित कहानी है, जिसका मूल्यांकन निम्नलिखित है।

4.2.2.14.1. मेकअप कहानी में सौतेली मां द्वारा दुत्कार दिए गए युवक दीनू और उसकी पत्नी बसंती की साधारण भोली-भाली आकांक्षाओं का चित्रण हुआ है। अपनी फैशनेबल मालकिन की देखादेखी भोली-भाली ग्रामीण बसंती भी स्याही से होंठ लाल कर लेती है। कहानी में रोचकता है और सहजता है। नाटकीयता का गुण भी कहानी में समायोजित हुआ है। साधारण भाषा और शिल्पगत सादगी कहानी में सम्प्रेषणीयता को बढ़ा रहे हैं। गंवई औरत का भोलापन, कर्मठता और कार्य कुशलता के साथ-साथ फैशन के प्रति भोला-सा आकर्षण बाखूबी अभिव्यक्त हुआ है। कहानी का अंत भी सुखद और रोमांचपूर्ण है। अच्छी सार्थक कहानी है।

4.2.2.15 जगमोहन की एक मात्र प्रकाशित कहानी का मूल्यांकन निम्नलिखित है।

4.2.2.15.1 एक फैला हुआ बरगद एक घुटी हुई सांस में पिता के दबदबे से मुक्त होकर स्वतंत्र व्यक्तित्व की तलाश में भटक रहे युवक की घुटन का मनोविश्लेषणात्मक चित्रण हुआ है। उसकी बहन भी इसी दबदबे के कारण अपने प्रणय-पुरुष को गंवा बैठी है। कहानी का वाचक आत्मालोचन करता है कि वह संघर्ष से बचकर समझौता-सा कर रहा है क्योंकि पिता से मिली छत से अलग उसका कोई अस्तित्व नहीं।

कहानी का अंत अच्छा है जो विद्रोही व्यक्ति की आस्था को उकेर देता है। अच्छी मनोविश्लेषण प्रधान कहानी है।

4.2.2.16 राजीव रैणा साधारण कहानीकार है। इनकी एकमात्र प्रकाशित कहानी का मूल्यांकन निम्नलिखित है।

4.2.2.16.1 चोट कहानी व्यंग्यनुमा कहानी बन नहीं पाई। हां, प्रशंसा पाने की बच्चे की आकांक्षा का अच्छा स्वप्न बन गया है। कहानी का शिल्प कुछ ऐसा है कि कहानी स्वप्न की अपेक्षा दिवास्वप्न अधिक प्रतीत होती है, हां बच्चे के अंतर्मन में समायी आकांक्षा और अवरोध का चित्रण अच्छा है, चोर का पीछा कर रहे बच्चे की रहस्य, रोमांच, भय और साहस आदि से जुड़ी प्रतिक्रियाओं का चित्रण मनोविश्लेषणवादी विचारों की दृष्टि से महत्वपूर्ण और सुगठित है।

4.2.2.17 आजाद कुमार मानव 'नाहर' की इस दशक में दो कहानियां प्रकाशित हुई हैं, जिनका मूल्यांकन प्रस्तुत है।

4.2.2.17.1 एक जूते की आत्मकथा व्यंग्यनुमा कहानी है, जो नेता, चोर, अमीर, पुलिस, मजनू और कबाड़ी की दुकान तक फैली हुई है। इन सभी लोगों की काली करतूतों को काफी कुशलता से नियोजित किया गया है और मौजूदा व्यवस्था में आदमी की पीड़ाओं और जीवन-विसंगतियों का चित्रण किया गया है।

जूते की आत्मकथा के बहाने आदमी के जीवन की वस्तुस्थिति का रोचक और व्यंग्यपूर्ण चित्रण हुआ है, ठीक जूते की भांति मनुष्य भी एक पांव से दूसरे पांव में, एक स्थान से दूसरे स्थान पर, एक मालिक से दूसरे मालिक के पास भटकता रहता है, जूते की भांति दबा रहता है।

4.2.2.17.2 अवतरण कहानी में लोगों द्वारा मृतक को झूठी और दिखावटी गरिमा देने की वृत्ति, लुकछिप कर शोक संतप्त परिवार की सुंदर लड़कियों को ललचाई दृष्टि से देखने की वृत्ति और शोक-संवेदना की औपचारिकता पर अच्छी चोटें की गई हैं। वैचारिक विरोध के कारण मृतक के आचरण को विसंगत मान लेना और शोक सभा में भी उसे न भुला पाने की वृत्ति पर भी चोट गई है। कुल मिलाकर आदमी की कमीनगी पर यहां अच्छा करारा व्यंग्य किया गया है। शिल्प और अनुभूति के बिखराव के बावजूद कथ्य के बहाने पात्रों की चारित्रिक हत्या ने कहानी को कमजोर और दोषपूर्ण कर दिया है।

4.2.2.18 डा. मनोज शर्मा मूलतः डोगरी कहानीकार हैं, इनकी हिन्दी में प्रकाशित इनकी एकमात्र कहानी का मूल्यांकन निम्नलिखित है।

4.2.2.18.1 एक वार कई घाव उत्कृष्ट कहानी है। डोगरी कहानीकार की इस कहानी को उनकी पहली हिन्दी कहानी कहा गया है परन्तु यह स्पष्ट नहीं कि यह मूलतया हिन्दी में लिखी गई या अनुदित है। इस तथ्य के बावजूद कहानी इतनी सशक्त और उत्कृष्ट है कि इसके मूल्यांकन का लोभ संवरण नहीं हो पाता।

कहानी की मनोविश्लेषण प्रधान चेतन प्रवाह की शैली, स्थिति चित्रण की ताकत, घटनाक्रम का तर्कसंगत नियोजन बड़ा ही महत्वपूर्ण और उद्देश्यप्रेरित है। अपनी विधवा मां के शारीरिक शोषण के विरुद्ध प्रतिक्रिया स्वरूप उभरी बदले की भावना के कारण प्रीतो अपने चाचा का कत्ल करके उम्र कैद भोग रहा है। इसकी मानसिक यातना का चित्रण आत्मालोचना के रूप में किया गया है। कैदखाने के परिवेश पर यहां तीखा व्यंग्य है, भुक्तभोगी की यथार्थपूर्ण दृष्टि से किए गए इस व्यंग्य से ही कहानी आरम्भ होती है। अपने बचपन से लेकर हत्याकर्म तक के समूचे अतीत का स्मरण प्रीतो कहानी के रूप में बुनते चलता है। अपराधकर्म के लिए तैयार करने वाली स्थितियों का यहां बड़ा ही तर्कसंगत और अनुभूतिप्रवण चित्रण हुआ है।

अपराधकर्त्ता ही अपराधकर्म का प्रथम दर्शक और कर्त्ता है। वही अपराध कर्म के लिए उकसा रही अपनी अनुभूति को जानता है और मानसिक तथा जिस्मानी प्रतिक्रियाओं को सच्चाई के धरातल पर प्रकट भी कर सकता हैं। मानवीय अनुभूति की इतनी तलस्पर्शी समझ और सतर्क व्याख्या जम्मू-कश्मीर की किसी अन्य कहानी में नहीं मिलती। कहानी में न कहीं झोल है, न भावुकता का अतिरेक, न स्थिति का अन्यथाकरण है और न शिल्प और भाषागत कमजोरी, यहां डोगरी के शब्दों का सार्थक हिन्दीकरण किया गया है।

कहानी है तो काल्पनिक परन्तु कुछ ऐसी लिखी गई है कि बिल्कुल यथार्थ प्रतीत होती है। कहानी के बहाने जेलों की व्यवस्था, बच्चे के मनोविज्ञान, बच्चे की जिज्ञासाओं, शर्मिंगदी की त्रासद अनुभूतियों, लोगों के ताने-तिश्नों का भय, मां के बिना असुरक्षा का भय, चाचा के आतंक

और त्रास पर विजयी होने की कामना, मां पर चाचा के दबदबे और उनके संभोग-कर्म के दृश्य को देखकर बच्चे के मन में उपजी अनुभूतियों, मां के शोषित होते रहने के कारण पर सोच-विचार और अवला की जीवन त्रासदी आदि का हृदयग्राही चित्रण किया गया है। अंतत: मां की शारीरिक जरूरतों तथा सुरक्षा की आकांक्षाओं का विश्लेषण भी प्रीतो ही करता है। कुल मिलाकर कहानी शिल्प, भाषा और अनुभूतिगत विश्लेषण की दृष्टि से सशक्त सार्थक और उत्कृष्ट है।

4.2.2.19 फकीर निर्मोही साधारण कहानीकार है। इनकी दो प्रकाशित कहानियों का मूल्यांकन निम्नलिखित है।

4.2.2.19.1 परछाई कहानी में शमशान-भूमि के भयावह, शान्त और रहस्यमय वातावरण की पृष्ठभूमि में आतंक, भय, रोमांच और साहस आदि अनेक अन्तर्वृत्तियों की अच्छी बुनाई हुई है। लूट-खसोट के त्याग की प्रेरणा दी गई है और सद्कर्मों के महत्व को समझाने का यत्न किया गया है, फैंटेसी का विकास नहीं हो पाया। मृत्यु के बाद के संसार को शांत, लूटखसोटहीन कहा गया है। कच्ची कहानी है।

4.2.2.19.2 राम कहानी संयोगों पर आधारित कहानी है। महंगाई, बेकारी, मिलावट आदि पर व्यंग्य करने की चेष्टा की गई है। कहानी बन नहीं सकी। फिल्मी लटके कहानी की स्वाभाविकता को आघात पहुंचाते हैं।

4.2.2.20 ओ.पी. शर्मा 'सारथी' की इस दशक में दो कहानियां प्रकाशित हुई हैं, जिनका मूल्यांकन निम्नलिखित है।

4.2.2.20.1 आदमी और सलीब कहानी में कहानी लिखने बैठे लेखक की मन:स्थिति का चित्रण हुआ है। कहानी कहानी न होकर पत्र-सा कुछ है, जिसमें मानव-जीवन में धीरे-धीरे बैठ रही असंगतियों पर व्यंग्य किया गया है। पत्रनुमा इस कहानी में आदमी के अमानवीकृत होते जाने, अकेलेपन और निराशाजन्य आत्महीनता के बोध को व्यक्त किया गया है। बुद्धि और सोच की अभिव्यक्ति के लिए छटपटाता आदमी स्वार्थ, धोखेबाज़ी, अहसान फरामोशी, अहंकार, इज्जत की आकांक्षा आदि से ग्रस्त है और चरित्र का झूठा खोल ओढ़े भयानक त्रास की अनुभूति से ग्रस्त है।

उसकी इन अंधवृत्तियों पर व्यंग्यात्मक चोटें की गई हैं परन्तु विचाराधिक्य और सूत्रहीनता के कारण इस सारे तथ्य-कथ्य के बावजूद रोचकता, सहज सम्प्रेषणीयता और कथारस का अभाव कहानी को कहानी नहीं बनने दे रहा। शब्द अर्थच्युत हो रहे हैं, असंगत जोड़न-क्रिया के कारण वाक्य उलझ रहे हैं, विचारगत सूत्रात्मकता या प्रभाव की एकतानता नहीं है।

सतही दृष्टि से देखें तो इन्हीं कारणों से कहानी कमजोर रह जाती है परन्तु यही तो लेखक की शैली है, उसका बात करने का ढंग है, वह असंगत एकालाप के द्वारा जीवन की मौजूदा असंगतियों पर चोट करना चाहता है। भाषा और अभिव्यक्ति के पिटे पिटाये उपकरणों को न अपना कर लीक से हटकर कुछ कहने का यत्न करता है।

4.2.2.20.2 सड़क की यातना कहानी में व्यक्ति-चरित्र की अपेक्षा समाज-चरित्र बल्कि भीड़-चरित्र उद्घाटित हुआ है। कहानी में व्यक्ति नहीं हैं चेहरे हैं, आंखें हैं, सिर हैं, पैर हैं, धड़ हैं और सड़कों पर बहता हुआ उनका समुद्र है परन्तु सिरों के इस समुद्र में पूरा आदमी कोई नहीं। ये अधूरे शरीरांग अपनी-अपनी जरूरत और अपनी-अपनी उपयोगिता को भाषणवत् प्रस्तुत करते जाते हैं, कोई किसी की पूरी बात नहीं सुनता यानी अपनी-अपनी डफली अपना-अपना राग !

इस प्रतीक कथा में आदमी की घोर व्यक्तिवादी मनोवृत्तियों, अहंकार प्रदर्शन, मिथ्या महत्व, ज्ञान की तलाश के लिए झूठी भटकन, अनुभव के नकार, मानवता के वृहद नकार और उपेक्षा, मानवता को पागल करार देने वाली वृत्ति और इतिहास से कुछ न सीखने की वृत्ति आदि पर करारे व्यंग्य किए गए हैं और आत्म-विस्तार करते हुए जन-जन की कल्याण-भावना के अन्तर्गत कार्य करने की प्रेरणा दी गई है।

कहानी में वृद्ध मानव-मात्र के अनुभवों का संचय है और सड़क अनादि अनंत मानवता है, जो पागल कह दी जा रही है। विडम्बना यह है कि अनुभव के चौराहे पर आकर भी आदमी कुछ नहीं सीख पाता, अनुभव भी ठहर कर रह जाता है और सूर्योदय सूर्यास्त होता रहता है। यहां कालगति की निरर्थकता को अच्छे और सार्थक ढंग से व्यक्त किया गया है।

'सारथी' की इन कहानियों में पात्रों के व्यक्ति-चरित्र, कार्यकलाप, क्रिया-प्रतिक्रियागत व्यवहार, देशकालगत वेश-भूषा की अपेक्षा विचारों का महत्व रहता है, यानी उनका मानसिक गठन ही प्रकट होता है, बाह्य रंग, रूप, आकार और उनके क्रिया-व्यापार नहीं चित्रित होते। कहा जा सकता है कि उनके पात्र मात्र आवाज़ें हैं, जिनका चेहरा और व्यक्तित्व नहीं क्योंकि लेखक यह मान कर चलता है कि विसंगतिग्रस्त इस संसार में सच्चे-सुच्चे चेहरे हैं ही नहीं, चेहरों का महत्व रहा ही नहीं।

क्योंकि सारथी चित्रकार भी है जो रंग रेखा की काट- छांट और भराई जानता है और इस कौशल के सहारे शब्दों के माध्यम से 'स्टिल लाइफ' को चित्रित करता है। 'सड़क की यातना' कहानी में सूर्यास्त, सूर्योदय के चित्रण को रंगों, रेखाओं की कटाई-पुताई द्वारा ही व्यक्त किया गया है और रंगों की मकानों, द्वारों पर पुताई मानो प्रातः आंखें खोलते लोगों के रूप में। वस्तु का मानवीकरण करते हुए कहानी 'स्टिल लाईफ' की ओर बढ़ती है, भीड़ में हरेक पैर अपना चिन्ह छोड़ने को आतुर है परन्तु कभी कोई चिन्ह छूटा नहीं। भीड़ का हर चेहरा महत्वाकांक्षी है परन्तु अधूरा है, अस्तित्वहीन है, अस्तित्व की तलाश में है और घोर व्यक्तिवादी होकर साधारण मानवता की उपेक्षा कर रहा है।

4.2.2.21 डॉ. गंगा दत्त 'विनोद' की इस दशक में मात्र एक कहानी प्रकाशित है, जिसका मूल्यांकन प्रस्तुत है।

4.2.2.21.1 दादी कहानी निराश्रित बाल-विधवा बुढ़िया मद्दो की करुण त्रासदी मात्र है। चारित्रिक संघर्ष की अपेक्षा आदर्श-आरोपण के द्वारा लेखक ने बात कहने की कोशिश की

है। विवरणात्मक शैली में लिखी इस कहानी में लेखक की पक्षधरता उभर कर सामने नहीं आई। यहां प्रभुभक्ति में लीन, मेहनत मज़दूरी करके पेट पालने वाली सदाचारिणी और संयमशील नारी का साधारण-सा चित्रण हुआ है। एक आदर्श ग्रामीण समाज की कल्पना की गई है। कहानी में जिस भावुकता, करुणा और आदर्श को पिरोया गया है वह चारित्रिक संघर्ष की हीनता के कारण पाठक को आंदोलित नहीं कर पाता।

4.2.2.22 **इन्द्रजीत सिंह पुजारी** की इस दशक में एक ही कहानी प्रकाशित हुई है, जिसका मूल्यांकन निम्नलिखित है।

4.2.2.22.1 **एक दिन का सूर्य** में अभावग्रस्त परिवार की लड़की की मनोव्यथा, उसकी विवाह की आकांक्षा, भूख और भूखे परिवार के बीमार सदस्यों की चिन्ता का मनोविश्लेषणप्रधान चित्रण हुआ है। भूखी लड़की की क्रिया-प्रतिक्रिया और सोच-विचार में परस्पर सामंजस्य बिठा कर कहानी का विकास किया गया है, संवाद बहुत कम हैं परन्तु जो हैं काफी चुस्त और तीखे हैं, भाषा, शिल्प और संवेदना के आधार पर कहानी उत्कृष्ट है, जिसमें लड़की के अन्तश्चेतन की सशक्त अभिव्यक्ति हुई है।

राधा की भूख न रोटी के सूखे टुकड़े से मिटती है न पानी से, वह परिवार के अभाव के प्रति सोचती है, समझती है कि सोचने से भूख और दर्द भूल जाता है। वह अपने मां-बाप के त्रासद दाम्पत्य-जीवन के बारे में सोचती है कि मां सुन्दर थी परन्तु बाप ने शराब के लिए कुछ पैसों में बेच दी और अब मां यह पति रात दिन शराब पीकर उसे पीटता रहता है।

मां-बांप के त्रासद दाम्पत्य के कारण वह विवाह के सुखद स्वप्न भी भूल गई है और समझने लगी है कि उसका जीवन भी मां के वैवाहिक जीवन जैसा ही दु:खद होगा। थोड़े कल्पनातिरेक के बावजूद अच्छी और उत्कृष्ट कहानी है।

4.2.2.23 **विजय रोकड़ी** की इस दशक में एक कहानी प्रकाशित है, जिसका मूल्यांकन निम्नलिखित है।

4.2.2.23.1 **ढलती शाम के साथ साथ** का कथानक बिखरा हुआ है बल्कि कथानक की अपेक्षा व्यवहारिक जीवन और परिवेश पर छोटी-छोटी प्रतिक्रियाओं को बुन कर मूल्य-विघटन पर चिंता व्यक्त की गई है। व्यक्ति के मन की अशान्ति और मानसिक अस्थिरता का अच्छा चित्रण हुआ है। आदमी के अन्तश्चेतन को प्रस्तुत करने का यत्न किया गया है परन्तु कहानी बन नहीं पाई। शिल्प, गठन, समस्या आदि काफी कमजोर और बिखरावपूर्ण हैं। हां, यदि आदमी की मन-स्थिति के ऊलजलूल पर बात करनी हो तो कहानी ठीक ही है।

4.2.2.24 **सुभाष शर्मा** की मात्र एक प्रकाशित कहानी है, जिसका मूल्यांकन निम्नलिखित है।

4.2.2.24.1 **जेम्स एक पैथेटिक कैरेक्टर** कहानी में संकेतों और प्रतीकों द्वारा अनकहे प्रेम को अभिव्यक्ति मिली है। कहानी का वाचक जेम्स के पीछे लगा रहता है, उसकी क्रियाओं को देखता है और विश्लेषण करता चलता है। टिप्पणियों और विवरण पद्धति के सहारे बीच-

बीच वह अपने कथ्य को अभिव्यक्त करता चलता है, इससे कहानी को शैलीगत नयापन मिला है।

बचपन से गेंदों से प्रेम करने वाला जेम्स उन्हें उछालता और उधेड़ता रहा है। जबकि लम्बे समय तक किसी एक गेंद से उसका प्रेम नहीं रहा। वह उसकी तहें उधेड़ता है और फैंक देता है। युवा अवस्था तक पहुंच कर भी उसकी यही आदत बनी रही है। बचपन की यही गेंद युवा-अवस्था में मानो लड़की के अन्तर्मन का प्रतीक बन गई है।

जेम्स लड़कियों के अन्तर्मन को उधेड़ता रहता है, अपने प्रति लड़की के आकर्षण को महसूस करता रहता है। स्वयं भी वह लड़की के प्रति आकर्पित है परन्तु प्रेम को अभिव्यक्त नहीं कर पाता। पहले मेरी, मेरी के बाद लूसी उसके जीवन में आती है, दोनों अपने-अपने प्रेम की अभिव्यक्ति शब्दों के माध्यम से नहीं शारीरिक प्रतिक्रियाओं द्वारा करती हैं। परन्तु जेम्स चुप रह जाता है, प्रत्युत्तर नहीं देता।

परन्तु यह चुप्पी किसी भय या घबराहट के कारण नहीं है वह चाहता है कि लड़की उससे शब्दों में प्रेम-निवेदन करे। वह अपने स्वाभिमान के साथ-साथ किसी अन्य के स्वाभिमान को भी चोट नहीं पहुंचाना चाहता। उसे यह भी डर है कि उसे गलत न समझ लिया जाए। वह प्रेम-अभिव्यक्ति में पहल करने से कतराता है जबकि उदास-सा लड़कियों के अन्तर्मन की तहें खोलने में गुम रहता है।

प्रेम की 'फीलिंग' दोनों ओर उभरती है परन्तु अनकही रह जाने के कारण सार्थक नहीं हो पा रही। कहानी का संयोजन और संवेदन सशक्त और सुगठित है। प्रेम की सांकेतिक अभिव्यक्ति काफी जोरदार और नारी के मनोविज्ञान के अनुरूप है, जिसे जेम्स समझ कर भी अनकहा समझ लेता है। अच्छी मनोविश्लेषणप्रधान प्रेम कहानी है।

4.2.2.25 गणेश भार्गव की इस दशक में प्रकाशित एकमात्र कहानी का मूल्यांकन निम्नलिखित है।

4.2.2.25.1 ज्वारभाटा से उभरते हुए रोमांटिक आदर्शवाद और कल्पनातिरेक से ग्रस्त कहानी है, जिसमें क्रियात्मकता नहीं है जबकि संवाद लम्बे और भाषणवत् हो गए हैं। इससे कहानी बोझिल हो गई है। अतिरिक्त भावुकता ने कहानी की रोचकता और सहजता को आघात पहुंचाया है। प्रेमी के शहीदाना अंदाज और प्रेमिका द्वारा कला-साधना का उपदेश देने पर कहानी खत्म होती है। इन उपदेशों को आर्ष वचन समझ कर आत्महत्या के लिए आया प्रेमी चला जाता है नये सूर्योदय की तलाश में, नये कथानक की तलाश में !

4.2.2.26 राजऋषि शर्मा की यह मात्र एक कहानी इस दशक में छपी कहानी है, जिसका मूल्यांकन निम्नलिखित है।

4.2.2.26.1 गुमे हुए दरख्तों के बीच ग्रामीण जीवन में आती जा रही मक्कारी, चोरी और सम्बंधों की आड़ में किसी कर्त्तव्यनिष्ठ व्यक्ति के ईमानदार मानस तक का शोषण कर लेने की प्रवृत्ति की कहानी है। कहानी में चोरी से वृक्ष काटने के साथ-साथ आदमी के परस्पर रिश्ते

भी कटते जा रहे हैं।

अंत में कहानी व्यंग्यात्मक हो जाती है। हां, अपनी चारपाई गंवा कर ठाकुर रिश्तों की जकड़न से मुक्त हो जाता है और शांति का अनुभव करने लगता है। कर्त्तव्यनिर्वाह के प्रति प्रतिवद्ध और रिश्तों द्वारा प्रेरित भ्रष्टाचार (चारपाई की रिश्वत) से मुक्त व्यक्ति का चरित्र उदात्त है। अच्छी, सार्थक और सुगठित कहानी है।

4.2.2.27 अमर नन्दा की मात्र एक प्रकाशित प्रेम कहानी है, जिसका मूल्यांकन प्रस्तुत है।

4.2.2.27.1 घर की ओर कहानी में आदमी के भीतर की कोमल भावनाओं, प्रेमी और प्रेमिका की परस्पर शुभ-कामनाओं और चारित्रिक उज्ज्वलता का सशक्त चित्रण हुआ है। प्रेमी प्रेमिका दोनों ही उदात्त चरित्र लिए हुए हैं। भाषा और शिल्प की दृष्टि से भी कहानी अच्छी है, जिसमें सहजता, उत्सुकता और रोमांच के साथ-साथ कथारस को बनाए रखा गया है, पात्रों के अन्तर्मन का चित्रण मनोविश्लेषणपरक पद्धतियों के अनुरूप हुआ है।

प्रेमिका का विवाह पुलिस इन्सपैक्टर से हो जाता है। प्रेमी बेकारी और अभाव से ग्रस्त चोरी करता है परन्तु एक रात अनजाने में प्रेमिका के घर ही चोरी के लिए घुस जाता है। चोर समझ कर प्रेमिका बत्ती जलाती है और उसे देख कर चौंक जाती है। वह समझती है कि वह उसी से मिलने आया है परन्तु प्रेमी अपनी असलियत बता देता है। प्रेमिका उसे कुछ पैसे देती है ताकि वह अपनी जरूरत पूरी कर सके परन्तु वह घर से निकल रहा होता है कि प्रेमिका का पति उसे चोर समझ लेता है। प्रेमिका की इज्जत को ध्यान में रखकर प्रेमी चोर के रूप में पकड़ा जाता है और जेल चला जाता है। कहानी 'फ्लैश बैक' शैली में कही गई है। शिल्प, भाषा, संवाद और स्मृति-चित्रण अच्छा बन पड़ा है।

4.2.2.28 अनिल सहगल की मात्र एक प्रकाशित कहानी का मूल्यांकन प्रस्तुत है।

4.2.2.28.1 कोहरे में से कहानी में आदमी के अकेलेपन की पीड़ा को अच्छी अभिव्यक्ति मिली है। मनोविश्लेषण, अतीत-स्मरण, स्थिति-चित्रण, व्यंग्य-वाक्यों और दुर्घटना के भय का समाहार करते हुए मृत्युभय के कोहरे में से निकल आने की मन:स्थिति का अच्छा चित्रण हुआ है। निरर्थकता, अकेलापन, बेकारी की अनुभूतियों और विवाह-आकांक्षाओं की परस्पर बुनाई करके कहानी का संयोजन किया गया है। अन्तश्चेतन की अभिव्यक्ति ठीक ही है।

4.2.2.29 नीलम खोसला की इस दशक में मात्र दो प्रकाशित कहानियां हैं, जिनका मूल्यांकन निम्नलिखित है।

4.2.2.29.1 अलगाव कहानी में दफतरी जीवन की यांत्रिकता से ऊबे व्यक्ति के चरित्र पर पत्नी के संदेह की वृत्ति का अच्छा संगठित चित्रण हुआ है। संदेह, कुण्ठा और चिढ़चिड़ापन दाम्पत्य जीवन में व्यक्ति को निरीह बना देता है। इस तथ्य की कल्पना और यथार्थ की निकटतम अभिव्यक्ति कहानी को अतिरिक्त सौंदर्य प्रदान कर देती है।

पत्नी बूढ़ी है, मोटी है और समझती है कि पति किसी युवा और छरहरी युवति के रूपजाल में फंस कर देर से घर लौटता है। पत्नी ताने देती है कि उसका भी दिल है, उसे भी पति का सान्निध्य चाहिए, वह बूढ़ी हो रही है तो पति मानो जवान होता जा रहा है, चुड़ैलों के रूपजाल में फंसा घर-गृहस्थी को भूल जाता है। इसी कारण वह न बनती संवरती है और न ही पति से ढंग से बात करती है।

पति समझता है कि वह 'डिप्रेस्ड' है । वह पत्नी को डाक्टर को दिखा लेना चाहता है। तीखे ताने-तिश्नों के बाद वह तैयार होती है तो पति उसे अपनी च्वायस के कपड़े और सैंडिल पहनने तक का परामर्श नहीं दे पाता। रिक्शे में दोनों साथ-साथ बैठे हैं परन्तु पति के शरीर में कोई रोमांच नहीं होता बल्कि पत्नी के हावभाव से उसे ऐसा लगता है जैसे वह नहीं पत्नी ही उसे मनोचिकित्सक के पास ले जा रही है।

कहानी में पत्नी के संदेहजन्य संवाद बड़े चुस्त और रोचक हैं। अपने बुढ़ापे और मोटापे से दुखी वह पति के अवैध सम्बंधों की कल्पना करके चिढ़चिड़ी हो रही है। कहानी में अकेलेपन से ग्रस्त नारी-मन का बड़ा सशक्त चित्रण हुआ है, उत्कृष्ट कहानी है।

4.2.2.29.2 बोधिसत्व कहानी का कथानक बड़ी मेहनत से गढ़ा गया है **फिर भी** सहजता और स्वाभाविकता नहीं आ पाई। क़हानी के वाचक का आत्ममंथन भी अधूरा-सा ही प्रतीत होता है, कहानी अपने उद्देश्य से भटक रही है। प्रणयनिवेदन से जुड़ी कहानी में पत्र के रख रखाव और उलझाव ने कहानी को बरबाद कर दिया है। कहानी में अन्तर्द्वन्द्व किसी निष्कर्ष पर पहुंचाने की बजाए बद्मूल मानसिकता-सा बन कर रह गया है। 'डिटेल्स' और अन्यथाकरण कहानी के लिए घातक हो उठे हैं।

4.2.2.30 निर्मल कुसुम 'कचरू' की मात्र एक कहानी प्रकाशित हुई है, इसका मूल्यांकन देखें ।

4.2.2.30.1 व्यवस्था का दोष कहानी में टेबल-टॉक और अतीत की स्मृतियों के सहारे पारिवारिक व्यवस्था की पृष्ठभूमि में नारी के शोषण और दमन को अभिव्यक्ति मिली है। सास-ससुर के द्वारा किए जा रहे दमन और अविश्वासजन्य अपमान के कारण राधा पागल-सी हो गई है। इसी राधा की व्यथा-कथा कहानी का कथ्य है, जिसकी पृष्ठभूमि को तैयार करने के लिए कॉफी हाउस के मुक्त माहौल में बैठी कहानी-वाचिका राधा के प्रति सोच रही है।

राधा की त्रासदी यह है कि उसे मरजी से कुछ खर्च करने का अधिकार नहीं, उसका पति भी अपने मां-बाप के हाथों की कठपुतली मात्र है। राधा को पग-पग पर उनसे अपमान झेलना पड़ता है, इसी कारण वह पागल-सी हो गई है।

कहानी में दो नारियों के दाम्पत्य जीवन की तुलना करके परिवार की क्रूर व्यवस्था पर चोट की गई है। साधारण सामाजिक कहानी है। कहानी के बीच कॉफी हाउस में दोस्तों की बातें न केवल कहानी की वाचिका की स्मृतियों को भटकाती हैं, कहानी को भी पथ भ्रष्ट करती हैं और प्रभावान्विति को आघात पहुंचाती हैं। नारी दमन के विरुद्ध लिखी यह साधारण कहानी है।

4.2.2.31 डॉ. सोमनाथ कौल की इस दशक में मात्र एक प्रकाशित कहानी है, जिसका मूल्यांकन निम्नलिखित है।

4.2.2.31.1. एक घण्टे लम्बी सड़क की नियति कहानी में दफतरी जीवन की यांत्रिकता भोगने के बाद भी धनाभाव से जूझने के लिए अतिरिक्त मेहनत कर रहे व्यक्ति के रिश्तों और घर-परिवार में पसरते जा रहे अकेलेपन का सशक्त चित्रण हुआ है। कहानी में अन्तर्मंथन के साथ-साथ वातावरण और आम जनजीवन पर भी अच्छी टिप्पणियां की गई हैं। कहानी में सहजता, रोचकता और उद्देश्यपरकता बनी रही है। विडम्बना यह है कि व्यक्ति दफतरी कामकाज की व्यस्तता के कारण अपनी मरी हुई रिश्तेदार के अंतिम संस्कार में नहीं पहुंच पा रहा, घर में वह छुट्टी के रोज ही मां-बांप से मिल पाता हैं। रात को घर पहुंचता है तो बच्चे सोए हुए मिलते हैं, रात थका मांदा देर से लौटता है तो पत्नी से प्रेम तक नहीं कर पाता, आरम्भ से ही वह पत्नी की उफनती जवानी को तिरस्कृत करता आया है। हालत यह है कि दफतर में जल्दी छुट्टी हो जाने पर वह घर पहुंचता है तो उसे दरवाज़े पर खड़ा देखकर पत्नी भी किंक्र्त्तव्यविमूढ़ होकर रह जाती है।

कहानी का संगठन बढ़िया है। थके-मांदे व्यक्ति के अन्तश्चेतन की और बच्चों की प्रतिक्रियाएं अच्छी बन पड़ी हैं। जीवन में आते जा रहे सकारण अजनबीपन की अच्छी अभिव्यक्ति हुई है। उत्कृष्ट कहानी है।

4.2.2.32 मोहनलाल बाबू की इस दशक में मात्र एक प्रकाशित कहानी है, जिसका मूल्यांकन प्रस्तुत है।

4.2.2.32.1 स्नेह पाश कब्रिस्तान में रह रही अनाथ लड़की के गम्भीर अकेलेपन की कहानी है। आत्मकथात्मक शैली में लिखी इस कहानी में अनाथ, मैली कुचैली, उपेक्षित लड़की माली का चरित्र उभारने का अच्छा यत्न हुआ है। माली कब्रिस्तान को नहीं छोड़ पाती क्योंकि उसका पिता वहां दफन है, जो वहां अकेला रह जाएगा। अंततः मृत माली को कब्रिस्तान छोड़ आने के लिए निकले जुलूस में कहानी का वाचक भी शामिल हो जाता है।

रेखाचित्र या संस्मरण के रूप में लिखी साधारण विवरणात्मक कहानी है, जिसमें आदमी के उपेक्षाजन्य अकेलेपन को मुखरता दी गई है।

4.2.2.33 राजेन्द्र जेरथ की इस दशक में मात्र एक प्रकाशित कहानी 'चट्टान' का मूल्यांकन निम्नलिखित है।

4.2.2.33.1. चट्टान चरित्र प्रधान कहानी है, जिसमें व्यक्ति की मानसिक दृढ़ता तथा अपराध कर्म की कहानी कही गई है। कहानी का वाचक फिल्मी दुनिया के छल-कपट, बेवफाई, महत्वाकांक्षा, व्यभिचार और अवैध सम्बंधों की बखिया उधेड़ता है। कहानी में फिल्मी उपकरणों और ज्ञान का उपयोग हत्या के लिए किया गया दिखाया गया है और अपराधकर्मी की आत्म-स्वीकृति, आदमी की षड्यंत्रकारी बुद्धि को स्पष्ट किया गया है।

कहानी में अन्तर्द्वन्द्व की अपेक्षा वर्णन शैली को महत्व मिला है। कथानक का संयोजन

अच्छा है, वातावरण समय और स्थिति के अनुकूल है। नायिका और नायक के गुणों, रूप-सौंदर्य का सशक्त विकास हुआ है। प्रेम की अभिव्यक्ति में नाटकीयता का तत्व है। फिल्मी जीवन की यह कहानी फिल्मी कथानक बन गई है परन्तु प्रतिशोध के लिए संकल्पबद्ध व्यक्ति की प्रतिक्रियाओं का सशक्त चित्रण हुआ है। अच्छी कहानी है। संवाद भी अच्छे हैं। शिल्प भी ठीक ही है। संवेदना और कथानक थोड़ा परम्पराभुक्त है। कथ्य यह है कि बेवफाई से दुःखी आदमी अपनी ही पत्नी की हत्या कर देता है।

4.2.3 आठवें दशक के हिन्दी कहानी-संग्रह इस दशक में नये उभरे कहानीकारों के ही कहानी-संग्रह प्रकाशित हुए हैं, जिनका प्रकाशनक्रम में मूल्यांकन निम्नलिखित है।

4.2.3.1. लहर लहर हर नैया नाचे डा. ओम प्रकाश गुप्त के 1971 ई. में प्रकाशित कहानी-संग्रह 'लहर लहर हर नैया नाचे' में छोटी-छोटी 18 कहानियां संकलित हैं, 3 से 5 पृष्ठ तक फैली इन कहानियों में फालतू के विस्तार से बचा गया है। मनोविश्लेषणवाद और खण्डान्वयन के सहारे पैदा की गई शिल्प-पद्धति द्वारा कहानी को विकसित किया गया है। यहां अनुभूति पर बौद्धिकता का खासा नियंत्रण है, कहानियों का मूल स्वर आदर्शवादी है, संकेतों, प्रतीकों, कहीं-कहीं काव्यात्मक रूपकों और फैंटेसियों के द्वारा कहानियां विकसित की गई हैं।

4.2.3.1.1 युग और आग कहानी भारत-विभाजन के बाद बदल रहे युग से दुखी अध्यापक सलामदीन की कहानी है, जिसे देश के पुराने मानचित्र से बहुत प्यार है, विभाजन रेखा उसे गोली की लकीर की तरह प्रतीत होती है, लगता है जैसे उसका बिस्तर जल रहा है और दहकते हुए अंगारे, चिंगारियां और लपटें लगातार बढ़ती जाती हैं। बदल रहे युग में वह स्वयं को 'मिसफिट' महसूस कर रहा है। युवा-पीढ़ी सरकारी सम्पत्ति की साड़-फूक कर रही है। सलामदीन को 1947 के दंगे याद आने लगते है।

सलामदीन की पत्नी की मनः स्थिति भी ऐसी ही है, उसके हृदय में भी पति के शागिर्दों के प्रति वात्सल्य उमड़ा करता है परन्तु वह जानती है कि युग बदल गया है, 'आग ही लग गई है जमाने में'।

अन्तश्चेतन को अभिव्यक्त कर रही इस कहानी में जीवन के खट्टे मिट्ठे अनुभव आतंक के वातावरण में स्मृतियों के रूप में उभरे हैं, चिंतनक्रम टूट रहा है, बीमार व्यक्ति की मनःस्थिति का सशक्त चित्रण हुआ है।

4.2.3.1.2 रात सितारों वाली साधारण आदर्शप्रधान कहानी है। विधवा के पुनर्विवाह की पैरवी कर रही इस कहानी में बाल-मनोविज्ञान का अच्छा रोचक संयोजन हुआ है। परन्तु सारी कहानी सीधी-सपाट है, कहीं-कहीं कुछ ऐसे संकेत हैं जो साधारण पाठक की निगाह में नहीं आ पाते।

4.2.3.1.3 मैटर्निटी लीव कहानी में अविवाहिता परन्तु बुढ़ा रही नारी अफसर की मनोव्यथा और उसकी कामजन्य कुण्ठाओं का सुन्दर मनोविश्लेषणात्मक चित्रण हुआ है।

नीना अपनी स्टेनो ललिता की शादी के प्रति जानकर बड़ी चिड़चिढ़ा रही है। उसकी चिड़चिढ़ाहट का कारण यह है कि वह बिन ब्याही बुढ़ा गई है और लाल कमल और लाल गुलाब के बीच के भेद में खोयी रही है।

जबकि नीना जानती है कि काम और कामजन्य कुण्ठा का पता चल भी जाए तो वह विवाह नहीं कर सकेगी। वह छिप छिप कर अपने घर के सामने वाले नव-दम्पति की प्रेम-क्रीड़ाओं को देखती रहती है।

कहानी में बुढ़ा रही लड़की की विवाहाकांक्षा, घरेलू स्वार्थों के दबाव, दफतरी जीवन में आई चिड़चिढ़ाहट और इसकी प्रतिक्रिया तथा वातावरणजन्य उद्दीपनों का सुन्दर, सामयिक और सार्थक चित्रण हुआ है। शिल्प और कथ्य काफी गठा हुआ है, अच्छी कहानी है।

4.2.3.1.4 नरगिस दस वर्षीय बलात्कृता बच्ची की 'कण्डीशनड' मनः स्थिति की कहानी है। 'उस पहाड़ जैसे आदमी के नीचे वह बुरी तरह पिस जाती और हंसती रहती।'

यह कहानी पढ़ते हुए सआदत हसन मण्टो की कहानी 'खोल दो' का स्मरण हो आता है। कण्डीशनड मानसिकता का करुण चित्रण है।

4.2.3.1.5 बूढ़ा ज्वार मनोविश्लेषण प्रधान कहानी है, जिसमें बूढ़े आदमी की ममता, बहु-बेटे से मिली उपेक्षा और घरेलू कर्त्तव्यों तथा जीवन-संघर्ष का अच्छा संकेतात्मक चित्रण हुआ है। यहां घर-परिवार में उपेक्षित हो रहा बूढ़ा अपने महत्व और उपस्थिति को बनाए रखने के लिए संघर्ष कर रहा है।

वह बेटे के बन रहे मकान की निगरानी करता है, नल से किसी को पानी नहीं लेने देता, मज़दूरों को जल्दी काम न करने के लिए डांटता है। दीवार से पीठ खुजलाती गाय को लोहे की सलाख से पीट देता है। इतना काम करने के बावजूद धीरे-धीरे बूढ़े की उपेक्षा होने लगती है।

घर से उपेक्षित बूढ़ा चतुराई से विधवा चमारिन पुनिया की ओर देखने लगता है। लेखक शायद दोनों में पनप आई सहानुभूति में रागात्मकता दिखाना चाहता है ।

4.2.3.1.6 मां और पुत्र मां की ममता से पूर्ण परन्तु अस्पष्ट रह गई कहानी है। बेटे के क्रियाकलाप मां के विचारों के पूर्णतया विरुद्ध हैं, फिर भी मां आश्वस्त है कि बेटा उसके लगाए तुलसी के बिरवे को एक दिन जरूर सींचेगा। कहानी प्रतीकात्मक है । तुलसी शायद सांस्कृतिक परम्परा की प्रतीक है जबकि मां और बेटे के विचार पीढ़ीगत मूल्यों के क्रमशः स्वीकार और नकार के प्रतीक हैं। कहानी का कथ्य और उद्देश्य प्रतीकों के कारण उलझ गया है।

4.2.3.1.7 चूड़ियां न तोड़ो मनोविश्लेषण प्रधान कहानी है। युद्ध विरुद्ध लिखी इस कहानी में चूड़ियां सुहाग का प्रतीक हैं। युद्ध में अनेक औरतें विधवा हो जाती हैं, उनकी चूड़ियां टूट जाती हैं। कहानी में एक ऐसी छोटी बच्ची की चूड़ियों के प्रति आकांक्षा को आधार बना कर उसके चरित्र का विकास किया गया है जो चूड़ियां पहनने की अपेक्षा उन्हें छिपाकर रखना ही बेहतर समझती है। परन्तु अंततः बंजारे के कहने पर लड़ाई में मारे गए अपने पिता के दुःख को

भूल जाती है और चूड़ियां पहनने के लिए तैयार हो जाती है।

फिर विवाह के बाद वह भी लड़ाई के कारण विधवा हो जाती है। और काफी दिनों के बाद आए बंजारे से फिर पूछती है ''लड़ाई क्यों होती है बंजारे? दुश्मन क्यों हमला करता है? उनकी औरतें भी तो चूड़ियों से प्यार करती होंगी। क्या वे भी छुपा के रखती हैं चूड़ियां? मैं इन्हें पहनूंगी नहीं।...जमीन में दबा के रखूंगी। पर नहीं अब तो इन्हें तोड़ कर रखूंगी।...''

कहानी में लड़की की मानसिक स्थिति काफी कारुणिक है। कहानी के अंत तक पहुंचते हुए बंजारा भी युद्ध-विरोधी अधपागल मानसिकता का प्रतीक बन जाता है। मनोविश्लेषणात्मक संकेत काफी सुदृढ़ हैं।

4.2.3.1.8 मोहनराव भाषावाद, प्रान्तवाद और धर्म-सम्प्रदाय के भेदभाव से ऊपर उठकर मानव-प्रेम के आदर्श को रूपायित करती हुई साधारण कहानी है, जिसमें मोहनराव को सांस्कृतिक एकता के प्रतीक के रूप में गढ़कर परस्पर के विश्वास, सौहार्द्र और मेलमिलाप की भावना को चित्रित किया गया है।

4.2.3.1.9 गुब्बारे कहानी में अनेक संकेतों और चित्रण के सहारे सम्पन्न लोगों में बढ़ रही शारीरिक शोषण और व्यभिचार की वृत्ति पर चोट की गई है। 12 साल के बच्चे शोरी को मुनीम लौण्डेबाज़ी का शिकार बनाता है, मालकिन भी शोरी से अपने पैर दबवाती है क्योंकि शोरी के मालिक ठेकेदार ने पत्नी की अपेक्षा पहाड़ में एक गूजरी रख रखी है।

कहानी में नीली आंखें प्रतीकात्मक हैं। लेखक ने संकेतों के सहारे ठेकेदार के मज़दूरिनों से शारीरिक संबंध, मालकिन के नौकर और मुनीम से सम्बंध, मुनीम के 12 साल के बच्चे शोरी लाल से सम्बंध दिखाकर सम्पन्न लोगों में बढ़ रही शारीरिक लिप्सा और व्यभिचार की ओर संकेत किए हैं और विडम्बना यह है कि कोई भी समझदार व्यक्ति इस सबका विरोध करने का साहस नहीं कर पा रहा। कहानी साधारण ही रह गई है। व्यंग्य उभर नहीं पाया, करुणा का भी उदात्तीकरण नहीं हुआ।

4.2.3.1.10. मछेरा भला कहानी में साधारण वेतन भोगी की खाली जेब का दुःख चित्रित हुआ है, जिसकी डिग्रियों का कोई मोल नहीं और जो भूख से विवश होकर अपनी पुस्तकें तक बेच देने के लिए तैयार हो गया है।

वह सोचता है पुस्तकें पढ़ाने की अपेक्षा हमें मछलीगीरी ही सिखाई गई हो तो हम कभी भूखे न रहें, परन्तु अगले दिन वेतन मिल जाने के बाद तवी किनारे जाने को उसका मन नहीं करता 'यह भी कोई काम है....इतनी डिग्रियां और यह काम। चलो कासमो चलते हैं। वहीं मछली खाएंगे, पर यह क्या जमीन पैरों के नीचे से निकल गई जैसे। जेब तो वहां थी ही नहीं......और पैर स्वयंमेव नदी की ओर चल पड़े।'

संयोगों द्वारा विकसित साधारण कहानी है जो सीधे चोट न करके संकेत ही कर पाती है और कथ्य यह कि भूख सब कुछ करवा देती है।

4.2.3.1.11. आदर्श और यथार्थ बेमेल विवाह के जंजाल में फंसी औरत की पत्रात्मक शैली में लिखी कहानी है। प्रेमी को लिखे चार पत्रों में कही गई कहानी में नारी-मन की कोमल भावनाओं, झिझक, अपराध-बोध, पति को परमेश्वर मानने के आदर्श और वैधव्य की पीड़ा का अच्छा संयोजन हुआ है।

कहानी में चित्रित नारी के त्रासद-जीवन का कारण यह है कि लड़की बिकाऊ चीज़ समझी जाती है। यदि पति मर जाए तो लड़की का पिता ही उसके पति की जायदाद कुर्क करवा कर तीन हज़ार ले आता है। अंत तक आते-आते कहानी व्यंग्यात्मक हो जाती है परन्तु व्यंग्य उभरता नहीं है।

4.2.3.1.12. तारों की छांह कहानी में नारी-सौंदर्य और उसकी मसृणता का अच्छा मनमोहक चित्रण किया गया है, ग्वालिन की जवान देह दीपक के आलोक में स्वर्ण प्रतिमा जैसी दिखती है। परन्तु विडम्बना यह है कि इन ग्वालिनों को दूध में पानी डालने के आरोप में डराया धमकाया जाता है और रौब जमाकर लूटा जा रहा है, उनके नैसर्गिक भोलेपन की हत्या हो रही है, ग्वालिन शरीर सौंप कर पानी मिलाने के अपराध का जुर्माना पूरा कर रही है। कहानी संकेतात्मक है परन्तु ग्वालिनों के शारीरिक शोषण के विरुद्ध लेखक लगभग चुप है।

4.2.3.1.13. हिन्दी मीडियम साधारण व्यंग्यात्मक कहानी है, जिसे पढ़ने के साथ-साथ 'रीढ़ की हड्डी' एकांकी का स्मरण हो आता है। विदेश से आया प्रवासी युवक अपने रोमांस की शेखी बघारता है जबकि उसकी प्रेमिका ने बाल कटाने से इन्कार कर दिया है और वह किसी अन्य सुन्दर लड़की से शादी कर लेने की धौंस दिखा कर लड़की ढूंढ रहा है। अनेक लड़कियों को रिजैक्ट करने के बाद आगरा से हिन्दी मीडियम से बी०ए० पास लड़की के तेज तर्रार व्यवहार के सामने कुण्ठित-सा वह तैयार हो जाता है परन्तु लड़की उसे अस्वीकार कर देती है।

कहानी में फैशन और संस्कार की दुविधा में फंसे युवक पर अच्छा व्यंग्य किया गया है परन्तु कहानी बनावटी और बोझिल बन कर रह गई है।

4.2.3.1.14. मिनिस्टर के रिश्तेदार कहानी में लोक कथा संग्राहकों के जीवन के अनुभवों को चित्रित किया गया है। साथ ही साथ कुछ लोक कथाओं के सहारे लोकजीवन की त्रासदियों, लोगों के अंधविश्वासों, देवी देवताओं की प्रसन्नता के लिए किए जाने वाले बलिदानों और सामंतों द्वारा किए जा रहे लोगों के शोषण का स्मरण-सा करते हुए आधुनिक मिनिस्टरों को सामंतों जैसा ही माना गया है। लेखक व्यंग्य करता है कि लोगों में सामन्तों के प्रति आदर और भय की मनोवृत्ति में आजादी के बाद भी कोई विशेष अन्तर नहीं आया, लोग मिनिस्टरों के रिश्तेदारों की सेवा करके अभी भी अपना लाभ और स्वार्थ पूरा करने की कामना करते हैं।

कहानी में अनेक लोक कथाओं का संयोजन करके लेखक ने सामन्ती वृत्ति के उतार की ओर संकेत किया है परन्तु कहानी उलझ कर रह गई है।

4.2.3.1.15. मजबूरियां कहानी में निर्धन आदमी के भोलेपन, अहसान परस्ती और परस्पर भाईचारा का अच्छा चित्रण हुआ है। कहानी में एक गरीब मज़दूर के मन का मनोविश्लेषण किया गया है परन्तु उसका मन पूरी सतर्कता के बावजूद उघड़ नहीं पाया।

4.2.3.1.16. पेंडुलम व्यंग्य प्रधान कहानी है। इन्सान एक पेंडुलम है, रुपये की कुंजी पैंडुलम को चलाती है। मजबूरियों का स्प्रिंग उसे इधर-उधर पटक देता है। प्रतीकात्मक रूपकों और टिप्पणियों द्वारा कहानी विकसित होती है, कहानी में नियोजित कविता में कहानी के बीज हैं और बात स्पष्ट होती है कि डाक्टर आधी फीस पर केवल आधा आप्रेशन करके ही मरीज़ को छोड़ देते हैं। उनके गैर जिम्मेदाराना व्यवहार से आदमी अपंग हो जाता है। कहानी के अंतिम पड़ाव पर व्यंग्य किया गया है, 'ऐसा क्यों नहीं कहा जाता है कि चार सौ रुपये पर एक डाक्टर है शायद यह रेट बढ़ जाए।' कहानी में प्रतीकों और मनोविश्लेषण पद्धति का सहारा लिया गया है। अच्छी कहानी कही जा सकती है।

4.2.3.1.17. लहर लहर हर नैया नाचे राजनीतिक चुनावों और गुटबंदी पर व्यंग्य करती हुई अच्छी विवरणात्मक कहानी है जिसमें मनोविश्लेषण की अपेक्षा चित्रण को महत्व मिला है। संवाद तीखे और कथा विकासक हैं, घर-घर में घर कर गई राजनीति पर करारी चोट करने के साथ-साथ राजनीतिक चालों के बूते लाभ उठा रहे व्यापारी-वृत्ति के लोगों का भी अच्छा चित्रण हुआ है। चुनाव के कारण नदी के आर-पार के लोगों में हो रही हलचल का भी अच्छा वर्णन हुआ है।

चुनाव के बाद नौकाएं बेकार हो जाती हैं। दुकानदार मंगतू औने पौने दामों पर नौका खरीदता है और उसी पर दुकान भी जमा लेता है और नौका द्वारा लोगों को पार भी लगाता है लोगों में उसका सम्मान बढ़ जाता है, वह महत्वपूर्ण आदमी हो गया है, पंचायत में विरोधी दल के बहुमत के बावजूद भी उससे टैक्स नहीं लिया जाता। विधानसभाई चुनाव में वह और अधिक महत्वपूर्ण हो जाएगा क्योंकि नाव द्वारा लोगों की जरूरतें पूरी कर रहा है। परन्तु अब उसकी चिंता यह है कि यदि पुल बन गया तो उसकी दुकान का क्या होगा ?

अच्छी, स्पष्ट, सार्थक, विवरण प्रधान कहानी है और आदमी के चरित्र और वृत्तियों को सहज ही खोल देती है।

कुल मिला कर 'लहर लहर हर नैया नाचे' संग्रह की कहानियों का मूल स्वर व्यंग्यात्मक-सा कुछ है और शिल्प संकेतात्मक, कहीं-कहीं प्रतीकों, रूपकों और काव्यात्मक उपकरणों का सहारा लिया गया है। अधिकतर यह कहानियां मनोविश्लेषणात्मक पद्धतियों के सहारे मानव-मन को खोलती चलती हैं। भाषा ठीक ही है।

4.2.3.2. धुंधलके मार्च 1973 ई० में प्रकाशित दीदार सिंह के कहानी-संग्रह 'धुंधलके' में कुल 17 कहानियां हैं। उनका कथन है कि बौद्धिकता का प्राधान्य होने के कारण व्यक्ति अधिक से अधिक अन्तर्मुखी होता गया। समयाभाव के कारण हमारे सामाजिक सम्बन्ध सीमित होते जा रहे हैं......हम अपने ही अन्तर्द्वन्द्व के दायरे में घिरते जा रहे हैं.....इन कहानियों में भी

आपको कहीं–कहीं वही अन्तर्मुखी प्रवृत्ति प्रधान मिलेगी। ऐसी अवस्था में किसी ठोस कथानक का अभाव होता है और इसकी चरमसीमा वहीं आकर समाप्त हो जाती है जब कहानी का प्रधान पात्र कोई महत्वपूर्ण निर्णय लेता है।[2] इन कहानियों का मूल्यांकन निम्नलिखित है।

4.2.3.2.1. मांग का सिंदूर क्षयग्रस्त अविवाहिता की विवाहाकांक्षा और प्रेमी पति अमर के सुख की चिन्ता के बीच के द्वन्द्व की कहानी है। क्षयग्रस्त नायिका अंजलि अपने प्रति लोगों की अतिरिक्त दया और सहानुभूति आदि के कारण स्वयं को उपेक्षित समझती है।

अंजलि के अन्तर्द्वन्द्व और अन्श्चेतन की अनेक प्रतिक्रियाओं के चित्रण द्वारा लेखक ने रिश्तों पर भी चोट की है और अंजलि के सुदृढ़ स्वाभिमान और खुद्दारी को भी उजागर किया है। वह तरस, सहानुभूति और दया नहीं चाहती और यह सुन कर वह विह्वल हो जाती है कि प्यार शरीर से ही नहीं मन से और मन की भावनाओं से भी होता है। उसकी भावनाओं में तीव्रता आ जाती है तो बेहोशी में ही वह कह देती है 'मैं मरना नहीं चाहती– मैं सुहागिन होकर मरना चाहती हूं।' उसकी इस अस्फुट इच्छा की पूर्ति के लिए उसका प्रेमी अमर उससे विवाह के लिए तैयार है। और वह मण्डप पर बैठी सोच रही है, 'यह संस्कार भी पूरा किया जा रहा है–ताकि भगवान को मैं अपने माथे का सिन्दूर दिखा सकूं...'

कहानी में अन्तर्द्वन्द्व, संवाद, प्रतिक्रियाओं, सुषुप्त अवस्था की अचेतन बुड़बुड़ाहट और चेतन–प्रवाह शैली का अच्छा संयोजन हुआ है। क्षय रोग से ग्रस्त अविवाहित नारी के अन्तश्चेतन का बड़ा ही सशक्त और सार्थक चित्रण हुआ है। यहां कथारस का अभाव नहीं और न ही नायिका की दृढ़ मानसिक शक्ति को स्खलित होने दिया गया है। भावुकता और बौद्धिकता का अद्‌भुत संतुलन इस कहानी को उत्कृष्ट कहानी की श्रेणी में ले जाता है। कहानीकार काफी बारीक अनुभूतियों और 'डिटेल्स' को कुशलता से पिरो लेता है।

4.2.3.2.2. और मैं देखता रहा कहानी में घायल सैनिक की अन्तर्व्यथा की सुन्दर और सशक्त बुनाई हुई है। उसके कन्धे, घुटने, जांघ और कनपटी गोलियों से घायल है, बहुत रक्त बह गया है फिर भी उसे खतरे से बाहर घोषित किया हुआ है। उपेक्षित–सा पड़ा वह उस आत्मपीड़ा, उपेक्षा और अभाव का स्मरण कर रहा है जो उसने अनुभव किया है। वह अकेला है उसका कोई सगा–सम्बन्धी उसे नहीं देखने आया, किसी ने सहानुभूति जता कर उसका दुःख नहीं पूछा। 'आता भी कौन! था भी कौन ?' इसी उपेक्षा और अकेलेपन में वह अन्य मरीज़ों के पास आने वालों को कभी उत्सुकता, कभी तृष्णा, कभी ईर्ष्या से देखने लगा, कभी पास वाले मरीज़ संतोख की जगह खुद को समझने लगता, उसे लगता कि उसके पास खड़ी युवती उसी से बातें कर रही है। इस मनःस्थिति में वह अपने अतीत के स्मरण में खो जाता है।

स्नेह, प्रेम, सहानुभूति की अतृप्त भूख का अच्छा हृदयग्राही चित्रण किया गया है, जिसमें विशिष्टता यह है कि वह अनधिकृत कुछ भी नहीं चाहता। स्नेह, सहानुभूति को अपने हक के रूप में मांगता है।

अच्छी सशक्त कहानी है जिसमें बीमार घायल आदमी की मानसिकता उसकी उपेक्षाजन्य अकेलेपन की तीखी अनुभूति, किसी सगे सम्बन्धी के अभाव की पीड़ा का 'डिलिरयम', सपनों और स्मृतियों के संयोजन द्वारा उद्घाटन हुआ है। अन्तर्द्वन्द्व और अन्तश्चेतन की सशक्त कहानी है।

4.2.3.2.3. **घुटन** कहानी में शारीरिक भूख तृप्त कर लेने के बाद शादी करने की अपेक्षा त्याग दी गई प्रेमिका को आंख मिलाकर न देख पा रहे, अपने ही अपराध-बोध से ग्रस्त प्रेमी का सशक्त चित्रण हुआ है। आन्तरिक घुटन को महसूस कर रहे धोखेबाज़ प्रेमी को उसका अन्तर्मन ही धिक्कारता है परन्तु वह अपने ही अपराधबोध को झुठलाने के लिए तर्क खोज रहा है। कायर आदमी के घटियापन को लेखक ने बड़े तीखे, सार्थक वाक्यों के माध्यम से विकसित किया है। शिल्प और संवेदन के धरातल पर यह संग्रह की सर्वोत्कृष्ट कहानी कही जा सकती है।

उपभोग कर लेने के बाद त्याग दी गई प्रेमिका को रोज अपने वाले बस स्टैंड से बस पकड़ते देख आत्म-ग्लानि से ग्रस्त नायक अन्तर्द्वन्द्व और आत्म घुटन को महसूस करता हुआ अपने चारित्रिक घटियापन के लिए तर्क खोज लेता है 'भरोसा ! हां किसी चीज़ का भरोसा नहीं....व्यक्ति का भरोसा नहीं..वचन का भरोसा नहीं..उसने भी तो मुझ पर भरोसा किया था, तभी तो अब पछता रही है।.....मैंने तो केवल उसके शरीर का आनन्द लेना था-अपने शरीर की भूख मिटाने के लिए.....मैंने उस से कब रहा था कि वह मुझ पर भरोसा करे । उसने भरोसा करके आत्मसमर्पण कर दिया तो यह उसका दोष है। दोष तो उसका है, लेकिन उसे देख कर मेरे बदन में कंपकंपी क्यों छिड़ जाती है।......मैं कैसे मान लूं यह मेरा ही बच्चा है। वह उस समय मुझे जूते भी लगाती तो मैं कुछ न कहता। ......लेकिन अब हम अजनबी हैं... फिर भी वह मुझे देख कर आग बगोला हो जाती है और मैं उसे देख कर जमीन में धंसता जाता हूं।'

अपराधबोध से ग्रस्त व्यक्ति आत्म-साक्षात्कार कराता हुआ-सा अपनी कुण्ठाओं और चरित्र के खोखलेपन को आत्म कथात्मक शैली में उजागर करता चलता है और अपने लिए तर्क ढूंढने के बावजूद उपेक्षिता की भाव-भंगिमाओं से परेशान पानी-पानी हो रहा है। आदमी के अन्तर्मन की सुगठित कहानी है। भाषा और शिल्प सुगठित और रोचक है।

4.2.3.2.4. **धुंधलके** कहानी में पति किसी अन्य लड़की के चक्कर में फंस कर पत्नी की हत्या का षड्यंत्र रचता है। नौकरानी इस षड्यंत्र के बारे अपनी मालकिन को बता देती है। पत्नी अपनी हत्या के डर की अपेक्षा पति के विश्वासघात और उपेक्षा से दुःखी है, ऐसी उपेक्षित जिंदगी से मौत और वह भी पति के हाथों मिली मौत को वह अपना सौभाग्य समझती है।

प्रस्तुत कहानी में नारी-मन के अन्तर्द्वन्द्व और आत्म-हत्या जैसे निर्णय तक पहुंचने की मनोव्यथा को विकसित करने के साथ-साथ दाम्पत्य आदर्श को भी प्रस्तुत किया है। कहानी की पात्रा सावित्री 'यथा नाम तथा गुण' की कसौटी पर पूर्ण उतरी है, पतिव्रता और आदर्श पत्नी का प्रतीक है सावित्री। जो अपने पथ-भ्रष्ट हो रहे पति को अंततः सुधार लेती है।

4.2.3.2.5. डाक्टर बीवी आदर्शवादी डाक्टर सुनंदा की विवरणात्मक शैली में विस्तार-लोभ से ग्रस्त कमज़ोर कहानी है, जिसे अनेक 'डिटेल्स' देकर काफी बोझिल बना दिया गया है।

लेखक ने चन्देल गांव और उसके आसपास के क्षेत्र की निर्धनता, झाड़फूंक के अंधविश्वास, अशिक्षा और नव-सभ्यता से अपरिचय का काफी विस्तृत विवरणात्मक चित्रण किया है। इसी अज्ञानता तथा निर्धनता के अन्धकार को दूर करने का संकल्प किए हुए डाक्टर सुनंदा के स्वभाव में परिवर्तन आ जाता है। वह अब सम्पन्न मरीज़ों और उनके रिश्तेदारों से पैसे पकड़ने लगती है इसी कारण उसे कंजूस, क्रूर, पिशाचंनी और मुर्दो तक के कफन उतारने वाली कहा जाने लगता है, अब कोई मरीज़ उसके प्रति श्रद्धा और कृतज्ञता से झुकता नहीं। परन्तु डाक्टर सुनन्दा धनवान लोगों से साल भर में लिए गए और संचित किए धन को चन्देल और आसपास के गांवों के विकास कार्यों के लिए खर्च कर देती है, गांव के लोग उसे देवी के रूप में मानते हैं। अंततः रिटायर होने के बाद वह शहर छोड़ कर इसी ग्रामीण क्षेत्र में आ बसती है और यहीं एक छोटा-सा हस्पताल खोल लेती है।

आदर्श डाक्टर के प्रति लेखक की अपेक्षाएं कहानी के लिए घातक हो गई हैं क्योंकि व्यक्ति-चरित्र की ग्रन्थियों को खोलने की बजाए वह काला-बर-अक्स-सफेद चित्रित करता चलता है। साधारण कहानी है परन्तु आदर्शोन्मुख उदात्तीकरण के बावजूद लेखक दुनियावी व्यवहार के चित्रण के प्रति सतर्क रहा है।

4.2.3.2.6. बन्द दरवाज़ा कहानी में एक ही कार्यालय में साथ-साथ कार्य कर रहे लड़के-लड़की में परस्पर परिचय काफी अनौपचारिक है। वे दोनों परस्पर आकर्षित हैं प्रेम और समर्पण के भाव की सांकेतिक अभिव्यक्ति भी कर देते हैं परन्तु सीधे-सीधे प्रणय निवेदन नहीं कर पाते, झिझकते रह जाते हैं। यही इस कहानी का कथ्य है, जिसे बारीक अनुभूतियों और लम्बी बहसों के माध्यम से व्यक्त किया गया है।

निर्मला से मिलने के लिए महेश उत्सुक रहता है, उसके घर भी जा आता है। वह बहस में दहेज का विरोध करता है तो निर्मला इस विरोध को सिर्फ कहने भर की बात कहती है। महेश चाहता है कि निर्मला विवाह का प्रस्ताव करे तो वह बिल्कुल दहेज नहीं लेगा। वह अपनी पसंद न पसंद तो बताता है परन्तु सीधे-सीधे निर्मला से यह नहीं कह पाता कि वह उससे प्यार करता है।

दोनों परस्पर रिश्ता जोड़ना चाहते हैं परन्तु इच्छा को दबा जाते हैं या भावुकतावश इच्छा की अभिव्यक्ति के लिए उन्हें शब्द ही नहीं मिलते। महेश का विचार है कि सच्च कहने की हिम्मत तो हरेक में होती है परन्तु वह आत्मीय के दिल को ठेस नहीं पहुंचाना चाहता न ही विश्वास टूटने या गलतफहमी होने देना चाहता है। निर्मला का कथन है कि पुरुषों की बात पर विश्वास कौन करे? जहां अच्छी सूरत देखी, वहां लट्टू हो गए। परन्तु महेश तो एकनिष्ठ सम्बन्ध को अस्वाभाविक मानता है क्योंकि कई बार कुछ मिलने पर भी मन को सन्तुष्टि नहीं होती

जबकि जीवन-प्रक्रिया की पूर्णता की तलाश में कई ऐसे तत्वों की जरूरत रहती है जिनके स्रोत अलग-अलग होते हैं। 'फिर तुमसे कोई लड़की वफा की क्या उम्मीद रख सकती है ?' निर्मला तो एकनिष्ठ सम्बन्ध को महत्व देती है।

इस प्रकार की बहस और चर्चाओं के बाद दोनों में परस्पर प्रेम और सम्बन्ध पनपता भी है, अपरोक्ष रूप से अभिव्यक्त भी होता है, अनेक ऐसी स्थितियां भी आती हैं जब वे सीधे-सीधे शब्दों में प्रेम-निवेदन कर सकते हैं और प्रेम को स्वीकार कर सकते हैं, परन्तु अपना-अपना इमेज बचाए रखने के लिए, किसी दूसरे को ठेस न पहुंचे, इस विचार मात्र से प्रेम की अभिव्यक्ति से झिझके से रह जाते हैं।

अनकहे प्रेम की यह कहानी काफी लम्बी हो गई है, दोनों के बीच की चर्चा, बहसें और 'डिटेल्स' तथा आत्मलोचन की प्रक्रियाएं इतनी लम्बी और उबाऊ हो गई हैं कि कहानी बढ़ती हुई भी ठहरी-सी लग रही है। हां, स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों को अनेक कोणों से परखने पहचानने की दृष्टि तो यह कहानी देती ही है, अन्त तक पहुंचते-पहुंचते अनकहे प्यार की अनुभूति काफी तीव्र और करुणोत्पादक हो गई है।

4.2.3.2.7. सत्य और तथ्य दाम्पत्य जीवन के परस्पर सुख-दुःख की कहानी है, जिसमें पत्नी की बीमारी से पति चिढ़ा हुआ है परन्तु जब स्वयं बीमार पड़ता है और अपनी बीमार पत्नी को अपनी सेवा सुश्रुषा करते देखता है तो आत्मग्लानि महसूस कर के पत्नी के प्रति सहानुभूति प्रवण हो उठता है। दाम्पत्य आदर्श को अनेक प्रकार उतार-चढ़ाव के बीच से उदात्तीकृत किया गया है।

पति पत्नी से क्षुब्ध है और सैर सपाटे पर न जा पाना ही उसके क्षोभ का कारण है। पत्नी उसके मुख पर आए क्षोभ, अवहेलना और क्रोध के भावों को पढ़ कर चुप रह जाती है, क्योंकि उसके लिए यह अनुभव नया नहीं। पत्नी अपनी बीमारी से विवश है तो पति अपने स्वभाव से। उसकी शारीरिक मांगें पूरी नहीं होती तो वह खीझ उठता है।

परन्तु वह पत्नी को आहत नहीं करना चाहता क्योंकि वह छिछला व्यक्ति नहीं, पत्नी का साथ न दे कर अपने स्वार्थ के प्रति सोचने में पति अपने अहं और नैतिकता की पराजय समझता है, इसी कारण वह अपने क्रोध और क्षोभ को दबा लेता है और अन्तर्वेदना, आत्मग्लानि और आत्म-पीड़ा को झेलता रहता है। उधर पत्नी भी पति को शारीरिक सुख न दे पाने और उसका साथ न दे पाने के कारण आत्मपीड़ा भोगती है।

अच्छी कहानी है । पति की आत्मपीड़ा और पत्नी से मिली सहानुभति उन दोनों के हृदय की परस्पर दूरी को पाट देती है। मनोविश्लेषण, आत्मालोचन और अन्तर्द्वन्द्व की अच्छी और सशक्त अभिव्यक्ति हुई है, हां 'डिटेलस' कुछ ज्यादा ही हैं।

4.2.3.2.8. प्रेमिका और पत्नी दाम्पत्य जीवन की कहानी है, जिसमें नारी-मन का अच्छा विश्लेषण हुआ है। कहानी आत्मालाप शैली में लिखी गई है। पत्नी को प्रतीत होता है कि प्रेमिका से पत्नी बन जाने के बाद उसके प्रति पति का विवाहपूर्व जैसा आकर्षण नहीं रहा। पहले

वह उससे मिलने के लिए अतिरिक्त उत्सुक और उतावला रहता था, अब उससे बोर हो गया है। अब तो वे एक ही कमरे में दो अजनबियों की भांति सो जाते हैं, निद्रा के समय जगाएं तो लड़ाई भी हो जाती है।

पत्नी अपने विचारों और आत्म-मंथन में खोई हुई अपने अन्तर्मन को खोलती चलती है और स्वयं को पत्नी के रूप में उपेक्षित, शोषित और अवहेलनाग्रस्त समझती हुई पुनः अपने ही पति की प्रेमिका बन जाने की आकांक्षा व्यक्त करती है क्योंकि प्रेमिका के रूप में उसे अतिरिक्त सहेजन मिलने की आशा है। कहानी बौद्धिक विचारणा मात्र होकर रह गई है।

4.2.3.2.9. सपना कहानी में आत्महीनता की कुण्ठा से ग्रस्त कलाकार बन गए प्रेमी हरेन्द्र की कला-साधना की प्रशंसा करने के साथ-साथ प्रेमिका को पत्नी-रूप में पाने की अपेक्षा उसकी तस्वीरें बनाते रहने वाले कलाकार की रोमांटिक वृत्ति और आत्म-पीड़ा को अभिव्यक्त किया गया है। यह कहानी व्यंग्य की अपेक्षा सादा चरित्र-विकास ही प्रतीत होती है, लेखक की पक्षधरता अमुखर रह गई है।

कलाकार हरेन्द्र नारी के तन-मन और भाव-भंगिमाओं के सम्पूर्ण सौंदर्य को व्यक्त करना चाहता है। वह सूक्ष्म से सूक्ष्म भावों को स्थूल रूप में एक ही कृति में, जीवन के अलग अलग पहलुओं को एक ही पात्र में, एक ही कृति में सभी भाव और सभी रूप देखना चाहता है परन्तु देख नहीं पाता, हमेशा कुछ न कुछ छूट जाता है और वह असंतुष्ट-सा अभिव्यक्ति के अनेक माध्यम अपनाता है।

किसी को उसकी कला में नारी-सौंदर्य में स्थूलता नहीं मिलती, किसी को अश्लीलता मिलती है, किसी को कामुकता दिखती है, किसी को बेबस नारी की मजबूरियां दिखती हैं, किसी को गंवार और अल्हड़ नारी दिखती है, किसी को उसमें बला का हौंसला और शौर्य दिखता है, किसी को लगता है कि एक ही नारी के अलग-अलग रूप चित्रित हुए हैं, एक ही सूक्ष्म-सी आकृति सभी रचनाओं में बिखर गई है, जो कभी इठलाती है, हंसती गाती है और कभी दुख से पीड़ित सी सिसक रही है।

अंततः हरेन्द्र बताता है कि वह अपनी प्रेमिका के सौंदर्य, उसकी भाव भंगिमाओं और एक-एक अनुभूति को चित्रित करता रहा है। हरेन्द्र ही बताता है कि वह प्रेमिका की महान छवि से डर गया था कि वह उसे संभाल न सकेगा, वह समझता था कि वह प्रेमिका के काबिल नहीं, उस महान छवि के आत्मसमर्पण के बावजूद उसने उसे स्वीकार नहीं किया। 'मुझे यह डर था कि उस छवि को मैं प्राप्त कर लेता तो मेरे लिए उसका महत्व और आकर्षण नहीं रहेगा, मैं डरता था कि मैं उसके पास आकर उससे दूर हो जाऊंगा।'

कहानी में कलाकार की निष्क्रिय कुंठा को अच्छी अभिव्यक्ति मिली है।

4.2.3.2.10. सिस्टर कहानी में नर्स के हृदय में मरीज के प्रति पैदा हुई कोमल भावनाओं और लगाव का अच्छा चित्रण हुआ है। कहानी वर्णनात्मक है, कहीं-कहीं संवाद भी हैं और नर्स के यांत्रिक जीवन तथा दिखावटी प्रतीत होने वाली मुस्कराहटों और मरीज़ों की

उसके प्रति विभिन्न भावनाओं का रोचक और उद्देश्यपूर्ण चित्रण हुआ है। कहानी में लेखक ने संयोग का सहारा लिया है और इकबाल के प्रति नर्स के हृदय में पनप गए प्रेम के भाव स्पष्ट किए हैं। लेखक की टिप्पणी है 'उसके कभी न भूलने वाले मरीज़ों में आज एक और मरीज़ की वृद्धि हो गई थी।'

नर्स के अन्तर्मन की अच्छी कहानी है जो संवादों, टिप्पणियों और विवरणों के सहारे विकसित हुई है, गठन ठीक ही है।

4.2.3.2.11. बड़े घर की बहू सम्पन्न घर की नैतिकता और मर्यादा का चित्रण करना कहानी का लक्ष्य है। ससुराल के अनुशासित वातावरण में अकेलेपन की पीड़ा झेल रही बहू के अन्तर्द्वन्द्व का और पति के हठपूर्ण स्वभाव से कुण्ठित हो रही बहू के जीवन का अच्छा चित्रण हुआ है। उसकी सास धर्म-कर्म की पक्की है, सुबह जल्दी जागती है तो बहू कैसे सोई रहे? पूजा से पहले कुछ खाया पिया भी नहीं जा सकता। ननद अरुणा स्वभाव की तेज और चंचल है, खाना परोस कर माधवी को पति का इंतजार करना पड़ता है, उसका पति सुदर्शन हठी है, दंभी है 'पति-पत्नी के बीच आत्मीयता नहीं, आत्म समर्पण में भी माधवी को अपनत्व नहीं मिला, यह आत्म-समर्पण मात्र शारीरिक था।'

घरेलू व्यवहार में बड़ी औपचारिकता है, कहीं कोई सहानुभूति रखने वाला नहीं। उसे अपने बचपन और कालेज के दिनों का स्मरण हो आता है। मां-बाप के घर में गरीबी ही सही प्रेम और अपनत्व तो था, उस पर कोई प्रतिबंध तो नहीं था, उत्तरदायित्व तो नहीं था, लोकलाज का भय तो नहीं था। अब तो वह स्वयं को सोने के पिंजरे में कैद महसूस कर करके ऊब रही है।

माधवी का पूर्व प्रेमी और नौकरी के दिनों का साथी अम्बर आता है तो वह उत्सुक हो जाती है, दोनों में आत्मीय और मैत्री पूर्ण सम्बन्ध थे बल्कि अम्बर तो अभी भी प्रेम की सूक्ष्म भावना की कद्र करता है और माधवी की नारीगत विवशताओं का सम्मान करता है, माधवी की आंखों में आंसू देख कर उसके मन की व्यथा को समझ जाता है।

माधवी अपने हृदय की व्यथा किसी अपने को सुनाना चाहती है और वह अम्बर को पत्र लिखती है परन्तु उसे मां-बाप की नसीहत याद आ जाती है तो पत्र जला देती है परन्तु इस तरह पत्र लिखकर वह अपना बोझ हल्का कर लेती है, उसकी दबी भावनाएं बाहर आ जाती हैं।

कहानी में माधवी के मन की घुटन को चित्रित करने के लिए कई तरह की तर्कसंगत घटनाओं और विचारों का सहारा लिया गया है। अच्छी सुगठित और औपन्यासिक कहानी है।

4.2.3.2.12. चारदीवारी कहानी में घर में अकेली पड़ गई औरत की मनोव्यथा और घरेलू जीवन की यांत्रिक ऊब का सुन्दर चित्रण हुआ है। इसी ऊब से बचने के लिए अर्चना ने मेहरी रखी है। मेहरी का पति उसे पीटता तो है परन्तु प्यार भी करता है, मार-पीट के बावजूद मेहरी को अपना पति प्रिय है। मेहरी के जाने के बाद अर्चना का चारदीवारी में मन ऊब रहा है, अर्चना छत पर चली जाती है परन्तु वहां उसे कोई पुरुष घूरता है। पुरुष का यह व्यवहार उसे

अखरता है तो वह नीचे उतर आती है।

अच्छे रोचक और उद्देश्य-गर्भित संवादों और स्थिति-चित्रण द्वारा घरेलू औरतों के अकेलेपन और ऊब का चित्रण हुआ है। अच्छी और सुगठित कहानी है।

4.2.3.2.13. अभिनय कहानी में गृहस्थ जीवन के अभावों ने पत्नी को चिड़चिढ़ा बना दिया है। पत्नी को अभिनय द्वारा शोहरत पाने का शौक है और इस शौक की पूर्ति के साथ-साथ वह कुछ अतिरिक्त आमदन भी चाहती है। जबकि पति समझता है कि इससे घर के काम का हर्ज होगा। पति को दुख है कि उसे थका मांदा लौटा देख कर भी पत्नी मीठे बोल नहीं बोलती, वह तो मात्र आवश्यकता से जुड़ी वस्तुओं से ही प्यार करने लगी है। वह पत्नी को प्यार, सहानुभूति और मीठी बात करने का महत्व जतलाने का यत्न भी करता है। वह उसे परायी हो गई प्रतीत होती है क्योंकि वह उस से कभी रोमांटिक रोल वाली मिठास से नहीं बोली। दुखी पति चाहता है कि जब वह इतमा अच्छा अभिनय कर सकती है तो अभिनय के रूप में ही सही उससे प्यार का नाटक तो दिखा सकती है।

अच्छी सुगठित कहानी है जिसका कथ्य है 'यदि वास्तविक जीवन में रोमांस नहीं तो अभिनय के दौरान ही सही।' पति पत्नी के मीठे बोल, रोमांटिक अदाओं को सुनना देखना चाहता है और इसी तरह वह वास्तविक जीवन की यांत्रिकता और ऊब और अजनबियत से मुक्त हो जाना चाहता है। कहानी में संवाद और टिप्पिणयां अच्छी हैं।

4.2.3.2.14. दीपक और बत्तियां कहानी में गृहस्थ जीवन के आदर्श प्रेम, गर्भवती पत्नी के प्रति पति के प्रेम, सहानुभूति और उत्तरदायित्व के भावों का सुंदर और सुगठित चित्रण हुआ है। पत्नी दीपक है तो बच्चे उसकी बत्तियां । पति-पत्नी के बीच के हास-परिहास और गृहस्थ जीवन में दोनों का महत्व दिखाया गया है। दोनों हास परिहास करते हुए आर्थिक संकटों को भूल जाते हैं।

परन्तु डिलीवरी के समय श्यामा का केस सीरियस हो जाता है । आप्रेशन की इजाजत के लिए हस्ताक्षर करते समय पति चिंतित हो जाता है कि कहीं वह श्यामा के मृत्यु-पत्र पर हस्ताक्षर न कर रहा हो। वह भविष्य के प्रति भयभीत होकर तथा आशंका से घबरा कर गिर पड़ता है। अंतत: वह परिवार नियोजन का संकल्प करता है। साधारण आदर्शवादी कहानी है जिसमें पति को कर्त्तव्यबोध से जुड़ता हुआ दिखाया गया है।

4.2.3.2.15. पराजय कहानी में कालेज के दिनों वाली अनदिखी, महत्वहीन-सी लड़की सफल गायिका बन जाती है। संगीत-सभा में उसकी कला की प्रशंसा होती है तो अजीत उसके साथ विवाह के ताने-बाने बुनने लगता है । पहले तो वह अजीत के पत्रों को प्रंशसक के पत्र समझ कर उत्तर देती रहती है परन्तु फिर अजीत की अन्तर्भावना को समझ कर उत्तर देना बन्द कर देती है क्योंकि उसने विवाह न करने का संकल्प कर रखा है क्योंकि वह समझती है कि विवाह के बंधन में पड़कर वह स्वेच्छा से साधना नहीं कर सकेगी। इसी तर्क के अन्तर्गत वह अजीत के परिणय- निवेदन को नकार रही है। यहां वह विवाह जैसी पवित्र प्रथा का अपमान या

विरोध नहीं करती बल्कि कला-साधना के लिए एकाकी रहना चाहती है।

कहानी में कथारस का अभाव है, यह कहानी नहीं तर्कणा मात्र बन कर रह गई है, माना कि कला ने ही प्रभा के व्यक्तित्व को ऊपर उठाया है और कला के सम्मान और साधना में वह विवाह को बाधक मान रही है परन्तु विवाह के प्रति उसका यह नकारपूर्ण विचार नारी-स्वभाव के अनुरूप नहीं हैं क्योंकि लेखक ने उसकी किसी अन्य कुण्ठा का जिक्र कहीं भी नहीं किया है। साधारण कहानी है।

संग्रह की शेष दो कहानियां 'सूनी सूनी हर जगह' और 'एक पल और' मात्र रोमांटिक एकालाप हैं, कल्पनातिरेक और कथानकहीनता के कारण कहानियां बनी ही नहीं।

'धुंधलके' संग्रह की कुछ कहानियां शिल्प और संवेदना के धरातल पर उत्कृष्ट हैं। कुछ आदर्शवादी वाग्विलास हैं तो कुछ मानव-मनोविज्ञान से जुड़ी बड़ी बारीक 'डिटेल्स' से परिचय कराती हैं।

4.2.3.3. केसर के फूल डॉ० अर्जुन नाथ रैणा के 1973 ई० में प्रकाशित (तथाकथित) कहानी-संग्रह 'केसर के फूल' में 16 (तथाकथित) कहानियां संगृहीत हैं। हमें तो ये कहानियां कहानी की अपेक्षा ललित निबन्ध प्रतीत होती हैं। कहानी विधा का अपना संरचनागत अनुशासन है, वहां प्रभावान्विति है और भाव का चरमोत्कर्ष होता है, घटनाक्रम और कथारस का विकास किया गया होता है, जो इन कहानियों में सुलभ नहीं।

यहां लोक जीवन का चित्रण कहानीनुमा बना कर पेश कर दिया गया है, लेखक अपने ज्ञान-विज्ञान, शिक्षा और रीति-रिवाजों सम्बन्धी परिचय को संस्मरणात्मक और कहीं-कहीं विवरणात्मक शैली में प्रस्तुत कर देता है, कहीं-कहीं घटना, पात्र, चरित्र आदि का स्मरण करता हुआ उसे एक सूत्र में प्रस्तुत करने का यत्न करता है और अपने अनुभव, ज्ञान तथा सोद्देश्य को व्यक्त करता चलता हैं।

'शिव रात्रि की रात', ' एक एक दो नहीं ग्यारह';'आत्महत्या की ओर', 'भगवान', 'सच्चाई का पुरस्कार', 'गडेरिए की मायूस सांझ', 'कुंवारी साध' आदि रचनाओं को कहानी की निकटवर्ती कहा जा सकता है।

इन रचनाओं में लेखक ने अपनी अनेक टिप्पणियां दी हैं, कहानी जैसी सरलता और सहजता शैली में नहीं है, बल्कि कश्मीर के सांस्कृतिक लोकजीवन तथा भूगोल, इतिहास को इस तरह संजोया गया है कि कहानी-तत्त्व दब गया है, आंचलिकता का मोह, धार्मिक-सांस्कृतिक रीति-रिवाजों के चित्रण के प्रति अतिरिक्त रुचि और महत्व के कारण निबन्धात्मकता आ गई है।

लेखक ने अपनी इन रचनाओं के बारे लिखा है, इन कहानियों में मेरा यत्न केवल इतना है कि कश्मीर प्रांत की जनता का रहन-सहन, सुख-दुख, मेल-जोल और जीवन की अन्य समस्याएं पाठक को विदित हों। इनमें धर्म, शिक्षा, ज्ञान, नीति, रीति, साहस, प्रेम और त्याग का भास मिलता है, वार्तालाप में स्थानीय रंग हैं। कुल मिला कर इन रचनाओं को कहानी नहीं कहा

जा सकता।

4.2.3.4. निर्वासित ओम गोस्वामी के 1974 ई० में प्रकाशित कहानी-संग्रह 'निर्वासित' में कुल 9 कहानियां हैं। संग्रह में लेखक ने मोह भंग के बाद उभरी समकालीनता का एक पक्ष माना है 'छुटभइयों की कथनी और करनी की सीधी सादी आलोचना करना।' वह यह भी मानता है कि 'राजनेता यदि ईमानदार है तो अपने दिल की संहिता से जुड़ा रहेगा जबकि कहानीकार आम आदमी के प्रति जवाब देह है। पार्टी विशेष से न्यस्त होना रचनाधर्मी लेखक के लिए सम्भव नहीं। राजनीति चाहे प्रतिक्रियावादियों की हो या मध्यमार्गियों की सदैव मामूली आदमी को डंक मारेगी, इस दंश से बचा नहीं जा सकता। घिनौने और दूषित वातावरण को इसकी पूर्ण अपरूप-अभद्रता में चित्रित करना आज की सृजनात्मकता का महती दायित्व है।[3]

नेता को उसने नये युग का सामन्त भी कहा है जो करता कुछ नहीं, गिद्ध की चोंच जैसे होंठ हिला कर सान्त्वना बांटता है और न्याय, रोटी, काम मिलना चाहिए, ये सुझाव देता है या आयोग बिठा कर चम्पत हो जाता है और आयोग की रिपोर्ट को 'जनता के हित में नहीं' कह कर प्रकाश में नहीं लाता।[4] इसी घिनौनेपन और बदसूरती को कहानियों में कहने का प्रयास किया गया है और लेखक कहता भी है 'सामाजिक वस्तुस्थिति में दिशा हारा पीढ़ी के आक्रोश और रूढ़ियों से टकराव के एक़ दौर की अनुगूंज यहां शब्दबद्ध हुई है। इन कहानियों का मूल्यांकन निम्नलिखित है।

4.2.3.4.1. समाजवाद शिल्प और संवेदना के नये धरातल छूती हुई इस कहानी में विद्यार्थियों में घुस आई आतंककारी राजनीति का अच्छा चित्रण हुआ है। कहानी दो खण्डों में विभाजित है। छात्रों के होस्टल में सीनियरों द्वारा जूनियरों की 'इंट्रोडक्शन' के नाम पर हो रही 'रैगिंग' और 'रैगिंग' के नाम पर दस दस रुपए के नोटों की लुट-खसोट और 'जूनियरों' को गुण्डई द्वारा आतंकित करके अपने पक्ष में मिला लेने की भयावह स्थितियों का बड़ा निकटवर्ती चित्रण किया गया है।

"मैं हूं तुम सब का बाप। जनतादास मनिस्टर का सगा भतीजा।" सुनते ही माहौल थम-सा जाता है, फिर मिस्टर सिंह की चालाकी और दोनों के बीच हो गए समझौते के कारण माहौल वैसा ही आतंककारी और त्रासद हो जाता है, इस पहले खण्ड में राजनीति और आतंक परस्पर हाथ मिला लेते हैं बल्कि राजनीति के हक में आतंक समर्पण कर देता है। दूसरे खण्ड में इन दोनों की मिलीभगत के कारण होस्टल के छात्रों में शुरू मूल्य-विघटन की प्रक्रिया का चित्रण किया गया है। जनतादास के भतीजे उर्फ शहजादे के पिछलगगुओं की सोच-विचारहीनता पर व्यंग्य किया गया है, राजनीतिक क्रूरता की अभिव्यक्ति सशक्त है।

अच्छी व्यंग्यप्रधान कहानी है जो उस क्रूर राजनीति पर चोट करती है जो आतंक के सहारे अपनी धौंस जमाती जा रही है और आतंकित जन-सामान्य उसकी क्रूरता का शिकार होकर अपनी सोच-समझ गंवा कर उसका पिछलग्गू बना हुआ राजनेताओं की सनक का साथ दे रहा है। लेखक ने कहीं विवरण द्वारा, कहीं संवाद द्वारा और कहीं टिप्पणियों द्वारा तीखे व्यंग्य

किए हैं।

4.2.3.4.2. बुर्जुआ कहानी में भारतीय जन-समाज के दिखावटी खोखलेपन पर तीखी टिप्पणियां की गई हैं। कहानी का संयोजन दो घटनाओं पर हुई जन-प्रतिक्रियाओं के द्वारा किया गया है, बीच में लेखक की टिप्पणियां कहानी के उद्देश्य को स्पष्ट कर रही हैं। पहली घटना पर लेखक को लगता है कि समाज के कदम क्रान्ति की दिशा में बढ़ रहे हैं परन्तु दूसरी घटना के बाद लेखक का प्रश्न है 'क्या यह नपुंसक भीड़ कभी क्रान्ति कर पायेगी ?'

अंधे भिखारी के दिन भर के मांगे पैसे उठा कर कालू भाग गया है। सूरदास का चेहरा भावशून्य है जबकि कालू के विरुद्ध जनाक्रोश बढ़ता जा रहा है। आत्मा, खुदा, ईश्वर की दुहाई देने वाले नौकरी पेशा, मजदूर, सेठ आदि इन्सानियत के दावेदार, अन्याय न सहने वाले लोग सूरदास के पक्षधर हैं और कालू के खिलाफ गुस्से से भरे हुए हैं। जबकि सूरदास का क्षीण स्वर है **'बेचारे को जरूरत होगी'** पक्षधरों का शोर है कि जरूरत किसे नहीं होती ?'

मरे हुए भिखारी को देखकर लोग बिना कुछ किए नाक भौं सिकोड़ कर चले जाते हैं। तभी कालू भीड़ में घुसता है और लाश पर कपड़ा ओढ़ा देता है। परन्तु उसके पीछे-पीछे चार-पांच व्यक्ति मजमे का घेरा तोड़ कर कालू पर टूट पड़ते हैं, उसकी खूब पिटाई होती है, ''साला थान से कपड़ा पड़वा कर ऐसे खिसक आया जैसे जीजे की दुकान हो...मैंने कपड़ा मिन लिया है, बराबर है चलो''........लाश फिर नंगी थी। भीड़ में फिर वही अनिश्चयात्मक शून्यता पसर जाती है। 'क्या यह नपुंसक भीड़ कभी क्रान्ति कर पायेगी?'

कहानी विचारप्रधान है और लेखकीय टिप्पणियों और संयोगों के सहारे अपने उद्देश्य तक पहुंचती है। भीड़ के चरित्र और आदमी के दोगलेपन पर अच्छी चोट की गई है।

4.2.3.4.3. फरिश्ते की मौत कहानी में कमाऊ लेखन की अपेक्षा नाम की लालसा में भटक गए और भूख से मर गए कहानीकार की व्यथा-कथा को संयोजित किया गया है और साधन सम्पन्न व्यवस्था के खिलाफ, लड़कर हार रहे व्यक्ति की मृत्यु और जीवन त्रासदी को चित्रित किया गया है। कहानी अनेक टिप्पिणियों और संयोगों के सहारे विकसित हुई है, जिसमें अस्वाभाविकता और अतिरेक का दोष खटकता है।

कहानी नायक कहानीकार की दाढ़ी बढ़ी है, कपड़ों में पसीने की बू है, पेट में भूख धधकती है, लेनदारों के समक्ष वह छाती तान कर नहीं गुजर सकता। कृतियों की सराहनामात्र से भूख प्यास नहीं मिटती। इसी कारण मान-सम्मान भुला कर वह गुरुद्वारे में भिखमंगों, लूलों, लंगड़ों के साथ बैठ कर खाना खाने लगता है। उधर मकान मालिक को पिछले दो सालों का किराया नहीं मिला।

मकान खाली कराने के लिए दरवाजा तोड़ा जाता है, परन्तु लेखक अंदर मरा पड़ा है। जामा तलाशी में कुछ नहीं मिलता तो मकान मालिक उसके पारिश्रमिक वाला मनीआर्डर छुड़ा लेता है, 'पूरे दो बरस का किराया छोड़ कर मरा है'।

कहानी भावुकता दोष से ग्रस्त है और टिप्पणी से अपने चरमोत्कर्ष पर पहुंची है।

4.2.3.4.4. निर्वासित कहानी में रंगभेद पर तीखी चोट की गई है। गोरे रंग के श्वेतांग के घटियापन पर विशेष ध्यान जाता है। कहानी का मूल कथ्य टिप्पणी द्वारा व्यक्त होता है कि वेदना के अन्तर्सूत्र जो पीड़ितों को परस्पर जोड़े रहते हैं एक विशेष स्थिति आने पर बेकार पड़ जाते हैं। तब व्यक्ति आत्ममुखी होकर दूसरों के प्रति विपाक्त विचारों की खोह में विचरण करने लगता है।

श्वेतांग अपनी झोंपड़ी के बाहर कोयले से लिखता है 'जब सारी दुनिया कोढ़ियों से भर जाएगी तब गोरे कोढ़ी शासन करेंगे। गुलामों को गुलाम ही रहना होगा' श्वेतांग स्वयं भी कोढ़ी है, परन्तु रंगभेद की भावना के अन्तर्गत अहंकारग्रस्त है। वह तो खैरात भी काले से अधिक चाहता है 'मैं गोरा हूं। क्या तुम्हें दिखाई नहीं देता ?' वैसे कोढ़ी के रूप में आदमी की राष्ट्रीयता, जाति, रंग, नस्ल सब बातें गौण हो जाती हैं, उनकी आकृति में आश्चर्यजनक साम्य आ जाता है। नीग्रो कोढ़ी की झोंपड़ी के बाहर लिखा है 'आओ हम अन्तर्राष्ट्रीय भाईचारे की बात करें।' परन्तु श्वेतांग उसे 'सूअर' कह कर दीवार पर थूक देता है।

नीग्रो भी कुष्ठ रोग से ग्रस्त है। तकलीफ के सांझेपन में वह अपरिचय खत्म करके मैत्री का आमन्त्रण देता है क्योंकि वह भी निर्वासित है, उसकी बिरादरी के लोग तो उसे मार ही देना चाहते थे। 'दोगला हरामी बटलर उसका पक्का मित्र था परन्तु उसने भी उस पर उबलता हुआ पानी फैंक दिया। रेवरेंड लोग, क्राइस्ट के उपदेशों की बौछार करते थे परन्तु सब मुलम्मा ही साबित हुआ–डैम आल। सभी को होने दो ये रोग। फिर क्राइस्ट का उपदेश व्यवहारिक लगेगा।'

अपनी इस व्यथा-कथा को सुनाता हुआ नीग्रो श्वेतांग को समान बीमारी, समान उपेक्षा, समान शत्रु के विरुद्ध मैत्री का आमन्त्रण देता है 'लैट अस अम्ब्रेस' परन्तु श्वेतांग ने उसे जोर से लात मार दी 'अफ्रीकी कुत्ते, काले चोर, तुम्हारी हिम्मत कैसे हुई ?'

इस तरह कहानी में करुणा का चित्रण तो है ही, रंग भेद के कारण फैली क्रूरता और मानवीय कमज़ोरियों का भी बड़ा त्रासद चित्रण हुआ है। सशक्त और सुगठित कहानी है।

4.2.3.4.5. जोंक कहानी में देश के तमाशबीन, खोखले, झूठी शान में फंसे लोगों पर चोट की गई है। गरीब, मैले कुचैले दिखने वाले ईमानदार, भोले–भाले मजदूर के प्रति सम्मान और सहानुभूति का भाव व्यक्त किया गया है। मजदूरों के प्रति घृणा का भाव रखने वाले समाज पर तीखा व्यंग्य किया है। गरीब मजदूर ने इमारतें बनाई हैं, अपनी सेहत का सत्यानाश किया है परन्तु बदले में उसे घृणा ही मिली है।

कहानी में बिना कोई टिप्पणी किए लोगों की भद्देस मानसिकता पर चोट की गई है। कहानी का शीर्षक असंगत–सा लगता है। जोंक कौन है? मज़दूर या भद्देस समाज या बस कण्डक्टर या वह सैलानी जो तलाशी से पहले ही बस से उतर जाता है। संकेत स्पष्ट नहीं है।

4.2.3.4.6. व्यक्ति कहानी ग्रैजुएट परन्तु घरेलू नौकर और उसके बाप की विवशता की कहानी है। बाप ने बड़े लाड-प्यार से उसे पाला है, उसे पढ़ाने लिखाने के लिए ज़मीन तक

गिरवी रख दी है। परन्तु पढ़ लिख कर भी उसे नौकरी नहीं मिल रहा, वह गांव में खेती का काम भी नहीं कर पा रहा, जमीन छुड़ाने के लिए वह पैसे भी नहीं जुटा पा रहा और स्थिति यह है कि उसके लिए बाप की आंखों का इलाज कराना भी कठिन है। बड़ी विसंगत जीवन-स्थितियों में वह घरेलू नौकर के रूप में रह रहा है। उसकी इसी विडम्बनात्मक जीवन-स्थिति से कहानी आरम्भ होती है।

मालिक की लड़की मुन्नो की शादी है, वह मुन्नो के प्रति अनुगृहीत है और मन ही मन मुन्नो के प्रति आर्किषत भी है। 'उसके लाफ्टर में जाने ऐसा क्या है। मुन्नो ससुराल चली जाएगी, फिर क्या मैं यहां टिक संकूगा ? टिकना मजबूरी है'।

मालिक से अपमानित हुआ वह टीन उठाये मजदूर पर रौब जमाता हैं और अपने अपमान को हल्का करता है और अपनी ईगो को बुलन्द रखने की कोशिश करता है। भीड़ में मज़दूर दिखायी नहीं पड़ता तो वह घबरा जाता है । 165 रुपयों की हानि ...के इर्द गिर्द घूमने लगती है। धोखा खा कर वह किसी अन्य मजदूर से झगड़ने लगता है, मज़दूर उसे पागल समझ कर चले जाते हैं, अवश-सा वह ताकता रह जाता है। 'अब नौकरी पर लौटना सम्मानजनक नहीं'। अपने गांव की टिकट लेकर वह बस में सोचने लगता है । तभी वह बाहर देखता है कि बूढ़े बीमार बापू धकियाते हुए भीड़ में आगे आ रहे हैं, बापू तो कमज़ोर निगाह बनवाने ही शहर आया है और मालिकों को खुश रखने की नसीहत देता है, ''बड़े आदमी हैं, जिंदगी संवार देंगे और नहीं तो ज़मीन ही छुड़ा देंगे।'' परन्तु उसके मन में विषाक्त-सा कुछ घिरने लगता है अभी खेती नहीं करनी मुझे बाबा। जरूरत पर छुड़ा लेंगे।''

कहानी का अंत काफी सुगठित है 'मैं लौट आया हूं, फिर वहीं अवश-सा।' काफी सुगठित कहानी है, जिसमें आत्मचिंतन, टिप्पणियों , संवादों के सहारे सम्पन्न परिवारों के दिखावटी खोखलेपन और बेकार ग्रेजूएट की बेकारी और बेकारीजन्य पीड़ा तथा दुश्चिंता के चित्रण के साथ-साथ गरीब किसानों के अभावों और सपनों का सुन्दर सामयिक चित्रण हुआ है। शिल्प, संवेदना और मानव-यथार्थ के धरातल पर उत्कृष्ट कहानी है।

4.2.3.4.7. रामराज्य व्यंग्य प्रधान कहानीनुमा निबन्ध-सा कुछ है। जिसमें आधुनिक नेताओं की लूटखसोट की प्रवृत्ति का विस्तृत चित्रण हुआ है, नेताओं से मिलीभगत के कारण नौकरशाही भी भ्रष्ट हो गई है। परन्तु लगभग सारे प्रशासन तंत्र और भारतीय समाज के चरित्र को एक साथ उद्घाटित करने के यत्न में कहानी कहानी न रह कर निबन्ध-सा कुछ बन गई है।

गांधी जी का रामराज्य का सपना पूर्ण नहीं हुआ तो लोग रामलीलाएं करके पेट भरने लगे। नेता आपाधापी, निपुणता-प्रदर्शन, भाषण-कला, कुर्सी-दौड़ में लगे रहे और खुद को राम के चोबदार, नगाड़ेदार कहते रहे। जनता प्रतिक्रियाहीन रही तो उसकी निष्क्रियता की मनोवृत्ति पर अखबारों में चिंता प्रकट की जाती रही। बाढ़-पीड़ितों की मदद के लिए जनता का ध्यान एकता और अखण्डता के प्रति पैदा हो रहे खतरों की ओर दिलाया गया। चंदे की अपीलों का कोई लाभ नहीं होता तो स्वास्थ्य विभाग, पुलिस, ट्रैफिक पुलिस, गुण्डों आदि की मदद से छीना झपटी में चंदा वसूल किया जाता है।

फिर मालगाड़ी का डिब्बा नियत स्थल पर पहुंचता है। भूख से आतुर होकर लोग मालगाड़ी पर टूट पड़ते हैं, पूरा दिन भारी-भारी क्रेट उतारते रहते हैं परन्तु उनकी यह मेहनत बेकार जाती है क्योंकि भारी क्रेटों में भरा तमाम माल असबाब ही पत्थर हो गया है। 'परन्तु आश्चर्य की बात है कि बाढ़-पीड़ित निराश नहीं हुए। पत्थर भी झोंपड़ियां खड़ी करने के काम आ जाते हैं।'

कहानीनुमा व्यंग्य का अंत बड़ा स्थिति विस्फोटक है श्रीमती और बच्चे नेता से कहते है 'प्रधान बनना हो तो बाढ़ सहायता या सूखा निवारण जैसी सार्थक समितियों का बना कीजिए.....मंत्री जी प्रतीक्षा में हैं कि बाढ़ आए और वे....'

4.2.3.4.8. मुक्तिदूत व्यंग्य-प्रधान कहानी है। कहानी प्रश्नोत्तर शैली में विकसित की गई है। बोधिसत्व और आनन्द के बीच समसामयिक समाज की दुर्दशा के कारण पर चर्चा हो रही है। आनन्द प्रश्नकर्ता है तो बोधिसत्व उत्तर दाता, जो उत्तर के स्पष्टीकरण के लिए उदाहरण स्वरूप कहानी सुनाता है कि कैसे लोगों के अच्छे भले जीवन में नेता खलबली मचा देता है और चालाकी से लोगों के लिए समस्या खड़ी करता है और फिर इन समस्याओं को हल करने का दावा करता है और अपना महत्व बनाए रखने की कोशिश करता है। लोगों को मूर्ख बनाकर अपना स्वार्थ सिद्ध कर रहे नेता पर अच्छा व्यंग्य किया गया है।

कथा कह कर बोधिसत्व चुप हो जाते हैं तो आनन्द ने पूछा 'भन्ते'! कहीं ये मुक्तिदूत भावी भारत का नेता नामक प्राणी तो नहीं- जो प्रतिपल गिरगिट-से पैंतरे और इन्द्रधनुष-सा रंग बदलता है ? तथागत स्वाभावत: इस प्रश्न की अपेक्षा रखते थे। इसीलिए वे समाधिस्थ हो चुके थे.......यानी इस प्रश्न का समाधान मौन में है।'

जातक कथा के रूप में लिखी यह कहानी आधुनिक नेताओं के चरित्र की अच्छी बखिया उधेड़ती है और साथ ही यह भी स्पष्ट करती है कि काठ की हंडिया बार-बार नहीं चढ़ती, कहानी के टापूवासी तो मुक्तिदूत से निबटने के लिए तैयार हो जाते हैं परन्तु आज की भारतीय जनता अभी तक इन मुक्तिदूतों द्वारा बरगलाई जा रही है। कहानी उत्कृष्ट है।

4.2.3.4.9. नन्हा सीता राम कहानी में व्यापारी वर्ग की पोल खोली गई है। 'झूठ नहीं बोलो, 'झूठ नहीं सुनो', 'झूठा नहीं देखो' आदि गांधी जी के उपदेशों को आज का व्यापारी वर्ग आड़ के रूप में इस्तेमाल कर रहा है। कहानी में नन्हें सीताराम की जिज्ञासा के रूप में भारतीय शिक्षा पद्धति पर भी व्यंग्य किया गया है, जो अप्रासंगिक हो गए मूल्यों को सिखा पढ़ाकर आदमी का मोहभंग कर रही है। व्यापारियों द्वारा कीं जा रही मिलावट, टैक्स चोरी, सरकारी अफसरों को दी जा रही रिश्वत और झूठ मक्कारी आदि का कहानी में अच्छा चित्रण किया गया है। विडम्बना यह है कि आज का व्यापारी बर्ग इस मक्कारी और मूल्य हनन को व्यापारिक बुद्धि के रूप में बड़े गर्व सहित स्वीकार किए हुए है और वह चाहता है कि उसकी संतानें भी उसके इस आचरण को अपनाएं। अच्छी व्यंग्यात्मक कहानी है।

एक दिन बाल सुलभ जिज्ञासा के कारण सीता राम वर्जित तहखाने को खोल कर

मसालों के मिलावटी सामान को देख लेता है। वह अपने बाप से बंदरों के बारे पूछता है और स्वयं ही कहता है कि इनका यह अर्थ भी हो सकता है कि सच नहीं बोलो। सच नहीं सुनो। सच नहीं देखो, लाला बच्चे की बुद्धि पर हैरान होता है और संतुष्ट भी। परन्तु जब सीता राम पढ़ता है धोखाधड़ी करने वालों को सख्त सजाएं दी जाती थीं, तो लाला दहाड़ उठता है 'बकवास बंद कर सुअर की औलाद। अब से यह पढ़ना लिखना बन्द। दुकानदारों को व्यापारी बेटे चाहिए। उल्टी-सीधी किताब बांच कर हमें कोई अफसर नहीं बनना।'

कहानी का अंत काफी महत्वपूर्ण है। बच्चे परीक्षा देने जा रहे थे और सीता राम दुकान के बही खाते में उलझा था, दुकान पर नया बोर्ड लिखा जा रहा था, 'सेठ मगनलाल सीताराम-खालिस गर्म मसाले के प्रसिद्ध विक्रेता।' अच्छी सुगठित और उत्कृष्ट कहानी है।

4.2.3.5. हरिकृष्ण कौल का दूसरा कहानी-संग्रह 'टोकरी भर धूप, 1976 ई० में प्रकाशित हुआ। 'टोकरी भर धूप' में प्रकाशित 11 कहानियों में से केवल चार कहानियों- 'कर्फ्यू','भय', 'अंधे,' देवता' की समीक्षा यहां प्रस्तुत है क्योंकि इस संग्रह की शेष सात कहानियों 'भ्रातृघाती', 'विश्वास', 'हित चिंतक', 'अगले दिन', 'दांव', 'टोकरी भर धूप', 'गन्दी बहार' आदि पूर्व प्रकाशित कहानियों की समीक्षा अन्यत्र की जा चुकी है।

प्रस्तुत पत्रों में आलोच्य कहानियों की कला में परिपक्वता आई है और जीवनदृष्टि में भी परिपक्वता आई है। कश्मीर के लोक-जीवन में व्याप्त हो रही चिन्ताओं और विसंगतियों का भी यहां चित्रण हुआ है। यौन-जीवन के प्रति भी लेखक की सोच स्पष्ट हुई है। इन कहानियों का मूल्यांकन प्रस्तुत है।

4.2.3.5.1. कर्फ्यू कहानी में एक बेकार युवक की मन-स्थिति का अच्छा मनोविश्लेषणात्मक चित्रण हुआ है। कहानी में घटनाक्रम नहीं के बराबर है और न ही कोई प्रमुख पात्र किसी घटनाक्रम का हिस्सा है। हां मानसिक धरातल पर होने वाली थोड़ी-बहुत प्रतिक्रियाओं को परस्पर बुनकर कहानी को विकसित किया गया है। कहानी में जीवन के अनेक त्रासद अनुभवों और अनुभूतियों को जोड़ कर वृद्ध व्यक्तियों के प्रति युवा व्यक्ति के आक्रोश का चित्रण हुआ है। इन दोनों पीढ़ियों के बीच फैल रही विसंगति और तनाव के कारण उनमें परस्पर संशय और अविश्वास घना होता जा रहा है। कहानी आत्मचिंतन की शैली-सी गढ़ती प्रतीत होती है।

बाप को फ़िल्मी गीत पसंद नहीं जबकि बेटा जानता है कि ठाकुर जी के आगे टुन-टुन घण्टी बजाते समय भी उनकी आंखें सामने वाले मकान में जग लाल की बीवी कमलावती को टटोलती रहती हैं।

बेटा स्वयं उषा राजदान के सौंदर्य और उसकी आत्ममुग्धता को देखता है परन्तु उषा ने उसे नहीं देखा, या हो सकता है कि देख कर अनदेखा किया और अलसा कर अंगड़ाई ली.....अंगड़ाई लेते समय उसके शरीर में दो छोटे-छोटे अम्बरी सेब जैसे फूट पड़े.....नितम्बों के उभार और कमर की क्षीणता ने जैसे स्वयं उसका मन मोह लिया। सड़क पर हंसते ठट्ठा करते तीन आदमियों को देखकर उसके सिर पर जुनून सवार हो गया । इच्छा हुई कि वह तुरन्त सड़क

पर आकर जोर-जोर से नारे लगाये। उसे भी नौकरी चाहिए। एम०ए० पास किए उसे दो वर्ष हो गए हैं ।'यदि बावा ने उस्ताद मोहम्मद के बाप का कागज दबा कर उससे बेगार ली तो उसका बदला उससे क्यों लिया जाता है?'.....

'मकान की मुरम्मत के लिए ये सौ रुपये बावा के हाथ में देना मूर्खता ही नहीं, अपराध भी होगा। यह मकान एक न एक दिन अवश्य ढह जाएगा.... या मुमकिन है कि....वैसी ही स्थिति फिर पैदा हो जाए......और कोई जवां मर्द इस मकान के समेत सारे मुहल्ले को फूंक डाले।' जाने क्यों मन में ये विचार आते ही उसे एक निराली खुशी का अनुभव हुआ। उसके मन पर बैठा पत्थर जैसे अचानक सरक गया.....अब उसे नींद आने लगी। अनेकायामी समस्याओं को अभिव्यक्त करती यह अच्छी सशक्त कहानी है।

4.2.3.5.2. भय कहानी में कश्मीर वादी के जन समुदाय के मानसिक द्वन्द्व और भय को सशक्त ढंग से चित्रित किया गया है। कहानी में पाकिस्तानी घुसपैठ के विरुद्ध लोगों पर पुलिस की जोर जबरदस्ती चित्रित की गई है। इसी जोर जबरदस्ती की पृष्ठभूमि में आम आदमी की असुरक्षा की भावना और भय का सशक्त चित्रण हुआ है। देश-प्रेम, मातृभूमि से प्रेम, रोज़ी रोटी की ज़रूरत तथा असुरक्षाजन्य भय और परस्पर विरोधी अनुभूतियों को तनाव ही कहानी को रूप-विधान प्रदान करता है।

पुलिस के आदमी ने बस ड्राइवर की पिटाई कर दी है। परन्तु वह सोचता है कि पुलिस वाला अपनी ही किसी परेशानी में ग्रस्त होगा। उस अभागे को यहां के लोग कुत्ता समझते हैं...... आज संभवत: उसे मौका हाथ लगा होगा और उसने इन सब बातों का बदला ड्राइवर से लिया।'......परन्तु पीरजादा इसे अत्याचार मानता है, 'यह तो सरासर जुल्म है....इसे जंग भी नहीं कहा जा सकता, जंग महाजों पर लड़ी जाती है, शहर में नहीं......सीधे सादे शहर के लोगों पर जुल्म ढाते हैं।'

बीच-बीच में फौजी गाड़ी सड़क पर गुजरती देख नेरेटर भी सोच में पड़ जाता है, 'मेरे पीछे घर जाने क्या हुआ होगा? आजकल किस बात का भरोसा है? यह मुल्क मेरा होकर भी मेरा नहीं। एक पुराना बोसीदा मकान है, वह भी वही लोग ले जाएं.....मैं करनाल में था तो कश्मीर की याद सताती थी, यदि वहां टिका होता तो यहां की तरह भय से रोज़-रोज़ जान न निकलती। जयपुर दरख्वास्त भेजी थी सोचता हूं उसका कोई जवाब अभी तक क्यों नहीं आया?'.....'भागना क्यों चाहता ?' 'पर क्या करें हालात कुछ अच्छे नहीं दीखते हैं।'......पीरजादा उसे डरपोक समझ कर मुस्कराता है।

पुलिस वाले माझियों का सामान बाहर पटक रहे थे, 'क्यों चलना नहीं है ?'पीरज़ादा कहता है 'ठहर कर क्या करना है.....तुम नहीं जानते, हो सकता है इस बहच में सचमुच ही कोई मुजाहिद छिपा बैठा हो। अपनी जान बचाने के लिए वह बम या हैंड ग्रेनेड का इस्तेमाल करेगा ही। इन पुलिस वालों की तो मौत मंडरा रही है मगर हम बेगुनाह भी मारे जायेंगे.....।'तभी सिख थानेदार की आवाज कानों में पड़ी 'हे महीउद्दीन चले आओ बाहर। हो चुकी तलाशी। साले बहनोइयों की खातिरदारी अपने बंगलों में कर रहे हैं और गरीब लोगों को फजूल में तंग

कर रहे हैं।'

कश्मीरवादी के लोगों की अनेकायामी जीवन समस्याओं को उद्घाटित करती हुई सशक्त कहानी है।

4.2.3.5.3. अंधे कहानी में व्यंग्य की धार काफी पैनी है। अंधे वे हैं, जो सब कुछ देखते हुए भी स्वार्थवश अनदेखा कर देते हैं। अंधे वे भी हैं जो प्रेम जैसी सात्विक भावना का कोई मूल्य नहीं समझते और अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए शरीर तक का समर्पण कर देते हैं, जो शारीरिक पवित्रता को अर्थात् शील की पवित्रता को कोई महत्व न देकर महाकांक्षाओं को ही महत्व देते हैं और विवाह कर के साथी के प्रति वफादारी का ढोंग रच लेते हैं। नारी-शील संबंधी नारी में बदल रहे दृष्टिकोण को यहीं तुलनात्मक रूप में प्रस्तुत किया गया है। ग्रामीण जीवन में अभी भी नारी-शील के लिए हाय तौबा मचायी जाती है जबकि शहरी जीवन में नारी-शील के प्रति लोगों का विशेष कर महत्वाकांक्षी नारियों का दृष्टिकोण बदल गया है।

कहानी में बेटी के शील की चिंता और हमसफर लोगों से सहानुभूति की मांग आदि पृष्ठभूमि में रही है जबकि मूल कहानी है विवाहिता भूतपूर्व-प्रेमिका के प्रति सोच। समूची कहानी इसी प्रेम सम्बन्धों के अतीत-स्मरण पर टिकी हुई है। बूढ़े का प्रसंग तो शील सम्बन्धी दृष्टिकोण की तुलना के लिए रखा गया है।

भूतपूर्व प्रेमिका स्वेटर बुन रही है, शायद अपने पति के लिए जबकि प्रेमी अतीत में खो गया है।'उन दिनों मेरे लिए भी उसने तीन स्वेटर बुने थे।' वह देखता है कि कहीं कोई परिवर्तन नहीं आया था....। हो सकता है सब कुछ बदला हो पर यह बदलाव मुझे ही नजर नहीं आ रहा हो।' क्यों न मैं भी एम०ए० हिन्दी कर डालूं.....चीफ इन्सपैक्ट्रेस के आफिस के उस घुंघराले बालों वाले मुसलमान क्लर्क को आप भी जानते ही होंगे? मरा एक नम्बर का बदमाश है। परसों मुझसे कहने लगा कि तुम एम०ए० कर डालो गजटेड पोस्ट दिलाना मेरे जिम्मे रहा.....बदतमीज़ कहीं का ....'

कौन नहीं जानता था कि मीर साहिब कैसे आदमी हैं और उन्हीं मीर साहब के बंगले से रात के दस बजे ग्रेड प्रोमोशन की फाइल पर दस्तखत कराके निकलते मैंने उसे देख लिया था...उस दिन वह मंदिर एकाएक ढह गया, आघात इतना सख्त था कि मुझसे सहन न हुआ।

क्या एक अन्धे की आंखों में भी सिगरेट का धुंआ लगता होगा ......मुझ जैसा भी कोई अभागा होगा जिसने एक जरा-सी बात के लिए स्वयं अपनी खुशियों का गला घोंटा है.....? प्रतीकात्मक भाषा के बावजूद अच्छी सार्थक और सशक्त कहानी है।

4.2.3.5.4. देवता–कहानी में नपुंसक व्यक्ति के जीवन पर व्यंग्य किया गया है। छैल छबीले ताराचन्द की मृत्यु की चर्चा की पृष्ठभूमि में उसकी पत्नी की अपूर्ण शारीरिक मांग को स्पष्ट किया गया है। शारीरिक मांग की पूर्ति के बिना उसके जीवन में पैदा हुई घुटन और श्रृंगारहीनता का यहां सशक्त चित्रण हुआ है। विड्म्बना यह है कि धर्मात्मा समझे जाने वाले ताराचन्द की पत्नी को मैली कुचैली रहने का दोष दिया जाता है जबकि उसकी मनोव्यथा को

नहीं समझा जा रहा। कहानी में हीबटनी का चरित्र काफी पुख्ता है।

चर्चा हो रही है कि ताराचन्द की मृत्यु जैसी मृत्यु सबको नसीब हो..न रोग, न पीड़ा.....परन्तु हीबटनी के लिए यह आघात असह्य हो रहा था, 'उसके मन में निःसंदेह उस दिन पाप था।' उसने एक योगी की तपस्या भंग करने का प्रयास किया.....'

वह दिन याद आते ही हीबटनी कांप उठी....हीबटनी को रात गये तक नींद नहीं आयी। ठंड पड़ रही थी....वह काफी देर तक करवटें बदलती रही। एकाएक जाने उसे क्या हुआ ? वह उठी और बिना सोचे बिस्तर में जा घुसी...वह जाग गया और उसी क्षण बिस्तर से बाहर आया मानो बिस्तर में कोई सांप घुस गया हो। हीबटनी दौड़ कर किचन में चली गई और वहां दांतों से अपना मांस काटने लगी...काश धरती फटती और वह उसी में समा जाती।....उस रात के बाद वह बहुत समय तक ताराचन्द से आंखें नहीं मिला सकी थी.....

ताराचन्द की अर्थी अभी उठी नहीं थी... हीबटनी.....चुपके से उठ कर शव के पास चली गई। दोनों हाथों से ताराचन्द के पैर पकड़ कर वह ज़ोर-ज़ोर से रोने लगी...फिर वह उठी हाथ जोड़ कर उसे अंतिम प्रणाम किया और मन ही मन क्षमा मांगी....'मैं उस दिन अंधी हो गई थी। हां, मेरे मन में सचमुच पाप था। मैंने तुम्हारा तप भंग करना चाहा। पापिन को बखशना। यह जन्म तो मिट्टी में मिल गया, कहीं अगला जन्म भी चौपट न हो जाए.....'

रोती चीखती तारावती गली तक अर्थी के पीछे पीछे चली.....वापस आकर जड़वत बैठ गई.....कुछ देर तक खामोशी रही और तब वह अचानक बोल उठी.....'मुझे ज़हर दे देना, मार डालना। आज तक मैंने किसी से कुछ नहीं कहा। पर आज वह इज्जत वाला अपनी ज़िन्दगी इज्जत से गुजार कर चला गया। इसी लिए कहती हूं सुन कर मुझे मार डालना...मैं बूढ़ी होकर भी अब तक कन्या ही हूं....'

सुनकर हीबटनी जैसे आकाश से गिर पड़ी। पुरानी बातों का एक नया ही अर्थ उसके सामने खुलने लगा। उसने उठकर तारावती को गले से लगाया और दोनों फूट-फूट कर रोने लगीं।'.....अच्छी कहानी है। हीबटनी और तारावती परस्पर पूरक बन गई हैं।

4.2.3.6. उल्कापात बलनील देवम् की 1973 से 76 तक लिखी दस कहानियों का संग्रह 'उल्कापात' 1977 ई० में प्रकाशित हुआ। इससे पूर्व लेखक ने राष्ट्रवादी और भावुकता से भरी सात आठ सामाजिक कहानियां लिखी थीं जो इस संकलन में नहीं हैं। प्रस्तुत कहानियों में आम जनता में फैली निर्धनता, शोषण और यौन संबंधों की दरारों को कथ्य बनाया गया है। 'लेखकीय दृष्टि के अनुसार प्रगतिशील सोच की अनेक झलकियां मिल जाती हैं, भाषा और शिल्प की दृष्टि से ये सुदृढ़ कहानियां हैं।'[6] इन कहानियों का मूल्यांकन निम्नलिखित है।

4.2.3.6.1. उल्कापात कहानी में लक्ष्मीप्रसाद की पुत्र-आकांक्षा के कारण पैदा हुई छः बेटियों का बाप बन जाने की विडम्बना का चित्रण हृदयद्राविक है। आर्थिक दरिद्रता के कारण वह किसी भी बेटी का विवाह न कर पाने की व्यथा से ग्रस्त है। यौन आकांक्षा के कारण या तो उसकी बेटियां पागल हो जाती हैं या बरगलायी जाकर शारीरिक शोषण का शिकार हो जाती हैं।

उसके जीवन की अनेक विडम्बनात्मक स्थितियों का कहानी के रूप में चित्रण हुआ है।

लक्ष्मीप्रसाद छोटी–सी नौकरी के कारण आर्थिक तंगी में गुजारा कर रहा है, बड़ी बेटी सोना विवाह न हो पाने के कारण पागल हो गई है, उस से छोटी रजनी बदसूरत है उसका विवाह नहीं हो पा रहा और वह मां के प्रति चिड़चिढ़ी हो गई है, कुण्ठाग्रस्त रजनी मां को बुरा भला कहती रहती है। छोटी बेटी चांद, है तो 13 वर्षीय लड़की, पर जिस्म भरा–भरा है, वही अपनी बहनों में सब से अधिक सुंदर है, मां भी उसे सबसे अधिक प्यार करती है परन्तु वह किसी लड़के द्वारा छली जा रही है, उसे बहका दिया गया है। उसके कारण बाप लक्ष्मीप्रसाद अपमानित महसूस कर रहा है।

कहानी लक्ष्मीप्रसाद और उसकी पत्नी मोतिया की दुश्चिंताओं, दम्पति के परस्पर विचार–विमर्श और बेटियों के कार्यकलापों के विवरण द्वारा विकसित की गई है, 'फ्लैशबैक' और आत्मालोचन के सहारे कथानक को बुना गया है। सभी पात्र क्रम से पाठक के सामने आते हैं। जिनके माध्यम से लक्ष्मीप्रसाद के घरेलू जीवन की त्रासदी का सशक्त चित्रण हुआ है। पत्नी मोतिया उसे समझाती है कि इस सुनहरी मौके को ठुकराया न जाए मैं तो कहती हूं अगर दोनों शादी के लिए राजी हों तो दोनों की शादी कर दी जाए। जात बिरादरी जाए भाड़ में, मैं तो कहती हूं रजनी और सविता भी इसी तरह अपने–अपने पति ढूंढ लें तो सारी चिंताएं दूर हो जाएं।'

लक्ष्मीप्रसाद चांद के प्रेमी सुकेश के घर पहुंचता है, घर देखकर बड़ा प्रसन्न होता है कि सुकेश काफी सम्पन्न है, परन्तु कोठी के भीतर से निकला आदमी उसके सभी सपनों को चकनाचूर कर देता है कि 'वे लड़के इसी को अपना बंगला बताते हैं ताकि कोई असलियत जान न सके और वे जितनी देर यहां रहते हैं उतनी देर का किराया देकर चले जाते हैं।'

4.2.4.6.2. आकाश के टुकड़े कहानी में रिक्शा चलाने वाले अति गरीब व्यक्ति और उसके परिवार की जीवन त्रासदी का करुणापरक चित्रण हुआ है। शेरी की पत्नी बीमार है, खांसते–खांसते निढाल हो रही है, बच्चे भुखमरी के शिकार हैं, एक्सीडैंट के कारण शेरी भी बाजू में चोट खाए हुए है। अपनी दु:खद जीवन–स्थिति से शेरी आतंकित हो उठा है कि दो रुपये पैंसठ पैसे में वह बीवी की दवा लाए कि बच्चों को खाना खिलाए, रिक्शा की मुरम्मत भी जरूरी है और रिक्शे की किश्त भी वह नहीं चुका पाया, वह यही सोच रहा होता है कि छत गिर पड़ती है। सुबह बादल टुकड़ों में बंट कर आकाश पर बिखर गए थे, रिक्शा खुली ड्योढ़ी में वैसे ही खड़ा था, मलबे के नीचे कुनमुनाता हुआ शेरी हिल रहा था।

कहानी में निर्धन व्यक्ति के जीवन की सभी पीड़ाओं को एक साथ समेट लिया गया है। गठन सुदृढ़ है और भावुकता की अपेक्षा भाषाई संयम तथा शिल्पगत कौशल का अच्छा नियोजन हुआ है। अच्छी कहानी है। बच्चों के प्रति करुण और अपराधबोध से ग्रस्त शेरी की मन:स्थिति का सशक्त चित्रण कहानी का मूल कथानक है। भाषा सशक्त है, बीच बीच में अन्तश्चेतन और अतीत–स्मरण के सहारे कहानी को विकसित किया गया है।

4.2.3.6.3. जिंदा गोश्त कहानी में मां-बाप द्वारा शरीर बेचने के लिए विवश की गई लड़की की यातना और उसकी मानसिक यंत्रणा का सशक्त चित्रण किया गया है। विडम्बना यह है कि उसके स्वाभिमान और लाज की रक्षा के लिए उसका भाई कत्ल करके उम्र कैद की सजा भोग रहा है जबकि वह शरीर बेच रही है। कहानी में वेश्या के पास आने वाले ग्राहकों की छिछली मानसिकता, वेश्या के मां-बाप द्वारा उससे पैसे की मांग और नशा खोरी आदि से जुड़ी कुछ घटनाओं के संयोजन द्वारा कथानक का विकास किया गया है। कहानी में वेश्या बना दी गई लड़की चंद्रिका का दबंग रूप उभरा है, वह शरीर खरीदने आए ग्राहकों और अपने मां-बाप के प्रति घृणा से भरी बैठी है।

तभी मां आ जाती है और नये ग्राहक के लिए तैयार होने को कहती है। चंद्रिका गुस्से से भड़क उठती है। 'भाड़ में जाओ तुम दोनों और वह बड़ा आदमी, तुम दोनों मेरे मां बाप नहीं मेरे शत्रु हो, अपनी बेटी से पेशा करवाने से पहले ही तुम दोनों मर क्यों नहीं गए?' चन्द्रिका का घायल अन्तर्मन फुफ़कारता हुआ कह रहा था कि उचक कर बाबा की गर्दन दबोच ले। 'राम ने खून किया था अपनी बहन की इज्जत की रक्षा के लिए और उसकी वही बहन आज दस दस रुपये में शरीर बेचती है... एक वेश्या की-सी जिंदगी बसर कर रही है।' इसी ग्लानि से पीड़ित वह आत्महत्या के लिए रेलवे लाइन पर पहुंच जाती है।

कहानी में एकालाप काफी लम्बे हैं परन्तु समस्या का उद्घाटन इन्हीं के द्वारा हुआ है। साधारण निर्धन और असहाय परिवार की पीड़ा का चित्रण मानव-मूल्य और सामाजिक नैतिकता की कसौटी पर उतारा गया है। भावना के अतिरेक के बावजूद शिल्प की दृष्टि से अच्छी कहानी है।

4.2.3.6.4. जुड़ती हुई टूटन में दाम्पत्य जीवन में आ गए अविश्वास, आतंक, त्रास और दाम्पत्य की दरारों के साथ-साथ प्रेम, घृणा और दया की भावनाओं का मिला-जुला चित्रण हुआ है। पति पत्नी दोनों दाम्पत्य जीवन के पहले तीन वर्ष ही प्रेमपूर्वक मिल-जुल कर गुज़ार सके हैं जबकि पिछले तेइस वर्षों के दाम्पत्य में पति कई बार टूटा है और टूटन के बाद जुड़ता रहा है, जिंदगी का एक लम्बा हिस्सा इसी तरह दहकते हुए व्यतीत हो चुका है।

कुछ महीने पहले तो नलिनी की हत्या हो चुकी होती, परन्तु वह छिटक गई थी हाथों से। ....'सुप्तावस्था में नलिनी का बिखरा हुआ शरीर मेरे रक्त संचार को तेज़ कर गया था। उसके चेहरे से नलिनी का मुखौटा हट गया था। अब वह सिर्फ औरत थी, जिससे आदमी प्यार करता है, जिसके सहवास से पुरुष की इन्द्रियों की तृप्ति होती है, नलिनी से घृणा थी परन्तु औरत से नहीं। इस समय नलिनी एक औरत थी और औरत की इस अवस्था ने संयम भंग कर दिया था। वहशीपन की हद तक मैंने उसके साथ व्यवहार किया था। एक दम जंगली जानवर की भांति। वह शायद उत्फुल्ल थी कि एक मुद्दत के बाद पत्नी का अधिकार मिला है, शायद इन क्षणों के बाद ही सम्बन्धों में स्थायित्व आ जाए और जीवन प्रवाहमय हो जाए। और रक्त ठण्डा हो जाने के बाद जब मुझे होश आया तो वहां की औरत को नलिनी का चेहरा लिए हुए पाया। यह तो हरामजादी नलिनी है। ओह! मेरे मस्तिष्क में एक दम जहर चढ़ गया था। परन्तु वह एक

हल्की चीख के साथ चारपाई से नीचे जा गिरी थी। अपनी मुड़ी तुड़ी साड़ी और ब्लाऊज को संभालती दूसरे कमरे में भाग गई थी। परन्तु आज......आज जबसे सुना है कि नलिनी मां बनने वाली है......गर्माहट का कोई अंकुर फूटता-सा लग रहा है........कहीं यह जुड़ती हुई अन्तिम टूटन तो नहीं। मैं अभी कुछ नहीं कह सकता परन्तु लगता है, जिंदगी दिशा बदल रही है।

कहानी में व्यक्ति की संतानाकांक्षा ही उनके दाम्पत्य जीवन में घृणा या प्रेम का कारण बनती है परन्तु कहानी में अंत तक ज़िज्ञासा बनी रहती है। व्यक्ति के द्वन्द्वग्रस्त अंतश्चेतन का अच्छा चित्रण हुआ है, भाषा का अक्खड़पन जंचता है।

4.2.3.6.5. ताण्डव नृत्य कहानी में गांवों में सम्पन्न घरानों के लड़कों द्वारा फैलाई गुण्डागर्दी का चित्रण हुआ है। उनके अत्याचार के कारण लोगों पर हावी हो गए संत्रास, भय और आतंक का अच्छा हृदयद्राविक चित्रण हुआ है। गांव के लोगों का मैत्री पूर्ण वातावरण और बचपन की मिठास अब देखने को नहीं मिल रही। बदलाव की यह प्रक्रिया कहानी में तो चित्रित नहीं हुई परन्तु उन स्थितियों का अच्छा चित्रण हुआ है जिनके कारण मानसिक धरातल पर आदमी आदमी में परायापन पैदा हो गया है।

शहर से गांव लौट रहा सोमू लोगों की आंखों में प्रेम, अपनत्व और सहजता न देखकर कुछ और ही देखता है जो अनपहचाना है जबकि काफी दिनों के बाद शहर से आए सोमू के मन में बचपन के क्रियाकलापों का तानाबाना उभर रहा है। उसे बापू की छोटी-सी विस्फोटक चिट्ठी का एक-एक शब्द याद आ रहा था 'हम तबाह हो गए बेटा, हमारा सब समाप्त हो गया। जल्दी में गांव आ जाओ'।

'गुड्डी जवान थी, तेईस चौबीस बसन्त पार कर चुकी थी, तुम लोगों को चाहिए था कि उसकी शादी कर देते, तुम भाग कर शहर चले गए और तुम्हारे बापू के पास था ही क्या? जो उसकी शादी कर देते । लेकिन गुड्डी भरपूर जवान थी, अपनी शारीरिक भूख को सह न सकी। वह आई थी एक के लिए परन्तु यहां मिले पांच पांच! राधे उसे समझाता है, 'सरपंच के पास दौलत है, दौलत सब कुछ कर सकती है, तुम तो अरक्षित हो। तुम पकड़े गए तो जेल चले जाओगे। तुम्हारा अपाहिज बापू और तुम्हारी बूढ़ी मां......क्या होगा उनका ? गुड्डी तो मर गई अब वह वापस लौट नहीं सकती।'

वह अपने आप को कहीं से कमजोर पा रहा था, नपुंसक महसूस कर रहा था, उसे लगा वह भीतर से एकदम खोखला हो जाएगा, सुबह जब लोगों की तीव्र दृष्टि उसे सूइयां चुभोएगी तो वह भुरभुरा कर गिर जाएगा......इससे पहले कि वह अंधेरी कोठरी की जिंदगी अपनाने पर मजबूर हो जाए, वह दीमक खाए अपने शरीर को लेकर शहर चला जाएगा। सुबह चार बजे ही वह घर से निकल जाएगा, जब सब सोए होंगे।

अच्छी सुगठित कहानी है जिसमें अंत तक जिज्ञासा बनी रही है। 'डिटेल्स' और अन्तर्मन का चित्रण तथा संवाद सभी कहानी को आगे बढ़ाने में सहायक हुए हैं। उत्कृष्ट कहानी है।

4.2.3.6.6. जिंदगी कहानी में अनैतिक आचरण के कारण पारिवारिक रिश्तों में आ रही धुरीहीनता और इस धुरीहीनता के कारण दुःखी युवक की मानसिकता का चित्रण किया गया है। कहानी दो मित्रों के परस्पर संवाद के रूप में विकसित हुई है। रिश्तों के खोखलेपन पर तीखी चोटें की गई हैं। देव स्वयं को उपेक्षित, अकेला और निरर्थक समझ रहा है और बाप की दो नम्बर की कमाई को शराब पर उड़ा रहा है, उसे लगता है कि कोई उसका अपना नहीं है, सौतेली मां तो नहीं ही।

''मुझ से लगभग तीन साल छोटी है मेरी मां। मेरा बाप उसको सैटिसफाईड नहीं कर पाता। स्साली एक रात मेरे कमरे में आकर मेरे बिस्तर पर लेट गई.....तुम ही बताओ, है दुनिया में किसी रिश्ते का कोई अर्थ, कोई महत्त्व ? सैक्स की भूख ने उसका दिमाग खराब कर दिया था। कहने लगी, 'वे मुझे कुछ नहीं दे पाते, कुछ नहीं दे सकते। वे एक दम खाली हैं, खोखले हो चुके हैं। मैं मर जाऊंगी। तुम मुझे बचा लो। मैं उनकी पत्नी बनी रहूंगी और तुम्हारी प्रेमिका.....।' हरामजादी .....कुतिया कहीं की.....' और मेरी उस मां ने मेरे बाप के आगे मेरे चरित्र की ऐसी धज्जियां उड़ाईं कि उस घर से मेरा बोरिया बिस्तर गोल हो गया... .मैं तब से अलग फ्लैट में अकेला ही रहता हूं और मेरी मां सोसाइटी के नाम पर जाने कहां-कहां सैटिसफांईड होने जाती होगी।''

समूची कहानी एकालाप-सी ही है। देव के साथ बैठा मित्र विक्रम हूं, हां कह कर उसे उकसा रहा है। कहानी की भाषा और व्यक्ति के अन्तश्चेतन के साथ-साथ यौन सम्बन्धों में आने वाली दरारों का अच्छा और खुला चित्रण हुआ है।

4.2.3.6.7. कैंसर कहानी में पत्नी राधा कैंसर से पीड़ित है जिसके प्रति उसके पति की संवेदना का सशक्त चित्रण हुआ है। दोनों के दाम्पत्य जीवन की त्रासदी का चित्रण करने के साथ-साथ लेखक उनके आदर्श दाम्पत्य प्रेम को भी अभिव्यक्ति देता है कि राधा बीमार होकर भी पति के लिए सर्वस्व लुटा देने के लिए तत्पर है और अगले जन्म में भी उसी को पति-रूप में पाना चाहती है। हीरा भी पत्नी के सौंदर्य पर मस्त रहा है परन्तु अब दुःखी है कि वह कितनी मरियल-सी हो गई है। हीरा अपराधबोध से भी ग्रस्त है कि क्यों वह हर रोज़ राधा के शरीर को तोड़ता रहा? उसके जननांग में कैंसर है, अब इसका इलाज बहुत ही मुश्किल है। दो तीन महीने से अधिक नहीं जी सकती वह। हीरा सोच रहा था कि उसके पास तो चार पांच सौ भी नहीं। थोड़ी सी जमीन है। अगर वह बेचेगा तो खाएगा कहां से। पर वह राधा को अन्दर का तूफान दिखाना नहीं चाहता था ।

दाम्पत्य जीवन की त्रासदी, निर्धनता, बड़े परिवार के दुःख और जिम्मेदारी की तीखी अनुभूतियों का सुगठित और हृदयद्राविक चित्रण कहानी की विशेषता है।

4.2.3.6.8. भरा-पुरा पुरुष कहानी मानव मनोविज्ञान को कथ्य बना कर लिखी गई है। कहानी का नायक तरसेम बचपन से ही चाचा जी के आतंक से त्रस्त रहा है, उसके व्यक्तित्व के विकास पर चाचा जी का अंकुश रहा है। उसकी भावनाओं, आकांक्षाओं को दबाकर रखा गया है। उस पर चाचा जी अपनी इच्छाओं, आकांक्षाओं, नियंत्रण और अपने व्यक्तित्व को

ठोंसते रहे हैं। स्थिति यह है कि चाचाजी का दमन सीमा का अतिक्रमण कर जाता है तो तरसेम भयानक और विस्फोटक हो उठता है।

बचपन से ही पारिवारिक यंत्रणाओं के संघातों को वह अन्तर्मन में सहता रहा है, एक दम निष्क्रिय होकर । परन्तु कभी-कभी उसे लगता था कि यह खामोशी, निष्क्रियता, यातनाओं के प्रति निष्क्रिय टण्डापन कहीं उसकी पुरुपार्थहीनता का लक्षण तो नहीं, उसके भीतर यह कायरता क्यों है ? क्यों नहीं वह भरे पुरे पुरुष की भांति डटकर मानसिक प्रघातों का सामना करता? लेकिन ऐसे समय में बचपन से ही रोम-रोम में भरी आतंक की दुर्गंध ऐसे समय में उसे तंद्रिल कर देती थी.....क्या यही उसकी जिन्दगी है? एक दिन तरसेम ने प्रश्नों की सलीब तोड़ ही दी। बदलाव के लिए एक क्षण ही काफी होता है, तरसेम ने बदलाव का यही क्षण पकड़ कर अपने भीतर समाविष्ट कर लिया।

ज्वालामुखी फट पड़ा और लावा इधर उधर बिखरने लगा 'तुम कौन होते हो मुझे पूछने वाले ? मां! बाप!! कौन हो तुम ? वापू । कौन हो तुम ? बापू ही जब मुझसे नहीं पूछते तो तुम कौन होते हो ? मेरे बापू के भाई...... मेरे क्या हो ? मैं तुम्हें कुछ भी नहीं समझता...? और यह लवलैटर है। मेरी लवर ने लिखा है। मैं भी उसे लिखता हूं और लिखूंगा, उसको इस घर भी लाऊंगा। तुमने जो करना है कर लो.....बड़ा आया इज्जत वाला।' आज उसका बिखरा हुआ व्यक्तित्व, क्षार-क्षार व्यक्तित्व एक हो गया था, अपने आप में सम्पूर्ण व्यक्तित्व! जिसका आधार बनी थी किरण।

लम्बी कहानी है और गठन में थोड़ा ढीलापन आ गया है, भाषा और संवाद योजना अच्छी और भावप्रेरक है।

4.2.3.6.9. प्रतिक्रिया कहानी में अस्पतालों में फैली अराजकता, निर्धन और साधारण मरीज़ों की अनदेखी, मरीज़ों के प्रति अन्य मरीज़ों की दिखावटी सहानुभूति और नर्सों के कर्कश व्यवहार को परस्पर बुन कर कथानक का विकास किया गया है और सामाजिक जीवन में घर करती जा रही मूल्यहीनता और यांत्रिकता पर चोट की गई हैं। स्थिति यह है कि सम्वेदना के रूप में कोई प्रतिक्रिया रूप ही धारण नहीं कर पाती। डाक्टरों, नर्सों और अस्पताल के अन्य कर्मचारियों में इतनी अधिक अभ्यस्तता आ गई है कि मर रहे बच्चे के प्रति भी उनमें मानवीय प्रतिक्रिया नहीं उभरती। वे सपाट चेहरों और सपाट चाल में निकट से गुजरते हुए अपने काम में व्यस्त दिखते रहते हैं, लोग तमाशबीन बन कर रह गए हैं। मानवीय मूल्यों के दिन-प्रतिदिन हो रहे हनन पर तीखी चोट प्रस्तुत कहानी का कथ्य है।

नीचे भूमि पर सफेद कपड़े में लिपटी लाश पड़ी है। लाश के सिर के पास एक बुढ़िया बैठी है। बुढ़िया के हाथ कांपने लगे हैं और आहिस्ता-आहिस्ता लाश के सिर पर घूम रहे हैं। अचानक बुढ़िया की दृष्टि मेरी ओर उठती है, संभाल नहीं पाता उस रोती दृष्टि को। 'अस्त-व्यस्त-सा पाने लगता हूं अपने आप को। चीख पड़ने को मन होता है परन्तु लोग मुझे पागल समझने लगेंगे।' 'मुझे ऐसा लगता है कि मेरे पीछे कुछ हाथ आ रहे हैं जो मुझे भी लाश के रूप में परिवर्तित कर देना चाहते हैं, मैं भागना शुरू कर देता हूं।'

कहानी आत्मालोचन की शैली में लिखी गई है, सहानुभूति के अप्रकट रूप और क्रियाहीन प्रतिक्रिया का अच्छा चित्रण हुआ है।

4.2.3.6.10. सिर्फ एक बार कहानी में नारी-मन की सशक्त अभिव्यक्ति हुई है। अन्तश्चेतन, स्मृतियां और विसंगत वातावरण के बीच की घटनाओं को परस्पर बुनकर कहानी विकसित की गई है। कालेज के दिनों का ठुकराया हुआ प्रेमी अट्ठारह वर्षों बाद दिखता है तो कथा नायिका भाव विह्वल हो उठती है। नायिका ने 13 वर्ष तक उसका इंतजार किया था परन्तु व्यर्थ। अंततः विधुर से विवाह के लिए अपनी अनुमति दे दी थी। अब तो उसकी पांच वर्षीय बच्ची भी है। परन्तु वह अपने प्रेमी को भूल नहीं पाई। अचानक उससे मिलने पर अन्तर्द्वन्द्वग्रस्त हो जाती है। यही अन्तर्द्वन्द्व कहानी का मूल कथ्य है।

अब तो अट्ठारह वर्ष हो गए, पांच वर्ष तो इस सुखी (?) गृहस्थ जीवन के भी हो गए। और आज अकस्मात् ही उस पार्टी में वह दिख गया था, उसका आदर्श, उसकी कल्पनाओं का सम्राट, उसके रोम-रोम में बसे उसके प्रथम और अन्तिम प्यार का नायक।'

सृष्टि की आंखों के सामने अंधकार छा रहा था। एक विचित्र प्रकार का रोमांच नसों को उमेठ रहा था। उसे लग रहा था, अब यहां एक क्षण भी ठहरना असम्भव है। वह तो अपराधिनी है। नवलकिशोर की अपराधिनी उसने तो उसकी भावनाओं की खिल्ली उड़ाई थी।

शादी करता भी कैसे ? उस जैसी नारी ने उसका सर्वस्व लूट कर उसे कंगाल, अकिंचन बना दिया था, वह उसकी अपराधिनी है, आज भी वह उसी क्षत-विक्षत हालत में है 'मैं आज भी पीड़ित हूं, घायल हूं, मैं नवल को प्यार करती हूं। सर्वस्व समर्पण के साथ प्यार करती हूं परन्तु...'

कहानी में नारी मनोभावना को बड़ी कुशलता से व्यक्त कर दिया गया है। काफी लम्बी कहानी है। अन्तश्चेतना और 'फ्लैश बैक' के साथ-साथ आत्मालोचन की शैली का भी उपयोग हुआ है, नारी के अपराधबोध को अच्छा स्वर मिला है।

4.2.3.7. ये तस्वीरें राज भल्ला के मार्च 1978 में प्रकाशित कहानी संग्रह 'ये तस्वीरें' में कुल 10 कहानियां हैं, जिनका मूल्यांकन निम्नलिखित है।

4.2.3.7.1. एक कैदी अजीब-सा कहानी खण्डान्वयन पद्धति में लिखी गई है। लेखिका के वर्तमान परिवेश से कहानी आरम्भ होती है। गुलाब के पौधे की टहनियों के कांटे बड़े कंटीले हैं, जिन्हें देखकर उसे रत्नो का गुलाबी चेहरा याद आता है। रत्नो का विवाह हबीब से हुआ है परन्तु सुहाग की रात ही उन दोनों के वियोग की रात हो गई है। रत्नो का पति हबीब पाकिस्तानी जेल में कैद है, वह पागल-सा हो गया है क्योंकि मानसिक स्तर पर वह भारत-पाक विभाजन को स्वीकार नहीं कर पाया। रत्नो हिन्दोस्तान में है तो उसका पति पाकिस्तान में । दोनों एक दूसरे का स्मरण करते हैं, दोनों पगला गए हैं। रत्नो इन्तजार करे तो किस सूरत का, पति का चेहरा तो उसने देखा तक नहीं। पति हब्बीब की स्थिति भी यही है।

चिंतन और कल्पना के बीच पुल-सा बना कर कहानी लिखी गई है। यही है। यद्यपि

कहानी का शिल्प उलझ गया है तदापि कहानी के बीच बीच पात्रों की मनोव्यथा के पैचज़ पाठक के हृदय को हिला देते हैं....। कहानी की भाषा, गठन और कथा नियोजन अच्छा है, कुछ वाक्य पात्रों की मनोव्यथा का सशक्त चित्रण करते हैं।

4.2.3.7.2. **यादों की परछाइयां** कहानी में दिल्ली में आकर रह रही लेखिका को पुंछ के लोग, उनके बीच का भाईचारा, घर-परिवार की जरूरतें और अपने बचपन के अनेक किस्से याद आते हैं। जिनके 'कान्ट्रास्ट' में उसने महानगरों में फैली आपाधापी और घोर व्यक्तित्वादिता का भी चित्रण किया है। कहानी का मूल कथ्य यही है कि आदमी अपनी जमीन से उखड़ना नहीं चाहता, बाप-दादा की सम्पत्ति, चाहे वह महल हो चाहे झोंपड़ी छोड़ना नहीं चाहता, छोड़ भी दे तो अतीत में खोया हुआ वर्तमान को भी ढंग से जी नहीं पाता।

कहानी में लेखिका ने हिन्दु-मुस्लिम भाईचारे और एकता के साथ-साथ मानवीय भावनाओं का अच्छा चित्रण किया है और पाकिस्तान की करतूतों का चित्रण भी किया है। कहानी धीरे-धीरे धर्म, जाति, सम्प्रदाय से ऊपर उठ कर मानवता की उदात्त भावना की ओर बढ़ती है। ''इन्सान तो कब के खत्म हो चुके हैं। इन्सान होते तो ये रोज हिन्दु-मुसलमान के झगड़े होते ?''

कहानी का कथ्य जितना उदात्त है, शिल्प उतना ही कमज़ोर। कहानी संस्मरण मात्र बन कर रह गई है। कार्य (Action) का अभाव कहानी में खलता है। हां, महानगरों की जिन्दगी पर अच्छा तीखा व्यंग्य है।

4.2.3.7.3. **पांचवीं और आखिरी मौत** व्यंग्य प्रधान कहानी है, कहानी क्या व्यंग्य ही है। कथ्य यह है कि आदमी अपने जीवन में अपनी जरूरतों के नाम पर अपने सिद्धान्तों के विरुद्ध बार-बार आत्मा का हनन करता है। सचमुच मरने से पहले लाला दीनदयाल चार बार मन ही मन मर चुका है। उसकी जिंदगी की त्रासदी का कारण है उसकी अपनी ही बेवकूफियां और लालच।

फिजूलखर्ची और सामाजिक कुरीतियों पर यहां तीखा व्यंग्य किया गया है। कहा गया है कि शारीरिक तौर पर जीवित दिखता व्यक्ति बार-बार लालच के कारण आत्मा की हत्या करता रहता है।

4.2.3.7.4. **क्या ये पागल हैं** कहानी में आदमी की कमीनगी पर चोट की गई है। आदमी स्वार्थ की पूर्ति के लिए अपने ही निकट सम्बन्धी को पागल घोषित करा कर पागल खाने में भिजवा देता है। डाक्टर और नर्सें पागलों की असलियत को जानते हैं परन्तु कुछ कर नहीं पाते, बल्कि पागल खाने में धकेले गए होशमंद आदमी को भी पागल कर देते हैं।

लेखिका व्यंग्य करती है कि पागलखाने के लोग पागल नहीं, पागल तो वे लोग हैं जो व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए अपने सगे-सम्बन्धियों को तनाव, दुर्व्यवहार, और नारकीय जीवन में धकेल रहे हैं और स्वयं ऐश करते हैं। इस तरह मनुष्यता के नाम पर मनुष्यता खत्म होती है, वैज्ञानिक जीवन के नाम पर अवैज्ञानिक जीवन आरम्भ होता है और सहजता, सरलता आदि

तनाव में बदल जाता है।

कुल मिला कर अच्छी व्यंगप्रधान कहानी है। कुछ तस्वीरों को एक साथ जुटाकर अपनी सोच द्वारा कहानी के तन्तु बुन लेने के रूप में कहानी का शिल्प विकसित हुआ है।

4.2.3.7.5. रजाई कहानी में ईमानदार अध्यापक की जीवन त्रासदी का सशक्त चित्रण हुआ है। सुखचैन को ईमानदारी की वजह से न सुख मिला न चैन। वह बच्चों के लिए पिछले कई सालों से रजाई नहीं खरीद पाया। परन्तु सुखचैन चाहकर भी ईमानदारी नहीं छोड़ पाता क्योंकि यह उसकी आदत बन गई है जबकि लोगों की आदत बन गई है बेईमानी! रजाई जब दस की थी तब भी महंगी, बीस की थी तब भी और अब 70, 80 की तो महंगी है ही।

कहानी आत्मस्मृतियों और आत्म-विश्लेषण के साथ-साथ विसंगत जीवन-स्थितियों के रूप में विकसित हुई है। दस खण्डों में विभाजित सशक्त कहानी है परन्तु बहुत बोलती है।

4.2.3.7.6. दो लाशें कहानी में शमशान घाट में जलती हुई चिता के पास निपट अकेला बैठा आदमी अन्तर्मन की उधेड़बुन में फंसा चित्रित है। सभी लोग उसे छोड़कर चले गए हैं। उसे लोकचर्चा से ज्ञात हुआ है कि मीनू ने ज़हर खाकर आत्महत्या की है। वह मीनू पर आसक्त था परन्तु फौजी जीवन में खूबसूरत तितलियों को देखता हुआ उसे भूल ही चुका था। अब वह पश्चात्तापग्रस्त है कि आर्थिक विसंगतियों और दरिद्रता के कारण ही वह उससे विवाह न कर सका। वह आत्मग्लानि में ग्रस्त है कि वही मीनू का हत्यारा है क्योंकि मीनू ने निर्धनताजन्य विवशता के कारण ही आत्महत्या की। मीनू की मौत का कारण वे तमाम व्यवस्थाएं हैं जिनमें धन को सर्वोपरि स्वीकारा गया है।

आदमी के अन्तर्मन और अपराधबोध को अभिव्यक्त करती हुई 12 खण्डों में विभक्त यह अच्छी कहानी है, जिसमें वातावरण और आत्म-स्मृतियों की बुनाई सुगठित और सुंदर है।

4.2.3.7.7. ये तस्वीरें बिखरी हुई शब्द-चित्रों की अलबम मात्र है, संस्मरण मात्र, जिनके माध्यम से व्यक्ति के साधारण जीवन में घुस आई विद्रूपता को अभिव्यक्त किया गया है। वह आत्मवादी प्रवृत्ति के कारण अपने-आप में ही बंद होकर रह गया है, प्रकृति का यह साथी प्रकृति से अब कोसों दूर है। अखबार में हत्या, डकैती, अपहरण, भ्रष्टाचार आदि के समाचार पढ़ते-पढ़ते आदमी ऊब जाता है। स्थिति यह है कि वफादारी, प्यार, हिफाजत, अपनापन और एहसानमंदी सभी बीते दिनों के शब्द होकर रह गए हैं, बदलते मापदण्डों के कारण सेवासिंह को अपनी घरवाली की अपेक्षा अपने कुत्ते मोती की वफादारी पर अधिक यकीन है। छोटे-छोटे स्वार्थों के कारण आदमी आदमी से पराया हो जाता है। ये सभी स्थितियां जिन्दगी की मरियल तस्वीरें हैं।

कहानी का शिल्प संस्मरणात्मक है, घटनाओं का बिखराव बहुत ज्यादा है। हां, कथ्य अच्छा है, मौजूदा जीवन स्थिति में बदल रहे मानव-मूल्यों और वैज्ञानिक उन्नति के बावजूद लोगों में पैदा हुई मानसिक और नैतिक निर्धनता पर करारा व्यंग्य किया गया है।

4.2.3.7.8. एक इश्तहार कहानी में आदमी के वर्चस्व की कीमत पर व्यंग्य किया

गया है। कहानी इस निष्कर्ष पर पहुंचती है कि जीवन छलना मात्र है, सम्बंध छलनामय है। नीरा पत्नी होते हुए भी पति की अनुपस्थिति में बूट पालिश करने वाले बेकार ग्रेजुएट रमजान के साथ प्रेम पींग झूल रही है। रमजान नीरा के पति का पुराना दोस्त था परन्तु बेवफा निकला, उसी की बीवी को फांस लिया।

कहानी व्यंग्यात्मक हो गई है। कहानी का शिल्प उलझ गया है, अपमानबोध के बावजूद कथा नायक निरीह-सा रह जाता है, व्यंग्य यह है कि घर के लोग चौराहों पर जा रहे हैं और चौराहों के लोग किसी न किसी बहाने से उन्हीं के घरों में घुस कर उनकी बीवियों को बरगला रहे हैं। कहानी अच्छी बन सकती थी परन्तु इश्तहार के प्रति और कुली के प्रति की गई बातें कहानी को उलझा देती हैं।

4.2.3.7.9. ये फाइलें और ये कतारें महानगरीय जीवन की धकमपेल पर तीखा व्यंग्य करती हुई कहानी है। विडम्बना यह है स्टैण्डर्ड आफ लिविंग के नाम पर हम लिविंग का अर्थ ही भूलते जा रहे हैं, महानगरों की जिन्दगी ऐसी है कि फाइलों से निकले तो राशन सब्जी या घर की अन्य जरूरतों की पूर्ति के लिए कतार में लग गए, कतार से निकले तो फाइलों में जा फंसे। सभी लोग अपने-अपने स्वार्थ के लिए जिस्म तक बेच रहे हैं। जिन्दगी की भाग दौड़ में हाथ, बांह, टांगें टूटने तक की परवाह नहीं, आदमी अंग-भंग हुआ-सा जी रहा है, अपने घाव भरने के लिए दूसरों को घायल करने से झिझकता नहीं।

पढ़े-लिखे लोग सभ्यता, संस्कृति को भूल कर वृद्धों को कतारों से बाहर धकेल देते हैं जबकि उनके पास की फाइल महीनों तक उनके आगे से नहीं सरकती। महानगरों के जीवन की चकाचौंध ने जिंदगी से जिंदगी का रस सोख लिया है। जिंदगी से तंग आया आदमी तीर्थ यात्रा पर निकलता है परन्तु वहां भी भक्तजनों की कतारों से छुटकारा नहीं मिलता, वहां भी धक्के ही मिलते हैं और प्रभु के दर्शन का टैक्स भी दिन-प्रतिदिन बढ़ता जाता है। अच्छी व्यंग्यात्मक कहानी है।

4.2.3.6.10. समझौता कहानी में हिन्दु-मुसलमान के नाम पर बंटे देश पाकिस्तान में अपने चार बेटों के शहीद हो जाने पर एक मुसलमान की मनोव्यथा का अच्छा चित्रण हुआ है। बंगला देश बनने से पहले युद्ध में एक लाख पाकिस्तानी सैनिकों ने सरैण्डर कर दिया है, उसे शंका है कि इतने सैनिकों का सेनापति भी सरैण्डर कर सकता है? यह सब धोखा ही तो है। यह समझौता इन्सान का इन्सान से समझौता नहीं, कुत्ता बिल्ली का समझौता है। वह व्यंग्य करता है कि पाकिस्तान बनने से पहले मुसलमानों को हिन्दुओं के खिलाफ भड़काया गया, लाखों हिन्दु मारे गए ।' फिर मुसलमान ही मुसलमान का शत्रु बन गया, भाई ने भाई का गला काट दिया, 'हिन्दोस्तान से टूटे ही थे तो जुड़ना भी तो जानते, पाकिस्तान के अन्दर ही एक और देश तो न उभरता।' बूढ़े अब्बू को लगता है कि आदमी के भीतर धोखेबाज शक्तिसिंह घुस आया है, जो महाराणा प्रताप को सिर ऊंचा करके इन्सानियत से जीने नहीं देगा।

आदमी की भीतरी कमीनगी पर अच्छा तीखा व्यंग्य है।

4.3. उपन्यास : आठवां दशक

इस दशक में केवल दो उपन्यास प्रकाशित हैं– 'दहकते अंगारे' और 'अनुराग विराग', जिनका मूल्यांकन निम्नलिखित है।

4.3.1. दहकते अंगारे क्षेमलता वख्लू ने 1967 ई० में 'झील और कमल', और 1968 ई० में 'कश्मीर की धरती' आदि दो उपन्यास प्रकाशित कराए हैं परन्तु ये दोनों उपन्यास फिलहाल अनुपलब्ध हैं, 'कश्मीर की धरती' उपन्यास को ज. क. कल्चरल अकादम द्वारा पुरस्कृत किया जा चुका है। इस दशक में उनका उपन्यास 'दहकते अंगारे' प्रकाशित हुआ है, जिसका मूल्यांकन निम्नलिखित है।

दहकते अंगारे 1979 ई० में प्रकाशित उपन्यास है, जो मूलतया देशप्रेम की भावना से प्रेरित है, इसमें देशोत्थान के लिए अपने भौतिक सुखों का परित्याग करके जूझ रही युवा पीढ़ी की मनोकांक्षा को चित्रित किया गया है।

जर्मनी में रह रहे डॉक्टर मनमोहन कौल का मन रहा है कि वह अपने देश की भौतिक उन्नति और विकास के लिए कुछ करे परन्तु देश की व्यवस्था कुछ ऐसी रही है कि उसे विदेश जाना पड़ता है। वहीं वह अपनी मेहनत, लगन, स्वाध्याय, मिलनसार स्वभाव और अपने मनमोहक व्यक्तित्व के कारण काफी सम्मान अर्जित कर लेता है । वह इतनी तरक्की करता है कि उसे नोबल पुरस्कार तक मिल जाता है।

जर्मनी में रहते हुए डॉ० मनमोहन कौल ने अपने बच्चों के मन में स्वदेश प्रेम की उत्कट भावनाओं को कूटकूट कर भर दिया है। बेटे अशोक और बेटी सुजाता से वह भारतीय जीवन में फैली अशिक्षा, निर्धनता, धन लोलुपता, रिश्वत, व्यक्तिगत सुख की कामना के कारण फैली अराजकता, धोखाधड़ी, परिवार–परस्ती पिछड़ापन आदि अनेक समस्याओं की चर्चा करता रहा है। उसे अनुभव हुआ है कि भारत में किसी साधारण आदमी की विद्या, बुद्धि, कौशल की कोई कद्र नहीं जो जितना अधिक पढ़ा लिखा है वह उतना ही बेकार है।

मनमोहन कौल अपने अतीत में खो जाता है कि कैसे वह स्वयं भी भारतवर्ष की उन्नति में हाथ बंटाना चाहता था, बड़े वेतन के लिए नहीं बल्कि वह देश के लिए काम करना चाहता था, परन्तु उसके विरुद्ध ऐसे षड्यंत्र किए गए कि वहां रहना हराम हो गया। तंग आ कर वह जर्मनी भाग आया। यहीं उसने भरसक काम किया, थ्योरी निकाली, नोबल पुरस्कार मिला....सिर ऊंचा करके जीने का अधिकार मिला फिर वह जर्मनी के गीत न गाए तो क्या करे? हां, वह अपने बच्चों के मन में भारतीयता, भारतीय संस्कृति के प्रति प्रेम की भावना भरता रहा है और वहां की निर्धनता और अज्ञानता को कुचलने का पाठ पढ़ाता रहा है। इसी कारण मैडिसन में पी-एच.डी. कर लेने के बाद भी उसका बेटा अशोक स्वयं को यूरोपियन नहीं मान पाता, अन्तर्मन से वह भारतीय ही है और अपने देश की अवस्था को सुधारने का संकल्प कर लेता है। वह अपने पिता को निरुत्तर कर देता है क्योंकि यदि देश के सभी इंजीनियर, वैज्ञानिक, डाक्टर भारत को छोड़ कर यूरोप में ही आ बसे तो वहां क्या रह जाएगा? देश उन्नति कैसे करेगा ? देश को सुधारना तो उसके नागरिकों का ही कर्त्तव्य है, हिम्मत हारने से तो काम नहीं चलता।

वस्तुत: डॉक्टर मनमोहन कौल भी मन ही मन चाहता है कि बेटा भारतीय जीवन स्तर को उन्नत करने का काम करे परन्तु मन ही मन डरता भी है कि वहां वह भी किसी षड्यंत्र का शिकार न हो जाए, वह नहीं चाहता कि अशोक को भी अपने बाप की तरह भारत में परेशान होना पड़े।

डॉक्टर मनमोहन कौल की पत्नी राजदुलारी को भी आशंका यही है कि उसके बेटे अशोक को भारत में कई तरह की समस्याओं से जूझना पड़ेगा और षड्यंत्रों से दो चार होना पड़ेगा, वह नहीं चाहती कि बच्चे भारत जाएं। उसे पति के प्रति गुस्सा भी है कि उन्होंने बेटे बेटी के मन में भारतीयता और देशप्रेम की भावना को बलवती किया। वह भी बेटे को समझाती है कि भारत में मनुष्य को मनुष्य की तरह जीने का अधिकार नहीं।

अशोक जानता है कि उसकी प्रेमिका सुजाता बेशक उसके प्रेम के गीत गाती फिर रही है परन्तु वह उसके साथ भारतवर्ष नहीं जाएगी क्योंकि वह आराम तलब जीवन जीना चाहती है जबकि अशोक ऐसे जीवन को तिलांजलि दे रहा है । वह सुजाता के सौंदर्य, सभ्य, सुशील स्वभाव के बावजूद अपने अरमानों का गला घोंटने के लिए तैयार नहीं। वह अपनी मां को उन्हीं भारतीयों जैसा मानता है जो विदेशों में रह कर छोटी-मोटी सुविधाओं में इतने मस्त हो जाते हैं कि अपने कर्त्तव्य तक को भूल जाते हैं और अपने ही देश के लोगों पर ऐसे हंसते हैं जैसे उनसे उनका कोई वास्ता ही न हो जबकि विदेशों में इनका अपना स्थान भी उच्च नहीं है।

डॉक्टर अशोक का विचार है कि पचपन करोड़ लोगों में से पचपन लाख लोग ही स्वदेश प्रेमी, उद्योगी, परिश्रमी हों और भारत को विकासशील बनाने के लिए कृत संकल्प हो जाएं तो देश की बिगड़ी बन सकती है। उसे लगता है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बावजूद कोई नहीं जानता कि देश को कैसे बनाना है बल्कि हर आदमी देश को ऊपर उठाने की अपेक्षा गिराने के प्रयत्न में लगा हुआ है, कभी भाषा, कभी प्रान्तीयता, कभी गौहत्या, कभी विद्यार्थी असंतोष आदि के कारण दंगे होते रहते हैं, एक पार्टी दूसरी पार्टी को पराजित करने में जितना समय, धन और परिश्रम खर्च करती है उसका आधा भी देश की तरक्की पर खर्च होता तो देश सुख सम्पदा से लहलहाता होता।

डॉक्टर अशोक की मां उसे भारत जाने से डराती है कि भारत की सरकार उसके कार्य में रोड़े अटकाएगी क्योंकि वहां कुछ इक्के दुक्के लोगों के हाथ में सत्ता है, वे लोग अपनी मनमानी करते हैं और बाकी के लोग उनकी हां में हां मिलाते हैं। परन्तु डाक्टर अशोक का विश्वास है कि वहां के लोग परिश्रमी हैं, उद्योगी हैं, वही वहां की उन्नति के लिए उत्तरदायी भी हैं, बस उन्हें कोई ऐसा नेता मिल जाए जो उन्हें सदियों की नींद से जगा दे, ऐसा हो जाए तो देश हरा-भरा हो सकता है।

भारतीय राजदूत सोहन लाल के घर में पार्टी है। सोहन लाल दूतावास के कर्मचारी और उनके परिवार अपने-आप को महान प्रदर्शित करने का यत्न करते हैं और ये लोग भारत तथा भारतीय जनता को हेयता की दृष्टि से देख रहे हैं, काफी डींगें हांकी जा रही हैं। उनका तो जीवन-उद्देश्य है आनन्द उठाना, यूरोपीय जीवन का मज़ा उठा लेना। सोहन लाल में रत्ती भर भी

भारतीयता नहीं, न भारत की इमेज की उसे चिंता है। राजदूतावास के सदस्यों की पत्नियां तो विदेशी चीजों को एकत्रित करने की होड़ लगाए हुए हैं, वे स्वदेश जाकर विदेशी वस्तुओं को अधिक दामों पर बेच कर पैसा कमाने के चक्कर में हैं।

राजदूत सोहन लाल की इकलौती बेटी कविता शक्ल-सूरत से साधारण भारतीय लड़की ही है परन्तु बहुत बड़ी सम्पत्ति की मालकिन तो है ही, वह भी अनेक प्रकार की विदेशी लड़कियों की तरह अपनी अदाओं के जरिए किसी सम्पन्न लड़के को फांस लेना चाहती है, उसकी मां भी उसकी मदद कर रही है, मां चाहती है कि किसी तरह कविता की गोटी डॉ० अशोक से फिट हो जाए। परन्तु अशोक को उसमें कोई रुचि नहीं क्योंकि वह जानता है कि कविता भी खोखली शान-शौकत और मामूली ऐश-आराम में फंसी रहना चाहती है।

डाक्टर अशोक विदेशों में रह रहे भारतीयों को प्रेरणा देता है कि यदि वे देश की उन्नति में हाथ बंटाएं तो देश समृद्ध हो उठेगा। भारतीय लोग भी सूझबूझ और क्षमता से काम लें तो भारत भी उन्नत होकर अपने गौरवमय स्थान को प्राप्त कर सकता है। वैसे तो कविता भी देश की उन्नति के लिए अपनी शुभकामनाएं व्यक्त करती है परन्तु वह न भारत लौट कर आना चाहती है और न ही अपनी सुख-सुविधा की आहुति चढ़ाना चाहती है।

डॉक्टर अशोक कौल भारत आ जाता है और जहां की बंजर नीरवता और हरियाली हीनता से दुखी होता है। लोगों की निर्धनता और आलस्य से उसका मन दुःखी होता है। वह कस्टम अधिकारियों में फैली रिश्वतखोरी से दुखी होता है। वह देखता है कि शहरों में कुछ लोग तो विकसित देशों के लोगों जैसी सुख-सुविधाएं भोग रहे हैं जबकि कुछ लोगों को दो वक्त की रोटी भी प्राप्त नहीं हो रही, ये सम्पन्न लोग ही देश की उन्नति में रोड़े अटका रहे हैं। जिस अस्पताल में उसे नौकरी मिलती है वहां भी गंदगी है, रिश्वतखोरी है, लोग रुढ़ियों से ग्रस्त हैं। वहीं अपने सहयोगी डॉ० सुनील से उसकी मित्रता हो जाती है जो अशोक की तरह ही रोशन ख्याल है परन्तु साधारण और निर्धन परिवार का होने के कारण उसकी उन्नति नहीं हो पा रही।

डॉक्टर सुनील उसे सचेत करता है कि यहां उन्नति प्राप्त करने के लिए किसी मिनिस्टर या कमिशनर का बेटा या दामाद होना जरूरी है। जहां व्यवसायिक उन्नति का कोई साधन नहीं, जहां तो कुनबा परवरी, परिवार-पक्षपात, फेवरिटिज्म नेपोटिज्म का बोलबाला है, काम करने वाले को टरका दिया जाता है, उसकी बात कोई नहीं सुनता, लोकतंत्र तो विदेशों को दिखाने और धोखा देने के लिए ही है। हां, यदि अशोक निर्विघ्न काम करना चाहे तो डॉ० भटनागर की बेटी से शादी कर के अपनी योजनाओं पर काम कर सकता है।

डॉ अशोक ने सुनील के साथ मिल कर एक संस्था बना ली है, जिसका उद्देश्य है इस बदहाली और भ्रष्टाचार के खिलाफ लड़ना। इस संस्था के डाक्टर, इंजीनियर, प्रोफैसर, छात्र और समाज-सेवक मिल कर देश के कोने-कोने में प्रगति की लहर पहुंचाना चाहते हैं। धीरे-धीरे डाक्टर अशोक और डाक्टर सुनील के फर्म का काम जोरों से चल पड़ता है। निर्धनों को पढ़ाना, अच्छा रहन-सहन सिखाना, स्वदेश सेवा, प्रेम की भावना का प्रसार करना तथा घूसखोरी खत्म करके देश की उन्नति के लिए अधिक पैसा खर्च करना और इण्डस्ट्रियल ग्रोथ बढ़ाने साधारण जीवन सुविधाएं जुटाने, पक्षपात खत्म करके होनहार और योग्य व्यक्तियों को प्रत्येक

क्षेत्र में बढ़ावा देना आदि संस्था का कार्य है। इसी उद्देश्य के प्रचार-प्रसार के लिए भाषण और अखबार आदि का सहारा लिया जाता है तो धीरे-धीरे उनकी संस्था को राजनीतिक कह दिया जाता है, उन्हें राजनीति में हिस्सा लेने के नाम पर धमकाया जाता है।

इसी बीच डाक्टर अशोक कौल की बहिन सुजाता भी डाक्टर बन जाती है और भाई के पत्रों से प्रभावित होकर वह भी भारत आने के लिए दृढ़ संकल्प कर लेती है। वह डाक्टर सुजाता से भी बात करती है परन्तु सुजाता के लिए अशोक से लगाव अतीत की बात हो चुका है, वह तो पीटर से विवाह रचा रही है। सुजाता इस निष्कर्ष पर पहुंचती है कि यूरोपियन छोकरियों के लिए प्रेम भी मिट्टी के खिलौने-सा खिलवाड़ है, इनके जीवन का प्रमुख उद्देश्य विलासिता है, विलासिता में त्रुटि आते ही वे कुछ भी कर सकती हैं। फिर सुजाता भी शिक्षा पूर्ण करके भाई का हाथ बंटाने के लिए भारत आ जाती है और जनकल्याण के कार्य में जुट जाती है।

डॉक्टर अशोक की संस्था में डॉक्टर सुनील और डॉक्टर सुधा महत्वपूर्ण सदस्य हैं। इन तीनों के इस्तीफे की बातें आग की तरह फैलने लगती हैं। इनकी देखा देखी अन्य अनेक लोग भी इस्तीफे देकर संस्था में शामिल हो जाते हैं। संस्था का काम गांवों, कस्बों, शहरों तक में फैलने लगता है, सदस्य दिलोजान से जन-सेवा में लग जाते हैं। धीरे-धीरे संस्था राजनीति के क्षेत्र में उतर आती है और अपना चुनाव मैनिफैस्टो स्पष्ट करती है। संस्था के उद्देश्यों का जन-जन द्वारा स्वागत होता है और डाक्टर अशोक की संस्था चुनाव जीत जाती है। अब संस्था के सदस्य देश के नवनिर्माण में कार्यकारी भूमिका निभाते हैं। देश दिन-प्रति-दिन नवोत्थान की ओर बढ़ता है। सही अर्थों में लोकतंत्र को विकसित किया जाता है। बड़े-बड़े कारखानों को नैशनलाइज कर दिया जाता है, निर्धनों को काम की सुविधा मिलती है, बैंकों से रुपया उधार लेकर छोटी-मोटी वस्तुओं का आविष्कार होने लगता है, स्त्रियों को कलाएं सिखाई जाती हैं। स्वदेशी और देशभक्ति आदि की भावना बल पकड़ने लगती है। वर्गगत भेदभाव खत्म किया जाता है सभी को जीने का बराबर हक मिलता है, हरिजन-दलितों का उद्धार किया जाता है और स्वस्थ प्रतियोगिता को बढ़ावा मिलता है। योग्य, ईमानदार और परिश्रमी लोगों को उच्च पद दिये जाते हैं। छुआछूत मिटा दिया जाता है, साम्प्रदायिकता कम कर दी जाती है, भाषा के झगड़े मिटा दिए जाते हैं, कस्बों में अध्यापकों और कर्मचारियों को भेजा जाता है, पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत चतुर्दिक उन्नति होने लगती है। घूसखोरी, पक्षपात, सिफारिश और बेगार तथा बेकारी जैसी कुवृत्तियों को समाप्त करने के उद्योग होने लगते हैं।

इसी बीच डॉक्टर अशोक कौल डाक्टर सुधा के प्रति विशेष आकर्षित हो जाता है। डॉ० सुधा भी अशोक के प्रति आकर्षित है परन्तु नारी शील के अनुसार संयम बनाए रखती है। दोनों में धीरे-धीरे पूर्ण परिचय हो जाता है, दोनों ही प्रांतीयता और क्षेत्रीयता की अपेक्षा भारतीयता के हामी हैं। फिर अशोक सुधा से विवाह का प्रोपोजल रखता है, जिसे सुधा सहर्ष स्वीकार कर लेती है। सुधा धूमधाम से विवाह करना चाहती है परन्तु अशोक इस फिजूलखर्ची वाली कुरीति को खत्म करके इसी पैसे को देश की उन्नति के लिए खर्च करना चाहता है। सुधा भी उसके सोद्देश्य से प्रभावित होती है। अंततः दोनों का विवाह साधारण ढंग से हो जाता है। अशोक के माता-पिता भी विवाह में सम्मिलित होते हैं। डॉ० मनमोहन कौल को अपने बेटे पर गर्व है, वह

भी भारत में ही रह जाना चाहता है परन्तु राजदुलारी अभी भी भारत में रहने के लिए तैयार नहीं। वह देश के लोगों को रफ और बदतमीज़ समझती है जो सोशल वैल्फेयर के काम करती हुई राजदुलारी की बेइज्जती कर सकते हैं। अंतत: पत्नी के समक्ष डॉ० मनमोहन कौल को हथियार डालने पड़ते हैं और वह वापिस जर्मनी लौट जाते हैं।

उधर डॉक्टर सुनील डॉक्टर सुजाता के व्यक्तित्व और देश-सेवा से बहुत प्रभावित है और मन ही मन उसे चाहता है। डॉक्टर सुजाता भी उसे पसन्द करती है परन्तु दोनों ही अपने मन को व्यक्त करने से संकोच करते हैं। डाक्टर अशोक डाक्टर सुनील को उत्साहित करता है तो सुधा सुनील के प्रेम-निवेदन से झेंप-सी जाती है और अंतत: खुशदिल से स्वीकृति दे देती है। दोनों के विवाह के अवसर पर पुन: डॉ० मनमोहन कौल और राजदुलारी भारत आते हैं। फिर राजदुलारी भारत में रहने के लिए तैयार हो जाती है। वह लोकसेवा करती है, पर्यावरण को भी संवारा सुधारा जाता है।

उपन्यास का अंत आदर्श प्रधान है बल्कि समूचा उपन्यास लेखिका का आदर्श लोक ही है। संवादों और लम्बी बहसों के रूप में कथानक विकसित हुआ है, कहीं-कहीं कल्पनातिरेक भी है। साधारण उपन्यास है लगभग एकांगी-सा।

4.3.2. अनुराग विराग डॉ० गंगादत्त 'विनोद' का उपन्यास 'अनुराग विराग' 1980 ई० में प्रकाशित हुआ। उपन्यास का कथानक 1942 ई० के भारतीय असहयोग आंदोलन की पृष्ठ भूमि पर विकसित हुआ है। दो सहेलियों मोहिनी और माधुरी के बचपन से युवा अवस्था तक के अंतराल तक़ उपन्यास फैला हुआ है।

माधुरी ने बचपन से ही अपने पिता जी की कुरबानियों की कहानियां सुनी हैं। पिता जी पर पुलिस द्वारा किए गए अत्याचारों को उसने देखा है। उसने पुलिस के हाथों अपनी मां, भाई और बहिन को मार खाते देखा है और उसने देखा है कि कैसे उसके घर का सामान ब्रिटिश पुलिस ने बाहर फैंक दिया था, कैसे उसके पिता के जिस्म पर लाठियां बरसाई थीं, उनके नाखूनों में आलपिनें घुसेड़ी थीं। वह कौन-सी यातना है जो उसके पिता जी ने नहीं सहन की फिर भी वह देश की स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करते रहे हैं।

पिता जी से प्रभावित माधुरी निश्चय करती है कि वह पढ़-लिख कर देश-सेवा में अपना जीवन लगा देगी। जब तक देश स्वतंत्र नहीं होगा तब तक उसे जीवन के सुख भोग का अधिकार नहीं। मोहिनी भी माधुरी के विचारों से प्रभावित हो जाती है और वह भी माधुरी के साथ-साथ रह कर स्वतंत्रता-संग्राम क़ा काम करने का संकल्प कर लेती है। दोनों ही आजीवन अविवाहित रह कर देशसेवा का बीड़ा उठा लेती हैं क्योंकि वे जानती हैं कि जब तक स्वार्थों और सुखों का बलिदान न करें स्वतंत्रता नहीं मिल सकती। जबकि विवाहित मनुष्य स्वार्थ के छोटे-छोटे दायरों में बंध जाता है और जो शक्ति उसे अपने देश के उत्थान में लगानी होती है, वह उसका दुरुपयोग अपने सीमित स्वार्थों में करने लगता है। लगभग यही विचार समूचे उपन्यास में विस्तृत है और विवाह तथा विवाहजन्य समस्याओं को देशसेवा के मार्ग में आड़े आने वाला मानती हुई माधुरी अपने संकल्प पर डटी रहती है।

लेखक ने छोटे-छोटे संवादों द्वारा लड़कियों की भावुकता, चिंतन और चारित्रिक पुख्तगी की अच्छी चर्चा की है और उनके निश्चय को महत्त्व दिया है। दोनों सहेलियों के चरित्र-विकास सम्बन्धी अनेक प्रासंगिक घटनाओं और कार्यकलापों की बुनावट द्वारा भी कथानक विकसित हुआ है।

माधुरी और मोहिनी प्रतिभाशाली छात्राएं हैं। छात्राएं मोहनी को 'बवण्डर' कहती हैं। सचमुच ही वह बवण्डर थी, उसमें विचारों की गंभीरता, स्मरण शक्ति की तीक्ष्णता, संगठन और संयोजन की निपुणता, वाणी की बुलन्दी, निडरता और भाषण-कुशलता आदि उसके विशेष गुण थे। मोहिनी बार-बार अपना संकल्प दुहराती है कि उसे देश की स्वतंत्रता और गुलामी को दूर करने की प्रेरणा देती रहना है।

विश्वविद्यालय में प्रवेश से पूर्व इन दोनों ने विदेशी शासन के विरुद्ध आपत्तिजनक भाषण दिए थे, वारण्ट जारी हुए तो इन्हें शांति भंग करने के आरोप में गिरफ्तार किया गया था, मुक्कदमा भी चला और चार छः महीने इसी झंझट में निकल गए तो जेल से लौट कर मोहिनी ने महिला समाज की स्थापना करके उन्हें संगठित कर लिया। पहले-पहल तो महिलाओं और ग्रामीण लोगों ने उसके विरुद्ध बोलना शुरू किया परन्तु जब वे अपने निश्चय पर टिकी रहीं तो लोग भी उससे प्रभावित होने लगे। एक बार भाषण के दौरान पुलिस की लाठियां चलीं, लोग घायल हुए, इन दोनों को भी चोटें लगीं परन्तु इन दोनों की हिम्मत, त्याग और देशभक्ति को देखकर लोगों में इनके प्रति पहले जैसी हेयतापूर्ण दृष्टि नहीं रही।

गांधी जी के क्विट इण्डिया मूवमेण्ट के कारण विश्वविद्यालय का माहौल काफी प्रभावित था, विदेशी शासन के विरुद्ध नारे लगते थे, नेता गिरफ्तारियां भी देते थे। छात्रों और छोटे-बड़े सभी लोगों में देश-प्रेम की भावना प्रबल थी, लोग अपनी सम्पत्ति, सुख और किताबों की परवाह किए बगैर गांधी जी के आंदोलन में कूद रहे थे।

मोहिनी को लगता कि छात्र व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए ही पढ़ रहे हैं, वे विदेशी प्रणाली की शिक्षा ग्रहण कर भी लें तो देश की गरीब जनता की नब्ज़ कैसे पहचानेंगे, यह पढ़ाई लोक-कल्याण और देश-भक्ति नहीं सिखाती। राजनीतिक क्षेत्र में आ गई मोहिनी को पुरुषों से बातचीत करने में संकोच नहीं रह गया था, वह उनसे ऐसे बात करती जैसे वह उसका पुरुष सखा हो। वह नेत्री के साथ-साथ कवयित्री भी बन गई थी।

महेश नामक युवक उसकी भाषण-कला और मधुर आवाज़ की प्रशंसा करता है तो धीरे-धीरे दोनों में पहचान बढ़ती जाती है। महेश भी राजनीति के प्रति आकर्षित है और राजनीतिक जीवन में आध्यात्मिक ज्ञान को भी निभाना चाहता है। मोहिनी, माधुरी और महेश में राजनीति, स्वतंत्रता-संग्राम और भावी ज़ीवन आदि से सम्बन्धित विषयों पर चर्चा होती रहती है। महेश के साथ मोहिनी बहन के समान खुले आम काम करती है और तीनों ने बी०ए० कर लेने के बाद देश-सेवा करने का निश्चय कर रखा है। परन्तु उन तीनों के रिश्तों को संदेह की दृष्टि से देखने वाले भी कम नहीं। मोहिनी को इस संदेह पर थोड़ा दुख भी होता है, वह तो सोचती है कि यदि लड़कियां भी स्वतंत्रता-संग्राम में कूद पड़ें तो पुरुषों से इतना कटाव और पलायन-वृत्ति क्यों रहेगी? उसका मन आदर्श और वासना के बीच के द्वन्द्व के प्रति काफी चिंतनशील

रहता है।

परन्तु महेश ने देश-प्रेम का आवरण ही चढ़ा रखा है। वास्तव में वह मोहिनी के रूप लावण्य के प्रति आकर्षित है। वासनाग्रस्त महेश के व्यक्तित्व पर टिप्पणी करता हुआ लेखक कहता है, 'जहां वासना के स्वार्थों की जंग लग जाती है, वहां सम्बन्ध की दैविकता नहीं रह जाती, प्रेम में झूठ, धोखा, मक्कारी और अविश्वास सूझने लगता है, अंततः महेश विवश होकर उन दोनों का साथ छोड़ देता है।

महेश यतीम था, अनाथालय में पला था, मारवाड़ी सेठ के वजीफे पर पढ़ रहा था, उसका तन मन दोनों प्यासे थे, इसी कारण वह मोहिनी के प्रति आकर्षित हो गया था। मोहिनी द्वारा अपमानित होने के बाद वह समझने लगा है कि वह राष्ट्रीय स्वतंत्रता के मार्ग के पीछे छूट गया है, वह पश्चात्तापग्रस्त है कि उसने अपनी चिर प्रेरणा-शक्ति और दृढ़ सम्बल मोहिनी को खो दिया है। वह देश के लिए मर-खप रही युवा शक्ति को देखता है कि कैसे साधारण-से दुकानदार ने चालाकी सहित वनमाली नामक देशभक्त लड़के को पुलिस के अत्याचार से बचा कर अपनी देशभक्ति की भावना को प्रस्तुत किया। इसे देख वह अपने पतन के प्रति और अधिक पश्चातापग्रस्त हो जाता है।

सन् 1942 का आंदोलन जोर-शोर से चला तो गांधी-टोपीधारियों की जान तो मुट्ठी में थी ही, हरेक राह चलते पर पुलिस संदेह करती थी। इस दौरान मोहिनी को कई दफा जेल की हवा खानी पड़ी, इससे उसमें और अधिक साहस बढ़ा, उसकी सेवाओं की धाक भी जमी। वह देश-सेवा, हरिजन-सुधार, नारी-सुधार के कामों में आगे बढ़ती गई।

एक दिन एक मैले चिथड़ों वाली रमा नामक युवती वहां आ पहुंची। मोहिनी ने उसकी दुःखगाथा सुनी तो पता चला कि धोखे से उसका विवाह क्षयग्रस्त रोगी से कर दिया गया था। रमा के चालाक ससुर ने उसके पति की बीमारी को छिपा लिया था। अतः रमा वैवाहिक जीवन का सुख नहीं भोग पाई थी कि उसका पति भी मर गया है। ससुराल वालों ने उसे मनहूस कह कर उस पर अनेक अत्याचार किए और उसके पुत्र को जारज संतान कहा गया।

मोहिनी और माधुरी दोनों ही रमा की दुख-गाथा सुनकर वैधव्य की पीड़ा से सहानुभूति प्रवण हो जाती हैं और रमा को देश-सेवा का पाठ पढ़ाती हैं कि यह वैधव्य, यह कलंक, यह दुर्भाग्य और यह कुलच्छन तुम्हें उस जीवन की सीढ़ी पर बैठे-बैठे नगण्य दिखेंगे। अब यह सब छोड़ कर अमरता की राह पकड़ो....जनता जनार्दन की सेवा करो, इससे बढ़ कर कोई दूसरा पुण्य नहीं, रमा इन दोनों नेत्रियों के पास रह जाती है परन्तु रमा के गांव के लोग इन दोनों पर आरोप लगाते हैं कि इन्होंने रमा को भगा लिया है। तब रमा पुलिस को बयान दे देती है कि गांव के लोगों ने उससे बहु जैसा व्यवहार नहीं किया है और वह स्वयं गांव छोड़ कर आई है।

परन्तु इन दोनों नेत्रियों का चुल्हा चौका सम्भालती हुई रमा ऊब जाती है, उसकी आत्मा पर बोझ-सा है कि वह भृत्य बन कर कुछ नहीं कर पाएगी, उसका जीवन निरर्थक होकर रह जाएगा, एक ही केन्द्र पर आकर जीवन भर के लिए रुक जाना आत्मा की हत्या है। इसी विचार के अन्तर्गत वह अपने जीवन का स्वतंत्र विकास करना चाहती है और निश्चय कर लेती है कि मोहिनी और माधुरी के गुस्से की परवाह किए बगैर वह उनसे स्वतंत्र हो जाएगी।

महेश को वह ब्रह्मचारी की वेशभूषा में देखती है और उसकी मधुर आवाज़, रूप माधुरी तथा यौवन के उन्माद से प्रभावित होकर मुग्ध-सी हो जाती है। दोनों में आखें चार होती हैं और दोनों ही परस्पर आकर्षण-पाश में बंध जाते हैं। दोनों में परस्पर परिचय होता है। महेश स्वयं को असफल प्रेमी बताता है और दुनिया में पूर्ण प्रेम चाहता है और बता देता है कि वह मोहिनी द्वारा ठुकराया गया है। फिर दोनों ही वासना के क्षणिक उन्माद में डूब जाते हैं और दोनों ही चाय की दुकान की केबिन में आलिंगनबद्ध हो जाते हैं। रमा महेश से मिलने से पूर्व ही अपनी स्त्रेण भावनाओं से आंदोलित होती रही है। जबकि स्वाभिमान ने उसे जीवन में किसी की सहानुभूति नहीं मिलने दी, न उसे किसी के समीप रहने दिया और न उसे सच्चा हमदर्द ही मिल पाया। महेश के यौवन, कर्मठता, भावुकता, प्रेम और चारित्रिक बल से प्रभावित होकर रमा उसी के साथ रहने के लिए तत्पर हो जाती है।

अंततः दोनों कश्मीर में गृहस्थ जीवन बसा लेने का निर्णय कर लेते हैं और वे जम्मू आ पहुंचते हैं। जम्मू में वे ब्राह्मण सभा में एक कुटीर लेकर रहने की स्थाई व्यवस्था करते हैं और यहीं बस जाते हैं। जब महेश को विद्यालय में अध्यापकी और ट्यूशनें मिल जाती हैं तो शहर में अच्छा खासा परिचय भी हो जाता है। तब वे किराये पर एक मकान ले लेते हैं और गृहस्थी जमा लेते हैं ।

महेश अपने विवाह को सामाजिक प्रामाणिकता देना चाहता है और दोनों लाहौर में आर्य समाज की रीति से विवाह सूत्र से बंध जाते हैं। परन्तु उनका दाम्पत्य जीवन सुख तीन वर्ष तक ही सुख और सम्मान पूर्वक बीतता है। अचानक रमा को ब्लडप्रेशर का प्रकोप होता है और उसका देहान्त हो जाता है। महेश का सुख संसार नष्ट हो जाता है और वह विक्षिप्त-सा किसी संन्यासी से मिलता है जो उसे उसका सारा अतीत कह सुनाता है। महेश उसका शिष्य बन जाता है और योग-विद्या सीखता है।

उधर मोहिनी और माधुरी का राजनीतिक जीवन काफी उन्नत हो चुका था, वे कई बार जेल जा चुकी थीं और अण्डर ग्राऊंड रह कर जन-जागृति का संदेश दे चुकी थी। 1942 का बवण्डर शान्त होने लगा था, अब मोहिनी और माधुरी को भी विश्राम की सांस मिल रही थी। किन्तु नेतृत्व स्तर पर उनका कार्यक्रम व्यस्त चल रहा था। एक दिन जवाहर जैकेट पहने चौबीस वर्षीय आकर्षक युवक माधुरी से मिलने आया। वह एम०ए० कर रहा था और स्वतंत्रता-संग्राम में जूझता रहा था। माधुरी पर इस युवक सिद्धेश्वर का विशेष प्रभाव पड़ता है और वह मन ही मन उससे प्रेम करने लगती है। उसकी दृढ़ प्रतिज्ञाएं, संयम, आदर्श और सिद्धान्त तथा कर्मठ अनुष्ठान प्रेम के हल्के झोंके से ही तिनके की भांति उड़ जाते हैं। अंततः माधुरी सिद्धेश्वर से विवाह के प्रति चर्चा करती है और धीरे-धीरे सिद्धेश्वर के मन को भांप लेती है। सिद्धेश्वर भी माधुरी के अन्तर्मन को समझ लेता है और उसका चुम्बन ले लेता है। थोड़े दुखी मन से मोहिनी उन्हें विवाह की छूट दे देती है।

फिर देश स्वतंत्र हो जाता है तो मोहिनी देखती है कि वह अप्रासंगिक हो गई है। वह विधवा आश्रम स्थापित करती है परन्तु चतुर्दिक असहयोग से तंग आकर संन्यास ले लेती है और जम्मू प्रदेश के पर्वतीय आंचल में रहने लगती है। यहीं एक संन्यासी है जो गुफा में ही समाधिस्थ रहता है, लोगों में उसकी विशेष चर्चा है, संन्यासिनी के वेश में मोहिनी भी उसे देखने

जाती है। संन्यासी महेश ही है, मोहिनी तो उसे नहीं पहचान पाती परन्तु वह संन्यासी उसे देख लेने के बाद फिर कभी गुफा से बाहर नहीं निकलता।

उपन्यास का कथानक संकुल नहीं हो पाया, कुछ-कुछ एकांगीपन के कारण भी उपन्यास में नीरसता आ रही है, लम्बी टिप्पणियां भी कथारस में बाधा डालती हैं। हां, 1940-48 ई० तक की भारतीय राजनीति और देश की स्थिति का आंखों देखा वर्णन हुआ है। अच्छा उपन्यास है।

4.4. नाटक, एकांकी नाटक : आठवां दशक

इस दशक में सुतीक्ष्ण कुमार आनन्दम् के नाटक ही प्रकाशित हुए हैं, जिनका मूल्यांकन निम्नलिखित हैं।

4.4.1. ज्योतिपर्व 'कांप कांप रहा चक्रबन्धु' में संकलित भावनाट्य 'ज्योतिपर्व' रेडियो कश्मीर जम्मू, से 1971 ई० में दीपावली पर प्रसारित हुआ है। यह भावनाट्य प्रस्तुत दशक का एक मात्र भावनाट्य है, जिसका मूल्यांकन निम्नलिखित है।

ग्राम लक्ष्मी का नया शृंगार हुआ है, खलिहानों की शोभा बढ़ी है, कृषकों की टोलियां देखने वाली हैं, ग्राम बालाएं किकली खेल रही हैं, ग्वाले मनोविनोद कर रहे हैं। यह ग्राम-लक्ष्मी का पर्व है क्योंकि यह कृषकों के श्रम का यह उत्सव फल है।

किसान और जवान धरती के सेवक और पहरेदार हैं, मेहनत के दावेदार हैं, इन का खून पंसीना सत्य और धर्म पर बलिहार है। परहित जींना, परहित मरना और हर बाधा से लड़ना हिल मिल कर आगे बढ़ना, मानवता की खातिर तन-मन वर देना आदि कर्म इन्होंने जन्म-जन्म से सीखा है।

यह लक्ष्मी का, शक्ति का, विजय का पर्व है। वास्तव में नारी ही लक्ष्मी है, शक्ति है। धन्य हैं वह यशोदा, कौशल्या, कैकई जिन्होंने राम, कृष्ण, भरत जैसे सपूत जन्मे, धन्य हैं लक्ष्मी बाई, सुभद्रा जिन्होंने स्वतंत्रता का मूल्य पहचाना। नारी की उत्प्रेरणा से शव भी शिव हो जाता है।

हर नारी मंगल मना रही है, हर प्राणी मस्ती में झूम रहा है परन्तु कुछ ऐसी भी हैं जो अबलाओं-सा जीवन बिता रही हैं, हर पल घुटा-घुटा-सा काट रही हैं। अनचाही यातनाएं भोग रही हैं।

समस्त सीमा प्रदेश, सारा बंग भाग आग की लपटों में घिरा है, मनुज शक्ति प्राण घातक अंगारों से जूझ रही है। जिंदगी धुआंधुआं है.....घाट घाट पर घात है, उखड़े उखड़े पाट हैं, पाप के ठाठ-बाठ हैं, यह कैसा अजीब काल चक्र है?

ये दीप भ्रातृ-भाव को समर्पित हैं। राम और भरत के नाते का प्रतीक हैं, ये दीप उन गृह-द्वार को समर्पित हैं जहां उज्ज्वल नेह के मंत्र गूंजते हैं। ये दीप ग्राम लक्ष्मी का आह्वान करते हैं जो परिश्रम के फल का वरदान देती है। ये दीप उस अमावस को भगाते हैं जो विकराल कलह, तम, पाप को मार्ग दिखाती है। ये दीप पाशविकता, दानवता को नष्ट करते हैं जो निरपराध, असहाय लाचारों पर शासन करती हैं। ये दीप हर उपेक्षित, उपेक्षिता के लिए समर्पित हैं।

प्रस्तुत भावनाट्य काव्य-नाटक की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता है, इसमें संगीत और अभिनय और कार्य की अपेक्षा ध्वनि का महत्व अधिक है। यह अभी तक मंच पर नहीं खेला गया, इसमें मंगलकामना चित्रित है। बंगलादेश की स्वतंत्रता का संघर्ष मानव मात्र की स्वतंत्रता का संघर्ष माना गया है। भाव-अभिव्यक्ति की दृष्टि से यह अच्छा भावनाट्य है।

4.4.2. आखरी पन्ने नाटक-संग्रह इस दशक का एकमात्र प्रकाशित नाटक-संग्रह है। इसके शीर्षक की वर्तनी 'आखिरी पन्ने' होनी चाहिए थी। इस नाटक-संग्रह में सुतीक्षण कुमार आनन्दम् के तीन नाटक संकलित हुए हैं, जिनका मूल्यांकन निम्नलिखित है।

4.4.2.1. पागल नाटक 1966 ई० में लिखा गया था परन्तु यह 'सांझे मंच पर' नाम से 1975 ई० में प्रकाशित हुआ। फिर 1976 में 'जम्मू कश्मीर सूचना विभाग' द्वारा आयोजित ड्रामा फैस्टिवल के अंतर्गत यह नाटक आल जे एण्ड के यूथ कल्चरल एसोसिएशन द्वारा 'सांझे मंच पर' नाम से मंचित हुआ।

'आखरी पन्ने' के 'दो शब्द' के लेखक विष्णु प्रभाकर ने 'पागल' को प्रतीकात्मक रंग एकांकी कहा है और 'क्लब' को मायावी संसार का प्रतीक कहा है । जिसमें मनुष्य अपना-अपना खेल खेलते हैं, ऊबते हैं और लड़ते हैं। पागल समाज की सही संरचना और व्यवस्था से परिचित है और सत्य के मार्ग को पहचानता है, इसी कारण वह मृत्यु का वरण कर लेता है परन्तु सत्य कभी मरता नहीं कोई और पागल उसकी जगह आ जाता है। लेखक व्यंग्य करता है कि आदमी मुर्दा-सा है जब तक वह सत्य नहीं पहचानता है।[7]

हजारों वर्ष पूर्व संयोजित किए गए क्लब के पीछे सपना था कि यह क्लब आदर्श परिवार बनेगा। इसी सपने के अंतर्गत इस क्लब को व्यक्ति, धर्म, ज्ञान और अर्थ-व्यवस्था दी गई परन्तु इस सब के बावजूद यह क्लब विचित्र-सा जीवन जी रहा है। क्लब का पहला सदस्य आकर दूसरे किसी का इंतजार करता रहता है कि दोनों कुछ खेलेंगे परन्तु यहां सभी अपना-अपना खेल खेलने में व्यस्त हैं। किसी की रुचि किसी अन्य से नहीं मिल रही। कोई किसी अन्य का मनोरंजक 'पार्टनर' नहीं बन रहा।

समाचार पत्र में पागल के बारे कुछ नहीं लिखा है क्योंकि इसमें संसार की बड़ी-बड़ी घटनाओं और बड़े लोगों के बारे लिखा रहता है। साधारण लोगों के जीवन की झलक भी मिलती है। परन्तु पागल साधारण लोगों में से भी नहीं है। जबकि वही क्लब का सबसे अधिक पुराना सदस्य है, क्लब के निर्माता का बेटा है, परन्तु साधारण लोगों में से भी नहीं क्योंकि वह पागल है, वह भी तो नहीं जो दूसरे लोग हैं। लोग बेकार के उपन्यास पढ़ते हैं, उसे कोई नहीं पढ़ता, उन्हें पागल का क्लब में आना स्वीकार नहीं क्योंकि पागल उन्हें व्यंग्यात्मक दृष्टि से देखता है, उनका उपहास उड़ाता है, उन्हें ताने देता है कि उन्हें स्वयं ज्ञात नहीं कि वे क्या हैं?

कोई नहीं सोचता कि वह पागल क्यों है जबकि उन सब की घुटन, उनके दुख, उनकी अशांति का आखेट वही है। वे लोग उसे धक्के मार कर निकाल देते हैं और समझते हैं कि जब तक पागल वहां है एक ऊब-सी रहती है। वे फिर खेलने का आरम्भ करते हैं परन्तु खेल नहीं पाते। कब तक खेलकर बोरियत भुलाएं, कब तक घिसे पिटे रिकार्ड की तरह बजते रहें? अकेले खेल खेल कर वे 'एग्जास्ट' हो गए हैं, और खेला नहीं जाएगा।

तभी तिलस्मी ढंग से एक श्वेत वसना चतुर्भुज स्त्री प्रकट होती है जिसके एक हाथ में धान, एक में पुस्तकें, एक में त्रिशूल और एक में पुष्प है । फिर वह वही स्त्री द्विभुजा रूप में परिवर्तित हो जाती है, वह भिक्षुणी है, जीवन की संचारिणी है, उससे कुछ भी गोपनीय नहीं। वह जानती है कि लोग जी नही रहे, जीवन के धोखे में मरणभोग रहे हैं, अकारण और असामयिक मरण क्योंकि उनकी गति मुर्दों की-सी है क्योंकि जब तक सही व्यक्ति को उसका प्राप्य नहीं मिलेगा, किसी को जीवन का संचार भी नहीं मिलेगा।

पगला उन्हें कहता रहता है कि सत्य सदा सत्य ही रहता है। सत्य का खण्डन करने के यत्न भले ही होते रहें। सत्य ही आस्तिक धर्म है, जिन्होंने सत्य के खोजी लोगों को मारा, उन्होंने ही उन लोगों की पूजा भी की, उन सभी के सत्यों को गले भी लगाया, उन लोगों को महापुरुष कह कर उनकी भी समाधियां बनाईं।

वस्तुतः हमारा यह क्लब समाज का प्रतीक है। जिसमें लेने देने का स्वार्थ ही हमें डुबो रहा है और हर कोई अपना-अपना खेल खेलना पसन्द करता है। खेलता है, ऊब जाता है, घुटन और खीझ से भर जाता है।

मानवता और आपस के भाईचारे के भाव का अभाव उसे पागल बना रहा है, यह कैसी ऐसोसिएशन ? कैसा पाना और कैसा गंवाना ? न एक दूसरे से सहानुभूति, न किसी से हाथ बंटाई, न किसी का दुःख, न किसी का दर्द। क्या इन्हीं बातों के लिए मानवता को सर्वश्रेष्ठ धर्म माना जाता है? कल वह पागल था उसे निकाल दिया, आज मुझ से हस्ताक्षर ले लिये, मुझे निकाल रहे हो। लेकिन मेरे बाद भी किसी का नम्बर आएगा।

नाटक में व्यक्तिगत लोभ, मोह, अंहकार और दिखावे की अंधवृत्तियों के कारण मानव-मूल्यों में पैदा हो रहे विघटन, ऊब, घृणा, और जीवनहीनता पर व्यंग्य किया गया है। अपनी अपनी डफली अपना अपना राग से उपजी विसंगत स्थितियों को असंगत क्रियाओं और आवाजों के माध्यम से व्यक्त किया गया है। सत्य की तलाश और सत्य की उपेक्षा की ओर भी संकेत किए गए हैं और सत्य के स्वरूप का उद्घाटन भी हुआ है। पात्र संख्या सीमित है, रंगमंच की दृष्टि से भी नाटक सफल रहा है। दृश्य परिवर्तन भी सुगमता से हो सकता है। अच्छा नाटक है। व्यंग्य, उपहास और दुविधा की बुनाई संवादों के माध्यम से अच्छे ढंग से हुई है।

4.4.2.2. एक मुट्ठी धूप 1975 ई० में लिखित 1976 में रेडियो कश्मीर, जम्मू द्वारा प्रसारित रेडियो नाटक है। 'एक मुट्ठी धूप' समाज में फैले भ्रष्टाचार, और साहूकारों के शोषण के विरुद्ध भविष्य के निर्माण में लगे निर्धन युवकों के संघर्ष की कथा है। जन-कल्याण की भावना तथा देश के नव-निर्माण के प्रति उत्सुक नवयुवकों के कार्यकलापों का आदर्शवादी शैली में चित्रण हुआ है। आदर्शवाद और भावुकता के बावजूद नाटक की घटनाओं का गठन स्वाभाविक है और सहजता के गुणों को समेटे हुए हैं। नाटक का उद्देश्य है-सारे आकर्षण के बावज़ूद अपने संकल्प को पूर्ण करने के लिए बढ़ते जाना, चलते जाना, विश्राम से पहले अपने संकल्प को पूरा कर लेना। राबर्ट फ्रास्ट की काव्य पंक्तियां 'द वुडज़ आर लवली, डार्क एण्ड डीप'......नाटककार की प्रेरणा-स्रोत बनी हैं।

जगदीश फर्स्ट पोजीशन में एम०ए० करके नौकरी करने का निश्चय कर चुका है। प्रौफै

सर उसे पी-एच०डी० करने के लिए उकसाता हैं परन्तु जगदीश अपनी आर्थिक स्थिति जानता है। वह मां-बाप की वृद्ध-अवस्था, साहूकार के ऋण और ट्यूशनज़ के अतिरिक्त अपनी आय का कोई साधन न होने के कारण नौकरी चाहता है। वह अपने व्यक्तिगत यथार्थ को पहचान रहा है और आगे की पढ़ाई को भावुकता ही समझ रहा है। प्रोफैसर संवेदनशील हैं और चाहता है कि जगदीश की कुछ मदद करे, परन्तु जगदीश स्वाभिमानी है।

पिता रामधन प्रसन्न है कि जगदीश एम०ए० में फर्स्ट आया है, इधर नौकरी लगी कि उधर नदी पार हुई, वह तहसीलदार बनेगा या जज, मुनसफ बनेगा तो साहूकार की ऐसी की तैसी हो जाएगी। परन्तु तभी साहूकार आकर ऋण की वसूली चाहता है जबकि रामधन का शरीर बूढ़ा हैं, जंग के दिनों एक टांग बेकार हो गई है बुढ़िया भी उसी की मोहताज है। सूद की रकम देता देता तो वह कंगाल ही हो गया है। अंततः साहूकार चांदी के हुक्के को ले जाता है और उसे दो माह की मोहलत दे जाता है कि नहीं तो मकान भी छिन जाएगा।

मीना का मन उसी दिन से भटक रहा है और सत्य की तलाश कर रहा है, जिस दिन जगदीश का उसके पिता से साक्षात्कार हुआ था। मीना जगदीश से विवाह का प्रस्ताव रखती है परन्तु जगदीश जानता है कि मीना बंगला, कार, नौकर-चाकर, धन आदि की सुख-सुविधाओं में पली है, वह जगदीश के साथ सुखी नहीं रह सकेगी। जबकि मीना जगदीश को ही महान सत्य समझती है, वह अपने बाप की कमाई का रहस्य जानती है और कार, बंगले और अन्य सुख- सुविधाओं में घुटन महसूस कर रही है क्योंकि उसके बाप ने यह सारी सम्पति छलकपट, शोषण और हेराफेरी से कमाई है। जब से उसमें सत्य असत्य का भेद करने की अक्ल पैदा हुई है, उसे पिता को पिता कहना भी अच्छा नहीं लग रहा।

जगदीश की सोच यथार्थवादी है। जब तक रोटी, कपड़े, मकान का जुगाड़ नहीं बैठता, वह शादी के लिए हां कैसे कह सकता है। जगदीश बहुतेरा कहता है कि समय की तेज धार पर उसका पल-पल छिल रहा है, रिस रहा है, सहक रहा है। परन्तु मीना तो उससे विवाह करने के लिए व्रत ले चुकी है। मीना अपने घर में अपने पिता की काली करतूतों के बारे सोचती है कि उनके अपराध कब तक छिपे रहेंगे। वह बाप के घर की आंगन भर धूप की अपेक्षा जगदीश के गांव की मुट्ठी भर धूप सुखकारी समझती है।

अंततः जगदीश निर्णय कर लेता है कि उसे मीना के बाप के पास नौकरी कर लेनी चाहिए। उधर मीना भी निर्णय ले चुकी है कि पिता के काले कारनामों को उजागर कर देगी और ऐसे ही अन्य अपराधियों को भी सामने लाएगी। और जब मीना को जगदीश के नौकरी पर आने की विवशता का पता चलता है तो उसे दुख होता है कि पिता की नौकरी करके जगदीश ने शरीर की नहीं मन की हत्या कर ली है। मीना उसे समाचार पत्र दिखाती है कि कुछ ही दिनों में सरकार सेठ जी और इनके साथियों की सम्पत्ति जब्त कर लेगी, इन्हें जेल भेज देगी तो हो सकता है कि जगदीश को भी लाभ हो, जगदीश की भूमि, बैल, सब कुछ वापिस मिल और जाए वह लैण्डलार्ड बन जाए। जब यह सब सच्च सिद्ध होता है तो जगदीश के मां बाप उसकी शादी के बारे चर्चा करते हैं। कुलवंत व्यंग्य करता है कि मीना जिसे चाहती अपना जीवन साथी चुन सकती थी, उसने तो जगदीश को चुना जबकि वह गांव जाने से पूर्व मीना का मन टटोलना तो दूर उसे देखकर भी नहीं गया, वह स्वार्थी है, उसका प्यार थोथा है, अब पत्नी बनाने आया है

जबकि अनहोनी घटित हो गई है, उसने अपनी सारी सुख-सुविधाएं स्वयं नष्ट कर डालीं हैं।, छापा पड़ा तो सेठ गिरफ्तार हो गया उसके साथी भी गिरफ्तार हुए, घर से समलिंग का बहुत सामान बरबाद हुआ और मीना ने जहर खा लिया, जहर खा लेने के बाद भी जगदीश का नाम लेती रही।

यह सुनकर जगदीश भाग खड़ा होता है। दोनों का भावपूर्ण मिलन होता है। जगदीश अपनी मूर्खता के लिए क्षमा मांगता है फिर दोनों भावुकता में बह जाते हैं कि उनकी भावुकता यथार्थ से कभी दूर नहीं रही। मीना जगदीश के साथ उसके घर चलने के लिए तैयार है। 'तुम भी तो कम भावुक नहीं जगदीश । मैं वहीं जाऊंगी जहां मुझे गांव की एक मुट्ठी धूप का सुख मिल सकेगा। हां जगदीश । गांव में मुझे खुली हवा में सांस लेने का अवसर मिलेगा...।'

अच्छा अदर्शप्रेरक नाटक है, भाषा और संवाद स्थिति के अनुंकूल हैं।

4.4.2.3. आखरी पन्ने रेडियो नाटक है जो 1975 ई. में लिखा गया तथा रेडियो कश्मीर, जम्मू से 1977 में प्रसारित हुआ। नाटक में निःस्वार्थ भाव से दूसरों की सेवा करने की प्रेरणा दी गई है। हस्पताल के वातावरण की अच्छी बुनाई हुई है। उपमा एक आदर्श नर्स है तो डाक्टर भी अपने व्यवसाय में कुशल सर्जन है, वह अपनी योग्यता के साथ-साथ ईश्वरीय अनुकम्पा को काफी महत्व देता है। विनोद प्रमुख पात्र है जो देश के भविष्य निर्माता अध्यापक के जीवन की रक्षा के लिए अपना गुर्दा तक दे देता है जबकि किसी अन्य को ऊंची से ऊंची कीमत पर भी गुर्दा देने के लिए तैयार नहीं। उसके इस बलिदान के फलस्वरूप उपमा उसे अपना प्यार देती है। विनोद को उसके बलिदान के फलस्वरूप जो धन मिलता है वह उसे भी अपंग लोगों के लिए दान कर देता है। भावुकता के बावजूद नाटक काफी प्रभावित करता है।

उपमा मरीज़ों को देख रही है। वह विनोद को 'अटेण्ड' नहीं कर पा रही। विनोद अब 'इम्प्रूव' कर रहा है, टैम्प्रेचर लगभग नार्मल ही है। वह उपमा को बातों में उलझा दिया करता है तो उपमा दूसरे मरीज़ों को अटैण्ड करना भूल जाया करती है। उसे विनोद अजीब आदमी लगता है जो कागज़ मंगवाता रहता है। उत्सुकता से वह उसे पूछती है कि वह क्या लिखेगा ? कहानियां पढ़ने में उपमा की भी काफी रुचि है, वह उन्हें पढ़ना चाहती है। 'परन्तु विनोद तो कराहटों, पीड़ाओं, संघर्षों और हार-जीत वे प्रसंग लिखता है, जो दिन के उजाले के साथ ही कोलाहल में डूब जाते हैं।

उपमा के चले जाने के बाद विनोद को लगता है कि वह उपमा को चाहता है। उधर उपमा भी विनोद के प्रति 'डिस्टर्बड फील' कर रही है क्योंकि विनोद 'एकस्ट्रा आरिडिनरी' युवक है।

उपमा से ही विनोद को पता चलता है कि एक मरीज़ की दोनों किडनियां खराब हो गई हैं, उसे बच्चों की बहुत चिंता है। उसे बचाने के लिए केवल एक ही रास्ता है कि उसे किसी दूसरे का गुर्दा लगाया जाए।

विनोद को जब पता चलता है कि मरीज़ अध्यापक है तो वह सोचने लगता है कि अध्यापक भावी राष्ट्र का निर्माता है, अध्यापक आदर्श व्यक्ति है, संस्कृति का पोषक है। साथ ही विनोद मन ही मन सोच रहा है कि जो स्वयं किसी अन्य पर निर्भर है वह उसके लिए क्या कर सकता

है। फिर विनोद संकल्प कर लेता है कि वह अध्यापक को बचाने का यत्न अवश्य करेगा, अध्यापक तो भावी पीढ़ी का गाइड है, राष्ट्र का निर्माता है, उसके लिए वह एक गुर्दा दे देगा।

विनोद कान्सेंट शीट पर हस्ताक्षर कर देता है तो डाक्टर उसकी इस्पाइरिंग भावना की प्रशंसा करता है। तभी कुछ लोग उससे गुर्दा खरीदने के लिए आते हैं। परन्तु विनोद खीझ उठता है कि वह अपनी किडनी इन्हें नहीं देगा, इस पर केवल उस व्यक्ति का अधिकार है जो बीमार है, मोहताज तड़प रहा है। 'प्रश्न उसके दो बच्चों का ही नहीं उन सैंकड़ों बच्चों का है जिनका वह अध्यापक है, उससे हमारे भावी राष्ट्र का निर्माण होगा।'

लोग विनोद को देखने आते हैं, उसका फोटो लेना चाहते हैं उससे पूछते हैं कि बलिदान की यह भावना उस के मन में कैसे आई ? विनोद तो इसे अपना कर्त्तव्य समझता है और अकेला होना चाहता है। विनोद के नाम पैंतालीस हजार रुपए के चैक आए हैं जो लोगों ने विनोद के प्रति प्रसन्न होकर भेजे हैं । विनोद यह धन डाक्टर को दे देता है कि वह 'डिसएब्लड हैण्डी कैप्ड' लोगों के लिए उपयोग करें।

उपमा विनोद को उपन्यास के बारे पूछती है तो वह कहता है कि आखरी पन्ने लिखने बाकी हैं। उपमा तनिक रूआंसी हो जाती है कि विनोद अध्यापक और जार्ज आदि की कमी तो महसूस करेगा परन्तु उपमा को भूल जाएगा। जबकि उपमा को लग रहा है कि आज वह कुछ खो बैठेगी, वह लाख यत्न करने पर भी अपने आप को छिपा नहीं पा रही।

डाक्टर चाहता है कि विनोद अपंगों के लिए बनाए जा रहे विंग का उद्घाटन करे परन्तु विनोद उनका निवेदन टाल रहा है। तब डाक्टर उपमा को संकेत करता है कि वह अपने प्यार का वास्ता देकर विनोद को बुला ले। उपमा निवेदन करती है "कि उपमा उसकी राह देखेगी सिर्फ उसकी राह। एक बार हां कह दो विनोद। तब विनोद खोया-सा कहता है। "तुम्हें ज्यादा प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ेगी उपमा, विनोद आ जाएगा। अवश्य आएगा।"

नाटक में भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों का अच्छा नियोजन हुआ है। अच्छा आदर्श प्रधान नाटक है।

संदर्भ

1.	प्रश्न तुमसे	आदर्श पियूष	वक्तव्य
2.	धुंधलके	दीदार सिंह	भूमिका
3.	निर्वासित	ओम गोस्वामी	भूमिका
4.	निर्वासित	ओम गोस्वामी	भूमिका
5.	निर्वासित	ओम गोस्वामी	भूमिका
6.	उल्कापात	बलनील देवम	भूमिका
7.	आखरी पन्ने	सुतीक्ष्ण कुमार आनन्दम्	दो शब्द

-0-

5

नवें दशक तक का जम्मू कश्मीर का हिन्दी साहित्य

नवें दशक में नये पुराने सभी लेखकों की रचनाएं प्रकाशित हुई हैं। विशेषकर कविता और कहानी के प्रकाशन जोर पर रहा है। इस दशक में प्रकाशित साहित्य का मूल्यांकन निम्नलिखित है।

5.1 कविता: नवां दशक

इस दशक में 1940 ई० से लिख रहे कवियों की रचनाएं भी प्रकाशित हुई हैं और बिलकुल नये कवियों की रचनाएं भी। इन सभी रचनाओं का मूल्यांकन निम्नलिखित है।

5.1.1 मरुस्थल श्री ओ०पी० शर्मा 'सारथी' के 1982 ई० में प्रकाशित काव्य-संग्रह 'मरुस्थल' में 47 शीर्षकहीन कविताएं संकलित हैं। कविता की अपेक्षा इसे विचार-क्षण का संग्रह कहना अधिक सुविधापरक रहेगा। इन विचार-क्षणों में कवि ने मैं और तुम, हार और जीत, जीत और हार, युद्ध और रणक्षेत्र, सड़क और सूर्य, शब्द और अर्थ, अर्थ और शब्द, मुखौटे और आदमी, इश्तहार और आदमी, आदमी का भीतर और बाहर, दृश्य और अदृश्य, आवाज़ और परिधि आदि अनेक शब्दों की आवृत्तियों के सहारे आदिम काल से चली आ रही मानव-जाति के निरर्थक संघर्ष की व्याख्या करने का उपक्रम किया है। इन विचार-क्षणों का मूल्यांकन निम्नलिखित है।

5.1.1.1 बिडम्बनाग्रस्त मानव का आत्म-विभाजन कवि को लगता है कि आदमी विडम्बनाग्रस्त है। चतुर्दिक् विसंगत वातावरण में जी रहा है। विडम्बनाग्रस्त-सा वह न जाने कितनी दुरभि संधियों से जूझ रहा है। उसका इतना अधिक विरूपीकरण हुआ है कि उसके हाथ, पैर, सिर, धड़, आंख, कान, मुंह, जीभ, पेट, आंत, मन, मस्तिष्क अलग-अलग हो रहा है। आत्मविभाजित ही नहीं वह आत्मभंजन की स्थिति में पहुंचा हुआ है परन्तु अनेक मुखौटे पहने, नाटकीयता और अभिनेयता के माध्यम से वह अपने आप को जीवित घोषित कर रहा है। व्यक्ति-जीवन के सिमटे फैले क्या-क्या आयाम हैं, यही इन कविताओं अर्थात विचार-क्षणों का मूल कथ्य है।

कवि ने मैं और तुम के धनात्मक और ऋणात्मक रूप के परस्पर द्वन्द्व के माध्यम से अपने अनुभवों, विचारों और अनुभूतियों को शब्दबद्ध किया है। 'सारथी' जी का कथन है "जिस सुख-सौंदर्य, स्वरूप, स्थिति, विकृति, विसंगति, यातना, पीड़ा और परिवर्तन का अनुभव 'मैं'

के माध्यम से मुझे है उतना ही दूर वहां तक है जहां तक मेरा 'मैं' और मेरी दृष्टि का माध्यम नहीं पहुंच सकते। मेरा विश्वास है कि जब तक कहने-लिखने वाले का दृष्टिकोण स्वयं उसकी दृष्टि का रूप धारण नहीं कर लेता तब तक वह किसी भी सूक्ष्म को स्थूल करने का दावा नहीं कर सकता।''[1]

मैं ही हर दिशा हूं, पांव बदलते बढ़ता गया हूं, सीम से असीम होता गया हूं, धरती का स्वर, स्वर में बैठा अक्षर हूं। विचार-सा, धरती के असीम परिवार-सा, धरती की छाती से चिपका हुआ बिछता चला गया हूं। चाहे विचार चले, चाहे पांव, धरती पर चला हूं, मैं ही तो निर्माण और निर्माण का विधान हूं, मैं ही तो शब्दों का अर्थ हूं, मुझमें से नींव, नींव में से अर्थ, अर्थ में से निश्चय, निश्चय में से निर्माण निकलना तभी संभव है जब अस्तित्वहीन हो कर तुम नींव में उतर जाओ।

वस्तुतः कवि 'मैं' में सभी धनात्मक शक्तियों को जोड़ता जाता है और ऋणात्मक शक्तियों को सम्भाल करके बीच के संघर्षों को रूपायित करने का यत्न करता है। उसका कहना है कि 'तुमने' मेरे ही आकार को दृढ़ किया है, तुम बेशक भुजा उठाकर कहो कि तुम ही संसार हो, आकार हो, धरती का शृंगार हो परन्तु यह सत्य नहीं, तुम पुरानी गंध को नये शब्दों के पात्र में एकत्र करके अपने ही सम्मोहन को बिछा, फैला रहे हो जबकि सम्मोहन के विचार बीच छूट जाते हैं, क्योंकि ढांचे खांचे निश्चय के होते हैं स्वरों, शब्दों अक्षरों और अर्थों के नहीं।

और 'मैं' को विश्वास है कि उसे मरना नहीं है, यदि मरना होता तो अस्तित्व की इतनी लम्बी यात्रा न करता, न पांव बनता न विश्वास के बाजू फहराता। वह यह भी जानता है कि हर क्षण महायुद्ध समाप्त होता है और हर क्षण महायुद्ध का जन्म होता है क्योंकि क्षण न ही शुरू होते है और न ही समाप्त। क्षण ही जीवन की अनुभूति है। इस तरह वह मर-मर कर जीता आया है, जीने के लिए मरता आया है। उसे तो मन्सूर-सा तीरों से छलनी होने के लिए छोड़ दिया गया है और वह तीर खाता चिल्लाता रहा है वह शोर मचाता रहा है कि उसे मारो, परन्तु अपने निश्चय उस पर न उण्डेलो, सभी की आवाज़ सभी से टकरा कर सभी को तोड़कर सभी में समा जाती रही है और उसे मरुस्थल की अपेक्षा सागर की छाती पर रेंगने के लिए सोचने को बाध्य किया गया है, वस्तु-स्थिति बड़ी घातक है-

तुम्हारे इश्तिहारों की नींव पर। बस गया एक जंगल-सा/दिखाई देता हुआ मंगल-सा/तुम सफल हो गए यह युद्ध छेड़ने में। जिसे मैं द्वार द्वार पहुंचकर। रोकना चाह रहा था।

(कविता नं० 10)

वह व्यंग्य करता है कि अब तुम्हें इश्तिहारों की आवश्यकता कम और मुझे इश्तिहार बनने की आवश्यकता अधिक है। परन्तु इश्तिहार लगाने वालों के आंख, नाक, मुंह, जीभ, पेट और पांव कहां दिखते हैं। मुझे तो तुम भी साथ नहीं दिखते। आंख कहीं भी आंख होने का दावा नहीं छोड़ती।

इस तरह कवि 'तुम' में सभी ऋणात्मक अर्थात् निषेधात्मक शक्तियों का समाहार करता चलता है और फिर मैं और तुम के बीच के संघर्ष को कविताबद्ध करने का यत्न करता है। इस संघर्ष में कवि की संकल्प-विकल्प और जय-पराजय की अनुभूतियां उभरी हैं और कविता को विचार की पृष्ठभूमि मिली है।

5.1.1.2 सत्ता और संघर्षचेतना कवि ने सत्ता को संघर्ष का कारण माना है, सत्ता को उसने सड़क भी कहा है और सत्ता को अस्तित्व भी माना है। वह कहता है कि आंखें रोशनी को तरसती हैं तो सत्ता बढ़ती है, आंखें सूखती हैं तो सत्ता बढ़ती है, पांव कट जाते हैं तो सत्ता बढ़ती है, सिर कहीं का धड़ कहीं का तो सत्ता बढ़ती है।

कवि व्यंग्य करता है कि तुम अपने ही कल्पित क्षितिज की बात दोहराते हो तो उस बात के गर्भ में तुम्हारी सत्ता की लालसा का अंश छिपा बैठा है। तुमने चाहा है कि मैं असली आंखों से नकली चेहरा देखूं और असली चेहरे पर नकली आंखें देखूं, मैं देखता रहा और तुम मेरे अस्तित्त्व पर अपना अधिकार आरोपित करते रहे और अन्धेपन के विधान में लिप्त होकर अन्धापन सजाने लगे, चेहरों के स्थान पर अपनी सत्ता की झलक चिपकाने लगे।

कवि ने जीवन के सत्य को मैला धब्बेदार होते हुए और सान्त्वना को अभिशाप में बदलते हुए देखा है।

कवि व्यंग्य करता है कि पेट की नग्न सत्ता हथियाने वाले सभी समय के विधान को पीछे छुपाने का प्रयास करते रहे हैं, क्योंकि उन्हें पता है कि शक्ति के तने बाजू के नीचे सभी संभव है।

अंततः इसी सत्ता के लिए 'मैं' और 'तुम' के बीच संघर्ष चलता है और 'मैं' को प्रतीत होता है कि उसे अनकिए अपराध का अपराधी ठहरा दिया गया है। ऐसी स्थिति में रोशनी का कोई महत्व नहीं रह गया–

> ''तुम्हारे किसी भी अपराध पर/ठहराया गया हूं मैं अपराधी।''
> आश्रय क्या चाहिए रोशनी को ? कागज़ों, इश्तिहारों के तर्कों की बैसाखियों वाली।
> अन्धी गुमनाम रोशनी/रक्षा नहीं करती, रक्षा मांगती है। (कविता नं० 16)

और कवचों की स्थिति भी लगभग ऐसी ही है, निश्चय-अनिश्चय के कितने दृढ़ कवच दिखाई देते हैं परन्तु कवच कभी रक्षा नहीं करता। देह, आकार, अनुभव, श्वास आदि को आकाश का सायबान भी छत्र-छाया का आभास तक नहीं दे पाता जबकि वह स्वयं विचार-सा फैल नहीं सका, आस्था-सा उग नहीं सका।

बिडम्बना यह भी है कि 'मैं' अभी दर्पण नहीं बन पाया हूं जबकि 'तुमने' स्वयं को दर्पण और बिम्ब घोषित किया है, टूटी आस्था और अटूट अन्धापन, अन्धी रोशनी और दृढ़ पलायन, अंगहीन पलायन और जटिल दिशा, दिशाहीनता और यात्रा का संकल्प न जाने कितने

ही बवण्डर उठ खड़े हुए हैं, विकृतियों के नाखून हर ओर बढ़े हुए हैं, विसंगतियों के खूंटे हर दिशा में गड़े हुए हैं।

विडम्बना यह है कि स्थूल दृष्टि की पगडण्डी अक्षरों और अर्थों के आपसी द्वन्द्व तक पहुंच नहीं पाती। जैसे विरोधों, विषमताओं और वेदनाओं के आधार पर ग्रन्थ लिखे गए हैं, 'मैं' और 'तुम' भी इन्हीं आधारों पर लिखे गए हैं। अतः चीरहरण का और चीरहरण के मंचों का मुखौटों का और मुखौटों के पीछे की अनीतियों का इतिहास टूटा-फूटा और विसंगत है।

5.1.1.3 आदमी का अन्तर्द्वन्द्व और बाह्य जीवन की दुरभि संधियां हर सभा और मंच पर, हर नीति, सुनीति, पुनीति के कदमों में चुभने और चुभोने के लिए आइनों को किरचें चाहिएं और यह आईना हर आंख में अनीति-सा हर माथे पर मृत्यु-सा, हर होंठ पर हवस-सा, हर छाती में छेद-सा, हर पेट में प्रलय-सा, हर आंख में आतंक-सा, हर कमर में कुमार्ग-सा छा गया है।

कवि आदमी की मुखौटा वृत्ति पर भी चोट करता है कि मुखौटा पहन लेने के बाद भी शरीर और उसके विधान और वृत्त नहीं ढंकते बल्कि पहनने वाला आप अधिक नग्न हो जाता है और उसके सिर, धड़ और आत्मा नंगी होती जाती है। आत्मा की नंगी बदसूरती नंगी होती जा रही है, अतः कवि आह्वान करता है कि सब मुखौटे मिल कर सबको आमूल नंगा कर दें क्योंकि मुखौटा पहनकर लड़ा गया युद्ध किसी दिशा को नहीं भागता। पलायन पर चोट करता हुआ कवि कहता है –

पलायन के नृत्य को और नग्न होने दो/पूर्णश्रृंगार करके नाचने दो/फिर अपने ही अंगों से घृणा हो/अपनी ही आंखों में लज्जा के खारे समुद्र बहने लगें।' (कविता नं० 43)

अभिनयों के सहस्त्रों पक्ष आपस में कटते-काटते, बंटते-बांटते, लड़ते-झगड़ते हैं, ऐसी स्थिति में कहां है अभिव्यक्ति की भूमिका ? कहां है भूमिका की अभिव्यक्ति ? बल्कि आंख-आंख में असंख्य दृश्य समा गए हैं, दृश्यों में अपने-अपने स्वार्थ के सूर्योदय हैं। विडम्बना यह है कि अभी हर आंख और दृश्य को विश्वास है कि दोनों में से कोई अन्धा नहीं है। और इस स्थिति में अपने ही नश्तरों से हर आंख अंधी है, जिसे परिवर्तन से पूर्व न मैं देख सकता हूं न तुम देख सकते हो। कवि को लगता है कि कहीं मैं संदेह, सप्राण, भूतशिराओं सहित अस्थिपिंजर की सभी भूमिकाओं सहित था ही नहीं, मैं और मेरा सभी कुछ अजनबी है।

कवि इसी आम आदमी से अपने आप को जोड़ लेता है और कहता है कि मैं ही तो युद्ध लड़ता आया हूं, मेरा ही पहिया दिशाभ्रम की खाई में गिर कर चलना उबरना भूल गया था, मैं ही लड़ा करता था, मैं ही मरा करता था, वह युद्ध तुम्हारा नहीं, आमूल मेरा था। जबकि न विजय दिखाई देती है न ही पराजय, जबकि तुम्हारी असलियत यह भी नहीं कि तुम इतिहास के किसी पन्ने को जन्म दे रहे हो।

मैं ही बनने से पहले विचार-सा, तुम्हारे होने से पहले धरा-खण्ड-सा हूं, मैंने तुम्हें अपनी ही जलती आग में झुलसते कई बार देखा है। जबकि मैं भी भ्रांति में रहा कि युद्ध हूं, रणक्षेत्र में हूं और तुम भी भ्रांति में रहे कि कहीं भी लड़े गए युद्ध की विजय तुम देखोगे। विडम्बना यह है कि मेरे विधान की भटकती आत्मा को कोई भी टूटी फूटी देह नहीं मिली और हम दोनों युद्ध के नाम पर, रणक्षेत्र के मूल के नाम पर अभिनेता के नाटक के मध्य लटक गए हैं और मध्य में से टूटी वस्तु का भाग्य मध्य में केवल लटकना होता है।

कवि आदमी की मंद पड़ गई जीवनी शक्ति की ओर संकेत करता है कि उसके भीतर की अग्नि अग्नि न होकर अग्नि के छल-मात्र का प्रमाण-मात्र है। अग्नि नाटक का संहार करती है, नाटक नहीं करता, नाटक कर रही अग्नि अग्नि नहीं छल मात्र है। इश्तिहारी अग्नि नृत्य को कर लेती है शिराओं में उष्णता का आभास नहीं भरवाती। अग्नि के स्थान पर अग्नि का कल्पित चित्र है और कल्पित की अनेक प्रतिछायाएं हैं । अत: हार जीत विवश है, अपाहिज है, पंगु है जबकि हर आंख चीरहरण के स्थल पर ही टिकती है। सिर और धड़ के बीच बिना साड़ी की आत्मा का दृश्य, सम्मोहन का चक्रव्यूह, ठण्डी अग्नि की आकांक्षा, बारी बारी हर अभिनेता की बारी और चीरहरण का सिलसिला लम्बा होता जा रहा है।

युद्ध और रणस्थल का सत्य शायद यही रहा है कि सेनाएं नहीं मुखौटे लड़ते आए हैं, शायद मुखौटे ही हारते और जीतते आए हैं। स्थिति यह है कि चेहरों का युद्ध चाहे कोई करवट ले या नहीं, रणक्षेत्र अवश्य करवट लेता है। कवि जानता है कि सूर्योदय ही रण की घोषणा करता है और सूर्यास्त बिन्दु से विशालता की ओर प्रस्थान की घोषणा करता है। स्थिति यह है कहीं युद्ध होता है दिखता नहीं, कहीं दिखता है होता नहीं। वस्तुत: युद्ध हमीं को लड़ रहा है, हमीं को चारों ओर से घेर कर, हर यातना और विसंगति का मुंह हमारी ओर फेर कर। कवि इस सत्य पर पहुंच कर कहता है कि जुड़ने और टूटने के क्रम के मध्य, अदृश्य को दृश्य करने का क्रम ही आवाज़ का पड़ाव और आवाज़ का अन्वेषण है और चीरहरण देखने दिखाने का प्रयास। आधुनिक जीवन की दुरभिसंधियों को समझने समझाने की प्रक्रिया को व्यक्त करती ये दुरुह कविताएं हैं।

5.1.2 स्वप्नमाला सरिता शर्मा के 1982 ई० में प्रकाशित कविता-संग्रह 'स्वप्नमाला' में 35 कविताएं हैं, जिनमें विडम्बना, विवशता, व्यक्तिगत असफलता, अक्षमता और निरर्थता की अनुभूतियों का परम्पराभुक्त छन्द और बिम्ब विधान में चित्रण हुआ है। जीवन-दृष्टि और बोध आधुनिक नहीं, संघर्ष की अपेक्षा यथातथ्य को विवश-सा अपनाए रखा गया है। इन कविताओं की समीक्षा निम्नलिखित है।

5.1.2.1 जीवन की परिभाषा अधिकतर जीवन के प्रति अपने विचार और अनुभूतियों को प्रस्तुत करते हुए कवयित्री ने माना है कि यह जीवन दिशाहीन यात्रा है, सभी प्राणी अनचाहे, अनसोचे, अनसमझे पथ पर आंख मूंदे चल रहे हैं। इस अनजान पथ पर गिरते-पड़ते, रोते-हंसते चलना ही पड़ता है, रुकना तभी है जब नियन्ता रोक दे, गलत शब्द की तरह हटा दे। इन

परम्पराभुक्त अनुभूतियों और विचारों को साधारण अभिव्यक्ति मिली है।

कवयित्री अलौकिक नियंता द्वारा प्रेरित इस जीवन को प्रभु इच्छा ही मानती है और उन्हीं विचारों और अनुभूतियों को दुहराती चलती है जो परम्परा से प्राप्त हैं, काव्य पंक्ति में किसी गहरे अनुभव की झलक नहीं मिलती, मात्र सतही अनुभूति और शब्द जोड़ है।

वस्तुत: जीवन तो सामाजिक व्यवहार है, पारिवारिक स्नेहादि का बंधन है, राग-द्वेष आदि का भाव-संसार है और इस पर पकड़ और उपभोग की आकांक्षापूर्ति की दौड़-धूप है परन्तु कवयित्री इस सारे क्रिया-व्यापार को किसी अलौकिक सत्ता के हवाले करके बिना किसी सोच, संघर्ष और कर्म-प्रेरणा के जीवन पर परम्परा भुक्त बातें कहती चलती है।

निष्क्रिय जीवन की निराशा, निविड़ अकेलेपन और त्रासद अनुभव के कारण जिस निरर्थकता को कवयित्री भोगती है उसका मूल कारण है जीवन की आध्यात्मवादी निरर्थकता। परन्तु जब वह जीवन को मानव-संघर्ष के रूप में पहचानती है और संघर्षशील हो उठती है तो मौलिक अनुभूतियों और नये भावपूर्ण बिम्बों का सृजन भी कर लेती है जबकि उसकी जीवन-दृष्टि अभी तक विकसित नहीं हो पाई और वह अनजाने पथ पर ही बढ़ती रही है।

5.1.2.2 नारी-जीवन की महिमा और व्यथा कवयित्री की कुछ कविताएं नारी-जीवन की व्यथा और नारी के महत्व से सम्बद्ध भी हैं। नारी-जीवन को वह नदी के समान समझती है जो शान्त भाव की मन्द चाल से चलती है परन्तु न जाने उसमें कितने अरमान छिपे हैं। मर्यादा में बंधी करुणा से लदी नारी रूपी सरिता में जब स्वाभिमान जागृत हो जाए तो यह नावें, पोत उलटा सकती हैं। कवयित्री नारी को अबला, आश्रयहीन और मात्र ललना नहीं मानती बल्कि उसके लिए नारी प्रेमभाव की दात्री भी है जो मान-अपमान से निरपेक्ष रह कर जग की पीड़ा और क्लांति का हलाहल पीती रहती है। वह नारी की सुरक्षा और उसके अरमानों की रक्षा का भी आह्वान देती है और नारी मन की कोमल अनुभूतियों, लाज और संकोच को भी कविता का विषय बनाती है। प्रणय में पगी नारी जब अपने मनपसंद चेहरे को देखती है तो मुस्कराती है, इठलाती है, शरमाती है, अपने-आप को कृत-कृत समझती है। तब उसकी देह खुशी से कम्पकम्पा उठती है। परन्तु जब उसके प्रणय-जीवन में अवरोध आता है तो वह प्रेमी को पाने के लिए अटल, अडिग निश्चय से बढ़ भी सकती है, ज़माने की सख्तियों की परवाह नहीं करती। नारी की अनुभूतियों और प्रणयजन्य प्रतिक्रियाओं का सशक्त चित्रण करती हुई, कवयित्री ने दुल्हन की सुहागरात का कुशल मनोविश्लेषणपरक चित्रण किया है। दुल्हन के हृदय में अतीत की स्मृतियां और भविष्य के गर्भ में छिपे गृहस्थ जीवन की मधुर कल्पना और आकांक्षाएं खिल रही हैं। सुहाग रात्रि में अपने मानसिक द्वन्द्वों और शारीरिक रोमांचों में घिरी दुल्हन का चित्र देखें –

> वह और भी सिकुड़ गई, /सिमट गई/क्योंकि छू गया है/किसी का हाथ/ विद्युत-सी कौंध गई है/सारे बदन में। (पृ० 39)

कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि जीवन की व्याख्या या परिभाषा से सम्बद्ध कविताएं साधारण हैं और परम्परा भुक्त विचारों और अनुभूतियों का पुनः प्रस्तुतिकरण मात्र है परन्तु नारी-मन से जुड़ी कविताओं में मौलिकता और अनुभूति प्रवणता का अच्छा रुपायन हुआ है।

5.1.3. उच्छ्वास श्रीमती कृष्णा गुप्ता 1940 ई० के आसपास से कविता लिख रही हैं। इनका काव्य-संग्रह 'उच्छ्वास' 1982 ई० में प्रकाशित हुआ है, जिसमें कुल 63 कविताएं संकलित हैं। 'हिन्दी साहित्य मण्डल' की गोष्ठियों की कविता की रीति-नीति और विषयवस्तु का प्रभाव कृष्ण जी के काव्य पर लक्षित होता है। प्रस्तुत संग्रह में उनकी सभी काव्य-प्रवृत्तियां मिल जाती हैं। इनकी काव्य-यात्रा का आरम्भ जीव, जगत, ब्रह्म से सम्बंधित दार्शनिक-आध्यात्मिक काव्य-सूक्तियों से हुआ प्रतीत होता है। ऐसी कविता की भाषा तत्सम शब्दावली से ग्रस्त है, भाव उलझे और दुरूहता से ग्रस्त हैं, रागतत्व की कमी अखरती है। इसी दार्शनिक ऊहापोह के अन्तर्गत वह जीवन और मृत्यु को पारिभाषित करने का यत्न करती हैं। इनकी कविताओं का मूल्यांकन निम्नलिखित है।

5.1.3.1जीवन की परिभाषा और अद्वैत का प्रभाव जीवन को पारिभाषित करती हुई कृष्णा जी के लिए जीवन सांसारिक लेन-देन का व्यवहार मात्र है, प्रकृति से जो कुछ मिल रहा है, उसके बदले में आदमी को भी कुछ-न-कुछ देना ही होगा। जीवन में सुख हैं तो दुःख भी झेलने होंगे और सदैव कर्मरत रहना होगा। उनके विचार से ब्रह्म अंशी है तो जीव अंश इस द्वैतवादी दर्शन को कवयित्री रहस्य-अनुभूतियों के माध्यम से व्यक्त करती है। परन्तु अंश (जीव) को वह प्रेमिका और अंशी (ब्रह्म) को प्रेमी मानकर अलौकिक परन्तु स्वच्छन्द शृंगार का चित्रण करती है। उनकी आत्मा परमात्मा से मिलन का निवेदन करती है। परन्तु यहां उनकी प्रणयानुभूति का सात्विक रूप ही अभिव्यक्त हुआ है। प्रभु की प्रणयिनी आत्मा मिलन-क्षणों में भी लज्जाशील है। संयोग क्षणों का लाभ तो प्रणयिनी ने नहीं उठाया, हां संयोग की कामना अनेक कविताओं में प्रकट हुई है। वह प्रेम-क्रीड़ा के भ्रम और लालसा के हिंडोले में झूलती रहती है और सांसारिक भ्रम और श्रम से उसके पांव डगमगा रहे हैं, पथ-ज्ञान भी नहीं, तृष्णाओं के तीव्र संघात उसे चकित कर देने वाले हैं।

कवयित्री ने अंश-अंशी के द्वैत-भाव को मिटाकर अंशी को अपने में ही विलीन कर लेने की आकांक्षा भी प्रकट की है। अंश-अंशी की परस्पर मिलन कांक्षा को उसने प्रकृति में भी देखा है और इन्हें परस्पर एकलीन भी माना है। वह स्वयं को अंशी (प्रभु) की अभिव्यक्ति का पर्व मानती है, अंशी में समा जाने के लिए उत्सुक है। वह माटी के इस तन में दिव्य सृष्टि के तत्वों को निहित मानती है। वह मानती है कि मन की इच्छा ने ही आवागमन के इस संसार को रचा है। जिज्ञासावृत्ति के कारण ही मन (जीव) पुनर्जन्म और पूर्वजन्म में भटक रहा है जबकि मृत्यु उसे गति देती रहती है।

स्पष्ट है कि कवयित्री कुछ नया नहीं कहती। वह परम्पराभुक्त विचार को ही पुनः प्रस्तुत

करती है कि अंशी कोई अपरिमित शक्ति है जो गोपनीय है, अव्यक्त और अस्पर्श्य है, अगोचर और निरत है, विरत, विश्रव्य और अगन्थित है। जो साकार नहीं परन्तु निराकार शक्ति है और संसार के रूप में साकार हो रही है। औपनिषिदक् ज्ञान की इस पृष्ठभूमि में लिखी ये रचनाएं 'कविताई' मात्र हैं और छन्द और शिल्प-सुधार का यत्न मात्र।

5.1.3.2कटु जीवन-यथार्थ और प्रभु-निवेदन का चित्रण यथार्थ की अभिव्यक्ति के लिए संकल्प और यथार्थ के प्रति अटल विश्वास के बावजूद कवयित्री का स्वर याचना का है, वह प्रभु से निवेदन करती है कि अपनी कृपा का मुहाना उन लोगों के घरों की ओर खोल दें, जो विवशता की वेदना से ग्रस्त हैं, अभावों, निर्धनता और रोगों ने जिन्हें गूंगा कर रखा है। खैर, इस याचना की ओर ध्यान न दें तो कहा जा सकता है कि चाहे वह बार-बार अरूप, निराकार को पुकारती है, चाहे पुराने मोहबन्ध से पूर्णतया छूटी नहीं फिर भी वह इन शब्दों के खोखलेपन को पहचान रही है। इसी पहचान से उसे नया काव्य-तत्व और काव्य-आधार मिलता है और वह क्रियाशील होकर परस्पर आदान-प्रदान करती हुई कविता में प्रभु के प्रति सुप्त समर्पिता नहीं रह जाती बल्कि उसकी क्रियाहीनता का लोप हो जाता है और वह कर्म के धरातल पर सक्रिय हो उठती है।

वह प्रभु से वाणी का वरदान मांगती है ताकि जीवन का हर एक कोना सुधा-सलिल में डुबा दे, प्रभु-महिमा को अलंकृत करने के साथ-साथ वह भूख, रोग, संताप और दानवता को मिटा दे और अपने हृदय-मंदिर में मानवता को स्थापित कर ले। उसकी मुंदी हुई जिज्ञासा को जब यह नया विषय मिलता है तो वह जन-जन के कल्याण की कामना करने लगती है।

उसे प्रतीत होता है कि यह जीवन ज़हर हो गया है, लोग चाँदी के सिक्कों के दीवाने हैं, इसी धन सम्पदा के प्रति उत्सुकता और आतुरता उन्हें घेरे रहती है, लोगों के हृदय में न करुणा की गंगा बहती है, न उसमें चरमबिन्दु (प्रभु) से तादात्मय की आकांक्षा है बल्कि जीवन के किसी वृहद् उद्देश्य से जुड़ने की अपेक्षा खाने, पीने, सोने, जागने की क्रियाओं में फंसकर उनका जीवन महत्वहीन हो रहा है। आदमी का मौजूदा जीवन छलावे से भरा है और हर पल ज़हर घुलता जा रहा है, वह धरती के जीवन की पीड़ा को मृत्यु की पीड़ा से अधिक दुःखद और घनी मानती है।

जो कवयित्री जीवन से विरक्त होकर प्रभु में विलीन होने के लिए उत्सुक थी, मोक्ष प्राप्ति की लालसा पाले हुए आकाशीय कविताएं लिख रही थी, वही अब जीवन-यथार्थ और जन-जन के दुःख को कविता में ढालकर जन-जन का कल्याण चाहने लगी है। परन्तु जीवन की त्रासदियों का सीधा-सीधा परिचय अभी भी वह नहीं कर सकी क्योंकि जब वह जीवन-संघर्ष में कूदती है तो अवाक् रह जाती है। फिर जब वह थोड़ा संभलती है तो जीवन में उठते-गिरते थपेड़ों और सुख-दुःख के परस्पर द्वन्द्व को देखती है, वह देखती है कि आदमी के चेहरे पर मुस्कान है तो हृदय में गहन पीड़ा है, आंखों में मुस्कान है तो मुख पर आश्चर्य भी है, हृदय में गुलाब फूटते हैं तो प्रताड़ना भी है।

वह मानती है कि जीवन की दुविधापूर्ण स्थितियों में आदमी को अपना रास्ता खुद बनाना होगा क्योंकि न तो कोई उसे राह दिखाएगा, न पांखुरियां बिछाएगा बल्कि उसे अपनी असफलता का दोष किसी और पर न मढ़ कर स्वयं कर्म के लिए आगे बढ़ना होगा। इस तथ्य के बावजूद वह संघर्षरत होकर भी अनचीन्हें ही देह त्याग देने को महत्व देती है।

हां, जीवन की समझ के साथ-साथ उसका कथ्य स्पष्टतर होता हुआ यथार्थ जीवन से जुड़ता जाता है और कृष्णा जी आश्वस्त हैं कि अंधेरे को ज्वाला की रेखा ही दूर करती है । स्पष्ट है कि कुल मिलाकर धीरे-धीरे उनकी कविताओं में आध्यात्मिक जाली झीनी पड़ती गई है।

कृष्णा जी ने सुख-दुःख को समदृष्टि से देखा है। वस्तुतः जब तक जीवन है सुख-दुःख भी रहेंगे और सपने भी जागते रहेंगे, इन्हीं सपनों और भावों के कारण आदमी ने ईश्वर की कल्पना की है और इस कल्पनाजन्य सृष्टि में उसे (आदमी का) संसृति की प्रतिछाया झलकती प्रतीत हुई है। स्वप्नशील जन-जन के प्रति कृष्णा जी करुण हैं और उन्हें संशय से निकाल कर स्नेहिल स्पर्श देने की कामना करती हैं। उनके परिवेश में फैले भ्रम और अंधेरे को वह प्रतिपल दूर करती हुई सोम-सुधा की तरह करना चाहती है। वह संयमित, अनुशासित, जन-जन के प्रति सात्विक सह-अनुभूति बांटना चाहती है। वह जिजीविषा और उदरपूर्ति को प्राणी मात्र की नैसर्गिक वृत्ति मानती है। वह देखती हैं कि भूख-तृप्ति के लिए गाय घास चरती है, खरगोश की ललौही आंखें धनिये की टहनी पर अटक जाती हैं, पिल्ले मां के स्तनों से चिपटे अद्वितीय तृप्ति का अनुभव करते हैं, भूख मिटाती गिलहरी का सौंदर्य अद्वितीय है। इस प्राकृत सत्य के बावजूद विडम्बना यह है कि आदमी का उदर भरता ही नहीं, उदरपूर्ति की इस नैसर्गिक वृत्ति के कारण मानव सर्वग्रासी बनता जा रहा है, इस संसार की सारी हलचल, मेहनत, मशक्कत, विज्ञान और प्रकृति उसी की उदरपूर्ति के निमित्त कार्यरत है परन्तु उसका यह उदर आज तक खाली है।

वह मानती हैं कि लोगों की अपनी कर्महीनता और पूंजीवादी व्यवस्था के कारण ही गंदी बस्तियों का जीवन नरक तुल्य बन रहा है जबकि धर्म, अवतार, पैगम्बर और उनकी पोथियां भी लोगों को वाग्जाल में उलझाकर कर्महीन बना रहे हैं। इस स्थिति से लोगों को उबारने के लिए यह प्रभु से ही कृपा-दृष्टि की प्रार्थना करती है। संघर्ष की प्रेरणा की अपेक्षा वह ईश्वरीय अनुकम्पा को ही महत्त्व देती है जो अपने-आप में ही भाव-कुहेलिका है।

वह यह भी मानती है कि मौजूदा व्यवस्था में युवकों, कृषकों, मज़दूरों की उपेक्षा हो रही है, उन्हें न मान-सम्मान मिल रहा है न अधिकार, जबकि यही लोग प्रगति के महल की नींव हैं, इन्हीं के चलाने से उद्योग धंधे चल रहे हैं, श्रम-सूत्र के यही सूत्रधार देश के भाग्य विधाता हैं।

जीवन की अनेक परिवेशगत विसंगतियों से परेशान जब वह दुविधाग्रस्त होती है तो उसकी आस्था डगमगा भी जाती है, उसे अपना सारा कर्म निरर्थक प्रतीत होने लगता है, उसे लगता है कि चल कर भी वह स्थिर ही है।

5.1.3.3 प्रकृति चित्रण कृष्णा जी ने प्रकृति का चित्रण भी किया है और प्राकृतिक सत्य-तथ्य

के माध्यम से उन्होंने जीवन-जगत के परस्पर रिश्तों की व्याख्या की है। छायावादी प्रतीकों, बिम्बों, काव्यभाषा तथा अन्य अलंकरण-उपकरणों का उपयोग इसी भावभूमि पर किया गया है। उनके लिए सावन की ऋतु मन-भावन है क्योंकि इस ऋतु में प्रकृति अंगड़ाई लेती है, पहाड़ों का सोया सौंदर्य जाग उठता है, करवट बदलती हुई धरती अपने हृदय के अंकुरों को सहलाती है।

प्रकृति के ऐसे अनेक बिम्बों का चित्रण करती हुई कवयित्री जीवन की सुख-समृद्धि के प्रति भी आशान्वित हो उठती है कि अब खेतों में खलिहान भरेंगे, उमस भरी दुपहरियों से छुटकारा मिलेगा। यहां कृष्णा जी टिटहरी का शोर, लोक जीवन की चहल-पहल तथा मिट्टी की सोंधी सुगन्ध नहीं भूली।

मनभावन सावन के बाद शरद् ऋतु की बर्फ़ानी सरदी का प्राकृतिक सौंदर्य उसे उत्प्रेरित करता है तो वह कल्पनाओं में खो जाती है। झिलमिलाती झील उसे सद्य-सन्नाता-सी दिखती है, गगन में ठण्डी-ठण्डी सूर्य-किरणों का गान थिरकता है। कोंपल की गांठें नया जन्म लेकर फूटती हैं, मन को ढाढ़स मिलता है और नवआशाओं का संचार होता है, धुन्ध रावण जैसी प्रतीत होती है जिसे (सूर्यवंशी राम ?) सूर्य ही भगा सकता है।

इन कविताओं में कृष्णा जी का रूझान अधिकतर प्रकृति के सुन्दर बिम्ब बटोरने, उगाहने की ओर ही रहा है जबकि जन-साधारण की सुख-कामना की जाली फीकी ही है। यहां प्रणयानुभूति से सम्बद्ध प्रकृति के बिम्ब नये न होते हुए भी रणन के कारण नए प्रतीत होते हैं। प्रकृति का मानवीकरण और रूपकीकरण भी अच्छा बन पड़ा है। प्रणय और प्रकृति का बिम्ब देखें -

शरद पूर्णिमा की यह क्रीड़ा। कितनी मुखरित कितनी नीरव /
जैसे नयनों ने पायल की। पी डाली हो झनन झनन रव । (पृ० 73-74)

5.1.3.4. नारी-भावना का चित्रण कृष्णा जी की कविताओं में वात्सल्य और ममता आदि से सम्बन्धित नारी-भावना का चित्रण भी हुआ है। ममता और वात्सल्य की लहरों से उनका रोम-रोम आंदोलित हो रहा है, ये लहरें आंगन के ओर-छोर को छू रही हैं और उसका अंग-अंग प्रसन्नता से पुलकित हो रहा है।

कवयित्री मानती हैं कि नवजात शिशु मां के स्वप्नों का साकार रूप है। शिशु में वह अपने रूप और प्यार को एक साथ देखती है, उसके पालन पोषण में न रातों की नींद की परवाह करती है, न अपने शृंगार संभाल की। किसी की आंखों में अपने शिशु की मुस्कराहट का प्रतिबिम्ब देखती है तो मां के हृदय में संगीत लहरियां उठ पड़ती हैं, शिशु की नयन ज्योति उसे शरद ऋतु की धूप जैसा सुख देती है, उसके चेहरे की लालिमा मंद बारिश की फुहार में घुले चन्द्रमा-सी प्रतीत होती है। शिशु के पालन-पोषण पर वह कोटि काम न्योछावर कर देती है। किसी युवती नारी के नख-शिख के सौंदर्य का वर्णन तो अनेक कवियों ने किया है परन्तु शिशु के नख-शिख की सौंदर्य झलक कृष्णा जी ने प्रस्तुत की है -

''नयन ज्योति शिशिर घाम. /सुखद कोमल तुद विराम।
मन्द मन्द पावस फुहार। झलके चन्द्र मुख ललाम।
मूक पर मुखर सुबोल। घोल रही मधुरघोल।'' (पृ० 41)

जब वह घुटनों चलने के लिए मचलता है तो मां का हृदय आह्लाद से छलक उठता है, कभी मां शिशु को वामन रूप विष्णु समझ लेती है जो बलिराज को छल रहा हो तो कभी स्वयं को जसोदा समझ लेती है।

अपनी इस सर्जनात्मक क्षमता पर पुलकित होती हुई वह वात्सल्य के इन क्षणों में निर्धनता की परवाह तक नहीं करती। वह तो यह समझती है कि हो सकता है कि इस शिशु के रूप में कोई महानविभूति धरती पर आई हो, हो सकता है कि इसके पग छूने के लिए धरती ललक रही हो । इसी कारण काम करते-करते भी मां की आंख शिशु पर ही रहती है। बच्चे की किलकारी का हृदय-आह्लादक चित्रण देखें –

''भर किलकारी मां के पीछे, आतुर आतुर कदम लघु, /सोच रहा है जैसे उसने /बिखरा डाला बहुत मधु।'' (पृ० 45)

इन कविताओं में मातृ-अनुभव की बेजोड़ मौलिकता और रागसिक्ति है।

5.1.3.5 दाम्पत्य जीवन की अनुभूतियां कृष्णा जी ने आध्यात्मिकता का पुट देकर दाम्पत्य जीवन का चित्रण किया है। इनकी इन कविताओं में अलौकिक सत्ता और प्रिय पति के प्रति भावनाओं का घालमेल हुआ है। शायद इसी कारण उनके दाम्पत्य शृंगार में संयोग की अपेक्षा विरह की संयमित अग्नि है। इन कविताओं में उनका पत्नी-धर्म का ज्ञान तो झलकता ही है, कर्मरत पतिव्रता नारी का समर्पण और पारिवारिक जीवन के भावान्दोलक चित्र भी मिलते हैं। परन्तु यहां नारी का पत्नीत्व तो उपेक्षित-सा है ही आध्यात्मिक प्रेम भी उपेक्षित-सा ही है, दो नावों पर सवार जैसी उसकी स्थिति है क्योंकि कोई अतृप्त मानवी अज्ञात, अलौकिक प्रियतम के प्रति मिलनोत्सुक है और मिलनाशा जुटाए इंतजार में बैठी हुई है।

वह सजधज कर खड़ी है परन्तु देवता ने द्वार भेड़ रखे हैं फिर भी वह अपने संकल्प-पथ से पीछे नहीं हटती, जबकि उसे भय और प्रलोभन के साये धमकाते हैं, मोहबंधन के धागे उसे जंजीरों की तरह बांधते हैं। वह अलौकिक प्रियतम के चरणों में समर्पित होकर ही शृंगार करना चाहती है और प्रियतम की बंदी होकर भी वह प्रियतम से प्रतिशोध नहीं चाहती क्योंकि प्रतिशोध उसके गृहस्थ को तोड़कर बिखेर सकता है। इसी विचार के कारण वह भावावेशजन्य करुणा को अनुचित ठहराती है और अपने हृदय में उज्ज्वल करुणा की अखण्ड ज्योति को प्रज्वलित रखने का संकल्प करती है। वह मानती है कि यही उज्ज्वल करुणा सृजनात्मक है, निर्माण की नींव है। कृष्णा जी हृदय में शीतलता, सरसता और पोषणता को महत्व देने वाली बच्चों का पालन पोषण करने वाली नारी को ही महत्व देती हैं, क्योंकि गृहस्थ नारी का यह त्याग ही महत्वपूर्ण है, यह कर्त्तव्य निर्वाह ही उसके लिए अध्यात्म प्रेम है। इस तरह कवयित्री

का आध्यात्मिक प्रेम लौकिक गृहस्थ जीवन में ढ़ल गया है, वह कहती है -

> "इस सुख के सागर में दुवको प्रवंचना में, अनुभूति का दर्द सहो अपने अंगना में.
> सृजन के कलश भरो, शिखा सी रहो, जलो। मत गौरव लो।" (पृ० 50)

ये अच्छी कविता एं हैं।

5.1.4. साक्षी सन्ध्याओं के 'निर्मल' विनोद के 1982 ई० में प्रकाशित गीत-संग्रह 'साक्षी सन्ध्याओं के' में 30 गीत और 11 दोहे संकलित हैं। इस संग्रह के गीतों में कवि की जीवनानुभूतियां प्राकृतिक सौंदर्य के परिवेश में अभिव्यक्त होती हैं। यहां कवि का सहज उल्लास, सौंदर्यानुभूति, मादकता, महीन मांसलता, ठिठकी ठिठकी झिझक, उदासी और अन्य अनेक भाव सुंदर सुगढ़ और तरल बिम्बों में चित्रित हुए हैं। प्राकृतिक सान्निध्य में कवि जीवन की विसंगतियों, पीड़ाओं, उपेक्षाओं और यान्त्रिकताजन्य ऊब को भी परखता है और कहीं-कहीं अकेलेपन की उदासी को भी झेलता है।

प्रस्तुत संग्रह में प्रकृति का सौंदर्य और कवि-दृष्टि की अनेक भाव भंगिमाएं सराहनीय हैं। हिन्दी कवियों पर श्याम परमार ने रंगान्धता का दोष लगाया था परन्तु कवि 'निर्मल' विनोद इस रंगान्धता से मुक्त हैं, प्रकृति के अनेक रंगों को तो वह पहचानता ही है, गंध भी अनसूंघी नहीं छोड़ता। प्रकृति के अनेक तेवर और भिन्न-भिन्न ऋतुएं कवि-मन को आन्दोलित करती हैं और वह रोमांटिक, ऐन्द्रिय अनुभूतियों को रूपायित करता चलता है। इन गीतों का मूल्यांकन निम्नलिखित है।

5.1.4.1 प्रकृति और अस्तित्ववादी मन:स्थितियां उदासी, अकेलापन और शहरी जीवन की यांत्रिकता से निकल कर कवि प्रकृति के प्रांगण में आता है तो प्रकृति उत्प्रेरक (Catalyst) की तरह उसकी अनुभूति को उकसाने लगती है और वह स्थिर बिम्बों का चित्रण करने लगता है। स्थिति यह है कि वह चीड़ वनों में आ पहुंचा है, अमराइयां पीछे छूट गई हैं, आड़ी, टेढ़ी, सर्पिल, सांवली पहाड़ियां उलझी-सी, बिखरी-सी कण्टीली झाड़ियां और मटमैले धूल सने झाड़ पीछे छूट गए हैं। कवि का सीधा सादा मन घुमावदार जंगल में आलस्य और उदासी को छोड़ कर उल्लसित हो उठता है। यहां उलझी-बिखरी झाड़ियों को शहरी जीवन की उलझनों के अर्थ में लें तो ये स्थिर बिम्ब काफी सार्थक हो उठते हैं।

इसी तरह जब वह ऋतु का निखरा-निखरा रूप देखता है तो मकड़ी के जालों के महीन तारों के बावजूद धूप अच्छी लगती है। वह रहट से ढरते हुए निर्मल जल को देखता है। वह कुहरे को वेध रही सतरंगी किरणें देखता है तो उसे कोई अशरीरी प्रभामण्डल अपने पर फैलाए प्रतीत होती है, लगता है जैसे कविता-तनवंगी पुलकित, कम्पित-सी होकर गीतों की अनुगूंजों को सहलाकर लौटा रही हो। प्रकृति के ये स्थिर बिम्ब कवि-हृदय में अनेक प्रकार की अनुभूतियां उद्दीप्त करते हैं और वह अनेक कल्पनाओं में खो कर अनेक प्रकार की उपमाओं, उपमानों की कल्पना करने लगता है। इन्हीं स्थिर बिम्बों के माध्यम से कवि ने शहरी जीवन की ऊब, घुटन,

उदासी, अजनबियत, अकेलेपन की मन:स्थितियों का अच्छा नियोजन किया है। हृदयगत वृत्तियों के आधार पर बिम्बों का वर्गीकरण करें तो उल्लास आनंद के बिम्ब कम ही हैं बल्कि त्रासद मन:स्थितियां के बिम्ब काफी अधिक हैं। विशेषकर ग्रीष्म की तपन के कारण अगिया बैताल मौसम बहुत पापी प्रतीत होता है, यहां अनुभूति और मौसम का तीखापन एक साथ व्यक्त हो रहा है।

ग्रीष्म की आग कवि को तड़पाती है तो बसंत ऋतु उसकी कामनाओं को भड़का देती है। मौसम अनंग (बसंत) है जो भुजंग (बाइबल का शैतान सर्प) की तरह उसकी वासनाओं को उकसाता है, कल्पना-अप्सरियां नृत्यमग्न हो जाती हैं, मौसम रंगमय हो जाता है, मौसम निहंग भी है दबंग भी, जो कवि की वासनाओं को उकसाता है। इस तरह प्रकृति के अनेक रूप कवि की कोमल अनुभूतियों को उद्दीप्त करते हैं और वह बड़ी बारीकी तथा शब्दों की कमखर्ची से उसे पूर्णतया अभिव्यक्त करने में सफल भी होता है।

नवीन भावबोध से जुड़ी अनेक मन:स्थितियों-बेचैनी, उदासी, विसंगति, अकेलापन, उपेक्षा आदि से उपजी पीड़ाओं-को भी इन गीतों में अभिव्यक्ति मिली है। मौजूदा जीवन स्थितियों में आदमी के मन के भीतर जैसे कांटे ही कांटे उग आए हैं, भीतर उग आए नागफनी के इस जंगल के कारण दृष्टि बिम्ब बिंधता है, मेड़ों पर गाये जाने वाले बारह मासे शूल की तरह चुभते हैं, ऐसी स्थिति में कल्पनाओं के कोमल परन्तु घायल पांव कहां तक चल सकते हैं। उसके लिए सन्ध्याओं की ठोस उदासी से बच पाना, खुद को समझा लेना, असंभव होता जा रहा है, मन के भीतर-बाहर उमस ही उमस है। कवि यहीं पर त्रासद और मानवघाती संत्रास को झेलता हुआ अनुभूति पर लग रहे दंश को अभिव्यक्ति प्रदान करता है कि जिंदगी उसे रास नहीं आ रही, न सन्नाटा टूटता है, न रीतापन रीतता है। काश कोई भूला-भटका सावन बरसता और उसे मृदुल घास गुदगुदा देती, भीतर की उदासी से उसे छुटकारा मिल जाता। उसकी भटक रही चेतना को पलभर का विराम नहीं मिल रहा, किसी भी तरह उससे औपचारिकताएं नहीं निभ पा रहीं। भटकन के त्रास को अभिव्यक्त करता हुआ कवि लिखता है –

> ''बांझ कामनाएं /जो छिपी रहीं /अन्तर में /मुंह ढके/
> सुबक रही-उदास /यातना देती /खालीपन /किस तरह/
> भरें /पत्तों-से /किस तरह /झरें ?'' (पृ० 70)

किस्मत में नीली (आशा) रोशनियां लिखी ही नहीं गईं और सभ्य नगर की ज़ोर जबरदस्ती की झूठी पहचानें उसे निवार्सन भोगने जैसी पीड़ा दे रही हैं। बंजारा मन दु:ख को व्यक्त नहीं कर पा रहा जबकि यह शब्दातीत, अव्याख्यायित दर्द कहीं राजयोग है, कहीं पारस है, कहीं सुलतान है तो कहीं ऐसा जटिल बिम्ब जिसका मर्म पाना कठिन है।

अंतत: कवि संकल्प करता है कि अभी तो उसे अनेक गीत लिखने हैं, अभी तक उसकी संवेदना में नया गीलापन है, भावना अभी भी सूर्यमुखी है, उसका विवेक उसे प्रेरित कर रहा है कि प्रकृति के जो नये चित्र अभी-अभी देखे हैं उन्हें शब्दार्थ और अनुभूति से पिरो दे। उदाहरण

देखें

"कितने ही चित्रों में /रंग /नये भरने हैं /मेरी है टेक-अभी कई एक /गीत मुझे लिखने हैं /अभी कई एक-अभी कई एक।" (पृ० 86-87)

5.1.4.2 प्रणयानुभूति और नारी-सौंदर्य इनके गीतों में प्रणयानुभूति और नारी सौंदर्य का परस्पर संयुक्त और सघन बिम्बीकरण हुआ है। इन बिम्बों में कवि की रोमांटिक दृष्टि की झलक भी देखी जा सकती है। रूढ़ि विरोध, स्वच्छन्द अभिव्यक्ति, मांसल अनुभूति और स्वातंत्र्य कामना आदि अनेक रोमांटिक वृत्तियां इन गीतों का रूपायन करती हैं। सावन की रिमझिम में भीगी हुई प्रकृति का बिम्ब देता हुआ कवि प्रणयानुभूति को बुन लेता है। मौसम और भीगा हुआ नारी सौंदर्य देखें -

"भीगे अंगों से /फूटे गौराई /गोरी /गीली साड़ी में /सकुचायी /गीत-भरी संध्याएं / सुन्दर-रसमय /गाते साजन- /हिम-हिम /रिमझिम-रिमझिम।" (पृ० 17-18)

फिर जब प्रणय-नदी उमड़ कर उतर जाती है तो कवि उमगते सौंदर्य को लहरों के ज्वार में देखता है। इसी तरह के अनेक प्राकृतिक क्रिया-व्यापारों में वह ठहरी-ठहरी प्रणयानुभूति को संयोजित कर देता है। प्रणय-कामना में ठिठकी-सी प्रणयिनी के सौंदर्य का भी वह चित्रण करता है।

दोहों में भी प्रकृति और अनुभूति की उद्दीप्ति का अच्छा नियोजन हुआ है, यहां श्यामल छांह और गोरी धूप दोनों ही सुन्दर सुरूप और सहज हैं। प्राकृतिक-सौंदर्य से आंदोलित कवि का बनजारा मन आठों याम किसी अभिराम सौंदर्य को खोजता रहता है। शाम सूरज का नाम लेकर विरह में रो रही प्रतीत होती है। संगमरमरी चांदनी में कवि मिलन-सुख भी चाहता है। नागफनी का स्मरण करके वह विरह के कांटों की चुभन नहीं चाहता, न ही किसी अन्य विरह-पीड़ा को जगाना चाहता है क्योंकि वह जानता है कि विरह की बिजली से पत्ता-पत्ता जल जाता है। वह प्रकृति और सौंदर्य के आकर्षण के उद्दाम प्रवाह में वह छला-छला-सा बह भी जाता है, गुलमोहर के सौंदर्य से छला, सौंदर्य-धारा में बहता हुआ मिलन के सपनों को साकार हुआ देखता है तो कह उठता है -

श्यामल कली गुलाब की, मृदुल-सलोनी देह /नेह-गन्ध-उन्मत्त हम, हुए विदेह, सदेह।

(पृ० 91)

प्रकृति के इन मोहक और सुन्दर दृश्यों में कवि की अनुभूतियों का बड़ा बारीक और अर्थ स्फोटक संयोजन हुआ है।

प्राकृतिक परिवेश में कवि को अनेक प्रणय प्रसंग याद आते हैं। जब गोरी गोरी धूप के माथे पर बादल की सांवली जुल्फ बिखरी दिखती है तो आंखों में कोई रतनार रूपहला डोरा

लहरा जाता है, चेतन पर कोई तरल-सा भाव छा जाता है। यूनिवर्सिटी के कैम्पसी वरांदों में शाम क्या झुकती है कि सन्नाटे जवान हो जाते हैं, संवेदनाएं गूंगी होकर रह जाती हैं, वर्फवारियों के क्षण कवि-हृदय में अनेकों एकान्त मसान बो जाते हैं। बीते क्षणों का यह स्मरण उदासी और व्याकुलता में सराबोर हो उठा है, कवि प्रणय-क्रियाओं के अनेक स्मृतिजन्य बिम्ब उरेहने लगता है।

उधर प्रेमिका जब गुलमोहर पर लाल गदराये फूलों के गुच्छे देखती है तो वह अपने गदराये हुए प्यार की स्मृति में खो जाती है। मयूर-मयूंरी गहराये घन को देखते हैं और नाचते हैं परन्तु प्रेमिका के विरही नयनों को सपनों का अंजन नहीं भा रहा। वह बेचारी-सी न कुछ कह पाती है न उपालम्भ दे पाती है। मन में तो बस यही एक साध है कि प्रेमी उसकी बंद मुट्ठियों को खोले। हाथों में वह मेंहदी रचाये उसकी मिलन-साधें पूर्ण हो जाएं। समर्पण की तीव्र आकांक्षा प्रस्तुत गीत को अतिरिक्त सौंदर्य प्रदान करती है –

"तू जो आये /तो मैं /पूजा-धुन-सी /बजूँ /सिन्दूरी /सन्ध्या-सी /तेरे हित / मैं सजूं / आंचल की छाया कर दूं /तू सुख पाये /अधिक क्या कहूं ? गुलमोहर पर गुच्छे लाल; /सब गदराये /अधिक क्या कहूं ?" (पृ० 73)

उधर प्रियतम भी मोहजाल से छूट नहीं पाता। गुलमोहर की झझरी-झझरी छबीली छाया दिलकश टोने की तरह उसके मन को बांधे हुए है, शहतूती सांझ में प्रियतमा की झिलमिलाती बिंदिया, लहराती वेणी में लगी कुंआरी कलियों के चटक रंग, अंखुवायी क्यारियों की गीली मिट्टी की सोंधी वात और प्रियतमा के पैरों के चिन्ह उसकी स्मृति में अनेक बिम्बों में रूपायित होते हुए चमक उठते हैं। परन्तु वह प्रियतमा को बुला नहीं पाता कि कहीं मिलन-क्षणों में यह सारा संस्मरण-सौंदर्य नष्ट न हो जाए। वह प्रेम की भुक्त छुअन से मुक्त नहीं हो पाता।

प्रियतमा के सौंदर्य के प्रति आकर्षित लोगों के हृदय की अनुभूतियों की भी वह कल्पना करता है। यह प्रेमी सोचता है कि उसकी प्रियतमा के सु-परस से न जाने किस-किस के अधरों पर गुलाब खिले हैं, नशीले फाल्गुन के पराग न जाने किस-किस पत्ती पर बिखरे हैं, न जाने किन-किन हवा महलों के शीशे चटखे हैं, उसके रूप-सौंदर्य को देख-देखकर न जाने किस-किस के मन-कगार की मिट्टी फिसल गई है, उसके रूप-सौंदर्य की शराब छलक कर न जाने कहां-कहां किस-किस देखने वाले को मस्त कर गई है। प्रेमी का मन इसी उधेड़बुन में रहा है और प्रेम की ईर्ष्याजन्य यह छुअन उसे सोने नहीं देती, बीती रात में बीती बात बार-बार याद आती है।

विरहाग्नि में झुलस रहे प्रेमी को चैत की अंधी हवा बड़ी जालिम प्रतीत होती है, स्मृतियां प्रेमी के हृदय में पीड़ाओं को जागृत कर देती हैं, पतझड़ का मौसम उदास प्रेमी को और अधिक बेचैन कर देता है और वह अधिक देर तक न रूह की बेचैनियां और न ही देह की जरूरतों को दबाए रख पा रहा है। वह प्रणयबंधन का मधुरतर अहसास भोग लेना चाहता है, प्रेम की महक

और जिंदगी की चहक से अपने आंगन को भर लेना चाहता है, क्योंकि वह जानता है कि मौसम जोगी है, जो बांधे नहीं बंधता, रोके नहीं रुकता, जो फेरा डालकर चला जाएगा।

"तन /रंगता है /रंगवाले /मन रंगता है /रंगवा ले /बात नहीं मानी तो / कल फिर पंछतायेगा /मौसम-जोगी /फेरा डाल /चला जाएगा।" (पृ० 83)

अंततः यह मौसम निकल ही जाता है, मिलन का राग-रंग धूमिल पड़ जाता है, प्रेमी का मन उदास और आहत हो जाता है, उसका तो चन्दन भी ठण्डी राख-सा हो गया है, उसे न कुछ दिया जा सकेगा न उससे कुछ लिया जा सकेगा।

परन्तु वह प्रेमिका को उसके लिखे पत्र लौटाना भी नहीं चाहता, वह जानता है कि प्रेम-पत्र लौटाने से न तो प्रणयानुभूति के क्षण लौटाए जा सकते हैं न उन क्षणों की स्मृतियां लौटाई जा सकती हैं-

"वे अंकन-क्षण /ठिठके /ठहरे /लौटा दो /अभिराम नये /मेरी सन्ध्याओं के साक्षी /बुने गये जो /शाम गये /कुहरीले /धुंधले /अधपीले /दूध-नहाये /छन्द लजीले /टूटे तार /लौटा दो / आकाश पुकारे है /मेरे सारे गीत-पत्र जो पास तुम्हारे हैं /लौटा दो /मुझको लौटा दो।"
(पृ० 46)

कवि की प्रणय-अनुभूति के अनेक तेवर प्रकृति के परिप्रेक्ष्य में ही उद्दीप्त हुए हैं, इस अनुभूति से ये गीत इस तरह सुगठित हैं कि उदाहरण के लिए पूर्णबिम्ब ही उतारना पड़ता है, एकाध पंक्ति से बिम्ब-सौंदर्य पूर्णतया उभरता नहीं। कवि ने विशेषणों, क्रियाविशेषणों और स्थिर बिम्बों को समेटते हुए उन्हीं के बीच कोई एक ऐसी पंक्ति सटा दी है जो समूचे गीत को अर्थ स्फोट देकर सार्थक कर गई है। नव-गीत-सृजन की दृष्टि से 'निर्मल' विनोद हिन्दी का समर्थ गीतकार है।

5.1.5 सुनो मार्कण्डेय 1983 ई० में प्रकाशित डॉ० ओम प्रकाश गुप्त के काव्य-संग्रह 'सुनो मार्कण्डेय' में 13 लम्बी कविताएं हैं। संवेदना, शिल्प और रचनागत तनाव की अपेक्षा इन्हें क्लेवर की दृष्टि से ही लम्बी बल्कि आख्यानात्मक कविताएं कहा जा सकता है। इन कविताओं का मूल्यांकन निम्नलिखित है।

5.1.5.1 पौराणिक वृत्तों का दुहराव 'कुन्ती और कर्ण' कविता में पात्रों का अन्तर्द्वन्द्व परम्पराभुक्त है। कविता में बाह्य क्लेवर और पात्रों का शारीरिक बिम्बीकरण सुन्दर है। परम्परानुसार कर्ण कुन्ती के आगमन से पूर्व ही कवच-कुण्डल का दान कर चुका है परन्तु प्रस्तुत कविता में कुन्ती कर्ण को कवच-कुण्डल सहित देखती है। कुन्ती के हृदय में ममता का तूफान उमड़ता है तो वह अपने लक्ष्य के प्रति द्वन्द्वग्रस्त हो उठती है।

जबकि कुन्ती को आया देखकर कर्ण को कृष्ण का स्मरण हो आता है, कृष्ण ने उसे पाण्डव-पक्ष में मिलने का परामर्श दिया था। यहां कर्ण भी समझता है कि यदि अर्जुन और कर्ण

मिल जाएं तो नया इतिहास लिखा जा सकता है। जिसमें मानव का महत्व कुल से नहीं कर्म-विद्वता के आधार पर होगा। इन विचारों के बावजूद कर्ण को कृष्ण की वाणी लौह-शलाका-सी चुभ रही है और वह अपने कर्त्तव्य और मैत्री-धर्म पर अडिग खड़ा है। वह सूर्य को साक्षी मान कर कुन्ती से वरदान मांगने के लिए कहता है।

यहां भी कर्ण अपना कर्त्तव्य-पथ निश्चित करने से पूर्व परम्पराभुक्त ढंग से भीष्म और द्रोण द्वारा किए गए अपने अपमान के कारण कटु हो गया है और दुर्योधन से मिले सम्मान का स्मरण करता है। वह लोक अपवाद से भी डरता है कि लोग समझेंगे कि उसके हृदय में राज्य -लोभ है तथा द्रौपदी के सौंदर्य का लोभ जाग उठा है और इस लोभ के कारण वह भ्रष्ट हो गया है।

कर्ण सारथी पिता के प्यार और राधा की छाती के दूध के प्रति निष्ठावान बना रहता है। वह खुदगर्जी के रिश्तों को तोड़ देना ही बेहतर समझता है और किसी भी लालच में न आने का संकल्प करता है, वह एक पत्नीव्रत को ही श्रेष्ठ मानता है और पाण्डवों को उनकी कायरता के कारण दुत्कारता भी है।

''मुझे विदित होता कृष्णा मेरी भाभी है /सब वचनों को तोड़ /लगाता आग सभा में''।

इससे आगे का कवितांश 'अन्धायुग' और 'कुरुक्षेत्र' से बुरी तरह प्रभावित है। 'अन्धायुग' के कथनों को ही शब्द, स्थान और व्यक्ति भेद से दुहराया गया है– 'अन्धायुग' से मिला कर देखें–

मानव की मर्यादा के कुछ मूल स्तम्भ हैं/ जब-जब वे ढहते हैं/ सर्वनाश होता है/ भगवान कहीं मानव से भिन्न नहीं होता है/ उसकी गति मानव-गति से होती परिचालित।(पृ०19)

कवि न चाहते हुए भी परम्पराभुक्त कथा को दुहरा जाता है, परन्तु 'अन्धायुग' के कवि की तरह वह मानव-भविष्य को कोई विशेष आश्वासन नहीं दे पाया।

हां, प्रस्तुत कविता में कुन्ती कर्ण के समक्ष पश्चात्तापग्रस्त भी नहीं है, वह कर्ण को मिले अपमान से परिचित है, अपनी ममता और अन्तर्मन की कसक को भी समझती है परन्तु वह परम्परागत काव्य की कुन्ती की तरह कर्ण को पाण्डव-पक्ष में मिलने का न्यौता नहीं देती, न ही कर्ण बिन मांगे चार पाण्डवों को जीवन-दान का वायदा करता है बल्कि यहां कर्ण के कुछ कहने से पूर्व ही कुन्ती कूट-वाक्य कहती है जिसमें पाण्डवों का जीवन दान मांग लेती है।

5.1.5.2पीढ़ीगत अंतराल और स्वार्थगत दोगलापन कवि ने पीढ़ियों के अन्तर को उद्घाटित करते हुए माना है कि दादा और पोते के बीच की पिता-पीढ़ी मानो संघर्ष-कर्म में गायब हो रही है। बल्कि यह पिता-पीढ़ी पुत्र-पीढ़ी के रास्ते की अवरोधक है। यह अपनी पुत्र-पीढ़ी की आंखों की चमक, उल्लास, संघर्ष-शक्ति तथा महत्वाकांक्षा के रास्ते में अवरोधक ही नहीं उसके आत्म-विश्वास और बड़प्पन के लिए भी घातक हो रही है। यहां कवि पिता-पीढ़ी के चेहरे की

मक्कारी को पहचान रहा है जबकि दादा- पीढ़ी की पदचाप और परछाई गायब हो गई है।

'बेताल की आखिरी कथा' कविता में कवि पुत्र-पीढ़ी की बेचारगी को व्यक्त करता है। इस कविता में स्वतंत्रता के बाद के भारतीय जनजीवन के सपने टूटने की कथा कही गई है। जबकि अब हरेक आदमी अपने-आप में महान है, उसे न इतिहास बोध सताता है, न आचारबोध और न ही वह अस्मिता की पहचान के लिए छटपटाता है। भारतीय स्वतंत्रता तिलस्मी महल जैसी है, जो खूबसूरत तस्वीरों, सुन्दर सरोवरों और रंगीन मछलियों द्वारा सजाया गया है, जिसे देख-देख कर पिता-पीढ़ी आत्म-श्लाघा में लीन है जब कि स्थितियां बिलकुल नहीं बदली हैं, बैताल के साथ-साथ बच्चे (मुन्ने) की आवाज़ और आकांक्षा भी निरर्थक अनसुनी और अनदेखी रही है। विक्रम बैताल के प्रश्नों का उत्तर देता है कि जब तक लोग अपने ही अंश को नकारते रहेंगे स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं होगा-

"ऐन मौके/ पर/अपने ही अंश पर /अधिकार जताने से /सदा/चूक जाएंगे...." (पृ० 39)

कविता की अंतिम पंक्तियां 'बलदेव खटिक' कविता का स्मरण करा देती हैं। बच्चा सहज जिज्ञासा और संघर्षशीलता का प्रतीक है परन्तु बच्चे की प्रतिक्रिया अक्सर नकार दी जाती है। बच्चे की निगाह से देखा गया यह सारा सुखद वातावरण मात्र स्वप्न या इन्द्रजाल--सा बनकर रह जाता है। क्योंकि बच्चे की नन्ही-सी लाल हथेली पर फैले प्रश्नों को पहचानने के बावजूद उसकी हथेली पर नयी डाक टिकटें रख दी जाती हैं।

5.1.5.3 पराजयबोध और संघर्ष–चेतना का स्वरूप उपेक्षित, स्वप्नशील और जिज्ञासु बच्चा जवान तो होता है परन्तु उसका बालमन बना ही रहता है और वह इस बालमन की रोमांटिक दृष्टि से ही संसार को देखता है। कवि को लगता है कि उसके आंगन का पेड़ औंधा गिरा पड़ा है, उसकी बांहें पत्नी के डर को दूर नहीं कर सकीं जबकि पत्नी आश्वस्त करती रही है कि हर मौसम के संक्रान्त पर टहनियां पुलकित होती हैं और धरती के अन्दर कोई जड़ कुलबुलाने लगती है। पत्नी द्वारा प्रेरित उसके मन में ढाढ़स बंधता है परन्तु विडम्बना यह है कि सिर में खुंसी जादुई कील लिए पत्नी कहीं और ही खो गई है, मानो चिड़िया घोंसले में सो गई है और वह काले सायों वाले लोगों को पहचान नहीं पाया जबकि उसे आश्वस्त किया गया था कि दो-चार कदम चलने के बाद सामने रंगीन घाटी होगी और भरापुरा सूरज उसके साथ होगा।

वह हथेलियों की पीठ से अंधी गुफा की दीवारें ठकोरता रहा है, दूर गरज रहे तूफान की आवाज़ सुनता रहा है और कल्पना करता रहा है कि जंगल में बेशुमार पलाश उग चुके हैं। परन्तु स्थिति जस की तस ही है, घुटनों के बल सरक कर इतनी दूर आ जाने के बावजूद उसे अथ से आरम्भ करने के इश्तहार ही पढ़ने पड़े हैं। स्थिति यह है कि आदमी की लड़ाई के इतिहास से उसी का नाम काट दिया गया है और आदमी हरेक बेइन्साफी को चुपचाप सहन कर रहा है। उसकी इसी आदत के कारण कवि का आक्रोश बूंद-बूंद हो कर बर्फ होता जा रहा है जबकि अजदहा उसकी आंखों में जहरीली हवा फेंकता है जो उसकी रग-रग में घुलती जाती है। ऐसी

ही दुविधा की स्थिति में वह स्वयं को काठगोदाम में पड़ा आतंकित-सा महसूस कर रहा है, वह डरता है कि किसी भी क्षण काठ के ये बेढंगे आकार उसकी टांग भी तोड़ सकते हैं। काठ के इन्हीं आकारों को वह बैसाखी-सा इस्तेमाल भी करता है परन्तु लगता है जैसे उसकी पलकों की थिरकन भी काठ हो गई है।

और जब वह इन विडम्बन स्थितियों से बाहर निकलने का साहस करता है तो उसे अंधा घोषित करके लोग भीड़ के रेले में शामिल हो जाते हैं। इस उपेक्षा के बावजूद वह उस चौराहे पर चला जाता है जहां दो-तीन ऐसे लोग भी मिल ही जाते हैं जो उसे आश्वस्त करते हैं, यहीं खण्डहर के पीपल के तले लौ जल रही है। जबकि इन दो-तीन लोगों के प्रति लोगों का विचार है कि ये तीनों खतरनाक हैं परन्तु इन तीनों की बांहों से कवि को ताकत मिलती है।

अंततः कवि पूंजीवादी अर्थतंत्र में जूझ रहे आदमी को मार्कण्डेय सरीखा देखता है और उसे सम्बोधित करता है कि पहाड़-सी ऊंची तरंगों के प्रति मोहित-सा हाथ जोड़कर किस भ्रम में पड़े हो ? अपने अन्तर की गुहा में प्रश्नों का उत्तर खोजो किसी अनदेखे विधाता के सामने न झुको क्योंकि किसी समय तुम्हारी संघर्षशक्ति ने सर्प की आंखों में आंखें डालकर उसके मुंह में लोहे की नाल डाल कर विजय-यात्रा का पहला पड़ाव तय किया था और अपने अथाह आत्मविश्वास से नयी सृष्टि का आरम्भ किया था। तूने उसके फन्न के हर झपट्टे को वक्ष पर सहते हुए विधाता को भी ललकार दिया था परन्तु आज तुमने प्रार्थना में अपने हाथ जोड़ लिए हैं। अंततः कवि उसकी संघर्ष-चेतना को ललकारता है –

''हर जंगली घोड़े की अयाल हम थाम लेंगे /भरपूर अंधेरे के बावजूद/ हम अपना लक्ष्य पहचान लेंगे /आओ तूफ़ान के साथ-साथ उड़ान भरें !/आओ /उमस के हर प्रहार से /आखिरी लड़ाई लड़ें !।'' (पृ० 40)

आदमी को संघर्ष में उतार लाने के लिए वह ललकारता है और सचेत करता है कि तुम्हारा मौन ज्यों-ज्यों दहलीज़ पर गिड़गिड़ाने लगा है, किवाड़ों पर मेरी मांसपेशियों का जोर दरकने लगा है कवि धीरे-धीरे संघर्ष की ओर बढ़ता है और आश्वस्त है कि भय से मुक्त होकर कर्मरत हों तो सफलता मिलती ही है और कर्मरत हों तो भयमुक्त भी हो ही जाते हैं।

5.1.6 इस भूमण्डल पर डॉ० राजकुमार के 1983 ई० में प्रकाशित कविता-संग्रह 'इस भूमण्डल पर' में 35 कविताएं संकलित हैं, जिनमें न तो वह बड़बोलापन है जो कवि के कृत्रिम राजनीतिक लगावों का परिचायक होता है, न ही वह दार्शनिक मुद्रा है जो प्रायः उथलेपन को शब्दाडम्बर से ढंकती है। कविताओं में एक सहजता है जो बिना घोषणा किए सहज ही प्रतिबद्ध है और सहज ही विचारशील। 'इस भूमण्डल पर' एक ऐसे नये कवि की नयी शैली की कविताओं का संग्रह है जो भावप्रवण होने के साथ संघर्षरत जीवन के हर पड़ाव पर हुए अनुभवों का परीक्षण भी करता है। इन कविताओं का मूल्यांकन प्रस्तुत है।

5.1.6.1 जीवनानुभूतियों की खोज कवि को यह जिंदगी वक्त की छाल में लिपटी अनुभवों

की सौगात प्रतीत होती है, जिसे वह कठफोड़े की तरह टूंग रहा है जबकि उसकी पराजय की साक्षी सिर हिलाते, मुंह चिढ़ाते बेदर्द सरकण्डे ही दे रहे हैं, जिनसे छिला होने के बावजूद कवि साधारण विजृखे से भी जीने की प्रेरणा लेकर अपने पथ पर अग्रसर है। संदेह में घिरे कवि के लिए जीवन उफ़नता, उछलता, छलछलाता जल है और त्रासदियां इस जल के भीतर ही भीतर गहरे पैठे रहती हैं। जीवन की अनेक त्रासद अनुभूतियों, पीड़ाओं और ज़ख्मों से भरा दिन बीत जाता है तो वह नींद में ही सुख-स्वप्न देखता है, दिन की थकान मिटाता है, जीवन सूर्य मर रहा है, कोई उसकी मदद के लिए नहीं आ रहा, सगे सम्बंधी भी मानो निरीह विलाप करके रह जाते हैं।

"सरकण्डों में छिपा /बत्तखों का झुण्ड /कराहता हुआ।
पढ़ता रहा मर्सिया /मृत सूरज को /जीवन देने,
आया मसीहा /कमबख्त कुत्तों ने /भौंक कर भगा दिया।" (पृ० 37)

5.1.6.2 जीवनगत विसंगतियों का चित्रण जिन्दगी यांत्रिकताजन्य ऊब से ग्रस्त हो गई है। रात-दिन काम में व्यस्त आदमी के पास सुख-स्वप्न का अवसर ही नहीं। उसकी भावना मर गई है, न जीवन की गहमा गहमी है, न कोई अपना सुख-दु:ख व्यक्त करता है, न अहं को जताता है, न कोई किसी की सुनता है। कवि व्यंग्य-सा करता है –

"सड़कें /वीरान हैं /कोई किसी को /चूमता नहीं /नगर का माहौल /कुछ ऐसा है /जैसे ग्लोब /घूमता नहीं।" (पृ० 39)

बिडम्बना यह है कि शहरी जीवन में यांत्रिकता के बावजूद लोग गांवों से शहर की ओर पलायन कर रहे हैं, शहर आकर गांव नहीं लौटते, शहर का खोखला आकर्षण सर्वस्व छीन लेने वाली खोखली हो चुकी वेश्या के आकर्षण जैसा है। और ग्रामीण इस वेश्या-संस्कृति के छल -कपट में फंस कर रह जाता है। शहरी जीवन की विसंगतियां, अकेलेपन, ऊब, संत्रास और दमघोंटू औपचारिकता से कवि बाहर आ जाना चाहता है, क्योंकि वह जान गया है कि सभी शहरी परिचय अधूरे हैं, यहां आदमी की पहचान मर रही है, वह अनाम कब्र जैसा हो कर रह गया है, प्यार जताते लोग भी परस्पर एक दूसरे को आत्मीय धरातल पर पहचान नहीं पाते-

"बरसों साथ रहे /भटकते, बतियाते /बिछुड़े तो क्या रहा ? /

अलम! /पल प्रति पल क्षर! /अनाम कब्र पर! /जैसे एक अधूरा हस्ताक्षर।" (पृ० 16)

औपचारिक और विसंगत जीवन की पीड़ा से वह कुण्ठित हो रहा है परन्तु बिडम्बना यह है कि कुण्ठा उसके स्वभाव का अंग नहीं बन पाती। इससे वह उबरना चाहता है, मन आंदोलित है, परन्तु यह द्वन्द्व कोई मार्ग नहीं सुझा पाता। जीवन किसी वृहद उद्देश्य से नहीं जुड़ रहा। घर-बार की छोटी-छोटी चिंताओं में फंसे लोगों के बीच संवादहीनता है। जबकि वह सम्पूर्ण जीवन-अनुभूति सहित जीना चाहता है।

प्राय: आदमी पीड़ा से सांझापन स्थापित करने के लिए तैयार नहीं जबकि पीड़ा ही उसमें अनुभूति जगाती है, प्रज्ञ पैदा करती है, पीड़ा ही भोग की दृष्टि देती है। कवि को लगता है कि प्रकृति ने आदमी को सब कुछ दिया है परन्तु पीड़ा और अहसास के बिना प्रकृति प्रदत्त सारी सम्पदा निरर्थक है। हम प्रकृति का आनन्द लेते हैं परन्तु मन की चंचल वृत्ति के कारण क्षणिक चौंकाहट ही भोग पाते हैं। इस से हमारी सुखद जीवन स्थितियां भी त्रासद हो उठती हैं।

मानव मन की गहराई में उतरने के साथ-साथ कवि ने बच्चों की मुक्त-हंसी और उनकी यादृच्छिकता पर भी विचार किया है। प्रकृति उनके मन के अनुसार रूप बदलती है, बाल मनोविज्ञान की इस सच्चाई को कवि कैलिडियोस्कोप देख रहे बच्चों की प्रसन्नता को चित्रित करते हुए व्यक्त करता है -

''रंग-बिरंगे फूल /परियां /घास-तितलियां /चिन्दी चिन्दी किताबें /जितनी इच्छाएं उतने रूप /उभर-उभर आते हैं /बच्चे खिलखिलाते हैं।'' (पृ० 30)

परन्तु दु:ख यह कि यही बच्चे जब युवा होकर रोजी-रोटी के चक्कर में फंस जाते हैं तो जीवन की यांत्रिकता के कारण इन फूलों और तितलियों का कोई महत्व नहीं रह जाता है। यांत्रिकता के कारण जीवन वीरान खण्डहर के मंदिर जैसा होकर रह गया है, मन-मंदिर का देवता (भाव-मूल्य) सोया हुआ है।

इस तरह का जीवन जी रहे लोग मौन हैं, कुण्ठित हैं, संघर्ष के लिए तैयार नहीं, उनकी नींव ही कछार-भूमि पर है। जिनका अन्तर्मन विभाजित है, उन लोगों के लिए लड़ना मात्र मूर्खता है। इन लोगों के प्रति व्यंग्यजन्य आक्रोश के कारण कवि सम्बन्ध तोड़कर तटस्थ हो जाना चाहता है -परन्तु कवि का यह आक्रोश अधिक देर नहीं टिकता न ही तटस्थता का संकल्प टिक पाता है । और वह जन-जन की दग्ध मानसिकता पर स्नेहिल स्पर्श बनकर छा जाना चाहता है क्योंकि उसकी सर्जक-पीड़ा जन-जन के प्रति प्रतिश्रुत है और इस प्रतिश्रुति के कारण वह जन-जन से सम्बन्ध नहीं तोड़ पाता बल्कि आंखों में भटक रहे अकेलेपन के बावजूद वह अपनी पीड़ा को नवसृजन के लिए पुकारता है। अपनी प्रतिश्रुत सर्जक-पीड़ा के कारण ही वह शक्ति-पुरुष बना है और वातावरण में बदलाव के जोश को देख कर संघर्ष के लिए सजग हो उठता है, अन्तर्मन की कुण्ठाओं और हताशा को काट कर वह जीवन पथ पर बढ़ने की प्रेरणा से अभिभूत हो उठता है -

कवि प्रकृति से संघर्ष की दीक्षा लेता है तो बच्चों से ईमान की सीख भी ग्रहण करता है और लालच पर नियंत्रण पा लेता है -

''छल्ला पास है, बच्चा याद आता है/ घिरते हैं जब-जब लोभ के तूफान/ डोलते ईमान को स्थिर कर जाता है।'' (पृ० 36)

कवि ने लालच की वृत्ति के साथ-साथ आधुनिक प्रणय लीला को कायरताजन्य वासना ही माना है। उसे लगता है कि दहेज़ के लालच के कारण कोई पृथ्वीराज नहीं न कोई आधुनिक संयोगिता का अपहरण करता है। कवि आधुनिक चालाक नेताओं के साथ-साथ जनता की निकम्मी और आलस्यपूर्ण स्थिति पर भी व्यंग्य करता है -

"वे चले गये /बहस करने /हम लौट आये /पेट भरने /अब वहां न गुलाब हैं, न बरगद/ पहाड़ हैं लदे फदे /ऑक /औ धतूरे से" पृ० 32)

प्रस्तुत संग्रह में लगभग सभी लघुकविताएं हैं और कवि की तीव्रानुभूति की सार्थक अभिव्यक्ति के सशक्त उदाहरण प्रस्तुत करती हैं।

5.1.7 कमल पत्र पर डोलता जलकण सुतीक्ष्ण कुमार आनन्दम् के 1984 ई० में प्रकाशित कविता-संग्रह 'कमल पत्र पर डोलता जल--कण' में 61 कविताएं संकलित हैं, जिनका मूल्यांकन निम्नलिखित है।

5.1.7.1 भारतीय आनन्दवादी जीवन-दृष्टि इन कविताओं में कवि अस्तित्ववादी प्रवृत्ति को विशेषकर इस वाद की फैशनजन्य मरणधर्मा वृत्ति को नकारता है। दुर्दिनों में कवि आश्वस्त है कि भले दिन भी आएंगे जैसे बूढ़े वृक्ष में नई कोपलें आ जाती हैं। इसी आश्वस्ति के कारण वह रुग्ण और मरणधर्मा मन:स्थिति से बच जाता है, वह अकेला चला है, अकेला नाचता गाता रहा है, अकेलेपन की थकान के बावजूद वह कगार पर खड़े पाषाण जैसा मलय के झकोरों को भेदता रहा है और इसी विश्वास के बल पर वह बैठे-बैठे भी अकेलेपन से मुक्त हो जाता है।

धूप और सूरज को कवि ने केन्द्रीय शक्ति के रूप में देखा है। सूर्यकिरणों का सूक्ष्म स्पर्श उसकी दैनिक क्रियाओं के लिए प्रेरक है, उसकी कर्म-चेतना का प्रतीक है। उसे सूर्य से प्रबल धीरज और सम्बल के संकेत मिलते हैं। कर्मशक्ति का प्रतीक सूर्य जन-जीवन में से उदासी, असमर्थता, असफलताजन्य भय दूर करता है और निश्चय, धैर्य, कर्मशीलता को विकस्ति करता हुआ जन-जीवन में नवस्फूर्ति भर देता है। परन्तु इन कविताओं में कवि का विचार पक्ष उलझा और कमज़ोर है। इन कविताओं का अतिरिक्त फैलाव प्रभाव को भी क्षीण कर रहा है और भावगत अन्तर्विरोध पैदा कर रहा है।

सूरज के बहाने कवि ने आदमी के परस्पर वैर, विरोध, ईर्ष्या, द्वेष पर भी चोट की है। उसे लगता है कि जीवन की भागदौड़ में हर आदमी अलग-अलग झण्डा, भूमि, नारा और गति चाहता है, उसका सूर्य तक सांझा नहीं रहा क्योंकि आदमी को उसकी योग्यता के अनुसार अभी कुछ भी नहीं मिला है, उसकी अभिलाषाएं पूर्ण नहीं हो पा रहीं।

असमर्थताजन्य इस पीड़ा के कारण कवि सांसारिकता से विरक्त होने की प्रेरणा देता है, आह्वान देता है कि भोग-विलास के पंख काट दें, वह आनन्द को नैसर्गिक मानता है और आत्मोत्कर्ष को भोग लेना चाहता है। कवि का नैसर्गिक आनन्द ऐन्द्रिय नहीं बल्कि ऐन्द्रियता के

परित्याग में निहित है, क्योंकि कवि ने ऐन्द्रिय जीवन में असमर्थताजन्य हीनता और विडम्बना ही देखी है।

5.1.7.2. विसंगत शहरी जीवन और संस्कृति वह शहरी जीवन की विसंगति को भी उजागर करता है परन्तु उसका यह संवेदन मुंदा हुआ रह गया है, बात खुलकर प्रभावशील ढंग से प्रस्तुत नहीं हो पाई, उसमें तीखापन भी नहीं। शहर में हो रहे पर्यावरण-प्रदूषण के प्रति भी वह चिंता व्यक्त करता है और शहर के गर्म-सर्द मौसम के सहारे आम आदमी की त्रासद अनुभूति को उद्घाटित करता है कि शहर में सुख-दुःख, न्याय-अन्याय, आशा-निराशा के बीच समतोल स्थापित करने वाला कोई शिवि नहीं है। शहर से तंग कवि किसी जंगल-पहाड़ में बस जाने की प्रेरणा देता है ताकि शहरी कृत्रिमता की अपेक्षा सहज चाहे आदिम ही सही जीवन को मौलिक भाव से जिया जा सके। परन्तु अब तो जंगल-पहाड़ों की शांति भी भंग होने लगी है।

आदमी के मन में बसे अर्थलोभ ने जीवन को और भी अधिक त्रासद कर रखा है बल्कि आदमी का ईमान सोने, चांदी और ऐश्वर्य के सामने डोल जाता है, देशभक्ति का कोई अर्थ नहीं रह गया, वह वहीं जा बसता है जहां ये भौतिक सुविधाएं अधिक मात्रा में मिलने की संभावना होती है।

शहर में बढ़ रही मंहगाई और आम आदमी की दिन-प्रति-दिन घनीभूत होती जाती पीड़ा का सफल सार्थक वर्णन 'खील छोले' कविता में हुआ है। छोटे-छोटे पेशों में फंसे आदमी की जीवन की संघर्ष-गाथा को कवि ने यहां सुन्दर रूपक दिया है और व्यापारी वृत्ति पर अच्छी चोट की है। महंगाई का बोझ ग्राहक के कंधे पर डाल रहे फेरी वाले के प्रति कवि क्रुद्ध भी हैं और करुणासिक्त भी।

कवि ने शहरी जीवन की औपचारिकता को भेदने के लिए बसंत पर लिखी कविताओं में रोमांटिक अनुभूति की अपेक्षा यथार्थ पर दृष्टि डाली है। पीले रोमांटिक रंग को त्याग कर कवि जीवन-यथार्थ और संघर्ष के प्रतीक लाल रंग को अपनाने की प्रेरणा देता है। 'बसंत: एक संवाद-1' कविता सार्थक कविता है। जिसमें कवि संघर्ष और सृजन को ही महत्व देता है और मानता है कि पीड़ा की टीसें ही आदमी को संघर्षशील और सृजनशील बनाती है। 'इसमें क्या अचरज' कविता में यह जीवन-दृष्टि अधिक सार्थक और स्पष्ट होकर उभरी है। कवि कैक्टस के रोमिल कांटों में से भी फूल को देख लेता है और आश्वस्त है कि घृणापूर्ण दृष्टि के बीच से भी वह स्नेह का अंश ढूंढ लेगा।

कवि ने सीधे सादे लोगों की उपेक्षा को कई कविताओं में अभिव्यक्ति दी है परन्तु कवि की अनुभूति पक्षधरता के बदलते स्वरों के कारण उलझ कर दब गई है। कुछ कविताएं मौलिक अनुभव की अपेक्षा प्रभाव के अन्तर्गत लिखी गई हैं, जिनमें एकाध बिम्ब अच्छा बन पड़ा है।

कवि सभ्यता-संस्कृति को अमर मानता है। इसे भयंकर, क्रूर और विनाशकारी युद्ध भी नष्ट नहीं कर सकते, ये तो मात्र सतही परिवर्तन करते हैं, लोग बदल जाते हैं, मूल बीज बना रहता

है और युद्धोत्तर काल के नव-मूल्य स्वीकृत हो जाते हैं। युद्ध के प्रति कवि का यह दृष्टिकोण मध्ययुगीन ही है।

कवि सभ्यता, संस्कृति और राष्ट्र के अंत को असंभव मानता है परन्तु 'वट वृक्ष के नाम' कविता में कवि सांस्कृतिक मूल्यों के हनन के प्रति चिंतत भी है। उसे दुःख है कि सांस्कृतिक धरोहरें ध्वस्त हो रहीं है, आचार-विचार नष्ट हो रहा है। पहले कभी वट वृक्ष लगाया जाता था, उसे सींचा जाता था, उसकी पूजा की जाती थी जबकि अब उस की जड़ों में सिगरेट का धुआं उड़ा कर विष डाला जा रहा है। इसका अस्तित्व मिटा देने के यत्न हो रहे हैं।

5.1.7.3. प्रणयानुभूति का स्वरूप कवि ने ग्रामीण परिवेश और प्रकृति के सौंदर्य के साथ-साथ मांसल प्रणयानुभूति के सुन्दर बिम्ब भी प्रस्तुत किए हैं। इन कविताओं का प्रणयबोध रतिभाव से बढ़ता हुआ धीरे-धीरे सर्व-कल्याण की भावना को छू लेता है और कवि की एकाधिकार की भावना खत्म हो जाती है -

"खुश रहना जहां कहीं भी रहना तुम/हंसी की नदिया में बहना।" (पृ० 91)

विशेषकर प्रणयानुभूति सम्बंधी इन कविताओं में कवि का अभिव्यक्ति पक्ष सशक्त है और आर्द्र भावानुभूति की संसिक्ति कविताओं को सार्थकता प्रदान करती है। कुल मिलाकर कवि का भावबोध मध्ययुगीन कवि जैसा ही है। जबकि शिल्प के धरातल पर नयापन मिलता है जो दुरूह भी है।

5.1.8 फूल उदास हैं श्री जितेन्द्र उधमपुरी के 1984 ई० में प्रकाशित काव्य-संग्रह 'फूल उदास हैं' में 42 कविताएं संकलित हैं, जिनका शिल्प और काव्य-भाषा सुगढ़ परन्तु सरल है। कवि ने लय, ताल, यति, गति का विशेष ध्यान रखा है, इन कविताओं में प्रणय और जीवन की विसंगति की अनुभूतियों का अच्छा चित्रण हुआ है। इन कविताओं का मूल्यांकन निम्नलिखित है।

5.1.8.1 अभावग्रस्त जीवन-विसंगतियों और यथार्थ का चित्रण कवि को अपना शहर अभावग्रस्त और यातना जड़ित प्रतीत होता है। हर बाज़ार के माथे पर महंगाई का इश्तहार चिपका है जो घुटन का अहसास सौंप जाता है। यहां आदमी अनथक संघर्ष में जूझता रहता है, चुभन और उत्पीड़न की धीमी-धीमी आग में झुलसता है। वह कुछेक सफलताओं पर इतराता भी है और अतिरिक्त आश्वस्त भी हो उठता है परन्तु उसका मन रूपी नगर नदी के किनारे बसा है जो नदी की बाढ़ के कारण उजड़ता भी है और बस भी जाता है। अधिकतर उसके शब्द, अर्थ और वाक्य अर्थहीन हो जाते हैं, वह संशय ग्रस्त है, भय रात-दिन उसके तन, मन और प्राणों को चाट रहा है। उसका बसंती बालपन पता नहीं कब का बीत गया है और यौवन अनेक प्रकार की विवशताएं और उदासी सौंप कर झर गया है। लोग उसकी घुटन और पीड़ा को अनुभव नहीं करते जबकि चुभन, पीड़ा और टीस के कारण उसका मन उखड़ रहा है, तन बोझिल है, बदन टूटा है। वह अभिशप्त प्रेत-सा भटक रहा है।

शहर का हरेक आदमी लैण्डस्केप-सा है, जिसके लम्बे-चौड़े जीवन-कैन्वस पर कुछ स्मृतियों के रंगदार धब्बे हैं, अभावों का धुंधला आकाश है और वह कुण्ठाग्रस्त टूटी मटमैली नाव-सा है। वह बीवी का पीला अलसाया निस्तेज मुख-मण्डल देख कर परेशान है। कवि व्यक्ति के अभावग्रस्त जीवन और विवशता पर व्यंग्य-सा करता है -

"और गिरवी रखने पर/दादा की घड़ी/दे गई/पचास का धन/
कुल मिला हो गई रकम/चार सौ बीस/पूरे माह की आमदन।" (पृ० ९९)

ऐसी जीवनस्थितियों में जीवन का सौंदर्य मर जाता है। यौवन सौंदर्य और रूप-आकर्षण पंछी-सा उड़ जाता है, गुलमोहर, सूरजमुखी, अमलतास मुरझा जाते हैं और शेष रह जाती है तो मात्र यादों की जंगली घास। इस तरह लोग शहर की सूनी-सूनी सड़कों और बेजान गलियों में भटक रहे हैं, अपने-अपने निश्चित कठघरे में चिड़ियाघर के नुमायशी जानवर जैसा जीवन जी रहे हैं।

विडम्बना यह है कि अभाव ज्यों के त्यों बने रहे हैं, स्वतंत्रता से पहले का राजा अब भी राजा है और भूखा आज भी भूखा है। स्वतंत्र भारतीय जीवन में मात्र कहने की स्वतंत्रता है, उसमें सच्च कहीं नहीं, देश मानो ठहर कर रह गया है, सत्य और धर्म का पक्षधर युयुत्सु भटक गया है और स्वर्ग का अभिलाषी त्रिशंकु कहीं बीच ही में अटक गया है।

5.1.8.2राजनीतिक दोगलेपन पर चोट कवि का जननेताओं पर विश्वास नहीं रह गया, वह उनके नारों की निरर्थकता को भांप गया है और ताना देता है कि बातों के पुल बनाकर किसी को पार नहीं लगाया जा सकता। नेताओं के बोल पुराने पड़ गए हैं, उनके बचाव मुरझाये सूरजमुखी के फूल की तरह गंधहीन हैं। नेताओं की चिंता और सहानुभूति को वह व्यर्थ मानता है। वह इनसे कथनीपरक सहानुभूति नहीं चाहता बल्कि चाहता है कि उसके चेहरे का थोड़ा-सा पीलापन लेकर नेता अपने चेहरे की थोड़ी-सी लालिमा उसे दे दे, तभी सही समाजवाद आ सकता है। कवि जान गया है कि भाषण, नारे, इश्तहार, आंदोलन, जुलूस आदि अभाव के चक्रव्यूह में घिरे अभिमन्यु को मुक्त नहीं करा सकेंगे। हमेशा की तरह अभिमन्यु छल-कपट से मार दिया जाता है।

परन्तु कवि गली में मौन-मूक गुजर रहे जुलूस को देखता है तो जन-शक्ति के प्रति आश्वस्त भी हो उठता है। वह आस्था प्रकट करता है कि जीवित की जिजीविषा को अधिक दिन तक दबाया नहीं जा सकता। विद्रोही आवाज़ दबी नहीं रहेगी, चाहने पर भी उसका वध नहीं किया जा सकता।

5.1.8.3प्रणयानुभूति का स्वरूप जितेन्द्र उधमपुरी की इन कविताओं में तीखी प्रणयानुभूति के चित्र भी मिलते हैं परन्तु ये चित्र उल्लास और संयोग की अपेक्षा पीड़ा और विरहानुभूतियों की त्रासदी को ही प्रस्तुत करते हैं। मधुमास आता है तो प्रियतमा का खिलता, मुस्कराता, हंसता

उल्लास कवि को चतुर्दिक् बिखरा प्रतीत होता है परन्तु प्रियतमा के इस रूप-सौंदर्य और मिलन-सुख की अभिव्यक्ति अधिक नहीं हुई। अधिकतर कवि विरह वेदना की बंद गलियों में भटकता है और शहर के जीते-जागते सौंदर्य और यौवन को अधखुली दृष्टि से देखता हुआ वह उसके पास से निकल जाता है क्योंकि उसका ध्यान शून्य में टिके प्रियतमा के अप्रतिम सौंदर्य की रूपरेखा में उलझा हुआ है। अपने अकेलेपन में उसे प्रिय के गुलाबी होंठों से दो बोल सुनने की आकांक्षा सताती है और वह चाहता है कि उसके पावन, कोमल, रूप और हास-परिहास को समेट ले। परन्तु प्रियतमा के वियोग में जीवन उदास होकर रह गया है, इसमें कोई तरतीब भी नहीं रही।

प्रियतमा की चाह में वह रात-दिन घूमता है, पांव रुकते नहीं, गति मंद नहीं होती, उसके पांवों में विराम नहीं। भ्रम में फंसा वह काफी उद्‌भ्रान्त हो जाता है, अपने द्वार पर होने वाली दस्तक से वह चौंक उठता है कि प्रियतमा आ गई है परन्तु कुछ भी न देखकर वह ग्रस्त-सा लौट आता है। जबकि कवि द्वारा इस उद्‌भ्रान्त स्थिति का कोई कारण नहीं दिया गया, वैसे उसने दुनिया और प्रियतमा से अधिक कुछ चाहा भी नहीं है, फिर भी विडम्बना यह है कि उसे मामूली मुस्कान भी नसीब नहीं हो रही।

फिर भी वह खण्डित जीवन की बिखरी हुई कतरनों को जोड़-जोड़ कर जी लेना चाहता है, आसपास फैला समय का कसैला समुद्र पी लेना चाहता है, तपते झुलसते रेगिस्तान में सपनों के सूरजमुखी और अमलतास उगाना चाहता है, जबकि रौंदे हुए फूल न कोई खरीदता है न कोई स्वीकार करता है। फिर भी इस सारी समझ के बावजूद उसने स्मृतियों के गुलाब संभाल रखे हैं –

''पर/मैं फिर भी/संभाले हूं/अब तक/तुम्हारी स्मृतियों के/मुरझाये गुलाब,/ अपने अन्तस पर/अंकित कई दाग़।'' (पृ० 61)

इसी अनुभूति के कारण कवि आत्मविस्तार करता हुआ जान गया है कि उसकी आवाज़ कभी मरेगी नहीं, गीत से उसके जीवन का रिश्ता अटूट है और समर्थ भी। इसी आश्वस्ति के साथ यह संकल्प-सा करता है कि उसके अक्षर मरने न पायें, शब्दों के कोमल पत्ते कभी भी झर न जाएं और उसके गुलाब कभी भी न मुरझाएं। कवि प्रणयानुभूति को सार्थक जीवन अनुभूति के स्तर पर पहुंचा देता है। और हां, कवि का शिल्प अच्छा सुगढ़ है परन्तु रूपक कहीं-कहीं उलझाते हैं।

5.1.8.4 प्रकृति–चित्रण कवि जितेन्द्र उधमपुरी ने प्रकृति के भी कुछ चित्र उकेरे हैं। अधिकतर सांझ उसे आकर्षित करती है, बरसती सांझ और पवन झकोरों के स्पर्श की अनुभूति को कवि सुन्दर अभिव्यक्ति देता है-

''पहाड़ की/तलहटी से उतरती/धीरे-धीरे पग धरती/संभल-संभल चलती/ सितम्बर की/लजीली, रंगभरी/भीगी-भीगी/उधमपुर की/वह कुंवारी शाम।'' (पृ० 35-36)

सितम्बर के दिन कवि को आकर्षित करते हैं। यहां दुपहर, सांझ और रात के कुछ बिम्ब काफी सुन्दर टटके हुए हैं। सांझ को कवि नयी नवेली लजीली दुल्हन के रूप में देखता है। सांझ कमल और कुंकुम की सुरभि में लिपटी ढेरों सपने बिखेरती मन को छू-छू जाती कश्मीरन नववधु-सी इठलाती पास से निकल जाती है। यहीं कवि अज्ञेय की कविता 'बावरा अहेरी' से प्रभावित भी दिखता है। प्रकृति के ये सभी चित्र अच्छे बन पड़े हैं, कवि की अनुभूति का अच्छा गुंथन इन बिम्बों में हुआ है। कवि का नवीन भावबोध थोड़ा-थोड़ा रोमांटिकता से भी ग्रस्त है, डा० धर्मवीर भारती के भावबोध जैसा। ये अच्छी सुगठित कविताएं हैं।

5.1.9 खुली आंख की दास्तान श्री पृथ्वीनाथ 'मधुप' के 1985 ई० में प्रकाशित काव्य-संग्रह 'खुली आंख की दास्तान' में कुल 57 कविताएं हैं, जिनकी शिल्प और संवेदना पूर्ववर्ती संग्रह 'खोया चेहरा' की कविताओं जैसी ही है। शब्दों के अपव्यय से बचते हुए कवि की ये प्रखर, स्पष्ट और वांछित प्रभाव की दृष्टि से अधिक सशक्त कविताएं हैं। जन-जीवन में घर कर गई विसंगति के कारण मानव-मन के अन्तर्विभाजन और टूट रही आस्था पर चोट करने के साथ-साथ कवि स्वतंत्र भारत के नेता की करनी-कथनी के बीच के अन्तर को उद्घाटित करता हुआ कहीं जीवनगत अवरोधों पर तीखी चोट करता है तो कहीं व्यंग्यवाण साध देता है। इन कविताओं का मूल्यांकन निम्नलिखित है।

5.1.9.1 कवि-क्रर्म का स्वरूप कविता के भाव और कथ्य का उद्घाटन करते हुए कवि कहता है कि वह उगते सूरज, टटकी हवा, पानी की बहती धारा से सतत संलाप करता है, इस संलाप के दौरान बाह्य जीवन के तर्क और कवि-दृष्टि में परस्पर बात, बहस, उलझाव, टकराव और तकरार चलता है और इसी संलाप-प्रक्रिया में कविता उपजती है। कविता को वह दूधिया वेश में लिपटी हत्या की काली शहादत कहता है, यह शहादत चाहे चांदी की कलम से ही क्यों न लिखी गई हो। जब वह कविता पढ़ता है या इसके ध्वन्यांश सुनता है तो उसके सामने लहू की टटकी धार-से मोटे-मोटे अक्षरों में लिखे कातिलों के नाम उभरते हैं। कविता के कथ्य और विषय को उजागर करता हुआ वह कहता है -

"माफ करो मेरे दोस्तो/तुम्हारी यह 'कविता'/यह 'खजाना'/दूधिया वेश में/ हत्या की काली शहादत के सिवा/कुछ नहीं, कुछ भी नहीं है।" (पृ० 64-65)

कवि चाहता है कि ऐसे चमेली छन्द लिखे जो हृदय की परती में ध्वल-सी ज्योत्सना बो दें, माथे की दग्धता को स्नेहिल कोमल हाथों से थपथपायें, आंखों के घावों को भर दें। वह ऐसे गीत सुनने-सुनने की प्रेरणा देता है जो इन्सान को जागने की प्रेरणा दें, जो जिन्दगी के मर्म और इंसानी प्रेम को जगाएं।

इस संवेदन और काव्य-दृष्टि से प्रतिबद्ध कवि किसी भी खेमेबाज़ राजनीति से उपराम रहना चाहता है। उसका दृढ़ विश्वास है कि कविता में गुटबंदी आदमी की स्वतंत्र सोच को खत्म करती है, प्राण, ईमान और निर्माण-वृत्ति को छीन कर उसे झगड़ों और ध्वंस की प्रेरणा देती है

और कवि को एक ढर्रे में ढाल देती है। कवि खेमेबाज़ वृत्ति का विरोध करता हुआ लिखता है-

> ''हाथों की/पाश-/मेरी सांस-/सह नहीं सकती/नहीं/मैं नहीं,/हो सकता/किसी खेमे की खूंटी।'' (पृ० 77-78)

वह खेमेबाज़ी से मुक्त होकर ताज़ी हवा और प्रेम को ही कविता का व्याकरण बनाना चाहता है। वह कविता को अपनी अस्मिता पहचानने का आह्वान देता है, इश्तिहारों के नगर से बाहर निकलने का आह्वान देता है। उसे लगता है कि उसे रात ने घेर रखा है, संशय, अनिश्चय उसे घूरते रहते हैं, आडम्बरों और दिखावट को जीकर भी उसे कुछ नहीं मिला, उसका निर्मित किला खोखला ही है। इस खोखलेपन और संशय और अनिश्चय से बाहर आकर वह असलियत के वरण का आह्वान देता हुआ कहता है -

> ''क्यों लगा दी आग/ अपने-आप/अपनी अस्मिता में?/मांगते उत्तर/तुम्हीं से/ ये-/ सुलगते प्रश्न तेरे!!/असलियत वर/छोड़ रहना-/इश्तिहारों के नगर में'' (पृ० 85)

कविता के संदर्भ में कवि न ढर्रे में ढल जाना चाहता है न खेमेबाज़ राजनीति के कारण जड़ीभूत सौंदर्य और यांत्रिक लेखन के घेरे में ही फंस जाना स्वीकार करता है। वह स्वतंत्र मन और बुद्धि से जन-जन के प्रति प्रेम को कविता का विषय मानता है।

5.1.9.2 जीवनगत विसंगति और मानव-मूल्यों का ह्रास कवि 'मधुप' ने आदमी के जीवन की घुटन, संत्रास और विसंगति के साथ-साथ महानगरों के जीवन की भागदौड़ में समाप्त हो रहे कोमल भावों को भी अभिव्यक्ति दी है। उसे लगता है कि वाहनों के कर्ण भेदी शोर में कोमल कठोर आवाज़ें डूबती रहती हैं, सौंदर्य-प्रसाधनों की खुशबू पसीने की गंध में दबकर अस्तित्व खो देती है, पान की जुगाली करते हुए अनगढ़ दांत उबकाई का वितरण करते रहते हैं और लिपस्टिकी मुस्कान खण्ड-खण्ड होती रहती है, लोग किसी की परवाह नहीं करते। ऐसी वीभत्स जीवन-स्थिति में आदमी को विहगों के गीत, घाटियों के हरित रूप, चिनारों की छाँह, प्यास बुझाने वाला ठण्डा निर्मल जल नहीं मिल रहा बल्कि उसका जीवन तेज़ तेज़ाबी लू में झुलस रहा है, वह मरुभूमि में भटक रहा है।

शहरी जीवन में प्रकृति की सहज पहचान उपेक्षित हो गई है, दूब तक प्राकृतिक सौंदर्य से परिचय नहीं कराती। प्रकृति की उपेक्षा के कारण महानगरीय जीवन दुर्गंध, धूल और धुआं बन कर रह गया है, हवा हवा हो गई है, शहर में चिनारी छांव मात्र खजूर का पेड़ होकर रह गई है, महानगरों में भटक रहा कवि बार-बार अपने प्राकृतिक परिवेश का स्मरण करता है और अनुभव कर रहा है कि बीत रहे क्षण के साथ-साथ उसका प्रकृति से राग छूटता जा रहा है। उसे लगता है कि प्रकृति के रंग इस बार भी थिरकें होंगे परन्तु पहले जैसे नहीं, राग-बंधन टूटते चले जाने से अनुभूति की तीव्रता भी घट रही है।

"ओढ़ वृक्ष पर चूनर झलमल रवि-किरणों की/लिख दी होगी/खुशबू-पाती नर्गिस ने भी गाये होंगे-/गीत मधुप भी कैसे-कैसे! मगर न वैसे!!" (पृ० 42)

महानगर में आदमी को उन्मुक्त आकाश, हवा की थपकियों, परिंदों के गीतों, झरनों के महाकाव्यों का संसार याद आता रहता है। उसे अपने मूल से, अपनी ज़मीन से छूटकर जीवन जी पाना असहनीय हो रहा है, अपनी मिट्टी से दूर शहरी संस्कृति दमघोटू है और तनी हुई नागफनी जैसी कंटीली भी। शहरों में आयातित संस्कृति बढ़ रही है। कवि को लगता है कि नागफनी के कांटे आवारा कुत्तों की तरह कुंवारी गंध को सूंघते फिरते हैं। वह शहर के क्यूरियो शाप से बाहर निकल कर खाली पड़े रह गए झोले को सार्थकता देना चाहता है। शहर में उसे मुर्चा खाये खिलौने और अप्रासंगिक हो गई पोथियों के पृष्ठ ही मिले हैं। इसी कारण वह सारी गर्द झाड़ कर प्रकृति की खुली ताज़ा हवा में लौट आने की प्रेरणा देता है।

कवि 'मधुप' ने भारतीय जीवन की विसंगति और कुण्ठाओं को भी अभिव्यक्ति दी है। उसे चिंता है कि कब तक आदमी बासी अखबार की जिंदगी जैसा जीता रहेगा ? कब तक पदाघात सहेगा ? कब तक उसके माथे पर खाक जमी रहेगी ? आदमी कहर जीने को विवश है, उसने होंठ सी रखे हैं और छद्म की अपाट खाई में पड़ा है, उसके सारे श्रम का फल तो कोई और ही भोग लेता है। बिडम्बना तो यह है कि उसने न वास्तविक सच को हेरा है, न ऐन्द्रजालिक करतबों और झूठे वायदों को झुठलाया है बल्कि स्वयं को ठगा जाने दिया है और स्थिति यह है कि आदमी विश्वास गंवाकर संशयग्रस्त होकर रह गया है –

"विश्वास की बालियां/संशय की चिड़ियां चुग गईं/रह गई केवल/सीकुर-भूसी/आंखों के सामने!!/सच है क्या ?/सच को तलाशें यदि/रह जायेगी मुट्ठी/ रीती की रीती ही!!!" (पृ० 57)

झूठे नारों के विरुद्ध थोड़ी हलचल होती भी है तो मात्र फैशन की तरह, कोई आमूलचूल परिवर्तन नहीं होता, सुखद भविष्य की प्रतीक्षा बांझ ही रहती है। इसी संदर्भ में कवि महिला वर्ष पर संभ्रान्त महिलाओं द्वारा चलायी कल्याण योजनाओं को धोखा ही मानता है।

कवियों को संज्ञा, प्रतीक, व्यंजना और अर्थ से साक्षात्कार आदि पर बहस करने की जरूरत नहीं क्योंकि इन्हीं बहसों की आड़ लेकर मौकापरस्त शक्तियां लाभ उठा लेती हैं। जब तक उन पर सीधी चोट नहीं पड़ती, मौकापरस्त शक्तियां तब तक साधारण आदमी के श्रम को महत्व न देकर सारी प्रगति का यश मुफ्त में कमा लेते रहेंगी। क्योंकि मेहनतकश लोगों की नियति यही रह गई है कि वे निकम्मे लोगों के सम्मान का साधन बनकर रह गए हैं, उनका महत्व उपेक्षित है, वस्तुतः जिन्होंने बंजर तोड़े हैं वे धूल की परतों में गुम हो गए हैं जबकि मौकापरस्त कीमियाई खाद और विकसित बीज के बूते कृषि पंडित बन जाते हैं। इसी कारण आम आदमी के गुलाब के सपने नष्ट हो रहे हैं और जीवन गुलाब की अपेक्षा नागफनी के कांटों से भर गया है।

5.1.9.3 राजनीतिक स्वार्थांधता कवि ने जीवन-विसंगति का कारण माना है भारतीय जन नेता को, जो कुर्सी से चिपका आंख की तरह आदमी को देखता है और उसे आदमी नहीं रहने देता, मशीनी खिलौना बना देता है। कवि इस नेता के कोलाज़ को आंखें उघाड़-उघाड़ कर देखता रह जाता है। कवि नेता की अवसरवादिता को उघाड़ने के साथ-साथ उसकी सत्ता और सर्वग्रासी वृत्ति को भी बिम्बित करता है –

''मेज की-/चौड़ी चिकनी चमचमाती सतह पर/हाथ नहीं,/पंजे/नर भक्षी व्याघ्र के!!/ जिनके नखों पर/अपनी उपस्थिति/रेखांकित करते/बासी-टटके/खून के -धब्बे!!'' (पृ० 32)

क्रूर सर्वग्रासी वृत्ति के कारण उसमें मानव-मूल्य का रत्ती भर शेष नहीं रह गया, मानव के नाते वह खोखला है, मात्र झंझराया डिब्बा। नेता के पास आत्मा नहीं है, आत्मा को खोकर उसने जेबें भर ली हैं। कवि यह भी जानता है कि आम आदमी की तरह नेता भी अन्तर्विभाजित-सा है, कुछ क्षणों के लिए वह अपनी वस्तुस्थिति को छिपा लेता है, जबकि है खुद भी बिका हुआ माल ही, उसे भी अपने-आप पर अधिकार नहीं, उसके भीतर का चिनार-वुल्लर हिम पिण्ड-सा पिघल कर भाप बनकर उड़ गया है।

अपने खोखलेपन की कलई खुल जाने के भय के कारण ही नेता नारे देते रहे हैं और इस कंटीले आकर्षण में आम आदमी को फांस लेते रहे हैं, कुएं की कच्ची जगत पर खड़े होकर बार-बार झूठा दावा करते रहे हैं कि सूरज उनकी जेब में है, अत: सूर्यकामी उनके गुट में शामिल हो जाएं। परन्तु आदमी की विडम्बनस्थिति ज्यों कि त्यों रही है। हमारी विडम्बना यह है कि हम जानते हैं कि हरेक ऊंचे आसन के नीचे तलवार है, फिर भी हम तहखानों के दरवाज़े के सामने माथा घिसते हैं, दुंब दबाते हिलाते हैं, श्रद्धा के स्तोत्र, नमस्ते व गुडमार्निंग गाते हैं। हम धृतराष्ट्र भी नहीं हैं कि इन द्वारों के पार के संसार को देख नहीं पाते बल्कि सच तो यह है कि पेट की पट्टियों ने हमें गांधारी बना दिया है।

कवि नेताओं के वाग्जाल, भाषणबाज़ी और अखबारी प्रचार पर भी चोट करता है। उसे दु:ख है कि तीन दशक लम्बी स्वतंत्रता का पौधा पेड़ बन गया है, नेता बार-बार यही दुहाई देते हैं परन्तु इस पेड़ से छाया नहीं उमस ही बढ़ी है। नेता बस्तियों में आकर स्वतंत्रता के सुख का भाषण झाड़ कर चले जाते हैं जबकि अब तो गंवार भी वस्तुस्थिति को समझ रहे हैं –

''गंवार ही सही/हमारी भी तो आंख है।'' (पृ० 37)

स्थिति यह है कि सपना सपना नहीं रहा, खुली आंख की दास्तान हो गया है। और यह दास्तान बड़ी त्रासद है –

''देख रहा मैं भी, लांघ/देहरी-/तीन-तीन दशकों की,/कुर्सियां ऊंची/जिन पर उगी/ चौड़ी-चपाट/नागफनी/बोझ तले पायों के/पीड़ा कराह रही/उखड़े गुलाब, चमेली की।''(पृ०22)

राजनेता और राजनीति ने आदमी के जीवन को अवरुद्ध कर रखा है, इसी कारण

कलाकारों के हृदय में भी शैतान आ घुसा है और मल्लाह स्वयं ही किश्ती को भंवर में ले आए हैं, आदमी आप ही अपना कत्ल कर रहा है, अपनी चेतना का सीना चीर रहा है। राजनीति के कारण ही आत्मविभाजित आदमी दोगलेपन का शिकार हुआ है, वह घर के बाल नौकर को डांट पिलाता है जबकि देश के बच्चों की दुर्दशा के सुधार के लिए भाषण भी देता है, वह महत्वाकांक्षी भी है और भीतरी मांग को कैद भी रखता है, वह जेठ की तपती भट्ठी में जी रहा है और प्रेमिका की हरी शीतल छाया भी चाहता है। स्पष्ट है कि वह जीवन और जल का सम्बन्ध जोड़ता हुआ सुखद भविष्य के लिए भगीरथ प्रयत्न करता है परन्तु वस्तुस्थिति में कोई अन्तर नहीं ला पाता।

अंततः-कवि स्वतंत्र देशवासियों को सम्बोधित करता है कि वे अपनी आंख, जुबान और चेतना को जागृत रखें, आत्मा को सुविधा पर कुरबान न करें, स्वाधीन होने के नाते अपने आप को पहचानें, स्वाधीन रहें क्योंकि भाग्य का हवाला देकर उसे बौरायी बादाम की डाली के पास से दूर रखा जा रहा है और वह गले से लिपटी बबूल की बांहों को ही अपना भाग्य समझ कर खुश है, आंखें मूंद कर खिलाई जा रही अफीम खा रहा है, जबकि अधिकार की प्राप्ति के लिए दृढ़ निश्चय तथा संघर्ष-चेतना भी जरूरी है। चेतना का अरुण फूल ही उसका दाता और भ्राता है, जो रोम-रोम में भीगी गन्ध को संचरित करता है, निशब्द छन्द गाता है, आंखों में आशा भरता है। इस अरुण-फूल के सहारे वह अंधकारों से लड़ता है, इसी के बल पर वह राजनीति के सभी वार सहन करता हुआ संघर्षरत हो उठता है और स्वार्थ प्रेरित नेताओं के षड्यंत्र के विरुद्ध संघर्षरत रहने का संकल्प करता है –

> "इन्हीं नकाबपोश कठपुतलों ने/खिलाई है अफ़ीम/बहुतों को यहां/नहीं तो/वनों-बागों की शुद्ध हवा/और सुनहरी किरणों की भारी खेप को/बाहुओं में भरने में समर्थ/लोटस ईटर्स नहीं हो गये होते!!/रचता रहूंगा मैं 'षड्यंत्र'/मारो पत्थर-कांटे अनन्त।!!"

(पृ०19)

इन कविताओं का शिल्प भी जिन्दगी की ऊबड़-खाबड़ जैसा ही है, रागातिरेक से जुड़ी कोमलता की अपेक्षा अक्ड़पन लिए हुए। भाव, बोध और शिल्प के धरातल पर हिन्दी की मुख्यधारा की कविता के समकक्ष बैठ रही ये कविताएं प्रकृति, संस्कृति, नगरीय प्रदूषण, जीवन-विसंगति, नेता-आचरण आदि पर अच्छा चिंतन प्रस्तुत करती हैं।

5.1.10 सांप मेरे साथी हैं डा० राजकुमार के 1985 ई० में प्रकाशित कविता-संग्रह 'सांप मेरे साथी हैं' में 41 कविताएं संकलित हैं, जिनमें प्रणयानुभूति और जीवन की विसंगतियों के अनुभूत भाव का अच्छा रूपायन हुआ है। इन कविताओं में ऊब, घुटन, संत्रास आदि का फैशनवत चित्रण न होकर सकारण प्रतिक्रियाओं को महत्व मिला है। इन कविताओं का मूल्यांकन निम्नलिखित है।

5.1.10.1 प्रणयानुभूति का स्वरूप कवि प्रणयानुभूतिजन्य पीड़ा को सहन करता हुआ धीरे-धीरे मोहभंग की स्थिति में पहुंचा है। उसे प्रारम्भ में रूपाकर्षण खींचता है, मांसल सौंदर्य के

उपभोग की ललक के कारण वह ऐन्द्रिय वासना या सात्विक प्यार के दोनों छोरों के बीच भटकता है। यहां कवि महसूस करता है कि ऐन्द्रिय भोग उसके लिए मृगतृष्णा ही बना रहा है। वस्तुत: यही मृगतृष्णा उसकी कविता का केन्द्रीय भाव है और इसी भाव के अन्तर्गत कभी वह रूपाकर्षण से ग्रस्त टूट-टूट कर प्रेमिका को चाहता है तो कभी विकर्षण की तीखी अनुभूति को रूपायित करने लगता है।

आकर्षण और विकर्षण की दोनों ही मन:स्थितियां सकारण हैं और इन भाववृत्तों की रूपायिति बिम्बात्मक है। कवि कहता है कि मांसल सौंदर्य के भोग के बिना प्यार नहीं पनप पाता जबकि मांसल उपभोग मृगतृष्णा ही बना रहता है -

> ''यह तेरा उघड़ा हुआ चेहरा/और/शहरीले-सागर-सा लहराता हुआ जिस्म/ जिसे मैं/ पीना चाहता हूं/ओ मेरे प्यार/मैं एक और मृगतृष्णा जीना चाहता हूं।'' (पृ० 29)

दिक्कत यह है कि सात्विक प्रेम के क्षेत्र में मांसल भोग को उपेक्षा मिलती रही है, कवि को भी वासना-उद्दीप्त समझकर प्रियतमा त्याग देती है। और वह परित्यक्त-सा मरुभूमियों में भटकता है, मरुभूमि के सरकण्डों के अंगोले उसे छीलते हैं, बींधते हैं, परन्तु उसकी पुकार अनसुनी रह जाती है। वह उपेक्षित छूट गया है जबकि प्रियतमा ने ही उसे प्यार के इज़हार के लिए उकसाया था।

कवि यह भी महसूस कर रहा है कि उसके उपालम्भ फलीभूत हुए हैं, प्रेमिका सम्पूर्ण स्निग्धता लिए हुए समर्पणहित लौट आई है। उसने भी सारी कटुता भूल कर उसे स्वीकार कर लिया है। परन्तु विडम्बना यह है कि संशय बना रहता है, उसे विश्वास ही नहीं कि वह सच्चे मन से लौटी है, विश्वास ही नहीं कि यह प्यार अटूट रहेगा। इसी कारण वह मन ही मन स्वयं को धोखे और भ्रम के लिए तैयार किए हुए है और संकल्प-सा कर रहा है -

> ''तुम लौट आई हो/तो आओ/मैं तुम्हें/स्वीकार करता हूं/एक दफा और सही/प्यार करता हूं'' (पृ० 43)

यदि दोनों पक्ष अपनी-अपनी धुरी पर टिके रहें, किसी भ्रम या बरगलाहट में फंसे बिना परस्पर आकर्षण और समर्पण में बंधे रहें तो जीवन का प्रत्येक क्षण सरस और आर्द्र हो जाता है, सभी ऋतुएं सार्थक हो उठती हैं, धरती और सूरज के प्रणय-रूपक के माध्यम से इसी विचार को कवि अनुभूतिसिक्त रूपायिति देता है। जब धरती अपनी धुरी पर घूमती हुई सूरज को धरती है तो क्या स्थिति होती है, देखें -

> ''जब तुम्हारी धुरी/अपनी थी/तुम धुरी पर घूमती हुई/सूरज को धरती थी/ स्निग्ध स्पर्श से/सूरज भी/तुम्हें सहलाता था/कभी तप्त/तो कभी/आर्द्र हो जाता था/ वह सार्थक भाव चक्र था/ क्रम से ऋतुएं आती थीं/रूप, रस, गंध लुटा कर/तुम्हें सार्थक कर जाती थीं।'' (पृ० 72)

जब लौट आई प्रियतमा का प्यार स्वीकृत होता है तो फूलों का आदान-प्रदान होता है,

फ़ूलों से अधिक प्रेमिका को सहेजा जाता है ताकि वह अपने महत्व, अस्तित्व आदि के होने का अहसास कर सके। परन्तु ये स्थितियां अधिक देर टिकती नहीं, कहीं खीजे हुए गुलाब उपेक्षित-से बिखर जाते हैं, कहीं बेमौसमी गुलाब मांग जाते हैं, मांगें बढ़ जाती हैं, मांग पूर्ति के लिए प्रेमी जीवन की बाज़ी भी लगा देता है परन्तु इस सारे उपक्रम में उसके ज़ज़बात जख्मी हो जाते हैं क्योंकि प्रेमिका बेवफा हो गई होती है। बेवफाई से पीड़ित-सा प्रेमी इश्क की चौहद्दियों से बाहर निकल आता है और वह अपना फूल खिड़की से बाहर छिटक कर अलग हो जाता है।

वह इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि प्रेम की अनुभूति की शिद्दत प्रेमिका के स्वार्थों के कारण बार-बार घायल हो रही है, प्रेमिका है कि अपनी धुरी पर नहीं, किसी भ्रम और बहकावे में आ रही है, जब उसकी धुरी किसी अन्य के हाथ में आ जाती है तो सारा प्रणय-व्यापार गड़बड़ा जाता है, विवशता और दोषारोपण ही हाथ रह जाता है, फूलों का आदान-प्रदान बीत जाता है, सूखे फूल विसर्जित हो जाते हैं, वे दोनों विरोधी दिशाओं की तरह अलग हो जाते हैं। इस स्थिति में प्रेमी अतीत हो चुके प्रणय-क्षणों का स्मरण करके रह जाता है। जबकि फूल अब भी खिलते हैं, मुस्कराते हैं, चटखते हैं बल्कि प्रेमी को उकसाते हैं और वह अन्तर्लीन-सा प्रियतमा की स्मृति में खोया हुआ रह जाता है। वह उद्भ्रान्त-सा मन:स्थिति में डूबा रहता है।

"पलकें झुकाए/धीमे-धीमे आते हो तुम/पर/तुम नहीं आते/भ्रम होता है/ जो हृदय में तैरता तैरता/आंखों में आ ठहरता है।" (पृ० 12)

प्रणय क्षेत्र में वह अनेक प्रकार के षड्यंत्रों को भोगता है, सहन करता है, मात्र इस इंतज़ार में कि प्रियतमा के मन में कभी तो उसके श्रम और समर्पण-भाव के प्रति सुहृदयता पैदा होगी, कभी तो वह उसे उपकृत करेगी, सह-अनुभूति अर्थात् यूनिसेनिटी में आएगी। परन्तु ऐसे क्षण बहुत कम आते हैं जब आकाशबेल जैसी लिपटकर वह उसके साथ चलती है। उसे तो प्राय: अभाव ही सताता रहा है, बेकार आदमी की सुबहें मानो धूप से चिलकती दुपहरें हो जाती हैं, महानगर की सड़कों पर भटकता हुआ वह प्रेम की उपेक्षा को पहचानता है। जबकि वह जीवन की ऐसी विसंगति से अनजान रहा था। अभाव-पीड़ित प्रेमी की मनोदशा का चित्रण देखें-

"लेकिन फिर वही सब कुछ/जिसके बीच रहकर/आदमी नपुंसक हो जाता है/भीतर तक जंगा जाता है/और थकी टांगें, हताश मन, घायल आंखें लिए/किसी आवारा कुत्ते जैसा दुम दबा कर सो जाता है।" (पृ० 41)

अंतत: जब वह हर प्रकार की सहनशीलता को निभाकर भी प्रणय-क्षेत्र में उपेक्षित ही रह जाता है तो मोहभंग की स्थिति में जा पहुंचता है, वह इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि उसका प्रेम Misplaced था, प्रेम की इच्छा अन्धी इच्छा थी, मति भ्रम था। वह महसूस करता है कि प्रेमिका की मांगों की ज़मीन फैलती गई है और उसके प्रणय के अरमानों का आकाश सिकुड़ता रहा है। मोहभंग की इस स्थिति पर पहुंचा कवि काफी क्रूर हो गया है -

"परन्तु यह भी मेरी अन्धी इच्छा थी/मतिभ्रम था/तुम्हारी ज़मीन फैलती गई/मेरा आकाश सिकुड़ता गया/एक दिन अवचेतन में दबी/वितृष्णा के हल्के झटके ने/मेरे हाथों की बंसी हिलाई/तो लगा/मैं सोया रहा हूं/उथले जल में फांटी फैंक/ जो मछली मिली/उथले जल की थी, छोटी-सी।"

अंतत: कहा जा सकता है कि कवि की प्रणयानुभूति में तरलता, बिम्बात्मकता और लयात्मकता सभी कुछ है। उसकी विरह का कारण है आर्थिक अभाव जबकि प्रेमिका की बेवफाई का कारण है बरगलाहट, उक्साहट और मानसिक चंचलता। इन कविताओं में कवि ने मांसल प्रेम को ही महत्व दिया है। उसे ही वह सात्विक या अत्मिक प्रेम की पहली सीढ़ी मानता है, वह सात्विक प्रेम के समक्ष मांसल प्रेम को हेय मानता है परन्तु यह भी सत्य है कि मांसल प्रेम की तीखी अनुभूतियां सात्विकता की भाववादी कुहेलिका में नहीं फंसीं।

5.1.10.2 मानवीय अस्तित्व के खतरों की निशानदेही और राजनीति कवि राजकुमार ने आदमी के अस्तित्व को मौजूदा जीवन-स्थितियों में अनेक खतरों में घिरा हुआ देखा है। परन्तु वह खतरों के कारण और कारक पर सीधे-सीधे चोट नहीं करता, मात्र वस्तुस्थिति को संवेदन के धरातल पर उजागर करके रह जाता है। हां, आत्मवादी स्वर के कारण तीखी अनुभूतियां जितना अधिक पाठक को संवेदनशील बनाती हैं उतनी ही अधिक ये साधारणीकृत भी हैं। कवि को लगता है कि आदमी किसी अनचीन्हे संत्रास से त्रस्त है, उसकी जिजीविषा पर षड्यंत्र हावी होते जा रहे हैं। इस संत्रास के कारण हर रात उसे मृत्युतुल्य दु:ख भोगना पड़ रहा है और लोग उसकी मृत्यु को भी तमाशा समझकर तालियां पीट रहे हैं। कवि संत्रास के कारकों को नीले ज़हरीले सांपों के रूप में देखता है जो धमनियों में सरकते रहते हैं और शरीर और दिमाग को खोखला कर रहे हैं और आदमी ज़हरीले उन्मादी नशे में बापू की लंगोटी के सहारे कभी अपनी लाज़ से तो कभी कमबख्त मौसम से लड़ता रह जाता है, उसकी निरीहता और स्वप्निलता को बड़ी क्रूरता से झपट लिया जाता रहा है, उसे बेमौसमी फूल दिखाकर उसके उत्साह को मूंद दिया जाता रहा है। जबकि हर बार झूठे आश्वासनों के बूते नेता संसद की सीढ़ी चढ़ जाते हैं।

कवि ने शांति के कबूतर पर अजदहे की लपक को भी रूपायित किया है और विश्वशान्ति सी आधारहीन कल्पना की हास्यास्पद स्थिति को उसने बड़ी उल्लासजन्य अनुभूतियों के विरुद्ध त्रासद अनुभवों को रख कर प्रस्तुत किया है। वह मानता है कि आज के संसार में यथार्थ की अनदेखी और निहत्थी कल्पना का कोई महत्व नहीं। यह सोच अंतत: 1962 ई० में आत्मघाती ही सिद्ध हुई है। कविता का आरम्भ बड़ा ऊबड़-खाबड़ ढंग से हुआ है --

"एक सुबह बहुत शोर था/लोगों की निगाह में/लालपत्थर पर टिका/एक ऊंचा डण्डा था/ऊंचा उड़ता हुआ झण्डा था !" (पृ० 56)

यहीं नेहरू के बाद के जननेताओं के स्वभाव, देश के दुर्भाग्य और कार्यकारी शक्तिओं को कवि एक साथ उद्‌घाटित कर देता है। इन राजनीतिक सांपों की वजह से आम आदमी संत्रस्त

है, उन्मादित है, ज़हर जी रहा है, निरीह खरगोश जैसा अजदहों के गुंजलक में फंसा छटपटा रहा है, यथार्थ को पहचान कर टेढ़ा-मेढ़ा भागने के लिए विवश है। वह आकाशीय सपने देखना भूल गया है। मक्कार मौसम में जैसे-कैसे लाज बचा रहा है, तन ढांपने के लिए मर खप रहा है, भीतर ही भीतर ज़हरीले तूफ़ान को झेलता हुआ मृत्यु की बाट जोह रहा है। इन सांपों से मिल रही संवेदना और प्रेम भी उसे भयावह डंक मार रहे हैं।

मौजूदा राजनीतिक तंत्र को कवि प्रेतों की हवेली जैसा मानता है, जिस की मुण्डेरों पर चमगादड़ों की बीठें हैं, भीतर उल्लुओं की फड़फड़ाहट है, डरे हुए कबूतरों की गुटरगूं है और आम आदमी भटके हुए यात्री की तरह आ फंसा है। 'प्रेतों की हवेली में' कविता में कवि एक फैंटेसी का विकास करता है कि सारा माहौल रहस्यमय हो उठा है, अंगीठी में सुलगते कोयलों की आग में ज़हर मिली तपिश है, यहां काली प्लेटों में टोस्ट, आमलेट और व्हिस्की सर्व होते हैं, परन्तु यहां किसी को नींद नहीं आती, भय और संत्रास उस पर हावी रहता है, सफेद पर्दों से ढंके अलग-अलग कमरों में सोना पड़ता है, प्यार करने का अवसर तक नहीं कवि इसी शोषित मनस्थिति को प्रेम, भय, कपट, संदेह, रहस्य और शोषण के बिम्बों के द्वारा प्रस्तुत करता है –

"धीरे-धीरे/हम उतरते हैं तहखाने की सीढ़ियां/और परत-दर-परत फैलता जाता है/बेहोशी का खुमार/चुटकियां बजाता हुआ-सा खुलता है एक किवाड़/और खून की लकीरें/फैल जाती हैं रेशमी प्रकाश में-/हवेली का बूढ़ा प्रेत/अचानक अट्टहास करता है/मेरी मित्र की रक्तहीन गर्दन को चूमता हुआ-सा।" (पृ० 32)

और जब फैंटेसी खुल जाती है तो कवि लोक तत्त्वों के सहारे आदमी की हत्या को रेखांकित कर देता है –

"एक पल के लिए/रात चमक उठती है टूटे तारे की चमक से/और हमारी मिट्टी/चूहों के पंजों में फंस जाती है।" (पृ० 32)

कवि एक अन्य फैंटेसी में मौजूदा तंत्र को चूहों की चालाक कुतरन और षड्यंत्र से ग्रस्त भी मानता है। वह मानता है कि चूहे आदमी से अधिक सतर्क हैं, अपनी त्रुटियां पर -दोष-आरोपण द्वारा छिपा लेते हैं। मौकापरस्ती के तहत मिलावट करते हैं और देश के स्वाभिमान की हत्या करने से भी नहीं झिझकते । जबकि विडम्बना यह है कि हमारे बुद्धिजीवी अभी भी फैंटेसी में जी रहे हैं –

"देश दुबक रहा है बिल में/और फैंटेसी में जीने वाला शख़्स/उंगलियां मरोड़ता है/जमुहाई लेता है/खिड़की खोल देता है/ताकि ताज़ी हवा को पिये/और 'चूहों की जय' 'चूहों की जय' के नारे सुनता हुआ जिये ?" (पृ० 34)

इन सांपों, प्रेतों और चूहों के षड्यंत्र में फंसा हुआ समूचा देश रहस्यमय हवेली, बिल और अंधी गली हो गया है। बुद्धिजीवी फैंटेसी में जीने के लिए विवश है क्योंकि अंधी गली के घरों के द्वारों पर उसकी दस्तक अनसुनी और उपेक्षित रह जाती है। घरों के भीतर द्वार खोलने का

उपक्रम पूर्ण नहीं हो रहा, जन-मन की इस अवरुद्ध मनःस्थिति के कारण स्वतंत्रता दिवस पर भी कवि का मन उल्लसित नहीं होता, वह खुल नहीं पाता। उसे तो चतुर्दिक् अंधेरा ही अंधेरा दिख रहा है जो उसके अन्तर्मन पर छा गया है और इस अंधेरे के काले जादू से ग्रस्त उसकी कविता कीलित होकर रह गई है –

''सहमे-से दुबके रहते हैं/कोटर में कबूतर/कीलित-सी अटकी रहती है/ आवाज़/ काला-जादू छाया रहता है/कविता के आस-पास।'' (पृ० 59)

चतुर्दिक् फैल रहे इसी अंधेरे ने सब कुछ शून्य में बदल दिया है। अंधेरे की काली बिल्ली से डरा हुआ सूरज सफेद चूहे जैसा दुबक गया है, प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति डरा हुआ-सा अपने मन के घोड़े को विवश महसूस कर रहा है, मन अंधे घोड़े जैसा खूंद रहा है, जबकि देश अजीब-सी असमंजस में दबा हुआ कब्र के समान हो गया है।

बुद्धजीवी का दुःख यह है कि वह जन-मन द्वारा भी उपेक्षित है और राजनीतिक तंत्र द्वारा भी उपेक्षित। ऐसा निहत्था बुद्धिजीवी अन्तर्मन के अंधेरे में भटक रहा है, उसके विद्रोही स्वर अर्थहीन हो जाते हैं, उसकी आस्था ठूंठ सिद्ध हो रही है क्योंकि नेता अपने भाषणों द्वारा जिंदगी को एकरस और नीरस किए हुए हैं और लोग दो रोटियों, एक बिस्तर और बिस्तर पर औरत के जिस्मानी ताप को ही जिन्दगी समझ रहे हैं। जीवन को कोई वृहद उद्देश्य नहीं दे पा रहे जबकि एक क्षण में ही महाकाव्य पिया जा सकता है।

परन्तु कवि के ये सभी व्यंग्य, चोटें, फैंटेसियां और स्थिति-चित्र निरर्थक रह जाते हैं बल्कि उनसे अवांछित अर्थ ग्रहण किए जाते रहे हैं। बुद्धिजीवी को बौना साबित कर दिया जाता है, मिट्टी के छोटे-छोटे घरौंदों के समक्ष उसका आदम कद घिसा जा रहा है और वह बिजली की तारों में उलटे लटके चमगादड़ जैसा ज़मीन देखता रह जाता है। कहीं भी संवाद स्थापित नहीं कर पाता। उसकी कविता या विचार का कोई अर्थ नहीं रह गया –

''जैसे पिरामिडों के भीतर/सो जाती है हवा/निरर्थक चक्कर लगाकर/व्यर्थ ही/अपनी अर्थवत्ता गंवा कर/लौट आई है। मेरी बात निरूत्तर ही लौट आई है।'' (पृ० 36)

बल्कि विडम्बना तो यह है कि उसे पागल क़रार दे दिया गया है, जबकि उसने सूरज की तलाश का संकल्प कर रखा है। क्योंकि मौजूदा सूरज घटिया जासूसी नावलों के खलनायकों की तरह क्रूर करतब दिखा रहा है, किसी का फन तोड़ता है, किसी के हाथ पांव मरोड़ता है, किसी को मुक्त करता है, किसी को स्वर्ग पठाता है और शेष बचे लोगों को बंसी की धुन सुना रहा है।

विडम्बना यह है कि उसके ये प्रभु कभी प्रसन्न नहीं होते जबकि लोगों ने इनका भरसक गुणगान किया है, कभी मीरा तो कभी चैतन्य बनकर नाचे हैं। इनकी आरती उतारी है, चरणामृत पिया है। फिर भी सारे ब्रह्मांड की शांति और सुख समेटकर ये लक्ष्मी से बतियाते रहे हैं और लोगों के हिस्से में तो कांटे, आक्रोश और अंधी आस्था ही आई है। इन प्रभुओं की अंधी व्यवस्था

में जीवन- ज़हर होकर रह गया है –

''अंधी व्यवस्था के बीच/चलने को /मांसल पांव होने तो/हम चलते रहते, दशक तो क्या/शतकों का भी बोझ सहते/ज़हर पी लेते/नीलकण्ठ बन जाते/ज़हर पीने का कोई अर्थ तो होता/अंधी भटकन, उन्मादित तड़पन/झूठी अटकन/अनचाही फिसलन के सिवा/हमने क्या लिया है/कांटों की चुभन के सिवा/हमने क्या अनुभव किया है?'' (पृ० 48)

कवि 'स्वप्न-यात्रा' कविता में फैंटेसी के सहारे भवसागर के थपेड़े खा रहे व्यक्ति की त्रासदी का चित्रण करता है। स्वप्न समुद्र में लहरों के थपेड़े खाते व्यक्ति से शुरू होता है और जंगल के बीच आ फंसे व्यक्ति की उपेक्षा को चित्रित करता चलता है। फिर यह चिड़ियाघर के जानवरों के बीच आ जाता है। इन्हीं जानवरों में से अच्छे ट्रेंड जानवर चुनने की प्रक्रिया को उद्घाटित करता है, यहां कवि ने नौकरी के लिए आए बेकार लोगों की मन:स्थिति और चयन की पद्धति पर अच्छी चोट की है। विवश व्यक्ति ब्यूरोक्रेट को पटक कर उसकी छाती गोद देना चाहता है परन्तु कुछ नहीं कर पाता क्योंकि

''पर/वह तो हंसता है/हंसता चला जाता है/ और अट्टहास करता हुआ-सा उठ खड़ा होता है/'तुम मारोगे मुझे ?' तुम /? तुम नहीं मार सकते/मुझे संरक्षण प्राप्त है तुम्हारे ही लोगों का।'' (पृ० 67)

परन्तु इस स्थिति के बावजूद कवि की आस्था पूर्णतया स्खलित नहीं हुई। वह स्वप्न में मारा गया है परन्तु मां द्वारा जगा भी दिया जाता है। देश की चयन-पद्धति में घर कर गए छल-कपट को उजागर करता हुआ कवि बुद्धिजीवी वर्ग पर भी चोट करता है जो आम जनता को संगठित नहीं कर रहा बल्कि उसे अनियंत्रित भीड़ बना रहने देता है।

वस्तुत: यहां बुद्धिजीवी भी आत्मघाती स्वातंत्र्य में भटक कर रह गया है। भीड़ को वह बिना किवाड़ की अंधी कोठरी या रात दिन धुआं छोड़ती भट्ठी समझता है और इसमें मिलकर वह अपना स्वत्व नहीं खोना चाहता। जबकि कवि मानता है कि उसकी नैसर्गिक वृत्ति आदमीयत में ही निहित है, भीड़ से उसका अस्तित्व कभी अलग नहीं रह सकता। नैसर्गिक वृत्तियों की अनुभूतियां जब ज़ोर पकड़ती हैं तो उसे भी अनियंत्रित होकर भीड़ में ही शामिल होना पड़ता है। इसलिए बेहतर यही है कि वह लोगों के रेले में बह जाने की अपेक्षा उनकी शक्ति को नियंत्रित करे और दिशा दे अन्यथा अपनी वृत्ति के कारण भीड़ ही उसे भी धकिया देगी।

कवि चाहता है कि आत्मा की आवाज़ के नाम पर आदमी अपने-आप में बंद न हो। बल्कि व्यक्तिगत सुख-सुविधा की कल्पना से मुक्त होकर वह जन-जन को साथ लेकर यथार्थ जीवन के सभी अंधेरों के विरुद्ध संघर्षरत हो क्योंकि यह नेता कुछ नहीं करेंगे। नेताओं को तो कवि आवेश के क्षणों में ही महत्व दे पाता है। जबकि वह स्वयं भूखे नंगे लोगों को संगठित करने का संकल्प लिए हुए है।

इसी मन:स्थिति में कवि पूर्ण निष्ठा, ईमानदारी और सामर्थ्य सहित संघर्षरत होने का संकल्प करने का आह्वान-सा देता है ताकि स्वर्ग के हरेक देवता से लड़कर अग्निपुंज ले आया जाए।

उसे दु:ख है कि आदमी सत्ता का मोहरा बना हुआ है, जन-जन के जीवन के विनाश की भूमिका निभाने से झिझक नहीं रहा। वस्तुत: आधुनिक सभ्यता यौद्धिक भावना से ग्रस्त है और आंखों पर पट्टी बांधे विनाश की ओर बढ़ रही है जबकि समस्याएं परस्पर संवाद से भी हल हो सकती हैं।

"न जाने क्यों/हमारे स्वामियों के दांत/हमेशा साफ रहते हैं/पेट खाली/ क्यों नहीं आती उन्हें/अधिक खाने से उबकाई/इन्सान/बना रहता है सत्ताओं का मोहरा/ हर पल/विपक्षियों को रौंदने के लिए/जिसे फेंका जाता है/युद्धों की चौपाटों पर।" (पृ० 71)

कवि को यह भी दु:ख है कि आज का आदमी न अभिमन्यु बन पा रहा है न ही मसीहा। वह लम्बे नाटकों का मात्र मसखरा बन कर रह गया है। मानो इस आदमी की मां का यह प्रसव ही निरर्थक-सा होकर रह गया है। कवि को समूचा जीवन ही अंधी इच्छा की प्रतिच्छाया-सा लग रहा है, हवाओं में बारुद की खुनकी है, मांसपेशियों को बेकार जिंदगी का जंग लगा हुआ है। लालसाओं के फूल यह त्रासदी झेल नहीं पा रहे, प्यार धोखा है, स्वतंत्रता के नाम पर आदमी कठपुतली बना हुआ है, दोस्ती के नाम पर उसकी आत्मा घायल हो रही है-

"प्यार के नाम से/मेरी अर्जना है: धोखा/भूख के खिलाफ/भीख/स्वतंत्रता को खोजता/ मैं कठपुतली हो गया हूं/तार खींच देता है कोई/तो मेरी टांगें और बाजू/ लेबोरेट्री में मरे मेंढ़क के शरीर की तरह असंतुलित/फैल जाते हैं।" (पृ० 14)

मौजूदा स्थिति में आदमी अपने-आप में घुटा-घुटा निरर्थक जी रहा है, प्रकृति की सुन्दरता तक का उपभोग नहीं कर पा रहा। अपनी वैयक्तिक उन्नति की आकांक्षा भी उसे जीवन को अनजिया छोड़ने के लिए विवश कर रही है। उसकी आम जीवन से अलगाव की यह वृत्ति उसके लिए आत्मघाती होकर रह जाती है, आत्म गरिमा का आभास तो होता है परन्तु इस अनचीन्हे से उत्साह से मिलता कुछ नहीं। आदमी अकेला और तटस्थ-सा अभिशप्त होकर रह जाता है -

"इस चोटी से/न उतर सकता हूं/न लुढ़क सकता हूं/अब गलना है/अकेले और तटस्थ ही।" (पृ० 22)

इस आत्मवादी उदासी में वसंत का अच्छा-भला मौसम भी उसे कांव-कांव के शोर से भरा प्रतीत होने लगता है, सारा परिवेश टुच्चेपन से भरा लगता है, 'वसंत के इंतजार में' कविता में कवि उदासी के इस माहौल की अच्छी बुनाई करता है। कवि निरर्थकता को उद्घाटित करता

हुआ यह मान बैठता है कि आदमी के प्रयास उसके मन को पुख्ता आधार न देकर मात्र दिग्भ्रान्त होकर रह गए हैं, जबकि यही आदमी विरोधी दबाव में भी अपनी पहचान बनाए रहा है।

विडम्बना यह है कि वृहद स्तर पर हो रही अपनी उपेक्षा से वह इतना पीड़ित है कि अपने अस्तित्व को निरर्थक समझ बैठा है, जबकि संसार के सभी कर्म-उपक्रमों का बीज वही है, सभी वसंत ऋतुओं का मूल कारण वही है; वह बीज की तरह है, फूल उसी का सृजन है, परन्तु मौजूदा स्थिति में बीज की उपेक्षा हो रही है, फूल को महत्व मिल रहा है, बीज की आत्मा घायल हो रही है जबकि मिट्टी से मिलकर वही सृजन का निमित्त बनता है। आदमी को इस महत्व और उपेक्षा के द्वंद्व को कवि ने 'बीज' कविता में व्यक्त किया है। बल्कि उसकी समूची कविता की पृष्ठभूमि के रूप में ये पंक्तियां उचित हैं –

''मैं!/तिरस्कृत-सा भूमि पर गिरा/मिट्टी में मिला/जो प्रशंसा हुई/वह तो मेरे आत्मज फूल की थी/फिर भी...... मुझे लगता है/मिट्टी के लिपट कर/मैं जन्म देता हूं/वसंत को।/मिट्टी का पहाड़/जब मेरे जिस्म को दबाने लगता है/मेरा विद्रोही/मन पहाड़ को फोड़ निकलता है।'' (पृ० 23)

अंततः कवि आदमी को प्रकृति के क्रिया-व्यापारों का माध्यम समझकर उसी के समक्ष नत मस्तक भी हुआ है। वह मानता है कि प्रकृति ने ही उसे गति दी है, संवेदना दी है, राग दिया है और उसी ने माथे की झुर्रियां सहलाकर आयु आंक दी है। उसी के स्निग्ध हाथों के स्पर्श से उत्साहित होकर वह मोक्ष की सीढ़ियां चढ़ते-चढ़ते कई बार गिरा है, उठा है। परन्तु इस सारे दान के प्रतिदान के रूप में वह उसे कुछ भी नहीं दे सकता –

''जो फूल/तेरे चरण छूते हैं-/उगा नहीं सकता/उन्हें /तुम स्वयं उगाती हो/ अपने आलोक, स्नेह जल और शरीर के अंश से/मैं तो/केवल माध्यम हूं/तुम्हारी मायावी क्रीड़ा का....'' ।

(पृ० 69)

अपनी कविता की सार्थकता के प्रति वह कहता है कि धमनियों में बहते जीवन से स्पंदित यह गीत और कविताएं कसक की लय-ताल साधेंगी और उदासी से मीलित हृदय में तैरते गुलाब की पंखुडियों जैसी होठों पर खिल उठेंगी।

तब यही गीत /पुनः जन्मेगा स्निग्ध शिशु-सा और नन्हें से होठों पर/ गुलाब की पंखुड़ियों जैसा खिल उठेगा। (पृ० 39)

5.1.11 शंकरशर्मा 'पिपासु'-व्यक्तित्व और कृतित्व में शंकरशर्मा 'पिपासु' की अप्रकाशित कविताओं को 1986 ई० में प्रो० सुभाष भारद्वाज ने 'शंकर शर्मा 'पिपासु' व्यक्तित्व और कृतित्व' ग्रंथ के परिशिष्ट शीर्षक में प्रकाशित किया है। इन कविताओं को कवि 'जीवन गान' या 'अनजान साधना' शीर्षक के अन्तर्गत प्रकाशित करवाना चाहता था। इन कविताओं में पूर्व प्रकाशित काव्य-प्रवृत्तियों के दुहराव के बावजूद कवि में कुछ अधिक संयम, अनुभूति की

तन्मयता है और मौलिकता के साथ-साथ सरल-सुबोध तथा प्रवाह युक्त भाषा की अनेक छटाएं सुलभ हैं। इन कविताओं का मूल्यांकन निम्नलिखित है।

5.1.11.1 वैयक्तिक अभावों और अकेलेपन का चित्रण कवि 'पिपासु' ने अपने जीवन में उपेक्षा, अप्राप्ति का दुःख और प्रणयाकांक्षा की अपूर्ति की पीड़ा झेली है और इन सभी मांसल अनुभूतियों की तीखी पीड़ा को अभिव्यक्ति प्रदान की है। कवि को प्रतीत होता है कि उसने तो जीवन में छलकपट, दुःख, व्यंग्य, उपालम्भ और पीड़ादायक वचन ही सुने हैं, अपनापन देकर भी उसे प्रेम नहीं मिला। इसी कारण यह व्यक्तिवादी होकर आत्मपूजा को महत्व देने लगता है, अहं को तुष्ट करने के लिए लालायित हो उठता है। यहां कवि अन्तर्मुखी वृत्ति को ही अपना-आप कह रहा है और इसी अन्तर्वृत्ति के कारण कभी वह मीरा बन कर नाचा है तो कभी उसने संसार को नचाया है –

''जिसने प्रेमी बन अपने साजन को पाया/साजन में फिर अपना आप समाया/नहीं जलाए विरहा ताप/मुझे पूज्य अपना आप।'' (पृ० 100)

वह कायिक सुख-दुःख के उपभोग को ही जीवन की रीति समझता है और विश्व के भय को भूल कर भव-जीवन को राग-रंग और रस से भरपूर बना लेने का संकल्प करता है, वह असीम का आलिंगन करके स्वयं भी सीमाहीन हो जाना चाहता है। वैसे वह न तो मन के दुःख दूर कर पाया है न सुख बढ़ा पाया है, न विष को सुधा में बदल सका है। जगत में बढ़ रही तृष्णाओं की ही पूजा होती रही है और इन्हीं तृष्णाओं ने कवि के भीतर ज्वाला धधका दी है।

उपेक्षित और एकाकी ही सही कवि आम-आदमी की तरह कुछ क्रीड़ा, कुछ व्रीड़ा, कुछ आंसू, कुछ पीड़ा का उपभोग करता हुआ जीवन जीना चाहता है। गात, प्राण और नव यौवन को मधुर गान से और जीवन रस से भर लेना चाहता है, परन्तु कवि एकाकीपन से ग्रस्त है, इसलिए पीड़ा, क्रीड़ा, विरह मिलन की पीड़ा का सर्वांग नहीं जान सका।

विषमता को नियति-सा भोगता हुआ वह भयावह जीवन-संघर्ष को जीता रहा है, जीवन-सौंदर्य की आकांक्षा को पाले हुए सांसारिक यथार्थ की चक्की में पिसता रहा है और इस पीड़ा से मुक्ति के लिए किसी भी भारतीय आस्तिक की तरह वह ईश्वर की अनुकम्पा चाहता है और सांसारिक छलना और मृगतृष्णा से बचकर जीने की शक्ति मांगता है।

5.1.11.2 प्रणयानुभूति का स्वरूप कवि पिपासु ने प्रेम को जीवन-रहस्य और विश्वाधार माना है। प्रणयाकांक्षा की उसने अच्छी अभिव्यक्ति की है और माना है कि प्रणयक्षेत्र में तीव्र दाह और पीड़ा ही मिलती है, फिर भी कवि प्रेम की पीड़ा के बीच उद्भ्रान्त-सा फंसा रहना चाहता है।

इनके प्रेम सम्बन्धी गीतों और कविताओं में अनेक अन्तर्विरोध भी मिलते हैं, प्रेम बहिर्मुखी वृत्ति है परन्तु कवि अन्तर्लीन हो जाना चाहता है, अपनेपन में खो जाना चाहता है।

वस्तुतः प्रणयतृप्ति उसे मिली ही नहीं । अतः सारे दुःख को भूलकर वह हृदय में उन्मत्त खुशी महसूस करता हुआ आह्लादित होकर गा उठता है परन्तु ऐसे आह्लादपूर्ण गीत वह तभी गाता है जब सुख-दुःख, मिलन-विरह के सारतत्व को समझकर अपनी जीवन स्थिति को समझ लेता है। वस्तुतः कवि की यह प्रणयानुभूति नारी-प्रेम से धीरे-धीरे ऊपर उठती हुई असीम-अगोचर को आलिंगनबद्ध करने लगती है और यह पीड़ा घनीभूत होती जाती है।

कवि को नारी-सान्निध्य बहुत कम मिला है, इसी कारण नारी-भोग की आकांक्षा और अतृप्त वासना उसकी कविता में अचानक झलक उठती है –

''एक रोता एक पत्नी को यहां निशि वार/एक पर होती निछावर नित्य सौ सौ नार।''
(पृ० 116)

इस आकांक्षा के बावजूद कवि नारी पर व्यंग्य भी करता है कि फैशन-वृत्ति वाली नारी पति को बीच अंधकार में डुबो देती है। कवि व्यंग्य करता है –

''किन्तु पौडर लवय्या बाल डांस नचय्या। जग तरणी डुबय्या की तारीफ कैसे करेंगे? / शंकर सचेत कर बार बार यही कहें। नारी के गुलाम होके नर कैसे तरेंगे ?''(पृ० 113)

उपर्युक्त दोनों उद्धरणों में भारतेन्दु और नाथुराम शर्मा 'शंकर' की कविताओं की प्रतिध्वनि काफी स्पष्ट सुनाई पड़ती है।

कवि 'पिपासु' को मुक्त-हस्त प्रेम नहीं मिला। वह प्रेम के महत्व को स्वीकार करता है परन्तु स्वाभिमान गंवा कर नहीं। वह प्रेमिका के निर्द्वन्द्व प्रेम को चाहता है। न किसी जोर जबरदस्ती से प्रेम नहीं पाना चाहता है–

''सच कहना क्या तेरे सपनों में मैं भी आता हूं रानी ?'' (पृ० 149)

5.1.11.3 प्रगतिशील चेतना और देशप्रेम कवि ने कृषक और मज़दूर के प्रति भी अपनी संवेदना व्यक्त की है। कवि निर्धन समाज के प्रति करुण गीत गाता हुआ पूंजीवादी लोभ, महाजनी ऋण-व्यवस्था द्वारा किए जा रहे शोषण का विरोध करता है कवि शोषकों द्वारा किए गए पूजा पाठ को पूंजीपति का ढोंग कहता है। वह स्पष्ट कहता है कि पूंजीवाद के कारण फैल रही हिंसा को समाप्त करके मानव-मंगल के लिए आवाज़ उठायी जाए। वह जन-जन का दुःख बांटने का संकल्प भी करता है परन्तु इन सभी जीवन-गतिरोधों को दूर करने के लिए अंततः वह प्रभु को ही पुकारता है, उसे ही उपालम्भ देता है।

5.1.12 सरसिज सुश्री शकुंतला सेठ 1942 ई० के आसपास से लिख रही हैं । 1986 ई० में प्रकाशित उनके प्रथम काव्य-संग्रह 'सरसिज' में कुल 39 रचनाएं संकलित हुई हैं, जिनमें सुख-दुःख की अनुभूतियां हैं, आनन्द की गुदगुदाहट भी और पीड़ा की चुभन भी। इन रचनाओं में देशभक्ति, प्रकृति-प्रेम, प्रेम-विरह, कर्म का संदेश, रहस्य-अनुभूति, पूंजीवाद का विरोध आदि

विषयों की बड़ी तीव्रतापूर्ण और आवेगजनित अभिव्यक्ति हुई है। इनकी कविताओं का मूल्यांकन निम्नलिखित है।

5.1.12.1 देश–प्रेम कवयित्री की देशभक्ति की भावना बड़ी उदात्त है, भारत-भूमि की वंदना करती हुई वह देश के भौगोलिक स्वरूप को रूपायित करती है। उसे लगता है कि देश में धन सम्पदा तो है ही कण-कण में जीवन-धारा भी बहती है। कवयित्री भारत-माता को सिंहवाहिनी के सशक्त रूप में बिम्वित करती है। शक्ति और वीरपूजा के अतिश्योक्तिपूर्ण बिम्बों के बावजूद उन्होंने साहस, सजगता, त्याग और बुद्धि का अवलम्ब नहीं छोड़ा और मातृभूमि के स्वाभिमान की रक्षा और शत्रु के दंभ को चूर-चूर करने के लिए जन-शक्ति का आह्वान किया है। वह मानती है कि भारत भू पर तप, त्याग और नियंत्रित बल को महत्व मिलता है। इसके खेत-खलिहान सम्पदा से भरे हैं, जिनकी रक्षा के लिए सजग प्रहरी अपने प्राण तक न्यौछावर कर सकते हैं। भारत मां की वंदना करती हुई कवयित्री अपनी कोमल श्रद्धापूर्ण भावनाओं को उदात्त भावों और सुगठित शिल्प के आधार पर व्यक्त करती है।

वह भारत मां का शृंगार करना चाहती है, उसे फूलों की माला पहनाना चाहती है, परन्तु यह साधारण फूल नहीं बल्कि शहीदों के शीश हैं। चीनी आक्रमण के विरुद्ध कवयित्री ने संयमित वीरभाव सहित संवेदनपूर्ण जन-उद्‌बोधन किया है। वह ललकारती है कि इस धरती के नागरिक अपनी धरती और गगन के स्वामी हैं और इन सबकी रक्षा के लिए अमर, अमिट, शाश्वत, गौरवमयी मृत्यु का वरण भी कर सकते हैं। उसे अपने देश की जनशक्ति पर पूर्ण भरोसा है परन्तु अरिदल के विरुद्ध सजग, सचेत और सशक्त रहने की प्रेरणा देती है, वह वीरता और कुरबानी को देश की आज़ादी का मूलमन्त्र मानती है। कवयित्री जनशक्ति को सम्बोधित करती है –

"शत्रु को निर्बल समझना/ है नहीं सिद्धांत नय का।
एक चिन्गारी की उपेक्षा, पथ बनाती है प्रलय का।" (पृ० 24)

5.1.12.2 प्रदेश–प्रेम देशप्रेम की भावना के साथ-साथ कवयित्री ने क्षेत्रीय प्रेम को भी चित्रित किया है। 'डुग्गर की गंगा' कविता में उन्होंने तवी नदी के प्राकृतिक सौंदर्य को बिम्बित करने के साथ-साथ प्रदेश, लोक जीवन और लोकविश्वासों का भावविह्वल और हृदयग्राही चित्रण किया है। लोक मानस के महानायक बाबा जित्तो के कल्याण-कर्म, जम्मू के राजा-महाराजाओं की न्याय नीति और प्रजावत्सलता का काव्य-रूढ़ियों के सुंदर नियोजन द्वारा वर्णन किया है।

5.1.12.3 भारतीय जनजीवन का प्रतिबिम्ब और सांस्कृतिक धरोहर के प्रति प्रेम कवयित्री ने भारतीय जन-जीवन विशेषकर दाम्पत्य, सौहार्द्रता, कोमलता, परस्पर प्रेम और श्रद्धा की अनेक झलकियां प्रस्तुत की हैं। यहां उनका नारी-मन बड़ा सात्विक चित्रण करता है। पति को पत्नी कैसे रिझाती है ? देखें –

"शम्भु प्रिया गिरिराज कुमारी/नव नव चूनर ओढ़ सुभग तन/प्रिय प्रियतम को रीझ

रिझाती/प्रतिपल रूप धरे/नित नूतन।''   (पृ० 6)

कवयित्री ऐसे सश्रद्ध जीवन की रक्षा के लिए देश के सपूतों का आह्वान करती है। वह मानती है कि भारतीय संस्कृति की मूल भावना है—वसुधैव कुटुम्बकम्। इसी भारत भू पर मानव-प्रेम, सर्वमंगल कामना, एकता और बलिदान और परहित विषपान की करुणाजन्य भावनाओं ने जन्म लिया है। भारत-भू बिना किसी भेदभाव के सभी पुत्रों पर बराबर ममता लुटाती है, सभी पुत्रों ने परस्पर मिलकर ही उसे आज़ाद कराया है, फिर उनमें परस्पर ईर्ष्या, द्वेष क्यों फैल रहा है ? वह चाहती है कि साहस और संघर्ष-शक्ति द्वारा पथ की सभी बाधाएं उखाड़ दी जाएं, लोग आपदाओं के समक्ष न डगमगाएं न नियंत्रण खोएं, पथ पर उनसे प्रियबन्धु छूट भी जाएं तो चिंता न करें। वह लोगों को देश की उन्नति के लिए अग्रसर होने का आह्वान देती है।

देश के भीतरी शत्रुओं के प्रति भी वह सजग और साहसी उपक्रम करने का आह्वान देती है। उसे प्रतीत होता है कि जिस भारत-मां ने अपने पुत्रों को रक्त बिंदुओं से सींचा, वही मां आज संत्रस्त है। अनाचार, पाखण्ड, व्यभिचार, नारी-अपमान, अहंकार और अत्याचार की कुवृत्तियां बढ़ने लगी हैं। वह सचेत करती है कि पूंजीपति सर्पों की संख्या बढ़ती जा रही है, उनकी विषैली फुंकारों ने धरती का कण-कण विषमय कर दिया है, कृषकों मज़दूरों का रक्त चूस-चूस कर ये उनके जीवन को मृत्यु तुल्य बना रहे हैं । कवयित्री इन सर्पों को समाप्त करने के लिए जन-शक्ति का आह्वान करती है कि पूंजीवादी व्यवस्था अब अधिक दिन टिकेगी नहीं, अत: वर्ग संघर्ष के लिए जूझो, पूंजीपतियों के कारण ही जनजीवन में अभाव, उपेक्षा, अत्याचार और विसंगतियां बढ़ रही हैं, आदमी का मन बुझा-बुझा-सा है।

विडम्बना यह है कि रिमझिम वर्षा भी बाढ़ बन कर निर्धन की झोंपड़ी बहा ले जाती है। कवयित्री ने वर्षा के रौद्ररूप का अच्छा करुणाजन्य और आर्द्रतापूर्ण सशक्त सम्प्रेषणीय चित्रण किया है और शोषित निर्धन व्यक्ति और समाज की पीड़ा और त्रासदियों का हृदयग्राही चित्रण किया है। वह चाहती है कि शीत, घाम, बारिश को सहन करके अन्न उपजाने वाले कृषकों के बच्चे भूख से और बिना उपचार के न मरें, वह चाहती है कि हम नये जोश, आत्मविश्वास और उत्साह से प्राकृतिक सम्पदा का दोहन करें।

परन्तु वह यह भी जानती है कि स्वतंत्र भारत में असंतोष और अतृप्ति की ज्वाला भड़क उठी है, भ्रातृ प्रेम और स्नेह की जगह घृणा की आंधी ने ले ली है, हड़तालें हो रही हैं, विडम्बना यह भी है कि चोर चोर में मिलीभगत चल रही है, नेता की करनी कथनी की असंगति ने भी देश के जन-जीवन में चतुर्दिक् विसंगति खड़ी कर दी है। जबकि मशीनीकरण, आधुनिकीकरण के कारण हो रहे मूल्यहनन और भाषा, प्रान्त और धर्म के नाम पर फैल रही भेदभाव की भावना और जीवन की विसंगति को दूर करने के लिए कवि-दायित्व और अधिक बढ़ गया है। वही नवक्रान्ति का उद्घोष कर मृगतृष्णा में भटके मानव-मात्र के घावों पर मरहम लगा सकता है, वही उसे ध्वंसक अस्त्र-शस्त्र के निर्माण की होड़ से हटा सकता है।

ये कविताएं भाव, लय, ताल और अनुभूति की समार्द्रता की दृष्टि से उत्कृष्ट हैं, साथ ही साथ इन कविताओं का भावबोध नया न होते हुए भी इनमें संयम, सहजता, माधुर्य और जन जन के प्रति करुणा का सुंदर सामंजस्य हुआ है।

5.1.12.4 प्रकृति और रहस्यवादी प्रणयानुभूति का चित्रण कवयित्री ने प्रकृति में अलौकिक सत्ता का रूप देखा है और परम्पराभुक्त प्रतीकों और भावानुभूतियों के आधार पर अनेक तरल विम्ब विकसित किए हैं। इन विम्बों में प्रकृति का चौंकाने वाला सौंदर्य तो है ही, नारी मन की ममता और रहस्यवादी प्रणयानुभूति भी बिम्बित हुई है।

पर्वतों के धानी आंचल में लिपटा प्रातः का सूर्य उसे मां के वक्ष से लिपटे शिशु जैसा प्रतीत होता है। मां की ममता में पगी कवयित्री के हृदय में से आनन्दमयी आकुलता का निझंर फूट निकलता है। इस अतीन्द्रिय प्रेम में विह्वल सी वह सब कुछ भूल सी जाती है। उसे छन्दहीन शिल्प का अभ्यास न होने के कारण कविता में कहीं-कहीं भावगत तरलता नहीं रही, फिर भी प्रस्तुत बिम्ब हृदयग्राही है –

''पूर्वदिशि धाया,। जल में केसर घोल घोल कर,। स्नान कराती है उसको। /पहना झिंगुला लाल रंग का/, देती लगा बादल का डिठौना।'' (पृ० 38)

वह बादलों को नन्हे शिशुओं के रूप में देखती है, जिन्हें हवा उड़ाती, खिलाती है और उसके हृदय की ममता को उद्दीप्त कर देती है। बादल के कुछ बिम्ब तो फोटोग्राफिक हैं परन्तु कुछ में आश्चर्यजनक भावसिक्ति है –

''भर समीर उन्हें बांहों में,/मीठे गीत सुनाती है/बहलाने नन्हें शिशुओं को, इधर उधर डोलाती है।/पर वे नटखट बड़े हठीले, /अपनी बात कहे जाते।/फिसल फिसल मां की गोदी से/ अम्बर बीच बिछल जाते।'' (पृ० 41-42)

उसकी कविता में धरा गगन का परस्पर प्यार मूर्त्त हो उठाता है, जिसमें बादल धरती की तन्द्रिल पलकों में जागृत मधुर स्वप्न हैं, जो समीर की हलचल से जग कर अर्धरात्रि में भी मचल उठते हैं। इन कविताओं में कवयित्री ममता और प्रणयानुभूति का अच्छा घालमेल कर देती है, परम्पराभुक्त संवेदना का यहां सुंदर संयोजन हुआ है, यहां प्रणय का संभोगपक्ष अपने चरमोत्कर्ष पर है।

विरहजन्य प्रवंचना की तीखी अनुभूति का चित्रण भी प्राकृतिक उपकरणों के सहारे किया गया है। यहां कली से क्रीड़ा करके भंवर छिप गया है और प्रवंचित-सी कली हृदय की वेदना सह रही है। विरहिणी रात्रि का बिम्ब देखें –

''शिथिल वेणीबन्ध होकर,/बिखरती हैं श्याम अलकें/झर रहे मोती धरा पर,/अश्रु कण से सिक्त पलकें।'' (पृ० 40)

कवयित्री ने रहस्यवादियों की तरह प्रकृति में अलौकिक सत्ता का अनुभव भी किया है। वही अलौकिक उसके प्राणों में समाया है, वही आंखों की ज्योति है, राग में मीड़ को जगाता है, अनुभूति में छाया रहता है, उसे जान कर भी चेतना अनजान बनी रहती है और इस अजेय सत्ता को बांध लेने की हठीली इच्छा से मचलती रहती है जबकि इसी सत्ता के कारण नींद में सपने आते हैं, भावों से दर्द का मकरंद झरता है, अकेलेपन में साथ रह कर यही सत्ता चेतना में सरसता को घोलती है और चेतना को छलकर उसे पागल भी बना देती है।

कवयित्री यह निश्चित नहीं कर पाती कि यह सत्ता सदय है या निर्दय, फिर भी उसे इस अलौकिक सत्ता की माया पर विश्वास है और वह उस तक पहुंचना चाहती है। परन्तु विडम्बना यह है कि उसे कोई साथी नहीं मिला, जो मिले उनका साहस छूट गया है, वे लौकिक आकर्षणों को टाल नहीं सके जबकि ये लौकिक आकर्षण ही पथ-बाधाएं हैं, कोई भाग्यशाली ही साहस करके इस पथ पर चल सकता है। वह उस सत्ता से मिलन के सुख की कल्पनाओं में खोयी हुई है, वह आश्वस्त है कि जब इस सत्ता से मिलेगी तो कमल खिलेंगे, भंवरे गुंजन करेंगे। इस मिलन-सुख की आशा में द्रवीभूत वह जिज्ञासा से भरी कह उठती है –

''मेरे जीवन धन आयेंगे/व्याकुल प्राण उन्हें पायेंगे/तृषित हृदय की बुझ जायेगी/जन्म और जन्म की तीखी प्यास/कैसा होगा वह उल्लास।'' (पृ० 65)

इसी मिलन-जिज्ञासा के कारण वह दीपक जला कर रात्रि भर प्रियतम की बाट जोहना चाहती है। और मानती है कि गिरि के पुलकित उल्लास-सा वही झरने में बहता है, वही हृदय में आंसू बनकर घुल रहा है। वह उसी को आंसुओं का अर्घ्य चढ़ाना चाहती है, प्रणयदान करके उसी से मिलन के मादक क्षणों की अनुभूति को चित्रित करती है।

तीव्र मिलनाकांक्षा के फलीभूत न होने पर वह विरहग्रस्त जीवन को क्षणभंगुर समझने लगती है जबकि भाग्य ने केवल उसे ही नहीं छला। जहां तो सुख-दुख, मिलन-विरह साथ-साथ चलते हैं, प्रकृति का यही सत्य है कि जीवन के लम्बे पथ पर परिवर्तन देखना ही पड़ता है। जब तक जीवन है सभी रूप-सुधा पर इठलाते हैं, यही प्राकृतिक सत्य है।

वह दीपक-ज्योति को जीवन के प्रतीक के रूप में स्थापित करती है और जिज्ञासु है कि प्रियतम तो स्वर्ग में बसा हुआ है फिर वह किसके अनुराग में जल रहा है, कौन उसमें स्नेह भरता है, किसे वह प्रकाश देता है, किसे राह दिखा रहा है ? दीपक इन प्रश्नों का उत्तर देता है कि उसे यह ज्ञान नहीं कि वह क्यों, कैसे, किसके लिए जलता है, उसका तो काम है मात्र जलना। जगत की परवाह किए बिना अपनी ही धुन में अमिट, अमर गीत गाते जाना। उस की लौ-रेखा में पथिकों को राह मिलती है तो उसके आलिंगन की चाह में अनेक पतंगे मर मिटते भी हैं।

यहां जीवन की सार्थकता के प्रति कवयित्री चिंतित नहीं। परन्तु उसका निरुद्देश्य जलना चिंत्य है। वस्तुत: सांसारिक निरर्थकता ही आध्यात्मिक सार्थकता मानी गई है, इस संदर्भ में वह स्वयं को विजयी समझती है क्योंकि वह सांसारिक उपलब्धियां नहीं चाहती, जिस संसार को

उसने दिया ही दिया हो उससे याचक बन कर मांगे भी तो क्या और क्यों ?

परन्तु शून्य में (सांसारिक) जीवन की खोज गलत है क्योंकि समूचा जीवन अभुक्त रह कर निरर्थक हो जाता है, यह निरुद्देश्य जीवन पीड़ा ही देता है। अभुक्त के प्रति उसकी लालसा 'मैं धरती' कविता में व्यक्त होती है। वह कहती है कि वह अब ऐसी धरती है जो बाढ़ के पानी में वह गई है।

जीवन की उपेक्षा के कारण कवयित्री के मत में परुष तत्व भी उभरता है, वह कोमल तत्त्व को त्याग कर परुष तत्व और संघर्षशक्ति द्वारा धरती पर जन-गण का मंगल करने का संकल्प करती है। परन्तु उसका संघर्ष सकारण न होकर 'मेरा फूलों से प्यार नहीं' गीत में मात्र आत्म-परिचय होकर रह गया है। वह कहती है कि वह ऐसा यौवन है जो तूफानी आवेग है, कूलों पर रुकता नहीं, जिसके भोले शैशव को दुलार नहीं मिला परन्तु जो अन्तर्मन में आंसू लेकर भी मुस्कराता गाता रहा है चाहे अन्चीहा ही रह गया है।

वह प्रकृति से कर्म, विवेक, आत्मज्ञान और जागरण का संदेश भी पाती है। ऋतुओं के बदलाव से वह जीवन के प्रति अनेक प्रकार की सीख ग्रहण करती है। परन्तु प्रकृति से सम्बंधित उसके अनेक बिम्बों में दुहराव है और अनेक बिम्बों में भावगत अन्विति और अन्तर्ग्रन्थन क्षीण रह गया है। 'बीन रही मैं पत्थर कंकर' कविता में 'बारह मासा' शैली में चार ऋतुओं का अच्छा वर्णन किया गया है। बरसात का एक बिम्ब देखें :-

> ''लहरों के नन्हें हाथों से,/पाषाणों का ढोल बजाती/भैरव का संगीत मनोहर,/ भरी दुपहरी में वह गाती।'' (पृ० 73)

निराशा की अपेक्षा वह आशा को महत्व देती है क्योंकि आशा ही जीवन में रस का संचार करती है। परन्तु विडम्बना यह है कि आशा किसी ढीठ संतान की तरह उसके आंचल में छिपी होकर भी उसकी परवाह नहीं करती, इस रूठी हुई ढीठ संतान को उसकी ममता मना नहीं पाती जबकि आशा ही जीवन शक्ति का मूल है, आशा के सहारे ही मानव तूफानों से जूझ लेता है।

इस सांसारिक जीवन से संतप्त ही वह अलौकिक सत्ता के प्रति आकर्षित हुई है और महसूस कर रही है कि सांसारिक आकर्षण कुछ ऐसा है कि सांसों की कच्ची डोरी टूट भी नहीं रही। ''वह यह निर्णय नहीं कर पाती कि इस अलौकिक सत्ता को वह माता, पिता, स्वामी, प्रियतम क्या समझे ? जबकि वह इसी का आलम्ब पाए जी रही है, आंख मूंद कर हृदय में इसी अलौकिक का दर्शन करके उसका रोम-रोम हर्ष से पुलकित हो रहा है। परन्तु वह इसे पहचान नहीं पा रही।

> ''जाने कौन बसा अन्तर में, किस ने दुनिया आज बदल दी। एक सुधा की घूण्ट पिला कर। विष की गागर रीती कर दी।'' (पृ० 63)

5.1.13 ड्राईंगरूम में कैक्टस श्री ज्योतीश्वर 'पथिक' के 1987 ई० में प्रकाशित कविता-संग्रह 'ड्राइंग रूम में कैक्टस' में 38 कविताएं, 8 गजलें, 4 गीत संकलित हैं। कवि किसी वाद विशेष की घेरेबंदी को नहीं स्वीकारता। वह ऊब, घुटन, संत्रास, विसंगति और अन्य अस्तित्ववादी मन:स्थितियों का कविता में चित्रण करता है। परन्तु कहीं ये मन:स्थितियां अकारण हैं तो कहीं आर्थिक अभावों से उपजती हैं। इन कविताओं का मूल्यांकन निम्नलिखित है।

5.1.13.1 आर्थिक अभाव और व्यक्ति-जीवन आर्थिक अभाव गृहस्थ-जीवन के प्रेम में विरोधी स्थितियां पैदा करते हैं, तकाज़ों की भूल भुलैया में उलझी पत्नी को झील की लहरियों पर अठखेलियां करती चांदनी रोमांचित नहीं करती, चिंता, यातनाओं और तकाज़ों ने उसकी आंखों के घेरों पर कालिमा पोत दी है। यांत्रिकता के चक्रव्यूह में फंसी पत्नी पति-प्रेम से ऊब रही है। दोनों को सहवास उबा रहा है। पति उसके भुजबंधन में बंधा पहले कभी स्वयं को दुनिया का समृद्धतम पुरुष समझता था परन्तु अब वह प्रेम को जिम्मेदारियों का बोझ मात्र समझने के लिए विवश है। उसकी पत्नी का तन-मन और कोमल देह वैसी ही है परन्तु न पत्नी में प्रेम की और न ही पति में कोई नयी अनुभूति जागृत हो पाती है।

प्रणय और दाम्पत्य प्रेम की इस यांत्रिक ऊब का कारण अधिकतर अभाव ही है। वस्तुत: जीवन के अन्य रिश्तों और सम्बन्धों में भी यही अभावजन्य ऊब घर कर रही है और आदमी एकाकीपन की पीड़ा भोगने के लिए विवश है, लोग तो अपनी-अपनी सुख-सुविधा की भाग-दौड़ में उलझकर रह गए हैं। भागम भागजन्य इस ऊब के कारण चांद और सूर्य अपना अर्थ खो चुके हैं।

कवि 'पथिक' ने कविता में अभावग्रस्त आदमी की पीड़ा और संत्रास की अभिव्यक्ति के साथ अपने समय के कवियों, बुद्धिजीवियों और कलावृन्दों पर भी व्यंग्य किए हैं । ये आम आदमी की पीड़ा और त्रासदी की अभिव्यक्ति का दावा तो करते हैं परन्तु अपना कर्त्तव्य नहीं निभा रहे। आम आदमी के जीवन की विसंगतियों के प्रति चिंता का दावा करने वाले कवि तमाशबीन होकर रह गए हैं। क्योंकि अधिकतर ये कवि कर्त्तव्य विमुख हैं। उधार की पीकर शराब की बुराई करते हैं। विडम्बना यह है द्रष्टा, स्रष्टा और ऋषि कहलाया जाने वाला कवि मौजूदा युग में जागृति न फैला कर मीठे-तीखे परन्तु झूठे गान गाकर पैसा बटोरने वाला भिखारी होकर रह गया है।

5.1.13.2 राजनीतिक दोगलापन और मूल्यह्रास नेता और नेतागिरी पर भी कवि ने चोटें की हैं, विशेषकर उन नेताओं पर जो हड़तालें करते, जूझते और गोली-लाठी झेलकर कराह रहे आम लोगों का साथ न देकर अपना नेतृत्व बखानते रहते हैं। कवि इन नेताओं के दोगलेपन को तो उघाड़ता है परन्तु स्वयं प्रश्नों का उत्तर ढूंढने से आंखें चुरा लेता है। वह मानता है कि क्रान्ति सम्पूर्ण हो या अधूरी नयी सलीबों को और नये नये मसीहाओं (तथाकथित नेताओं) को जन्म देकर रह जाती है, यथास्थिति बनी रही है, उसे कोई समाप्त नहीं कर पा रहा।

कवि व्यंग्य करता है कि इन नेताओं की राजनीति के कारण समूचा शहर नारों और पोस्टरबाज़ी का जंग लड़ रहा है, पक्ष-विपक्ष दोनों ही पोस्टरबाज़ी में माहिर हैं, सरकार भी नारेबाज़ है। पोस्टरों से पटी दीवारें और नारों की व्यर्थता के कारण शहर श्मशान की तरह मूक है, अन्तर्विरोधों और समस्याओं से घिरा व्यक्ति किसी अन्य की परवाह नहीं करता, कोई रिश्ता-नाता, प्रेम, घृणा या द्वेष नहीं रह गया।

वह व्यंग्य करता है कि आदमी आज़ाद रहना ही नहीं चाहता, इसी कारण सम्पूर्ण क्रान्ति का उसका सपना अधूरा रह गया है। और 1977 ई० से पूर्व की 19 माह की इमरजेंसी की घुटन के बाद मिली स्वतंत्रता के कारण और अधिक उदण्डता और अराजकता फैल गई है। अब तो गली-गली में आतंक छाया हुआ है, चोर-उचक्के चाकू लहरा कर लूट मार कर रहे हैं, नेता अपनी भोगी हुई यातनाओं के प्रतिदान स्वरूप सुख भोग रहे हैं। लोगों ने कानून से डरना छोड़ दिया है।

आदमी ने काइंयांपन, छिपाव-वृत्ति और खोखलेपन के कारण भीतर ही भीतर अपनी मान-मूल्यों की चेतना की हत्या कर दी है और अपने ही फरेब में फंसा वह आत्मालोचन नहीं करता, अपने छल-कपट और मृगतृष्णा को तोड़ना नहीं चाहता, अपनी अन्धवृत्तियों के कारण अपने ही रू-ब-रू नहीं हो रहा बल्कि कल्पना चित्रों में खोया रहना चाहता है।

व्यक्तिगत जीवन की इन विसंगतियों से दुःखी कवि किसी से कोई सहानुभूति नहीं रखता ; वह जानता है कि भरे-पुरे व्यक्ति के पास से लोग कन्नी कतरा जाते हैं। खोखले के प्रति तमाशबीनों की तरह सहानुभूति दिखाते हैं। बल्कि आत्मरक्षा के लिए आदमी क्रूर होता जा रहा है और फूलों की अपेक्षा कैक्टस लगाकर आत्म रक्षा कर रहा है क्योंकि कैक्टस के कांटों से घबरा कर कोई उसे छेड़ता नहीं।

कवि कश्मीर में फैल रहे आतंकवाद का भी जिक्र करता है। वह कहता है कि यहां किसी भी क्षण बारूद के गोले फट पड़ते हैं, तेरा-मेरा का झगड़ा चलता है तो घाटियों में खून बहने लगता है। कवि जंग या बरबादी के बाद के अमन जैसी, श्मशान जैसी शांति नहीं चाहता। बल्कि उसे युद्ध-भूमि में शहीद हुए सैनिक की पत्नी की पीड़ा का स्मरण है, जो बसंत के दिनों में पति की प्रतीक्षा में बैठी है जबकि अन्य औरतें करुणा-भीगी आंखों से उसे देख रही हैं।

इन सभी कविताओं में पथिक की काव्यभाषा स्पष्टतर होती गई है, बिम्ब और प्रतीक परम्पराभुक्त हैं परन्तु वे भाषागत दुरूहता को समाप्त करके अनुभूति को सम्प्रेष्य बनाते हैं , कहीं-कहीं सपाटबयानी के कारण काव्यगत तीखापन और व्यंग्य-भेदकता का गुण कमज़ोर पड़ गया है। संग्रह में अनेक सफल, सार्थक और सम्पूर्ण कविताएं हैं, जिनमें कहीं कोई टूट नहीं दिखती, जीवन की विसंगति, अभावजन्य शिकायतें, तकाजे, जननेताओं और बुद्धिजीवियों की चारित्रिक त्रुटियां और मूल्य-विघटन तथा बेवफाई आदि मिलकर उसकी कविता की संवेदन-भूमि बनी है।

5.1.14 साक्षात् के क्षण श्री भुवनपति के 1987 में प्रकाशित कविता-संग्रह 'साक्षात् के क्षण' में कुल 14 कविताएं संकलित हैं, जिनका मूल्यांकन निम्नलिखित है।

5.1.14.1 जीवन–अनुभूतियों और अभिव्यक्ति की छटपटाहट कवि के समक्ष अभिव्यक्ति ही मूल प्रश्न है। साक्षात के क्षण उसमें नयी-नयी अनुभूतियां जगाते हैं आस्था-अनास्था, घुटन-उल्लास, संकल्प-विकल्प अभिव्यक्ति की छटपटाहट से घिर पड़े हैं। उसका विचार-प्रवाह अनियंत्रित हुआ जाता है, वह इस सब कुछ को जोड़कर मिल-बांटना चाहता है। अपनी भावनाओं और स्पंदनों को पहचान कर उन्हें वह परिभाषित करने का यत्न कर रहा है और विचारों के उन्मुक्त तथा अनियंत्रित प्रवाह में बहता जाता है। वह अंधेरे-उजाले, ऊब, खीझ और बेचैनी में डूबने-उतराने का आनन्द लेता है परन्तु साधारण-से दिखते प्रश्न भी असाधारण और अनुत्तरित हो जाते हैं।

मानव-जीवन का शिवत्व ईश्वरविहीन होकर शवत्व में बदल गया है, जीवन की पहचान भी अब मृत्यु की अमर तान में बदल गई है। कवि अपनी इन जीवनगत भावनाओं की व्याख्या करता चलता है जबकि बात कहीं खत्म नहीं होती, वह भाव लोक के गगन में उन्मुक्त पक्षी-सा है, अनजाने पानी में कूदने से पहले झिझकते हुए तैराक-सा है फिर भी नियति से बंधा खिंचा चला जा रहा है, वर्जना और चिंता से मुक्त रह कर हरेक क्षण को भोग लेना चाहता है और अनहद नाद की तरह अपने संकल्प की आवाज़ को, अनुभूति के क्षण को माप लेना चाहता है।

कवि सुन्दर-असुन्दर, हेय-आकर्षक को महत्व न देकर जीवन को परिवर्तनशील मानता है और शव से शिव का जन्मना मान कर जन्म-मरण में कोई भेद नहीं कर पाता। वह अद्वैत और अभेद की अनुभूति को ही महत्व देता है। वह मत्सर और ईर्ष्या की भावनाओं के मूल स्रोत को खोज लेना चाहता है। वह मानता है कि मानव-मस्तिष्क की बुद्धि ही वह अक्षयवट है, वह कल्पवृक्ष है जो धूप, उजास, खुशी, संवेदन, ममता, प्यार और स्नेह का आदिम स्रोत है। भूख, दर्द, परेशानी इसी बुद्धि का दूसरा पक्ष है और हमारे जीवन-क्रम में ये दोनों पक्ष लगातार आते जाते रहते हैं और हम पुरुषार्थ को भूलकर अपने भीतर के विराट संगीत की छन्द मुक्त प्राण-अनुभूति को शब्दों में निर्मित करते चलते हैं।

5.1.14.2 भारतीय जीवन-दृष्टि और अभिव्यक्ति की छटपटाहट कवि जीवन के मूलभावों को अलौकिक सत्ता से जोड़ता है, उसे विराट संगीत की अनुभूति के रूप में और कविता में रूपायित मान लेता है। यही जीवन को कवि संघर्षपूर्ण खेल मानता है और मानता है कि इस खेल की लय, शरीर की लय और कविता की लय से भिन्न नहीं। उसका मानना है कि आत्मश्लाघा की हाला से ग्रस्त हम महत्वाकांक्षा के भुजंग की लपेट में फंसे रहते हैं और विवेकहीन अनुभव से संवेदनहीन ज्ञान तक हम तर्कों के चक्रव्यूह में फंस कर अस्तित्व-अनस्तित्व, पाप-पुण्य, अंधेरा-उजाला, स्वप्न-जागृति आदि की धूप-छाँह में ग्रस्त होकर जूझते रहते हैं। हमारे प्राणों की सरिता सीधे सपाट मार्ग पर नहीं चलती बल्कि नये-नये मोड़ लेती रहती है और हमारे ऊबड़-खाबड़ व्यक्तित्व के कोण मुलायम होते रहते हैं। संघर्ष की इस धारा में टकराहट के

कारण अभिव्यक्ति की प्रक्रिया के प्रति वह कहता है-

''शब्दों का अर्थ एक होता है/पर लक्षणा, व्यंजना, ध्वनि और संसार/हरेक के लिए अलग सृजन करते हैं यह/शब्द माध्यम हैं/बात लम्बी है/लिखता ही जाना चाहता हूं।'' (पृ० 19-20)

वह स्थितिजन्य अनुभव को दिक् काल से जोड़कर वस्तुनिष्ठ बना देना चाहता है, परन्तु स्थिति यह है कि मानसिक, शारीरिक स्पर्श के बावजूद अपने-आप को उधेड़ पाना, अपनी भावनाओं को कह पाना, उन्हें पहचान पाना, मनोभावों और क्रियाकलाप का विश्लेषण कर देना असंभव रह जाता है और हम मानवीय परम्परा को बिना सोचे समझे जीए जाते हैं। अपनी भाव भाषा और स्थितियों को झलकाते हैं, हम सार्थकता निरर्थकता को स्पष्ट करते हैं, आत्मतुष्टि को प्राथमिकता देते हैं, चाहे-अनचाहे भ्रम- दंभ पालते हैं और इसी क्रम में कई बार हमारा पाठक अज्ञात और नितान्त अपरिचित होकर भी नितान्त अपना परिचित हो जाता है क्योंकि सह-अनुभूति के कारण हममें दर्द का सांझापन दीप्त हो उठता है।

जबकि हमारी नियति है अभिव्यक्ति की अपूर्णता, जो विचारों के प्रवाह, शब्द-सम्बन्ध स्थापित करने की इच्छा और भाषा के अपने अनुशासन के कारण भटक जाती है। कवि-कर्म में लीन वह कवि के सामने के संकटों को पहचान रहा है और मानता है कि हम स्वप्नों के माध्यम से नये-नये संसार का निर्माण तो करते हैं परन्तु वांछित क्षितिज तक पहुंच नहीं पाते। वह मानता है कि संदर्भ के द्वारा ही शब्द की अर्थवत्ता सार्थक होती है, हम बार-बार उसी सार्थक शाश्वत और अनंत की पुकार सुनकर पुन: आरम्भ के लिए उसी जगह लौट आते हैं। हम इस नश्वर संसार में प्यार, स्नेह, कोमलता आदि भावनाओं में से उन्हीं को चुनते हैं जो सार्थक हो उठें। इसी तरह निरर्थकता से जूझते हुए, इच्छाओं को दुलारते हुए हम अपने आप को दुहराते जाते हैं और इस सम्पूर्ण समर्पण को ही तर्क बनाए हम लिखते रहते हैं।

स्वाधीनता, उत्तरदायित्व, कर्म, हित-अहित, आवश्यकताएं, दुर्घटना आदि सभी हमारे साथ-साथ चलते हैं और मात्र अनुभूतियां ही हमारी चेतना-शक्ति, तर्क-बोध और विचार को निर्धारित करती हैं। भावनाएं क्षणिक होती हैं, कवि मानता है कि मानव-मन ही ईश्वर को जन्म देता है। इस मन से, विचारों से मुक्त हो जाना ही अपने-आपसे छूटना है परन्तु मन के विस्तार को बांधना असम्भव ही है, वह मानता है कि मन सदैव विश्वास, प्रेम, ईश्वर, वैराग्य, ज्ञान, प्रज्ञा और जीवन-मरण से जूझता रहता है। जबकि आत्मा की यात्रा रात दिन चलती रहती है।

अंतत: बात समाप्त होती है और कविता भी। इस कविता में अनेक प्रकार से सम्बद्ध-असम्बद्ध विचारों और भावों का परस्पर घालमेल हुआ है। कविता एक बरसाती नदी के समान बढ़ती जाती है जिसमें अनेक विचार-द्वीप हैं। इस कविता को लम्बी कविता की श्रेणी में रखा जा सकता है। विचार कविता भी माना जा सकता है परन्तु विचार की एकतानता इसमें नहीं है। कवि ने अपने अनेक विचारों को यहां एक साथ पिरो दिया है, भाषा, शब्द, अर्थ, इतिहास अस्तित्व, जीवन, सामाजिक पारिवारिक रिश्तों की पहचान, कविता-कर्म की कठिनाई और

अभिव्यक्ति के अनेक संकटों के साथ-साथ क्षण, विराट जीव, जगत, ब्रह्म की चिंता तथा बंधन और मोक्ष, जन्म और मृत्यु सम्बंधी कई भाव-अनुभूतियां और दार्शनिक प्रवृत्तियां यहां एक साथ घुली मिली मिल जाती हैं। कविता की सुन्दरता यह है कि यह सब कुछ अव्यवस्थित है और जहां से चाहें शुरू करके बौद्धिक रस ग्रहण किया जा सकता है। बात बहुत लम्बी है, कहीं खत्म नहीं होती क्योंकि कवि इसमें दुनिया भर का सब कुछ समा लेने का यत्न करता है।

'साक्षात् के क्षण' की अन्य कविताएं भी इसी तरह अव्यवस्थित-सी हैं और कविताओं का भाव और कथ्य पक्ष भी लगभग यही है। यहां भी कवि कुछ कहते-कहते कुछ लिखते-लिखते कुछ और ही कहने लिखने लग जाता है, प्रवाह बीच ही धारा बदल जाती है, भाव और चिंतन के आधार बदल जाते हैं, स्मृतियों के आलोड़न की हरहराती लहरों की रेलपेल में बहुत कुछ चाहा हुआ अनकहा, अनलिखा रह जाता है और वह इस अनकहे, अनलिखे, अनसुने को विरासत के रूप छोड़ रहा है।

कवि को सपने के बीच सपने बुनने की आदत है, इस आदत को वह आम आदमी की नियति मानता है, इसी नियति के कारण वह सब कुछ अपने अनुरूप देखना चाहता है। वास्तव में सभी लोग सपने खरीदने-बेचने की आपधापी में पड़े हैं। वह मानता है कि आदमी की यह स्वप्निलता, ये भावनाएं ही उसे देवता या राक्षस बना देती हैं। उसकी मान्यता है कि सम्बन्ध जन्म-जमान्तर से ही होते हैं, अन्यथा कोई निकट रह कर भी निकट नहीं होता, विचारों में आता हुआ भी अपना नहीं होता जबकि दूर रह कर भी कोई विचार के धरातल पर अपना बना रहता है। इसी मन:स्थिति के कारण वह टूट-टूट कर भी मन के भाव को बांटता हुआ धन्य हो उठता है, उसका हर एक शब्द सार्थक हो उठता है, जीवन-प्रेम और आकुल-पुकार प्रतिध्वनि के रूप में लौट-लौट आती है। परन्तु कई बार हवा में धुआं विलीन हो जाता है और विचार शब्दों तक पहुंच नहीं पाते, कहा शब्दों में उलझकर अनकहा रह जाता है, भाव के अजस्र प्रवाह को शब्द नहीं मिल पाते और वह शब्दातीत भावों में खो जाना चाहता है। कई बार उसे लगता है कि अतीत सुधियों के वातायन से झांक रहा है, आस्था और विश्वास की स्मृतियां आलोक कर रही हैं, कई बार उसे लगता है कि अन्वेषण की राह ठिठक-ठहर कर रह गई है फिर भी वह नवजीवन प्राप्त कर लेने के लिए आश्वस्त है, क्योंकि उसमें भी विश्वास खोकर उसने विश्वास पाया है। अंतत: वह इस निष्कर्ष पर पहुंचता है –

पल हमें/हम पलों को/छलते रहे/और/उम्र बीत गई।   (पृ॰ 5)

इन सभी कविताओं में कवि ने जीव, जगत, ब्रह्म की अध्यात्मवादी विवेचना की है, जीव की सांसें गिनी हैं, जिसका पथ पूर्व निर्धारित है, यहां चिंतन से कर्म तक कुछ भी स्वैच्छिक नहीं या कुछ भी अनैच्छिक नहीं। जीवन शून्य से शून्य तक की यात्रा है और शरीर ब्रह्माण्ड की अभिव्यक्ति का माध्यम है । कवि के ये भाव और इन भावों को रूपायित करने वाली कल्पनाओं का दुहराव सारे संग्रह में बिखरा पड़ा है जबकि पिण्ड ही ब्रह्माण्ड की भावधारा है, एक अच्छी कविता है जो लीक से हट कर लिखी गई।

5.1.15.1 मेरे गीत तुम्हारे गीत डॉ० वेदकुमारी की 14 रचनाएं 1987 ई० में प्रकाशित कविता संग्रह 'मेरे गीत तुम्हारे गीत' में संकलित हैं, जिनका मूल्यांकन निम्नलिखित है।

5.1.15.1.1. नारी–हृदय और प्रणयानुभूति का चित्रण इन रचनाओं में प्रणयानुभूति का तीखापन है, नारी-हृदय की कोमलता और प्रियमिलन की तीव्र आकांक्षा है। इसी आकांक्षा के कारण तन-मन उत्कण्ठित है, प्राण व्याकुल हुए जा रहे हैं, प्रिय की प्रतीक्षा में दुनिया के कामों के प्रति जी नहीं लगता और वह दूर रहते हुए भी मन ही मन प्रिय के निकट है बल्कि प्रिय का वास उसके मन में ही है, उसे लगता है कि उनका क्षण भर का परिचय उन्हें जन्म-जन्म का सहचर बना गया है। प्रणय-उपहार का स्वीकृतिजन्य व्यापार देखें –

''सहज सरलता से तुमने आ/मुझे प्रणय उपहार दिया/पल भर को पलकें उठीं और/नयनों ने स्वीकार किया/सोई अभिलाषा जाग उठी/इस सूने मन में ऐसे। काले मेघों में चमक उठी/विद्युत की रेखा जैसे।'' (पृ० 2)

इसी क्षण भर के परिचय और प्रथम परिचय में उपज़े प्रणयभाव के आदान प्रदान से उसमें जीवन भर के साथ की इच्छा जागृत हो उठती है तो वह साहचर्य की मांग करती है कि क्या वह मन का सम्बल बनेगा ? जीवन-पथ के कांटों की चुभन में भी मुस्कराएगा ? जब प्रणय-आकर्षण के कारण उपज़े अपने क्रिया-व्यापार के रहस्य को जान लेना चाहती है तो उसके जीवन के सभी रहस्य प्रिय-स्पर्श से खुल जाते हैं, वह प्रणय की भेंट पाकर प्रिय को प्रणयगीत सुनाने लगी है। अभी तक तो उसने 'प्रणय' शब्द सुना ही था, इस शब्द का अर्थ प्रिय ने ही सुझाया है, उसके अन्तर्मन को प्रिय के स्पर्श ने प्रकाशित कर दिया है, पुराने शब्दों में नया अर्थ भर दिया है। मिलन, वियोग, उत्कण्ठा, आशा आदि शब्दों की उसने परिभाषा जान ली है।

5.1.15.1.2. क्रान्ति–चेतना और राजनीतिक विसंगति दाम्पत्य प्रणय के साथ-साथ कवयित्री ने भीषण क्रान्ति के भाव भी अभिव्यक्त किए हैं। उसने पीड़ित मानव के दिल दहला देने वाले क्रन्दन को भी सुना है और माना है कि उसके गीत विरहजन्य आंसू ही नहीं महाक्रान्ति को भड़काने वाले भी हैं, जिनके शब्दों का प्रकाश अंधेरे को दूर भगा देगा। कवयित्री ने परतंत्र भारत की विवशता, घुटन, दुख, संत्रास और वीरों के बलिदान का स्मरण करते हुए देश के नवनिर्माण और स्वतंत्रता की रक्षा का आह्वान भी दिया है। देश की मौजूदा विसंगतियों को दूर करने का आह्वान देते हुए स्वार्थ, वैर, द्वेष, बहकावे आदि की सर्वग्रासी वृत्तियों और नीतियों पर भरसक चोट की है, नेताओं के थोथे भाषणों और उनके छलकपट की भी निंदा की है –

''आज उपेक्षित शोषित निर्धन/भूख की अग्नि में जलते हैं/राष्ट्रभाग्य के निर्माता शिशु/टुकड़ों पर पलते हैं/पैदल जनता के नेतागण/वायुयान में ही चलते हैं/ थोथे थोथे भाषण देकर/भोली जनता को छलते हैं।'' (पृ० 65)

5.1.15.1.3 जीवन-दर्शन कुछ कविताओं में कवयित्री का जीवन–दर्शन भी नियोजित हुआ है। वह हार-जीत की परवाह किए बिना मिट-मिट कर बन जाने, निर्मल प्यार में विभोर हो

जाने, दूसरों को उल्लास से भर देने आदि में ही अपने को कृतकृत्य समझती है। वह रुखे-सूखे शिशिर में भी नववसंत का संदेश सुनती है और जीवन को परिवर्तनशील मानती है।

कवयित्री मानती है कि मानव सीमाहीन है, उसमें भावी, अतीत और वर्तमान विलीन होते रहते हैं। वह समझती है कि शैशव की भोली किरणें, निष्कपट स्नेह का मधुर पावन जीवन-संगीत तभी तक जीवित रहता है जब तक मन में स्मृतियां क्षीण नहीं होतीं। भविष्य के सुंदर सपने भी मानस-भू पर ही विकीर्ण होते हैं, मुस्कानों और अश्रुओं की सम्पदा इसी में निहित है। अपने छन्द शिल्प और संवेदना के अनुसार ये अच्छी कविताएं हैं।

5.1.15.2 मेरे गीत तुम्हारे गीत डॉ० रामप्रताप की 12 रचनाएं 1987 ई० में प्रकाशित काव्य-संग्रह 'मेरे गीत तुम्हारे गीत' में संकलित हैं। अपनी पत्नी वेदकुमारी की अपेक्षा वह अगंभीर प्रणय का कवि है और प्रणयानुभूति को इसने ऋतुओं के बदलाव के साथ जोड़कर प्रस्तुत किया है। इनकी कविताओं का मूल्यांकन निम्नलिखित है।

5.1.15.2.1 प्रणयानुभूति का स्वरुप कवि को लगता है कि नैन मिलते हैं तो दिल भी मिल जाते हैं, दिल में प्यार मचलता है तो सूरज द्वारा उगली जा रही आग भी शीतल लगती है। मौसम की सर्द हवाएं दिल को घायल कर देने वाली बेदर्द अदाओं जैसी लगती हैं, परन्तु यही अदा हर्षित भी करती हैं जब अपने अपनों को अपनाते हैं। प्रिय-परस हो तो कवि को सभी मौसम अच्छे लगते हैं। वह प्रेमिका की पहली दीद में खुशी के मारे राह की सभी मुश्किलें भूल गया था, उसका आकांक्षित रूप उसे मिल गया था, परस्पर साथ-साथ रहने के कारण दुनिया भी भूल गया था। इस तरह की अनेक तुकें जोड़ता हुआ कवि भावुक लटकों के कारण गहनानुभूति को गंवा रहा है। उसकी भावना में संयम नहीं रह गया। विरहजन्य अनुभूति के कारण हाथ, पांव, आंख, कान आदि शरीरांग हड़ताल पर बैठे हैं- परन्तु जब मिलन क्षण आते हैं तो उषा की लाली छा जाती है, भेद बुद्धि भूल जाती है, दूरी मिट जाती है, प्रेम की संकरी गलियों में वह अद्वैतभाव से चलता है ।

फिर उसे अनुभव होता है कि वह–चतुर छलना द्वारा छला गया है, स्वच्छन्दता गंवा कर पिंजरे में बंद है, घर और जिंदगी पिंजरा होकर रह गया है, उड़ना चाहकर भी वह उड़ नहीं पाता, उसे डर है कि लोग तरह-तरह की बातें करेंगे, इसी कारण वह स्वयं को उस कैदी जैसा समझता है जिसे जेल ही अच्छी लगती है, जेल से बाहर जिसका दम घुटने लगता है। परन्तु कवि इस उच्छृंखलता से बच जाता है और मानने लगता है कि सुन्दर और अच्छी नारी सचमुच दीवाली है जबकि शूर्पणखा के रूप में वह नकली दीवाली है, ऐसी औरत काले दिल वाली है जो पति का दीवाला निकाल देती है, दिलवालों के प्रति कवि के हृदय में प्रेम उमड़ता है तो काले दिल वालों के प्रति नफरत।

5.1.15.2.2 भारतीय जीवन-दृष्टि के अन्तर्गत आधुनिक विसंगति पर व्यंग्य कवि राम प्रताप ने अध्यात्मवादियों की पुनर्जन्म की धारणा के आधार पर बुरे लोगों पर व्यंग्य भी किए

हैं। कवि व्यंग्य करता है कि आत्मा नित्य है, शरीर अनित्य, अग्नि और शस्त्र आत्मा को खत्म नहीं करते. आत्मा चाहे पापी की हो चाहे धर्मात्मा की वह पाप-पुण्य या स्वर्ग-नरक में आवागमन करती रहती है। परन्तु यदि धरती की सभी अच्छी आत्माएं स्वर्ग में जाकर न लौटीं तो ? एक भी अच्छा आदमी धरती पर नहीं रहेगा जबकि राक्षसों को इस धरती से जाने की कोई जल्दी नहीं, वे निश्चिन्त, निर्द्वन्द्व और स्वच्छन्द घूमते हैं क्योंकि वे जानते हैं कि आत्मा अमर है, जब तक शरीर है आत्मा टिकी रहेगी, लाखों राम भी आकर रावण की आत्मा की हत्या नहीं कर सकते। अत: राक्षसों की आत्माएं शरीर रहते धरती का राजसुख भोग लेना चाहती हैं। सोच के इस धरातल पर पहुंचकर कवि अभिलाषा करता है –

''काश हमारे शरीर की तरह/हमारी आत्मा भी नश्वर हो/जिससे बुरों की आत्मा/बुरे शरीरों के साथ/सदा सदा के लिए/खत्म होती जायें/और इस प्रकार सभी/शरीर और आत्मा/दोनों के दोनों/नश्वर बन जायें।'' (पृ० 58)

कविता में स्पष्टता है और व्यंग्य उभर नहीं पाया।

5.1.15.2.3 जनकल्याण–भावना कवि चाहता है कि समूचे संसार मे वेद की ज्योति अज्ञान का अंधकार दूर कर दे, आर्यजन जागृत होकर कर्तव्यों का निर्वाह करें, उनके खाने-पीने, सोने-जागने, रोने-गाने, हंसने आदि में संयम हो। वे ईश्वर का सहारा पाकर आफतों से लड़ें तो सवेरा आने के लिए खुद ही मजबूर हो जाएगा।

कवि जियो और जीने दो के सिद्धांत के अन्तर्गत दूसरों के दु:ख को अपना लेने की प्रेरणा देता है, वह परस्पर के झगड़े मिटा देने, रूढ़ियां तोड़ देने, आपसी वैर घटाने की प्रेरणा देता है और आत्मरक्षा तथा राष्ट्रहित के लिए मरने की प्रेरणा देता है। वह राजभाषा के रूप में राष्ट्रभाषा की उपेक्षा के कारण भी दुखी है और कहता है कि पशु-पक्षी अपनी भाषा में बोलते हैं, फिर हमने ही क्यों अपनी भाषा को बनवास दे रखा है ? पौराणिक प्रसंगों को लिए हुए ये साधारण कविताएं है।

5.1.16 तिनका तिनका घोंसला श्री रमेश मेहता के 1986 ई० में प्रकाशित कविता–संग्रह 'तिनका-तिनका घोंसला' में 47 रचनाएं संकलित हैं। इन कविताओं का भावबोध और शिल्प नवीन है। रोमानियत को तोड़ने और यथार्थ जनजीवन को पहचानने के बीच की द्वन्द्वजन्य मानसिकता का साफ सुंदर चित्रण सुंदर सार्थक बिम्बों में हुआ है। कुछ फैंटेसियों, मिथकों और काव्यरूढ़ियों का नियोजन करते हुए आधुनिक प्रासंगिकता के संदर्भों में इनके प्रतीकार्थों की पुनर्व्याख्या भी अच्छी और सार्थक है।

ये कविताएं कहीं-कहीं शब्दों की कमखर्ची के कारण भाव और कथ्य की पूर्ण अभिव्यक्ति के प्रति अमुखर भी रह गई हैं, लेकिन ऐसी कविताएं दो चार ही हैं। कविता का मूल स्वर है व्यवस्थाजन्य अमानवीकरण की प्रक्रियाओं में आ फंसे आधुनिक मानव के त्रासद जीवन की

अनुभूतियों का अभिव्यक्तिकरण। जो कहीं-कहीं निराशा, विवशता, तटस्थता के रूप में अभिव्यक्त हुआ है तो कहीं-कहीं चोट, व्यंग्य, आक्रोश और संघर्ष की प्रेरणा के रूप में। इन कविताओं का मूल्यांकन निम्नलिखित है।

5.1.16.1 व्यवस्थाजन्य दु:खद स्थितियों का चित्रण कवि को लगता है कि लोगों की लापरवाही ने मौजूदा व्यवस्था को बदतर होते जाने दिया है, जन-आकांक्षा की गौरेया ने जहां प्यार के बीज बोए थे उस उपवन को हमने ऊदबिलावों का प्लेग्राउण्ड बन जाने दिया है और अब स्थिति यह है कि कंटीले झाड़ों से ढंकी यह धरती बहुरूपियों की हो गई है, यहां प्यार, स्नेह, भावमय रिश्ते पीछे छूट गए हैं। आदमी अपने-आप से भी अजनबी हो गया है, उसके स्वप्न-दर्पण टूट गए हैं, गुलाबी सुगन्ध बटोरने की अपेक्षा उसके हाथ अपने ही बाल नोच रहे हैं। वह सुहृदयता की लहरों के समक्ष उपेक्षित और असमर्पित है। आदमी का अवमूल्यन इस हद तक हुआ है कि वह निरर्थकता की अनुभूति से कुण्ठित-सा हो गया है।

मौजूदा व्यवस्था में जन-कल्याण की आकांक्षा रखने वाले नेता तक की आवाज़ें भी कीर्तनिया धुन में खो गई हैं, इस आवाज़ तक की सार्थकता खत्म हो गई है। व्यवस्थाजन्य दु:खद स्थितियों में विवश, अस्वीकृत, उपेक्षित, निरर्थक, तटस्थ व्यक्ति अपराधियों का शिकार हो रहा है, व्यवस्था के बूढ़े बरगद के कोटरों में से सांप झांकते और फूत्कार करते हैं। पतझड़ केवल पत्तों के झरने का नाम नहीं उम्मीदों के मरने का है। टकराहटों और चोटों के समक्ष बेबस झल्लाहट ही आदमी की नियति बन गई है। विरोधी की ताकतें खिसियाकर मुस्करा देती हैं, आदमी शालीन बना-सा कुछ भी कर नहीं पाता।

कवि व्यवस्था के दु:खद स्वरूप का उद्घाटन करने के लिए एक फैंटेसी की कल्पना करता है, जिसमें ताकत और आकांक्षा के बीच असंगत मुकाबला चल रहा है, असलियत अंधकार में डूब रही है। काले सूरज का रथ लंगड़े घोड़ों वाला है जो निरंतर घिसट रहा है। परन्तु फैंटेसी के प्रतीकार्थ पूर्णतया खुल नहीं पाए। हां, इतना स्पष्ट है कि अंधी गली, काला सूरज, लंगड़े घोड़े, भेड़िये की रक्त वर्णी आंखें और असफल झूलते हाथ आदि सब कुछ किसी क्रूर निरर्थकता की ओर बढ़ा जा रहा है, शब्द और अर्थ के बीच असंगत मुकाबला चल रहा है।

कवि जानता है कि चंदन वन की तलाश में निकले लोग पलाश की लाली में व्यक्तिगत सुख-सुविधा की आकांक्षाओं के कारण भटक रहे हैं, एक कारागार से निकल कर एक अन्य विडम्बना और भूल-भुलैया में आ फंसे हैं जबकि इस वन की हरेक पगडण्डी राजमार्ग पर खुलती थी और कोई गली बंद नहीं थी।

''चंदन वन तो एक बहाना था/वास्तव में/उन सबको खोजना/उस कलगीधर का ठिकाना था/जो लकड़ी को चंदन बनाता था /एक रुपये में/दस लाख के सपने/ दिखलाता था।''(पृ० 18)

फिर इस चंदन वन को ढूंढना राष्ट्रीय काम हो गया था और बांझ धरती को नापते सभी लोग सिर फुटौव्वल कर रहे थे।

कवि व्यंग्य करता है कि लोगों की आंखों पर पलाश का रंग इतना क्यों छा जाता है कि वे चन्दन और लकड़ी में फर्क नहीं देख पाते। जब कवि इस चन्दन वन में अयाचित अनचाहा अतिथि-सा घुसा था तो वह अपनी झक पर खीखलाया था, झल्लाया था कि क्यों यहां आ घुसा ? क्योंकि चन्दनवन वही था जिसमें चन्दनी सुगन्ध, सुनहरी नागों की दमक, जंगल की कच्ची सड़क आदि वही सब कुछ था पर फिर भी वह वही चंदन वन नहीं था क्योंकि लोग वही नहीं थे, बदल चुके थे। अब आदिवासी झोंपड़ी की पहचान धुंधला गई थी जबकि जंगल के बीचों-बीच सरकारी बस्ती जगमगा रही थी। जंगल कस्बा हो गया है और चंदन अपनी सुगंध खोकर मात्र लकड़ी रह गया है।

व्यक्तिवादी लोभ, अहंकार और आधुनिकीकरण तथा शहरीकरण से उपजी मनोवृत्तियों ने सांस्कृतिक परिदृश्य और मानवी-रिश्तों का इस हद तक दोहन किया है कि आदमी अपनी पहचान तक गंवा बैठा है। इसी तरह शब्द अर्थ खो चुके हैं, अनुभूति और शब्द अलग-अलग हो गए हैं, द्वार खुले या बंद हों फर्क नहीं पड़ता। अब प्यार मात्र शब्द है अनुभूति नहीं। वातावरण, आकांक्षा और अनुभूति में परस्पर असंगति पैदा हो गई है, जो मानवमात्र के लिए घातक ही है। भीतर तक आतंकित है आदमी चतुर्दिक अदेखी, अनपहचानी साजिशों से भयभीत-सा कांप रहा है, वह त्रस्त हो उठा है, संदेह का पात्र बना अनकिये की सजा भोग रहा है। शहर उसकी जिजीविषा के विरुद्ध षड्यंत्र रच रहा है तो वह भी बचाव के इंतजाम तलाश रहा है, शहर को भटकाए रखकर अपनी मुक्ति के लिए नये आयाम तलाश रहा है।

विडम्बना यह भी है कि गांव का भोलाभाला व्यक्ति भी शहरी जीवन की चकाचौंध के सपनों में फंस गया है, वह पौराणिक कृष्ण की तरह गोपियों के प्यार का मारा शहर नहीं आता, बल्कि शहर तो उसका सपना है, जबकि शहर में अजनबियत इस तरह बस गई है कि शहर स्वयं भी अपना नहीं रह गया। शहर में मानव के हो रहे अवमूल्यन और अमानवीकरण अर्थात् वस्तुकरण पर चोट करता हुआ कवि कहता है कि शहर में आ गए कृष्ण के हाथ मुरली के छेदों की अपेक्षा तोंद सहलाते हैं, या अंधी गलियों में भटक जाते हैं, वह अंधा गूंगा बहरा नहीं सिर्फ पैसे गिनता रह जाता है और इस उपक्रम में उसके कान इधर की सुन कर उधर उड़ा देते हैं। शहर में आ गए ग्रामीण कृष्ण की त्रासदी का सशक्त चित्रण करता हुआ कवि व्यंग्य करता है –

"वह अब बबूल शहर की/कोई/बेहया नंगी शाख बनता जा रहा था/या महज/भठी से बाहर छिटका एक कोयला था/जो सुर्ख होने की इंतजारी में/राख बनता जा रहा था।" (पृ० 27)

शहरी जीवन की त्रासदी में फंसे इस नये कृष्णवतार की आंखों को आकाश की हरेक तरंग चौंधियाती है जबकि राजमार्ग के हरेक मोड़ पर बंदूकों, अश्रुगैस, लाठियों के घेरे में बंधा वह जिम्मेदारी के हर कगार पर तोड़ दिया जाता है। उसका सारा आक्रोश असमर्थ, उधारु बारुद-सा फुसफुसा कर रह जाता है। उसकी बुद्धि भयजन्य त्रास को लांघने में असमर्थ है। मौत के भय को लेकर जीना उसकी विवशता बन गया है। उसके सामने तो कौरवों का पलड़ा ही भारी है फिर भी उसका महाभारत अधूरा सिद्ध हो रहा है क्योंकि अर्जुन का यह सारथी गीता के पहले

शब्द नहीं बोल पाता बल्कि उसके हाथ चाबुक, शस्त्र या चक्र पकड़ने से हिचकिचाते हैं और नारों के लिए ऊपर उठ जाते हैं। कोई भी आदमी उसके नेतृत्व को स्वीकार नहीं कर पाता, उसका नेतृत्व निरर्थक होकर रह जाता है और युवाशक्ति कोर्नीनिया धुन में खो जाती है।

इस कृष्ण का नेतृत्व अस्वीकृत है क्योंकि वह स्वयं अपने रिश्तों-नातों से निर्विकार नहीं बल्कि उन्हें झूठे सपने दिखा रहा है। यही कृष्ण दिल्ली में बैठा तांत्रिक है जो आंकड़े जुटाता है, कानों को भले लगने वाले किस्से सुनाता है। अपनी चिकनी गालों पर हाथ फेरता है और 'दूध दही की व्यापकता है' के इश्तिहार छपवाता है, जो भूखी अंतड़ियों को नीरोग बता कर प्राकृतिक चिकित्सा के गुण गाता है। इस आधुनिक कृष्ण की धोखाधड़ी की पोल खोलता हुआ कवि कहता है –

"भूख से छटपटाती/गोली खाकर तिलमिलाती/आत्माओं को/कायर बताकर/ उनकी शहादत को/विदेशी मुद्रा में/बदल कर/चैन की वंशी बजाता है।" (पृ० 31)

5.1.16.2 स्वार्थांध राजनीति और मानव-मूल्यों का ह्रास आधुनिक राजनीति में आम आदमी के जीवन के लिए घातक, आत्मपोषक मनोवृत्तियां घुस आई हैं और यह राजनीति समूची व्यवस्था, धर्म, कविता, शासनतंत्र तथा नौकरशाही में भी घुस गई है, जिसने आम-आदमी का भरपूर अवमूल्यन किया है, उसे उदासी, निराशा, विवशता और निरर्थकताजन्य अनुभूतियों में धकेलकर आत्म-कुण्ठित कर दिया है और आदमी अकेला होकर रह गया है। स्थिति यह है अब सूरज उजाले की जगह अंधेरा उगल रहा है, धर्म भी करुणा की बजाए नफरत और राजनीति सिखा रहा है। धार्मिक नफरत की फसल काट कर खुद हाशिये पर आ बैठे हैं और अपने-आपको मसीहा बता रहे हैं, जबकि इन वहशी हाथों में करुणा की किताबें देने से बेहतर था कि उन्हें हवा में टांग देते ताकि काला सूरज उगने से पहले डूब जाता।

हालत यह है कि अखबार की सुर्खियों के साथ हर सुबह पूरी कौम को एक लावा घेर लेता है, अपने ही हाथ में पकड़ा हुआ खंजर भीतर तक को चीर जाता है, शांति की गौरैया जलते हुए डैनों के साथ छटपटाती है। इस पर एक भरापुरा देश झटक कर खड़ा होता है परन्तु चुपचाप-सा ही रह जाता है। स्थिति यह है कि कवि भी अपना कर्त्तव्य नहीं निभा पा रहे, वे भी अपनी पीड़ा को छिपाने के लिए भाषा की तलाश में भटक कर रह गये हैं। तो क्या भाषा सचमुच कोई दवाई है या किस्सा हातिमताई है ? क्या दर्द कहने के लिए कविता की भाषा ही दरकार होती है ? कवि चोट करता है कि कविता में आम आदमी की पीड़ा और दर्द की सुनवाई नहीं हो रही, कवि मात्र बातें बना रहे हैं, भुलावे दे देकर भुला रहे हैं।

आदमी का बाह्य और भीतरी जीवन परस्पर विसंगत हो गया है वह बाजार, दफ्तर, घर आता जाता है, गोरी काली की माया में चुपचाप घिरा रहता है। ऊपर-ऊपर से मुक्त भीतर से कुण्ठित, विसंगति का विष पीता रहता है। इसी विसंगति से ग्रस्त आदमी व्यर्थता के बोध में ग्रस्त है। जीवन के रिश्तों, नातों में कभी वह स्वयं को अजनबी महसूस करता है, कभी उपेक्षित, परन्तु

कभी इस्तेमाल हो चुकी वस्तु ! और उसकी संवेदना की नदी भीतर ही भीतर बहती रह जाती है। कवि ने व्यक्ति के मन में समय-समय पर उठने वाली मानवीय अनुभूतियों के अच्छे बिम्ब प्रस्तुत किए हैं। आदमी के भीतर और बाहर को एक साथ पकड़ने के यत्न में कवि कहीं-कहीं उलझा भी है परन्तु ऐसी उलझनग्रस्त कविताएं कम ही हैं। अधिकतर कवि ने आदमी की आशा-निराशा, आकांक्षा-अवरोध के विरोधी बिम्बों का कुशल संयोजन किया है। उसे लगता है कि तीस वर्ष की आजादी के बाद भी इस पेड़ में फूल, पत्ते, फल, कम ही मिले हैं इसने अधिकतर लीला ही है, इस पेड़ पर विश्वास करने की अपेक्षा इससे डरना ही बेहतर है।

कवि जानता है कि जनता के सपने साकार नहीं हुए हैं, तिनका तिनका जोड़ कर बनाया घोंसला बिखरता रहा है, आम आदमी देश की दु:खद स्थितियों को जानता है, राजनीति बांचता है। वह अपने भ्रामिक भविष्य के प्रति भी जानता है परन्तु उसे ये सभी प्रश्न गहराई तक सालते नहीं।

''अपने भविष्य को लेकर ''उसके मन में/नहीं है/कोई भी भ्रम/ इसीलिए/अपने ही घर में/ कोई कैसे हो जाता है अजनबी/यह थोथा प्रश्न/नहीं/उसे अब/सालता।'' (पृ० 41)

उसके इसी बुद्धिभ्रम के कारण दफ्तरों में साजिशें चलती रहती हैं। एक की कुर्सी को दूसरा दीमक की भांति चाटने में लगा रहता है।

व्यवस्था के स्वास्थ्य के लिए देश काला गुलाब खोज रहा है। परन्तु कुछ होता नहीं, न कुछ घटता है न बढ़ता है जबकि मन के भीतर अचानक एक गुलाब बिखर जाता है और आदमी घर-बार, गली-बाज़ार में डरा-डरा-सा जीवन जी रहा है, शांति की सफेद चिड़िया उसकी चेतना को झकझोरती रहती है परन्तु शांति कहीं नहीं, पुलिस का डर भी आदमी को स्वच्छन्द जीवन नहीं जीने दे रहा। कवि व्यंग्य करता है -

''क्या आप इस चिड़िया को/समझा सकते हैं/कि /उसका किताबों के बाहर आना/ठीक वैसा ही है/जैसे कोई ग्रामीण दुल्हनिया/अचानक/डोली की झालर उठा देती है।'' (पृ० 35)

अंतत: कवि आम आदमी को पहाड़ की तरह सुदृढ़ होकर उठने की प्रेरणा देता है और पूछता है कि वह क्यों अपनी नैसर्गिक वृत्ति को छोड़ रहा है ? क्यों शिखर पर आरोहण करते कठोर दिखता है ? क्यों ढलान से उतरते वह निरीह और निश्छल हो जाता है। वह उसे इस अतिवादी मन:स्थिति से ऊपर उठकर सहज होने का संदेश देता है -

''कहीं तुम भी निष्कासित यक्ष/या/अवकाश प्राप्त अधिकारी तो नहीं/इन्सान से/कुछ तो ऊपर उठो, पहाड़।'' (पृ० 68)

कुल मिलाकर ये कविताएं मौजूदा व्यवस्था में फंसे आदमी के त्रासद जीवन की बहुकोणीय अभिव्यक्ति है, अच्छी अभिव्यक्ति है।

5.1.17 मीठे बोल तीखे स्वर डॉ० सत्यपाल श्रीवत्स के 1988 ई० में प्रकाशित कविता-संग्रह 'मीठे बोल तीखे स्वर' में 65 कविताएं संकलित हैं, जिनमें जीवन के छल-छद्म का का चित्रण हुआ है। भाव और विचार की संतुलित अभिव्यक्ति शिल्प में ढल कर कुछेक अच्छ कविताओं के रूप में रूपायित हो गई है कुछेक कविताएं तो काफी अच्छी और सार्थक बन पड़ी हैं। इन कविताओं का मूल्यांकन निम्नलिखित है।

5.1.17.1 प्रगतिशील कल्याण–भावना कवि श्रीवत्स ने महापुरुषों के सद्कर्मों का स्मरण किया है और वह मर्यादा, सदाचार, अछूतोद्धार, श्रद्धा, भक्ति, सात्विक आचरण तथा ज्ञान की ज्योति फैलाने की कामना प्रकट करता है। अलौकिक सत्ता के प्रति जिज्ञासा प्रकट करता हुआ कवि निर्धन श्रमिक, मज़दूर किसान की जीवन विडम्बना का हवाला देकर कवि उसके कल्याण के लिए प्रभु से अनुकम्पा का निवेदन करता है। परन्तु जब कवि श्रमिक कृषकों की बदहाली का कारण समझ लेता है तो ईश्वर आदि को दोष देने की अपेक्षा पूंजीवादी व्यवस्था को दोष देने लगता है। वह कहता है कि शोषकों के मन में करुणा का लेश मात्र नहीं, वह श्रमिक-कृषकों को मेहनत के बदले कुछ नहीं देता। पूंजीपति ऐसे नकाबपोश हैं, जो झूठे आडम्बर रचकर उनकी आड़ में आदमी का शोषण करते हैं। वे तो महादानव हैं जो रात दिन बेगुनाहों का खून चूसते हैं, लच्छेदार भाषणों से जनता को ठगते हैं, वे डाकू हैं परन्तु पुलिस भी उन्हीं का पक्ष लेती है। मानो महाकाली अब खप्परहीन हो गई है और उसके हाथ का खप्पर पूंजीपतियों के हाथ में आ गया है और पूंजीपति इस खप्पर में निर्धन लोगों का खून भर रहे हैं।

पूंजीवाद को कवि आज के आदमी की जीवनगत विसंगति और व्यक्ति के मन में घर कर रही लोभ, मोह, अहंकार और शोषण आदि की कुवृत्तियों का कारण मान लेता है। वह मानता है कि आदमी इस विसंगति के कारण जीवन से ऊब गया है –

''आज,/धरती पर सभी जगह/एक विचित्र-सी ऊब है/इसलिए नहीं कि संसार एक-/छलना है/ इसलिए /कि इसका इन्सान स्वयं में /एक छलना है/वह खुद तो जीता है जरूर/दूसरों को कहां जीने देता है।'' (पृ० 109)

इन अंधवृत्तियों के कारण मानव-जीवन उपेक्षित और अभावग्रस्त है, भूख, प्यास, मंहगाई ने आदमी को स्वार्थी और कर्तव्यच्युत कर दिया है। छल, कपट, ब्लैक, रिश्वत, हिंसा, मोह, ममता, दु:ख, मद, मत्सर आदि अंधवृत्तियों से ग्रस्त होकर वह मान-अपमान, जय-पराजय, सत्य-झूठ के बीच भेद नहीं करता बल्कि अपने स्वार्थ के कारण उसने भेदभाव की भाषा सीख ली है और वह दुनिया के रंग में रंगकर बहुरूपिया हो गया है, बुद्धि का दंभ भर कर वह प्राकृतिक समभाव को नष्ट करता है, मंदिर, मस्जिद, गिरजा, गुरुद्वारों में भेदभाव रखता है और भेदबुद्धि के कारण लोगों को लड़ा कर मानव-मात्र का सुख नष्ट करता है फिर अंततः मर जाता है। वह आदमी की उपेक्षा तो करता ही है भ्रमचक्र में अपना-आप भी उपेक्षित कर रहा है। कवि मानता है कि छल-कपट त्याग कर जीवन जीना ही प्रभु भक्ति है। कवि व्यंग्य करता है–

"कण्ठ में पहनकर भी/छलकपट झूठ की माला/रुद्राक्ष-तुलसी की माला से/लगता है भक्ति जतलाने"। (पृ० 115)

5.1.17.2 चारित्रिक खोखलेपन पर चोटें कवि को लगता है कि व्यक्ति के खोखलेपन, चारित्रिक दोगलेपन और उसके अमर्यादित आचरण के कारण जन-जीवन में दर्द, घुटन, ऊब, परस्पर, वैर, द्वेष, लोभ, स्वार्थ की वृत्तियां बढ़ गई हैं, सत्य और झूठ एकजान हो गया है, धर्म सौदेबाज हो गया है, रिश्वतखोरी ने अन्याय के विरुद्ध भगवान तक का मुंह बंद कर दिया है, न्याय पोथियों तक ही सीमित रह गया है, मूल्यहीनता के कारण चारों ओर घुटन, विसंगति और ऊब बढ़ रही है। आदमी मशीन का पुर्जामात्र होकर रह गया है, उसके हृदय का प्यार, आकर्षण, मोह, ममता आदि मर चुका है। उसमें मानो टेढ़ापन आ गया है, सीधापन छलावा दिखावा मात्र है जबकि टेढ़ापन पल पल बल खाता है, उसकी तो रीढ़ की हड्डी ही खत्म हो गई है, मर्दानगी खत्म हो गई है, उसमें इतना लचीलापन आ गया है कि वह पानी से पतला और हवा से हल्का हो गया है, माइग्रेटरी पक्षी जैसा वह फसली बटेरा बन गया है, हवा के रुख के अनुसार मुख बदल लेता है, वह जिसकी प्रशंसा करता है उसी की पीठ में छुरा घोंप देता है, जिसके तलुवों में तेल लगाता है उसी का तेल निकाल लेता है। उसने यह नहीं सीखा कि जीवन के ये सुख-दु:ख, वैभव, विलास क्षणभंगुर हैं जबकि आदमीयत को अपनाकर जीवन सुखमय बनाया जा सकता है।

कवि ने देश के नेताओं, पूंजीपतियों, धर्मगुरुओं, लोकनायकों का भी जन-कल्याण के लिए उद्बोधन किया है। उसे लगता है कि नेता लापरवाह हो गए हैं, देशरूपी उपवन उजड़ रहा है, फूलों, कलियों, लताओं, चिड़ियों का महत्व नहीं रहा, उपवन में गिरगिट, चूहे, कीट-पतंग अपना राज्य जमा रहे हैं। अत: उन्हें अब राजनैतिक अत्याचार और अराजकता को दूर करना होगा, कुनबा परस्ती, ब्लैक, रिश्वत, अन्याय, गुण्डागर्दी, बेकारी, भुखमरी, महंगाई के जाल में फंसे आदमी की रक्षा के लिए आगे आना होगा। कवि इन नेताओं और पूंजीपतियों को ललकारता है –

"तुम्हारी ईमानदारी की परिभाषा/अब आ गई है समझ में/अत:/अब हो जाओ होशियार/ क्योंकि अब युग बदल चुका है/इस धरती पर।" (पृ० 105)

कवि ने नारी के प्राचीन महिमामयी रूप का स्मरण करते हुए उसे कल्याणी दुर्गा, मानव-मन की अनबूझ प्यास, उसका मोह-स्पंदन कहा है। अतीत काल से ही उसी को पाने के लिए युद्ध, छल, कपट, फरेब आदि होता रहा है परन्तु आधुनिक काल में उसका शारीरिक शोषण करके उसे वेश्या बना दिया जा रहा है। नारी को बेहया बना देने वाले लोगों की कवि भरसक निंदा करता है।

5.1.17.3. विसंगतिजन्य व्यंग्य कवि ने कुछ अच्छी व्यंग्य-कविताएं लिखी हैं। वह व्यंग्य करता है कि जब वह निर्धन था तो अकेला था, कोई रिश्ता नाता न था, न वह योगी था न भक्त, छल-कपट, ब्लैक, रिश्वत, हिंसा, मान-अपमान, जय-पराजय के षड्यंत्रों और अपने-

पराये के भेदभाव से मुक्त था, धनदौलत नहीं थी तो अकेला था। फिर उसका परिचय दुनिया से हुआ तो उसने भेदभाव की भाषा सीखी, दुनिया के रंग में रंगा बहुरूपिया बन गया। निर्भीक और ढीठ बन गया, अब वह अकेला न था, छल, बल, कपट और राग-द्वेष सब कुछ उसके पास था।

कवि ने रिटायर्ड अफसर की वस्तुस्थिति पर भी व्यंग्य किया है कि जब वह कुर्सी पर था, उसकी कलम में जोर था, चापलूसों का जमघट उसकी तड़क-भड़क को बढ़ाता था। अब रिटायर्ड है रिटायर्ड अफसर को कोई नहीं पूछता कोई रिश्ता नाता नहीं रहा, लोग उसे देखकर नज़रें चुरा लेते हैं। 'कुर्सी' कविता में कवि ने व्यंग्य किया है कि कुर्सी को पाने के लिए अनेक कुकर्म होते हैं, कुर्सी का आकर्षण अनोखा है और जब यह रुष्ट होती है तो अधिकारों का शोषण करती हुई खूंखार हो जाती है। इस कुर्सी को पाने के लिए रिश्वत, धोखाधड़ी होती है, अस्मत लूटी, लुटाई जाती है- नाक रगड़ी रगड़वाई जाती है। यहां कवि ने कुर्सी के कारण होने वाले छल-कपट आदि का विस्तृत चित्रण किया है।

परन्तु कुल मिलाकर इन कविताओं में अभी तक काव्यगत तरलता, आर्द्रता आदि कम ही है, इनमें विचार, अनुभूति और शिल्प का कसाव ढीला-सा रह गया है। जीवन-दृष्टि भी परम्पराभुक्त ही है। साधारण कविताएं हैं।

5.1.18. चौराहे की आग आदर्श के 1988 ई० में प्रकाशित काव्य-संग्रह 'चौराहे की आग' में 1975 से 85 ई० तक लिखी 45 कविताएं संकलित हैं। खण्ड 'जवाबों की तलाश' में 28 और खण्ड 'कुछ क्यों नहीं होता' में 17 कविताएं हैं। समकालीन मार्क्सवादी चेतना के अन्तर्गत विकसित भाव और कथ्य की अपेक्षा यहां स्थितिजन्य मौलिकता सराहनीय है। कवि का वैचारिक पक्ष काफी सुदृढ़ और तर्कानुमोदित है परन्तु कहीं-कहीं प्रसिद्ध हिन्दी कविताओं का छायाभास भी मिल ही जाता है और वैचारिक स्खलन भी इस तथ्य के बावजूद संग्रह में सशक्त, सार्थक और सम्प्रेष्य कविताओं की भरमार है, कवि की बिम्बनिर्मात्री प्रतिभा और काव्य-कौशल जगह-जगह रोमांचित करता है। अनुभूतिगत तरलता और काव्यगत सांद्रता सराहनीय है। इन कविताओं का मूल्यांकन प्रस्तुत है।

5.1.18.1 रूपवाद का विरोध कविता में कवि रूपवाद का विरोध करता है और विषय-वस्तु के प्रति सजग होकर धारदार कविता लिखने की प्रेरणा देता है क्योंकि वह जानता है कि जिंदगी की वास्तविकता कड़वी, दुर्गंधपूर्ण, क्रूर और कटु है जिसे रूपवादी कवि ईमानदारी से अभिव्यक्त नहीं कर रहे बल्कि झूठे स्वप्नों के रूपहले डैनों में वास्तविकता को छिपा रहे हैं, कलम की बाजीगरी से सड़ांध को खशबू में बदल रहे हैं जबकि आदमी के पांव कठोर धरती से टकराते हुए जख्मी हो गए हैं। ये कवि देश की भोली-भाली जनता को वास्तविकता से दूर लय, ताल, तुक और छंद के सपनीले संसार में ले जाकर उसके दिल को गुदगुदा कर अपना स्वार्थ सिद्ध कर रहे हैं। जबकि साधारण जनता उस गाय की तरह है जो मरे हुए बछड़े की खाल को मढ़ाकर

प्रस्तुत करने से दूध टपका देती है। कवि इस ओछी स्वार्थ सिद्धि के लिए लिखी जाने वाली कविता की अपेक्षा जिंदगी के हर पहलू को पहचानने का आग्रह करता है।

कवि साहित्यिक दोगलेपन, कवि के स्वार्थ, उसके व्यक्तिगत अहंकार और वैयक्तिक महत्वाकांक्षा तथा उसकी शराबखोरी पर भी चोट करता है. कवि मानता है कि ऐसा साहित्यकार अपने बाल-बच्चों का पेट तक नहीं पाल सकता। जो कवि बिल्कुल व्यक्तिगत अहंकार और स्वार्थ के लिए बिक सकता है, वह कौम का दायित्व कैसे उठा सकता है ? कवि व्यंग्य करता है कि ऐसे साहित्यकार को जीनियस क्यों कहें ? वह तो अपनी आदमखोर प्रवृत्ति के कारण इन्सानियत तक को भूल गया है, वह किसी का मुक्तिप्रदाता नहीं हो सकता। कवि उस साहित्यिक नेता की तलाश में है जो जन-संघर्ष का सही-सही नेतृत्व कर सके-

''वास्तव में हमें/उस आदमी की तलाश है/जिसकी नि:स्वार्थ दृष्टि में/शोषण के विरुद्ध/ सूरज के गोले से/ज्वलंत प्रश्न चिन्ह हों/और हो जिसकी कसी हुई मुट्ठी। और दृढ़ पगों में/आगे बढ़ने का साहस।'' (पृ० 46)

5.1.18.2 विसंगत व्यवस्था के प्रति संदेह और विरोध कवि भारतीय प्रशासन और जीवन व्यवस्था को संदेह की दृष्टि से देखता है। वह देश भक्ति के नाम पर किसी भी गलत प्रक्रिया को सही का सर्टीफिकेट देने के लिए तैयार नहीं। वह चाहता है कि तंत्र प्रणाली का पुनर्मूल्यांकन किया जाए, उसके दोष खंगाल लिए जाएं। कवि निर्मोही होकर सम्पूर्ण तंत्र और जीवन-पद्धति की भूलों और त्रुटियों को दूर कर देना चाहता है। अंध श्रद्धा और बेमानी देश भक्ति की अपेक्षा वह वैज्ञानिक सोच को अपनाने की प्रेरणा देता है। मौजूदा व्यवस्था में सहनशीलता के कारण ही जीवन दु:खद होता जा रहा है, सहनशीलता के कारण जनमानस परिवर्तनकामी होकर भी निकम्मा होकर बैठा रहा है, वह या तो टोपियों के लच्छेदार भाषण या ग्रामीण फार्मूलों में फंसा रहा है जबकि उसका जीवन कुत्तों के जीवन से भी बदतर हो रहा है, इस कड़वी जीवन-सच्चाई के बावजूद कहीं कुछ नहीं बदल पाता।

उसका संदेश है कि मानव-मूल्यों में विसंगति आ गई है अत: परिस्थितियों से पलायन करने की अपेक्षा उनसे जूझना होगा, उधार ली हुई सोच से बचकर अपने रास्तों के कांटों, फिसलन और मोड़ों का कारण समझना होगा, उनसे जूझना होगा।

5.1.18.3 संस्कार-शोधन का प्रयास संस्कारजन्य सड़ांध, संदर्भहीन मूल्य-परम्परा, आदमी की सहज, नैसर्गिक मांगों को उससे ठग लेती है। वे सभी अंध परम्पराएं दोगले और आडम्बरी धर्माचार्यों द्वारा फैलायी गई हैं और मानव-विरोधी हैं। कुण्ठा, घृणा, आडम्बर और ऐसी विषम स्थितियां पैदा हो रही हैं कि इन संदर्भ-च्युत मूल्यों पर शहीद हो जाने की उपेक्षा इन से बच जाने में ही समझदारी है। फिर कवि अज्ञान, अन्याय, अत्याचार जैसी अन्ध वृत्तियों के विरुद्ध संघर्ष

करने की प्रेरणा देता है क्योंकि बैठे टाले इन्हें स्वीकार कर लेना तुच्छापन है, कमजोरी और नामर्दी है क्योंकि अब तो सदियों से शोषित मेहनतकश मजदूरों की आवाज़ का तेवर बदल रहा है, उनकी आवाज़ में गुस्से से कांपती हुंकार भरी चुनौती है। कवि ने अंधेरा शब्द का प्रतीकार्थ नहीं खोला परन्तु इसके खिलाफ जूझने की प्रेरणा अवश्य दी है।

परन्तु कवि की यह आस्था उन्मादपूर्ण यूटोपिया ही प्रतीत होती है क्योंकि अभी भी भीखू चमार का बेटा सुंदर पढ़ लिख कर जब गांव लौटता है तो परेशान हो जाता है क्योंकि नयी पैदा हुई जागरूकता के कारण वह समझ रहा है कि पिछले तीस वर्षों में गुरबत बढ़ी ही है, उन्हें कभी सुख की पूर्ण अनुभूति नहीं हुई, हक कभी नहीं मिला, बल्कि उसका उपजाऊ खेत किसी के इशारे से कागज़ों ही कागज़ों में किसी अन्य की सम्पत्ति बन गया है और किसी दूसरे की मूंछों का ताव बने खेत ने उसकी समूची अस्मिता को हिला दिया है। इस वस्तु-स्थिति की चुभन को सुन्दर भीतर कहीं गहरे तक अनुभव कर रहा है, वास्तविकता को जान कर भी वह अपनी धरती का मोह नहीं छोड़ पाता, खेत को देख कर बैल-सा बिदक उठता है कि वह खेत जोतेगा, इस मोहांध मन:स्थिति के कारण वह कानूनन भूल करता है और सींखचों के पीछे बंद हो जाता है। कानूनी दांव-पेच जानने वालों के समक्ष उसका मोहांध आक्रोश और अविवेकपूर्ण जोश पराजित हो जाता है और वह जेल के सींखचों के पीछे विवश-सा हो रहा है कि उसका बूढ़ा बाप जूते गांठने के साथ-साथ उसके छूट आने की उम्मीद को भी गांठ रहा होगा-

"यह सोचते ही/उसकी आंखें लावा उगलने लगती हैं/उसके हाथ अकड़कर तन जाते हैं/और वह पूरी ताकत से/जेल के सींकचों को पकड़कर झिंझोड़ता चला जाता है।" (पृ० 3)

यह स्थिति आक्रोशजन्य ही है। आक्रोश के पंख कटने भी नहीं चाहिएं परन्तु संकल्प और दृढ़ विश्वास के साथ-साथ होश और विवेक को झिंझोड़कर झाड़ देना भी उचित नहीं। 'मोची राम' और 'बलदेव खटिक' कविताओं ने कवि को काफी प्रभावित किया है, इस तरह की घटनाएं प्राय: जन जीवन में होती ही रहती हैं।

विडम्बना यह भी है कि सरकार भी कृषक हलकू की भूमि का अधिग्रहण करके मुआवजा नहीं दे रही। वह बेचारा कड़ाके की ठण्ड में फटी कमीज़ पहने नंगे पैर, भिखारी जैसा भटकने के लिए विवश है। अपने बच्चे की किलकारियों और माटी की गंध लपेटे वह आराम से था परन्तु अब मात्र अदालती कागज़ दिखाकर रह जाता है। कवि इस विडम्बना से दु:खी है और हलकू के प्रति करुण है और आश्वस्त भी -

"फिर भी उम्मीद है मुझे। कुछ न कुछ बोलेगा हलकू। मुँह खोलेगा।" (पृ० 88-89)

परन्तु हलकू कब मुंह खोलेगा ? यह उत्तर तो '!' चिन्ह से मिल जाता है।

कवि ने शोषित पीड़ित आदमी की निरीहता और लापरवाही को मुर्गी के रूपक के

माध्यम से प्रतीकित किया है. मुर्गी एक-एक कर अपने चूज़े गंवाती जा रही है और भूल भी जाती है। बेखबर मुर्गी अपने मालिक की नीयत को नहीं पहचान रही। कवि कल्पना करता है कि मुर्गी भी विद्रोह कर सकती है, अपने पंखों को चोट से मालिक को खत्म कर सकती है और सोच सकती है कि मालिक और उसका परिवार अब शाकाहारी हो जाएगा. परन्तु यह कवि की काल्पनिक संभावना है जो पूर्ण नहीं होती। कवि इस करुण स्थिति को देख कर कहता है –

''भविष्य के खतरे से बेख़बर मुर्गी नहीं पहचानती बढ़ते चूज़ों पर दिन रात फिरती उन्हें तौलती. मालिक की लार टपकाती नज़र।'' (पृ० 92)

पूंजीवाद और राजनीति मिल कर एक हो गए हैं और यह उनकी सामूहिक शोषक शक्ति कृषक, मजदूर और हरिजन का अत्याधिक शोषण कर रही है। उनके प्रति बनी कल्याणकारी योजनाएं भी इन दोनों के कारण कारगर साबित नहीं हो रहीं। स्थिति यह है कि गैर बराबरी के कारण गांवों में भी सहज, स्वाभाविक भाई चारा खत्म हो रहा है, निर्धनता, बेकारी, बेगारी, सूदखोरी, अशिक्षा के साथ-साथ भाग्यवादिता ज्यों की त्यों है, अछूतोद्धार की भावना भी हरिजन की स्थिति को सुधार नहीं पाई. परस्पर मिलजुल कर लोग किसी भी ऋतु का आनन्द उत्सव नहीं मना पा रहे। ग्रामीण जीवन की इस बदहाली का चित्रण करता कवि बड़ी संयमित परन्तु वेद्य करुणा को अभिव्यक्त करता है ।

''जब मेरे गांव का अलग-थलग पड़ा/ हरिजन टोला। और अधिक दुत्कारा जाता है/ गांव की बावड़ियों से/ उन्हें अब भी पानी नहीं मिलता/ उनकी औरतें बदस्तूर/ भोग का हक समझी जाती हैं/ उनके तपते दिल पर वैसे। हर बूंद टपक-टपक कर खो जाती है।'' (पृ० 37)

कवि चोट करता है कि भूख की तरह कीमतें बढ़ रही हैं, कृषक के स्वास्थ्य की तरह रुपए का मूल्य गिर रहा है जबकि नेता वोट बटोरने की कोशिश में धारा प्रवाह बोलता रहा है। नेताओं के आश्वासन एक टॉफी मात्र का सच हैं, नेता तो झूठे आंकड़े देकर सच को छिपा लेते हैं। सच्चाई छापने को अराजकता का वातावरण पैदा करने की कोशिश मानी जाती है। फिर भी कवि आश्वस्त है कि एक दिन सच सामने आएगा ही और झूठ फैलाने और बोलने वाले तंत्र और नेताओं की कलाई खुल जाएगी। परन्तु कवि की यह आस्था मात्र कल्पना है। तंत्र तथा नेता फिलहाल झूठा आश्वासन ही देता प्रतीत है।

गलियों में आवारा कुत्ते रोटी के लिए परस्पर झगड़ते हैं, गली मुहल्ले बांट कर रात भर भौंकते हैं, सुरक्षा की गारंटी का आश्वासन देते हुए बेमतलब गलियों में सूबेदारी करते हैं और सुबह होते ही दुम दबा कर दरवाजों पर आ खड़े होते हैं। कवि को लगता है कि इन कुत्तों से सुरक्षा की आशा करना व्यर्थ है क्योंकि रोटी के चन्द टुकड़ों से उनका मुंह बंद हो जाता है। कवि एक रूपक का सशक्त और सार्थक विकास करके सुरक्षा की मिथ्य गारंटी देकर परस्पर झगड़ते और वोट मांगते नेताओं को गली-मुहल्लों से खदेड़ देना चाहता है। इस तरह कवि किसी

गलत-फहमी का शिकार हुए बिना आत्म-सुरक्षा तथा शांति के लिए स्वयं ही चौकस रहने को सलाह देता है क्योंकि नेता झूठे सपने दिखाते हैं, बच्चों को देश का भविष्य कह कर धोखा देते हैं। नेताओं के मुखौटे उतारने के साथ-साथ कवि कौम के नादान बच्चों को सपनों में उलझने की अपेक्षा समझदार बनने की प्रेरणा देता है-

''तुम ही देश का भविष्य हो/और/गांव की प्रगति से ही देश आगे बढ़ेगा/जैसे वाक्यों का सही अर्थ वह बाखूबी समझ गया है/ नदानी से उभरता छिलता/ वह अब समझदार हो गया है।''

(पृ० 55)

5.1.18.4 पूंजीवादी राजनीति का स्वरूप-चित्रण भारतीय नेता बहुत चालाक है, वह मजहबी दंगों को भड़कने से रोक सकता है परन्तु किसी राजनीतिक मजबूरी के तहत चालाकी सहित चुप रहता है। कवि ने किसी नेता के व्यक्तित्व विशेष पर चोट करने की अपेक्षा राजनीति की उस कार्य शैली पर चोट की है जो आम आदमी को सामीत्य देकर, पुचकार कर बौना बना देती है, आदमी को आदमी से, उसकी अपनी जड़ों से काट देती है, जो दूसरों की मेहनत के पसीने का यश लूट लेती है। वस्तुत: जनता की कमजोरियां ही मन के कोमल क्षणों के दौरान नेता द्वारा भुना ली जाती हैं। नेता तमाशा दिखा कर जनता से सहानुभूति बटोर लेता है।

''माई बाप! हिलाया तक कहीं आपने अपना पांव/तो मर जाये आपका गरीब बच्चा/ जो लेटा है बन कर जम्हूरा। पृ० 73

परन्तु यह भी सच है कि जब असंतोष को दूर करने की अपेक्षा नेता चालाकी पूर्ण ढंग से चुप रहता है तो उसकी यही गफलत उसके जीवन के लिए घातक हो जाती है।
अत: उसने सच्चे राजनेताओं को अपने जन-कर्त्तव्यों के प्रति सचेत किया है क्योंकि कवि को लगता है कि लापरवाह, अंधे और कर्त्तव्य च्युत नेताओं के कारण ही समूचे देश में अराजकता फैली है। कवि सचेत करता है कि सूखी पत्तियां अभी चुप हैं, वे इस झाड़ झंखाड़ को जला कर राख कर सकती हैं परन्तु अभी इन्हें कोई अंगार नहीं मिल रहा। इस प्रतीकात्मक रूपक द्वारा कवि मौजूदा व्यवस्था के दोषों को उजागर करता हुआ लापरवाह माली को ललकारता है कि कोई नया माली (नेता) आकर तुम्हारी गली सड़ी व्यवस्था को जला कर राख कर देगा। फिलहाल अन्यायी और अत्याचारी चेहरे ढके हैं। परन्तु कवि आस्थावान और विश्वस्त है कि अन्याय सहती अकेली चुप्पी से जागकर जब लोग एकत्र होकर मुखर होंगे तो अवश्य ही दमन का विरोध होगा। इसी विश्वास के तहत वह सामूहिक दर्द को चौराहे की आग बनते देखना चाहता है। इसी विश्वास के कारण वह दिल की गर्मी को वक्त द्वारा सोखा जाने देना नहीं चाहता, वह करुणा और सहानुभूति को निस्पंद और ठण्डी बर्फ नहीं बनने देना चाहता।

वस्तुत: करुणा, सहानुभूति, सच्चाई, ईमानदारी आदि मूल्यों में राजनीतिक स्वार्थों के कारण विघटन पैदा हुआ है। व्यक्तित्व का सहज विकास नहीं हो पाता, आस्थाएं नपुंसक नारों

में वह गई हैं, कुर्सी पकड़ की दौड़ में खून की प्यास बढ़ती ही जा रही है-

''बदल लिए मूल्य/ सच्चाई/ ईमानदारी ने बगुले से बना लिए भेस।''

कवि ने नेता, पूंजीपति और पुलिस की मिलीभगत को आम आदमी के लिए घातक, शोषक और दमनकारी माना है तथा इन्हें ही मूल्यों के विघटन के लिए जिम्मेदार ठहराया है। पूंजीपति चुनाव का बोझ सहन करते हैं जबकि नेता एयर कण्डीशंड कमरों से बाहर की दुनिया को अनदेखा कर देते हैं। पूंजीपति वर्ग के शोषक स्वभाव को फैंटेसियों के माध्यम से अभिव्यक्ति देते हुए कवि इसे आदमखोर कहता है। पूंजीपति वर्ग के खूंखार और आदमखोर स्वभाव का परिचय देता हुआ कवि लिखता है-

''उसकी जीभ से पानी/ बूंद बूंद कर टपक रहा था/ मासूम बच्चे का भुना हुआ गोश्त/ उसकी मेज़ पर पड़ा था/ वह खुशी से पागल था/ इतने लजीज़ भोजन को बिना ईंधन खर्च किये/ पा जाने की खुशी में/ ठहाके लगा रहा था।''

कवि ऐसे क्रूर और आदमखोर पूंजीपति से मज़दूर-श्रमिक की दोस्ती को बराबर की दोस्ती नहीं मानता। वह तो मात्र अपने स्वार्थ को साधने और श्रमिक-मज़दूर को उसका बौनापन दिखाने के लिए ही दोस्ती का हाथ बढ़ा रहा है। किसी भी क्षण मज़दूर और श्रमिक वर्ग उससे धोखा खा सकता है-

''(तो) मुझे विश्वास है/लगातार झुके रहने पर जब/तुम थक जाओगे/ तब बिना कुछ विचारे, तुम सीधा तन जाओगे/ अपनी पूरी पैसे वाली लखपति कमीनी अकड़ के साथ/ तुम्हें यह भी याद नहीं रहेगा/ कि तुमने एक दोस्त को/ उसकी गलबहियों के कारण/ हवा में लटका दिया है/और उसकी बाँहों के जोड़/खुल जाने की स्थिति तक जा पहुंचे हैं।'' (पृ० 27)

इसी पूंजीपति वर्ग के आदमखोर लालच के कारण मज़दूर औरतों की जीवन सम्बंधी सहज आकांक्ष मर जाती है। शराबी पति की मार, ठेकेदार की घूरती आंखों और तसला उठाकर तीसरी चौथी मंजिल तक पहुंचाने की पिरेक्टिस करतीं वे मन ही मन गिर पड़ने की शंका से भयभीत मेहनत करती हैं, दर्द झेलती हैं और इस सारी श्रम-प्रक्रिया में स्वयं भी पत्थर हो जाती हैं।

कवि को यह भी लगता है कि पूंजीवादी अहं की वजह से साधारण मध्यवर्गीय चरित्र दुविधाग्रस्त होकर रह जाता है, वह अपने कर्त्तव्यबोध को क्रियान्वित नहीं कर पाता बल्कि अपने ही झूठे तर्कों और असुविधा के नाम पर स्थिति से पलायन कर जाता है।

कवि मूल्य-विघटन की स्थिति और प्रक्रियाओं को भी अनेक कविताओं में चित्रित करता है। उसे दु:ख है कि सत्य-भाषण से कटुता ही मिली है, लोग सत्य सुनना नहीं चाहते, आलोचना और पत्थरबाजी होती है, झूठ के मुखौटों में अपना स्वार्थसिद्ध कर रहे व्यक्ति की

भीतरी सड़ांध छल-कपट की मुद्राओं में छिप रही है। सत्य यह है कि मानव-मूल्य मर रहे हैं। गांवों और शहरों में जीवन यांत्रिक होता जा रहा है। कुछ भी नया नहीं हो रहा, कोई परिवर्तन नहीं, मौसम एक जैसा है, आदमी का पुर्जा-पुर्जा तक चिन्ताओं से घिरा है, व्यर्थ सोच के घोड़े दौड़ाना आदमी की नियति बन गई है। दिन भर जुतने के बाद आराम कर लेने वाले घोड़ों की जिन्दगी से भी बदतर आदमी की जिन्दगी हो गई है। दिन-ब-दिन आदमी अकेला होता जा रहा है, दया, विनम्रता, मानव मंगल की कामना तथा जीवजन्तुओं के प्रति करुणा आदि सांस्कृतिक मूल्य धीरे-धीरे मर रहे हैं। वैयक्तिकता प्रधान इस युग में थोड़ा-सा आत्म-प्रसार करके इन मूल्यों को आचरण में उतारने वाले आम आदमी को पागल करार दिया जाता है और वह हंसी, मजाक और तिरस्कार का पात्र बन जाता है। उसका यह आचरण मूल्यहीन समाज में विसंगत हो गया है, बच्चे तक उसे पागल ! पागल! कहते हैं। शहरी सभ्यता ने जीवन के सहज विकास को अवरुद्ध कर दिया है, सीमेन्टिड बरामदों में रखे गमलों के पौधों को न खुली हवा मिलती है न खुली ज़मीन।

कवि व्यंग्य करता है कि हम नागफनी के पौधे लगाते हैं, यह पौधा हर प्रकार के मौसम को झेल जाता है, यह पौधा अपने सौंदर्य, साहस, सहनशीलता, क्षमता और संघर्षशक्ति के साथ-साथ अपने शोषण का विरोध करता है। जो लोग इस पौधे की इन विशेषताओं को जानते हैं वही इस पौधे को घरों में लगाते हैं-

''क्योंकि उनका अपना जीवन। तूफ़ानों की बीच से गुजरा है/ गुजर रहा है। इसीलिए वे अपने आंगन में /वही फूल खिलाना चाहते हैं/ जिसमें अपार क्षमता हो/ तूफ़ानों को झेल सकने की।''

(पृ० 66)

कवि चाहता है कि आदमी नकली मुखौटों को उतार कर सहज मस्त जीवन जिए। वह संतोष को जीवन का सबसे बड़ा धन मानता है और कहता है कि संतोष से ही आदमी और कौम आगे बढ़ सकती है परन्तु कवि की यह सोच प्रतिगामी प्रतीत होती है। वैसे कवि प्रभु को दोष देने या उसकी लीला को अपरम्पार कह कर संतोष कर लेने की वृत्ति को नकारता है। प्रभु का नाम लेकर घृणा बढ़ाना आदमियत का हनन करना, आदमी को टुकडों-टुकड़ों में बांट देने वाली सदियों से चली आ रही कोशिश की वह निंदा करता है।

आदमी अपने आप में अकेला होता जा रहा है, अकेलेपन का अहसास उसकी पीठ को कुतर रहा है। अपनी ही चालाकी और आत्मवाद के कारण सिमटता जा रहा है, उसका जीवन अकेलेपन में पशु-जीवन से भी बदतर हो रहा है जबकि वह पशुओं से भी दुकेलेपन की सीख ग्रहण कर सकता है और अकेलेपन से मुक्त हो सकता है-

''खिड़की से दिखा सामने सड़क पर/ पशुओं का एक अदद जोड़ा. चाटता सहलाता/

एक दूसरे को बांहें न होने का /उन्हें भला क्या दुःख है। (पृ० 62)

पुलिस तंत्र में बढ़ रही रिश्वतबाज़ी के कारण वे निर्दोष लोग पिट रहे हैं, जिन्होंने भूख और गरीबी से लड़ते हुए कानूनी दांव पेंच नहीं सीखे, स्वतंत्रता के बाद भी जिनके लिए इन्साफ, अमनचैन और खुशहाली का दरवाज़ा नहीं खुला, जो बीस-बीस सालों से बिना किसी जुर्म के कैद काट रहे हैं क्योंकि उनकी अपीलों पर न्यायधीश अभी तक विचार ही कर रहे हैं। कवि पुलिस पर व्यंग्य और चोट करता है कि रिश्वत न दे पाना ही उनका जुर्म है। स्थिति यह है कि अमीर बस्ती में रहने वाला गरीब और शरीफ आदमी ही असुरक्षित है, वही पुलिस की मार से कविता नायक (सीताराम) की तरह मर रहा है–

''बन आई है चारों ओर/ खुश हैं आदमखोर/ शराफत/दुबकती-छिपती फिर रही है घास में/ न जाने कब/ ली जाए दबोच/ कि अब तो/ संरक्षित हो चले हैं/ वन!'' (पृ० 81)

विडम्बना यह है कि पुलिस का राजनीति का संरक्षण प्राप्त है और दोनों की मिलीभगत से अत्याचार हो रहे हैं। नेता और पुलिस अपने-अपने स्वार्थ के लिए परस्पर जुड़े हुए हैं। पुलिस चीफ़ को बुलाकर नेता कहता है–

''यदि नहीं किए गए बंद/ निचले तबके पर अत्याचार /तो वे ज्वालामुखी की तरह फट पड़ेंगे/ और आपकी बंदूकें धरी की धरी रह जाएंगी। (पृ० 84)

और पुलिस विद्रोही नेताओं की खबर लेने लगती है और इन्हें हादसों, अय्याशी, आत्म हत्या या डकैती की योजना बनाते हुए लोगों के साथ हुई पुलिस मुठभेड़ (झूठी) में मरे करार देने लगती है। परन्तु कवि आश्वस्त हैं कि त्रासद हो रही जिंदगी के विरुद्ध विद्रोह अवश्य भड़केगा–

''कि इन्हीं गलियों-चौराहों के नीचे/ एक मज़बूत ज़मीन भी है/ जिसके भीतर/ बारबार रौंदे जाने की गर्मी /जमा होती जा रही है/ लगातार!'' (पृ० 85-86)

शहर और गांव में विडम्बनात्मक स्थितियां बढ़ती ही जा रही हैं और अब तो ग्रामीण जीवन में भी घाव, आवारगी, थकान, अभाव बढ़ते जा रहे हैं, किसान को मन माफिक फसल नही मिल रही। इस स्थिति के विरुद्ध अब वह अधिक दिन तक चुप बैठे रहने के लिए तैयार नहीं।

''पर कुछ कर गुजरने की हमारी चाह/कभी नहीं चुकती है! शायद यही वजह है।

कि हमारे गांव में भूत-प्रेत ज्यादा होते हैं। (पृ० 50-51)

अतः बेहतर यही है कि विद्रोह की इस चिंगारी को हवा मिलने और आग बन कर भड़कने से पहले ही बुझा लिया जाए, अन्यथा यह सब कुछ लील जाएगी।

कवि इस विचार तक आ पहुंचा है कि आजकल का मजदूर पूंजीपति के सभी षड्यंत्रों, अपने प्रति उसकी घृणा को जान गया है, वह उसके स्वार्थ, उसकी शर्म, उसके दो मुंहे चरित्र और छल-कपट पूर्ण नैतिक आदर्श और अध्यात्म सम्बंधी बातों का रहस्य जान गया है। उसके भीतर का इन्सान अब जागरूक है परन्तु विडम्बना यह है कि यह मजदूर, श्रमिक और आम आदमी अपनी महत्त्वाकांक्षा को थोड़े से लाभ-लोभ के भारीपन में दब कर भूल जाता है। अपनी मंजिल, कर्म या संघर्ष को भूल कर दुनियादारी में मस्त हो जाता है। कवि रूपक गढ़ता है कि इस मुर्गे की उड़ान दीवार की मुंडेर तक नहीं पहुंच पाती और कवि की नन्हीं-सी आकांक्षा प्रतीक्षा से थक हार कर निराश हो जाती है और पीड़ा को भोगती रह जाती है।

अतत:-हम कह सकते हैं कि इन कथात्मक कविताओं में कवि की साम्यवादी समाजवादी समझ और संघर्ष-चेतना के अनेक आयाम उद्घाटित हुए हैं। कवि की भाषा साफ सुथरी सम्प्रेष्य है और बिम्ब और रूपक निर्माण की शक्ति सराहनीय है। सपटबयानी ने कविता को अतिरिक्त समझ और संवेदना प्रदान की है।

5.1.19. यथार्थ के घेरे में मनोज शर्मा के 1988 ई० में प्रकाशित कविता-संग्रह 'यथार्थ के घेरे में' कुल 60 कविताएं हैं, इन कविताओं में कवि ने पूंजीवादी विचारधारा द्वारा प्रस्थापित अर्थ व्यवस्था और शासन-तंत्र में शोषित व्यक्ति के अन्तर्मन को प्रस्तुत करने का भरसक यत्न किया है और धर्म, देह तथा आत्मा सम्बंधी आदर्शों और भाववादी कल्पनाओं पर चोट की है। कवि ने सामाजिक स्तर पर समाजवादी दृष्टिकोण को प्रस्तुत करने की अपेक्षा व्यक्ति के संस्कारों को समाजवादी बनाने का यत्न किया है।

यहां कवि भाववादी मृग-मरीचिकाओं से ऊपर उठ कर जन-जन के रोटी, कपड़ा और मकान के प्रश्नों को प्रस्तुत करता है और उन सभी छोटी बड़ी सभ्य-असभ्य शक्तियों से जूझने की प्रेरणा देता है जो व्यक्ति के जीवन को संत्रस्त किए हुए हैं। आत्मा की अपेक्षा देह को महत्त्व देने वाले कवि ने 'यथार्थ के घेरे में' कविता में अपनी सभी कविताओं की भूमिका-सी प्रस्तुत की है और उस विचारधारा को स्पष्ट कर दिया है जो लगभग सभी कविताओं में किसी न किसी रुप में अभिव्यक्त हुई है। इन कवितायों का मूल्यांकन निम्नलिखित है।

5.1.19.1 अध्यात्मवाद का विरोध कवि स्पष्ट कहता है कि आत्मा और अध्यात्म की बातें ही माया और भ्रम हैं। यदि शरीर नहीं है तो शरीर के दर्द कहां रहेंगे बल्कि यह कह देना कि आदमी मुक्त-आत्मा का ऐसा बिम्ब है जिसमें कोई भ्रम नहीं और यह बिम्ब सतही जगत से उपराम, मन-मरीचिका से ऊपर है- भी आदमी को ब्रह्म के चक्कर में डाल देना ही है, 'मैं' को 'ब्रह्माण्ड' स्वरूप' कह कर ब्रह्माण्ड के नष्ट हो जाने की चिन्ता न करना भी अपने आपको भ्रम में ही रखना है। कवि व्यंग्य करता है कि न जाने कैसे लोग 'अहंब्रह्मस्मि' का नारा देकर जूलूसों की भाषा को नकार देते हैं।

विडम्बना यह है कि परमात्मा पीड़ा की परिभाषा से अनभिज्ञ और निश्चिंत खड़ा है। जहां लोगों को महीनों अन्न नहीं मिलता वहां आत्मा की बात व्यर्थ है, यह बात तो पिरामिडों में ही अच्छी लग सकती है क्योंकि यथार्थ यह है कि भूख को जानना मुश्किल है। कवि तर्क देता है कि आत्मा के भाईचारे के आगे यदि और कोई सत्य नहीं तो पूंजीवाद से समाजवाद तक की बाट-सीमा सुरक्षा के लिए तनी लाखों छातियां, जिंदा रहने की कोशिशें, कर्ज, लड़की के विवाह की सोच, ऐश आराम की सुविधाएं आदि में भाईचारा क्यों नहीं? क्यों मजदूर को मुट्ठी भर दानों पर बिकना पड़ता है ? जबकि ठेकेदार मज़दूरी काटने और बिस्तर गर्म करने की ताक में रहता है।

आत्मा के विचार के विरुद्ध वह तर्क देता है कि शरीर ही प्रमुख है, यदि शरीर नहीं तो सोचेंगे कैसे ? क्योंकि मस्तिष्क शरीर का ही तो भाग है। शरीर को नकार कर आत्मा की सोचने के विचार पर चोट करता हुआ कवि स्पष्ट करता है कि गिद्ध आकाश में कितना भी ऊंचा उड़े उसकी दृष्टि सदा शवों पर रहती है।

यथार्थ जीवन में आत्म-अध्यात्म की बातों का कोई महत्त्व नहीं क्योंकि हृदय-दृढ़, मन- नियंत्रण, इन्द्रिय-संयम की बातों को करने के लिए मठ बने हैं, ये बातें कॉफी हाउसों या खेत-खलिहानों में करना संभव नहीं। मठों में तन-मन पूरी तरह तृप्त रहते हैं क्योंकि हर मौसम में घी-दूध रहता है और हर मौसम में मठाधीश के सिर पर बादाम रोगन की मालिश होती है बल्कि अकाल में भी मठ के गोदाम भरे रहते हैं।

कवि आत्मा-परमात्मा के वाग्विलास में न फंस कर कविता में बिल्कुल सांसारिक आदमी की सांसारिक व्यथाओं को ही अभिव्यक्त करना चाहता है। उसकी कविता का विषय है- स्त्री-पुरुष के यौन सम्बन्धों से पैदा हुए साधारण मानव की त्रासदियां और रोटी, कपड़ा, मकान, शिक्षा आदि से जुड़ी मूलभूत आवश्यकताएं। और इन सभी जरूरतों की राह में बाधा बन कर खड़ी शोषक शक्तियों के तंत्र और इस तंत्र के बीच छटपटाते आदमी की अन्तर्पीड़ा का चित्रण। कवि उसमें विद्रोही संघर्ष-चेतना को उद्दीप्त कर देना चाहता है और व्यक्ति के दुविधाग्रस्त मन-मस्तिष्क को संस्कार देना चाहता है।

वस्तुतः व्यक्ति-व्यक्ति के परस्पर सम्बन्धों, रिश्तों में आर्द्रता, हार्दिकता और मिलनाकांक्षा समाप्त-प्रायः हो रही है। उसमें मानवीय मूल्यों का ह्रास हो रहा है। यहां कवि उन जीवन-स्थितियों, विचारों, अंधविश्वासों, क्रियाओं-अनुक्रियाओं और प्रतिक्रियाओं को उजागर करता है जिनके बीच आदमी विसंगति भोग रहा है। उन भाववादी कुहेलिकाओं पर चोट करता है जिन्होंने आदमी को मृगमरीचिकाओं में फंसा रखा है। कवि चाहता है कि रिश्तों में आत्मिकता हो, दायित्व की भावना हो, सहजता हो, अनौपचारिकता हो, स्वत्व का भाव हो और स्वत्व आत्मविभाजित न हो। बल्कि मानवीय स्वाभिमान की गरिमा तो हो परन्तु अहंकार का सांड

मानव-मूल्यों को न रौंदे। इस तरह की भावभूमि और वैचारिक प्रतिबद्धता को लगभग सभी कविताओं में अभिव्यक्ति मिली है।

कवि की निषेधात्मक प्रतिक्रियाएं तरह तरह के बिम्बों, भाववृत्तों, व्यंग्य-वाक्यों, टिप्पणियों और सपाट वाक्यावलियों में परस्पर गुंथी हुई हैं, लगभग प्रत्येक कविता में विडम्बनात्मक जीवन की स्थितियों को उजागर किया गया है और उन्हें दूर करने का आह्वान किया गया है, कवि का मूल स्वर निषेधात्मक होता गया है और मोहभंग की स्थितियां उजागर होती गई हैं।

कवि मानता है कि आदमी का व्यक्तित्त्व तिलस्मी किले जैसा है, जिसमें चक्रदार जीने हैं, प्रत्येक क्षण उसमें नये-नये अनुभव जन्मते-मिटते रहते हैं, न जाने कितने ब्रह्मराक्षस जन्म लेते हैं, कितने विचार मर जाते हैं उसके अन्तर्मन को कोई हस्तरेखा विशेषज्ञ, कोई भृगुदर्शी नहीं जानता। उसके मन-मस्तिष्क में सदैव कोई न कोई विचार, आकांक्षा, स्मृति चलती रहती है और वह अकेला दिखता हुआ भी अकेला नहीं होता।

आदमी के इस अन्तर्मन के सहारे कवि ने जीवन की अनेक विसंगतियों को चित्रित किया है। उसने अतीत और भविष्य को महज दो खूंटियां मान कर वर्तमान की समस्याओं की अलगनी बांधी है। जिस पर आदमी की वर्तमान जीवन की समस्याओं को खूब बिछा, फैला कर प्रस्तुत किया है।

5.1.19.2. **जीवन–यथार्थ और मानव–मूल्यों की पहचान** पूंजीवादी युग में परिवेश कुछ ऐसा है कि भौतिक सुख सुविधाओं से बढ़कर कुछ सोचा ही नहीं जा रहा, स्थिति यह है कि प्रणय सम्बंध भी आत्मीयता की अपेक्षा कार, फ्रिज, सोफ़ा, बंगला आदि पर आ टिका है। ये आकांक्षाएं मध्यवर्गीय, ग्रामीण युवतियों में भी संस्कार के धरातल पर उतर गई हैं ग्रामीण नायिकाएं अब पूंजीवाद में जी रही हैं जबकि नायक दफ्तर में डांट खाए क्लर्क जैसा है, उसकी आत्मा चोट खाए सांप-सी छटपटाती है। वह प्रेमिका के अन्त:करण में समा जाना चाहता है। उसकी मांग में वह दायित्व के मोती भर देना चाहता है। वह शरीर को पूंजी नहीं आध्यात्मिकता का माध्यम मानता है। औरत के जिस्म को वह ऐसी धरती मानता है, जिसमें सुर्ख और सफेद गुलाब बीजना चाहता है, उसकी निगाह में सुर्ख गुलाब प्रणय-जीवन है तो सफेद गुलाब सात्विक वृत्ति।

प्रेम में अजनबियत का कोई महत्त्व नहीं, प्रेम में जंगल का भयानक सम्मोहन है, नशे का भ्रम और तृष्णा की चरम स्थिति है और प्रेमिका का प्रत्येक पत्र गले के नीचे चमगादड़-सा फड़फड़ा कर चिपक जाता है। जबकि वह चाहता था कि प्रेमिका के संग नये युग पैदा करे, उसके बर्फीले होठों पर लावे-सा झड़े, परन्तु कुछ भी नहीं हो सका, प्रेमिका को पलटना था पलट गई क्योंकि वे दोनों एक दूसरे में पूरा मर्द और पूरी औरत की तलाश में थे जबकि वे पूरा

मर्द या पूरी औरत कभी भी न हो सके।

मेरी खुशी/घेरे में कैद/ उस जंगली जानवर की मानिंद है। जो अपनी साथिन संग/उसके गर्भवती होने की खुशी मनाने से पहले ही/सरकस को बेच दिया जाता है।'' (पृ 58)

वह यथार्थ जीवन की विसंगतियों को पहचानने वाली प्रेमिका से मिलते ही अछूता आभास प्राप्त करता है क्योंकि प्रेमिका ने स्कूली रोमांस के चिपचिपे लैटर पैडों की अपेक्षा यथार्थ को स्वीकारा है। यही यथार्थ उनका मौलिक सम्बंध है, जो उनके लहु में तिरता है।

ऐसी ही आत्मीयता, सहजता, अनौपचारिकता और विश्वासमयी अनुराग आदि वह जीवन के अन्य रिश्तों नातों में भी चाहता है। उसे लगता है कि शहर में आया युवक जड़-सा हो जाता है। शहर से उसे पिता जैसा प्यार नहीं मिलता, इसी कारण वह घर से भागा हुआ होने की कटु अनुभूति से ग्रस्त हो रहा है। इसी कारण अब वह नहीं चाहता कि पिता को जीवन-संघर्ष के चक्रव्यूह में जूझते छोड़ स्वयं बाहर खड़ा आराम से आग तापता रहे। शहर के अजनबीपन से घबराया वह औपचारिक शहरी माहौल छोड़कर अपने जाने पहचाने ग्राम्य माहौल में लौट जाना चाहता है। यहां तो मिलने का तपाक और गर्मजोशी झड़ जाती है, रिश्ते खोखले हैं, आत्मा निर्मम दागों से भरी रहती है और ये दाग कीमतें नकारते हैं, स्थितियां स्वीकारते हैं, नियम फटकारते हैं और सभी कुछ बासी-सा होकर रह जाता है। भावनाओं के बिना रक्त सर्द हो जाता है, न खालिस सच्चाई मिलती है, न उन्मुक्तता, न क्वारी खुशबू का सान्निध्य, अपने ही बोझ तले दबे आदमी का चरित्र उसी से अलग हो जाता है और तनाव, कुण्ठाएं और मानसिक दबाव उसके 'मैं' पर छा जाते हैं। उसके सपनों के रंग बदरंग हैं, वह आत्महत्या, पलायन, खामोशी की कैद में धुरीहीन हो जाता है परन्तु उसका अंत अनिश्चित रहता है। उसकी चेतना दोगले दृश्यों से आतंकित हो उठती है और भीतर ही भीतर जंगली जानवर उठकर जिंदगी से बलात्कार करता है। सुगन्ध, स्वप्न और सौंदर्य आदि जी हजूरी की अग्निशिखा में होम हो जाते हैं।

स्थिति यह है कि आदमी पकी खेती-सा कटने को तैयार मिलता है और हरेक नयी अनुभूति पर आटे का मात्र एक दिया धर लिया जाता है, रिश्तों का भद्धेस ऐसा है कि शहर, रंग, दृश्य बदलने पर भी कोई फर्क नहीं पड़ता, रिश्ते बदलते नहीं। आदमी के मन के अंदर तो कोई सांड दौड़ता रहता है, स्वतुष्टि, नयेपन और आज़ादी की आकांक्षा में बढ़ता जाता है, बंधन की पोथी की तिलमिलाती भाषा को वह झुठला चुका है और उसकी आत्मा यायावर-सी नया से नया संजोती जाती है। परन्तु विडम्बना यह है कि उसका वर्तमान रीता का रीता रह गया है।

कवि जानता है कि भारतीय समाज अनेक प्रकार की विडम्बनाओं से ग्रस्त है और इन जीवन विसंगतियों का कारण है उसकी पूंजीवादी सोच। पूंजी के लिए आदमी धोखाधड़ी करता है और पूंजी के लोभ के कारण ही 'प्यार' और 'नफरत' शब्द परस्पर विलोम बन गए हैं और

हवा तक का व्यापार होने लगा है । वस्तुत: धन के लालच और स्वार्थ के मुद्राचक्र ने सभी रिश्तों और सदाचरण को भ्रष्ट कर दिया है, मुद्राचक्र में फंसे आदमी से उक्ताहट होने लगती है, मुद्राचक्र के कारण ही सभी रिश्ते मुरझा जाते हैं और आदमी असहज क्रूर-कठोर हो गया है। यहां तक कि पारिवारिक सदस्य साथ-साथ रहते हुए भी डबलरोटी के टुकड़ों की तरह अलग-अलग हैं, उनकी इच्छाएं पूरी नहीं होती।

कवि उस माहौल में लौटना चाहता है जहां दस्तानों में छिपा कर हाथ न मिलाना पड़े, जहां शब्दजाल के माध्यम से अपना व्यक्तित्व किसी दूसरे के व्यक्तित्व पर पोतने की कोशिश न की जाए। कवि-समाज के बीच रह कर अपने व्यक्तित्व का विकास करे समुदाय का हिस्सा बने व्यक्ति को ही वह पूर्ण व्यक्तित्व मानता है-

''वृक्ष अपनी अपनी बिरादरी में/अपनी अपनी मान्यताओं में/अपने संस्कारों में/ या अपने अपने परिवेशों में पनप कर भी किसी भी जंगली कानून के शिकार नहीं/ हम खजूर के वृक्ष/या फिर बरगद, अशोक या मौलसरी के/किन्हीं भी परिस्थितियों में/धरती से अपनी पकड़ रखे हैं/ जड़ों की जीवन्तता में एक-सी जकड़ रखे हैं।'' (पृ० 138)

कुछ ऐसा ही सम्बन्ध कवि व्यक्ति और समाज के बीच चाहता है।

5.1.19.3. संघर्ष-चेतना का स्वरूप-विकास कवि उस तंत्र और मानव विरोधी व्यक्तियों के विरुद्ध विद्रोह भी करना चाहता है, जिनके कारण आदमी त्रस्त है, आतंकित है और जिस तंत्र ने आदमी को आत्मकेन्द्रित बना कर रख दिया है, जिसके कारण दिमाग में सरकण्डों का भरा-पूरा जंगल उग आया है और विचार पंगु होकर रह गये हैं जिसके कारण न वह भटकन से बच सका है, न पलों को झाड़ देने को उचित मानता है। विडम्बना यह है कि हमने मूंछ झुका कर पूंछ बना ली है और विस्फोट के दहाने पर खड़े किस्मत की हथेली सहला रहे हैं, वह और हम थक हार कर मादा के मादा ही रह जाते हैं। परन्तु मौजूदा माहौल में पूरा दिमाग सोच में टंग गया है, चेहरा भावहीन हो गया है, सिद्धांतहीनता के कारण अन्तर्द्वन्द्व बढ़ रहा है।

इन सभी स्थितियों पर कवि चोट करता है, वह चुप्प नहीं रहना चाहता क्योंकि वह जानता है कि जहां मात्र तलवार की मूठ बदली है धार वही है। इस लिए बढ़िया है कि अभाव से जूझती जिंदगी में पेट की आग में, कानून, अपराध और साधुवाद के विरोधाभास को धिक्कारें और आततायी सभ्यता से आत्म-रक्षा के पैंतरे केवल शैल्फों या फ्रेमों में न सज़ा कर अपने तिरते लहू में सजा लें और सभी पुरानी परम्पराएं तोड़ दें, क्योंकि मौजूदा जिंदगी के लोग केंचुलियां बदलते हैं, नकाबें धारण करते हैं, बाघनखे पहनते हैं और आदमी महज औद्योगिक क्रान्ति के दायरों में रेंगते हुए बन्धुआ जिस्म शून्य भोगता है, घुटनों तक पानी में खड़े बहन की शादी के सपने देखता है, अपना दायां हाथ मशीन में खो बैठता है जबकि धूप की नर्म चादर लुटेरे लूट

कर ले गए हैं। बच्चों की लोरी में गाना कम और रोना अधिक है, लगता है जैसे हृदय में धुएं की चिमनी फट गई है और अन्दर गर्म गर्ख भर गई है। मज़दूर की दिनचर्या कुछ ऐसी है–

''दिनचर्या उस बेवस वेश्या-सी जिसकी सलवार में नाडा नहीं होता /और जिंदगी खूंटी पर/ मरियल चड्डी सी लटकी है/ सोच बस यहीं अटकी है'' (पृ 123--24)

कवि चाहता है कि आदमी अपना शतुरमुर्गी धर्म छोड़ कर स्वायतता: को कायम रखे, मूल्यों के लबादे में विस्मृत होने की अपेक्षा स्वयं को उत्तरदायित्व से जोड़े, बासी संस्कारों की उपेक्षा करके पूर्वाग्रहों से मुक्त रहे क्योंकि आस्थाओं की हड्डियां चरमराने लगी हैं, बैसाखियों की आवश्यकता अब नहीं रही क्योंकि उसका दायित्व बढ़ चुका है। वह नहीं चाहता कि आदमी अपनी शक्ति को नपुंसकता दूर करने वाले इश्तहारों को पढ़ने में गंवाए, उसे चाहिए कि पेपर वेट के नीचे दबे अधिकार छुड़ा ले। परन्तु, फिलहाल स्थिति यह है कि दोष परिवेश का है क्योंकि खुशबू का जो भी बिम्ब उभरता है वह घूम फिर कर बू पर ही अटक जाता है। फिर भी कवि आश्वस्त है कि एक न एक दिन अवश्य ही खुशबू की बातें होंगी और जब हवा बदले, चीन्हा स्पर्श छुए, बरगदी परम्परा की छांव में चौपाल के ऊपर बिरादरी जुड़ने लगे तो समझ लें कि मौसम अपना है। बंजर देह में जब भूचाल आता है तब जमाना काँप जाता है और जब लुहारों के हंसिये, हथौड़े, जुलाहों के करघे धागे, मछेरों के जाल आदि झुग्गियों के जंगल में हवा के संग चीखते खीझते प्रश्न उठाते हैं और उत्तर चाहते है कि क्यों उसका दोस्त रोटी के जुगाड़ में जोरू से धंधा कराता है और बदले में जेल जाता है जबकि खाकी भेड़िया मुफ्त में मुफ्त का माल उड़ाता है और पूछता है कि कब तक स्थिति नहीं बदलेगी।

वह खुलेपन को जीने ठहाकों जैसा गूंजने, बेलों जैसा बढाने की आकांक्षा करता है ताकि जिंदगी उदास न हो, हर तरह का भद्वेस पीछे रह जाए और जीवन का रथ आगे बढ़ता जाए और वह कल्पना–लोक में खो जाता है और देखता है कि हजारों लाखों लोग फावड़ों, कुदालों और हलों को पकड़े अपने अपने माथों के बीच एक एक किरण संजोए निरंतर बढ़ रहे हैं और सूरज-सी इस रोशनी के आगे सभी अंधेरे लुप्त हो रहे हैं।

कवि समुदाय,भीड़ और समूह को निष्ठुर और क्रूर भी मानता है क्योंकि वह आदमी के लिए घातक हो सकते हैं। वह मानता है कि देश में बढ़ रही साम्प्रदायिक सोच ने आदमी के खून को सस्ता कर दिया है। देश विस्फोट के कगार पर खड़ा है, मानवता तलवार की धार पर है, मूल्यों का इतिहास आहत है, राजधानी से लेकर गांव तक कर्फ्यू की लपेट में हैं, मन्त्री से महामंत्री तक संगीनों की ओट में हैं। उस पर कवि प्रश्न करता है कि क्या स्वायतत्ता का मूल्य विकेन्द्रीकरण पर बहस है ? क्या संस्कृति की पहचान आदि का उत्तर आदमी का खून और इन्सानी जान ही है ? स्थिति यह है कि अति राष्ट्रवादी, या उदारवादी से उग्रवादी तक देश को पतंग समझ कर तुनके लगा रहे हैं जबकि राष्ट्र कोई पतंग नहीं कि डोर के इशारों पर चले, न ही

आदमी का खून इतना सस्ता है कि गाय या सूअर पर, साम्प्रदायिक ढकोसलों पर बहाया जाए। इसी विचार के अन्तर्गत कवि को कोई भी दूसरा चेहरा देश की सरहदों से बढ़कर हसीन नहीं दीखता। कवि सभी प्रकार के रास–विलास को नकारता हुआ देश के प्रत्येक जर्रे को-चाहे वह किन्हीं भी समस्याओं से घिरा हुआ हो पसंद करता है क्योंकि वक्त के सांचे में ढलना ही सबसे बड़ी आवश्यकता है ताकि मिट्टी का ऋण चुका कर युग पुरुप बना जा सके।

परन्तु विडम्बना यह है कि मौजूदा व्यवस्था में संघर्षशील व्यक्ति अकेला पड़ता जा रहा है। कवि ने देखा है कि जो व्यक्ति शहर की सब से ऊंची मीनार पर चढ़ा, चिल्लाया और बरसात में भीगा वही रात के बढ़ते–बढ़ते अकेला खड़ा था जबकि साथ के लोग पेटीकोटों में दुबक चुके थे। अंतत वह आदमी कुण्ठित होकर रह गया–

''गूंगे दायरों में लगातार घूम घूम/ जब वह थक गया उसने सहज भाव से बीड़ी सुलगाई। पिण्डलियां सहलायीं और पिच्च से थूक दिया।'' (पृ 19–20)

संघर्षशील व्यक्ति के दमन और यंत्रणा की प्रक्रिया का विस्तृत रूप कवि ने 'खण्डित सोच' कविता में दिया है। उसने लोगों की निर्धनता और उन पर होने वाले जातीय तथा पुलसिया अत्याचारों का हृदयद्रावक वर्णन किया है। कविता नायक ने उंगलियां सीधी की तो उसे विद्रोही करार दिया गया, उसकी आंखें फोड़ दी गईं, उसकी मां बर्फ की सिल पर दम तोड़ गई, पिता के पेट में नश्तर उतार दिया गया क्योंकि बेटी की अस्मत लुटते देख उसने चिल्लाने की कोशिश की थी। जबकि हमारा कानून बड़ा बेबस है, अदालत केवल गवाह पहचानती है और सजा महज धोखा है, विडम्बना यह है कि पूरे परिवार की मौत के बाद भी अधिकारों की मांग उठाने पर कानून ने आदमी को देशद्रोही करार दे दिया, उसकी आवाज़ को दबा दिया है, वह व्यंग्य करता है–

''लोहे से लदा/बेबस खड़ा/ अपनी मां, बहन, बाप और अधिकारों को लेकर/केवल सोच सकता हूं/ कह कुछ नहीं सकता/ चूंकि अभी आप सो रहे हैं और आपकी कमजोरी यह है कि आप सूरज उगने से पहले/ कभी नहीं उठते।' (पृ 156)

वस्तुत: तंत्र ने झुकी गर्दनों वाली पीढ़ियां ही बढ़ाई हैं।

कवि चाहता है कि नन्ही–सी चिड़िया के सिर के बीचों बीच पीली मरियल–सी धारी की जगह सुर्ख धारी होती, पंजे के नाखून कुछ नुकीले होते, वह समय असमय न चहचहाकर कुछ विशेष बातों में चहचहाती और भोर को साथ लिए आती, उसके आते ही सूरज उग जाता तो मुद्दे कितने ही बदल जाते, अर्थ संभल जाते।

कवि 'नंदू संथाल' कविता में आदमी के शोषण, उसके विरुद्ध तंत्र की साजिशों और आदमी की संघर्ष–चेतना को एक साथ पिरोकर विद्रोही चेतना के दमन की कथा को प्रस्तुत

करता है। विडम्बना यह थी कि नंदु संथाल फटेहाल-सा पूरी जिंदगी जंगल में लकड़ियां काटता रहा, पीढ़ीगत परम्परा के अनुसार अपनी जुबान तालू से चिपकाये तथा बरसों से पलते षड्यंत्र को अपनी झुर्रियों में छुपाए मर्दानगी की ग्लानि जांघियों में लटका दलिद्दर बढ़ाता रहा, अपनी साख घटाता रहा। जबकि स्थिति यह रही कि बाजीगारों की उछल कूद, मिरासियों की फूहड़ता, चापलूसी का झुनझुनावाद उसकी बियाबान थकान में महज एक लिजलिजापन बना रहा और वह उकड़ूं होकर हगता भी रहा और हाथ हिलाहिला कर आदाब भी बजा लाता रहा। जबकि वह जान रहा था कि जनपथ से लेकर उसकी जोरू की कोख तक फौजी बूटों के निशान थे और वह जान रहा था कि जंग और जीत के बीच औरत का पेटीकोट क्या मायने रखता है ? फिर भी वह हाथ का हंसिया हाथ में ही ले महज खुरदरा-सा गाता रहा था, फाकाकशीं रातकशी किसी का भी उसने प्रतिकार नहीं किया था न इसके प्रति कोई शिकायत की थी।

परन्तु वक्त कभी एक जैसा नहीं रहता जब वर्ग-संघर्ष की बात चली, सरपंची मार, साहूकारी मार, दूध के उबाल, अस्मत की चपत, घुन खाई हड्डियों और बहन की छातियों के मसले जाने की घटना आदि पर बात चली तो चट्टानों की ओट में गुरिल्ला बीज फूट पड़ा और बारूद की महक चपातियों में मुखर हो गयी, मिट्टी के जिस्मों में घुल गई। अंततः औजार हथियार बन गए। परन्तु विडम्बना यह रही कि देश की धौंस में विधान सभा का गर्वीला विश्वास नेतागिरी की पूंछ में सयाने लोगों का कनैक्शन, जनतंत्र की खपरैल पर चन्दों का रोगन और कानून के अपने संचालन के कारण होशियार और कमिटिड फौजी ने घर के अन्दर बंदूक दाग दी, वर्दी में तमगा लगा लिया।

आज फिर वही विडम्बना है, नंदू संथाल के बेटों और उनके बेटों का भी इस्तेमाल हेतु स्वागत हो रहा है। शांति बंदचलन हो रही है, वर्गविभाजन की मूंछों को ताव देता देश अपनी बवासीर को छिपा रहा है जबकि इस स्थिति के विरुद्ध बूढ़ा नंदू संथाल फिर से संघर्षरत हो गया है, घुप्प अंधेरे में वह घुड़सवार हो निकलता है, रोशनी को ताकता है और उसे पाने की आकांक्षा में सरपट घोड़ा दौड़ाता हुआ पगडण्डियों के जाल में खो जाता है। मौजूदा वस्तुस्थिति पर कवि चोट करता है-

"यहां हिन्दू सेना या/मुस्लिम रेजीमैन्ट तो कम्पीटीशन में है/ साहूकार इस पोजीशन में है/ कि मुल्लक को भरी गुल्लक समझ धड़ाधड़ खाली किया जाए/बूढ़ा/बहुत बूढ़ा/नंदू संथाल/ आज फिर गाता है।"

ये अच्छी कविताएं हैं परन्तु कहीं-कहीं इनमें अतिरिक्त दुरूहता और संकुलता है। कहा जा सकता है कि नकारवाद से बढ़ते हुए कवि संघर्षचेतना तक पहुंचा है। कविताएं सतर्क भाषाई अभिव्यक्ति हैं, कहीं कहीं उलझाव भी है।

5.1.20 दे दो एक वसंत जितेन्द्र उधमपुरी के 1989 ई० में प्रकाशित कविता-संग्रह 'दे दो एक वसंत' में 49 कविताएं संकलित हैं, जिनमें प्रकृति, प्रेम और विराट के प्रति अनुभूतियों का चित्रण तो है ही, ग्रामीण जीवन के प्रति आकर्षण और शहरी जीवन की विसंगतियों के साथ-साथ आतंक राजनीतिक मूल्यहनन और ऊब, उदासी, अकेलेपन की मनःस्थितियों को भी संजोया गया है। संग्रह की अधिकतर कविताएं सम्प्रेषणीय हैं और आर्द्र भी। कविता में बिम्बीकरण सशक्त है और अनुभूति के संयोजन में प्रकृति का विशेष सहारा लिया गया है। इन कविताओं का मूल्यांकन निम्नलिखित है।

5.1.20.1. जीवन की विकृतियों का चित्रण कवि का मन पीड़ित रहा है, जीवन अभिशप्त और तन-मन उत्पीड़ित रहा है। उसे मुक्तहास नहीं मिला, उसकी पहचान और अस्तित्व खोया रहा है। शायद इसी कारण वह शबनमी चेहरे, गोरी देह की भीनी गंध, प्रेम प्रसंग आदि भूल ही जाना चाहता है। वह अंतहीन संघर्ष और अन्तर्मन में उगती अतीत की हरेक परछाई, प्रतिबिम्ब आदि को भुलाकर अछोर क्षितिज के विराट सौंदर्य को जीना चाहता है।

वस्तुतः कवि शहरी जीवन और जीवन की विकृतियों से ऊब गया है। शहर के बीच शहर बस जाने के कारण अतीत काल का कस्बाई माहौल उत्सव-मेले, जलसे-जुलूस, हादसे, लोककथाएं, प्रणय-अभिसार बीत-रीत गए हैं और उसे अंधेरे में प्रिया का बदन छू लेने के उत्सवी क्षण और आवारा हवाओं की तरह भटकना और उसे याद आता है क्योंकि अब तो रोज शाम गहराते ही भीतर ही भीतर एक अस्तित्वहीन अंतहीन शून्य उग आता है और वह नये मार्गों, नये सत्यों की खोज में अन्तर्द्वन्द्वों को तिलतिल जी रहा है, आने वाले कल के लिए मुस्कानें बो देने की चाह में सूखी रेत पर तड़फड़ाती सुनहरी मछलियों की-सी व्यथा के बावजूद जी रहा है। उसे तेज जंगली हवाएं आदमखोर प्रेतात्माओं की तरह डराती हैं, सूर्यास्त की लालिमा से तपन के गुल मुहर रक्त-रंजित हो जाते हैं और खिले गुलाब आतंकित हो जाते हैं। न जाने कितने भूकम्प रातों में दस्तक देते हैं, सपनों में उदासी भर जाती है, वह टूट टूट जाता है और समय के इस अनचाहे उपहार को सहन करने-भोगने के लिए विवश-सा हो उठता है।

इस उबाऊ और विकृत जीवन का कोई चिर सत्य, कोई वांछित सौंदर्य नहीं मिल रहा। बुद्धिजीवियों में अदम्य व्याकुलता है। निराशा और अनास्था रिसने लगी है। राजपथ की ठण्डी रोशनियां न कोई प्रेरणा देती हैं न सान्त्वना और न आशाओं की गरिमा दे पाती हैं। शहर का जीवन कांच के टुकड़ों जैसा चुभ रहा है। प्रेम और प्रणय जीवन भी उपेक्षित-सा होकर रह गया है, न कोई प्रेमी नज़र उसका पीछा करती है न द्वार पर खड़ी उसे दूर तक ताकती है।

उपर्युक्त मनः स्थितियों के कारण त्रस्त-सा कवि शहर छोड़ कर गांवों में जाना चाहता है। जहां पहाड़ी ढलानों से केसरिया धूप कुंआरी लड़कियों की तरह उतरती है और गोरी चांदनी नव वधू जैसी हर सांझ नदी में नहाती है, जहां अठखेलियां करतीं गोरी गोरी उन्मत्त बालाएं हैं,

खुली हवाओं में गूंजते गीत हैं और सुरीले लोक गीतों में जीवन का रहस्य खुल-खुल जाता है। शहर में कवि स्वयं को अकेलेपन की कैद में फंसा महसूस करता है, अकेलेपन की यह अनुभूति तीखी और भयावह है-

''दरअसल/ मनोभूमि पर हुए/ प्रहार की पीड़ा/ कहीं अधिक क्रूर होती है। दारोगा की। नंगी मार पीट से।'' (पृ० 38)

इसी यातनापरक निविड़ एकान्त में कवि के अन्तर्मन पर प्रकृति नृत्यरत हो जाती है, कवि जब अपने-आप में होता है तो अज्ञात दूरियां सिमट जाती हैं, तनों तक विशालकाय पेड़ झुक जाते हैं और सोये हुए वन नृत्य करने लगते हैं। ऐसी ही मन: स्थिति में उसे स्मृतियों की गठरियां खुलती प्रतीत होती हैं।

एकान्त के क्षणों में कवि अतीत की रोमांटिक भाव-भूमि में खो जाता है परन्तु शहर में ऐसा एकान्त मिलता ही नहीं, यहां तो वह अपने समय का जीता-जागता प्रेत है। शहर में रहकर कवि हरेक आदमी की पीड़ा का सांझापन भोग रहा है, यहां जेठ की भरी दुपहर में जिस्म जलता है। इसी तीव्र सह-अनुभूति के कारण वह दर्द भोग रहा है, परन्तु इन सभी तीखे तल्ख अनुभवों से मुक्त होकर वह मानव-मात्र को कोई नया इतिहास देना चाहता है।

''कल तुम्हारी पहचान /अवश्य लौटेगी/हम/ एक दूसरे के/ चेहरे की भाषा/ पढ़ पायेंगे खुली हवाओं में/और/यह गूंगा गुमशुदा इतिहास/अवश्य बोलेगा/ अपने रहस्य खोलेगा।''

(पृ 67-68)

सह-अनुभूति के कारण ही कवि का मन एक राष्ट्र है और इस विशाल असीम राष्ट्र का हर निवासी उसी की तरह अपने वर्तमान का सच जी रहा है। इसी सह-अनुभूति के कारण कवि के अन्दर ही अन्दर उदासी रिसने लगी है, न जाने कितने क्लेश भरे निर्मम वर्ष, निर्मम उतार चढ़ाव और संघर्ष उसने पीढ़ी दर पीढ़ी जिये हैं। परन्तु कवि यह भी जानता है कि जब क्रूर, कठोर, विषैला रोष अंधेरे में जन्मे अवैध शिशु की तरह मंदिरों, गलियों, खेत खलिहानों में खुले आम घूमने लगता है तो काल की कोख में परिवर्तन पलने लगता है और नई सुबह की तलाश में एक संघर्ष आनेवाली क्रान्ति को समर्पित हो जाता है।

परन्तु अभी ऐसी स्थिति नहीं आई, शहरी जीवन में ऊब और त्रास भरा हुआ है, अपने एकाकी क्षणों में कवि घबरा कर सोचता है कि कहीं ये फैलते शहर अपना पतझड़ गांव तक न ले जाएं क्योंकि अभी तो शहर से ऊबे कवि को गांव का नीलाकाश, उन्मुक्त उड़ान निर्झर और मौलसरी की बास चाहिए।

''चरवाहों के गीत दो/ नगोजों की तान दो/ बांसुरी का संगीत दो/ मुझे मेरे प्राण दो/ मुझ को मेरी प्रीत दो/ मुझको एक गीत दो। '' (पृ 79)

5.1.20.2. प्रणयानुभूति का स्वरूप और प्रकृति–प्रेम कवि को लगता है कि उसकी प्रणयानुभूतियां बाधित हो रही हैं। यहां प्रणयानुभूति और जीवन-आकांक्षाओं की सांझी-सी अभिव्यक्ति प्रकृति के सान्निध्य में हुई है। प्रणयाकांक्षा में मुग्ध-सी नायिका मानो उसी के लिए मुस्कराती रही है। परन्तु वह चाहकर भी नायिका को खुली खिड़की, अनन्त आकाश नहीं दे पाया और एकाएक बड़ी हो गई नायिका के सामने वह सिमटता-सिमटता बौना हो गया है। यद्यपि दोनों के बीच अज्ञात दूरियों का आकाश फैला हुआ है फिर भी वह अनाम रिश्तों में बंधा अनाम रिश्तों की कोख से जन्मी अनुभूतियों जो जी रहा है। उसने सोचा तक न था कि अकस्मात अंतहीन दूरियां उग आएंगी। इस मन: स्थिति में कवि को प्रेमिका की काली आंखों का जादू, गोरी बाहों का स्पर्श, रूप और लज्जा की लालिमा तथा यौवन की गंध बिखेर रही प्रेमिका की याद आ रही है। प्रकृति और प्रणयानुभूति की परस्पर सघनता का बिम्ब देखें –

''तुम धीरे-धीरे/उतर रही फूल की पंखुड़ियों में/बिखेर रही/रूप, यौवन की गंध/ लज्जा की लालिमा।'' (पृ 17)

प्रकृति के सान्निध्य में ही कवि ने अपने प्रान्त और देश के प्रति प्रेम और लगाव को अभिव्यक्त किया है। यहां देवदार उसे लोरी सुनाते हैं, अपनेपन का अहसास देते हैं और गांव की खुशबू उसके मन को छू-छू जाती है। युगों-युगों से वह इन सबसे आदि पुरुष की तरह अनेक जाने अनजाने रिश्तों में बंधा महसूस करता है। इसी रिश्ते के कारण उसे कश्मीर का सौंदर्य बुलाता रहता है, स्वर्ण क्लश में केसरी धूप और दिव्य तेज भरा सूर्य, कांपते कमल-पत्रों पर थिरकती बूंद-बूंद ओस, लाल गुलाबों की होली और कुंकम की रंगोली उसे पुकारती रहती है। संतूर के स्वर उसे रिझाते हैं, केसरी धूप, मदमाती लहर, वितस्ता का अंजुरी भर पानी, शिकारों में गूंजती लोक धुन आदि उसकी आवश्यकताएं हैं।

प्रकृति के सान्निध्य में कवि को शाश्वत पीड़ा, शून्य व्यथा आदि सब कुछ कुछ देर के लिए भूल जाते हैं। इसी कारण वह फूलों की फैल रही सुगंध और लाल गुलाबों का रहस्य समेट लेना चाहता है, गोरी चांदनी को घूंट घूंट पीना चाहता है और अपनी व्यथा-पीड़ा को शांत झील की कोख में उतार देना चाहता है। प्रकृति के सान्निध्य में वह दिन के सारे आकर्षण भुला देना चाहता है।

5.1.20.3. आतंकवाद का विरोध कवि ने आतंकवाद के विरुद्ध भी कुछ कविताएं लिखी हैं पंजाब और विशेषकर कश्मीर में चल रहे आतंकवाद से वह अनुभूति के स्तर पर काफी व्यथित और दु:खी है। वह धर्म के नाम पर फैले आतंक की अपेक्षा आदमी को नैसर्गिक यथार्थ को पहचानने की प्रेरणा देता है। वह कहता है कि भूखे शिशु के समक्ष लोरियों, चौपाइयों और आयतों का कोई महत्त्व नहीं, उसका यथार्थ तो भूख है। पंजाब के आतंक भरे माहौल में कवि को हरेक मां डरी सहमी प्रतीत होती है, उसका अंत:करण भयभीत है क्योंकि चतुर्दिक्

बाज और गिद्ध उड़ रहे हैं।

"मुर्गी की तरह/ पंख फैलाकर उसने/छिपा रखे हैं अपने बच्चे /भयभीत होकर बन्द कर लिए हैं द्वार अपने दड़बे के।" (पृ 63)

कवि कश्मीरघाटी के आतंक से भी दुखी है और देखता है कि आतंक के इस माहौल में वादी खामोश है, जेहलम उदास है, धूप का दर्पण मैला है, चिनार सहमे सहमे हैं, गलियों में कुछ बदनाम चेहरे बेखौफ घूमते हैं, जाफरान के फूलों की गंध नोच रहे हैं, मर्यादा के चंदन बन जल रहे हैं और कवि की स्मृतियां द्रौपदी की तरह निवर्सन हो रही हैं और उसे लगता है कि यह दर्द इतिहास की आत्मा को एक न एक दिन डंस लेगा। कवि इस आतंक और हिंसा के बदले ओस सनी गुलाब की पंखुड़ियां पालना चाहता है, मंदिरों की घंटियों, मस्जिद की आजान आदि को महत्व देता है, स्वार्थ, झूठ, छद्म के बदले सपनों के राजहंस पालना चाहता है, पहाड़ी लोक गीतों को आलाप देना चाहता है, आतंक, क्रोध और ज़हर को वह संयम और हास का गंगाजल देना चाहता है युद्ध, सन्देह और भ्रान्ति के बदले असीम अन्तर्दृष्टि, प्रेम और अंतहीन शांति को महत्त्व देना चाहता है-

"हिंसक खूंखार भेड़ियों की गुर्राहट के बदले दूंगा तुम्हें खुले आकाश में उड़ते/ श्वेत कबूतर /सपनों के राजहंस" (पृ 49)

इसी भाव-संवेदना के अन्तर्गत कवि युद्ध को नकारता है और शांति को मानव-मंगल के लिए आवश्यक मानता है। युद्ध तो युद्ध को ही जन्म देता है, युद्ध में दुनिया सुनसान बेरंग और सौंदर्यहीन हो जाएगी, युद्ध का स्याह धुंआ पीढ़ियों, संस्कृतियों और जवान शहरों को निगल जाएगा, युगों तक आदमी का सुराग नहीं मिलेगा। युद्ध एक अंतहीन यातना है अतः युद्ध के ज्वालामुखी को अभी धरती के भीतर सोने दो। इसी तर्क के अन्तर्गत कवि युद्ध और आतंक की अपेक्षा रोमांटिक जीवन जीने का संदेश देता है-

"हम दोनों थोड़ा सुस्ता लें/ प्यास बुझा लें/ और तितलियों के पर ओढ़/ चुपके से उतर जाएं/ किसी गुलाब पंखड़ियों में/ रात भर के लिये।" (पृ० 92)

5.1.20.4. कवि-कर्म का स्वरूप कवि ने कविता के विषय और कवि-कर्त्तव्य के प्रति भी कविताओं में विचार अभिव्यक्त किए हैं। उसने माना है कि उसके अंतस में कभी दुनिया के प्रति बौखलाहट, कभी विरक्ति तो कभी आत्मकुण्ठा का द्वन्द्व चलता है और उसका मौन बूंद-बूंद कविता में रिस आता है। अतः उसकी कविता को यह विष पीना है और विष पीकर जीना है। हत्या, हिंसा, दया, करुणा, प्रेम, प्यार, ममता, वात्सल्य, रूप और दर्पण आदि से जुड़े अनेक इतिहास उसने जाने हैं। असंख्य भावनाएं और विश्वास उसने युग के चेहरे पर पढ़े हैं और वह अपने इस अंतस को आने वाले लोगों के नाम विरासत के तौर पर कविताओं के रूप में छोड़

जाना चाहता है।

बर्फीली हवाओं के नंगे जंगल में बैठा वह अपनी व्यथा-कथा और समूचा सच अपनी कविताओं में लिखता रहा है। उसने जो देखा, भोगा और महसूस किया है, उसे भावनाओं के अनेक रूप प्रतिरूप बनाकर अपनी पहचान दी है क्योंकि कविता केवल शब्दों का ताना-बाना नहीं होती बल्कि देह की रंगत और आंखों के जादू से भी अधिक जीवित और जीवंत होती है, कविता न तो चौक-चौराहों का भाषण है, न सत्ता के भूखे भेड़ियों का आश्वासन है, न चापलूस अखबारों की सुर्खियां हैं न रंगदार पोस्टरों की भाषा है।

''कविता एक पुल है/ तुम्हारे और मेरे बीच/ कविता जो सबकी साक्षी है/ कविता जो नहीं होती ध्वस्त/आतंक बारूद/ विस्फोटकों और गोलाबारी में।'' (पृ 84)

5.1.20.5 नव क्रान्ति का आह्वान कवि सम्पूर्ण क्रान्ति की आवश्यकता महसूस कर रहा है क्योंकि आधुनिक जीवन अनेक प्रश्न चिन्हों के चक्रव्यूह में घिर गया है। भूख और कंगाली का उन्मत्त नृत्य चल रहा है, सुनहरी स्वप्न वर्जित है, सांझ होते ही किवाड़ बंद हो जाते हैं, भीतर आतंक गहराता है। अंधे सफ़र में जिन्दगियां छटपटाती हैं, सड़कों पर निर्दोष खून बिखरा है, नगरवासी ऐतिहासिक अन्याय झेल रहे हैं। इन विडम्बनात्मक जीवन स्थितियों की न जाने कितनी तस्वीरें बनाकर कवि आने वाले कल के माथे पर चिपका देना चाहता है। अपनी इसी सोच और अनुभूति को कवि 'राजधानी चुप है' कविता में विस्तार देता है। वह कहता है कि हाथों में दूध की कटोरियां लिए माताएँ द्वार पर नजरें टिकाए रह जाती हैं, दफ्तरी अनुशासन से त्रस्त फाइलों के पन्ने पलटता क्लर्क गुमसुम-सा गर्म हवाओं के बीच अपने जीवन का वर्क वर्क बिखरता देखता रह जाता है। गांव, शहर आदि कर्फ्यू, आंसू गैस, पत्थर लाठी, गोलियों को झेल रहे हैं, गुलाबी मौसम लहुलुहान हो रहे हैं, नर्म घोंसलों के तिनके विषैली हवाओं में उड़ रहे हैं। लोगों को इस तार-तार हुई व्यवस्था में असुरक्षा, अनिश्चतता, अराजकता लील रही है क्योंकि सत्ताहीन की यहां कोई सत्ता ही नहीं रही और महत्त्व सत्ता का होता है आदमी का नहीं, भाषा बंदूक की होती है व्यक्ति की नहीं।

कवि मौजूदा तंत्र पर चोट करता है कि राष्ट्र ने ऐसी रक्त-रंजित क्रान्ति की अपेक्षा महक, स्नेह, अनुराग और प्रेम-पराग मांगा था, ऐसी खामोश राजधानी की कल्पना सरफरोश शहीदों ने नहीं की थी, ऐसे घिनौने दृश्य, हादसे, हंगामे, आतंक आदि तो गुलाम भारत में ही थे। परन्तु आज की बिडम्बना यह है कि लोकतंत्र रबड़ का लचीला खिलौना हो गया है जिसे जिधर चाहे मोड़ लें। जिस संसद के गिर्द हमारी आशाएं परिक्रमा करती हैं, जिससे हमारे सुरक्षा के विश्वास जुड़े हैं वही संसद विश्वास की मिठास और सुरक्षा का सुख नहीं दे पाई बल्कि संसद में गाली गलौज़, हाथापाई हो रही है, असुरक्षा और अव्यवस्था ने जन्म लेकर मर्यादा का दम तोड़ दिया है।

वैसे तो इस राजधानी में हर रोज एक नया कृष्ण और एक नया गाण्डीवधारी अर्जुन जन्म लेता है, धर्म-युद्ध का पांचजन्य बजता है परन्तु देखते ही देखते सुदर्शन -चक्र छोड़ कर वासुदेव कृष्ण बांसुरी पकड़ लेते हैं और भोली जनता का मन लुभाने, उसका जी परचाने लग जाते हैं। कवि समूची व्यवस्था और तंत्र पर चोट करता है-

''नहीं निभा पाई अपना दायित्व/यह बेबस राजधानी, /नपुंसक, हिजड़ों के हाथों / असहाय है/ मौन है चुप है/इसे चुप ही रहना है/ इसे और और और सहना है। शायद यही/इसकी नियति है।'' (पृ 56)

अंततः कवि इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि जब भूख समन्दर जैसी फैलती है तो वह तर्क की परवाह नहीं करती, तब मर्यादा की परिभाषा बदल जाती है और जनता के हृदय में युद्ध और संघर्ष के प्रति आस्था जाग उठती है, तब वर्तमान की कोख में भविष्य के ज्वालामुखी पलने लगते हैं। जब आदमी समझ जाता है कि सिद्धांतों की लड़ाई न्यायालयों में नहीं जन मंच पर लड़ी जाती है तब उसका जीवन, चेतन आदि सभी कुछ निर्णायक युद्ध, आंदोलन और क्रान्ति के नाम समर्पित हो जाता है, तब आकाशवाणी और दूरदर्शन की गलत बयानियां अधिक देर तक भ्रम उसे में नहीं डाल पातीं। चाहे अभिमन्यु सत्ताधारियों के चक्रव्यूह में घिर जाए चाहे उनका भ्रमजाल किसी द्रोण का वध कर डाले। मानव-मन की जीती-जागती अनुभूतियों और उसकी प्रखर चेतना को सत्ताधारी का अनुशासन दबा नहीं पाता। और इस अनाम क्रान्ति तथा जन-आंदोलन को सत्ताधारी कैद नहीं कर पाता और जनमानस आगे बढ़ता रहता है -

''सूने चौराहों पर/ सरकता आगे बढ़ता है/ लोकमानस/जवान होते हैं/जुलूस और नारे और लिखे जाते हैं। हवा की लहरों पर/बगावत के गीत।'' (पृ 33)

इसी मानसिक धरातल पर आकर कवि प्रणय गीतों की अपेक्षा बगावत के गीत लिखने के लिए प्रेरित होता है। वह प्रेमिका को सम्बोधित करता है कि उसके रूप-वर्णन के लिए उसने कितने ही प्रतीक और उपमान जुटाए हैं, उसे देखते आंखे थकती नहीं थीं, छूने से रोमांच होता था, उसके यौवन का आकर्षण मोहक और उज्ज्वल था परन्तु पिछले कुछ दिनों से वह उदास है, अनचाहे बोझ तले दबी है। ऐसी स्थिति में कवि ऐसी उदास प्रेमिका का आह्वान करता है-

''तुम धुंधलाई डगर में/ एक रोशनी हो/ प्रिये! /आज प्यार नहीं/ बगावत का मौसम है।''

कवि ने स्त्रैण भावों के भी कुछ उत्कृष्ट बिम्ब प्रस्तुत किए हैं, जिनमें अनुभूति की सान्द्रता है, भाव की सात्विक पवित्रता है। मां के लिए बेटी झील की नीली लहरों पर तैरते कमल पत्र पर थिरकती ओस की बूंद-सी है या मां की पूजा की थाली में जगमग जलती दिव्य दीपशिखा-सी है या फिर चन्दन की चौकी पर पड़ी गीता! कवि कुंआरी लड़की के मन की

आकांक्षाओं को बिम्बित करता हुआ कहता है–

"एक नये/सौन्दर्य की तलाश में /बिखर जाना चाहती है/ देह/गन्ध/बर्फबारी से पहले।"

(पृ 36)

कवि ने 'काली गुड़िया' कविता में बच्ची के हृदयस्थ कोमल भाव को अभिव्यक्त किया है और अनुभूति के सांझेपन को टटोला है।

कुल मिलाकर ये कविताएं अच्छी, सार्थक, सफल; प्रासंगिक, भाव–प्रधान और सुगठित हैं। कवि की बिम्ब–निर्माण की शक्ति सराहनीय है। कहीं–कहीं भावगत सूक्ष्मता के कारण बिम्बों में वायवीयता भी आ गई है। प्रयोगशीलता की अपेक्षा यहां भावप्रवणता को महत्व मिला है।

5.1.21 सुरभि श्रीमती राजभल्ला उर्फ कुमारी राज तुली 1940–45 ई० से लिख रही हैं। 1990 ई० में प्रकाशित उनके कविता–संग्रह 'सुरभि' में 55 रचनाएं हैं। 'सुरभि' संग्रह उनकी 1940 से 90 ई० तक की कविता–यात्रा का प्रतिनिधित्व कर रहा है। इनकी इन कविताओं का विषयक्षेत्र काफी विस्तृत है, अलौकिक सत्ता के प्रति जिज्ञासा, मिलनाकांक्षा और प्रणयगत-पथ बाधाओं का कुछेक कविताओं में चित्रण करके कवयित्री 1940 ई० के आसपास के तत्कालीन रचना–धर्म का निर्वाह करती हैं और तत्पश्चात आम जन–जीवन की व्यथा, सामाजिक समस्याओं और राजनीतिगत यथार्थ के प्रति भावसिक्त कविताएं लिखने लगती है। संग्रह की इन अधिकतर कविताओं का प्रमुख स्वर व्यंग्य का है, पुराने छन्द शिल्प के बावजूद संवेदना की दृष्टि से ये कविताएं आधुनिक हैं, भाव प्रधान और सार्थक हैं। मौजूदा सामाजिक और राजनीतिक विसंगतियों के प्रति तीखी, व्यंग्य बाण सरीखी इन कविताओं का मूल्यांकन निम्नलिखित है।

5.1.21.1. अलौकिक सत्ता के प्रति आकर्षण अलौकिक सत्ता या रहस्यमय प्रभु के प्रति अपनी जिज्ञासा, प्रेम और भक्तिजन्य अनुभूतियों को श्रीमती राजभल्ला ने परम्पराभुक्त प्रतीकों, रूपकों और प्राकृतिक आभासों द्वारा अभिव्यक्त किया है। इनकी इन कविताओं की भावना सात्विक है और दृष्टि दुविधापरक। उसे लगता है कि न जाने किस का बिम्ब देखकर इस अभावमय जगत की सूनी घड़ियां कुछ सुलझ गई हैं तो कुछ उलझ गई हैं। इस दिव्य आलोक में वह स्वयं को लुटा हुआ महसूस कर रही है। कुछ भूली हुई, ठगी हुई–सी वह ज्वाला–सी जल रही है जबकि वंचक प्रभु मुस्करा रहे हैं। जिससे कवयित्री अन्तर्विरोधी भावनाओं से ग्रस्त है, हो रही है

"भार लिए मृदु ममता का/चली खोजने वह प्याला,/छलक पड़ी रे जिससे कोमल/ अश्रुकणों की मादक हाला"

(पृ 1)

कवयित्री छायावादी, दुःखवाद और स्वच्छन्दता से प्रभावित है, उसकी प्रणयानुभूतियां

अलौकिक सत्ता के प्रति हैं, परन्तु उसने अधिकतर सांसारिक दुविधा और विसंगति को ही अपनाया है क्योंकि उसकी ममता और अरमान अनपहचाने रह गए हैं, धरती की निष्ठुरता ने उसके खुशी के राग को पहचाना तक नहीं।

उसे मुखर प्रेम का अधिकार नहीं मिला, न ही ममता के भरे प्यालों को ठुकराने का वक्त मिला है बल्कि तापसी वेश में भी उसे प्रणय के छल-छद्म सताते रहे हैं, अब तो विरह वेदना ही उसकी नियति है।

अनुभूति के उपर्युक्त धरातल पर पहुंच कर वह आत्म-विस्तार करती है, और स्वीकारती है कि युग की वेदना ने उसमें बसेरा कर लिया है इसी कारण उसने सभी सुख स्वप्नों से किनारा कर लिया है। कवयित्री अधिकतर परस्पर विरोधी पंक्तियों को जोड़ती हुई अपनी बात कहती चलती है और एकान्त व्यथा से मुक्ति पाने की आकांक्षा को प्रकट करती चलती है। उनकी ये सभी कविताएं साधारण और परम्परा-पोषक-सी हैं।

''बस, उसी गीत के रथ पर चढ़कर/जीवन गीत मुझे है गाना /बाधाएँ जो पथ में उनसे/ है इन गीतों ने स्वर पाना।'' (पृ 10)

5.1.21.2 देश-प्रेम कवयित्री ने देशभक्ति, स्वातंत्र्य संघर्ष और स्वातंत्र्य रक्षण की भावनाओं को भी अभिव्यक्ति दी है। परन्तु इन वृत्तियों की आड़ में आधुनिक राजनेताओं और मठाधीशों के मन में उभर आई अंधवृत्तियों और उनकी सत्ता-लोलुपता पर व्यंग्यपूर्ण चोटें की हैं।

वह मानती है कि वे जेलें धन्य हैं जिनमें स्वतंत्रता-संग्रामी रहे हैं, उन्हीं के कर्मों से भारत को लोकतंत्र का स्वरूप दिखाई दिया है। कवयित्री उन्हीं जेलों में कृष्ण को ढूंढती हुई जन-जन के दुखों का हवाला देती है कि आज देश के कृषक-मजदूर की हालत बद से बदतर होती चली गई है, आम आदमी अब न तो कभी माखन लाया है न उसने माखन खाया है, दूध भी पानी मिला बिक रहा है, देश बँटने के बाद से सभी के हृदय भी बंट गए हैं।

आदमी के भीतर हताशा फैली है,लहु में गरमी नहीं रही, न दया धर्म ही बचा है। बीमारी, भूख, नग्नता मौत जैसी बरस रही है। आदमी की सोच ऐसे बिक गई है जैसे घोड़ों के साथ गधे भी बिक जाएं, देश-भक्ति, धर्म, ईमान बिक गए हैं, पण्डे, पुजारी और भगवान तक बिक गए हैं। भगवान के नाम पर धनी, पुजारी, पण्डे और रिश्वतखोर लोगों को ठगते हैं, धर्म के ठेकेदार लोगों को परस्पर लड़ाते हैं और अपना उल्लू सीधा करते हैं। मठाधीश भी ईश्वर की सत्ता को झुठला कर भोग-विलास का ही उपदेश दे रहे हैं और अपने आप को भगवान कहलाने लगे हैं। इन भगवानों और भक्तों के परस्पर रिश्ते भी अजीब हैं, ये दोनों ही परस्पर अकड़े-अकड़े रहते हैं। आधुनिक भगवानों पर व्यंग्य करती वह कहती हैं-

"भगवान नहीं ये भोगवान हैं/ कैसे ज्योति इनसे फैले/ सच कह दूं तो बुरा लगेगा/ ये, तन के उजाले मन के मैले"

(पृ० 17)

उसे दुख है कि साधु-संतों पर स्वार्थ और राजनीति का रंग चढ़ गया है, वे जनता की जागीर पर लड़ झगड़ रहे हैं। आध्यात्मिक उन्नति की अपेक्षा वे भी अन्ध मनोवृत्तियों में फंस गए हैं। उनसे मुक्ति पाने की अपेक्षा धन, ऐश्वर्य, अधिकार और स्वार्थ की कुवृत्तियों में बंधते चले जा रहे हैं। इन सब वृत्तियों से छूटने के लिए जिस साहस और सत्य की उन्हें पहचान होना जरूरी है, वह सब उनमें नहीं है।

5.1.21.3 आधुनिक राजनीति पर व्यंग्य कवयित्री ने आधुनिक भारत में फैल रही राजनीतिक विसंगतियों पर अनेक कविताओं में कटाक्ष किया है और माना है कि आधुनिक राजनेता समझौतावादी और दोगले चरित्र के हो गए हैं। ये अवसरवादी हैं, इन्होंने न कोई बलिदान दिया है, न ये जनता के निकट हैं, ये नयी चेतना लाने के दावों में अपनी ही चेतना खो बैठे हैं, ये नेता खुद डरते हैं परन्तु जनता को बलिदान देने का संदेश देते हैं। इन्हीं के कारण देश में अनास्था, अविश्वास, अधर्म, अनैतिक कर्म और चरित्रहीनता फैल रही है, भौतिक सुख-सुविधा की प्राप्ति का गर्व और होड़ दिन-प्रति-दिन बढ़ गई है और ये नेता अपनी प्रशस्तियां सुनते हैं। ये नेता नकली हैं, देश आजाद हुआ है परन्तु इनके हाथों जनता और अधिक बरबाद हुई है। फिर भी इनके प्रति चमचागिरी दिन प्रति दिन बढ़ती जा रही है। ये नेता तो कागज़, आंकड़ों, नारों और भाषणों से ही जनता की समस्याएं हल करने का दंभ भर रहे हैं। समस्याओं के हल के लिए आत्मविश्वास और सिद्धांत के प्रति जो कर्मरत निष्ठा चाहिए वह इनमें नहीं है।

विडम्बना यह है कि ये नेता वेश्या उन्मूलन का नारा लगाते हैं जबकि स्वयं कोठे का लाइसैंस ले रहे हैं, शराब बंदी की बातें करते हैं परन्तु ठेके का लाईसेंस ले लेते हैं। स्पष्ट है कि देश में पैदा हुई सारी विडम्बन स्थितियों के पीछे नेता का राजनीतिक दोगलापन ही काम कर रहा है। कवयित्री कहती है-

"बापू बापू रटने वालों ने खुद बापू को ही दे मारा।

सिद्धांत सभी हैं त्याग दिये जय गांधी का बस है नारा।" (पृ० 37-38)

कवयित्री गांधी के चेलों से पूछती है कि शासक के नाक के नीचे चल रहे भ्रष्टाचार, आतंकवाद और साड़ फूंक से कब और कैसे देश पार उतरेगा ? स्थिति यह है देश के आज़ाद होने के बाद भी हम आज़ाद नहीं हुए, तंत्र वही रहा, जनता का हाल जनता के हाथों ही बदतर होता रहा है। वोट की राजनीति ने संस्कृति तक को घायल कर दिया है, देश बचैया की अपेक्षा नेता कुर्सी बचैया हो गए हैं, रिश्वत देना जनता की मज़बूरी है तो रिश्वत लेना नेता का अधिकार हो गया है, सिक्के से बहुमत बिक रहा है और धर्मनिरपेक्षता, समाजवाद, प्रजातन्त्र का कोई

अर्थ, कोई मूल्य नहीं रहा। वैसे देश की उन्नति हुई है, विकास दर बढ़ी है परन्तु गरीबी रेखा के नीचे के लोगों की संख्या घटी नहीं, बड़े घरानों का काला धन बढ़ता ही गया है, हरिजन जातियों पर जुल्म बढ़ते ही रहे हैं और देश का प्रजातन्त्र शाही लोगों के बूते चलता रहा है। सच्चे अर्थों में लोकतंत्र नहीं आ सका, चुनावी दंगल में करोड़ों अरबों रुपयों को फूंका जाता रहा है। कवयित्री राजनीति की वजह से त्रासद हो उठे जन-जीवन का चित्रण करती हुई मौजूदा लोकतंत्र पर व्यंग्य करती है–

''अरबों रुपया झोंकते हैं दंगल चुनाव में/ जातिवाद साम्प्रदायिकता उभारते हैं चुनाव में /फिर इसमें जो जीत जाए चलाता है लोकशाही /अमीर गरीब में अन्तर बढ़े क्या यही है लोकशाही ?'' (पृ 47)

नेताओं की करनी कथनी के अन्तर्विरोध के कारण ही अनेक समस्याएं जन्म ले रही हैं, परन्तु न शराब बंदी हो रही है न चोरबाज़ारी मिट रही है न दहेज बंदी हो रही है, नेता और पुलिस की मिली भगत भी खतरनाक है, शिक्षा-नीति सुधार और परिवार नियोजन मात्र नारे बन कर रह गया है। नेता अखबारों में अपने पक्ष की खबरें चाहते हैं काम कुछ नहीं करते। कुछ इसी तरह की बातें उन्होंने अनेक कविताओं में कही हैं परन्तु 'इमर्जैन्सी' विपक्षी 'नई सरकार' 'अनुशासन' आदि कविताओं में सस्ती राजनीति की ही गंध आती है। अनुभूति, विचार और व्यंग्य सध नहीं पाया। हां, कुछ पंक्तियां कवयित्री की चिंताओं की ओर संकेत अवश्य कर देती हैं–

करनी और कथनी में अन्तर/ इस तरह जब देश में।

घाघ बढ़ते क्यों न जाएं। सफेद सिम्पल वेश में । (पृ 91)

5.1.21.4 देश की सामाजिक कुरीतियां और समस्याएं कवयित्री ने देश की अनेक सामाजिक समस्याओं, सामाजिक विकृतियों और मानवीय अंधवृत्तियों का चित्रण किया है और सामाजिक चेतना और राजनीति का परस्पर घालमेल करके देश की मौजूदा व्यवस्था पर अच्छे व्यंग्य बाण छोड़े हैं। कवयित्री व्यंग्य करती है कि जिस आधुनिक राम-राज्य में हम जी रहे हैं वहां चोर चोर मौसेरे भाई हैं, तापस वेश में चलते हुए वे परस्पर आंखों आंखों में संकेत करके लोगों को लूट रहे हैं, मौजूदा व्यवस्था में सद् शक्तियों का व्यवहार भी असद् शक्तियों के व्यवहार जैसा हो गया है बल्कि इन दोनों तरह की शक्तियों में परस्पर मिलीभगत चल रही है। अब तो रावणीय कुवृत्ति हर आदमी में आ गई है, वही शक्तिशाली भी है। आदमी रावण का वंशज बन गया है जबकि साकार राम निराकार हो गया है। कभी रावण ने सीताहरण किया था परन्तु न वह सीता का मन जीत सका न अपनी वासना ही तृप्त कर सका जबकि आजकल हर रोज सीताएं अपहृत होती हैं वस्तुतः राम राम रटने वाले ही रावण बन गए हैं।

5.1.21.5. मानव-मूल्यों का ह्रास आदमी दु:ख, त्रास, भूख, बीमारी, व्यथा और परस्पर के झगड़ों और रूढ़ियों, कुरीतियों में फंसा हुआ है। जमाना यद्यपि बदल रहा है परन्तु न नारी की स्थिति बदली है न दहेज आदि के कारण होने वाले अत्याचार घटे हैं, दहेज और ठाके वैसे ही हैं, सास बहू और बाप बेटे के झगड़े वैसे ही हैं, पति से रूठ कर पत्नी वैसे ही मायके चली जाती है। हरिजनों पर अत्याचार, बंधुआ मज़दूरी, धोखाबाजी, व्यभिचार, बलात्कार, रिश्वतखोरी, लालफीताशाही सब कुछ पहली तरह चल रहा है। इन सामाजिक कुरीतियों और विसंगतियों पर चोट करती हुई कवयित्री ने अनेक कविताएं लिखी हैं। एक उदाहरण देखें-

''वैसे ही कुत्ता है कुत्ते का वैरी/वैसी ही चलती है नम्बरदारी।

इज्जत किसी की लुटी गए दुपहरी । मगर रात को आई गारद हमारी'' (पृ० 79)

वस्तुत: आदमी आदमी के बीच अजनबीपन छा गया है, परिवार विघटित हो रहे हैं, घर घर बंटवारे हो रहे हैं, आंखों से लाज शर्म के पर्दे हट रहे हैं, तंगदिली इतनी बढ़ गई है कि लोग कुत्तों की तरह छीनाझपटी कर रहे हैं, लोग बौने हो गए हैं, जो बाजार कभी तंग प्रतीत होते थे वही अब अलगाव वृत्ति के कारण काफी खुले हो गए प्रतीत होते हैं। मानव-मूल्यों का हनन हो रहा है, समष्टि की अपेक्षा व्यष्टि-साधना बढ़ गई है, स्वार्थ के कारण मनोबल डोल रहा है, विश्वास, त्याग, भ्रातृत्व जैसे मूल्य टिक नहीं रहे, सभी कर्म लक्ष्यहीन रह गये हैं कवयित्री चिंतित है कि जातिवाद, प्रान्तवाद आदि भावनाओं के रहते समूचा देश खण्डित होकर रह जाएगा। स्थिति यह है कि मज़दूरों का जीवन विडम्बनाग्रस्त है, वह घर बनाते हैं परन्तु स्वयं एक झुग्गी में एक ही रजाई में जवान बेटे, बेटियां, मां बाप सो जाते हैं जिससे अनाचार तथा अनचाहे बच्चों का तांता लग जाता है। पारिवारिक विघटन इस तरह से हुआ है कि घर में बूढ़े बाप का कोई मूल्य नहीं, मरे बाप पर बेटे की प्रतिक्रिया देखें-

''प्यार से झोली भर देता था-सारी थकन हर लेता था/बदले में कुछ भी तो नहीं केवल इक फुलका-/ न मिले तो भी भला चाहे सारे कुल का।'' (पृ 106)

अंतत: कवयित्री ने आदमी को मृत्यु-भय से मुक्त हो कर, सोच, भय और अकर्मण्यता को त्याग कर कर्मण्य के सहारे देश के नवनिर्माण की प्रेरणा दी है। वह नही चाहती कि हम सियासी संतों की चक्करबाज़ी में आएं, जत्थेदारों के साथ विदेशी शत्रुओं की मिलीभगत में आकर अपने देश की सांझी विरासत को बरबाद करने के लिए आतंकवाद के लिए प्रेरित हों। इन कविताओं का शिल्प-सीधा-सा छंदमय है और ग़ज़ल के शेयरों की तरह प्रत्येक पद अलग अलग समस्याओं को चित्रित करता चलता है, टेक और भावसंगति ही पदों को परस्पंर जोड़ रही है। अत: अनेक विचार और स्थितियां एक ही कविता में मिल जाती हैं। अच्छी कविताएं हैं।

5.2. कहानी : नवां दशक

इस दशक में कहानी के क्षेत्र में काफी अधिक लेखन हुआ। अनेक कहानी-संग्रह प्रकाशित हुए और नये पुराने कहानीकारों की अनेक कहानियां प्रकाशित हुईं, जिनका मूल्यांकन निम्नलिखित है।

5.2.1. फुटकर हिन्दी कहानी इस दशक में पिछले दशकों के पुराने कहानीकार कहानी का क्षेत्र छोड़ गए परन्तु उनकी कमी की पूर्णता के लिए अनेक नये कहानीकार उभरे हैं जिनकी एकाधिक कहानियां प्रकाशित हुईं। इन्हीं फुटकर कहानियों का मूल्यांकन निम्नलिखित है।

5.2.1.1. संजना कौल 1980 ई० में प्रकाशित कथा-संग्रह 'वितस्ता के कथा चरण' में संजना कौल की कहानी 'विभाजन रेखाएं' प्रकाशित हुई जो बाद में 1981 ई० में 'शीराज़ा' में 'भीतरी सन्नाटा' नाम से पुन: प्रकाशित कराई गई। उपलब्ध अन्त: साक्ष्यों से लगता है यही इनकी पहली प्रकाशित कहानी है बाकी सब झूठ! इन की प्रकाशित कहानियों का क्रमिक मूल्यांकन निम्नलिखित है।

5.2.1.1. 1. विभाजन रेखाएं उर्फ 'भीतरी सन्नाटा' कहानी मे संयुक्त परिवार में पली लड़की ज्योति के अन्तर्मंथन और हीनताजन्य कुण्ठाओं का विश्लेषण किया गया है। समृद्ध परिवार में ब्याही अपने ताऊ की बेटी सुशीला दीदी और उसके बच्चों से मिलने पर उभरी प्रतिक्रिया का चित्रण किया गया है। ईर्ष्या स्वरूप उपजी मानसिक प्रतिक्रियाओं और कुण्ठित व्यवहार की अच्छी बुनाई हुई है। आर्थिक स्तर की भिन्नता के कारण संयुक्त परिवारके अपनत्व में उपज आए अजनबीपन, दुराव, अलगाव और औपचारिक मेलजोल को कहानी का कथ्य बनाया गया है। स्थिति यह है कि सुशीला दीदी की नेक सलाह भी ज्योति को अंतर्मन तक छेद जाती है।

जब दीदी उसे बड़े स्नेह और अपनत्व से मिलती है तो उससे सटी हुई ज्योति अंदर तक तरल हो जाती है। 'लगता है संयुक्त परिवार की घरेलू गंध का आभास उसके दिमाग की तनी हुई नसों को ढीला कर देता है, बचपन से ही उन दोनों में गहरा लगाव रहा है, परन्तु अनजाने में ही उनमें परिधियां नियत हो गई हैं, जिन्हें लांघते ही लगता है वे अजनबियों में आ गए हैं।

अंतत: ज्योति अजनबीपन से और औपचारिकता से और अलगाव की अनुभूति से बाहर आ जाती है।

यह एक अच्छी सफल और सार्थक कहानी है, जिसमें फालतू की लफ्फाज़ी नहीं, भाषा भी सुगढ़ और गद्यात्मक है, काव्यात्मकता और काव्यभाषा से परहेज किया गया है।

5.2.1.1.2 पंगु पीढ़ी संजना कौल की दूसरी कहानी है 'शीराज़ा' में जुलाई 1982 ई० में प्रकाशित हुई है, मनोरोगों से ग्रस्त अनेक मरीज़ों के शब्द-चित्र और उनके अभिभावकों की स्वाभाविक प्रतिक्रियाओं और दु:खों का चित्रण करने वाली यह साधारण कहानी है। साईको थेरेपी डिपार्टमेन्ट में आए मरीज़ों के साथ आई औरतों की दिखावटी सहानुभूति और तमाशबीन

वृत्ति जैसी अनेक अंधमनोवृत्तियों को बुनकर कहानी को विकसित किया गया है। परन्तु अपेक्षित कथागत प्रभाव और दर्द की अनुभूति उभर कर एकान्वित होने की बजाए बिखर कर कमज़ोर हो गई है।

कथा की वाचिका अपनी बीमारी को छिपाती नहीं, वह जानती है कि यह रोग जीवन भर के लिए उसके साथ जुड़ गया है, उसका पूरा अस्तित्व आतंक के कुएं में डुबा हुआ है। उसे डाक्टर खुरशीद की आंखों में उभरी सहानुभूति याद है। डॉ० खुरशीद से मिली सहानुभूति के कारण ही वह अस्पताल आती है, जबकि डॉ० रेहाना से वह कतराती है, उसके सामने स्वर में भीरूता आ जाती है, दिल बैठने लगता है। उस गर्वीली डाक्टर के सामने मुझे लगता है पूरी तरह पंगु बन गई हूं।

वाचिका की यह कहानी अन्तश्चेतन और स्थिति साम्य के कारण उभर आए स्मरण चित्रों के रूप में चल रही है और वह अन्य मरीज़ों के प्रति सह-अनुभूति को महसूस करती हुई आत्मालोचन भी कर रही है।

'अजीब-सी असुरक्षा आ गई है मन में। अनदेखे मरीज़ों का अपने से मिलान करती हूं, पर यह बात केवल मैं जानती हूं कि उन फाइलों में लिखी हुई यौन सम्बन्धी शिकायतों को पढ़ना ही मुझे अच्छा लगता है, शायद अपने विवाह में आने वाली अड़चनों के प्रति जरूरत से ज्यादा सजग हो गई हूं। इसीलिए मन का सैक्स बढ़ता जा रहा है....।'

अपने-अपने मनोरोग से लड़ रहे लोगों की त्रासदी का अच्छा मनोविश्लेणात्मक चित्रण हुआ है, लगता है कि अधिकतर यौन-भावना के दमन को ही मनोरोग का कारण माना गया है, मरीज़ों की बीमारी को अपनी बीमारी से मिलान करके देखने की वृत्ति भी स्वाभाविक है, डाक्टर के यांत्रिक स्वभाव और दिखावटी सहानुभूति पर चर्चा के साथ-साथ रिश्तों-सम्बंधों का विश्लेषण करते हुए औपचारिक और डरी-डरी तमाशबीन सहानभूति पर अच्छी चोट की गई है। संवादों, टिप्पणियों, स्थितिगत विवरणों और अन्तर्मंथन आदि अनेक प्रविधियों के सहारे कहानी का विकास किया गया है परन्तु प्रभाव बिखर गया है जिससे कहानी कमज़ोर हो गई है।

5.2.1.1.3. तहसीलदारों की ड्योढ़ी 'शीराज़ा' जनवरी 1983 में **प्रकाशित हुई और** 'हमारा साहित्य' 1983 में पुनः प्रकाशित हुई। कहानी में अतीत हो चुके ऐश्वर्य और वंश-सम्मान (family ego) के खोखले गुणगान में फंसे परिवार के त्रासद जीवन पर करारा व्यंग्य किया गया है। साथ ही अपने-आपको घोंट कर परिवार की झूठी शानशौकत की शेखी बघारने की वृत्ति पर करारी चोट की गई है। चूंकि सारी कहानी समूचे परिवार की मौजूदा स्थिति पर प्रकाश डालती है इसलिए यहां कोई नायक या नायिका नहीं है।

आर्थिक तंगदस्ती के कारण संयुक्त परिवार के सदस्यों में पैदा हो रही औपचारिकता, अलगाव और रिश्तों का झूठ स्पष्ट उभारा गया है और पारस्परिक प्रेम और सौहार्द्र की सूख रही भावना के साथ-साथ आदमी के खोखलेपन की कलाई खोल दी गई है। कहानी में पात्रों का चरित्र और व्यक्तित्व कहीं संवादों के माध्यम से तो कहीं अतीत हो चुकी घटनाओं के स्मरण के

माध्यम से उद्‌घाटित हुआ है।

लोकलाज के कारण आडम्बरों के प्रति जुड़े रहने की विवशता का भी सुगठित और सार्थक चित्रण हुआ है। अतीत के स्मरण और स्थिति चित्रों के द्वारा कहानी की बुनाई हुई है। कहांनी की मूल संवेदना है-आडम्बर, झूठ, अभिमान और दिखावा की वृत्ति पर चोट । परन्तु कहीं-कहीं अलगाव और अजनबियत के कारण प्रभाव बिखर गया है।

5.2.1.1.4 **शेष कुछ नहीं** कहानी 'शीराज़ा' मार्च 1985 में प्रकाशित हुई है, जिसमें पारिवारिक सम्बन्धों और मैत्री के रिश्तों में आई टूटन का आधार माना गया है- आर्थिक विपन्नता । कहानी में किसी की निर्धनता का मजाक़ उड़ाते पात्र भी हैं तो दरिद्र और बेकार आदमी की उपेक्षा के विरुद्ध उपज्री सह-अनुभूति को दिखाते हुए पात्र भी।

विमल अपने परिवार की कटु यादों के बारे दिनेश से बतिया रहा है। दोनों परस्पर सहानुभूति, मैत्री और अन्य कोमलताजन्य भावनाओं के प्रति चर्चा में जुटे हुए हैं। विमल को बेकारी की वजह से बार-बार अपमानित होना पड़ा है और वह तिक्त हो उठा हैं ।

दोनों मित्र अपना घर, मकान, धन और रुतबा आदि अर्जित करके रिश्तों को ठोकर मारने के लिए परस्पर उकसा रहे हैं और इस तरह समानधर्मा, समानकर्मा होने की कम्युनिटिक मज़बूती की प्रेरणा दे रहे हैं। इसी समस्थिति के आधार पर दिनेश और विमल परस्पर जुड़ाव महसूस कर रहे हैं। ..... अंततः स्थितियां बदलती हैं। धीरे-धीरे उनके बीच की मैत्री का अनलिखा, अनकहा-सा समझौता टूटता जाता है।"......दिनेश को रात भर नींद नहीं आती और वह सोचता रहता है कि उनके बीच का दुराव का बिन्दु कहां है?

कहानी का कथ्य यही है कि रिश्तों के झूठेपन के बावजूद आदमी परस्पर क्यों जुड़ा रहना चाहता है? स्थितियां बदलने से दोस्ती की गर्माहट और जोश ठण्डा पड़ता जाता है। कहानी में अजनबियत का आधार आर्थिक असमानता को स्वीकारा गया है। यहां स्वार्थवश बनते-बिगड़ते रिश्तों का कच्चा चिट्ठा अच्छी तरह खोल दिया गया है। कहानी में संवाद और बहसें काफी लम्बी हैं और ऊब पैदा करती हैं फिर भी कहानी की उद्देश्यगत सार्थकता पर संदेह नहीं किया जा सकता।

5.2.1.1.5 **सतहें** कहानी 'शीराज़ा' नवंबर 1985 में प्रकाशित हुई। आत्मचिंतन और स्मरण तथा कहीं-कहीं संवादों के ज़रिये कहानी विकसित हुई है। थोड़े भिन्न कोण से 'शेष कुछ नहीं' कहानी का कथ्य ही दुहराया गया है। दो सहेलियों के बीच के परस्पर उबाऊ संवादों के माध्यम से पूंजीवादी वर्ग की परम्परावादी नारी के चरित्र को उभारा गया है जबकि उसकी सहेली का चरित्र कान्ट्रास्ट में रखा गया है। वह साधारण मध्यवर्गीय लड़की है जो दृढ़, संघर्षशील है और नारी स्वातंत्र्य में आस्था रखती है। वह नारी के राह की सभी कठिनाइयों को सहन करती हुई बढ़ रही है।

पूंजीवादी वर्ग की लड़की विवाह को मात्र समर्पण भाव से अपनाए हुए है जबकि मध्यवर्गीय नारी विद्रोहिणी है। वह प्रेम में पुरुष से समानता और व्यक्तित्व के विकास की छूट चाहती है । सरिता ने स्वयं सगाई तोड़ दी है। मंगेतर उसके घर आता जाता था, अब लोगों में चर्चा है कि उसका अपने मंगेतर से शारीरिक सम्बन्ध रहा है। आत्मचिंतन के रूप में कहानी विकसित होती गई है।

रीना को वह ईमानदार, भावनाजीवी लड़की समझती रही थी। उसकी आत्मपीड़क प्रवृत्ति पर स्थिति और सच्चाइयों की ईमानदार स्वीकृति पर सरिता का मन भर आता थ पूंजीवादी वर्ग की रीना के साथ उठते-बैठते उसने वर्ग भेद को भुला-सा दिया था और यह मानती थी कि दुख का चेहरा एक ही होता है और वह हरेक को एक ही तरह तोड़ता है। इसी आत्मपीड़न को शब्दजाल में उलझाने वाली रीना ने आज उसे गहरी विरक्ति और उदासीनता से भर दिया था। उसे आत्म-ग्लानि-सी हो रही है कि शायद रीना की मित्रता में उसने अपनी स्थितियों का रुमानीकरण कर दिया था।

विवाह के प्रति सरिता के विचार काफी प्रगतिशील हैं, वह अपने अस्तित्व को अर्थहीन और अहं शून्य नहीं होते देना चाहती, वह परस्पर प्रेम को विवाह का आधार मानती है, फिर चाहे साथी निर्धन हो या अपंग। वह शादीशुदा जिंदगी की शुरुआत कुण्ठाओं और हीनता में नहीं करना चाहती, न ही जिंदगी को घृणित समझौतों की भट्ठी में झोंकने के लिए तैयार है। रीना विवाह को आध्यात्मिक रंग देने लगती है। सरिता रीना को इन संस्कारों से अलग होकर पूरा मानवीय जीवन जीने की प्रेरणा देती है। 'रीना तुम खुद अपने स्वत्व को नकारती हो और बन जाती हो केवल शरीर......।'

रीना की शादी के बाद सरिता को भी अपना प्रणय-पुरुष मिल गया तो उसका खालीपन तृप्ति और नए अर्थों से लबालब भर उठा, अपनत्व से बतियाता हुआ राजीव उसे भी भा गया था.... कितना सरल, संवेदनशील, विचारों से कितना दृढ़ और ठोस। परन्तु यह विद्रोही राजीव भी धन का लोभी ही सिद्ध हुआ, राजीव की वास्तविका उधड़ आती है तो सरिता मन ही मन निर्मम निर्णय ले लेती है और शादी से इन्कार कर देती है। परन्तु सगाई टूटने के बाद उसे काफी घायल होते पड़ा है। कालेज में मिसेज़ मट्टू को उसने बातें करते सुना है, वह राजीव के साथ सरिता का यौन सम्बन्ध जोड़ती रही है। पर.....'इतने सारे घाव झेलने के बाद भी मैं अपना हठ छोड़ नहीं पाई हूं।'

जब रीना अभ्यर्थना करती है कि सरिता उसके पति को अपने असफल सम्बन्ध के बारे कुछ न बताए (क्योंकि अजय तेज तर्रार लड़कियों को सहन नहीं करता) तो सरिता को लगता है कि वह रीना के प्रति आज तक खुद को धोखा देती रही है, कि कहीं न कहीं हम मिलती अवश्य हैं, समान सतहों पर खड़ी होकर झेलती रहती हैं पर आज सच्चाई सामने आ गई.... दिशाओं के इस वैपरीत्य पर मुझे आज कोई दुःख नहीं हुआ।'

साधारण, लम्बी और फालतू की विचारणा से बढ़ाई गई कहानी है। जो टूट भी रही है

और जिसमें कथारस का अभाव खलता भी है।

5.2.1.1.6 मटमैले आधार कहानी 'शीराज़ा' नवंबर 1986 में प्रकाशित हुई है जिसमें मल्लाह जाति के युवक के त्रासद जीवन-संघर्ष के चित्रण के साथ-साथ जातीय जीवन की घुटन और विसंगतियों का खुलकर चित्रण हुआ है और वर्ग-संघर्ष के आड़े आ रही तकदीर का पर्दाफाश हुआ है। आर्थिक आधार के दृढ़ हो जाने पर पढा-लिखा युवक भी अपनी जाति के लोगों से घृणा करता हुआ उच्च, धनीवर्ग में शामिल हो जाता है। उसकी वर्ग-संघर्ष की पुरज़ोर भावना कमज़ोर पड़ जाती है। मल्लाह जाति की गालीगलौज़ की आदत का मुख्य कारण उनकी विपन्नता और अभावजन्य कुढ़न को माना गया है।

मुख्तार मांझी अपनी नाव में बैठा बचपन के अपने क्रियाकलापों का स्मरण कर रहा है। मौजूदा स्थिति में उसका जलपरियां का विभ्रम टूट चुका है, धानी, पीले और हरे रंगों के इन्द्रजाल न जाने कब के लुप्त हो चुके हैं।

मुख्तार आत्मचिंतन कर रहा है कि मल्लाह जाति का अकेला छात्र कलास में डरा-घबराया क्यों रहता है? राजतरंगिणी में लिखा है, 'कश्मीर के तमाम मल्लाह अपराध जीवी थे, क्रिमिनल्स! अपराधों का अपना धंधा कुछ अर्सा पहले ही उन्होंने छोड़ दिया है और अब चावल-चीनी बेचने का सरकारी काम करने लगे हैं।'

'सर, मेरी जाति के लोग बहुत चिड़चिढ़े और झगड़ालू हैं, इकबाल कुरैशी ठीक कहता है। लेकिन उसमें हमारा क्या कसूर है, सर! मनुष्य जाति का इतिहास चाहे एक जैसा न रहा हो बदलते युग के साथ बदला हो परन्तु मल्लाह जाति वहीं की वहीं है।'

'तुम्हारा मतलब है, मैं इन लोगों की थूकें झेलने के लिए अपना चेहरा तैयार रखूं ? और मेरी जाति कमज़ोर है तो यासीन साहब मेरी जाति से बाहर कैसे हो गए ? फर्क का नुक्ता तुम्हें नज़र नहीं आता ? यासीन साहब मल्लाहों में पहले ग्रेजुएट हैं और आज उनके पास आठ हाउ़स बोट हैं। कल को मेरे पास सिर्फ चार हाऊस बोट हो जाएं तो इकबाल कुरैशी मेरे तलवे नहीं चाटेगा?'

वह बुरी तरह थक गया था....थकान थी अपमान की, अपनी पराजय के तीखे अहसास की........निराशा उसकी पूरी अन्तरात्मा को घेर गई....उसकी भरी पुरी जवानी भी सड़-सड़ कर अनाम हो जाएगी........

काफी लम्बी परन्तु उत्कृष्ट Socio-Cultural कहानी है, जिस में युवा पीढ़ी की संघर्षमयी सोच, विद्रोह के तेवर, आत्मालोचन और जातिगत जीवन के अवरोधों तथा विसंगतियों के बीच से उभर और मर रही संघर्ष-चेतना का काफी सतर्क विश्लेषण हुआ है। संजना कौल की यह उत्कृष्ट कहानी कही जा सकती है।

5.2.1.2. शक्ति शर्मा की पहली कहानी 'लहराती हुई पूंछ' 'शीराज़ा' मार्च 1980 में प्रकाशित और 'हमारा साहित्य' 1983 में पुनः प्रकाशित हुई है। दूसरी कहानी 'अपनी अपनी टूटन' 'शीराज़ा' मार्च 1981 में प्रकाशित हुई परन्तु फिलहाल उपलब्ध नहीं। इस उपलब्ध

कहानी का मूल्यांकन प्रस्तुत है।

5.2.1.2.1 लहराती हुई पूंछ कहानी में बेकारीजन्य उपेक्षा और उलाहने सुनने वाले बी० ए० पास होते हुए भी बाप की सिफारिश से चपरासी बने व्यक्ति की अन्तर्व्यथा और झुंझलाहट का सशक्त चित्रण किया गया है। उसे पेट की खातिर कुत्ते की तरह चापलूसी करनी पड़ती है और अपमानजनक व्यवहार से दुखी होकर भी चुप रह जाना पड़ता है। इस विवश व्यक्ति की विवशता और विवशताजन्य आक्रोश का अच्छा चित्रण किया गया है। विद्रोही चेतना के बावजूद कुल मिला कर स्थिति के प्रति समझौता कर लेने की मजबूरियां ही इस कहानी का कथ्य है। गरीब आदमी की जीवन त्रासदी को अन्तर्मंथन और 'फ्लेशबैक' द्वारा बड़े ही सहज स्वाभिवक ढंग से पिरो दिया गया है। सन्तोष-असंतोष के दो पाटों के बीच पिस रहे व्यक्ति की पीड़ा न उसे जीने देती है न मरने देती है।

झाड़-फटकार खाना भी मानो उसकी 'ड्यूटी' में शामिल है...शायद साहब उसे सूंघ लेते हैं। सिगरेट के पैसे भी खर्च नहीं कर सकते, मांगकर ही गुजारा कर लेते हैं.....'मोती ऽऽऽ।' साहब जब शब्द खींचते हैं तो वह कसमसा उठता है, झुंझला उठता है। 'अगले ही क्षण...... एक हट्टा कट्टा पीले रंग का कुत्ता.....साहब की टांगों से लिपट कर पूंछ हिलाने लगा....साहब के लिजलिजे चेहरे पर व्यंग्य की हल्की-सी मुस्कराहट दौड़ जाती है 'तुम्हें नहीं भाई, यह भी अपना मोती ही है'.....तब उसे लगा था उसके पीछे भी एक लम्बी पूंछ निकल आई है और साहब के कुत्ते की पूंछ से भी अधिक गति से लहरा रही है।

स्वाभाविकता से भरपूर इस सशक्त कहानी में कोई झोल नहीं। कहानी में अन्तर्मंथन और 'फ्लैशबैक' पद्धति का सहारा लिया गया है। संवाद की अपेक्षा स्थितिगत प्रतीकात्मकता सार्थक है, दफतरी जीवन की यांत्रिकता में फंसे चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारी की अन्तर्व्यथा से सम्बंधित उत्कृष्ट कहानी है।

5.2.1.3. क्षमा कौल की पहली कहानी 'मौसम' 'शीराज़ा' जनवरी 1980 ई० में प्रकाशित हुई परन्तु फिलहाल उपलब्ध नहीं, इसी तरह 'छोटे आकाश तले' 'शीराज़ा' नवम्बर 1981 और 'तन्हाई' 'शीराज़ा' सितम्बर 1984 ई० में प्रकाशित हुईं परन्तु ये दोनों कहानियां भी उपलब्ध नहीं हुईं। यहां उनकी दो कहानियों का विश्लेषण-मूल्यांकन करके ही संतुष्ट होना पड़ रहा है।

5.2.1.3.1. सृष्टि कहानी 'वितस्ता के कथा चरण' कहानी-संग्रह में 1980 (शिवरात्रि)) ई० में प्रकाशित हुई। जिसमें पुनर्जन्म की अवधारणा के अन्तर्गत सुखद पुनर्जन्म की आकांक्षा में किए जाने वाले धार्मिक कर्मकाण्ड और पाखण्डों पर अच्छा तीखा व्यंग्य किया गया है। कहानी में आरम्भ से अंत तक जिज्ञासा बनी रही है। संवाद छोटे, सामयिक और चरित्र की अपेक्षा वैचारकिता को रूपायित करने वाले हैं। तीर्थ स्थल में औरतें छोटे-छोटे पत्थरों के घर बनाती हैं, उन्हें चारदीवारियों से घेरती हैं, इन मकानों (घरौंदों) में सम्पति रखी जाती है, इन घरों में वे रसोई बगीचे आदि की व्यवस्था भी करती हैं ताकि पुनर्जन्म में ये सभी सुख सुविधाएं उन्हें

सहज ही प्राप्त हो सकें।

कहानी में पुनर्जन्म की आस्था पर अच्छा व्यंग्य किया गया है, लेखिका 'ऐसा ही होता है' कह कर सृजन और विनाश की निरंतरता को स्वीकार करती है और घर और सुख-समृद्धि की आकांक्षा तथा चिंता से मुक्त रहने की बात कहती है। साम्यवादी सोच है परन्तु साम्यवादी तर्क नहीं। साधारण कहानी बन कर रह गई है।

5.2.1.3.2. न्यूज़ लैटर कहानी 'शीराज़ा' मार्च 1983 में प्रकाशित और 'हमारा सहित्य' 1983 ई० में पुन: प्रकाशित हुई है। जिसमें दफ्तर में हिन्दी में किए जाने वाले कामकाज की स्थिति पर करारा व्यंग्य किया गया है। विडम्बना यह है कि हिन्दी में स्नातकोत्तर होकर भी लोग व्यक्तिगत कुण्ठाओं के कारण और साहबियत दिखाने के लिए अंग्रेजी में बोलते हैं, अंग्रेजी में लिखा-पढ़ी करते हैं, हिन्दी के काम की उपेक्षा करते हैं, बल्कि काम में रोड़े अटकाते हैं, हिन्दी वालों को नीचा दिखाने के लिए षडयंत्र रचते हैं। कहानी में इसी तथ्य को उजागर करने के लिए बुनाई की गई है।

विमल के अहं भरे व्यक्तित्व के कारण कौल परेशान रहता है, विमल उससे दबता नहीं, उसकी अफसरी को मान्यता नहीं देता.....।'' कौल की योजना के कारण विमल को न्यूज़ लैटर का काम मिल जाता है जानते हो हमने यह काम इसलिए शुरू किया ताकि तुम व्यस्त रहो। परन्तु न्यूज़ लैटर निकल ही नहीं पाता। विमल को जिद्दी-सा बच्चा करार दे दिया जाता है।

कहानी में दफतरी जीवन पर अच्छा व्यंग्य है, दफतर का माहौल पढ़ने-लिखने वाले की रुचि को जिद्द समझ कर यांत्रिक बना देता है, और उसकी जैविक अग्नि ठण्डी पड़ जाती है। अच्छी व्यंग्यात्मक कहानी है परन्तु गठन उलझ गया है।

5.2.1.4 महाराज कृष्ण शाह की पहली कहानी 'खत' 'शीराज़ा' जनवरी 1980 ई० में प्रकाशित तथा 'आठवां दशक: सृजन के संदर्भ' 1986 ई० में पुन: प्रकाशित हुई है। 'एक्जिमा' शीराज़ा' मई 1982 और 'लम्हा लम्हा मौत' 'शीराज़ा' नवम्बर 1985 आदि कहानियां फिलहाल उपलब्ध नहीं। यहां इनकी पांच उपलब्ध कहानियों का मूल्यांकन किया जा रहा है।

5.2.1.4.1 खत कहानी में दो कहानियां परस्पर अन्तरावलम्बित हैं ।- घर से दूर निर्वासित-से पति की अभावजन्य मनोव्यथा, 2- पड़ौसी निर्धन परिवार की बेटी की प्रणय कामना। पत्नी को खत लिखने वाले पति का दाम्पत्य-प्रेम यथार्थ, ऊबाऊ और यांत्रिक हो गया है जबकि प्रणयाकांक्षी लड़की का रोमांटिक बोध यथार्थ के धरातल पर चकनाचूर हो रहा है। वह आर्थिक असुरक्षा के कारण विवाह नही कर पा रही। छोटे-छोटे वाक्यों के द्वारा लेखक ने इन दोनों पात्रों की व्यथा का मनोविश्लेषणात्मक चित्रण किया है, पात्रों का अन्तर्मन खुल-सा गया है।

तभी वह गालियारे में फुसफुसाहट सुनता है। 'पापा सो गए तेरे?'...'तुम कई दिनों तक नहीं आए, मैं डर गई थी।' ....'मुझे अब यहां इस तरह आना अपमानजनक लगता है बिट्टू।'......'शी आहिस्ता, ये सूअर अभी जाग रहा है....' 'तुम्हारा वहम है बिट्टू....कौन जानता

है.... चलो भाग चलें....' 'पागल न बनो! आज मिलने का यह चोर दरवाजा है, कल फुटपाथ तक पर जगह नहीं मिलेगी....है ही क्या हमारे पास..? किस बिसात पर भागेंगे....क्या करोगे तुम.....पहले ही बहुत हृष्ट-पुष्ट हो न.......दस दिन में तुम्हारा शरीर अस्थि-पिंजर हो जाएगा...मैं इंतजार करूंगी....तुम्हें जॉब मिलेगा.....मुझे यकीन है...ऐसे ही जाओगे....कुछ देर......क्यों मुझसे बोर हो गए हो....अब क्या है? .....आह! आह!'

अभावों और विरहजन्य विवशता के कारण सूख रहे दाम्पत्य प्रेम और अनुभूति के संझोपन के खत्म होते जाने की प्रक्रिया के चित्रण के साथ-साथ आर्थिक असुरक्षा की वजह से विवाह न करने की विवशता भोग रहे प्रेमी युग्म का अच्छा चित्रण हुआ है। प्रेम के नाम पर यौन समर्पण के लिए निवेदका परन्तु बरगलायी जा रही ईमानदार लड़की का चित्रण काफी अच्छा है। व्यक्ति के अन्तर्मन की घुटन और बाह्य यथार्थ का बढ़िया संयोजन है। अच्छी कहानी है।

5.2.1.4.2 बाघ कहानी 'शीराज़ा' मार्च 1980 में प्रकाशित और 'हमारा साहित्य' 1983 में पुनः प्रकाशित हुई, जिसमें अविवाहित लड़की के जीवन के ठहराव का, उसके अन्तश्चेतन में बसी बेकरारी का, मां के स्वास्थ्य के प्रति उसकी चिंताओं का और उसके मन में समाए हुए मृत्युभय का फैंटेसीनुमा चित्रण हुआ है। कहानी मनोविश्लेषणात्मक है परन्तु 'बाघ' शब्द का प्रतीकार्थ खुलने की बजाए उलझता जाता है, कहानी को बहुआयामी बनाने की ललक ने कहानी को मार दिया है। कहानी की प्रमुख पात्र राज के बहुआयामी अन्तश्चेतन की अनेक पर्तों को खेलने का यत्न किया गया है।

मां राज की आंखों के बुझे स्वप्न से परिचित थी। कुंआरी का स्वप्न....एक जिंदगी बनाने का स्वप्न।... सबसे अधिक परेशानी राज को तब होती जब कोई मां के स्वास्थ्य की खबर पूछने उनके घर आता।.......पूरी चौदह जमातें पढ़ी लिखी....पर वह सोचती....अचानक इस घर को इन कुछ वर्षों में ही....कौन-सा बाघ खा गया ? उसे लगा जैसे उनके प्राणों को वह बाघ अपने पंजों में उछाल रहा है। उन्हें न खाता है न मार डालता है। ....राज की सूखती देह का रेशा-रेशा अपने विगत की हरियाली की पनप को दोहराता.....जिन्होंने खुद राज की प्रतिभा का लोहा माना था....आगे निकल गईं....। क्या कारण है? ......।

मां बाघ को पूजती है...उसे महान शक्ति समझती है। .... और राज? राज को अंधेरे में अचानक उसके खूनी पंजे और आदमखोर मुंह याद आता है। .... बैठे बैठे राज की आंख लग गई। उसने देखा..गांव भयावह स्थिति में किसी अनिश्चित दिशा में भाग रहा है...और उनके पीछे वही लोग जो बाघ से खाल और बाघ-छाल प्राप्त कर चुके थे, बाघ बने उनका पीछा कर रहे हैं। अंत तक आते-आते कहानी भटक कर मां की लापरवाही की ओर संकेत मात्र करती है, मां जो अंध भक्ति का प्रतीक है।

5.2.1.4.3 कहीं कुछ... कहानी 'शीराज़ा' मार्च 1985 में प्रकाशित हुई है। इसमें बचपन से अभावों में पले व्यक्ति की आदर्श जीवन जीने की आकांक्षा चित्रित है। यहां कुण्ठित हो गए व्यक्ति की त्रासदी का मनोविश्लेषणात्मक चित्रण हुआ है। इसमें मिडल क्लास आदमी

की दुविधाएं, हीनता की ग्रन्थियां, पढ़े-पढ़ाए आदर्शों से विसंगत हो गई जीवन-स्थितियां चित्रित हैं। वास्तव में कुण्ठाएं व्यक्ति के मैत्री सम्बन्धों में ईर्ष्या, द्वेष और घृणा की मनोवृत्तियां पैदा करके उसका अमानवीकरण कर रही हैं। इस तरह की अनेक चिंताएं कहानी में उभरी हैं। कहानी के कुछ संवाद और स्थिति-चित्रण सम्बन्धी पंक्तियां काफी सुन्दर बन पड़ी हैं। आत्म कथात्मक शैली में लिखी गई कहानी में वीरा और लता के माध्यम से व्यक्ति का आत्मविश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। अच्छी कहानी है।

आज भी नाकाम होकर लौट रहा था...... रास्ते में वीरा मिला, खुश, आत्मविश्वास से खिला हुआ चेहरा और गज़ब का संतोष...उसकी नज़र से बच कर निकलना मेरे लिए असंभव था...जैसे मेरे पैरों में किसी ने कील गाड़ दी हो........ वह जानता है....... मैं हार मान चुका हूं। और उसे अपनी विजय आज कितनी सुखद लगती है-पड़ाव-दर-पड़ाव जीतता वह मुझे बेहद पीछे, अपने से काफी दूर देखकर कितना सन्तुष्ट है....ठीक है वीरा कामयाब आदमी हो गया........पर वीरा की नज़रों में मैं एक गैरजिम्मेदार आदमी हूं जो अपनी वास्तविकता स्वीकारता नहीं।........ मुझे हमेशा अपनेपन की तलाश रही....मां के आंचल से छूटते ही....वीरा उन दिनों भी किस्सों में अरुचि रखता था-मुझे वीरा से घृणा हो आयी थी...वह अपने खेल में किसी का हस्तक्षेप सहन नहीं करता था....आवारा, लफंगा, फूहड़, उज्जड...इस सदी का सबसे बदचलन आदमी वीरा.....। मां उसे सिद्धार्थ बनाना चाहती थी और वह बन गया था सिकन्दर...।........मुझसे कहने लगा जो तुम चाहते हो उसके बीच खड़ी हर दीवार को निर्भय होकर तोड़ दो....समझौते करो...ऐसे जहां तुम्हें कुछ ज्यादा न खोना पड़े, जो अक्ल के ज्यादा हों दिल के कम....मैं दुनिया में आया हूं कि मुझे सारी दुनिया चाहिए'.......वीरा कहता 'चुम्बक बनो-लोहे के छोटे-छोटे कण तुम्हारे इर्द-गिर्द स्वयं ही जमा होंगे'......। उसका रौब और दबदबा घर में, घर से बाहर बढ़ता ही जा रहा था......... शरीफ लोगों के लिए वह गुण्डा-बदमाश और इलाके की उपेक्षित पार्टी के लीडर दीन-मुहम्मद के लिए काम का आदमी।..... दिन रात की आवारागर्दी के बीच भी वीरा पढ़ने का वक्त निकाल लेता......... वह अपना रास्ता खुद तलाशना चाहता था....

वह पूछती है 'आखिर तुम चाहते क्या हो?' मैं निश्चयपूर्वक सरलता से उसका हाथ पकड़ कर कहता हूं-'वीरा की मौत'। लता और अधिक भयभीत और आशंकित होकर अविश्वास से मुझे घूरती हुई मुस्कराने का प्रयत्न करके मेरे कंधे सहलाकर कमरे से बाहर चली गई...आदम कद आईने में मेरे ही आकार का कोई व्यक्ति झुक कर ज़ोर-ज़ोर से हंसने लगा।....

कहानी में 'मैं' का अंतश्चेतन काफी सुगठित ढंग से खुला है। कहानी आत्म -मंथन की शैली में अच्छी फबती है। हीनता की कुण्ठा मानव चरित्र के लिए घातक हो जाती है। यही कहानी का कथ्य है। उत्कृष्ट कहानी है।

5.2.1.4.4 तिनके तिनके बात कहानी 'शीराज़ा' नवम्बर 1985 में प्रकाशित हुई है, जिसमें समस्या है- अविवाहित लड़की की विवाह सम्बन्धी नारी आकांक्षा का दमन करके कोई महत्वपूर्ण पद पाने की आकांक्षा। यहां नारी का पश्चात्ताप-सा भी कुछ चित्रित हुआ है।

लड़की को मां का पत्र आया है कि विवाह की स्वीकृति भेजे परन्तु वह अतीत प्रेम का स्मरण करती हुई अपनी मूर्खताओं पर सोचती है और निविड़ अकेलापन भोग रही है, पत्र की प्रतिक्रिया स्वरूप उस के मन में विवाह की आकांक्षा जागृत होती है और वह पड़ौसी दम्पति के कमरे में ताक झांक करने लगती है। कहानी में विवाह की इच्छुक परन्तु दुविधाग्रस्त लड़की की मन:स्थिति और अन्तर्द्वन्द्व का अच्छा सार्थक चित्रण हुआ है परन्तु फालतू के वाक्य भी भरे गए हैं।

वह किसी वास्तविक जरूरत से जुड़ना चाहती थी जो शादी उपलब्ध कराती है? .... अनवर एक ख्याली दुनिया का जीव है! इसीलिए नाकाम-सा बना फिर रहा है। लगातार स्वतंत्र रहने की चाहत रखते हुए भी मैं आज तक कैद-का-सा अनुभव क्यो कर रही हूं...बाहर की कैद भीतर की कैद। शामा बहिन जी इतमीनान से खाना खा कर सो चुकी होंगी। नहीं, बच्चे को डांट रही होंगी। क्या पता पति से...यह सोचते ही वह सिहर उठी। उसका जिस्म जैसे तकाज़ों से भर गया और उसने अपने आप को अपनी बांहों में कस कर जकड़ लिया। उसकी अपनी बांहें उसे क्या दे सकती हैं? शायद कहीं देकर ही इन्हें पाया जा सकता है।

......यह सोचते ही उसे खुद से अजीब वितृष्णा हुई। कमरे में अपनी आंखें जमाकर वह बहुत देर तक कुछ टटोलती रही और कुछ ही क्षणों में एक चोर शर्म से उसकी आंखें लजाती हुई झुककर उसे दुत्कारने लगीं। पड़ोस के कमरे में किसी ने खटाक से खिड़की बन्द करके कोई भद्दी गाली सुनाई थी।

5.2.1.4.5 बिना मतलब कहानी 'शीराज़ा' नवम्बर 1986 में प्रकाशित हुई, जिसमें साधारण मध्यवर्गीय संयुक्त परिवार के झगड़ों का चित्रण हुआ है, जायदाद के लालच, बूढ़े मां-बाप की उपेक्षा, ननद-भौजाई के पारस्परिक झगड़े और लांछन लगाने की कुवृत्तियों पर चोटें की गई हैं। साथ ही उच्चवर्ग में पहुंचने की ललक, प्रयत्न और कुछ हद तक मिली सफलता पर गर्व का चित्रण किया है। यहां महत्व-प्रदर्शन की आकांक्षा का भी अच्छा चित्रण हुआ है। नारी के रूपगर्विता रूप, नारी के अभिमान पर आकर्षण के बावजूद व्यंग्य किया गया है।

अस्तित्ववादी चिंतन और शब्दावली के कारण कहानी को आघात भी पहुंचा है। शिल्प कहानी जैसा है और प्रभाव-अन्विति की अपेक्षा बहुत कुछ चित्रित कर देने की महत्वाकांक्षा साफ झलक रही है इसी कारण कहानी कमज़ोर होकर बिखर गई है। परन्तु व्यक्ति के भीतर के बिखराव की परख के आधार पर कहानी ठीक भी कही जा सकती है। जिसमें काफी कुछ अनर्गल और असम्बद्ध है बिल्कुल जिन्दगी जैसा ही।

कीशवनाथ की बहुरानी, मात्र पेटीकोट और ब्लौज में रस्सी पर कपड़े सुखाने को फैलाती हुई खुद भी सारे बांस पर फैलना चाहती प्रतीत होती है। वह उसे और ब्लौज से बाहर उभर आते उरोज़ो को बार-बार देखती रहती है, वह निर्निमेष बिना सेंसर रानी का अंग प्रत्यंग खुल कर और खिलकर देखता रहता है।...कीशवनाथ की बेटी सुषमा का हर हिस्सा अपनी जगह मुकम्मल और बराबर नपी तुली नफासत से भरपूर लगता है।....सुषमा एकटक उसे अपनी ओर देखते पाकर मान से भर जाती है।

सुषमा की प्रोमोशन हुई है...... उसका वेतन और रुतबा बढ़ गया है, उसने कई लोगों को खाने पर बुलाया है, खुद को बेवजह इस तरह लुटाने से सुषमा को आखिर मिलेगा क्या? सम्भावित भविष्य के प्रति पूंजीनियोग। दोनों ननद भौजाई में तकरार चल रही है। अब जुबान खुलवा कर ही रहेंगी हमारी–आपके प्रमोशन का लेटर किस होटल के किस रूम में टाइप हुआ यह उगलवाना चाहती हैं हमसे....."

सुषमा मुड़ कर उसे मुस्कराती हुई देखती है....'खूब मौज मनाते हैं आप– ....वह सोचता है 'क्या चाहती हो तुम मुझ से और जो मैं चाहता हूं दे सकोगी? ....वह उसमें यह दिलचस्पी आज पहली बार नहीं दिखा रही यह आदमी किस खाल का बना है.....किसी बात का जैसे असर ही नहीं होता इस पर ...वह मुझे हमेशा ऐसे देखता है.......फिर जाये भाड़ में....मुझे क्या लेना देना इस दो टके के खड़ूस से।

5.2.1.5 चन्द्रकान्ता की एक मात्र उपलब्ध कहानी है 'धराशायी', जिसका मूल्यांकन निम्नलिखित है।

5.2.1.5.1. धराशायी 'शीराज़ा' जुलाई 1982 में प्रकाशित हुई, जिसमें कामकाजी महिलाओं के दफ्तरी जीवन को चित्रित किया गया है। वी. वी. को अपनी शक्ति पर अतिरिक्त विश्वास है, वह साधारण, भावुक, घरेलू और पुरुषाश्रित स्त्री नहीं बल्कि उसमें नजाकत, नफासत और बौद्धिकता के अतिरिक्त गज़ब की हिम्मत भी है। परन्तु पदोन्नति की अनधिकृत मांग को लेकर वह मन ही मन अफसर से ठान लेती है और उससे विद्रोह के लिए यूनियन बनाकर वी. उसमें बढ़ चढ़ कर कार्य करती है। वह अफसर के कार्य व्यवहार के प्रति कहानी लिखती है जिसमें अफसर के चरित्र-हनन का प्रयास किया जाता है। वह सत्याग्रही साहब की कार्य-कुशलता को कारस्तानी कहानी है। उसकी विवेकशीलता और सूझबूझ को दन्द फन्द, मनीषा एवं विद्वता को स्नॉबरी, वैयक्तिक शिष्टाचार को चापलूसी कहती है। तमाशाई सहयोगी वी. वी. की कहानी की तारीफ करते हैं और उसे और अधिक उकसाते हैं, जबकि वे भी जानते हैं कि वी. वी. ही अपने बॉस के गले पड़ रही थी । यही कारण है कि बॉस की प्रशंसा करने वाली वी. वी. अब उसकी निंदा कर रही है और यूनियन बना कर बॉस को नीचा दिखाना चाहती है।

अफसर सत्याग्रही की अतिरिक्त सहानुभूति कुछ अस्वाभाविक-सी लगती है जो दफ्तरी तनाव के बावजूद वी. वी. के पति के प्रति घरेलू सम्बन्धों का निर्वाह करता है और वी. वी. को नीचा दिखा देता है। कहानी का उद्देश्य थोड़ा भटक गया है शायद लेखिका पत्नी के घरेलू कर्त्तव्य की ओर संकेत करना चाहती है।

5.2.1.6 अलंकार की मात्र एक कहानी उपलब्ध है, जिसका मूल्यांकन निम्नलिखित है।

5.2.1.6.1. धुंध 'शीराज़ा' में जुलाई 1982 में प्रकाशित हुई है, जिसमें फैंटेसी और दिवास्वप्नों के शिल्प का उपयोग करते हुए घर से भाग कर महानगर में आए परन्तु अनसैटल्ड

व्यक्ति के त्रासद जीवन की सशक्त अभिव्यक्ति हुई है। हर रोज उसकी आकांक्षाओं के उड़न घोड़े आकाश से नीचे गिर जाते हैं और वह आतंकित-सा हो उठता है कि उनके नीचे दबकर मर न जाए। महानगर का सारा आकाश लोगों की आकांक्षाओं के इन उड़नघोड़ों से भरा पड़ा है और लोग इन्हीं गिरते घोड़ों के नीचे दब कर मर रहे हैं।

• रतन हमीदा के प्रति प्रणयसूत्र में बंधा है, उसे छोड़ कर वह दिल्ली नहीं जाना चाहता। परन्तु बम्बई में कोई और नौकरी मिल भी नहीं रही। अंततः हमीदा अकेली रह जाती है जबकि हमीदा ही उसकी ताकत है वही उसकी प्रेरणा स्रोत है। किसी सेठ की रखैल की बेटी हमीदा के मन में रतन के साथ वैवाहिक जीवन जीने की अदम्य आकांक्षा है, वह भी किसी साधारण लड़की की तरह अपने दुल्हे की गोद में जी भर कर रोना चाहती है। और चाहती है कि रतन के साथ उसके पहाड़ी गांव में गृहस्थ बसाए। परन्तु एक बार घर से भाग आया रतन कहीं न कहीं सैटिल होना चाहता है और बेकारी और भुखमरी का भय ही उसे बम्बई से दिल्ली चले जाने के लिए विवश कर देता है। अंततः दोनों के परस्पर विदा होने का अवसर आ ही जाता है। यह विदाई बड़ी ही कारुणिक परन्तु संयमित है।

फैंटेसियों और दिवास्वप्नों के कारण कहानी कुछ बोझिल तो हुई है परन्तु महानगरीय त्रास से ग्रस्त आदमी के अंतश्चेतन की मनोविश्लेषणात्मक अभिव्यक्ति के लिए ये आवश्यक भी हैं। कहानी में रतन के मन की सशक्त अभिव्यक्ति उसके चारित्रिक अवगुण-बेवफाई को सशक्त आधार देती है। कहानी में हमीदा का चरित्र और रतन के प्रति उसका व्यवहार पाठक के मन को मोह लेता है। मन के कोमलतम रिश्तों की बुनावट अद्‌भुत और करुणासिक्त है। नारी-मन का चित्रण उदात्त और उत्कृष्ट है। कुल मिला कर उत्कृष्ट कहानी है।

5.2.1.7. दीदार सिंह की इस दशक में छ फुटकर कहानियां प्रकाशित हुई हैं जिनका मूल्यांकन निम्नलिखित है।

5.2.1.7.1. कौरव-पाण्डव 'हमारा साहित्य' 1983 में प्रकाशित हुई, जिसमें भारत और पाकिस्तान की सेनाओं की परस्पर मुठभेड़ में शत्रुओं के रूप में परस्पर जूझ रहे दो चचेरे भाइयों का हृदयाग्राही चित्रण हुआ है। पाकिस्तानी सैनिकों को भारत के विरुद्ध न जाने क्या-क्या पढ़ाया जाता है। पाकिस्तानी धर्म के नाम पर भारतीय मुसलमानों को अपने ही देश से गद्दारी करने के लिए उकसाते हैं परन्तु सफल नहीं हो पाते यही सब इस छोटी-सी कहानी में बड़ी सुंदरता से चित्रित हुआ है।

युद्ध भूमि में लड़ रहे भाइयों के संवाद बड़े रोचक और ड्रामाटिक हैं। 'महाभारत' के युद्ध की तरह ही इन सैनिकों को भी वार्तालाप का काफी अवसर मिला है। दोनों विरोधी सैनिक अपने-अपने फर्ज़ पर अड़े हुए हैं, अपने-अपने तर्कों पर डटे हुए ईमान और देश के लिए मर खप जाते हैं और युद्ध के बाद उनके शव उनके देश के सैनिक संभाल लेते हैं, देश भक्ति, धर्म या ईमान के नाम पर रिश्तों और मानवमात्र के हो रहे अवमूल्यन पर बड़ा करारा व्यंग्य किया गया है। छोटी-सी परन्तु सशक्त कहानी है।

5.2.1.7.2 बंद गली 'शीराज़ा' जनवरी 1986 में प्रकाशित कहानी है, जिसमें विवाहेतर प्रणयानुभूति को सहजता से नकारा गया है। कहानी में स्वीटी उर्फ मनजीत के सौंदर्य के प्रति सहज आकर्षण की अनेक तहें उजागर हुई हैं। उससे तीसरी भेंट दिल्ली के करोल बाग में हो जाती है तो पत्रों के बारे पूछे जाने पर वह बताती है कि उसके पत्र उसे खासी परेशानी में डाल देते हैं बच्चे भी पूछ लेते हैं कि किसका पत्र है? क्या पत्र न लिखने से सम्पर्क नहीं बना रहता?

स्वीटी लेखक के साथ दो पल बैठने की पेशकश भी नकार देती है कि भावुक होना बहुत आसान है लेकिन भावुकता जीवन के कटु सत्यों को नहीं बदल सकती..'सत्य यह है कि हम एक बन्द गली में रहते हैं......।' स्वीटी अपने वैवाहिक जीवन में किसी तीसरे की पेशकदमी से खलल नहीं पड़ने देना चाहती।

पत्नी की मर्यादा और प्रणयानुभूतियों के दमन की सुन्दर कहानी है। जिसमें संयोगों का सहारा लिया गया है, परन्तु कहानी की भाषा और संवाद-योजना तथा अनुभूतिगत प्रतिक्रियाएं काफी मोहक हैं। पारिवारिक मर्यादा का सशक्त चित्रण हुआ है।

5.2.1.7.3 बेटियां 'शीराज़ा' में जुलाई 1986 में प्रकाशित कहानी है। यह आदर्श प्रेरक, सीधी, सरल-सी कहानी है, जिसमें बेटियों का कोई विशेष चित्रण नहीं हुआ। इस साधारण सामाजिक क़हानी में दहेज न दे पाने के कारण दु:खी कायर-सा बाप घर से भाग जाता है और बेटियां जीवन-संघर्ष में धीरे-धीरे जूझती हुई विजयी हो जाती हैं।

संयोग ही है कि तीनों बेटियों को अच्छे सहानुभूतिप्रवण और जिम्मेदार पति मिले हैं। कथ्य यही है कि बेटा ही नहीं बेटी भी अपने मां-बाप की जिम्मेदारी उठा सकती है, बेटे की चाहत में बेटियों की उपेक्षा करना व्यर्थ है। व्यंग्य भी उभरता है कि समाज बेटे को ही क्यों महत्व देता है जबकि परिवार के प्रति बेटियां ही अधिक जिम्मेदार होती हैं, उनका मनोविज्ञान ही कुछ इस तरह का होता है कि मां के काम में हाथ बटाएं, पिता के दु:ख में सांझीदार हों। सारी कहानी आदर्श-प्रेरित है, पात्र लेखक की इच्छा के अनुरूप आचरण करते प्रतीत होते हैं। हां लेखक ने लोगों की बातों, तानों तिश्नों के द्वारा ब्रह्मदत्त पर काफी कटाक्ष कराए हैं। साधारण कहानी है, जिसमें बेटियां परस्पर मिलकर बेटे का कर्त्तव्य निभाती हैं।

5.2.1.7.4. अफशां 'कहानी शीराज़ा' में मार्च 1987 में प्रकाशित हुई, जिसमें बांसुरी वादक चरवाहे दिलावर और अत्यन्त सुन्दर पनिंहारिन लड़की अफशां के अतृप्त प्रेम की सशक्त अभिव्यक्ति हुई है। कहानी में लोकतत्वों और लोकविश्वासों का अच्छा नियोजन हुआ है। प्रकृति के सम्पूर्ण सौंदर्य को अफशां के रंग रूप आकार में भर देने का कौशल काफी मोहक है। कहानी में संवाद बहुत ही कम हैं। चेहरों के हाव-भाव, आंखों की दीठ, पलकों के उठने गिरने, पल्लू के ढलकने, खामोश पीठ तथा बांसुरी के आलाप के रूप में प्रणय-अनुभूतियों का सशक्त चित्रण हुआ हैं। प्रकृति का मानव विरोधी रूप भी बड़ी कुशलता से चित्रित हुआ है, बर्फबारी, बिजली की कड़क और बादलों की फटन दोनों प्रणयियों के लिए अभिसार में बाधक हो जाती हैं। हां, दोनों के बीच हास्य ठिठोली और व्यंग्य का ताना-बाना भी सुंदर और सार्थक है।

एक दिन जब अफशां मायके आई तो उसे पता चला कि वादी में कभी-कभार रात के समय बांसुरी की आवाज़ गूंज उठती है। अफशां दिन में दो बार पानी भरने जाती थी लेकिन न दिलावर दिखता न दिलावर की बांसुरी की आवाज़ सुनाई पड़ती। वास्तव में दिलावर तो बादल फटने के कारण अपने माल (पशुओं) समेत बह गया था।

कहानी का अंत करुण और Superstitious हो गया है। मृत प्रेमी की आत्मा अभी भी प्रेमिका का इंतजार करती भटकती रहती है। सशक्त कहानी कही जा सकती है, अंधविश्वासों के कारण नहीं बल्कि प्रणयानुभूति के चित्रण के कारण। कहानी में संवाद की अपेक्षा प्रणय की भाषातीत अनुभूति का चित्रण काफी मोहक है।

5.2.1.7.5 अपने लोग पराये लोग कहानी 'शीराज़ा' नवम्बर 1989 में प्रकाशित हुई, जिसमें ग्रामीण जीवन की महानगरीय जीवन से तुलना करते हुए विवाह के उपरान्त ससुराल या मायके दोनों ही स्थानों में रह रही विवश स्त्री के त्रासद जीवन का सशक्त चित्रण हुआ है।

महानगर दिल्ली में घर में स्थानाभाव के कारण कथानायिका के दाम्पत्य जीवन में अनेक उलझनें पैदा हो जाती हैं, दहेज न मिलने के कारण उसका ससुराल पक्ष उसकी उपेक्षा करता है, उस के कामकाज में नुक्स निकाले जाते हैं, उसकी सेवा का कोई मूल्य नहीं, जबकि उसी की नौकरी पेशा देवरानी को उससे अधिक महत्व मिलता है।

ससुराल में कथा नायिका का में कोई हमदर्द नहीं, तीन वर्ष के वैवाहिक जीवन में भी उसकी गोद हरी नहीं हुई, पति-पत्नी को एकान्त के क्षण ही नहीं मिले, सास ने भी यही चाहा कि वे परस्पर समीप न आ सकें। क्यों कि सास उसकी हत्या करवा कर बेटे का दूसरा विवाह करना चाहती है, जिससे प्राप्त दहेज से उसकी बेटी का विवाह हो सके।

कहानी में एकाधिक समस्याएं पिरो दी गई हैं जो कुल मिला कर यही सिद्ध करती हैं कि किस तरह अपने लोग भी पराये लोग हो जाते हैं। कथानायिका का एकालाप कहानी के शिल्प के रूप में विकसित होता है। साधारण कहानी है जिसमें प्रदेश के प्रति रागात्मक लगाव का अच्छा चित्रण हुआ है।

5.2.1.7.6 अग्निपरीक्षा 'शीराज़ा' में सितम्बर 1990 में प्रकाशित हुई। जिसमें विवाहपूर्व के प्रणय-सम्बंध की असफलता चित्रित है और विवाह के बाद भी उस सम्बंध की गोपनीयता को जीवनपर्यन्त निभा ले जाने की कसम का चित्रण हुआ है। संयोग यह है विवाह-पूर्व के प्रेमी प्रेमिका विवाह के बाद एक ही मकान में बिल्कुल पड़ौस में अपनी-अपनी दम्पति निभा रहे हैं। दोनों ही परस्पर अजनबी बने रहने के लिए संघर्ष कर रहे हैं, अपनी-अपनी गृहस्थी को सुखद और संदेहहीन बनाए रखने के लिए अपरिचित बने रहने का नाटक कर रहे हैं, भीतर ही भीतर सुलगते रहते हैं परन्तु सामाजिक मर्यादाओं की अपेक्षा आत्ममर्यादाओं का सफल निर्वाह कर ही लेते हैं।

प्रणयानुभूति के दमन और अनुभूति की तीव्रता के परस्पर द्वन्द्व में सुमीत और सुधा की चरित्रगत उदात्तता और संयम का अच्छा चित्रण हुआ है। संवाद की अपेक्षा हृदयगत अनुभूतियों

का आलोड़न ही कहानी की भाव-संपदा बना है । लम्बी परन्तु अच्छी कहानी है ।

5.2.1.8 **ज्योतीश्वर पथिक** की प्रस्तुत दशक में प्रकशित कहानी है- 'बनजारे'। 'बनजारे' 1984 में 'अभिव्यक्त होने दो' कहानी-संग्रह में प्रकाशित हुई है। इसका मूल्यांकन प्रस्तुत है।

5.2.1.8.1. **बनजारे** जमींदारी व्यवस्था के टूट जाने के बाद शेष रहे भूतपूर्व जिमींदारों के खोखले अभिमान और उनकी भुखमरी पर व्यंग्य-सा करते हुए कहानी को विकसित किया गया है। 'ट्रांसफर के चक्कर में फंसे मनु के क्रिया-व्यापार, सरकारी दफतरों के हड़ताली कर्मचारियों द्वारा इस्तेमाल किए जा रहे हथकण्डों का चित्रण, हड़तालों के कारण दफतरी काम में विघ्न का और गरीब लोगों के नुक्सान तथा उनके लिए बढ़ने वाली कठिनाइयों का चित्रण, यूनियन के नेताओं का दफतरी कर्मचारियों पर आतंक आदि चित्रित है। कर्मचारी तथा नेता में होड़ है जबकि ये सभी लोग बनजारे ही हैं। कहानी में तीखा व्यंग्य किया गया है कि नेता लोग ही अव्यवस्था पैदा करते हैं और वही अव्यवस्था के खिलाफ नारे भी लगाते हैं, अफसरों को धमकाते हैं और वही नेता रिश्वत लेकर लोगों का काम करवा देते हैं यही कहानी का कथ्य है।

विडम्बना यह है कि अफसर भी उनकी करतूतों को जानते हैं परन्तु व्यवस्था को बनाए रखने के लिए उनके छोटे-मोटे काम करके उन्हें अपनी ओर मिलाए रखते हैं। प्रस्तुत कहानी में जो काम मनु कई दिनों की भटकन के बावजूद नहीं करवा पाया, नेता से समझौता (रिश्वत) करके वही काम नेता द्वारा पांच मिनट में करवा लेता है, अंत तक पहुंचते-पहुंचते कहानी अच्छा तीखा व्यंग्य बन गई है। भाषा और संवाद आदि अच्छे हैं। अच्छी कहानी है।

5.2.1.9 **रमेश मेहता** की इस दशक में तीन कहानियां प्रकाशित हुई हैं, जिनका मूल्यांकन प्रस्तुत है।

5.2.1.9.1. **मृत्युगंध** 'अभिव्यक्त होने दो' संग्रह में 1984 ई० में प्रकाशित हुई है, जिसमें अस्तित्ववादी मृत्युभय को अच्छी अभिव्यक्ति मिली है। अस्तित्ववादी चिंतन पद्धति में मानव-जीवन को संकट में डालने वाली स्थितियों की कल्पना करके गंभीर चिंतन किया जाता रहा है। प्रस्तुत कहानी में भी साथ सोयी हुई पत्नी अचानक और अनदिखी ही मर जाती है जबकि पति मरी हुई पत्नी का चुम्बन लेता रहता है। प्रात: समय वस्तुस्थिति जान कर पति आतंकित हो उठता है, उसे जुगुप्सा-सी भी होती है कि रात भर वह एक मुर्दा शरीर को चूमता और टटोलता रहा, फिर उसे यह भी ध्यान आता है कि अंतिम बार सांसों को संभालते हुए उसने पत्नी को देखा था तो वह मुस्करा रही थी।

काल्पनिक मृत्यु के बहाने जीवन और मृत्यु तथा मुक्ति सम्बंधी परम्परागत प्रश्न उठा कर लेखक ने आदमी के मन के भय, पुलिस, कानून और प्रोबिन्ग सम्बंधी कई तरह की त्रासद मन:स्थितियों का चित्रण किया है और मुर्दा शरीर के साथ सोये रहने, चूमने-चाटने और भोगने की जुगुप्सा की कल्पना की है। कहानी अन्तश्चेतन को प्रतिक्रियाओं के रूप में उजागर करती है और लोक व्यवहार पर अस्पष्ट-सा व्यंग्य भी करती है। हां, स्थितिजन्य अनुभूतियों का चित्रण

अच्छा हुआ है। आत्मचिन्तन, अतीत-स्मरण और अनुभूतियों की बुनाई द्वारा कहानी विकसित की गई है।

5.2.1.9.2 उखड़ने से पहले कहानी 'अभिव्यक्त होने दो' संग्रह में प्रकाशित हुई है जिसमें मरने के करीब पहुंचे बूढ़े आदमी की चिड़चिढ़ाहट का चित्रण हुआ है और धौंस दिखाकर सेवा लेने की उसकी वृत्तियों का सशक्त चित्रण हुआ है। स्थिति यह है वृद्ध ससुर के दुर्व्यवाहार को बहु तो जैसे-कैसे झेल जाती है और अपने पति को ताने देकर मन हल्का कर लेती है परन्तु वृद्ध की पोतियां विद्रोह कर रही हैं।

बहू नहीं चाहती कि पिछले बीस वर्षों की सेवा का पुण्य ससुर की अंतिम दिनों की चिड़चिढ़ाहट के विरुद्ध विद्रोह करने से बिरा जाए। बेटा भी कुछ ऐसा ही विचार पाले हुए है। उसे लोकलाज का भय भी है। वह तर्क प्रस्तुत करता है कि बच्चियां दादा की सेवा करते हुए कामकाज संभालना सीख जाएंगी जो उनके वैवाहिक जीवन में मदद देगा। परन्तु वृद्ध कर्कश और असंतुलित शब्दों में उन सब को घर से निकाल देने की धमकियां देता रहता है। कहानी का चरमोत्कर्ष यह है कि पोतियां परस्पर खुसर-फुसर कर रही हैं कि दादा जी कब मरेंगे?

रमेश मेहता की यह उत्कृष्ट कहानी है, जिसमें परिवार की कर्त्तव्य परायणता के बावजूद वृद्ध आदमी की चिड़चिढ़ाहट समूचे माहौल को त्रासद बनाए हुए है और सभी प्रकार की नैतिक जिम्मेदारियों के निर्वाह के बावजूद परिवार के सभी सदस्य वृद्ध के मर जाने की आकांक्षा करने के लिए विवश-सा हो जाते हैं।

अच्छी सुगठित कहानी है। संवाद काफी तीखे और व्यंग्यात्मक हैं। कहानी के किसी पात्र से अन्याय भी नहीं हुआ। कोमलता, उत्सुकता, त्रासजन्य भय और लोकलाज से जुड़ी अनुभूतियों के साथ-साथ बूढ़े विधुर की चिढ़चिड़हाट और गुस्सैल स्वभाव का भी सशक्त चित्रण हुआ है।

5.2.1.9.3 एक दीवार की दूरी कहानी भी 'अभिव्यक्त होने दो' संग्रह में प्रकाशित हुई है, जिसमें जन-जन के दर्द के प्रति व्यक्ति की अनुभूति का विश्लेषण किया गया है परन्तु घर, परिवार, समाज, राष्ट्र और विश्व तक फैलती जा रही अपनी सहानुभूति तथा अपनत्व की आदर्शवादी भावनाओं को वही व्यक्ति वैयक्तिक सुख-शांति के समक्ष बौना मान रहा है।

आदमी की सहज वृत्ति में मक्कारी घुस आई है जिस की वजह से वह एक दीवार की दूरी वाले घर परिवार की दुःखद स्थिति के प्रति उपराम बना रहना चाहता है। शराबी पति की मार से डरी हुई पत्नी पड़ौसी के घर में आ छिपी है पड़ौसी अपनी पत्नी द्वारा उकसाये जाने पर त्रासद परिवार के प्रति हमदर्द हो उठता है परन्तु पत्नी उसे ही आड़े हाथों लेने लगती है कि उनके बच्चों पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। वह आवेश में आ जाती है और आक्रमक हो उठती है। इसी आक्रमक मुद्रा से उसे लगता है कि पड़ोसी के घर की लड़ाई उसके अपने घर में आ जाने वाली है और दूरी को बनाए रखने वाली दीवार अब बस टूटने ही वाली है।

अच्छी व्यंग्य प्रधान कहानी है जिसमें आदर्श पूर्ण वाक्यों की पोल खोल दी गई है। पत्नी की सहानुभूति भी एक तरह की तमाशायी वृत्ति ही बन कर रह गई है, वह पुलिस आदि की अपेक्षा बीच बचाव करके यथा-स्थिति को बने रहने देना चाहती है। कहानी में व्यक्ति की तटस्थता को मक्कारी तक कहा गया है, कहानी की भाषा, सशक्त है, संवादों में तीखापन है, कथ्य सबल है और गठन सशक्त है, अच्छी कहानी है।

5.2.1.10. ओ. पी. शर्मा 'सारथी' की इस दशक में तीन कहानियां प्रकाशित हुई हैं जिनका मूल्यांकन निम्नलिखित है।

5.2.1.10.1. स्टेज 'शीराज़ा' मई 1985 में प्रकाशित हुई है, जिसमें मुखौटेबाज़ी पर तीखी चोट की गई है। व्यंग्य है कि आदमी दिन-प्रतिदिन कागज़ों, तहरीरों, दावतनामों और लिफाफों को उठाए फिरता है और अपना महत्व दिखाने की कोशिश करता है जबकि वह यह भी जानता है कि उन दावतों में उसके जाने या न जाने से कोई फर्क नहीं पड़ता। फिर भी वह अहं का आवरण ओढ़े रहता है जबकि उसके अस्तित्व तक का कोई महत्व नहीं। उसके पास ताले तो हैं पर तालों में बंद कुछ भी नहीं। व्यंग्य है कि यदि ताले-तालियां भी न हों तो लोग आदमी को सलीब पर लटका देते हैं। बचपन, जवानी और बुढ़ापे को भरपूर जीने की अपेक्षा आदमी मात्र अतीत जीवी है जो अतीत की रौनकों के सहारे ही जीता है, मौजूदा स्थिति चाहे रोमांस की ही क्यों न हो नहीं जी पाता।

कहानी प्रतीकात्मक है, आत्मालाप की शैली में लिखा ललित निबंध प्रतीत होती है, कहानी के तत्वों के अभाव के कारण कथ्य बिखर-सा गया है और आम पाठक उसे पकड़ नहीं पाता। इसे कहानी का अवगुण भी कहा जा सकता है परन्तु जब आदमी दिन-प्रति-दिन अमानवीकृत हो रहा हो, चतुर्दिक असंगति और व्यक्ति-शोषण ही विस्तार पा रहे हों तो कला और साहित्य में संगति कैसे रह सकती है। विरुद्धों में संगति स्थापित करने की अपेक्षा 'सारथी' ने विरुद्धों को ही सशक्त अभिव्यक्ति दी है।

5.2.1.10.2 आवाज़ कहानी 'शीराज़ा' में जनवरी 1986 में प्रकाशित हुई है, जिसमें आदमी के भीतर के सत्य को, उसके हावभाव के बीच से खोजने का यत्न किया गया है। आदमी के बाहरी तामझाम के बीच से उसके अस्तित्व की तलाश ही कहानी का मूल कथ्य है। यहां व्यक्तित्व के अस्तित्व की तलाश का धन्धा करने वाले 'खोजिये' की चिंताओं, उसकी खोज-प्रकिया और प्रक्रिया में स्वयं ही गुम हो जाने के अंदेशों की सशक्त अभिव्यक्ति हुई है। बस्ती के हर दरवाज़े पर नाम की तख्तियां हैं, जैसे घर से निकला आदमी अपना घर भूल जाता हो। बस्ती में 'नारियों के लिए', 'पुरुषों के लिए' की तख्तियां संकेत करती हैं कि आदमी अपनी 'जात' भी नहीं पहचानता, 'जात' भी गुम हो गई है। विडम्बना यह है कि बस्ती का हर एक आदमी गुम है परन्तु कहा यही जा रहा है कि कोई भी गुम नहीं हर वस्तु के नाम, दिशा और पदार्थ को भाषा दी जा चुकी है जबकि विडम्बना यह है कि बस्ती के लोग सड़क की तलाश में हैं, बस्ती में रह कर बस्ती की तलाश में हैं।

कहानी व्यंग्य प्रधान है और आदमी के दिखावटीपन पर चोट करती है। शैली निबन्धात्मक है।

5.2.1.10.3 अभी समय नहीं हुआ कहानी 'शीराज़ा' में सितम्बर 1990 में प्रकाशित हुई है। भगवान की मूर्ति के माध्यम से लेखक ने मंदिर के पुजारियों, श्रद्धालुओं, वृद्ध महिलाओं और उन की पारिवारिक उपेक्षा और दु:खों का व्यंग्यपरक चित्रण किया है। कहानी निबन्धात्मक है, एक्शन का अभाव है, परन्तु व्यंग्य काफी तीखा है। मूर्ति स्वयं ही अपने आगतों के अनुभवों और उन पर अपनी प्रतिक्रियाओं का बखान करती चलती है। अच्छी कहानी है।

मंदिर का युवक पुजारी बिजली विभाग का कर्मचारी है जो बिना किराया दिए रात भर मंदिर की बिजली जलाए रखता है। वह मंत्र तो बोलता है परन्तु उनका अर्थ नहीं जानता, पूजन विधि भी नहीं आती, भभूत को पहले संदूकचे में फैंक देता था परन्तु जब से पांच सात नारियों को चिकित्सा के लिए भभूत देने लगा है तो भभूत का मूल्य बढ़ गया है । उसके बाप ने मंदिर क़ो कब्ज़े में रखने के लिए ही उसे पुजारी बनवा दिया था, नहीं तो और लोग भी मंदिर का माल हड़पने के लिए दांव-पेंच चला रहे थे। मंदिर में आने वाली भक्तिनें उन कच्चे या गले-सड़े फलों का चढ़ावा ही चढ़ाती हैं, जिन्हें वे स्वयं नहीं खा पाती। ये सभी तो पतियों से तंग आई पत्नियां हैं। ये पत्नियां और बुढ़ियाएं औरों को तो कुछ सुना नहीं पातीं और सब ऊटपटांग उसे सुनाने चली आती हैं। यह भी मात्र सुनता है, अपनी सभी क्रियाएं-प्रतिक्रियाएं और करिश्मे इसने छोड़ रखे हैं, मात्र सुनता रहता है। यह जानता है कि कोई उसे नहीं खोज रहा न पुजारी, न मंदिर में आने वाले लोग, सभी अपने-अपने स्वार्थ, अपनी-अपनी रोटी, रोज़गार, धंधे को ही खोज रहे हैं।

कहानी में मूर्ति के आत्मालाप के माध्यम से जन-जीवन में व्याप्त ढ़ोंग और धर्म की आड़ में होने वाले कपट का अच्छा चित्रण हुआ है। मन्दिर में आने वाले भक्त भक्तिनों के जीवन की त्रासदियों और परिवारों में उनकी उपेक्षा के दु:ख को भी शब्द मिले हैं और प्रभु के निकम्मेपन पर भी व्यंग्य किया गया है। कथ्य यही है कि अभी समय नहीं हुआ कि प्रभु कोई चमत्कार करके दुनिया के हालात को सुधार दें।

5.2.1.11. **संतोष कौल** की कहानी 'फीकी और बदरंग जिंदगी' शीराज़ा नवम्बर 1985 में प्रकाशित हुई है, जिसका मूल्यांकन प्रस्तुत है।

5.2.1.11.1. **फीकी और बदरंग जिंदगी** जिसमें कहानी की भूमिका टिप्पणियों के रूप में काफी लम्बी चली गई है। पुराने पत्रों में सम्बंधों की तलाश, बीते क्षणों की स्मृतियां और समय के व्यतीत होते जाने के कारण बदल रही जीवन की गतिविधियों आदि को पिरोया गया है बल्कि यही बदलाव कहानी का कथ्य है।

कथानायक मौना के साथ अपने प्रणय सम्बन्ध का स्मरण कर रहा है। मौना चित्र प्रदर्शनी में 'जिंदगी' शीर्षक वाले चित्र की व्याख्या करती है कि समय भागता ही रहता और जिंदगी की धारा में कई रंग बदल देता है। परन्तु कथानायक को मौना के प्रेम और कथन के

तथ्य का पता बहुत देर बाद लगता है जबकि मौना उसकी पकड़ की सीमाएं लांघ चुकी थी।

कहानी में लेखिका के शिल्प और संवदेन में विकास तो हुआ है परन्तु बोझिलता से वह छूट नहीं पाई। पात्रों के परस्पर संवाद और प्रतिक्रियाओं का चित्रण सुंदर और मनोविश्लेषण प्रधान है परन्तु कहानी में रोमानियत का पुट प्रभाव को कुण्ठित कर रहा है।

5.2.1.12. **ओंकारनाथ वख्लू** की कहानी 'खून का रिश्ता' 'हस्ताक्षर नये नये' उपशीर्षक के अन्तर्गत 'शीराज़ा' में नवम्बर 1985 में प्रकाशित हुई, साधारण आदर्श प्रधान कहानी है, जिसका मूल्यांकन निम्नलिखित है।

5.2.1.12.1. **खून का रिश्ता** जिसमें मुंह बोली आंटी से, आप्रेशन के दौरान रक्त दान करके, खून का रिश्ता स्थापित कर लिया जाता है। कहानी में जीवन की छोटी-छोटी चहल-पहल वाली स्थितियों, पिकनिक की आकांक्षाओं और परस्पर स्नेह, सौहार्द की अनुभूतियों की अच्छी बुनाई हुई है, साथ ही साथ नायक की संघर्ष-शक्ति और अस्पतालों के वातवारण का चित्रण हुआ है। कहानी का शिल्प साधारण ही है।

5.2.1.13 **डॉ० निर्मल चोपड़ा** की इस दशक में केवल दो कहानियां प्रकाशित हुई हैं, जिनका मूल्यांकन निम्नलिखित है।

5.2.1.13.1. **दिशाहीन** कहानी 'शीराज़ा' में जनवरी 1986 में प्रकाशित हुई, जिसमें मैडिकल कालेज में सीट न मिल पाने के कारण दुखी एक युवक की अन्तर्पीड़ा का सशक्त चित्रण हुआ है। उसे अपने भाई पर भी क्रोध आता है कि वह उसके भविष्य के लिए खर्च नहीं करता। दोनों भाइयों में झगड़ा होता है, उसे कोर्ट कचहरी में जाने के लिए कहा जाता है। बड़े भाई के पास भी उसे शोषण और अपमान का शिकार होना पड़ता है। बेकार युवक की दहकती हुई जिजीविषा की आंच धीमे-धीमे मंद पड़ जाती है।

विवेक की संघर्ष-चेतना का सुंदर, सशक्त और तार्किक विश्लेषण हुआ है, दोनों बड़े भाइयों की कमीनी मानसिकता और स्वार्थ-वृत्ति पर भी करारी चोट की गई है। पारिवारिक रिश्तों के खोखलेपन को युवक की बेरोज़गारी और उपेक्षा और अधिक उजागर कर देते हैं। कहानी के गठन में कोई झोल नहीं, संवाद तीखे और स्थिति सम्मत हैं। विवरण और आत्मचिंतन के सहारे बढ़ती हुई कहानी अतीत और वर्तमान के त्रासद अनुभवों को लपेटती हुई चरमोत्कर्ष पर पहुंचती है। डॉ निर्मल चोपड़ा की यह उत्कृष्ट कहानी है।

5.2.1.13.2 **किसके लिए** कहानी 'शीराज़ा' में जनवरी 1987 में प्रकाशित हुई है। यह संघर्ष करती हुई एक यतीम लड़की की कहानी है जो उच्चाधिकार प्राप्त अफसर बन जाती है और संघर्ष-यात्रा में क्या खोया क्या पाया का लेखाजोखा करती है। मंच पर बैठे-बैठे वह मौजूदा गौरव-मण्डल के बावजूद अतीत और बचपन की स्मृतियां में खो जाती है।

उसे स्कूल की सहपाठिनों के ताने-तिश्ने, लड़ाई-झगड़े और कटाक्ष याद आते हैं। वह अफसर बनना चाहती थी परन्तु पिता किसी दुकान में नौकर थे। बड़ी मेहनत के बाद वह अपने मकसद में सफल रही है परन्तु मंच पर बैठे-बैठे ही सोच रही है कि न जाने उसने क्या कुछ खो

दिया है। अब शेष है तो अकेलेपन के गोल-गोल घेरे और उन दायरों में घूमती हुई है वह । उसने अपने लक्ष्य की धुन और भाई बहन के पालन-पोषण की जिद्द में अपने प्रणय-पुरुष विवेक को खो दिया है।

फ्लैश बैक पद्धति में लिखी गई अच्छी कहानी है परन्तु जल्दबाजी में खत्म कर दी गई है। कहानी में संघर्षरत नारी को सम्मान तो मिला है, उसकी मेहनत सफल भी हुई है, वह गजटिड अफसर बन गई है परन्तु उसके व्यक्तिगत जीवन में नीरसता, अकेलापन और तिक्तता ही रह गई है। उसे स्वयं नहीं पता कि उसने किसके लिए यह पद, शोहरत और धन कमाया है। वह तो दूसरों की जरूरतें पूरी करने वाली मशीन मात्र होकर रह गई है। कहानी आत्ममंथन और अतीत-स्मरण के रूप में लिखी गई है। नारी-मन का अच्छा चित्रण हुआ है।

5.2.1.14 बंसी लाल की इस दशक में दो कहानियां प्रकाशित हुई हैं, जिनका मूल्यांकन निम्नलिखित है।

5.2.1.14.1. थकान 'शीराज़ा' में नवम्बर 1986 में प्रकाशित हुई। जिसमें मध्यवर्गीय कश्मीरी परिवार की गरीबी, आकांक्षा और अतृप्तियों का अच्छा चित्रण हुआ है। सोमनाथ बूढ़ा है, कमर में दर्द रहता है, डर है कि डाक्टर महंगी दवाओं और भयानक रोग की घोषणा करके उलझा न दे, बेटी अंजू बी- ए. में पढ़ रही है, परिवार महंगाई में पिस रहा है बी-एस. सी. पास जवान बेटा अभी बेकार है, नौकरी के लिए दौड़-धूप करता-करता उक्ता गया है, टूट रहा है। सोमनाथ उस पर कुढ़ता है परन्तु उसकी पत्नी का मातृहृदय बेटे के प्रति हिल-सा जाता है। वह भी बेटे की बेकारी, अनिश्चय और अनहोनी कर लेने की चिंता को लेकर चिंतित है और बेटे के प्रति आश्वस्त भी है कि वह जूझ रहा है और कुछ न कुछ कर ही लेगा।

यहां मध्यवर्गीय परिवार की कुण्ठा, खीझ, अरमानों और अभावों का सशक्त चित्रण हुआ है। कहानी का गठन फालतू के संदर्भों से कमजोर और ढीला हो गया है फिर भी कहानी मध्यवर्गीय परिवार की त्रासदी को मुखरित कर गई है।

5.2.1.14.2 कस्तूरी कहानी 'शीराज़ा' में मई 1988 में प्रकाशित हुई। कहानी काफी ऊबड़ खाबड़ शैली में लिखी गई है।

पत्नी सरना के पत्र का लहजा कुछ सख्त है, पत्र में ताने हैं कि पति बेवफा है जो उसकी विरहाग्नि की कद्र नहीं करता, जो सब कुछ होते हुए भी और अधिक कमाने के लिए, अधिक उन्नति करने के लिए गांव की जिंदगी से विमुख होकर महानगर में अपने उद्योग, निष्ठा, लगन के बलबूते अपने उद्देश्य की ओर फलांगता जा रहा है और विरहपीड़ित पत्नी की भावनाओं का क्रूरता से हनन करता जा रहा है। जबकि वह एकाकी जीवन से ऊब चुकी है, उसका घर बार संभाल रही है, कर्त्तव्य परायण चौकीदार की तरह परन्तु चौकीदार के पास भी तो दिल होता है। और अब पति से उपेक्षिता-सी पत्नी के दिल पर कस्तूरी दस्तक देने लगा है, कस्तूरी में वह रमने लगी है, कस्तूरी के होने से वह पति की गैर हाजिरी सहेज रही है, घंटों उसीं के प्रेम की महक में डूबती इतराती है।'

पत्नी का पत्र पढ़ कर पति ईर्ष्या से जल भुन उठता है और पत्नी सरना की बेवफाई और कस्तूरी से निपट लेने के लिए गाड़ी पर सवार हो जाता है। 'कस्तूरी' शब्द मस्तिष्क में विस्फोट पैदा कर रहा है क्रोध और आवेश से ग्रस्त वह घर पहुंचता है। पत्नी दरवाज़ा खोल कर उसे देखते ही ठिठक जाती है और अपने विरह का हिसाब मांगती प्रतीत हो रही है परन्तु पति तो कस्तूरी को देखना चाहता है।

कहानी का अंत बड़ा ही रोमांचक है। सारी कहानी में रहस्य और जिज्ञासा बनी रही है। **महानगरीय दौड़** धूप में फंसे आदमी के हृदय का चित्रण तो हुआ ही है। सरना के नारी-हृदय और कुछ-कुछ त्रिया चरित्र का भी सटीक चित्रण हुआ है। कहानी फणीश्वरनाथ रेणु की कहानी के बछड़े का स्मरण करा देती है। अच्छी कहानी है।

5.2.1.15. डॉ रत्नलाल 'शान्त' की प्रस्तुत दशक में एक कहानी प्रकाशित हुई है, जिसका मूल्यांकन प्रस्तुत है।

5.2.1.15.1 सारस 'शीराज़ा' में मार्च 1988 में प्रकाशित हुई है। जिसमें कश्मीर वादी में फैल गए आतंक का पूर्वाभास चित्रित हुआ है। कश्मीर की हिन्दू नारी के सांस्कृतिक मन का बड़ा ही हृदयग्राही और तर्कसंगत चित्रण किया गया और धर्मांध लोगों की क्रूर बुद्धि, और उनकी वैज्ञानिक सोच के क्रूर इस्तेमाल पर अच्छी तीखी चोट करने के साथ धार्मिक सौहार्द और भाईचारे की औपचारिकता को अच्छा उभार मिला है।

अपने झुण्ड से अलग हुआ एक सारस झील में आ फंसता है। कथानायक की पत्नी को लगता है कि सारस कश्मीरी सारस की किसी पुरानी और खत्म हो गई नस्ल का अवशेष है, इसे जीवित रहना चाहिए परन्तु विडम्बना यह है कि कथानायक का शिकारी मित्र उस सारस को पकड़ लेना चाहता है और कथानायक से ही नाव बनाने के लिए शहतीर मांग रहा है। नाव द्वारा सारस तक पहुंच कर उसे जीवित पकड़ने का इरादा भी दिखा रहा है।

कथानायक के सामने विवशता है-भाईचारे के निर्वाह की, पत्नी को नाराज़ करके और अपने घर-गृहस्थी के सामान को बिखेर करके भी शहतीर निकाल लाने की, पत्नी चाहती है कि यदि शिकारी उसके पति का मित्र है तो वह उससे यह क्यों नहीं पूछता कि उसका लड़का कथानायक के घर पर पत्थर बरसाने वाले दंगाइयों के बीच क्यों था ? सारस का रक्तपात वह उसी के घर में क्यों करना चाहता है? तभी चार-पांच लड़के जीप में हल्की-फुल्की नाव ले आते हैं तो बूढ़ा शिकारी गर्व से कहता है 'देख रहे हो, मेरे भाई ? जो हम बूढ़ों से नहीं हो सकता वह यह जवान कैसे कर दिखाते हैं?'

कहानी का अन्त अच्छा व्यंग्यात्मक है, पत्नी पति पर चोट करती है 'तुम सब एक जैसे हो' जैसा तुम्हारा यह दोस्त....'। कहानी में सारस के बहाने हिंसा......रक्त पात और दिखावटी भाईचारे का विरोध करते हुए हृदयस्थ सौमनस्य की आकांक्षा की अच्छी और सशक्त अभिव्यक्ति की गई है। सार्थक और उत्कृष्ट कहानी है, प्रासंगिक भी। भाषा और स्थितिजन्य प्रतिक्रियाएं ठीक ही हैं।

5.2.1.16. **पद्मा सचदेव** की इस दशक में दो कहानियां प्रकाशित हुई हैं, जिनका मूल्यांकन प्रस्तुत है।

5.2.1.16.1 **सूरज जग गया** 'शीराज़ा' में नवम्बर 1988 में प्रकाशित हुई, जिसमें नारी-मन की अनेक परतें खुली हैं। कहानी का गठन सुदृढ़ और शिल्प आकर्षक है। बाल विधवा डॉ॰ मन्दाकिनी अनुशासन प्रिय प्रिंसीपल है, ससुराल से आई विधवा बहु और उसके नन्हे-से बेटे के सान्निध्य में 45 वर्ष पहले के अतीत हो चुके अपने संसार में खो जाती है।

रिश्ते की विधवा बहु को ससुराल में इज्जत की रोटी नहीं मिली, न्याय नहीं मिला, उसके जेवर तक जेठ जेठानी खींच लेना चाहते थे. इसी कारण वह अपने भाई के पास रह रही थी। अब वह कालेज में चपरासी की नौकरी के लिए अपनी चाची, सास मंदाकिनी के पास आई है, साथ में उसका नन्हा-सा बेटा भी है। डॉ॰ मन्दाकिनी अपने अतीत में खो जाती है।

वह नौ साल की ही थी जब गोविन्द से उसका विवाह हुआ था, गोविन्द की पहली पत्नी मर चुकी थी, आयु में भी वह काफी बड़ा था और जुए में काफी धन हार जाने के कारण उसने आत्महत्या कर ली थी। तब डॉ. मंदाकिनी मक्खनी नाम की भोली-भाली बालिका बधु थी, ना समझ थी, ननद संकटृ की तरह गोविन्द को गोविन्द भैय्या ही कहती थी। शेर के मुंह वाले सुहाग के गोखरू उसे अच्छे नहीं लगते थे 'कांच की चूड़ी हल्की होती है, बोलती भी है, ये शेर सोये रहते हैं।' सास को उसने बड़ी प्रसन्नता से कहा था कि गोविन्द भैय्या ने चूड़ी के लिए उसे रुपया दिया है। सास ने उपहास-सा भी किया था।

फिर मक्खनी बाल-विधवा के रूप में मायके लौट आई थी और फिर दादू की निगरानी में रात दिन पढ़ लिख कर वह प्रौफैसर बन गई, दादू ने उसे अच्छे संस्कार भी दिए। डॉ॰ मन्दाकिनी के समक्ष प्रोफैसर नीरज ने विवाह का प्रस्ताव रखा परन्तु चाह कर भी दादू के कारण मन्दाकिनी तैयार नहीं हुई, उसकी ट्रेनिंग में त्याग ही सिखाया गया था, त्याग ही प्रेम था, प्रो॰ नीरज का विदेश से आया पत्र भी उसने जला दिया था।

बाल-विवाह की कुरीति, बाल-विधवा का जीवन-संघर्ष, विधवा स्त्रियों की दुःखद जीवन स्थिति को कहानी में बड़े कौशल से पिरोया गया है। कहानी मर्म को छू लेती है। संघर्ष, तप, त्याग और स्वाध्याय से जीवन-संघर्ष करती हुई बाल-विधवा के जीवन का अच्छा हृदयग्राही वर्णन हुआ है। औरत के मन के दर्द, त्याग, प्रेम और कर्मठता के अनेक गुण कहानी में पिरोये गए हैं। कहानी की भाषा और संवाद बड़े प्रभावोत्पादक हैं। उत्कृष्ट कहानी है।

5.2.1.16.2 **मेरी बेटी** कहानी 'शीराज़ा' में जनवरी 1990 में प्रकाशित हुई, जिसमें पितृत्व और मातृत्व के भाव को ही कथ्य के रूप में नियोजित किया गया है।

सातवीं कक्षा की बच्ची संगीत सभा में नहीं पहुंची, लड़की के अपहरण की शंकाएं सभी अध्यापिकाओं को परेशान किए हुए हैं, लड़की का बाप तो बात तक नहीं कर पा रहा। तभी एक लड़की भागती हुई आती है तो एक अध्यापिका उसे भींच लेती है, उसके बालों को सूंघती है बडी मुश्किल से उसने आंसू रोके हुए थे। इसपर दूसरे स्कूल की अध्यापिका खुश हो

जाती है, शुक्र है मिल गई। माम्टरनी बच्ची को अलग करती है 'कौन, ये,ये तो मेरी बेटी है' हाल में फिर सकता छा जाता है।

साधारण कहानी है परन्तु शंकाजन्य चिन्ता और प्रतिक्रियाओं का सशक्त चित्रण हुआ है। बच्चे की शरारतों और मांगों का भी अच्छा भावपूर्ण चित्रण है।

5.2.1.17 किरण बख्शी की इस दशक की तीन कहानियां छपी हैं, मूल्यांकन प्रस्तुत है

5.2.1.17.1. लौटे नहीं विहग 'शीराज़ा' में नवम्बर 1988 में प्रकाशित हुई, जिसमें वृद्ध दम्पत्ति के अकेलेपन, नीरसता, निर्बलता और अवसाद का सशक्त चित्रण हुआ है। इस दम्पत्ति के दोनों बेटे बाहर हैं, अक्षय चित्रकार है, शिकागो में दो-दो वातानुकूलित कारों, घर और बड़े स्टूडियो का मालिक है । बेटे की इस उन्नति और महानता के प्रति बाप में कोई ईर्ष्या नहीं, मात्र चिढ़-सी है क्योंकि उनके सम्बंधों के सेतु कमज़ोर पड़ गए हैं, दोनों के बीच जुड़ाव का माध्यम है तो केवल बधाई कार्ड या गिफ्ट चैक। दूसरे बेटे अविनाश ने भी मां के जोड़ों के दर्द की दवा भेजने के बाद कोई पत्र नहीं भेजा।

मंगला के मन में भी अक्षय के प्रति मोह है, वह उसकी भेजी पेंटिंग के सामने खड़ी है, यह पेंटिंग बेटे ने उसके जन्म दिन पर भेजी थी-पक्षियों का एक बड़ा झुण्ड डूबते सूर्य की लालिमा की ओर बढ़ता हुआ अदृश्य होता जा रहा है और उनमें से एक पक्षी अपनी ग्रीवा टेढ़ी करके पीछे की ओर देख रहा है।

अक्षय की मनोभावना को समझ कर मां मंगला ने उसे उत्साहित करते हुए पत्र लिखा था कि उसे अभी नहीं रुकना-महानविभूति बनने के लिए मोहबंधन को भूले रहना है।

अपने बेटों से अलग रह रहे दम्पत्ति के बीच एक लम्बा, ढीठ-सा मौन तैर रहा है। उनमें कोई झगड़ा झल्लाहट नहीं ताकि घर में छाये सूनेपन की परत ही दरक जाए। सारे दिन में दो चार क्षण ही ऐसे होते हैं जिन्हें जीना कहा जा सके शेष सारा दिन तो पुनरावृत्तियों को जीने जैसा ही है। वृद्ध दम्पत्ति थक हार-सा गया है, जीवन के लक्षण लगभग समाप्त हो रहे हैं, बच्चों की गतिविधियों में अपने आप को जिंदा रखने के लिए विवश, उनकी सहानुभूति तलाश रहे दम्पत्ति का करुण चित्रण हुआ है।

शिल्प, भाषा और गठन की दृष्टि से उत्कृष्ट कहानी है, जिसमें मातृत्व का कर्त्तव्य, पत्नीत्व की सहानुभूति और परिवार के सूनेपन के साथ-साथ अतीत का स्मरण भी उकताहट पैदा कर रहा है। घर-परिवार में फैलती रही अजनबियत और सम्बंधों की दरकन का बड़ा सशक्त चित्रण कहानी में हुआ है। पेंटिंग के माध्यम से प्रवासियों के दर्द घर-परिवार के प्रति मोह और स्वदेश न लौट पाने की विवशता का भी सुगठित चित्रण हुआ है। लगभग सभी पात्रों से न्याय किया गया है। परन्तु पेंटिंग के प्रतीक विधान में गड़बड़ है। पक्षियों को डूबते सूरज की ओर बढ़ते दिखाया गया है, यह प्रतीक प्रतिगामी सूचक है, प्रगति सूचक नहीं। सूर्योस्त की अपेक्षा सूर्योदय होता तो ठीक रहता!

5.2.1.17.2 म्याह आंधी कहानी 'शीराज़ा' में जुलाई 1989 में प्रकाशित हुई है, जिसमें भारत विभाजन के पूर्व के साम्प्रदायिक और धार्मिक भाईचारे का सशक्त चित्रण हुआ है। कथ्य है कि कि पीर-पैगम्बर सांझे होते हैं, वे भी धर्म, सम्प्रदाय की अपेक्षा मानव-मात्र के कल्याण के लिए सभी दुखियों के दर्द मिटाते रहे हैं। उन्हें भी देश के विभाजन का दुःख है, देश-विभाजन से पूर्व फैले धार्मिक दंगों की आशंका से दुखी होकर वे अपनी इबादतगाहों में मौन रह जाते हैं। कहानी में पंजाबियत और लोकतत्वों का सुन्दर और प्रभावोत्पादक संयोजन हुआ है।

भारत-विभाजन से पूर्व हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य को सफलता प्रदान करते हुए साईं हमीद को डर है कि कहीं इन्सानी रिश्तों की गर्माहट ठण्डी न पड़ जाए। साईं हमीद ने लोगों को सचेत किया कि जमाने की हवा गर्म है, मीरपुर की खबर सुखद नहीं, भाई भाई को मारेगा, चाचा करीम और दौलतराम को भी भाई चारे की चिंता है, उन्हें ज्ञात नहीं कि उनका गांव हिन्दोस्तान में जाएगा कि पाकिस्तान में। गांव छोड़ने से पूर्व हिन्दुओं की रुलाई फूटती है, रूहानी पुरुष भी अपने पर काबू नहीं पा सके। अपनी जड़ों से जबरन उखाड़े गए लोगों का काफिला चल पड़ता है। मुसलमान हिन्दुओं को भरे मन से भेजते हैं, उन के सुख-साधन की हिफाजत का दिलासा भी देते हैं।

भाषा, भाव, कथ्य और जीवन के उदात्त मानव-मूल्यों की सशक्त और उत्कृष्ट कहानी है। जिसमें विभाजन पूर्व हिन्दू-मुस्लिम सौमनस्य का और गांवों के सांझे सांस्कृतिक जीवन का हृदयाग्रही चित्रण हुआ है।

5.2.1.17.3 कोई दूसरा 'शीराज़ा' में सितम्बर 1990 में प्रकाशित हुई, जिसमें पुरुष के अहं से पीड़ित नारी-मन की सशक्त अभिव्यक्ति हुई है। मिताली आई. ए. एस. अफसर है परन्तु अविवाहित है। उसी की बहिन गुड्डु प्रशासनिक अधिकारी की पत्नी है परन्तु आडम्बर, दिखावे की जिंदगी तथा घरेलू रोक-टोक से ऊब चुकी है । उसका तो विवाह ही इस शर्त पर हुआ है कि वह स्टेज नहीं करेगी क्योंकि स्टेज भले घरों की मर्यादा से मेल नहीं खाता, गुड्डु मन से खाली है, वैभव तथा ऊंचे आर्थिक स्तर में भी उसे पूरे मन का एहसास नहीं हो रहा।

मिताली स्वयं प्रशासनिक अधिकारी है परन्तु अविवाहित है। उसे दुखः है कि लोग नारी को सामान्य मानवीय धरातल पर क्यों नहीं लेते? क्यों उसकी पहचान पति, बच्चों तथा परिवार से ही बनती है? उसकी थकान को थकान नहीं समझा जाता। 'न घर न बार न पति न बच्चे इसे थकान क्यों कर हुई ?' आदि क्मेन्टस देकर क्यों उस पर व्यंग्य किया जाता है।

बचपन से ही जीतू मिताली का प्रणय-पुरुष रहा है, परन्तु अब वह बचपन छिन चुका है, वह प्रणय धारा सूख रही है, एक समय था जब वह जीतू के पत्र सात पर्दों में छिप कर पढ़ा करती थी, उसके गाल आग के गोले बन जाते थे। परन्तु जीतू की ओर से उसे अधिक उत्साह-आश्वासन नहीं मिला था, वह जॉब के प्रति उसकी कमिटमेन्टस से प्रसन्न नहीं था, कुण्ठित-सा हो रहा था, विवाह से कतरा रहा था तो वह भी तिलमिला उठी थी 'पन्द्रह वर्ष जीवन का एक हिस्सा होते हैं-इन सारे वर्षों तुम यह सब मजाक में लेते रहे। अब तुम्हें मैं अपने को छलने का अवसर कभी न दूंगी।'

पुरुष के अंह और अधिकार भावना से पीड़ित विवाहित नारी के अन्तर्मन की पीड़ा की अभिव्यक्ति तो हुई ही है प्रणय-पुरुष से उपेक्षित प्रशासनिक अधिकारी प्रेमिका की उपेक्षाजन्य पीड़ा का भी सशक्त चित्रण हुआ है। फ्लैश बैक पद्धति के सहारे विकसित हुई कहानी की भाषा, शिल्प और संवाद अच्छे बन पड़े हैं और इस सबसे अधिक महत्वपूर्ण है नारी-मन का मनोविश्लेषणपरक प्रस्तुतिकरण।

5.2.1.18.1 सुदर्शत्रिलोचन की एक ही कहानी 'कटता हुआ कुछ' छपी है, मूल्यांकन प्रस्तुत है।

5.2.1.18.1 कटता हुआ कुछ 'शीराज़ा' में नवम्बर 1988 में प्रकाशित हुई, जिसमें 'तपस्या' फिल्म की कहानी को दुहराया गया प्रतीत होता है। दस खण्डों में विभाजित कहानी में अविवाहित नारी के अकेलेपन का चित्रण है, बड़ी ननद होते हुए भी छोटी भाभी से उपेक्षित होने की पीड़ा का चित्रण हुआ है। वह मां की मृत्यु के दु:ख के बावजूद भाभी के प्रसूति के दिनों में मदद के लिए आ जाती है परन्तु अपने कर्त्तव्य-निर्वाह के बावजूद उसे अपमान की पीड़ा भोगनी पड़ती है।

उसी ने अपने भाई को पाल-पोस कर बड़ा किया है, उसके सुन्दर भविष्य की कामना और अपने कर्त्तव्य-बोध पर उसने अपने प्रणय को भी कुरबान कर दिया है। किन्तु आज वह अकेली की अकेली है, भाई के पास और अधिक दिन टिके रहना संभव नहीं, अपने विरुद्ध अघोषित शीत युद्ध की आंच झेलना संभव नहीं। घर में फालतू चीज़ बन कर सभी की आंखों में खटकना अपनी अस्मिता को क्षरित करना उसे कचोट रहा है। भाभी नहीं चाहती कि घर की प्रत्येक बात उसी के इर्द गिर्द घूमे। भाभी के अनेक वाक्य उसे कचोटते रहे हैं, कचोटते रहते हैं।

उसकी उपस्थिति का अनुचित लाभ उठाया जा रहा है, उसे घर में छोड़ कर भाई-भाभी बाजार में घूमते फिरते ऐश कर रहे हैं, उनका निजी स्वार्थ रिश्ते को कैंची की तरह काट रहा है। उसे अपने प्रणय का स्मरण आता है, भाई की खातिर ही उसने प्रेम कुरबान कर दिया था। 35 वर्ष की आयु पार करने के बावजूद अब भी उसे अंग्रेजी विभाग का प्रोफैसर सुहास चाह रहा है, उसने उसकी निगाहों की चुभन अपनी पीठ पर अनुभव की है। उसके प्रथम प्रेमी दीपक ने कहा भी था 'आभा एक दिन तुम फूलों की तरह पंखुरी-पंखुरी झर जाओगी, तुम्हारे भाई बान्धव तक तुम्हारा उपकार नहीं मानेंगे।'

अंततः वह भाई और भाभी के व्यवहार की तिक्तता को और अधिक न झेल कर लौट आती है। प्लेटफार्म पर बदहवास-सा भागता हुआ आता सुहास उसके पास रुक जाता है और आभा का अटैची उठा लेता है। वह झूठ बोलता है कि मिसेज़ साहनी की तबीयत खराब थी और उसी ने उसे भेजा है। जबकि आभा जानती है कि वह झूठ बोलने का प्रयास कर रहा है।

कहानी की भाषा और आत्मचिंतन बड़ा जोरदार है, भाषा में काव्य-गुण आ गए हैं। कथानक यद्यपि देखा भाला है परन्तु ट्रीटमेन्ट मन को मोह लेता है। हां अंत तक पहुंचते-पहुंचते कहानी सुखान्त हो गई है। भाभी-भाई के व्यवहार से दु:खी आभा अपने चाहने वाले के साथ

चल ही पड़ती है। नारी-मन का सशक्त चित्रण कहानी का अतिरिक्त सौंदर्य है।

5.2.1.19. वीणाधर की एक ही कहानी 'आग' छपी है, जिसका मूल्यांकन निम्नलिखित है।

5.2.1.19.1 आग कहानी 'शीराज़ा' में नवम्बर 1988 में प्रकाशित हुई है, जिसमें आग लगने से बरबाद हुए मध्यवर्गीय परिवार की त्रासदी का सुन्दर चित्रण हुआ है। रमजान जू ने बड़ी मुश्किल से बेटी सकीना के निकाह के लिए दहेज एकत्रित किया है। शादी का जोड़ा, बर्तन और जेवर आदि वाले दोनों संदूक वह बड़ी कठिनाई से आग लगे मकान की तीसरी मंजिल से उतार कर अग्नि पीड़ित लोगों की सहायता के लिए आई पुलिस के हवाले कर देता है ताकि वह हिफाजत करे। पुलिस ताला लगे ट्रंकों को थाने ले जाती है। ट्रंक वापिस लाने जा रहा रमजान जू कई प्रकार की आशंकाओं से घिरा हुआ है, थाने में थानेदार उसे बेटी की शादी पर न्यौता देने और कवाब रिसता, गोश्ताबा खिलाने के लिए कहता है और कहता है कि ट्रंकों की हिफाजत के लिए कड़ी निगरानी करनी पड़ी है।

विडम्बना यह है कि रमजान जू घर आकर ट्रंक खोलता है तो उसमें न गहने थे न सुहाग का जोड़ा। सकीना को गहनों की अपेक्षा सुहाग के जोड़े का अधिक दु:ख है, इसी जोड़े के आधार पर वह नया जीवन शुरू करने वाली थी। कहानी अंत में आते-आते कमज़ोर हो जाती है। हां पुलिस की करतूतों का कच्चा चिट्ठा खोलने में सफल रहीं है।

5.2.1.20. श्री धर्मचंद 'प्रशान्त' की इस दशक में एक ही कहानी प्रकाशित हुई है, जिस का मूल्यांकन प्रस्तुत है।

5.2.1.20.1 जल्लाद 'शीराज़ा' में मार्च 1989 में प्रकाशित हुई है जिसमें जल्लाद विरसे से मिले खानदानी पेशे के कारण सामाजिक परेशानियां और घृणापूर्ण व्यंग्योक्तियां सहन कर रहा है और दुखी और त्रस्त है और आत्मचिंतन से आरम्भ हुई कहानी धीरे-धीरे बहस का रूप अपना लेती है, कहानी में अस्तित्ववादी चिंतन तो नहीं, हां, ईसाई-श्रद्धा, विश्वास और करुणा की अनुभूति का अच्छा विश्लेषण हुआ है।

जल्लाद इस अपराध भावना से ग्रस्त है कि उसे निर्दोष व्यक्ति को फांसी पर चढ़ाना पड़ रहा है। वस्तुत: उसे कह दिया गया है कि पुलिस ने झूठा केस बनाया है और निर्दोष जैकब को हत्यारा सिद्ध कर दिया गया है, अब उसे ही पेशेगत विवशता के कारण न चाहकर भी जैकब को फांसी पर चढ़ाना है। जैकब उसे ईसा की प्रतिमूर्ति प्रतीत होता है, अपराध बोध से ग्रस्त वह जैकब की अपेक्षा स्वयं को मरा हुआ अनुभव करता है और दादा की गोद में पड़ा रोने लगता है। अंतत: वह जल्लाद का धंधा छोड़ देता है।

कहानी अंत में भटक जाती है परन्तु कानून के विश्लेषण की अपेक्षा आदमी के भीतरी अपराध बोध को स्पष्ट करने में लेखक सफल रहा है। जैकब को ईसा की प्रतिमूर्ति के रूप में प्रस्तुत करना और फिर उसी के माध्यम से उपदेश दिलाना अस्वाभाविक-सा प्रतीत होता है। कहानी में कानून-व्यवस्था पर भी अच्छी चोट हुई है परन्तु कहानी साधारण ही रह गई है।

5.2.1.21. शिवरैणा की दो कहानियां इस दशक में प्रकाशित हुई हैं, जिनका मूल्यांकन निम्नलिखित है।

5.2.1.21.1 मशीनू मामा 'शीराज़ा' में नवम्बर 1989 में प्रकाशित हुई जिसमें भोले भाले मकैनिक वजीर चन्द की अन्तर्व्यथा का सशक्त चित्रण हुआ है। वजीर चंद सीधा, सरल और मेहनती इन्सान है, पत्नी रमिया फैशनेबल स्त्री है, उसे पति का मैला कुचैला काम पसंद नहीं और वह बच्ची समेत अपने मन भाये मर्द के साथ भाग जाती है। वजीर चंद अपनी वफादारी और प्रेम का काफी वास्ता देता है, परन्तु रमिया गुमराह औरत है, मानी ही नहीं। फिर अचानक रमिया लौट आती है, उसके खूबसूरत गाल और गर्दन का पिछला भाग जल गया है और उसके सौंदर्य के लोभी मनभाये मर्द ने उसे छोड़ दिया है। रमिया अपने किए पर पश्चात्ताप करती हुई क्षमा मांगती है, वजीर चंद उसे पुनः स्वीकार कर लेता है 'तो क्या हुआ? मेरे ये. दरवाज़े तो बंद नहीं हैं रमिंया!'

ईमानदार, मेहनतकश और फक्कड़ वजीरचंद का चरित्र अच्छा बन पड़ा है। परन्तु आज के युग में ऐसा आदर्श व्यक्ति कहां मिलता है? जो पराये मर्द के साथ वर्षों भटकने के बाद भी लौटी हुई पत्नी को पूरी आत्मीयता से स्वीकार कर ले।

5.2.1.21.2 नये मोड़ पर 'शीराज़ा' में जुलाई 1990 में प्रकाशित हुई साधारण व्यंग्यपरक निबन्धनुमा कहानी है। जिसमें ख्याली पुलाव पकाने की वृत्ति को उजागर किया गया है। कहानी का पात्र शर्मा नये वर्ष पर नयी तरह से जीने का संकल्प कर रहा है। परन्तु तभी उसे दफतर से अफसर का संदेश आ जाता है। अफसर उसे स्टडी टूर में नये अनुभवों का लालच देता है और दूसरे कर्मचारियों की सुस्ती और कामचोर वृत्ति पर व्यंग्य भी करता है।

शर्मा साहब से मिली उकसाहट में आ जाता है और टूर पर चले जाता है। स्टडी टूर में उसका आदर सत्कार होता है, मामूली-सी एक रकम ही खर्च होती हैं जबकि अनेक प्रकार की सौंगातें मिल जाती हैं। परन्तु विडम्बना यह है कि ईमानदारी की उसकी सारी योजनाएं धरी की धरी रह जाती हैं। और वह तर्क ढूंढ लेता है कि पैसे की अंधी दौड़, मारधाड़ और देशद्रोह के इस अंधे दौर में किसी के पास परिवार, पड़ौसी या राष्ट्र के लिए समय नहीं।

कहानी में तीखा व्यंग्य उभरने के बावजूद कहानी बन नहीं पाई, मात्र डायरी लेखन बन कर रह गई है।

5.2.1.22 नरेन्द्र गुप्ता बेचैन की एक ही प्रकाशित कहानी मिली है, जिसका मूल्यांकन प्रस्तुत है।

5.2.1.22.1 मोहभंग 'शीराज़ा' में नवम्बर 1989 में प्रकाशित हुई है, जिसमें बहन तो C.A कर लेती है परन्तु उसको सीख देते रहने वाला भाई स्वयं तीसरी बार C.A. में अनुत्तीर्ण हो जाता है। वह असफलता के दुःख, निराशा, हीनता की ग्रन्थि और अहं को लगी चोट के कारण कमरे में बंद होकर रह जाता है, अंतर्द्वन्द्व में फंसा हुआ वह पिता का स्मरण करता है, पिता की निगाह में वह पलायनवादी व्यक्ति है, जो दो-दो बार फेल होने के बावजूद दुकान संभालने

से कतरा रहा है। अनेक प्रकार की दुखद कल्पनाओं के बाद वह पुन: पढ़ाई में लग जाता है। कहानी में मनोविश्लेपण पद्धति और अन्तर्द्वन्द्व का अच्छा चित्रण हुआ है। साधारण कहानी है।

5.2.1.23 **वेदराही** की इस दशक में एक मात्र प्रकाशित कहानी 'पुनर्योग' है, जिसका मूल्यांकन प्रस्तुत है।

5.2.1.23.1. **पुनर्योग** शीराज़ा में जुलाई 1990 में प्रकाशित हुई है, जिसमें व्यक्तिगत अहं की भावना से ग्रस्त पत्नी मनाली अपने पति और बेटी को दिल्ली में छोड़ एक्ट्रेस बनने के लिए बम्बई आ गई है परन्तु उसे सफलता नहीं मिल पाई। उसकी आर्थिक स्थिति खस्ता है और शारीरिक सौंदर्य भी ढलान पर है। फिगर उसे जवाब दे रही है, फिल्मों में काम मिल नहीं रहा परन्तु वह असफल होकर लौटना भी नहीं चाहती वह अपनी बेटी और उसकी सहेलियों के बीच अपना तामझाम बनाए रखना चाहती है और उधार लिए पैसों से बेटी पर रूआब भी दिखाना चाहती है। वह नहीं चाहती कि दो चार दिन के लिए बम्बई आई बेटी के सामने उसकी असफलता की पोल खुले। वह यह चाहती है कि बेटी जल्दी से जल्दी दिल्ली वापिस लौट जाए, कहीं सदा के लिए उसके पास न रह जाए क्योंकि वह यहीं रह गई तो उसके सारे पर्दे खुल जाएंगे। मनाली अपनी अभिनय कुशलता का उपयोग करती हुई बेटी को धोखा दे देना चाहती है। जहां वेद राही ने अपनी कहानी 'आर्टिस्ट' को कुछ-कुछ दुहराया भी है।

मनाली अपनी ही बेटी के सौंदर्य और फिगर पर ईर्ष्या भी करती है और यह नहीं चाहती कि कोई बबली को उसकी बेटी समझे क्योंकि इससे उसके फिल्मी कैरियर पर और अधिक बुरा प्रभाव पड़ने की शंका है। फिर उसकी सोच का कांटा बदलता है और वह यह भी सोचती है कि हो सकता है बबली के आ जाने से वे सफलताएं उसी के हाथ आ जाएं जो मनाली के भाग्य में नहीं थीं। बबली उससे अधिक खूबसूरत है, छोटी भी है, मां की वजह से उसे अधिक संघर्ष भी नहीं करना पड़ेगा। फिर यह भी हो सकता है कि बबली के कारण मनाली का भी भविष्य बन जाए अत: अब वह सोच लेती है कि बबली के आने से पूर्व गार्मेन्ट का काम शुरू करके सैटिल होने का यत्न करेगी।

कथ्य यह है कि फिल्मी सफलता के लिए कई छल कपट करने पड़ते हैं, मां बेटी तक से ईर्ष्या कर सकती है और उसके सौंदर्य और देहयष्टि को अपनी सफलता की सीढ़ी भी बना सकती है। कहानी में मानसिक द्वन्द्व और अनुभूतिगत प्रतिक्रियाओं का सशक्त चित्रण हुआ है। सफल सार्थक कहानी है।

5.2.1.24 **मनोज शर्मा** की इस दशक में एक कहानी छपी है, जिसका मूल्यांकन प्रस्तुत है।

5.2.1.24.1.**ज़मीन ढूंढते पांव** 'शीराज़ा' में मार्च 1990 में प्रकाशित हुई, जिसमें आर्थिक आधार की अपेक्षा जाति, फौजी कोटा और अपंगों आदि के लिए नौकरी में आरक्षण के अनेक कोटे हैं। अत: नौकरी में आरक्षण की वजह से निर्धन और विधवा ब्राह्मणी के बेटे का जीवन त्रासदी बन कर रह गया है। इस बेकार युवक का उत्कृष्ट चित्रण हुआ है।

मां ने गियासन खा खिलाकर दिनों को धक्का दिया है। बेटी विवाह योग्य जवान है, बेटा पढ़ाई में तेज–तर्रार है परन्तु हाई स्कूल में फीस मुआफ नहीं है। जबकि बेटे की फीस की मुआफी के लिए मां ने स्कूल के क्लर्क से लेकर हैडमास्टर तक के पांव तक पकड़ा है, उसके मन में एक चाह है कि बेटा पढ़ लिख कर साब बन जाए।

मैट्रिक पास करने के बाद वह साइंस पढ़ता है परन्तु यह खर्चा यह परिवार बिल्कुल नहीं उठा पाता। लड़का ट्यूशनें करता है जो मिलती नहीं, तो अखबार बेचता है। सुखद भविष्य के स्वप्न की पूर्णता के लिए गलीज़ से गलीज़ जिंदगी जी रहा है। परन्तु मां की मनौतियां, जठेरों के आशीर्वाद सभी बेकार जा रहे हैं। एस. सी., एस. टी., फौजी कोटा, अपंगों का कोटा के कारण कहीं भी उसका नौकरी का दाव नहीं लगता, नौकरी के लिए भरने वाले फार्म की फीस तक जुटाना भी कठिन है। अंतत: उसे यही सूझती है कि जाति का बंधन तो वह काट नहीं सकता, जाति बदल नहीं सकता, हां कोई अंग तो काट कटवा सकता है और वह रेल की पटड़ी की ओर चल पड़ता है।

कहानी का गठन, काशी की मनोव्यथा, उसका आक्रोश, उसकी मां की जीवन त्रासदी और ब्राह्मणी पर लोगों की कृपा दृष्टि (जो केवल जातिगत बड़प्पन के अंह की ओर ही संकेत करती है) का बड़ी कुशलता से नियोजन किया गया है, कहानी की भाषा और व्यंग्य का पुट सराहनीय है। देश में आरक्षण नीति की विसंगति के कारण प्रतिभा सम्पन्न निर्धन परन्तु स्वर्ण जाति के लोगों की जो उपेक्षा हो रही है, उस पीड़ा की अभिव्यक्ति पाठक को करुणाद्र कर देती है। उत्कृष्ट कहानी है।

5.2.1.25 जिया लाल हण्डू की एक ही प्रकाशित कहानी मिली है, जिसका मूल्यांकन प्रस्तुत है।

5.2.1.25.1. मुक्तकेशी 'शीराज़ा' में नवम्बर 1990 में प्रकाशित हुई, जिसमें विवाहित परन्तु अतृप्त नारी के चरित्र को उभारा गया है। सैक्स की भूखी–प्यासी नारी अपने ही संरक्षक को अपने रूपजाल में उलझा लेना चाहती है। प्रयत्न भी करती है, एकान्त में इकबाल से मिलना और उसे लुभाने का यत्न करना आदि स्थितियों का अच्छा चित्रण हुआ है । परन्तु इकबाल आदर्श व्यक्ति है, वह अपनी मंगेतर की अपेक्षा अन्य किसी पराई स्त्री के प्रति सोचना भी गलत मानता है और मुक्तकेशिनी को सीख भी देता है।

'वासना की हवा में विचलित होना आप जैसी नारी के लिए उचित प्रतीत नहीं होता।' जब इकबाल मुक्तकेशी के रूप जाल में नहीं फंसता तो वह छल–कपट करके उसे उसकी मंगेतर से विरक्त करने का षड्यंत्र रचती है, किसी फोटोग्राफर से मिल कर उसकी मंगेतर ऋतु के फोटो को गलत ढंग से प्रस्तुत करती है और अपने अपमान का बदला लेना चाहती है परन्तु इकबाल इस सब पर विश्वास न करके ऋतु से असलियत जान कर उसके प्रति समर्पित हो जाता है।

साधारण आदर्शवादी कहानी है, जिसमें नारी के बाह्य सौंदर्य की अपेक्षा आंतरिक सौंदर्य को अधिमान दिया गया है और उषा प्रियवंदा की कहानी 'मछलियां' की स्थितियों जैसी ही पुनरावृत्ति का आभास होता है। भाषा और स्थिति चित्रण ठीक ही है।

5.2.2. नवें दशक के हिन्दी कहानी-संग्रह इस दशक में दस हिन्दी कहानी-संग्रह प्रकाशित हुए हैं। इन संग्रहों की कुछेक कहानियां पूर्व प्रकाशित हैं परन्तु इन सबका संकलन इन संग्रहों में कर लिया गया है अतः ऐसी कहानियों का मूल्यांकन संग्रह के मूल्यांकन के अन्तर्गत किया जा रहा है।

5.2.2.1. सौगात अवतार कृष्ण राजदान के 1980 ई० में प्रकाशित कहानी-संग्रह 'सौगात' में कुल 12 कहानियां हैं। पुस्तक के प्राक्कथन के अनुसार राजदान की पहली कहानी 'शीराज़ा' में 1968 ई० में प्रकाशित हुई। वह कहानी का आधार 'रोज़मर्रा की जिंदगी' को मानता है। 'शारीरिक विकलांगता के कारण महसूस हुई घुटन में मर जाने से बेहतर है संघर्ष करना शायद इसी संघर्ष भावना से मैंने अपनी सीमित दुनिया में अपना एक अलग स्थान बना कर इसके लिए लेखन मार्ग को अपना लिया है।'

कहानी के कथ्य और शिल्प के बारे वह लिखता है...'कहानी के लिए मैं कृत्रिम परिवेश का निर्माण नहीं करता। बल्कि इसको अपने परिवेश के सांचे में डालने की कोशिश करता हूं जो रचनात्मक है। इससे मेरी कहानियों को सामाजिक रूप मिलता है.....मैं अपनी कहानियों में व्यक्ति के सामूहिक अस्तित्व की विकृतियों, विडम्बनाओं और चुनौतियों का चित्रण करता हूं। जिसकी कृत्रिम परिणति समाज के भीतर कार्यरत शक्तियों के संघर्ष की झांकी है।'[5]

5.2.2.1.1. कीमती चीज़ कहानी में नायक अपाहिज टांगें छिपा कर अपनी प्रणयानुभूति को निर्बाध बनाए रखने का प्रयास करता है उसका यही प्रयास कहानी का मूल कथ्य है। आकर्षित लड़की की निगाह से अपाहिज टांगों को छिपाए रखना ही अपाहिज के लिए कीमती चीज है, अन्यथा उसे अपने प्रति आकर्षण के अहसास को गंवाना पड़ेगा। नारी के सान्निध्य की चाह, अकेलेपन की पीड़ा और अपाहिजता के कारण बन गयी मानसिकता का चित्रण मनोवैज्ञानिक धरातल पर हुआ है। प्रणय सम्बन्धी कोमल तत्वों और अनुभूतियों का सशक्त चित्रण कहानी को अतिरिक्त सौंदर्य प्रदान करता है। अच्छी कहानी है।

नायक अपाहिज है। वह अकेलापन महसूस करता है और समय काटने के लिए खिड़की के पास आ बैठता है। एक दिन उसे एक लड़की मुग्धा-सी देखने लगती है।' यह देखकर उसके शरीर में सिहरन-सी हलचल-सी मच जाती है..।

'एकाएक उसकी नज़र अपनी टांगों पर पड़ी, टेढ़ी- मेढ़ी टांगे थीं उसकी.....वह जन्म से ही घर की चारदीवारी में घिरा हुआ था...'

उसने सिर झुकाया और टांगों पर पड़े हुए फटे-पुराने शाल को ठीक कर लिया।

.....'अचानक लड़की......दूसरी सहेलियों से कट कर चुपचाप उसके सामने नज़रें

झुकाए खड़ी रही, उसी क्षण उसकी आंखों से उबलते हुए आंसू फूट पड़े.......यह आंसू नहीं जीवित शब्द थे बेबसी के । उस समय ऐसा लगता था कि लड़की अपाहिज है और वह सड़क पर चहल-कदमी कर रहा है।'

5.2.2.1.2. मृत्यु अभी दूर है- निर्धन साहित्यकार की जीवन-विसंगतियों की कहानी है। महत्वाकांक्षा के कारण उसने बेटे को बाहर पढ़ने के लिए भेज दिया है परन्तु उसके खर्च के लिए पैसा नहीं भेज पा रहा, पत्नी हार्ट डिज़ीज की मरीज़ है परन्तु वह आप्रेशन के लिए पैसा नहीं जुटा पा रहा। जो वह लिख चुका है वह प्रकाशित नहीं हुआ, नया लिखने को मन ही नहीं। इस तरह के मानसिक द्वन्द्व में उसे नींद नहीं आ रही जीवनगत विसंगतियों को चित्रित करते हुए लेखक इसी निष्कर्ष पर पहुंचता है कि संघर्ष ही उसे विजय दिलाएगा। 'तस्वीरों के मध्य एक ऐसी तस्वीर भी दिखाई दी, जो मेरे पिता की थी, पिता परिश्रम और आत्म विश्वास की मूर्ति! ....समझाते थे कि जीवन संघर्ष है।' ...... कौन कहता है, मेरा प्रेरणा स्रोत सूख गया है.....मुझसे मृत्यु अभी दूर है। मैंने हिम्मत नहीं हारी है। मैंने पिता की परम्परा को कायम रखा है।'...साधारण-सी कहानी है।

5.2.2.1.3. चुनौती-यह साधारण कहानी है जो शिल्प में ढल नहीं पाई और कच्चापन साफ झलकता है। संवाद लम्बे और कुछ नकली-सा लगते हैं। लेखक ने नारी के सम्मान, स्वाभिमान और हठधर्मी आदि का चित्रण किया है और उसके प्रति मां-बाप की चिन्ता तथा उनके अपने सम्मान की चिन्ता को अभिव्यक्ति प्रदान की है। आशा सम्पन्न पिता की एकमात्र पुत्री है परन्तु उसका पति किसी अन्य स्त्री के कारण उसकी उपेक्षा-सी करता है। वह पति का घर छोड़ कर मायके आ जाती है, उसके दो बेटे हैं और उन्हीं के पालन-पोषण में जीवन बिता देना चाहती हैं। परन्तु इसी बीच उसका पति उसे बुला रहा है मां-बाप उसे ससुराल भेजना चाहते हैं, वह जाने के लिए तैयार नहीं। अधकचरी कहानी है।

5.2.2.1.4. पत्नी पैसा और प्यार यह साधारण कहानी है जिसमें शिल्पगत आकर्षण नहीं बन पाया, भावुकता-दोष भी है जिससे कहानी कमजोर रह गयी है। स्त्री-पुरुष के दाम्पत्य सम्बन्धों की व्याख्या के निमित्त कहानी में एक से अधिक जोड़ों को लिया गया है और तुलना-सी की गई है, कहीं पैसे का महत्व है, कहीं प्यार का महत्व है, कहीं सुरक्षा की भावना का महत्व है। और इन सभी जोड़ों में परस्पर तारतम्य स्थापित करने के लिए नेरेटर और उसके हैडक्लर्क काशीराम को माध्यम बनाया गया है। कहानी में नारी के हृदय की थाह तक पहुंचने का यत्न किया गया है परन्तु बात किसी निष्कर्ष तक नहीं पहुंच पाई।

पहला प्रसंग है-रत्न लाल कैंसर के कारण मर जाता है, उसकी पत्नी बिलखती है, वह खिड़की में से कूद कर आत्महत्या करने को तैयार थी लोग सोचते हैं, पति चल बसा, पत्नी का क्या होगा। यही है न समस्या...पति चल बसा तो पत्नी आज़ाद हो गयी। उसकी लाज शर्म का पर्दा उठ गया....'कुछ समय के लिए तो वह ज़रूर पागल हो जायगी। इसको शमशान वैराग्य कहते हैं। यह ज्यादा देर तक कायम नहीं रहता।'

दूसरा प्रसंग निम्न जाति की स्त्री माला का है। 'बदमाश, कमीना, बेईमान ! मेरे पांव के जूते की गर्द।.....कहता है गनीशेख को तलाक दो और मेरे साथ शादी करो.....इसी को कहते हैं बवासीर। .....कहने लगा, यदि गनीशेख आज रात को कहीं गया है तो मैं यहां सो जाऊंगा।.......वह मुझे भोली समझता है.....मैं इसके नस-नस का खुमार एक पल में दूर कर दूंगी.....और यह हरामजादा कहता है कि यदि मेरे साथ शादी करोगी.......लैला जैसी कद्र करूंगा......और बच्चे का मुंह तो नौ महीने बाद ही दिखाऊंगा, अरे उसको क्या कहूंगी ? वह नाहक परेशान हो जाएगा। सोचेगा, शायद यही उसके साथ फंसी हुई है। अब तक तो मेरी अच्छी देखभाल करता है, इसके बाद उससे भी हाथ धो लूंगी.....इसकी कुदाली से जान लेगा ही.....मेरी नाहक मार-मार कर खाल उतारेगा....'

तीसरा प्रसंग एक पति-पत्नी के भरे बाज़ार में झगड़े की घटना का है। पत्नी इतनी बेशर्म और बेहया है कि बाज़ार में पांव की जूती हाथ में लिए ज़ोर-ज़ोर से पति से झगड़ रही है।.....तेरा पिता झूठ क्यों बोल रहा था कि बेटा नौकरी करता है.....झांसे में डाल कर तुमने मेरी ज़िंदगी बर्बाद कर दी........

इन तीनों प्रसंगों पर चर्चा कर लेने के बाद भी नेरेटर किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुंच पाता, साधारण और उलझी हुई कहानी है।

5.2.2.1.5. चंचल लहर मुक्त धारा प्रस्तुत कहानी में पत्नी और प्रेमिका आदि के रूप में दो नारियों का तुलनात्मक चरित्र प्रस्तुत किया गया है। साधारण कहानी है जिसमें अतिरंजना दोष है, शिल्प-भी अटपटा-सा है। पात्रों की मनोभावानाओं और उनकी कायिक प्रतिक्रियाओं को चित्रित करने का भरसक यत्न किया गया है परन्तु कहानी प्रभावित नहीं कर पाती। यह कहानी 'शीराज़ा' में पूर्व प्रकाशित है।

राजेन्द्र आत्मग्लानि से ग्रस्त है कि उसने नीला को मां बनाया परन्तु पत्नी के रूप में स्वीकार नहीं किया, तब वह संकल्प-विकल्प में ग्रस्त हो कर रह गया था, 'इसका क्या प्रमाण है कि होने वाला बच्चा तुम्हारा ही है। वह तो इस समय कीचड़ में धुली हुई मूर्ति है।' उधर पश्चात्ताप के आंसू बहाते हुए रीता अपने पति राजेन्द्र से सच-सच कह देती है.....मुझे छुओ मत। मैं तुम्हारे लायक नहीं....मैं पतिता, पापिन, दागदार हूं.......मैंने आपके शरीर को अपवित्र कर दिया है। आपके साथ छल करके शादी की है।

तदोपरान्त दोनों पति-पत्नी नीला के पास जाते हैं, जबकि अब नीला राजेन्द्र को झूठा और अपवित्र समझती है...''किन्तु जिस प्यार में संघर्ष न हो, घुटन की मीठी टीसें न हों, वह प्यार नहीं कहलाता जिसको मेरी नहीं, बल्कि मेरी देह की ज़रूरत थी और ज़रूरत थी अपने अहंकार की तुष्टि की......उसके साथ मैं कैसे शादी कर सकती थी....अब ये अपवित्र हो गये हैं न, क्योंकि इन्होंने तुम से विवाह किया है। यदि मैं इनके साथ रहूं या विवाह करूं तो मैं समझती हूं कि झूठी और अपवित्र हो जाऊंगी, जिससे मैं स्वयं अपने प्रेम का गला घोंट दूंगी......''

5.2.2.1.6. विश्वास प्रस्तुत कहानी में अतिरिक्त भावुकता का दोष है, फौजी विधवा के दु:ख को चित्रित करने की अपेक्षा लेखक उसके पति की वीरगति पाने की सूचना न दे पाने की पीड़ा चित्रित करके रह गया है। कहानी का प्रभाव बिखर गया है, कथानक का विकास कुछ बेतरतीब -सा हुआ है, क्लेवर और काल भी काफी विस्तृत है जिससे कहानी कमज़ोर पड़ गई है।

उत्सुक-सी वह पत्र पढ़ने का निवेदन करती है तो नेरेटर आहत-सा हो जाता है और खत को मोड़ कर उसके हाथों में देता हुआ कहता है 'उषा ! वे लड़ाई में वीरगति पा गए हैं।' एक क्षण पहले के उसके उत्सुक प्रश्न, उसका फूल- सा खिला हुआ चेहरा ! और एक क्षण बाद सदियों जैसी-बरडोरी यह मौत की उदासी।...वह कुछ नहीं कहना चाहती - और कह भी नहीं पाती थी केवल मेरी ओर देख रही थी, जैसे उसको मुझ पर विश्वास ही नहीं रहा हो...'

5.2.2.1.7. बरसात कहानी में शीर्षक का कोई सीधा स्पष्ट-सा महत्व नहीं दिखता। उपेक्षित महसूस करके पति को छोड़ कर वह मायके चली गई है, घर त्याग कर वह पराये मर्द के साथ घूमती देखी गई है और पति दु:खी हो रहा है और अतीत का स्मरण करने लगता है । उसे लगता है कि उसके प्रति विवाहिता उषा का आकर्षण भी शायद पति से मिली उपेक्षा की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप ही था।

लेखक यह कल्पना-सी करके चला है कि पति से उपेक्षित हो जाने पर स्त्री चरित्रहीन हो जाती है। कहानी में पति-पत्नी के परस्पर के झगड़ों और अविश्वास को मनोवैज्ञानिक धरातल पर प्रस्तुत किया गया है, पात्रों का मनोविश्लेषण करने में कहानी कुछ सीमा तक सफल रही है। कहानी में पति-पत्नी के परस्पर रिश्ते की नैतिकता को भी विश्लेषित किया गया है। शिल्प ठीक ही है, कहानी में रोचकता है परन्तु कहीं-कहीं भावों का अतिरेक है, कहीं-कहीं वृथा विस्तार भी है, फिर भी यह एक अच्छी कहानी है।

'वह कौन थी जो अभी-अभी बैंड पर मिली थी?' दोस्त की पत्नी, या तुम्हारी ? उसका तीर-सा व्यंग्य ।...'शक्की नहीं हूं, बल्कि मैं इस औरत को अच्छी तरह जानती हूं यह वही है न जिसके पति ने हमारे मुहल्ले के सर्वानन्द के बेटे की शादी में किसी पराये मर्द के साथ पकड़ा था......और यही तुम्हारी 'फ्रेंड' है।'

उस समय रात्रि का दूसरा पहर था....मैंने अपने चेहरे पर किसी के मरमरी हाथों का स्पर्श महसूस किया। उसने मुझे हठात पकड़कर खींचा, बोली-'क्या सोच रहे हो ?'....मेरी उस चुप्पी से वह जलभुन गयी। फिर उच्छवास फैंक कर वह एक ही सांस में बोली 'कायर' । .....किसी ने मानो मेरे मुंह पर चांटा मारा। ....सच कहा उसने कि मैं कायर हूं।.....उस समय मैं पागल नहीं हुआ था। दरअसल पहल उसी की थी। यदि किसी उन्माद के अधीन मैंने उसे खींच कर अपनी बांहों में भर लिया था, तो इसमें मेरा क्या दोष।

इस घटना को हुए सात साल बीत गए थे परन्तु पत्नी को किसी पराये मर्द के हाथ में हाथ मिला कर चलते देख कर तूफान-सा उमड़ आया। मन में संदेह का एक काला नाग रेंगने

लगा.....जी में आया........मार-मार कर खाल उतार लूं। ....किन्तु मैं जान गया कि पति की उपेक्षा भी पत्नी के लिए धीरे- धीरे प्रभाव करने वाला ज़हर होता है और बाद में ढलती उम्र में वह चरित्रहीन हो जाती है इसीलिए मैंने उस समय कोई जिरह न की। मेरे सामने उषा के पति की तस्वीर आयी, जिसने उस दिन उषा को माफी दी और कोई जिरह न की, जब वह मेरे साथ अन्धेरी कोठरी में थी.........'

5.2.2.1.8. सच्चा झूठा प्रस्तुत कहानी दाम्पत्य जीवन में पैदा हो रहे अविश्वास और तनाव की अभिव्यक्ति के रूप में विकसित हुई है। विवाह से पूर्व प्रेमी-प्रेमिका रह चुके पति-पत्नी अपने मां-बाप को धोखा देकर मिलने के लिए झूठ बोला करते थे। दोनों ही अपने-आप को झूठ बोलने के लिए माहिर कहा करते थे। परन्तु अब विडम्बना यह है कि पत्नी की व्यस्तता को समझने की अपेक्षा पति को यही लग रहा है कि पत्नी झूठ बोलने की कला का इस्तेमाल कर रही है। जबकि वास्तविकता यह है पत्नी कलाकार है, बेस्ट ऐक्ट्रस चुनी गयी है, उसे रिहर्सल के कारण प्राय: देर हो जाती है। पति डाक्टर है नाइट ड्यूटी लगी होने के कारण वह दिन को पत्नी के साथ सैर करने जाना चाहता है, पिकनिक मनाना चाहता है परन्तु पत्नी घर पर नहीं मिलती, वह चिढ़ रहा है। कहानी में पति-पत्नी के बीच का यही तनाव चित्रित हुआ है। अच्छी कहानी है, मनोविश्लेषण का अच्छा उपयोग हुआ है।

मगर मेरे प्ले का क्या होगा कल तो उसका आखिरी रिहर्सल है। यदि मैं कल थियेटर न जाऊं तो बशीर नाराज हो जायेगा। अब तक की सारी मेहनत बेकार होगी। मैं झूठ बोल रही हूं? मगर तुम भी इसमें किसी समय दक्ष थे। दूध को पानी और पानी को दूध बनाना मुझे आता था या तुम्हें ?

उसने पत्नी की बात सुनी और जोरदार कहकहा मारा फिर गले लगाया। वह उसकी इन बातों से बिल्कुल मोम हो गया। बर्फ का जमा हुआ पत्थर एक दम पिघल गया।

दाम्पत्य प्रेम का औदात्य कहानी को उदात्त बना देता है, शिल्प संगठन ठीक है फिर भी वृथा विस्तार से बचा जा सकता था।

5.2.2.1.9. दलबदल-कहीं कहीं दुरूहता-दोष के बावजूद शिल्प और कथानक-गठन की दृष्टि से यह राजदान की काफी अच्छी कहानियों में से एक कही जा सकती है। नेताओं वाली दलबदलू प्रवृत्ति प्रेम के क्षेत्र में भी आ रही है, जिस पर लेखक ने तीखा व्यंग्य किया है। कहानी के बीच कहानी को जोड़ देने वाली तकनीक को अपनाते हुए दो वस्तु-स्थितियों की तुलना कर दी गई है। मोटी बदसूरत और बे- अक़्ल परन्तु अमीर बाप की बेटी के चंगुल में फंसे व्यक्ति की पीड़ा और चपरासी की बेटी अपनी पूर्व प्रेमिका के प्रति अपराध बोध तथा आत्म-प्रवंचना की अनुभूति की सशक्त अभिव्यक्ति प्रस्तुत कहानी का उद्देश्य है।

वह सोचता है, 'यदि यह अमीर बाप की लड़की न होती तो वह इसके पीछे इस तरह दरबदर न फिरता रहता। पैसों के सिवाय तो इसमें और कौन-सा आकर्षण है। न इसको अक्ल है न शक्ल......पैसों के लालच के कारण उसने अपनी हूर परी को छोड़ दिया, उस लड़की में

क्या कुछ नहीं था, सुन्दर शरीफ। किन्तु उसका दोष तो जरूर था वह एक चपरासी की लड़की थी...' उसने अपने अन्दर खोखलापन-सा महसूस किया। अपने और नेना की करतूतों में कोई फर्क नहीं दिखाई दी।'

उसने अपनी साथिन को देखा तो वह चौंक-सा गया। 'कहां ....अब कहां जायेंगे ?' .....'जहां आपकी मर्जी'......उसका उत्तर था। 'मैं चाहता हूं अब हम पहले की तरह अपनी अपनी राह पर वापस जाएं ', यह सुन कर उसे बहुत गुस्सा आया। उसका चेहरा तमतमाया 'क्या पहले दल बदल। अब फिर उसी दल में वापस जाने का इरादा है ?' उसने उसको इस तरह पकड़ा कि कहीं भाग न जाए.....टैक्सी रुकते ही उसको उसमें भर कर वह स्वयं उसके बगल में बैठ गई, ड्राईवर ने उसकी ओर आश्चर्य से देखा। उसने कहा 'फंस गया तो तड़पना क्या?'

5.2.2.1.10. खोयी चीज़ मधुर एहसास- कहानी में परिवार के उपेक्षित वृद्ध की व्यथा, उपेक्षा, अकेलेपन और अजनबियत का अच्छा चित्रण हुआ है, साथ-ही-साथ मोहभंग की प्रक्रिया का सशक्त चित्रण हुआ है। अस्सी वर्ष की सद्‌लक्ष्मी बेटों-बहुयों, पोते-पोतियों से भरापुरा सम्पन्न परिवार छोड़ कर मर जाती है, लोग सद्‌लक्ष्मी को सौभाग्यशाली समझते हैं। सद्‌लक्ष्मी का रंडुआ पति श्याम लाल भी शुरू-शुरू में दार्शनिकों जैसा व्यवहार करता है कि दुनिया आती-जाती है। परन्तु धीरे-धीरे वह अपने भरे-पुरे परिवार में अकेला पड़ता जाता है। इसी अकेलेपन की पीड़ा को कहानी में बुना गया है। अच्छी करुणा-प्रधान कहानी है।

उसने ऊपर से एक जोरदार कहकहा सुना.......प्यालियों के बजने की आवाज़ भी सुनाई दी.....यहां कोई पार्टी तो नहीं चल रही है......अब ये लोग मुझसे पूछते ही नहीं, जैसे मैं यहां का कोई नहीं......' श्याम लाल को आश्चर्य हुआ 'कौन-सी आपत्ति होती यदि मैं भी इनके साथ बातें करता'......इतने में ऊपर से एक बार फिर कहकहा सुनाई दिया...कोई स्त्री श्यामा से पूछ रही थी-'दरवाजे पर ये साहब कौन थे?' 'ये हमारे नौकर हैं। काम तो समय पर करते हैं, मगर दुर्भाग्य से नीम पागल हैं। ' श्याम लाल ने इन सभी बातों को ध्यान से सुना.....अपने कमरे में घुसकर दरवाज़ा बन्द किया....उसकी नज़र एकदम पत्नी की फोटो पर पड़ी-आंखों में अश्रुधारा बह निकली...उस समय उसको अपनी खोई हुई चीज़ का एहसास हो गया। वह 'पागल' शब्द सुनकर ही पागल हो गया....पागलों की तरह अपने जीवन साथी को कमरे में ढूंढने के लिए बेचैन हुआ। उसने फोटो को एक बार फिर सीने से लगा कर उसके कई चुम्बन ले लिए।

5.2.2.1.11. सौगात कहानी में व्यक्ति के जीवन की वास्तविकताओं को बच्चे की सहज जिज्ञासाओं, विद्रोह की वृत्ति और सत्यान्वेषण की आकांक्षा को बुनकर व्याख्यायित किया गया है। यहां बेकार चीज़ों के प्रति स्वाभाविक नकार की अनेक मिली जुली भावनाओं का सशक्त चित्रण हुआ है। कहानी में रहस्य और रोमांच से पूर्ण वातावरण को बुना गया है और बच्चे के आत्ममंथन, विवरणात्मक टिप्पणियों तथा स्मृति-चित्रण के सहारे कहानी का स्वरूप विकसित किया गया है।

कहानी सुगठित है, जिसमें रहस्यात्मक वातावरण की बुनाई और प्रतीकार्थ के विश्लेषण की रोचक चित्रण हुआ है। विवरणात्मक शैली की ठीक-ठाक कहानी है।

5.2.2.1.12. पराजय नपुंसक के रूप में प्रचारित कर दिए गए व्यक्ति की अन्तर्वेदना का यहां सशक्त चित्रण हुआ है। इसी दुष्प्रचार के कारण वह पागल-सा हो गया है, उसका विवाह भी नहीं हो पा रहा। उसकी गलती यह है कि उसने प्रणयनिवेदिता लड़की को बहन के रूप में चूमा और मन में उसे बहन मान लिया, उसके बार-बार के प्रणय-निवेदन की उपेक्षा-सी की है। ऐसी उपेक्षा के प्रतिकार के रूप में उसे नपुंसक प्रचारित कर दिया गया है। और जब वह अपना पुंस्तव प्रमाणित करने का यत्न करता है तो देर हो चुकी होती है। कहानी में मनोविश्लेषणपरक चरित्र-चित्रण हुआ है। इस कहानी को राजदान की श्रेष्ठ कहानियों में रखा जा सकता है।

उसका मेरे डेरे पर आना नित्य नियम बन गया। वह हर समय मेरा उत्साह बढ़ाती.....कमरे में अकेला होता तो वह अचानक मेरे सामने आ धमक पड़ती। यह मत समझिए साहब, मैं नहीं जानता था कि वह क्या चाहती थी । मुझे तो उसका अच्छा खासा ज्ञान था। किन्तु मेरे दिल में उसके प्रति श्रद्धा हो गयी थी कि मैं उसको छूना तक नहीं चाहता था......। अगले ही क्षण जब मैं अपने होंठ उसके लाल गालों पर रखने ही वाला था......वह एक बारगी घबरा गई....और सिर को झटका देकर अपना माथा मेरें होंठों के पास बढ़ाया........क्यों जी, इतने में सब कुछ भूल गये। यदि इस तरह पहले हुआ होता तो मैं भी समझती मर्द हैं। खैर.......इस समय याद रखो कि यदि बहन को चूमना है तो माथे पर ही....' मैं निढाल-सा होकर रह गया......इस समय मैंने पराजय स्वीकार की। इसी ने मुझे पागल बना दिया, वरना मैं पागल नहीं हूं।'

मुझे लगा कि मेरी आत्मा को किसी ने झुलस दिया , अहं को नष्ट कर दिया तथा व्यक्तित्व के परखचे उड़ा दिये.....उस समय मुझे क्या हो गया था। मुझ में एक प्रकार की पराजय भावना-सी क्यों उत्पन्न हो गई है, और मैं अपने आप को नंगा-सा महसूस करने लगा हूं....एक दम नंगा। .....यह मत समझिए कि मेरे मन में उसके प्रति एक भूख जग गई थी उसके शरीर को पाने की भूख। ऐसी कोई बात नहीं थी....नस-नस में आग-सी क्यों निकल गई।

काफी अच्छी कहानी है। नर-नारी के परस्पर सम्बन्ध केवल यौन-सम्बन्ध ही नहीं होते, परन्तु नारी शायद यह मानने को तैयार नहीं। कहानी के नायक का चरित्र-विकास मनोविश्लेषण के आधार पर काफी अच्छा हुआ है।

5.2.2.2. चेरी के फूल कहानी-संग्रह में अशोक जेरथ की 13 कहानियां संकलित हैं। 1980 ई० में प्रकाशित यह उनका पहला कहानी संग्रह हैं। इन कहानियों का विस्तृत मूल्यांकन 'शिवालिक क्षेत्र में हिन्दी कहानी का उद्‌भव और विकास, ग्रन्थ में किया जा चुका है, यहां इनका संक्षिप्त मूल्यांकन किया जा रहा है।

5.2.2.2.1. शालवीथी के घेरों में कहानी में स्कूल संस्थान से विदाई ले रहे व्यक्ति के अन्तर्मन में पनप रही अनुभूतियों और औपचारिकता के तीखा दंश को अभिव्यक्त किया गया है।

कहानी विदाई की औपचारिकता से आरम्भ होकर धीरे-धीरे छात्र-छात्राओं और अध्यापक के रिश्तों के समेटते हुए सहकर्मियों के परस्पर प्रणय और मूक अभ्यर्थना पर आ टिकी है।

पार्वती मुग्धा नायिका बन कर रह गई है और नायक स्वयं भी पार्वती के प्रति अपने आकर्षण के मूल्य को पहचान नहीं पा रहा। कहानी की भाषा में थोड़ा झोल-सा है।

5.2.2.2.2 **चीड़ें झुकती हैं** कहानी का बहुत सारा हिस्सा तो शरदोई और उसकी पत्नी सन्दली की मेहनत और मशक्कत तथा सन्दली के प्रति ठेकेदार के आकर्षण और शरदोई की कुढ़न को लेकर बुना गया है।

शरदोई के मन की प्रणयाकांक्षा, उस पर कर्ज का बोझ और ठेकदार की आंखों में बसी सन्दली की रूप छवि का अच्छा चित्रण हुआ है। बढ़िया कहानी है।

5.2.2.2.3 **धुंधवाते देवदार** सेनिटोरियम में पड़े मरीज़ की कहानी है, जो रोमानियत का पुट लिए हुए है, कहानी की भाषा में काव्यभाषा का टच दिया गया है, मरीज़ और डाक्टर के वार्तालाप में प्रकृति के बदलते मौसमों और वातावरण का वर्णन अच्छा हुआ है।

कहानी का मरीज़ रोमांटिक है, पीड़ा बोध से ग्रस्त है, डाक्टर उसकी इस रोमानियत पर ही आसक्त हो जाती है। वह भी रोमांटिक मुग्धा की स्थिति में है। साधारण कहानी है। दोनों के बीच कोई ऐसा मुखर सेतु नहीं जो कहानी को सोद्देश्य बना सके। भाषा और वातावरण के प्रति जिज्ञासा कहीं-कहीं प्रतीकात्मक हो गयी है।

5.2.2.2.4 **समाप्ति से पहले** कहानी में मृत्यु के करीब पहुंची लड़की के खिलंदड़ेपन को कथ्य बनाया गया है। कहानी में नेरेटर ने कुछ टिप्पणियों का सहारा लिया है। संस्मरण और यात्रिका के रूप में शुरू हुई कहानी धीरे-धीरे चरमोत्कर्ष पर पहुंच गई है। अच्छी कहानी है।

5.2.2.2.5 **जख़्म** वातावरण-प्रधान कहानी है जिसमें अभावग्रस्त मन:स्थिति को चित्रित करने का भरसक यत्न हुआ है। कहीं-कहीं कान्ट्रास्ट की शैली में।

अंत: में कहानी प्रतीकात्मक हो गई है। वातावरण धीरे-धीरे आदमी की अभानग्रस्त मानसिकता को उघाड़ता चलता है, अच्छी कहानी है, आदमी के अन्तर्मन का अच्छा चित्रण हुआ है। शब्दों की कमखर्ची की गई है।

5.2.2.2.6 **एक नये सफर की शुरुआत** कहानी प्रसव-पीड़ा से कराह रही स्त्री और उसके प्रति उसके पति की सहानुभूति को चित्रित करती है। निर्धनता का तीखा दंश कहानी के कथानक के विकास का कारण बना है। कहानी में नर्सों और दाइयों के लालच पर व्यंग्य किया गया है, निर्धन व्यक्ति की विवशता के प्रति करुणा है, सतमाहे बच्चे की पैदाइश पर स्त्री को दोष देने की वृत्ति पर चोट है। कुल मिलाकर कहानी यह संदेश देती है कि बच्चा पैदा करना आसान है, पालन पोषण कठिन है। बच्चे का मुंह जूठा कराने में अभिभावकों के आह्लाद का अच्छा चित्रण हुआ है। कुल मिला कर कहानी पारिवारिक जीवन और नियोजित परिवार की आकांक्षा के बीच के द्वन्द्व की बुनाई द्वारा बुनी गई है। भाषा, भाव और व्यंग्य की दृष्टि से कहानी ठीक ही है।

5.2.2.2.7 **जम्बोला** कहानी में मामूली भिक्षा के बदले अपने आश्रयदाताओं के प्रति अपनत्व और उनकी सुरक्षा के प्रति कर्त्तव्यबोध के कारण जान तक की बाज़ी लगा देने वाले

अजनबी व्यक्ति का रेखाचित्र खींचा गया है। कहानी सोद्देश्य है, कहानी की भाषा भावपूर्ण है। अच्छी छोटी-सी परन्तु सशक्त चरित्र-प्रधान कहानी है।

5.2.2.2.8 **चेरी के फूल** कहानी प्राकृतिक सौंदर्य के बीच बकरवालों के जीवन के सुख-दुःख की बुनाई की गई है। रशीद बकरवाल है, बकरियां पाल कर जीवन बसर करता है परन्तु विडम्बना यह है कि पाकिस्तान के हमलों से उनके जानवर मारे जाते हैं। पाकिस्तानियों द्वारा खेतों में दबाए बमों से रशीद के एक भाई के हाथ उड़ गए हैं और दूसरा भाई गुस्से में बम को परख रहा था कि उड़ गया। एक जिंदा लाश और दूसरी मुर्दा लाश उठाकर कबीले में पहुंचा था और जीवित भाई के मसनूई हाथ लगवाने के लिए पूना ले जाने के लिए पैसा इकट्ठा कर रहा था। कहानी उत्कृष्ट है। वातावरण की बुनावट, बकरवालों की पीड़ा और उनके शान्त अहिंसक जीवन की त्रासदियों का अच्छा चित्रण हुआ और सीमान्त प्रदेश में रह कर चेरी के सफेद फूलों को अपने रक्त से सींच कर फलों को लाल करने की कोशिश का प्रतीकात्मक उपयोग हृदयाग्रही है। लोक जीवन को चित्रित करने वाली सशक्त कहानी है, जिसमें लेखक अपनी तटस्थता और मदद न कर पाने की अपनी विवशता पर भी व्यंग्य-सा करता है।

5.2.2.2.9 **जीवन** एक व्यंग्य प्रधान कहानी है जिसमें लोक तत्वों और लोककथा शैली को अपनाया गया है। जीवन एक बूढ़ा आदमी है जिसमें नाम के सिवा जीवन के लक्षण कम ही थे।

कहानी साधारण है, भाव और उद्देश्य अमुखर रह गया है। बात बन नहीं पाई। हां, शैली को विकसित करके अच्छी कहानी की संभावना पैदा हो सकती थी।

5.2.2.2.10 **एक बिखरी हुई शाम** समुद्र किनारे कोणार्क मंदिर के आस-पास के वातावरण से आरम्भ होती है। लड़की के इन्विटेशन और नेरेटर के पौरुप के बीच के द्वन्द्व को बुना गया है। लड़की की कोमल उंगलियां उसके खुरदरे हाथों में है और वह विह्वल हुआ जा रहा है, भीतरी स्खलन और बाहरी नियंत्रण के द्वन्द्व में फंसे नेरेटर का सशक्त चित्रण किया गया है।

यहां नेरेटर की मनःस्थिति का चित्रण बड़ा महत्वपूर्ण है। जो चाह कर भी पर्यटक लड़की के Spell से नहीं छूट पा रहा परन्तु स्वदेशी पर्यटकों को अपनी ओर देखते हुए लज्जा का अनुभव भी कर रहा है। कहानी नैसर्गिक आकर्षण और सामाजिकता तथा नैतिकताजन्य विकर्षण के द्वन्द्व को लेकर बुनी गई है। भाषा, वातावरण और अतीत-स्मरण तथा सामायिक संवादों के कारण कहानी अच्छी बन पाई है।

5.2.2.2.11 **कांटे** विवाह पूर्व के प्रणय सम्बन्धों की कहानी है, संयोग ही है कि दोनों पूर्व प्रेमी सात वर्ष बाद मिल जाते हैं और पाण्डवों के किले में मानो महाभारतीय अतीत जागृत हो उठता है। कहानी का नेरेटर स्वयं को कभी अर्जुन, कभी भीम समझता है और अपनी पूर्व प्रेमिका को द्रोपदी। नेरेटर अतीत की प्रणयलीलाओं का स्मरण करता है और मिलन के आनन्दातिरेक को चाह कर भी भोग नहीं पा रहा जबकि आशु आनन्दातिरेक में खोई भाव

विभोर हैं, वस्तुत: दोनों के मिलन के बीच कांटे हैं, अवरोध हैं जिन्हें हटाना उनके वश का नहीं। साधारण प्रेम कहानी है, नैतिक अनैतिकता के झमेले में पड़े बगैर देखें तो कहानी के बीच कहानी की शैली को अपना कर कथ्य को उलझा सा दिया गया है जो कहानी को साधारण-सा बना गया है।

5.2.2.2.12 **कितने हाथ** अनकहे प्रेम की साधारण कहानी है। कहानी का नेरेटर अतीत में खोया है। कई बार उससे प्रणय निवेदन करना चाहता था परन्तु कुछ कह न सका था। एक तरफी प्रेम की साधारण कहानी है, नैतिकता अनैतिकता की अपेक्षा आदमी के अन्तरमन को अभिव्यक्ति करती हुई!

5.2.2.2.13 **अपराजेय** कहानी में भोलेभाले पंचू का केरिकेचर देने का सफल यत्न हुआ है। पंचू की जिज्ञासा है कि लेखक (नेरेटर) उसके घराट, उसके अपने मां-बाप, उसकी अपनी कहानी लिखे और वह उसे अपनी कहानी सुनाने का वादा करता है,उसे चुनौती भी देता है कि नेरेटर वह सब नहीं लिख सकता जो पंचू ने देखा है। पंचू की संघर्ष-चेतना का सुंदर चित्रण हुआ है।

5.2.2.3. **कलाकार के आंसू** राजभल्ला के 1981 में प्रकाशित कहानी-संग्रह 'कलाकार के आंसू' में 17 कहानियां संकलित हैं, जो अधिकतर 'ये तस्वीरें' की भाव भूमि पर ही स्थित हैं। सामाजिक बुराइयों और कुरीतियों पर व्यंग्य और चोट के स्वर ही यहां भी मुखरित हुई हैं।' शैली भी खण्डन्वयन की है। इन कहानियों का मूल्यांकन प्रस्तुत है।

5.2.2.3.1 **कलाकार के आंसू** दाम्पत्य जीवन के तनाव की कहानी है। कलाकार सुनील का अपने नौकर सुच्चा सिंह के प्रति व्यवहार दयालु और मानवीयतापूर्ण है, अपने बच्चों के प्रति भी वह चिंतित रहता है, मां से मिली सीख के अनुसार का वह हर दु:खी आदमी के आंसू पोंछने के लिए तत्पर परन्तु अपनी कला साधना में व्यावहारिक जीवन को भूला रहता है। उसकी पत्नी रेखा लखपति बाप की बेटी है, दंभी है, उसे लगता है कि सुनील घर की जिम्मेदारी को भूलकर फूलों, पत्तियों और भिखमंगों के चेहरे धोने में लगा रहता है जबकि घर का चेहरा वैसा ही गंदा है। कलाकार अपनी इस जीवन-स्थिति और पत्नी से अपने अनबोलेपन के कारण को समझता है परन्तु यह प्रश्न बना ही रहता है कि कलाकार के आंसू कौन पोंछेगा।

अच्छी कहानी है, कलाकार की पीड़ा, जीवन-त्रासदी और दाम्पत्य के तनाव और साहित्यिक संकल्प का अच्छा चित्रण हुआ है परन्तु कथ्य यह है कि कलाकार की साधना और उसकी जीवन की जरूरतों के प्रति किसी को कोई चिन्ता नहीं। कहानी की भाषा और स्थितियों के फ्लैशज मोहक हैं परन्तु कथ्य दबा रह गया है जो अंतिम पंक्ति में ही ध्वनित होता है और कहानी को चमत्कारी अंत प्रदान करता है।

5.2.2.3.2 **किरायेदार** कहानी में फैमिली प्लान न करके चलने वाले ऐसे व्यक्ति की जीवन त्रासदी का कारुणिक चित्रण है, जो पिछले दस वर्षों में सात मकान बदल चुका है, कोई मकान मालिक उसे अधिक दिन मकान में टिकने नहीं देता क्योंकि उसके बच्चे 'गए गुज़रों को

बिना गिने भी मान हैं।' मकान मालिक उसकी विवशता का लाभ उठाते हैं, किराया एडवांस ले लेते हैं और धौंस भी दिखाते हैं। वह बेचारा थोड़ी सी तनख्वाह में घर की मामूली जरूरतें पूरी नहीं कर पा रहा, महीने बाद ही वह रिटायर हो रहा है तो अब पेन्शन से क्या होगा।

वह दुकान खोल लेने की सोचता है परन्तु दुकान के लिए पूंजी चाहिए। फिर एक चमत्कार-सा होता है। उसकी बुद्धि में विचार की कौंध-सी होती है और वह कफ़न की दुकान खोल लेता है।

जीवन की अनेक समस्याओं से घिरे लोग कफन के नाम पर सस्ता कपड़ा खरीद कर अपना तन ढांप रहे हैं, दुकान का लाभांश दिन प्रति दिन बढ़ता जाता है, अब वह इतना सम्पन्न है कि घर की जरूरतें आराम से पूरी कर लेता है।

कहानी की भाषा, व्यंग्य का तीखापन और 'कम परिवार सुखी परिवार' का नारा बड़े कौशल से बुनने के साथ-साथ कहानी व्यंग्यात्मक होती जाती है और कफन की दुकान खुलने और लाभांश के बढ़ते जाने के साथ-साथ कहानी चरमोत्कर्ष पर पहुंचती है। बड़ी सशक्त कहानी है, व्यंग्य का तीखापन आदमी को तिलमिला उठने के लिए मजबूर कर देता है, अस्वाभाविकता दोष भी व्यंग्य की तीव्रता में दब जाता है। अच्छी कहानी है।

5.2.2.3.3 पीली लड़की कहानी में छोटी-सी आयु में ब्याह दी जाने वाली लड़की की मनः स्थितियों का सशक्त चित्रण किया गया है। लड़की में अभी बचपन की उत्सुकता है, मस्ती है, चंचलता है, जीवन की अनेक झलकियों को आंख भर कर देखने की लालसा है परन्तु उसे बालपन में ही ब्याह दिया गया है और इस बहाने मर्यादा के बंधन डालकर उसकी मस्ती चुरा कर उसकी चंचलता की हत्या कर दी गई है।

कहानी अच्छी है। कहानी के अन्त में कथ्य उभरता है 'कौन बोले ? कौन दे जवाब ? शायद सच्चाई यह है कि हम सबने मिल जुल कर उसकी सारी मस्ती चुरा ली है, रूप चुरा लिया और बदले में दे दिया पीला रंग--जो रंग बसंत का नहीं, पतझड़ के झड़ने वाले पत्ते का है शायद।'

5.2.2.3.4 जम्मू वाले समधी कहानी में लेखिका ने मृत्यु पर किए जाने वाले स्यापे और औरतों के रोने-धोने के ढोंग और न रो सकने वाली बहुओं को मिलने वाले उपालम्भों का व्यंग्यपरक चित्रण किया है

कहानी व्यंग्यात्मक है, लेखिका ने अपने आप को दुहराया भी है और व्यंग्य कहीं कहीं व्यंग्य न रह कर आक्रोश की स्थिति पर पहुंच गया है। कहानी में एक साथ ही बहुत कुछ कह देने की ललक के कारण कहानी की प्रभावान्विति भटक गयी है और साधारण व्यंग्यात्मक कथानक मात्र बन कर रह गई है। बेटी की ससुराल न जाने का उपालम्भ 500 रु० खर्चे करके दूर कर दिया जाता है।

5.2.2.3.5 मलबे के नीचे कहानी में अविवाहित लड़की का दर्द पिरोया गया है। मालती पढ़ी लिखी लड़की है, स्त्री पुरुष में बराबरी के दर्जे को मानती है जबकि यह भी जानती

है कि यह दर्जा बराबर है नहीं, पढ़ लिख कर भी आदमी अपनी असल कीमत नहीं आंक पाता। मालती अन्तर्द्वन्द्व में ग्रस्त है, उसे नींद नहीं आ रही, सामाजिक कुरीतियों से वह टकरा नहीं पा रही है। तभी उसे अपने प्रेमी विशोक की छाया-सी दिखती है, पुरुषाकार की छाया देखते ही दिल की धड़कन तेज़ हो गई है परन्तु यहां भी बंधन हैं। वह जानती है कि कालाधन कोठरियों से नहीं निकाला जा सकता न ही स्त्री को बराबर का दर्जा मिल सकता है, बहस में चाहे उसे इनाम कितने भी मिल जाएं। इतने में खिड़की के रास्ते विशोक भीतर आ जाता है और वही विशोक जो प्रेम की डींगें हांकता रहा है। दहेज न मिलने की शंका के कारण लाल पीला हो उठा है। दहेज के लालच में काली कलूटी मालती उसे अप्सरा दिखती थी परन्तु अब वह चुपचाप चला गया है। मालती जान जाती है कि रुपए पैसे से खरीदा गया साथी वास्तविक साथी नहीं हो सकता।

कहानी में सामाजिक कुरीतियों को मलबे की दीवारें कहा गया है, जो टूटती गिरती हैं परन्तु फिर इन्हीं दीवारों की मिट्टी से कुछ नयी दीवारें खड़ी कर ली जाती हैं। दहेज ऐसी ही कुरीति है। कहानी अन्तर्द्वन्द्व, अतीत स्मरण और वर्तमान की घटनाओं को परस्पर पिरो कर बुन ली गई है। कुल मिलाकर भाषा और कथ्य की दृष्टि से साधारण कहानी है, कहीं-कहीं तीखा व्यंग्य है।

5.2.2.3.6 पराग चाचा अच्छी आदर्शप्रेरक कहानी है। पराग चाचा लावारिस पड़ी नवजात बच्ची को अपने साथ ले आता है, उसे पाल पोसकर बड़ा करता है। जब बच्ची बिंदु की शादी का समय आता है तो पराग चाचा के मित्र बिंदु के गुणशील की प्रशंसा तो करते हैं परन्तु उसे अपनी बहु बनाने के नाम पर चुप रह जाते हैं। फिर पराग चाचा बिंदु के विवाह के लिए विज्ञापन देता है और एक अच्छा समझदार वर मिल भी जाता है।

कहानी में कहीं-कहीं अच्छे और तीखे वाक्य भरे पड़े हैं जो धर्म, जाति और नाम के आडम्बर पर चोट करते हैं। लेखिका ने यतीम बच्चों के प्रति प्रेम को महत्त्व दिया है और उन व्यभिचारी स्त्री पुरुषों पर करारी चोट की है जो मौज मस्ती करते हैं परन्तु परिणाम भोगने के नाम पर कतरा जाते हैं और जो पाप-पुण्य की बातें करते हैं परन्तु वक्त आने पर कतरा जाते हैं। कहानी में पराग चाचा का चरित्र काफी उदात्त है और मानवीय भी, कहानी का गठन थोड़ा कमज़ोर है।

5.2.2.3.7 रिश्ते नाते कहानी में विवाहित स्त्री अपने मायके के रिश्तों के फीके पड़ते चले जाने की पीड़ा से त्रस्त है। वह डैडी की मृत्यु के बाद मां की बदतर होती जा रही हालत का स्मरण करती है कि विवाहित भाई अपनी बीवी के कारण चाहकर भी कुछ नहीं कर पाया और अब स्थिति यह है कि मायके की गलियां, दहलीज़ों और दालानों को नज़र भर देखने का हुक्म ही नहीं, निरंतर जीवन-संघर्ष में मां बाप को भौतिक सम्पदा तो मिली परन्तु बेटे का प्यार और सेवा नहीं मिले।

मां-बाप की इसी व्यथा का स्मरण करती हुई विवाहित बेटी की मनोव्यथा अभिव्यक्त हुई है और माना गया है कि रिश्ते खून के ही नहीं होते, उन्हें जिंदा रखने के लिए स्नेह, श्रद्धा, सम्मान और सेवा-भाव आदि अन्य बहुत-सी चीज़ें होती हैं। फ्लैश के सहारे स्मृतियों को पिरोते हुए कहानी विकसित की गई है। कहानी मानव-जीवन के बदल रहे मानदण्डों पर चोट करती है। पारिवारिक विघटन का साधारण चित्रण ही कहानी का टैक्सचर है।

5.2.2.3.8 कम्बख्त पैसा कहानी में लेखिका ने अन्तर्द्वन्द्व वाला शिल्प अपनाया है। पैसे कमाने की होड़ ने आदमी को मजबूर, लाचार और मशीनी पुर्जा बना कर रख दिया है, पैसे के कारण लोगों ने अपने आप को अपंग कर लिया है, पैसे के कारण आदमी का अवमूल्यन हो रहा है, जीवन की सच्चाई को समझने के लिए पैसे को मिल रहे महत्व को कम करना बहुत जरूरी है, कम्बखत पैसे ने कइयों की ममता को रुलाया है, कई सम्बंधों को तोड़ा है और कई घरों को उजाड़ा भी है उसे जरूरत से ज्यादा महत्व देना दरअसल इन्सान की अपनी कीमत घटाना है।

कुल मिला कर साधारण सामाजिक कहानी है जिसमें भाई के अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण टिप्पणियों के रूप में हुआ है। भाषा और शैली भी साधारण है।

5.2.2.3.9 चादर का बैनामा कहानी में तेज तर्रार औरत की व्यथा-कथा को बुना गया है। मालती का पति भागवत सीधा सरल परन्तु प्रेमी पति है, जो मालती को पसन्द नहीं। अपनी उपेक्षा के कारण भागवत उसे छोड़ देता है, उसके बच्चे भी उसी को दे देता है क्योंकि वह किसी कानूनी झगड़े में नहीं पड़ना चाहता। मालती केशव से दूसरा विवाह कर लेती है जो जल्दी ही मालती का शरीर बेचना शुरु कर देता है। वह सौ-सौ और दस-दस के नोटों के बदले बीमार हो जाती है और उसको चाहने वाले धीरे-धीरे उससे दूर होते जाते हैं, मृत्यु शैय्या पर पड़ी वह अब पश्चातापग्रस्त है और अपनी तुनक मिजाज़ी को कोस रही है कि इसी के कारण उसने अपने सहानुभूतिप्रवण और प्रेमी पति भागवत को खो दिया। उसे चादर का यह बैनामा बहुत महंगा पड़ा।

कहानी में पथ-भ्रष्ट हुई औरत के पश्चाताप का चित्रण हुआ है। परन्तु कहानी काफी सीधी सपाट और साधारण है, अन्तर्द्वन्द्व की अपेक्षा टिप्पणियों और अतीत की स्मृतियों के रूप में कहानी का कथ्य विकसित किया गया है।

5.2.2.3.10 अमानत कहानी में बाबा सावनमल अपना अधिक समय पूजा, पाठ और नित्यनेम में व्यतीत करता है परन्तु उसकी बहुरानी उस के प्रवचन और व्यवहार के बीच के अन्तर्विरोध को देखकर हैरान है। पूजा पाठ और धर्मनिष्ठा के कारण ईमानदार कहलाने वाले घराने में पढ़ी लिखी और हर काम में माहिर दो बच्चों की मां रानी पिछले सात वर्षों से ताने तिश्ने सुन रही है। उसे भी तो अमानत कह कर ही ससुराल लाया गया था परन्तु पिता ससुर को अधिक धन-दहेज न दे सके थे, इसी कारण पिछले सात सालों से वह घुट घुट कर जी रही है। जब से उसकी ननद दहेज के कारण अपनी ससुराल में दुखी है और घुट-घुट कर जी रही है

तभी से चाचा जी भक्ति-अर्चना की आड़ में वस्तुस्थिति से पलायन कर रहे हैं जबकि वह स्वयं भी लालची मनोवृत्ति के हैं। कहानी सामाजिक बगड़ को अच्छी तरह प्रकट कर देती है परन्तु अधिक सुगठित नहीं बन पाई।

5.2.2.311 रेवती कहानी में नारी पर पुरुष जाति के अत्याचारों का चित्रण किया गया है। रेवती नर पशुओं की वासनामयी मनोवृत्ति की शिकार हो कर रह गई है और कथा का नेरेटर उसकी सिसकियों को सुनता हुआ उसके अतीत की बुनाई करता है।

राघव बहुत दिनों से दूर है और रेवती मां बनने वाली है, उसके मन में बार-बार आता है 'राघव जिसका सम्बंध मेरे साथ हमेशा ही पेशगी किस्त देकर खरीदी गई जड़ वस्तु से अधिक नहीं रहा, उसे कैसे यकीन होगा कि मेरे शरीर पर बढ़ती छाया उसी की करतूत का फल है। दरअसल लड़ते झगड़ते, शराब के नशे में धुत्त उसे पता ही कब चलता है कि मैं क्या कर रहा हूं?'

'प्रो॰ साहब अगर ममता का पुतला मेरे भीतर छिपा न होता तो मैं आपको बता देती कि प्रोफैसरी के सम्मानित धन्धे में कब तक आप सम्मानित रह सकेंगे। ...मैं विवाह से पूर्व भी मजबूर थी, राघव की पत्नी बनकर भी और आप जैसे नर पशुओं की किरायेदार बन कर भी।'

'हे राम! औरत भी क्या है! प्रोफैसर साहब की नीयत मेरे प्रति साफ नहीं, वे भी भूखे भेड़िए की तरह ललचाई नज़र मुझ पर लगाए बैठे हैं, राघव तेरी संशयालु तबीयत ने उतना ही अनर्थ कर डाला जितना तुम्हारी अनुपस्थिति में प्रोफैसर साहब की नापाक मनोवृत्ति ने। क्या कहूं-तुम सभी एक से हो!'

कहानी में नेरेटर की टिप्पणियां और रेवती का अन्तर्मन परस्पर घुल मिल गए हैं और प्रभाव की अन्विति टूट रही है। सशक्त कथ्य उठाने के बावजूद गठन की दृष्टि से कहानी कमज़ोर रह गई है।

5.2.2.3.12 सम्बंधों का त्रिकोण कहानी में लेखिका ने आधुनिक परिवारों में दिन-प्रति-दिन उपेक्षित होते जा रहे बुजुर्गों की व्यथा-कथा को कहा है। सासाराम रिटायर्ड तहसीलदार है परन्तु बूढ़ा है, बहू की पकाई रोटी पर ही जी रहा है, काम उससे होता नहीं। बहू माधवी पढ़ी-लिखी नौकरी पेशा औरत है और नौकरी का रुआब भी जमाती है। सासाराम और उसकी पत्नी राधा दोनों अकेले पड़ गए हैं, उपेक्षित हैं, चार-चार बेटों के बावजूद अकेले हैं। बहू माधवी उनसे बातचीत न करके पति रणधीर के मित्र कौशल से बातचीत करने में संतुष्टि का अनुभव करती है।

अंत तक पहुंचते -पहुंचते कहानी बड़ा तीखा व्यंग्य बन जाती है जिसमें सभी सम्बंध तिकोने बनते जा रहे हैं। रिंकु को अपनी मम्मी माधवी का भरपूर प्यार मिला हुआ है परन्तु उसकी कशिश दादी मां के लिए अधिक है। रणधीर माधवी के लिए जान दे दे पर माधवी को कौशल से राहत मिल रही है। हम दोनों अलग थलग पर हमारा ध्यान रणधीर की ओर ही.....' इन्हीं ख्यालों में डूबे तहसीलदार सासाराम का देहान्त हो जाता है।

कहानी का व्यंग्य यह है कि मां-बाप बच्चे का अनिष्ट नहीं सोचते परन्तु बच्चे उन्हें परमानेन्ट मेहमान समझ कर उपेक्षा करते हैं, उनकी मृत्यु पर खुश होते हैं कि बापू आखिर कर ही क्या रहे थे, जबकि मालदारी, तहसीलदारी और फिर चौकीदारी तक सासाराम ने की थी। दादी और पोती के परस्पर प्रेम का चित्रण गैर जरूरी तो नहीं फिर भी कहानी के प्रभाव के बिखेर देता है। साधारण कहानी है। कथावाचक की टिप्पणियां भी कहानी को अतिरिक्त गरिमा नहीं देतीं।

5.2.2.3.13 और यह तीसरी भीड़ फैंटेसी शैली में लिखी असफल कहानी है। कथ्य यह है कि घटना की गंभीरता का अनुमान व्यक्ति के रिश्तों और माहौल पर निर्भर होता है। दुर्घटनाग्रस्त युवक को पुलिस हस्पताल में भरती कर देती है, किसी को पता नहीं कि दुर्घटनाग्रस्त आदमी कौन है, ओह् कितना कच्चापन है दुनिया के सम्बंधों में ! कहानी का यही कथ्य है परन्तु इसे अभिव्यक्त करने के लिए जो कहानी कही गई है वह कहानी बन नहीं पाई।

सतीश ट्रैजिक फिल्म और ट्रेजिक दुर्घटना का स्मरण नहीं करना चाहता, तभी टैलीग्राम मिलता है कि कमल सफदर जंग के निकट घटी दुर्घटना में बहुत अधिक घायल हो गया है। घर में कुहराम-सा मच जाता है। अनेक मनौतियां मनाते हुए सतीश, भाभी और मां तीनों हस्पताल की ओर चल पड़ते हैं परन्तु अनहोनी होकर रहती है और सभी के चेहरे फीके पड़ जाते हैं।

कहानी फ्लैशज में कही गई है, साधारण कहानी है, फैंटेसी शिल्प के कारण कमज़ोर पड़ गई है।

5.2.2.3.14 आधा चाँद एक प्रेम कहानी है। कहानी का नेरेटर अतीत का स्मरण कर रहा है, 'जीवन में कभी किसी से प्यार नहीं किया, सिवा इसके, फिर मेरे साथ यह छलना कैसी?' उसका मानसिक ताप कम नहीं हो रहा, वह आत्ममंथनग्रस्त है और उन सभी स्थलों पर जाता है जहां वे गए होते हैं और वह अपनी भावनाओं से लड़ता फिरता है परन्तु अंततः इसी निष्कर्ष पर पहुंचता है कि अब शेष जिन्दगी आधे चांद के सहारे ही काटनी है, ऐसा न हो कि पूरे चाँद की चाह आधे चांद को भी छीन ले। साधारण प्रेम कहानी है जो अमुखर रह गई है। बात पूरी बन नहीं पाई, मात्र संस्मरण-सा बन कर रह गई है।

5.2.2.3.15 परदेसी एक विरहिन औरत की कहानी है जो केवल तीन रातें अपने प्रेमी के साथ बिता सकी है और उसके बच्चे की मां बन गई है। अम्बी अतीत में खोई हुई है, प्रणय के क्षण मुरझा गए हैं, प्रेम के क्षणों में दोनों के होंठ मौन थे फिर भी दोनों परस्पर एक दूसरे का सहारा बने हुए थे, गांव वालों की निगाह में अम्बी उसकी भाभी थी परन्तु उसकी निगाह में अम्बी उसके दोस्त की पत्नी थी, पति के न रहने के चौदह वर्ष बाद वह उसकी मुट्ठी भर राख गर्म रखने के लिए पहाड़ों को चीरता, हिंसक जानवरों से भिड़ता हुआ आया था और उनकी जिन्दगियां परस्पर जुड़ गई थीं।

अम्बी को इतने जोर का दर्द हुआ कि अनेक पर्वतों, जंगलों और दरियाओं को चीरता हुआ वह दर्द उस से पहले ही दर्रे को पार कर गया था। आज ये सुब्कियां उस अम्बी की थीं जो

बरसों बाद मां बनेगी! ये सुब्कियां उसके लिए भी...... जिसने इस नए मेहमान की खातिर आकाश पाताल एक किया, परन्तु कुछ भी न पाकर एक दिन वह अपनी मुट्ठी भर राख अम्बी को देकर सदा सदा के लिए इस दुनिया से चल पड़ा था। .... फिर उसे तार मिला था कि परदेसी नहीं रहा..... सैनिक जीवन बड़ा विचित्र होता है....... जिसके इन्तजार में अम्बी ने रात दिन एक कर दिया था। वह रात की लड़ाई में माथे और टांग पर गोली लगने से शहीद हो गया था।

कहानी में बिखराव और कवित्व अधिक है, सीधी सादे ढंग से कही हुई कहानी अधिक प्रभावशाली हो सकती थी। नैतिक अनैतिक के झमेले को भूल जाएं तो, विधवा से सधवा और फिर विधवा बनी स्त्री की कहानी अच्छी है।

5.2.2.3.16 कब तक कहानी में पीढ़ियों के अन्तराल का चित्रण हुआ है। लाला रामदयाल आधुनिकता, फैशन और नएपन के विरुद्ध है जबकि बच्चों में लाला जी के प्रति विद्रोह है, परन्तु लाला रामदयाल इस सबसे बेखबर हैं, वह बढ़ती महंगाई में बच्चों के फैशन पूरे नहीं कर पा रहे, इसी कारण उनकी आवाज़ में क्रोध, आवेश, अधिकार और अहं का मिश्रण था। वह मुहल्ले भर में अपने दकियानूसी ख्यालों के कारण मशहूर थे। वह अपने बच्चों को फिज़ूलखर्ची से रोके रखते हैं, उनके शौक को दबाए रखते हैं इसी कारण घर में तनाव बना रहता है और आधुनिकता की आलोचना होती रहती है. बच्चों की भावात्मक इच्छाएं, आकांक्षाएं और शौक मार दिए जा रहे हैं, घर मरुस्थल में निर्झर की कल्पना नहीं बल्कि नारकीय नाटक का रंग-मंच बन कर रह गया है। अंतत: बीवी ही उन्हें समझाती है कि बच्चे अभी तो सब मान रहे हैं, सह रहे हैं, बड़े होकर विद्रोही हो जाएंगे तो ? अंतत: रामदयाल भी अपने स्वभाव को बदल देते हैं। साधारण पारिवारिक कहानी है। भाषा ठीक- ठाक है।

5.2.2.3.17 आंसू कहानी 'कोनों में सिमटा' अलबम शीर्षक से पहले भी प्रकाशित हो चुकी है। कहानी में पुरुष के अहं से पीड़ित स्त्री की जीवन- व्यथा को चित्रित किया गया है। शंकर सीता जैसी पत्नी पाकर भी संतुष्ट नहीं, 'बीस वर्षों से वह उथले गंदले पानी से अपनी प्यास बुझाने की चेष्टा करता रहा है, और अब दोनों के दाम्पत्य में एक तनाव और अजनबियत घिर आई है, प्यार की अपेक्षा कर्त्तव्यबोध के नाते वे परस्पर साथ हैं। 'औरत का मतलब पुरुष को बाइज्जत जिन्दगी देना होता है-बताओ तुमने ऐसा सब किया?' सीता ने भी उसके अहं पर चोट की है, 'कब किसी की वासना ने उसे बाइज्जत जीने को कहा?' और अंह पर चोट खाया शंकर उसे घर से निकाल देता है। विडम्बना यह है कि शारीरिक वासना और अंह का टकराव ही दोनों के जीवन में शेष रह गया है।

औरत जाति पर हो रहे अत्याचार की कहानी है परन्तु न अत्याचार का कारण स्पष्ट है न रूप ही। कहानी में दो पात्रों की एकांगी सोच को समानान्तर दूरी पर रखकर कथ्य बुना गया है परन्तु बात बन नहीं पाई।

राजभल्ला की इन सभी कहानियों में स्त्री जाति की पीड़ा,सामाजिक अन्याय और दु:ख-त्रास को चित्रित किया गया है। अनुभव और अनुभूति का क्षेत्र काफी विस्तृत है परन्तु

कहानी प्रभावान्विति की अपेक्षा टैक्सचर की बुनाई ही करती है। स्वर व्यंग्यात्मक है।

5.2.2.4 अरथी हरिकृष्ण कौल के 1981 ई० में प्रकाशित कहानी-संग्रह 'अरथी' में कुल 12 कहानियां हैं जिनमें से 'गुलमोहर', 'टोपी', 'गर्दिश के दिन' आदि 'शीराज़ा' में पूर्व प्रकाशित हैं। जिनका मूल्यांकन किया जा चुका है इनके अतिरिक्त 'अरथी' 'यह साहब वह साहब', 'राग-विराग', 'एक नंगी कहानी', 'शॉपिंग' आदि कहानियां फ्लैप के अनुसार सुपरिचित पत्रिकाओं में प्रकाशित होकर चर्चित हुई हैं। इन कहानियों का मूल्यांकन प्रस्तुत है, विस्तृत मूल्यांकन 'शिवालिक क्षेत्र में हिन्दी कहानी का उद्भव और विकास ग्रन्थ में देखें।

5.2.2.4.1 अरथी कहानी में जीवनगत विसंगतियों, बेकारी और अलगाव बोध से उपजी पीड़ाओं का पुट देकर मानवमूल्य और अपनत्व की भावना में पैदा हो रही दरारों पर व्यंग्य किया गया है। कहानी की भाषा में दोस्ताना खुलापन कहीं-कहीं फक्कड़पन लिए हुए है। दोस्तों की बातें भी ममत्वहीनता को ही प्रदर्शित करती हैं, देख लेना घर बेच कर पत्ते ही खेलेगा......उधर पैडरो उसे की मन:स्थिति भी विसंगति और अलगावजन्य अकेलेपन को ही व्यक्त करती है, वह मरी हुई मां को देखकर न रोया न चिल्लाया और मित्रों को मां की मृत्यु की सूचना देने चला गया। आज मां मरी और आज ही यह रस्सी भी टूटी, अब वह आज़ाद था। हर प्रकार से आज़ाद। पैडरों के मन की सम्बंधजन्य तिक्तता का अच्छा चित्रण हुआ है। उसके मित्र भी इसी तिक्तता से भरे हुए हैं। वे भी स्थिति को गंभीरता से नहीं लेते।

अगंभीरता को लेकर चली समूची कहानी में मानव-जीवन की मूल्यहीनता पर कहीं व्यंग्य तो कहीं मजाक किया गया है और मित्र मण्डली की आवारगी में एक खास तरह की तिक्तता को उभारा गया है। रागात्मक सम्बंधों की उठ रही अरथी पर चोट की गई है। कहानी अंत तक पहुंच कर अचानक करुणा पैदा करती है जो मूल्यगत आस्था की स्थिति को उजागर कर देती है। उत्कृष्ट कहानी है, टैक्सचर में अगंभीरता होते हुए भी मूल्यों की अरथी सम्बन्धी टोन काफी स्पष्ट है।

5.2.2.4.2 राग-विराग कहानी में बाप बेटे के रिश्तों का और युवा पीढ़ी के विद्रोह के स्वरूप का वर्णन किया है। कहानी में व्यंग्य यह है कि जो मां-बाप स्वयं अन्तर्जातीय विवाह-सूत्र में बंधे हैं वे अपने बेटे को ऐसा नहीं करने देते और बेटे के दाम्पत्य जीवन को त्रासद बना देते हैं। 'मुझे लगता है कि इस बेचारी का सारा पाप मेरे सिर है। उस सिख लड़की को साथ लेकर इसे जहन्नुम में जाने देता'.....अरूंधती ने कहा-'मैं अपने खानदान की नाक क्यों कटवाती? दूध के मटके में मूत्र की बूंद क्यों डालती ?'

कहानी में रूपजी के मां-बाप के चरित्र का अचानक हुआ विकास रोचक है और व्यंग्य सना भी। कहानी में चाची द्वारा अपने दाम्पत्य की दरारों और अभावों का प्रोजैक्शन भी अच्छा है। चाची ही किशनचन्द के चरित्र और दाम्पत्य की व्याख्या करती जाती है। अच्छी कहानी है।

5.2.2.4.3 चोर कहानी में पुलिस और चोर की परस्पर मिलीभगत का व्यंग्यात्मक वर्णन हुआ है। साधारण शरीफ शहरी की सुधारक भावना की व्यर्थता और मूल्यहीनता का भी विश्लेषण किया गया है।

कहानी सुनाते सुनाते प्रोफैसर विषयान्तरित हो जाता है और परीक्षाओं में नकल कराने की चर्चा करने लगता है। खैर, कहानी आगे बढ़ती है तो अदालत में चोर की पेशी होती है, प्रोफैसर देखता है कि थानेदार जज के सामने बयान दे रहा है जबकि जज रंगीन पत्रिका के पन्ने पलट रहा है। चोर कटघरे में खड़ा है और उसके साथ दो सिपाही खड़े हैं।

कहानी में लेखक ने चोर और पुलिस की आपसी मिलीभगत के साथ-साथ कानूनी व्यवस्था और कानूनी बारीकियों का लाभ उठाने वाले लोगों का अच्छा चित्रण किया है। साथ ही कहानी से विषयांतरित होते हुए ही प्रोफैसरों के खोखलेपन को भी उभारा गया है। अच्छी कहानी है। कहीं-कहीं अगंभीरता का पुट देकर मूल्यहीनता पर चोट की गई है।

5.2.2.4.4 एक नंगी कहानी में प्रोफैसर के भुलक्कड़पन और सहशिक्षा पर व्यंग्य करते हुए और अनुशासन के नाम पर कालेज में दादा टाइप लड़कों को रिश्वत देकर अपनी ओर मिलाने और पैसा खा जाने वाली वृत्तियों पर चोट की गई है।

क्लास में एक लड़की थी और बाकी सब लड़के जो उसे देख कर हंसते-हंसते लोट-पोट होने लगे। पतलून पहने बिना प्रोफैसर का कालेज आना कोई मामूली अपराध नहीं है। वह अपने पक्ष में बचाव के लिए तर्क ढूंढ रहा है। बस यही कहानी है।

प्रोफैसर को गुस्सा आ रहा है कि डायरेक्टर और मिनिस्टर को बुलाना क्या जरूरी था। वह मिनिस्टर से कहेगा कि जैसे वह अपने वोटरों को भूल जाता है, यह भी पैन्ट पहनना भूल गया' तभी उसे कक्षा के भीतर की एकमात्र लड़की के रोने और बीच-बीच में सिसकी भरने की आवाज़ सुनाई दी, वह भी उसके निकट चला गया 'मैं खुद भी भरा पड़ा था इसलिए उसका सिर अपनी छाती के साथ सटा कर मैं भी ज़ोर-ज़ोर से रोने लगा।' मैंने उससे कहा–'तुमने मुझे इतना बेगैरत समझा ? क्या मैं इतना कमीना हूं कि तुम्हारा दुपट्टा छीन कर अपना नंगापन ढंक लूं?'

कहानी कल्पना आश्रित है परन्तु कालेजों में होने वाले भ्रष्टाचार, व्यभिचार और अनुशासनहीनता का अच्छा चित्रण हुआ है।

5.2.2.4.5 यह साहब वह साहब कहानी में राजनीतिक पार्टियों के सदस्यों के पॉलिटिकल विरोधों और व्यक्तिगत सम्बंधों का ब्यौरा देते हुए व्यंग्य किया गया है कि कैसे वे भोली भाली जनता को सिद्धांतों के नाम पर फुसलाते हैं, उन्हें उल्लू बनाते हैं परन्तु भीतर से दोनों विरोधी परस्पर एक हैं, एक दूसरे के पूरक और मददगार हैं। एक दूसरे की सेहत, बच्चों के भविष्य आदि का ख्याल रखते हैं परन्तु जब जनता के सामने आते हैं तो एक दूसरे को गालियां देते हैं,

सिद्धांतों की लड़ाई लड़ते हुए एक दूसरे की आलोचना करते हैं। अपने-अपने हक में जलूस निकलवाते हैं, नारे लगवाते हैं और भाड़े के लोगों द्वारा जुलूसों पर पथराव करा कर जनता की सहानुभूति बटोरते हैं। वे दोनों एक के घर में बैठे हैं। एक सत्ताधारी पक्ष से है दूसरा विरोधी पक्ष से। दोनों की बातचीत के टुकड़े नियोजित करके कहानी विकसित की गई है। कहानी में राजनीतिक स्टंटबाज़ी का अच्छा चित्रण हुआ है।

5.2.2.4.6 शापिंग कहानी में बढ़ती हुई महंगाई के कारण और इससे दो चार हो रहे दाम्पत्य में घर कर रही तिक्तता का अच्छा चित्रण हुआ है। दोनों ही एक दूसरे के लिए कुछ न कुछ पसंद करते हैं परन्तु महंगाई के कारण खरीद नहीं पाते और स्वयं को दूसरे द्वारा अपमानित हुआ महसूस करते हैं।

'आखिर कुछ लेना भी है या नहीं?' खिसियाकर दुकान के बाहर आने पर भूषण ने पूछा। 'पहले तुम सूट और शर्ट के लिए कपड़ा खरीदो।' 'सौ तो मैं खरीदूंगा ही। तुम कोई साड़ी पसंद कर लो।' कहानी में टैक्सचर अच्छा है जो अमुखर होते हुए धीरे-धीरे टोन में चमक पैदा कर देता है।

5.2.2.4.7. कथा जीभ की सवाल अंडे का कहानी में फैंटेसी शैली के माध्यम से आधुनिक लोकतंत्र पर चोट की गई है जिसमें एक वर्ग महल बना रहा है और चिप्स की चमक के लिए दूसरे वर्ग के लोगों से अण्डे वसूल कर रहा है, उसका भरपूर शोषण कर रहा है, परन्तु विडम्बना यह है कि शोषण से त्रस्त होकर भी यह वर्ग आतंकित-सा जीभ गंवाएं बैठा है, विरोध में कुछ नहीं कहता, गूंगा बना हुआ जीभ के सहारे फर्श चाटता हुआ फर्श चमका भी रहा है और अण्डे का स्वाद भी ले रहा है। कहानी में शोषक वर्ग का चित्रण प्रत्यक्ष नहीं हुआ। उसके प्रतिनिधि गुण्डा टाइप के दो व्यक्ति लोगों के घरों से अण्डे वसूलते हैं, न मिलने पर घरों की तलाशी लेते हैं और मारपीट करते हैं। अच्छी कहानी है।

5.2.2.4.8 एक दफतर कथा कहानी में पी॰ डब्लयु॰ डी॰ के दफतर में हो रही रिश्वतखोरी और भ्रष्टाचार के अलग-अलग रूपों का अच्छा चित्रण हुआ है। महीउद्दीन ठेकेदारों को समझाता है कि फिजूल के कम्पीटीशन में पड़ने से बेहतर है एक ठेकेदार के टेंडर पास होने दें और उससे अपना लाभ ले लें। ठेकेदारों को उसकी बात पसंद आती है। अगले दिन महीउद्दीन दफ़तर नहीं आता। उस के पास एक ठेकेदार बैठा है और सामने नोटों का बंडल पड़ा है। महीउद्दीन नेरेटर को दस रुपए देता है और वह फिल्म देखने तथा ऐश करने चला जाता है।

अगले दिन दफतर में सभी खुश हैं, महीउद्दीन की तारीफ हो रही है। हैडक्लर्क भी प्रसन्न है, 'महीउद्दीन साहब' काम जानते हैं, मेहनत करते हैं, इसीलिए साहब इनकी इज्जत करते हैं। मैं इज्जत करता हूं हम सब इनकी इज्जत करते हैं', कहानी में मिलीभगत का अच्छा विशद् चित्रण हुआ है।

5.2.2.5 बारह कहानियां ओम गोस्वामी के 1981 ई० में प्रकाशित कहानी संग्रह 'बारह कहानियां' की कहानियों का विस्तृत मूल्यांकन 'शिवालिक क्षेत्र में हिन्दी कहानी का उद्भव और विकासग्रन्थ' में किया जा चुका है, यहां इन कहानियों का संक्षिप्त मूल्यांकन प्रस्तुत है।

5.2.2.5.1. वनवास में पंद्रह वर्ष बाद अपने गांव लौटे व्यक्ति की आह्लाद-विषाद की मन:स्थिति का सशक्त चित्रण हुआ है। धरती से प्रेम, व्यक्तिगत मान-सम्मान को अर्जित करने की जिद, लोकविश्वास, ग्रामीण जीवन की त्रासदियों और सामन्ती सोच के कारण पर पीड़न में तबाह हो रहे मानवी रिश्ते का हृदयद्रावक चित्रण कहानी का मूल कथ्य है।

खेतों को उजड़ने से बचाने वाला कथानायक सामंती सोच के संतु और कश्मीरू के तानों और हेंकड़ी का जवाब देने के लिए घर-गांव से भाग कर फौज में भरती हो जाता है और पंद्रह वर्ष बाद लौटता है। परन्तु गांव में लगभग सब कुछ बदल गया है, जहां तक कि उसकी पत्नी सोमा भी कश्मीर ने हथिया ली है। एक रिश्ता परायेपन में बदल गया है।

कहानी की भाषा, गठन, पात्र की विवशता और विवशताजन्य प्रतिक्रियाओं की अभिव्यक्ति के साथ-साथ लोकतत्वों का समायोजन कहानी के कथानक को सुदृढ़ बनाता है। कहानी का सौंदर्य यह है कि किसी भी पात्र से अन्याय नहीं हुआ, न सोमा की चारित्रिक हत्या हुई है और न ही कश्मीरू के षड्यंत्र का ही आभास होता है। कहानी में यथास्थिति बनी रही है शक्ति का प्रतीक राइफल अर्जित करके भी कश्मीरू को दे दी गई है और धन का थैला लोक-विश्वास या मनौती पर खर्च करने के लिए छोड़ दिया गया है।

5.2.2.5.2 एक जंगल वाहियात कहानी में जंगलराज की वृत्ति से पीड़ित विवश व्यक्ति की मन:स्थिति का चित्रण हुआ है। कथा का नेरेटर अपने दफतरी जीवन की घुटन से बचकर अपने विरुद्ध हुए अन्याय के विरुद्ध संघर्ष की शक्ति बटोरने और योजनाबद्ध कार्यप्रणाली का निर्धारण करने के लिए शहर से अपने पूर्वजों के गांव आता है। परन्तु यहां भी उसे चैन नहीं बल्कि वह शहरी जीवन से भी अधिक त्रासद अनुभूति को भोगता हैं। गांव में भी शहर जैसा ही जंगलराज है, प्रभावशाली लोग साधारण आदमी का निरीह वन्य जन्तुओं जैसा शिकार कर रहे हैं, किसी की हत्या करके उसकी याद में पत्थर के मोहरे बना देते हैं।

कथा के नेरेटर को लगता है कि वह एक जंगल में शिकारियों के बीच घिर गया है, जहां हवेलियां खण्डहर हैं, लोग खण्डहर हैं, इतिहास के रहस्यमय कोने में दुबके जीवन का बोझ ढो रहे हैं। उसे अपने दफतरी जीवन की घटनाएं याद आती रहती हैं कि कैसे मिस्टर नादिया ने बॉस के साथ अपनी खूबसूरत बीवी को नैनीताल भेज दिया था और बॉस के वहां से लौटते ही मिस्टर नादिया की प्रेमोशन का आर्डर हो गया था और वह अपनी सीनियार्टी को सुपरसीड होते देखता रहा था।

कहानी में ग्रामीण लोक जीवन में समायी सामन्तीवृत्ति और उसकी क्रूरता के साथ साथ औरत की स्थिति का हृदयद्रावक वर्णन हुआ है। शहरों में महत्वकांक्षा की पूर्ति के लिए औरत को इस्तेमाल करने की वृत्ति पर भी चोट की गई है। भाषा, कथानक की बुनावट और लोक-जीवन की समस्याओं और क्रूरता की छोटी-छोटी घटनाओं को बुनकर जीवन की त्रासदी का सशक्त चित्रण किया गया है। उत्कृष्ट कहानी है।

5.2.2.5.3 रात का रखवाला कहानी में औरत की संतान की कामना और शारीरिक सुख की वासनापूर्ण कामना का द्वि-आयामी चित्रण हुआ है। कहानी में काफी खुलापन है और बेबाक पात्रों का चित्रण हुआ है, संवाद काफी मंजे हुए और स्थिति अनुसार हैं, स्त्री-पुरुष के यौन सम्बंधों का खुला चित्रण तो हुआ ही है पहलवानों के भोलेपन, उनके उस्तादों के काइयांपन और औरतों की बेवफाई, चालाकी और उनकी बेवफाई के कारण स्पष्ट हुए हैं, सैक्स के पुट ने कहानी को अतिरिक्त रोचकता प्रदान की है। कहानी के बीच अतीत-स्मरण के रूप में समभाव वाली कहानी बुनकर शिल्प को नयापन दिया गया है और प्रभाव को दुहरा दिया गया है। कहानी की भाषा यौन-आमन्त्रण को अच्छी अभिव्यक्ति देती है।

स्मरण करते ही मंगा अतीत में खो जाता है कि कैसे बानो ने उसे कसरत करके लौटते समय देख कर बाग में घेर लिया था और फिर दोनों में यौन सम्बंध स्थापित हो गए थे।

मंगे ने सोच रखा था कि तारे की बीवी की लगाम हाथ आते ही उसे बिगडैल घोड़ी की तरह साधने का हरेक जत्न करेगा, जो काम तारा सुहागरात में न कर सका उसे चंद लम्हों में करके उसे नकेल डाल देगा। परन्तु जब वही औरत घी से लबरेज खाना और मलाई खिलाती हुई अपने रूपजाल में उलझाकर यौन सम्बंध स्थापित करने का निमन्त्रण देती है तो मंगा का मन डोल जाता है। वह भानी के दरवाजे की सांकल खटखटाता है और दरवाज़े पर कान लगा कर भीतर की आवाजें सुनने लगता है.......... सारा माजरा समझ जाता है और गुस्से में भड़क उठता है 'भानी कुत्तिया दरवाजा खोल।.....नहीं तो तोड़ कर तेरे यार के दर्शन करूंगा। तेरे खसम ने दो खेत मेरे नाम लिखाने का वादा किया है ताकि तुझे चालू न रहने दूं।' कहानी अच्छी है।

5.2.2.5.4 गांधीजन कहानी में लब्भू और घुरकू के माध्यम से अछूत तथा छोटी जातियों के लोगों के जीवन की समस्याओं, दिखावटी लोकराज और साम्प्रदायिक सद्भावना की पोल पट्टी खोली गई है। गांधीवादी अछूतोद्धार और गांधीभवन में बिकने वाली खादी के प्रति कटाक्ष किया गया है और ग्रामीण जीवन में सड़कों और यातायात के कारण पैदा होने वाली त्रासदियों पर कुछ-कुछ व्यंग्य और कुछ-कुछ करुणा की भावनाएं अभिव्यक्त हुई हैं, लब्भू अपने बेटे को समझता है कि शिवाला हिन्दुओं का है और मसीत मुसलमानों की., हमारा गांधी बाबा और अम्बेदकर बाबा है...... परन्तु गांधी भवन में गांधी बाबा की मूर्ति के पास हमें जाने नहीं दिया जाता। छोटी जातियां न हिन्दू हैं न मुसलमान बल्कि इन दोनों का चारा हैं। लब्भू जानता है कि उनकी फाकेकशी के जिम्मेदार कौन हैं, परन्तु उन्हें वे गिरा नहीं सकते, उनमें इतना

साहस ही नहीं। वह कायरता में हुई ऐसी मौत को खुदकशी ही मानता है।

बाप बेटा! चटखारे ले कर रोटी खाने लगे, नशे में उन्हें और अधिक सुखानुभूति हो रही थी और वे सुख के इन क्षणों को लम्बा खींच रहे थे तभी कुतिया ने चिचियाना शुरू किया तो घुरकू को लगा कि मच्छी के रूप में उन्होंने जलनाग तो नहीं खा लिया। 'तो क्या हुआ बेवकूफ जो भी जन्मा है उसे किसी न किसी बहाने मरना ही है। चल सो जा।' घुरकू पुआल के बिस्तर में घुस गया परन्तु सोये सोये मरने की अपेक्षा वह मौत को महसूस करके और उसकी वजह जानकर मरना चाहता है और मुंह में उंगली डाल कर उबकाई लेने लगता है।

कहानी में लब्भू के हृदय का विद्रोह भाव अभी क्रियाशील नहीं हो पाया, न ही घुरकु विद्रोही हो पाया है। हां वह बाप की तरह न मर कर अपनी मृत्यु का कारण जानना चाहता है। कहानी मुन्शी प्रेमचन्द की कहानी 'कफ़न' का स्मरण करा देती है।

5.2.2.5.5 दर्द की मछली कहानी हरिजनों की जीवन त्रासदी, उनके शारीरिक शोषण और शराब खोरी की आदत के साथ-साथ उनके परिवार की आर्थिक विपन्नता से संबंधित है। समूची कहानी से स्पष्ट हो जाता है कि एक हरिजन परिवार की नशाखोरी की आदत उसे जीवन की विसंगतियों में धकेलती हुई त्रासद अंत तक ले जाती है और पारिवारिक रिश्तों की कोमलता, अपनत्व और हार्दिकता की अपेक्षा वे अपने ही सगे सम्बंधी को स्वार्थ पूर्ति का साधन बना लेने के लिए विवश हो जाते हैं। कहानी की भाषा वस्तु के अनुकूल है और शिल्प ठीक ही है।

धर्मू हरिजन है, नशाखोरी के कारण दफतर में बदनाम है, सड़क दुर्घटना में घायल होकर मरणासन्न पड़ा है। कहानी का नेरेटर धर्मू का सहयोगी है और स्कूल में उसका सहपाठी भी रहा है। धर्मू की खून से लथपथ पड़ी लाश को देख कर वह स्वयं ही धर्मू के घर पहुंचता है, परन्तु उसके बूढ़े दुबले हो गए बाप को मरे बेटे की सूचना देने की शक्ति नहीं बटोर पाता।

धर्मू की बीवी शराबी पति को गालियां निकालने लगती है ।...... तभी बूढ़ा ससुर उसे डांटता है 'रांड अभी तेरा वो यार गया कि नहीं?' बूढ़ा नहीं चाहता कि सैनेटरी साब मुफ्त में मांस नोचे। परन्तु बहू को पता है कि वह मुफ्तखोरी नहीं करता, 'पंद्रह पंद्रह दिन नौकरी पर न जाएं तो नौकरी कहां बहाल रहेगी......'महीने में एक बार खुश कर देती हूं उसका दिल बहल जाता है। क्या बुरा होता है।' ससुर उसे डांटता है 'रांड जल्दी कर। निपट ले, उन सेठ जी से।' नसीबो उस व्यक्ति के साथ कोठरी के भीतर जाती हुई बड़बड़ा रही है। 'उस दिन आया था, उस नामुराद को स्ट्रेचर पर डलवा कर। आज उसकी मौत की खबर ही ले आया।'

कहानी आदमी के अन्तश्चेतन और मौजूदा स्थिति की प्रतिक्रिया को आधार बना कर बुनी गई है। कहानी का अंत बड़ा करुण और स्थिति की विस्फोटकता को स्पष्ट कर देने में सक्षम है। भाषा में तीखापन संवाद की अपेक्षा पात्र की मन:स्थिति के कारण आया है। अच्छी कहानी है जिसे पढ़ते हुए लेखक की अपनी ही कहानी का दुहराव सामने आ जाता है।

5.2.2.5.6 हवाचक्र कहानी 1965 ई॰ के भारत पाकिस्तान के युद्ध के दौरान भारतीय फौजों द्वारा गिरफ्तार किए गए पाकिस्तानी फौजियों के परिवारों की जीवन-त्रासदी का अच्छा चित्रण हुआ है। कहानी में पाकिस्तानी नेताओं द्वारा जनता को बरगलाने, भारत के विरुद्ध झूठा प्रचार करने, यू॰ एन॰ ओ॰ सैक्रेटरी के सामने भारतीय फौजों के अत्याचारों की झूठी कहानियां सुनाने और जलूसों जलसों की आड़ में लोगों की बहू-बेटियों की इज्जत लूट कर उन्हें आत्महत्या के लिए विवश कर देने के कारनामों, नेताओं के दोगलेपन और पाकिस्तान को अपवित्र बना देने की करतूतों का अच्छा चित्रण हुआ है। कथानक का विकास एक साधारण मोमन परिवार की त्रासदी को बुनकर किया गया है।

अशरफ ने शादी के बाद दरवाज़े पर टाट का पर्दा लटका दिया था क्योंकि एक मोमिन के घर की गैरत पर्दे में ही होती है। बरसों पर्दे के पीछे हया और इज्जत ढंकी रही थी। पर्दे के तार गिरते रहते हैं परन्तु बेगमां का हठ है कि वे ही आकर इसे बदलेंगे, सरहदों की हिफाज़त करने वाले सिपाही का कुनबा जैसे-तैसे इसी के पीछे इन्तजार करेगा, उनकी हया का वजूद तभी तक है जब तक अशरफ का लगाया पैबन्द लगा पर्दा कायम है। जब बेगमां सकीना को घर में छोड़ सभी बच्चों सहित जुलूस के लिए चली जाती है तो काले खां फिर लौट आता है और सकीना को नौकरी दिलाने का झांसा देकर साथ ले जाना चाहता है परन्तु सकीना मां से पूछे बिना नहीं जाती तो काले खां के साथी उसे झपट लेते हैं। 'पकड़ो साली को! इसका यार कादिर हिन्दोस्तान से हिन्दू बन कर वापस आएगा। ऐसी छूने भर से मैली होने वाली हूर उस काफिर की नहीं हो सकती। तुम सिर्फ हमारी हो हमारी।' 'ले कहां चलोगे। यहीं पटको ज़मीन पर।' तीनों रजाकारों ने बाहर निकलते निकलते टाट के पर्दे से हाथ पोंछे अचानक पूरा पर्दा रेत के घरौंदे की तरह भरभरा कर गिर पड़ा। अच्छी सशक्त कहानी है।

5.2.2.5.7 वगैरह वगैरह कहानी में पुलिस के क्रूर अत्याचार, नेता और सेठों की मिली भगत से होने वाले अत्याचारों का चित्रण हुआ है, लोकतांत्रिक देश में गरीब आदमी अभी भी महारानी ब्रिटेन का राज्य ही समझते हैं और पुलिस ऐसे निर्धन, पिछड़े लोगों पर ऐसे क्रूर अत्याचार करती है कि आदमी मर जाता है, पुलिस हिरासत में मरे आदमी को पुलिस मुठभेड़ में मारा गया दिखा देती है। इस तथ्य को लेखक ने कल्पना का पुट देकर प्रस्तुत किया है परन्तु कहानी का अंत अतिरेक से ग्रस्त है। फिर भी कहानी में उभरी स्थितियों को स्वतंत्र देश की पुलिस, नेता और सेठों के रूप में कलंक ही कहा जाएगा।

पुलिस ने उसे गिरफ्तार कर लिया, आरोप यह था कि वह गद्दार है, बरतानिया का जासूस है पुलिस उसे अमानवीय यातनाएं देती हैं और उसे स्पष्ट कह देती है कि उसे मुठभेड़ में मारा गया सिद्ध कर देगी और सिद्ध कर देगी कि उसने बर्तनों का उपयोग हथियारों के रूप में किया था, 'ढाल को तवा कह कर या दो खंजरों को जोड़ कर और उन्हें चिमटा नाम देकर तुम कानून की आंखों में धूल नहीं झोंक सकते। तुम्हारे बाद ही हथियार हमारी कार्यवाही को

जायज़ ठहरायेंगे' वगैरह-वगैरह।' पुलिस के अत्याचारों की मुंह बोलती तस्वीर इस कहानी की विशेषता है।

5.2.2.5.8 शहर और भेड़िये फैंटेसी के रूप में लिखी गई कहानी है, जिसमें औद्योगिक बस्ती को हड़तालों के कारण अखबारी प्रचार मिलता है और इसी प्रचार के कारण वह बस्ती सुर्खों का शहर हो जाती है। परन्तु कहानी के प्रतीक भेड़िये, सियार, अजगर, सांड, सुर्खे और नंगधडंग आदमी अस्पष्ट रह गए हैं। सियारों को सोने और प्लेटिनम की अपेक्षा गर्म नमकीन और लज़ीज इन्सानी लहू ही प्रिय है। सियारों के दो दल हैं, दोनों की सीमाएं निर्धारित हैं, दोनों के बीच नो मैनसलैण्ड भी है, दोनों परस्पर विरोधी विचारों का प्रचार करते हैं, दोनों की दो अलग अलग राष्ट्रीय धुनें हैं। दोनों ओर माइक लगे हैं, जिन से दोनों दल के सियारों के पास चन्द पालतू भेड़ियें हैं, जिन्हें दोनों ओर के सियारों से पगार मिलती है। हक मांगने वाले सुर्खों को ये भेड़िये लाठियों से मार देते हैं और खा जाते हैं और सियार उन्हें नोच डालते हैं। कहानी के प्रतीक अस्पष्ट रह गए हैं।

5.2.2.5.9 पराजित सीमांत कहानी में दो अध्यापकों की सिद्धांत भिन्नता की व्याख्या करते हुए आदर्शवादी अध्यापक की निर्धनता, उन्नति के रास्ते के अवरोधों और सहयोगियों के बीच उसकी उपहासास्पद स्थिति का हृदयद्राविक चित्रण हुआ है जबकि दूसरे अध्यापक की प्रोन्नति, बच्चों की अच्छी शिक्षा, साधन सम्पन्नता और भ्रष्टाचार की कमाई का चित्रण किया गया है। दोनों अध्यापकों का तुलनात्मक चित्रण कहानी के कथानक को गांठता चलता है। विडम्बना यह है कि पण्डित जी अपनी बेटी के विवाह के लिए मित्र से मदद मांगने आते हैं परन्तु गुप्ता जी अपनी ही शान-शौकत का वर्णन करते जाते हैं, पण्डित जी की बात सुनते ही नहीं, बल्कि उन्हें बात करने का मौका ही नहीं देते। अंततः जेब से 28 पैसे गंवा कर पंडित जी घर लौटते हैं, गुप्ता जी से कुछ भी मांग नहीं पाते। कहानी में सद्य सम्पन्न हुए लोगों की अनुदारता और स्वभावगत परिर्वतनशीलता का अच्छा मुंहबोलता चित्रण हुआ है।

शर्मा जी को अपनी निर्धनता और बढ़ती महंगाई बुरी तरह साल रही है और वह सोचते हैं कि 'गुप्ता जी ने न जाने कहां यह खजाना गाड़ रखा था।' तभी दोनों का पुराना शार्गिद आता है और शर्मा जी की उपेक्षा-सी करता हुआ गुप्ता जी को फलों और मिठाई का डिब्बा देता है क्योंकि गुप्ता जी की सिफारिश से उसे गुप्ता जी के बेटे के दफतर में नौकरी मिली है। शर्मा जी हैरान है कि इसका छुआ गुप्ता जी खा लेंगे? गुप्ता जी अपनी हांके जा रहे हैं और शर्मा जी सोच में पड़े हैं कि हरीश इतना बड़ा अफसर कैसे हो गया ? अपना राजेश मास्टर ही क्यों बना? गुप्ता जी बेटे और उसके दोस्तों के लिए शराब और सिग्रेट लेने चल पड़ते हैं और शराब वाले से डिस्काऊंट मांगते हैं, सोडे की चार बोतलें खरीदते हैं और मुफ्त बर्फ ले लेते हैं। पान की दुकान पर पान खाते हैं तो पैसे शर्मा जी को देने पड़ते हैं।

अच्छी कहानी है नैतिकता को तिलांजलि देकर गुप्ता जी ने पैसा कमाया है, बेटों को अफसर बनवाया है, कोठी बनवाई है, भ्रष्टाचार से धन जोड़ा है परन्तु बेटे की गुलामी कर रहा है। पैसे पैसे पर जान दे रहा है, कमीनगी की हदों को छू रहा है। इससे बढ़ कर किसी अध्यापक का चारित्रिक पतन और क्या हो सकता है? कहानी में शर्मा जी का अन्तश्चेतन और गुप्ता जी का वर्तमान परस्पर द्वन्द्व की मुद्रा में प्रस्तुत हुए हैं।

5.2.2.5.10 **कैसे दिन** कहानी में दफतरी साजिश से घबरा कर इस्तीफा देने वाले की मानसिकता और इस्तीफा देने के बाद बेकारी में पैदा हुई जीवन की जटिलता का चित्रण किया गया है। विडम्बना यह है कि आम हिन्दोस्तानी आदमी प्रोन्नति के लिए योग्य, ईमानदार और सिद्धांत प्रिय आदमी के खिलाफ साजिश रच ही लेता है, वह स्वयं तो असुरक्षा की भावना से ग्रस्त होता ही है, उसी असुरक्षा की भावना की प्रतिक्रिया के रूप में साजिशें रचता है। इन्हीं साजिशों से त्रस्त व्यक्ति की मन:स्थिति का चित्रण कहानी का मूल कथानक विकसित करने के लिए अपनाया गया है। भाषा की भंगिमा अच्छी है, व्यंग्य का पुट कहानी को रोचक बनाता है। आत्मकथा शैली को अपनाया है।

साधुओं का दल जाते देख वह उन्हें भगौड़ा ही मानता है और जिंदगी से भाग कर भगौड़ा भी नहीं बनना चाहता। नौकरी से अलग होने पर गुड़देव ने ढाढस बंधाया था कि मौजूदा लम्हों में मन को मजबूत रखना चाहिए हर चीज़ धीरे-धीरे सही जगह पर लौट आती है। इस्तीफा देने से पहले उसे आस-पास के हरेक व्यक्ति में कुछ साजिश पलती हुई नजर आती थी और इस्तीफे के बाद भी वह उस रहस्य का सिरा नहीं पकड़ पाया था। उसे स्मरण आया साजिशी सहयोगियों ने चाकू लहराने वाले गुण्डों को भी भेजा था और वह जिंदगी में पहली बार डरा भी था। ये साजिशें ही आदमी के उपकरण हैं- भयानक हथियार। असुरक्षा का मीनार दिन-दिन ऊपर उठ रह था, अजीब अजीब भय थे। उसका मन हुआ था कि अपनी टांग तोड़ कर बाबा लोगों में शामिल हो जाए। तब गुरुदेव ने समझाया था कि अपनी टांग तोड़ने की अपेक्षा उठना सीखे।

आम भारतीय बुद्धिजीवी की मन:स्थिति का सशक्त चित्रण हुआ है, ऐसे बुद्धिजीवी का जो साजिशों से घिरा है और साजिशें रचने वाले अपनी ही तरह के दुनियादार लोग हैं, दोयम दर्जे के लोग। कहानी में कुछ कुछ अस्तित्ववादी चिंतन का प्रभाव लक्षित होता है, अंतश्चेतन और वर्तमान का अच्छा सुदृढ़ मेल किया गया है।

5.2.2.5.11 छठा तत्व : एक अवांतर कथा कहानी में आधुनिक कहानी के शिल्प के प्रश्न को लेकर कथानक का विकास किया गया है और व्यंग्य किया गया है कि बड़े-बड़े तथा कथित बुद्धिजीवी, साहित्यकार आदि चारित्रिक स्तर पर कितने कमज़ोर हैं, अपने आपको कितना अधिक छिपाते हैं कि इसके प्रति सदैव सचेत रहते हैं। ऐसा ही एक साहित्यकार कहानी के नेरेटर के शहर में आया है और जानबूझ कर स्वयं को अज्ञातवास में रखे हुए है । फिर गुरुदेव

ने अपने अज्ञातवास का रहस्य बताया कि वह एक सुंदरी के पीछे-पीछे चला आया है और असफलता होने पर बदनामी न हो, इसीलिए उसने अपने प्रवास को गुप्त रखा है। परन्तु अभी तक सुंदरी से बात नहीं हुई। नेरेटर भांप जाता है कि गुरुदेव कठपुतलियों वाले नट की पत्नी के पीछे ही यहां आया है, उसकी निगाह उसी पर लगी देखी गई है।

कहानी संवाद और अंतश्चेतन के साथ-साथ तथाकथित साहित्यकारों की चारित्रिक कमज़ोरियों और खोखलेपन की बुनावट द्वारा विकसित की गई है। साधारण कहानी है। व्यंग्य अच्छा उभरा है।

5.2.2.5.12 बदनसीब सड़क कहानी में सरकारी तंत्र, नेताओं और नगरपालिका के कर्मचारियों में फैले भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी, कानून के दुरुपयोग आदि से जुड़ी अनेक समस्याओं का चित्रण किया गया है। कहानी का विकास एक बेकार पड़े भूखण्ड के उपयोग से जुड़ी योजनाओं और उन योजनाओं की कार्यान्विति के लिए नगरपालिका के अफसरों और ठेकेदारों के बीच चले रिश्वतखोरी के रिश्ते के विभिन्न पहलुओं की बुनावट के रूप में हुआ है।

कहानी में नगरपालिका के तंत्र के बहाने भारतीय प्रशासन और तंत्र में फैले भ्रष्टाचार और रिश्वतखोरी का अच्छा चित्रण हुआ है। कहानी में कहानी-तत्व की अपेक्षा समस्याओं को परस्पर पिरोने के कौशल को अपनाया गया है। अच्छी कहानी है, जो शासन व्यवस्था की त्रुटियों की ओर संकेत करती है।

5.2.2.6 रोशनी से दूर छत्रपाल का यह पहला प्रकाशित कहानी-संग्रह है, 'रोशनी से दूर' संग्रह है कहानियां पत्र-पत्रिकाओं में पूर्व-प्रकाशित हैं। संग्रह में कुल 9 कहानियां हैं जिनका मूल्यांकन निम्नलिखित है।

5.2.2.6.1 रोशनी से दूर कहानी में अपंगता से जूझते हुए व्यक्ति की पीड़ा का सशक्त और सहानुभूति पूर्ण चित्रण हुआ है। अन्तर्मन को छेदते हुए लोगों के प्रश्नों के प्रति वह क्या उत्तर दे, क्यों उत्तर दे? वह क्यों किसी के प्रति सहानुभूतिप्रवण हो जबकि वह स्वयं जिंदगी से जूझ रहा है। अंतत: वह क्यों अपंग हुए किसी नये व्यक्ति को सांत्वना देता है, यही इस कहानी का सौंदर्य है, करुण परन्तु विद्रोही चरित्र का अन्तर्द्वन्द्व कहानी को सशक्त बनाता है।

वह अपंग हो रहे लड़के को सहानुभूति के कुछ बोल कहता है, ढाढ़स बंधाता है, परन्तु जानता है कि उसके साथ खौफनाक मजाक हुआ है। उसके आस-पास की चीज़ें गतिशील होंगी और वह एक स्थान पर बंधा होगा। और वह अतीत में डूब जाता है कि कैसे मां और नानी उसे शहर शहर लिए भटकती रही थीं। डाक्टरों के समक्ष प्रार्थना करती रही थीं, डाक्टरों ने प्रयास किए थे लेकिन जांघ की सूखी निर्जीव मछलियां बिल्कुल निष्क्रिय हो गई थीं...और वह एक दम अकेला पड़ गया था। ....नानी को दु:ख था कि उसका ब्याह न हो सका, वह चाह कर भी खोटा सिक्का न चला सकी। जबकि उसकी अपनी आकांक्षाएं अतृप्त ही रह गईं। वह

चाहता है कि नए-नए अपंग हो गए आदमी को उसके जीवन की कटु वास्तविकता से वाकिफ करना है परन्तु उसकी मां की मानसिक यातना के समक्ष चुप रह जाता है।

आदमी की अन्तर्वेदना, स्थितियों की भयावहता, अपंग व्यक्ति की, उसके मां-बाप और परिवार के अन्य सदस्यों की पीड़ा और निकम्मी सहानुभूति का सशक्त चित्रण इस कहानी में हुआ है। छत्रपाल की यह उत्कृष्ट कहानी है, जो पाठक की अन्तश्चेतना को छील देती है।

5.2.2.6.2 जंगल की आग कहानी में नीलू के अन्तर्मंथन, उसके अतीत-स्मरण और परिवार के आर्थिक पतन की त्रासदी का भरसक संयम सहित चित्रण किया गया है।

फारिस्ट लैंसी के जंगल में आग लग जाती है, आर्थिक पतन के कारण लेनदार डिकरियां ले आते हैं, घर और घर की चीजें अपनी नहीं रहतीं, नीलू होस्टल भेज दी जाती है। जिस पापा ने दादा की मरजी के विरुद्ध विद्रोह करके शादी की थी और स्वाभिमान के कारण घर छोड़ कर नया घर बसाया था। वही पापा नया घर उजड़ जाने पर, स्वाभिमान गंवाकर आंखें झुका कर दादा के घर लौटते हैं। मम्मी रात दिन रोती रहती हैं जबकि दादा ने अभी तक भी पापा को क्षमा नहीं किया।

बेबी नीलू के अन्तश्चेतन की पीड़ाओं का चित्रण करते हुए नीलू के माध्यम से लेखक ने एक भरे पुरे परिवार की त्रासदी को सफलता से शब्दाबद्ध कर दिया है। उसे मां-बाप के परस्पर प्रणय की चुहलबाजी भी याद आती है और दादा के घर में पलस्तर के नीचे दबा दी गई राधा-कृष्ण की प्रणय लीला वाली बसोहली की पेंटिंग भी, पेंटिंग के आम्र कुंज भी याद आते हैं। जंगल की आग वाईल्ड फायर ने उसके, उसके परिवार के जीवन को खाक करके रख दिया है।

अच्छी कहानी है, बच्ची के अतीत-स्मरण और वर्तमान की त्रासद अनुभूतियों को परस्पर बुनकर समूचे परिवार की त्रासदी को उद्घाटित कर दिया गया है। भाषा और शैली भी सशक्त तथा चिताकर्षक है, अनुभूतियों के छोटे-छोटे टहोके कहानी को जीवन्त बनाए रखते हैं।

5.2.2.6.3 गांठदार धागे कहानी में वैधव्य की पीड़ा भोग रही और पुनर्विवाह के आग्रह के बीच फंसी नारी की अंतर्व्यथा का अच्छा चित्रण हुआ है।

अमिता को मृत पति की स्मृतियां कुरेदती रहती हैं और कभी-कभी वह भावावेग के वात्याचक्र में समूची कांप उठती है। वह स्वयं को विभाजित-सी अनुभव कर रही है, मृत पति के प्रति नैतिकता के कारण बंधी भी है और नारी-मन की स्वाभाविकता में बह जाना भी चाहती है। अपने अस्तित्व बोध से सहमी दुबकी विवाह को नकार भी नहीं रही। रवि को देखकर उसके भीतर का अन्तर्द्वन्द्व प्रबल हो उठता है। वह रवि के सीधे-से प्रश्न का भी उत्तर नहीं दे पा रही, मन भी सोचता है कि कब तक झूठी नैतिकता से त्रस्त मन की आवाज़ को दबाती रहेगी ?

कहानी में नारी के नैतिक बोध का अच्छा चित्रण हुआ है। नारी के समर्पण और

नैतिकता के बीच के मनोद्वन्द्व का अच्छा मनोविश्लेषण प्रधान चित्रण कहानी के सौंदर्य को दोगुणा कर गया है। खुलती-खुलती गांठें दुबारा पड़ जाती हैं, अच्छी कहानी है।

5.2.2.6.4 टापू का आदमी सरपंची का चुनाव जीतने के लिए घर के गहने जेवर तक हरा देने वाले, जीत के करीब-करीब पहुंच कर हार जाने वाले और फिर लोगों के ताने तिश्नों से तंग आकर घर से भाग जाने वाले नेता टाइप आदमी की कहानी है टापू का आदमी । उसकी अन्तर्व्यथा का चित्रण महत्वपूर्ण तो है परन्तु उतना नहीं जितना त्रासदी को झेल रहे उसके परिवार और उस परिवार के समूचे बोझ को अपने कंधों पर झेलते हुए टापू का आदमी बन गए माने का चित्रण। माने की अन्तर्मन की पीड़ाओं की अभिव्यक्ति का यहां विशेष महत्व है।

चुनाव में हार के बाद सुजान सिंह कहीं आता जाता न था, टापू का आदमी बन कर रह गया था, न बोलना, न सुनना, चक्की से घर और घर से चक्की, आटा पिस कर बाहर गिरता रहता और उसे होश ही न रहता । और फिर सुजान सिंह घर से भाग गया।

माना स्कूल छोड़ कर चक्की संभालने लगा खेलने के दिनों में घर की जिम्मेदारी संभालनी पड़ी। जैसे कैसे घर बार संभालता हुआ वह परीक्षा भी पास कर गया, परन्तु कालिज जाता तो चक्की बंद हो जाती, उसे नौकरी के लिए भटकना पड़ा, निराशा और अलगाव दो दुधारी तलवारें बन कर उसे काटती रहतीं, उसने कछुए की तरह स्वयं को भीतर ही भीतर समेट लिया। परिस्थितियों के समक्ष आत्म समर्पण कर दिया, माना स्वयं अपने बाप की तरह टापू का आदमी बन कर रह गया है, जाने भीतर का क्या मर गया है। बेकारी और अन्तर्द्वन्द्व ने माने को तोड़ कर रख दिया है, बाबा के आने से भी वह अपूर्ण रह गया है, जो कभी पूर्णता का बोध देता था, अब व्यर्थ-सा प्रतीत हो रहा है।

कहानी में परिस्थितियों के साथ-साथ पलायन वृत्ति का अच्छा मनोविश्लेषणात्मक चित्रण हुआ है।

5.2.2.6.5 पिघला हुआ गुस्सा ढाबे पर काम करके रोटी की जगह जूठन खाने वाले आदमी परमा की कहानी है- 'पिघला हुआ गुस्सा।'

उसे याद आया उसकी पत्नी घर में अकेली है, न जिन्दों में न मुर्दों में, उसके पास किसी स्त्री का होना आवश्यक है। उसे पत्नी पर दया भी आती है। ..गांव के बाहर उसका एक अकेला कच्चा घर। सांझ घिर आई थी। कहीं से तीन आदमी आते हैं, अन्दर घुसकर वे दरवाजे पर सांकल चढ़ा लेते हैं, दो भीतर हैं, तीसरा रखवाली के लिए बाहर खड़ा है, छुरे के नीचे बलात्कार! बारी बारी....एक...दो......तीन .... वे भेड़िए उसका मांस चबाते रहते हैं।

परमा आत्मग्लानि से तिलमिला उठता है 'उसके दो ठिकाने हैं--ढाबा और घर । घर भी जूठन और बाहर भी !' उसने बाहर की जूठन को तो अंगीकार कर लिया है पर घर की जूठन को उसने छुआ तक नहीं....अर्धविक्षिप्तता में भागता हुआ लहूलुहान हो उठा है, भीतर का लावा

आंखों से फूट पड़ रहा है। भीतर का मर्द यह सहन नहीं कर सकता। इसका अर्थ होगा उसने पत्नी पर हुए अत्याचार को स्वीकार कर लिया, उसे मान्यता दे दी है। एक दीवार उनके मध्य आ खड़ी हुई है जिसने सम्बंधों की सारी स्वाभाविकता को तार-तार कर दिया है। बाहर चीड़ों के जंगल में उसका गुस्सा-बेबस आदमी का गुस्सा-फुफकार कर रहा जाता है...वह किसके बच्चे को पैदा करने के लिए दाई बुलाने जाए। बच्चे का बाप कौन है, तीनों में से एक, पर कौन? उसका गुस्सा प्रलय मचा देना चाहता है पर किस पर? उन आदमियों की शक्ल तक नहीं देखी। या अपनी पत्नी पर जिसने उनके कलंक को प्यासी धरती पर गिरी बूंद की तरह अपने में सोख लिया।

छत्रपाल की यह सशक्त कहानी है। आदमी के स्वाभिमान, सम्बन्धों की दरकन आक्रोश और भीतरी घृणा के साथ-साथ मानव-मूल्य (बच्चे) के प्रति आस्था का अच्छा संकुल पर सशक्त चित्रण हुआ है।

5.2.2.6.6 शहतूत पत्नी के पूर्व प्रेमी के पत्र को पढ़कर उसके दिमाग का एक-एक तन्तु बेरहमी से छिल-सा जाता है, उसका स्वाभिमान उसे कोंचता है, अचला से शादी करके उसने गलती की है, उसका असली रूप घिनौना है, विश्वास-घातिनी है वह। उसके प्रेमी ने उसे चूमा होगा, भोगा भी होगा और वह जूठन भोग रहा है। इसी संदेह में वह प्रेम-पत्र को पढ़ कर रख देता है।

वह शहतूत की जड़ें खोद कर उनमें ज़हर डालता है ताकि शहतूत मकान की दीवार को खोखला न कर दे, पत्नी इसे देख कर घबरा जाती है। वह पत्नी की उपेक्षा करता है, सैक्स की भूख को मार लेता है, दोनों में शारीरिक सम्बंध खत्म हो जाते हैं, पत्नी अपने अपराध-बोध के अहसास के बावजूद स्वाभिमान नहीं छोड़ती और भीतर ही भीतर घुलती रहती है। फिर भी पति के मन में उसके प्रति कोई सहानुभूति नहीं, वह उसे डाक्टरों को दिखाता है, दवाओं का ढेर लगा देता है परन्तु दवा के साथ चुटकी भर कोई पाउडर अपनी ओर से भी डालता रहता है।

समूची कहानी आदमी की संदेह की वृत्ति, क्रूरता और सभ्य ढंग से की जाने वाली हत्या की वृत्ति पर चोट करती है। कहानी में शहतूत प्रतीक है कोमलता का, लचकीलेपन का, ममत्व और प्रेम का जो अविश्वासजन्य कोप और क्रूरता की बलि चढ़ जाता है। आदमी का अन्धा सन्देह वास्तविकता की अपेक्षा भ्रम का शिकार हो कर अपना ही हरा-भरा जीवन बरबाद कर लेता है। परन्तु विडम्बना यह है कि अचला भी स्वाभिमानवश अपनी वस्तुस्थिति को स्पष्ट नहीं करती। ऐसा भी नहीं लगता कि वह किसी अनकिए अपराध की सजा भोग रही हो। अनमेल विवाह पर सीधे-सीधे चोट न करके लेखक ने कुछ निष्कर्षों के आधार पर अच्छी कहानी बुन ली है।

5.2.2.6.7 छिटकी हुई इकाई पिता की मृत्यु के बाद नौकरी से पहली बार घर लौटे युवक की मन:स्थिति की कहानी है। वह युवक अपने आप को पूरी तरह पिता से जुड़ा हुआ महसूस करता है।

घर में शोक मनाया जा चुका है। सिर्फ मां ही रोती कलपती है, शेष घर के लोग अब अपने-अपने काम-काज में लग गए हैं, उसे अजीब-सा लगता है कि पिता के बिना सारा परिवार पुन:व्यवस्थित हो गया है, बल्कि भाभी-भैया उसके विवाह तक के लिए बात कर रहे हैं। घर की सामान्य स्थिति में वह स्वयं को छिटकी हुई इकाई महसूस करता है और यथा शीघ्र घर छोड़ कर नागपुर चले जाने की तैयारी कर लेता है। वह देखता है कि पिता के कमरे की खिड़कियों के पर्दे ही हिल रहे हैं और वह समझ लेता है कि पिता की शुभ आशीष, मुक्त निर्बंध प्यार और गुणग्राहिता उसके साथ है और वह परिवार से छिटकी हुई इकाई।

कहानी की भाषा काव्यात्मक है। जीवन के सम्पूर्णतत्व को अतीत-स्मरण के रूप में पिरो दिया गया है। कहानी छोटी-सी उपन्यासिका ही बन गई है। कुछेक पंक्तियां और संवाद मन को मोह लेते हैं।

5.2.2.6.8 मुड़ती दिशाएं कहानी में एक प्रेमी की कायरता का चित्रण हुआ है। उस के अपराध-बोध का कहानी में सशक्त चित्रण हुआ है।

अनु से उसका प्यार था, वह गर्भवती हो गई थी परन्तु वह पिता के आतंक के कारण विवाह की इजाजत न ले पाया था, उसने अनु के साथ कहीं भाग जाना चाहा था, वे गाड़ी में बैठे भी थे, गाड़ी चली भी थी परन्तु ......बिना किसी काम काज के Unsettled रह कर अनु के साथ जीवन नहीं चल सकता । ......यही सोच कर वह कायर-सा बन कर रह गया था। वही अनु की पेट फूली लाश का कारण है।

उसका अन्तश्चेतन अनु की उपस्थिति का स्थल है और सारा जीवन, व्यवहार, सारा कामकाज, दफतरी फैसले और मुकदमों की सुनवाई अनु के प्रति अपराध-बोध से प्रभावित हो रहे हैं।

एक दिन पार्क में अपनी बेटी रश्मि को राघव से प्रणय लीला करते देख लेता है। उसका अस्तित्व हिल-सा जाता है, परन्तु तभी अंतश्चेतन से अनु उसे झिंझोड़ती है कि अब उसे क्यों गुस्सा आ रहा है। अन्तश्चेतन में समायी अनु उसे लताड़ती है, उसकी कायरता को ललकारती है 'अब क्या करोगे? भाग जाओगे तब की तरह?...... परन्तु अब जस्टिस रघुनाथ ठाकुर अनु के साथ-साथ दूसरी लाश ढोने के लिए तैयार नहीं 'लड़की के साथ वह गाड़ी में बैठ गए। वही पिछली सीट, वही समस्या, केवल पात्र अलग हैं.......अजीब पुनरावृत्ति हुई है। दिशाएं एक बार फिर मुड़ गई हैं, उन्हें लगा।'

कहानी में व्यक्ति के अन्तर्मन और अपराध-बोध का विस्तृत और भावपूर्ण चित्रण हुआ

है. हां कहानी का अंत नाटकीय सा है. जैसी करनी वैसी भरनी को चरितार्थ करने की आवश्यकता नहीं थी।

5.2.2.6.9 कालक्षयी संग्रह की अंतिम कहानी है-'कालक्षयी', जिसमें वृद्ध हो चुके मज़माबाज के जीवन की सबसे बड़ी दुर्घटना का चित्रण हुआ है। दुर्घटना यह है कि वह बार-बार कोशिश करने के बावजूद अपने बुढ़ापे, बाज़ की थकान और दिन भर की भूख के कारण चाकू से अपने लक्ष्य को बेध नहीं पाता और जगहंसाई ही नहीं मार पिटाई तक का कारण बन जाता है।

कहानी में मज़मेबाज़ों के टोटकों, उनकी भाषा और अश्लील संकेतों पर तालियां पीटने वाले तमाशबीन लोगों पर भी व्यंग्य-सा किया गया है और तमाशा दिखाने वालों के जीवन की करुण-कथा का अच्छा हृदयाग्राही चित्रण हुआ...कहानी की भाषा बड़ी सशक्त स्थिति अनुकूल और काव्यात्मक है। मजमेबाज़ की असफल प्रेम-कथा का वर्णन भी कहानी में पिरो दिया गया है।

'उस्ताद की इज्जत पर हाथ डालते हुए तुझे मौत नहीं आयी! इतनी विद्या सिखाने की यही गुरूदक्षिणा दी तूने!' और मिसर के खण्डे के वार से उसके हाथ की उंगली कट गई थी और वह भाग निकला था। फिर मालती किसी घुमन्तु सरकस वाले के साथ चली गई थी और वह गंवई लोगों के बीच तमाशा दिखाने को रह गया था।

साफ सुथरी कहानी में मजमेबाज़ी के पेशे से जुड़े लोगों की जिंदगी का बाहर भीतर बड़ी अच्छी तरह से व्यक्त हुआ है।

कुल मिलाकर 'रोशनी से दूर' कहानी-संग्रह की लगभग सभी कहानियां अच्छी हैं, औपन्यासिक आकांक्षा सभी कहानियों में झलकती है, मनोविश्लेषण की पैनी-दृष्टि और भाषा तथा कथा-विकास की सुगढ़ता सराहनीय है।

5.2.2.7. ओम गोस्वामी का दूसरा कहानी-संग्रह 'सर्द आग' 1983 ई० में **प्रकाशित** हुआ है। इस संग्रह में कुल 9 कहानियां हैं जो ओम गोस्वामी की परिपक्व कहानी कला की द्योतक हैं। इन कहानियों का विस्तृत मूल्यांकन 'शिवालिक क्षेत्र में हिन्दी कहानी का उद्भव और विकास' ग्रन्थ में देखा जा सकता है। यहां इन कहानियों का संक्षिप्त मूल्यांकन प्रस्तुत है।

5.2.2.7.1. अजगर— अजगर प्रतीक प्रधान कहानी है, जिसमें उच्चवर्ग की विलासिता, शृंगारप्रियता, अनैतिकता, क्रूरता, दया-धर्महीनता और सर्वग्रासी प्रवृत्ति पर चोट की गई है, अजगर वस्तुत: ऐसे ही वर्ग का प्रतीक है। अजगर और अजगर के सहारे भीख मांगने वाला बाबा तो बात कहने के माध्यम मात्र हैं। निम्नवर्ग को भयभीत करके उसका शोषण करने की उच्चवर्ग की वृत्ति की प्रतिक्रिया स्वरूप पैदा हुई निम्नवर्ग की संघर्षवृत्ति को उभारने का सफल यत्न कहानी में हुआ है। उच्चवर्ग के शोषण के विरुद्ध निम्नवर्ग में पैदा हो रही जागरूकता और डट

कर उच्चवर्ग का सामना करने की ताकत और शोषितों में बलवती हो रही संघर्ष शक्ति का अच्छा चित्रण यहां हुआ है। कहानी में कहीं-कहीं तीखी टिप्पणियां और संकेत इसकी बुनावट को अतिरिक्त सौंदर्य प्रदान करते हैं, साथ ही साथ कहानी को बहुआयामी सार्थकता भी प्रदान करते हैं। कहानी में निम्न मध्यवर्ग और नवधनाढ्य लोगों के बीच के तनाव को बाखूबी चित्रित किया गया है।

दाढ़ी वाला नौजवान आंखें मलता बाहर आया .... बिम्मो को देखते ही उसकी नज़र से धुंधलका हट गया। ....बहाने से वह बिम्मो पर अपने रौब की धाक जमा लेना चाहता है। चन्नी को बावे की कविताई अपने वजूद का तिरस्कार करती प्रतीत हो रही थी........ बिम्मो के चेहरे पर व्यंग्य भरी हंसी खिल रही थी ....। बिम्मो की आंखों में चंदू का स्वागत पढ़कर चन्नी भुनभुनाया 'बदगुमान, समझती क्या है अपने आपको। इसके यार को चीर कर न रख दूं, तो चन्नी नाम नहीं।' भिखमंगा अजगर का फन थामे उसकी ओर लपका ..... भिखमंगा अजगर से भी ज्यादा फुत्कार कर रहा था। तभी झोंपड़ियों की ओर से चंदू गली में कूदा। हाथ में नंगी तलवार थी। भिखमंगा लहू से रंग गया। एक के दो अजगर हो चुके थे...... भिखमंगा निर्वाक खड़ा था ...... निहत्था। झोंपड़ियों की ओर से लड़कों ने नारा बुलंद किया 'बोलो चन्दू उस्ताद की जय!'....... इस आवाज़ का आघात जैसे अकेले चन्नी पर हुआ हो, उसने म्यान से किरपान को बाहर खींचा, फिर चंदू के हाथ में तलवार देखकर पुन: उसे म्यान के पेट में घोंप दिया।

चन्नी बिम्मो की खिड़की के बाहर रुक गया, 'ये चन्दू खतरनाक आदमी है। घर में तलवार रखता है......। चाहो तो इसी केस में पूरी गरीब गली के झोंपड़े वाले बंध सकते हैं।' 'नईं मौसी वो मुरदा अजगर तो क्या निगलेगा, बँगले वालों का अजगरी मुंह सारी बस्ती को हड़पने की तैयारी कर रहा है,' बिम्मो बोली 'अमीर लोग अंदर ही अंदर हांडी पका रहे हैं।' उसने चन्नी की ओर इशारा करके धीमे स्वर में कहा 'पहले भी चन्नी के बड़े भाई ने गुंडों से तलवारें चलवाकर चंद झोंपड़े वालों को अपने घरबार बेचने पर मजबूर किया था।' मोटी औरत स्तब्ध-सी खड़ी थी 'तो मुआ असली अजगर तो जिंदा है- खुदा रहम करे।' 'नईं भइये, अजगर का मुंह खुला है।'... चन्नी को अपनी ओर घूरते देखकर बिम्मो ने भड़ाक से खिड़की बंद की और पीछे हट गई।

कहानी का टेक्सचर बड़ा विस्तृत है। टोन में एक तानता की अपेक्षा विकासशीलता अधिक है। कहानी में घटना के चित्रण की अपेक्षा पात्रों के अन्तर्मन और अन्तर्मन से जुड़ी उनकी प्रतिक्रियाओं के बारीक चित्रण का अधिक महत्व है, ये प्रतिक्रियाएं कहीं-कहीं कथानक की चाल में अवरोध पैदा करती हैं फिर भी टोन को बरकरार रखा गया है। काफी अच्छी कहानी है।

5.2.2.7.2. स्मृति भंवर प्रस्तुत कहानी में टी.बी. की मरीज के प्रति प्रेममिश्रित सहानुभूति का चित्रण हुआ है। कहानी का विषय है अस्तित्ववादी मनोवृत्तियों से प्रभावित

रोमांटिक चेतना और मृत्यु-भय की पीड़ा का चित्रण, कहानी में अनकहा रह गया प्रेम काफी अच्छे ढंग से व्यक्त हुआ है, दुःखवादी मनोव्यथा का चित्रण काफी सशक्त है। कहानी के दोनों पात्र काफी संवेदनशील हैं और उनकी प्रतिक्रिया काफी सजग है। कहानी में दार्शनिकों की-सी कई टिप्पणियां रची पची हैं जो कहानी को अतिरिक्त सौंदर्य प्रदान करती हैं।

सुरभी बोली थी 'मैं जानती थी डॉक्टरों के पास इसका कोई निदान नहीं। डिज़ीज़ इज इन द फाइनल स्टेज।' हां, मुझे चले जाना है... दूर, जहां मरना आसान हो। यादों के पंछी पालने ही नहीं चाहिए, बाद में दुःखदायी हो जाते हैं, कलेजे को चोंच से कुरेदते हैं।' उसकी आंखों में निर्लिप्तता छा गयी थी.....।

'मेरे अन्दर वह चीज़ मरती जा रही है, जिसे हम मोह कहते हैं........ मन में कई जिज्ञासाएं कुलबुलाती हैं।' मुझे अजीब-अजीब बातें सूझती हैं। जीवन क्या है? फूल क्या हैं ? अब मैं थोड़ा-थोड़ा समझने लगी हूं, पतंगे मौत की ओर क्यों लपकते हैं....।

मैंने चाहा था जाने से पहले वह कुछ देर मेरे पास बैठ जाती ...... मेरे कान अनसुना-सा कुछ सुनना चाहते थे। ऐसा कुछ जो जीवन भर मेरी सम्पत्ति बना रहे......। कैसी विडम्बना है। वह नहीं आयेगी..... यह जानते हुए भी इन्तजार बना हुआ है, जो जीवन पर्यन्त हृदय को कोंचता रहेगा।

कहानी में अस्तित्ववादी रुग्ण-मनोवृत्तियों को काव्यात्मक स्तर पर बुनने का सफल उद्योग किया गया है, घुटन, अकेलापन और मृत्युभय से उपजा अजनबीपन रोमांटिकता में घुल कर अभिव्यक्त हुआ है। कहानी का टोन अस्तित्ववादी है, मृत्यु से साक्षात् करने की आकांक्षा से जुड़ा है। टैक्सचर अच्छा बन पड़ा है, दुःखवादी चित्रण भी संवेदना को जागृत करता है।

5.2.2.7.3. ड्राक्यूला :- प्रस्तुत कहानी में विवाह की आकांक्षा से ग्रस्त परन्तु बदसूरत और उपेक्षित लड़की की मानसिक पीड़ा का सशक्त चित्रण हुआ है। नारी की अन्तर्वेदना, नर-नारी के परस्पर रिश्तों के प्रति टिप्पणियां कहानी को अतिरिक्त गति देती हैं और कुंवारी लड़कियों के अन्तश्चेतन को प्रस्तुत करने में सक्षम हैं। कहानी में नटवर, जग्गी, प्रमथ और वार्डन का चरित्र कहानी की नायिका के अन्तश्चेतन को स्पष्ट करने में सहायक है। नायिका निशा के आत्मसंलाप में काव्यात्मकता का पुट कहानी को अतिरिक्त सौंदर्य प्रदान करता है।

उदासी निशा के जीवन का आधार हो गई है, 'अहसास ज़ख्मी परिंदे की तरह तड़पते रहते हैं, ऋतुचक्र की प्रत्येक आवृत्ति पैनी तलवार बन कर उसके ज़ेहन को घायल कर जाती है। शादी के लिए सही, मेरे अरमानों की आग बुझाने के लिए कोई आए फिर चाहे मेरी हत्या कर दे। कितना रोमांचक होगा यह सब ।...... दुनिया की तमाम गधियां डाक्टरों इंजीनियरों से ब्याही जायेंगी और हम प्रतीक्षा करते करते बुढ़ा जाएंगी'-उसे क्या मिला है इन पांच वर्षों में।''चुहलबाज शिकारी नटवरलाल या उस जैसे कमीने। अथवा उससे भी पहले अंकल प्रमथ

की तरह बेबस चिड़ियों पर झपटने वाले उकाब। काश । एक सीधा सादा हमसफर मिल जाता चाहे वह ड्राक्युला ही क्यों न होता ....?'

इसे ड्राक्युला की तलाश है...... 'लड़कियों के लिए पति ड्राक्युला है....' वार्डन हमेशा की तरह दुहराने लगती 'शादी का गठबंधन होते ही वह अपने नश्तर जैसे दांत शाह रग पर गाड़ देता है और तब तक रक्त पीता रहता है जब तक औरत का शरीर चमकीले कोरे कागज़ की तरह न हो जाए।' 'बस बस मिस, इतना तो न डरायें। ड्राक्युला फिर ड्राक्युला है–हमारा प्राण प्यारा।' निशा ठठाकर हंस पड़ी। वार्डन की आंखें नम हो आयीं । मुझे भी ड्राक्युला का इंतजार रहा था। वह आया भी, वादे भी किये लेकिन एक रात को जब उसने अपना आप नंगा किया तो वह ऑक्टोपस निकला। ... देखो, कुंवारी लड़की को शादी से पहले किसी ड्राक्युला से नहीं मिलना चाहिए। वह ऑक्टोपस भी हो सकता है।'

कैंटीन के पास वह शैतान नटवर के रिमार्क्स सुनकर स्तब्ध रह गयी थी। 'हाय। काश कि मैं किसी का तकिया होता।'..... जाने किस हरामजादी ने उसे सुना दिया है ? किसी वक्त किसी को क्या अच्छा लगेगा, इसका क्या ठिकाना, फिर भी कभी बात बन जाने पर नटवर से पूछेगी कि उसे उस वक्त उसमें क्या चीज़ अच्छी लगी थी, उसने एक छोटी-सी चिट लिख कर नटवर को पकड़ा दी थी.... निशा को देखते ही नटवर की आंखों में एक शरारत-सी तिरने लगती, जिसे वह निरुपाय सहती। उस दिन किसी गंभीर मज़ाक के मूड में दिखता था.... बोला 'मेरा एक दोस्त है, जग्गी। बेचारे का विवाह नहीं हो रहा। उसी शाम नटवर अपने दोस्त को गर्ल्स होस्टल में ले आया था....नटवर बेहद असह्य होता जा रहा है.... जी चाहता है....गुस्से से धक्के मरवा कर बेइज्जत करवाये......लेकिन नटवर से सम्बन्ध बिगाड़ना निहायत बेवकूफाना हरकत होगी...।

हर शाम जग्गी छड़ी टेकता हुआ गेस्ट रूम में चला आता है । वह सोचने लगती यदि इस व्यक्ति की आंखें न गयी होतीं तो क्या इसे मेरा सहचर्य पसन्द आया होता ? .... क्या इसने हब्शी चेहरे की उपेक्षा न कर दी होती ? जग्गी को लेकर लड़कियां उसे चिढ़ाती 'अरी किस का तकिया है, तेरा या कुंवारी बुढ़िया का ?' सालियो, तुम सभी इसे तकिया बना लो। राज़ छिपा रहेगा। रास्ते में आता देखकर आंखें भी झुकानी नहीं पड़ेंगी।' जली कटी सुन कर लड़कियां हंस देतीं ।.......

आवेश-सा कुछ पूरे शरीर में झनझनाते हुए दौड़ गया। लगा था......कोई पगला बूढ़ा उसके अंगों को बेतहाशा मथे जा रहा है, अंकल प्रमथ कई रातों तक ख्वाबों में आकर कुहराम मचाते रहे थे...... उस समय डाक्टर अंकल को क्या हुआ था ? काश उन्हें रोका न होता...... आ जाकर एक जग्गी है ..... जग्गी के दिल में क्या है, वह कभी नहीं बतलाता। जब कभी वह जग्गी के साथ सट कर बैठती है, दिल कैसा-कैसा हो उठता है। उसके हाथ निशा के जिस्म का गीत गढ़ने लगते हैं.....जीवंत और गदराया-सा कुछ ठंडा नहीं, मगर नर्म।......निशा विरोध नहीं

करती शरीर लम्बा-सा खिलाकर उसे उत्साहित करती है। कई बार उसे लगा जग्गी उसका सब कुछ हो गया है। लेकिन जग्गी पर कुंआरी बुढ़िया का जादू काम कर गया है...उसने तय कर लिया है आज शाम अपने कस्बे में वापस चली जाएगी। वहां पहुंच कर सबसे पहले अंकल प्रमथ के क्लीनिक पर जायेगी और उनके आगे अपना घायल हाथ फैला देगी ....।

लम्बी औपन्यासिक कहानी है। रोचक वाक्यवलियां कहानी को अतिरिक्त सौंदर्य प्रदान करती हैं।

5.2.2.7.4.भीगी मिट्टी उपन्यासिका जैसी लम्बी कहानी है जिसमें आंचलिक रंग के साथ-साथ अंचल का टोपोग्राफिक चित्रण हुआ है। पाकिस्तान से अपने मां-बाप से मिलने भारत आए जग्गो के मीठे-तीते अनुभवों और उसके मां-बाप की निर्धनता सम्बन्धी समस्याओं को उनकी पवित्र ममता के संदर्भो में प्रस्तुत किया गया है। कहानी में एक जाति-विशेष के लोगों के जातीय चरित्र के साथ-साथ अपने शोषण, दमन और उपेक्षा से जूझते उनके साहस और उत्साह को कथाबद्ध किया गया है। जाति विशेष में आई राजनीतिक चेतना का वे कितना और किस तरह से उपयोग कर रहे हैं, इसका विशद चित्रण हुआ है। यह भी स्पष्ट किया गया है कि इस जाति विशेष के लोग जो थोड़ा सम्पन्न हो जाते हैं कैसे अपनी ही जाति से अलग हो कर सम्भ्रान्त वर्ग में शामिल हो जाने में गौरव समझते हैं। कहानी में भारत और पाकिस्तान दोनों देशों के निर्धन व्यक्ति के सुख-दु:ख का तुलनात्मक स्वरूप प्रस्तुत किया गया है। एक काल-विशेष में बंधी हुई इस कहानी में मानवीय संवेदना देशकाल के बंधन से ऊपर उठ गयी है। कहानी में लोकचरित्र का उज्ज्वल रूप भी मिलता है और आंचलिकता का पुट भी कहानी को सौंदर्य प्रदान कर रहा है।

अपनी मां की अपने संबंधियों की धरती होते हुए भी मुल्क पराया है, अपनेपन में भी अजनबीपन का अहसास हर कदम पर हावी हो जाता है..... परायी धरती और झगड़े पर उतारू दो शराबी.... मन को पुख्ता करते हुए उसने पूछा 'तुम कौन हो ? 'दोनों शराबी बोले 'हमें नहीं जानते ? 'हम बेताज बादशाह हैं' वहम की लहर पर सवार शराबियों की बातचीत सुनकर अजनबी मुस्कराया।

'हैं पाकिस्तानी है तो ग्रामोफोन बजाने की बात है कि पुलिस के हवाले करने की ? क्या मालूम जासूस है या गोरिल्ला ?... पैंतीस साल के बाद कैसे मां-बाप की ममता उमड़ पड़ी ? पहले क्यों न आया ? मैं चलता हूं, जरा देखूं....इन लोगों के तो मोम की नाकें हैं ..... पंडित द्वारिका जी कंधे पर लाल उपरना रख कर तेजी से डोमटोला की ओर भागे थे..... मुझे अपने पर बस नहीं है सैहब्बा। अपने बच्चे को मिलना है मुझको। 'भागते भागते वह पंडिताचार्य द्वारिका जी से टकरा गई....' शिव शिव। लड़के की खुशी में पगला गयी है बावली। अब शाम को नहाना पड़ेगा।'.....तितरू ने कहा 'कीड़ू से बोल, बैंडबाजा लेई आये। इस घर के रामचंदर जी पैंतीस साल के बनवास से घर आ रहे हैं.....उसे कहना कुछ दिनों में धान की कटाई हो जायेगी...

उसका कर्जा रहा मेरे पर।'' .....।

'पगली ऐसे ही गये जायेगी या पहचानेगी भी। के खबर पाकिस्तान का भेजा गोरिल्ला हो।' 'कोई सियासी बात भी तो हो सकती है, ममता की आड़ लेकर बहुत से लोग गद्दारी कर जाते हैं..... जासूस कई तरह के बहुरूप बना कर फौजी नक्शे ले जाते हैं।'

:''संदोखो की ममता आहत हो उठी है.... तमाम भीड़ को चुनौती देती उसकी आंखों में वात्सल्य की जगह क्रोध भर आया। ''मैं अपने लाल को खूब पहचानती हूं। कहे देती हूं, अब मती जबान न लड़ाये कोई मेरे से-मुझसे माड़ा और कोई न होगा।'' जग्गो ने जेब से बटुआ निकाला..... नोटों की गड्डियां देखकर मुखिया जी की पुतलियां फैल गयी 'बस बस पुत्तर सौ का एक कागज़ काफी है।'-तितरू ने पहली बार अपनी बिरादरी में किसी के पास इतने सारे नोट देखे हैं। उसे तसल्ली हुई कि सचमुच वह लखपति का बाप हैं। गर्व से गर्दन तन गयी ।..... मुखिया जी के आंगन में जिस अपनेपन का उसने अनुभव किया था अब अचानक उसकी कृत्रिकता उसके सामने उजागर हो गयी है... 'ओ मां, तुम लोग इस हाल में रह रहे हो...... लानत है मेरी कोठी पर जिसमें मेरे नौकर तुमसे बेहतर जिंदगी जी रहे हैं..।

'सुबह मुझे वापस चले जाना है'.... अंगारों पर रोटी सेक रही संदोखो की उंगलियों के पोर जल उठे, हां मां.....इस अंधेरे कमरे में मुझे नींद नहीं आयेगी.......' 'तूं आ गया है, अब बिजली लगवा ले न।'......'मैं तो लगवा दूंगा । मेरे जाने के बाद किराये का क्या करोगे तुम लोग? बाबूराम तो शराब से घर को रोशन करेगा।' ......बाबू राम पर उबलता हुआ तेल गिरा हो जैसे। वह चिल्लाया हां, हां....करेगा। किसी के पेट में क्यों दर्द हो? अपनी मेहनत के रुपये का कोई चाहे जो करे।' मुझे चले जाना है... वहां मेरी बीवी और बच्चे हैं, तू नहीं समझ रही मां, मैं वहां का शहरी हूं। चाहूं तो भी पासपोर्ट की मियाद से ज्यादा नहीं टिक सकता । पुलिस पकड़ कर उधर पहुंचा देगी।' 'इसका दिल हम लोगों में नहीं लगा, मां। गरीबी के गले कब लगी है अमीरी? सब झूठ है कोई किसी का भाई नहीं, बाप नहीं। सब बनावटी बातें हैं।' भावनाओं की खींचतान में जो सच्चाई उभरकर सामने चली आयी है- वह अंतिम यथार्थ है..... महज संवेदना के सहारे जिंदगी की तमाम सुविधाओं को कुर्बान नहीं किया जा सकता, तेरा परमिट कितने दिन का है।'......पंद्रह दिन का है। लेकिन सोचता हूं, मिल लिया तो लौट जाऊं। '....।

बैठक में बैठा जग्गो..... मुखिया जी की नसीहतें हज़म कर रहा है 'देख न बेटे, तू पैसा लेकर आया है। इसे अच्छे काम पर लगाना चाहिए।...... मेरा दिमाग और तेरा पैसा होगा तो दौलत खन-खन करती बरसेगी। हमारे टोले में लोगों को पैसा उजाड़ने की बुरी लत है।.......इसी वास्ते तो हमारी बिरादरी बैकवर्ड रह रही है।' नाश्ते की दावत के पीछे असली भेद जान कर जग्गो मन ही मन हंसे जाता है। वह सोच रहा है, मुखिया आदमी है या स्वार्थ का कीड़ा।.. आज जग्गो ने अनुभव किया है, कयामत किसे कहते हैं..... अपमान की बाढ़ ने उसके पूरे अस्तित्व को तहस नहस कर दिया है 'तमीज से बोल बे बुडढ़े।' 'उसके हलक में क्रोध से

एक डाट सी बैठ गयी है। जेबें टटोलीं बटुआ नदारद है।....

आत्म विस्मृत फफक उठा है जग्गो..... मां के आंसुओं से नीचे मिट्टी के कण कण भीग गये हैं। वह विचलित हो उठा है। भीगी मिट्टी में ममता के स्पंदन दीखने लगे हैं। अचानक यह मिट्टी मां की आकृति में ढल गयी है... तीनों मिल कर रो रहे हैं...... अब के बिछड़े कब मिलेंगे? संदोखो की तमाम आशाएं रेत के घरौंदे की तरह ढह चुकी हैं.... वो कलमुंहो बाडर की लैन इधर आने देगी तब न ...

यह गोस्वामी की उत्कृष्ट औपन्यासिक कहानी है, सीमा रेखा के आरपार के जीवन का अच्छा चित्रण हुआ है।

5.2.2.7.5. हड़ताल— कहानी में साधारण से कस्बे में धीरे धीरे फैल रही पूंजीवादी
वणिक संस्कृति का चित्रण किया गया है। इस संस्कृति के गुण दोष का चित्रण करने के साथ-
साथ मज़दूर वर्ग में बढ़ रही हित्त-चेतना का अच्छा चित्रण हुआ है। दुकानों पर काम करने वाले
मजदूरों और पल्लेदारों की हड़ताल यद्यपि राजनेताओं द्वारा प्रेरित है परन्तु मज़दूरों का संघर्ष
राजनीतिक न होकर अपनी हित्त-चेतना के स्वरूप-विकास को ही उद्घाटित करता है। दुकानदारों
की कुटिलता और शोषण के हथकण्डों के खिलाफ निर्धन मजदूरों का संघर्ष चल रहा है।
जिसमें वर्ग-संघर्ष की चेतना तो विकसित हो ही जाती है, यह बात अलग है कि अच्छे मौके की
तलाश में संघर्ष स्थगित हो जाता है। मज़दूर वर्ग की अंगभीरता, दुःख और त्रासदियों को ठहाकों
में उड़ा देने की कुवृत्ति और अश्लील प्रसंगों की चर्चा में अपनी शक्ति और सामर्थ्य के हनन की
वृत्तियों पर कहानी में अच्छा व्यंग्य साधा गया है, कस्बाई जीवन में धीरे-धीरे बढ़ रही पूंजीवादी
वृत्ति और इस वृत्ति के विरुद्ध संघर्षशील साम्यवादी सोच का अच्छा चित्रण हुआ है। अच्छी
कहानी है।

बेलदारों के संगठित उदय को बड़े आश्चर्य से देखा जा रहा है... बेलदार भी अपने
कदम पर सशंकित थे। चतरू अनपढ़ है परन्तु व्यवहार जानता है.... उसके आदमियों ने तमाम
मज़दूर डेरों में मशहूर कर दिया था कि चतरू ने ढाई गज़ का चितरा खाली हाथों मारा था....
सारे पंगे की जड़ एक चतरू ही है। थैली शाह ने उसे समझाया भी था कि अगर तुझे लीडरी का
शौक चर्रा रहा है तो फिर चाहे जो करो। हां, नफा नुक्सान देख लेना। चत्तरू मजूर डेरों के
निश्चय पर अडिग है..... ''अब चार रुपयों के लालच में हमारा मजूर इनके गोदामों में मिलावट
नहीं करेगा....... देश से धोखा नहीं करेगा। हम लोगों की मेहनत के बदले क्या मिल रहा है।
कारखाने के मजदूरों जितना तो नहीं मांगते पर बराबर मजूरी पाने का हक तो हमें है, मुर्कर रेट
से कोई कम न लेगा.... कम लेने वाला गद्दार होगा।''

उधर बिस्सा उबल रहा है, थैली शाहों की कमीनगी ने उसके जमीर को घायल कर
दिया है ''समझ क्या रखा है सूअर के बीज़ों ने इस तरह हमारे अंडकोष कुचल कर वे हमें

आज्ञाकारी बैल बना देंगे..... चिनरा नहीं आया तो वह अकेले मोचा लेगा....

साधु की आंखों में उलझी सुर्ख डोरियां देख कर सुभाना दहशत ज़दा होकर थैली शाह के अहाते की ओर भागा था.... कश्मीरी मजूरों का हजूम अहाते से निकल कर इधर आने लगा.... जालिम के सिर पर उबलते चावलों की हांडियां फोड़ो'.........। थैली शाहों के दलाल चिल्ला रहे थे। इधर साधु 'बोल ओए, क्यों आए इधर ? हमारे पेट पर लात मारने रिज़क छीनने?'.....चौबारों की खिड़कियां खुलने लगीं....एक खिड़की से झांकता प्रेमिका का चेहरा दिखते ही साधु के चेहरे पर चमक दौड़ गई.... दौलत कुण्डली की घरवाली-उसकी प्रेमिका. उसके इसी अड़ियलपने पर फिदा है। मर्द पट्ठा जो न करे थोड़ा।'

सुना है थैलीशाहों ने दंगे का वाक्या दर्ज कराया है, हालांकि दंगा हुआ ही नहीं।..... अब मानो, गांव लौट चलो। आज रात वाली बस में सभी चलो, जो दिन आ रहे हैं वे हमारे लिए बुरे होंगे। पुलिस मार-मार कर भुरता बना देगी....... थैलीशाहों के गन्दे हाथों बेगैरत होने से पहले अपना रास्ता ढूंढ लो......सस्ते मजूर के सामने तुम्हारी पूछ न होगी।'

पीरा ने एक दर्दीली भाख छेड़ दी......'साधु गर्दन खिड़की से बाहर निकाल कर पीछे छूटते कस्बे को देख रहा है 'किस सोच में डूबा है ग्रांईं। बिस्सो पूछता है 'कस्बे में छूट गई हीर की याद आ रही है। उसका क्या होगा?'.....'होगा क्या ? उसकी भी छः महीने की हडताल।' बस में कहकहा गूंज उठा। सैक्स का पुट देकर अच्छी कहानी लिखी गई है।

5.2.2.7.6. खिलौना– प्रस्तुत कहानी में गूंगे व्यक्ति की विवाहेच्छा का कारुणिक चित्रण किया गया है। अनपढ़ और यतीम साईं अपनी इस मासूम इच्छा और इस इच्छा की अभिव्यक्ति के कारण छोटे बड़े सभी की निगाहों में तमाशा बना हुआ है। लोग विवाह का लालच देकर उसका भरपूर शोषण करते हैं। आर्थिक और मानसिक शोषण के साथ-साथ उसकी मानवीय कमज़ोरी का मजाक उड़ाते हैं जबकि साईं में मानवीय दुर्बलता के साथ-साथ मानवीय गुणों की भी कमी नहीं है। विडम्बना है कि वह सभी के लिए उपयोगी वस्तु हो कर रह जाता है और जब उसे अपने आश्रयदाता के धोखे का पता चलता है तो मोहभंग होने के साथ ही वह पागल हो जाती है। साईं का चरित्र काफी कुशलता से उभारा गया है।

गली के तमाम बच्चों के लिए अचरज का खेल है वह साईं ......हंसता है तो वे हंसते हैं, वह रोता है तो भी वे हंसते हैं......अजब तमाशा। कीच भरी आंखें 'लाड़ी' शब्द समझ आते ही चमक उठती हैं... जाने कब लड़की वाले उसे देखने आएंगे। आएंगे भी या ऐसे ही शादी की बात करके ईशरी उसे गुड़ की थैली पकड़ा देती है...

ईशरी झट बोल पड़ी 'तुम चुप करो जी। डेढ़ सौ रुपये माहवार लाता है। कहीं बि्दक गया तो समझो एक टैम अपने को भी फाका काटने पड़ेगा।'.... प्रेजीडेंट वक्त की नब्ज पहचान कर संभाला 'उठ पट्ठे रोटी खा ले। तेरी शादी मैं करवाऊंगा।' यही साईं की कमज़ोर रग थी।

पलक झपकते तमाम गुस्सा काफूर हो चुका था। बिन शादी के मर के तो आदमी भूत बन जाता है मरने के बाद तर्पण करने वाला तो कोई चाहिए.... 'क्या मैं कुवारा मरूंगा ठहरो पिल्लो।'

शादी की आस फूटे अंडे की तरह बरबाद हो गयी है..... गुस्से में बाहें लहराता ईशरी को गालियां दे रहा है.... कब होगी मेरी शादी ? अब तो दांत भी खिसकने लगे....

साई का यह रूप देखकर प्रेजीडेंट भी सहम गया था...... गाय की तरह सुशील रहने वाला गूंगा आज सिर पर चढ़ने लगा है, सोचते ही उस पर क्रोध चढ़ आया 'नहीं होगी तेरी शादी। जिससे तेरे ब्याह की बात चलायी थी उसके अब तीन बच्चे हो चुके हैं।' क्रोध में सच निकल गया था।

लेकिन साईं को जैसे नंगा करके उबलते पानी में फेंक दिया गया हो....... प्रेजीडेंट को दोनों कंधों से पकड़ कर उसने पूरे जोर से झकझोरा बां-बां-बां। नहीं होगा मेरा ब्याह?' 'नहीं होगा, तू कुंवारा मर कर मसान बनेगा।' साईं के हाथों में जाने कहां से अनन्त शक्ति चली आई थी वह प्रेजीडेंट का गला दबाने लगा।'....... ईशरी पूरी ताकत से कुर्सी से उठी और साईं को सिर के बालों से पकड़ कर पीछे घसीटा।

खड़े होते ही साईं ने छह सात गगन भेदी ठहाके लगाये....साईं अपने सिर के बालों को दोनों हाथों से उखाड़ उखाड़ हवा में उड़ाये जाता था...... ईशरी आतंकित और फटी फटी नज़रों से उसे देखे जाती थी। बच्चों की आंखों से आंसू टपक रहे थे जैसे प्यारा खिलौना टूट गया हो। अच्छी करुणा प्रधान कहानी है।

5.2.2.7.7. सर्दआग - 'सर्द आग' कहानी में सीमा रेखा के साथ लगते क्षेत्र में रहने वाले लोगों के व्यक्ति-स्वभाव के साथ-साथ सामूहिक स्वभाव को चित्रित किया गया है। सीमा रेखा के आर-पार रहने वाले लोगों में परस्पर कितनी घृणा है और कितना प्रेम, कहानी में इस कथ्य को उभारा गया है। मानवीय सांझ देशकाल की सीमाओं से कभी कभी ऊपर भी उठ जाती है यही दिखाना प्रस्तुत कहानी का उद्देश्य प्रतीत होता है। साथ-साथ सामन्ती सोच के अवशेषों को भी लेखक उद्घाटित करता चलता है।

'हालत अच्छी नहीं लगती, अमरू। गोरिल्ले फिर से आने लगे हैं। जंग होगी'...... 'जो कल होनी है, आज हो.....कभी ढोर डंगर पार जा रहे हैं, कभी फसलें काटते गोली चलने लगती है। बार्डर का जीना भी कोई जीना है.. जुगनू की आग की तरह सर्द सरहद की लकीर कब लावा उगल कर जिन्दगी को निगलने लगेगी कौन जाने ?'

चौपाल के उस ओर जीप रुकी 'ताऊ ये गोरिल्ला तो क्या होगा ? मेरे ख्याल से बाबूलाल की बेटी से मिलने आया होगा। क्यों वे तेरा नाम गयूर है न ?' 'हां, मैं गयूर हूं भाई। मुझे छुड़ा दे। पूरी जिंदगी तेरे लिए दुआएं मांगूंगा.....' 'तुझे कोई नहीं बचा पाएगा' पोमा दहाड़ा तूने इधर की लड़की पर नज़र रखी, इतना कुफुर .....ये पकड़ा न जाता तो बाबूलाल की लड़की

को खंभे के उस पार भगा ले गया होता......' बंदूक उठाते हुए पुन: पोमा के कदम लड़खड़ा गये। ''ठीक है, ये तेरी मंग ले जाये, तुझे तराज न सही। पर जहां तक गांव की आबरू पर हाथ डालने का सवाल है, इसे हम जिंदा न छोड़ेंगे।'

सामने से बाबूलाल बदहवास-सा दौड़ा आया 'रोको ओए रोको, बेईमानो। ये जुल्म मत करो। रतनो ने ब्रेक लगायी ''क्या बात है ताऊ'' ''ये दोस्त है बेटा, दुश्मन नहीं। इसे खोल दो..... तुम बिना सोचे समझे जो हत्थे चढ़ा उसे ज़बहा करने पर तुल जाते हो।'' ''क्या करें उधर भी तो यही करते हैं। काका सैनी वाली बात अभी एक हफ्ता पहले हुई थी।''..... ''लेकिन अपना पराया तो देख लेना चाहिए चांडालो।'' ''हम समझे नहीं। ये लड़का अपना ? क्या मतलब? क्या हमारे उधर जाने वाले लड़कों की मदद करता है ? अमरू ने पूछा।'' भाइया ये तो रशीदे का बेटा है'' ....''है पोमा स्तम्भित-सा खड़ा रहा '' ओए भैड़ेआ पहले क्यों नहीं बताया तू उस फरिश्ते का बेटा है।'' पोमा ने आसपास खड़े लड़कों से कटु स्वर में कहा ''बे अकलो, खड़े-खड़े मुंह क्या ताक रहे हो। जाओ फूल मालाएं ले आओ। तुम्हारा खान भाई अब घर जाएगा।'' क्रूरता की धूल सज्जनता की बारिश में न जाने कहां बह गई थी।

फूलों से लदा गयूर अब जीप की अगली सीट पर बैठा था, आगे पीतल के बाजे बजाते डोम चल रहे थे-घरों के जमघट से एक बुढ़िया आगे जीप तक बढ़ आयी थी। रतनो ने जीप रोक दी, 'पहचाना मुझे गोगे ?'......अचानक उसके चेहरे पर चमक-सी दौड़ गयी 'बुड्ढी खाला।'...... 'खस्मा खानेआ। तू वैसा का वैसा रहा नटखट।' बुढिया ने उसका माथा चूमा। जीने जोगेआ, तुझे क्या पड़ी थी भूखे शेर की मांद में आने की ?' 'खाला अब्बा जान बाबूलाल का जिक्र किया करते थे। उसकी अमानत सन्तालीस से उनके पास पड़ी थी... मरहूम वालिद की उसी ख्वाहिश को पूरा करने के लिए यह दांव खेल गया।'

पेड़ों के झुरमुट के करीब पहुंच कर जीप रुकी.....रतनो ने उसे भींच कर गले से लगा लिया। 'संभल के निकल जाओ, मेरे भाई। अब कोई खतरा नहीं यहा।' 'मेरे लायक कोई काम हो तो बतलाना,....... भाई।'...... 'मेरे भाई के कातिल का सुराग लगाना, गयूर । मैं तेरा अहसानमंद रहूंगा। दिन रात मेरे कलेजे में आग-सी लगी रहती है। अन्दर ही अन्दर ये मेरे वजूद को जलाये जा रही है।'' .... अब की गयूर ने उसे बांहों में भर कर गले लगा लिया...। सीमा के आरपार रह रहे लोगों के परस्पर के नये पुराने रिश्तों की बड़ी सशक्त अभिव्यक्ति हुई है। कहानी की भाषा बड़ी मोहक है, लोक जीवन का स्पर्श सुंदर है।

5.2.2.7.8. नीड़–प्रस्तुत कहानी में महत्वाकांक्षा के कारण पथ-भ्रष्ट हो चुकी लड़की की जीवन स्थितियों का सशक्त चित्रण किया गया है। विडम्बना यह है कि वह जीवन में स्थायित्व पाने के लिए विवाह करना चाहती है जबकि विवाह का प्रस्ताव रख रहा लड़का उसे विवाहिता पत्नी के रूप में नहीं मात्र अपने बिजनेस को सुविधाजनक बनाने के लिए अपनाना चाहता है। भटकी हुई नारी की मनोव्यथा को कहानी में बाखूबी चित्रित किया गया है।

लेकिन किसी स्त्री द्वारा किसी पुरुष से बलात्कार की बात पर आपको विश्वास नहीं आयेगा .....एकाएक वह मेरे साथ सटती गयी थी और तब मैंने अपने आप को उसकी मचलती बांहों और बोझिल सांसों के शिकंजे में महसूस किया था। आप शायद विश्वास न करें, लेकिन मेरी ओर से कोई जतन न हुआ था... अलबता मुझे हविस की भट्ठी में झोंक दिया गया था।

अचानक मेरी स्मृति में फ्लैश-सा कौंधा 'भाई जान एक मिनट व्यवधान के लिए क्षमा कीजिए। कहीं इस लड़की का नाम मीता तो नहीं ?' सांवली-सी चमकीली काली आंखों वाली, बात बात पर बाई गॉड का तकिया लेने वाली...... स्ट्रांग ड्रिंक्स की शौकीन। पुरुष की कमजोरी को आश्रय बना कर जीवन में आगे बढ़ने की उसकी रणनीति एक सम्पूर्ण असफलता सिद्ध हुई... ।

'इस वक्त कोई सहारा न मिला तो मेरी पूरी जिंदगी, अंधेरे आकाश में भटकने वाले उस पंछी की तरह हो जाएगी, जिसे अपना नीड़ नहीं मिलता। राजेन्द्र की दौलत का एक लाभ यह जरूर है कि इसकी आड़ में हम दोनों का कलुषित अतीत छिप सकता है...।'

मीता भौंचक्क-सी राजेन्द्र की ओर ताक रही थी..... 'मेरी जीवन संगिनी होकर भी तुम्हें अधिकार होगा कि दूसरों से पर्सनल कांटेक्ट रखे रहो। असल में मुझे जिस चीज़ से मतलब है, वो है सरकारी कांट्रैक्ट। तुम्हें मालूम है दौलत चरित्र या मर्यादा से नहीं आती' मीता की आंखें जलने लगी थीं.....'साफ साफ क्यों नहीं कहते कमीने कि तुम्हे पत्नी की नहीं, वेश्या की जरूरत है, जो तुम्हारे चैकों का रास्ता आसान बना सके। मैं थूकती हूं।' कहानी में अतीत-स्मरण का सहारा लेकर पात्र का चरित्र-उद्घाटन हुआ है। अच्छी कहानी है।

5.2.2.7.9. जिम्नोस्पर्म्स कहानी में मानव-मन की छिपी हुई इच्छाओं, जीवन-संघर्ष और प्रणयगत होड़ के ताने बाने बुनते हुए, प्रेम कथा को कहा गया है। साथ ही साथ नारी-मन के रहस्य को कहानी में बुनने का सफल यत्न हुआ है। कोमलता और करुणा की मूर्ति, कोमलांगी, हिंसक वृत्ति के एक लड़के के प्रति आकर्षित हो जाती है जबकि संवेदनशील लड़का उससे उपेक्षित रह जाता है, जहां तक कि एक संवेदनशील प्रोफेसर सिंह भी उससे उपेक्षित रह जाता है, बावजूद प्रणय निवेदन के। प्रोफेसर सिंह और हिंसक सुधीर का चरित्र-चित्रण काफी कुशलता से किया गया है। कहानी में भाषा काफी अच्छी है और काव्यात्मकता के बावजूद स्वत: स्पष्ट है।

शाम का एक अर्थ मेरे लिए सुमन का खो जाना भी हो गया है.... शून्य के कैक्टस उग आये हैं.... कैक्टसों के बीच सुधीर की आकृति उभर आयी है..... मुझे अनदेखा करके वह सुमन से बोला था हमारा लहू भी लाल रंग का है सुम्मी।' 'मुझे डब्लयू० बी० सी० के लिए स्लाइड माउंट करनी होगी तो तुमसे कहूंगी।' वह तत्काल हंसी का फव्वारा बिखेरते हुए बोली थी। सुधीर मेरी ओर इशारा करके बोला था... 'क्या तुम्हें इसके खून में आर० बी० सी० मिले थे ?'

उसने पैंट की जेब से चाकू निकाल लिया था..... सुमन के चेहरे पर आतंक फैल गया था.... मेरा लहू जमने लगा था.... 'डरो नहीं यह चाकू लो और पहले मेरे सीने में घोंपो और फिर इसके. खून देख कर निर्णय कर लेना सुर्ख खून किसका है ।

अनायास एक अपरिचित लिखावट का पत्र पढ़ते-पढ़ते हाथ कांप उठे 'नो सुमन, इस तरह जिसे भी मैंने अपना समझा, वही धोखा दे गया.... जहां भी चाह हुई वहीं ठुकराया गया।' सोचा आत्मदमन ठीक रहेगा.... आत्म दमन, इच्छा दमन, यही मेरा मूल मंत्र रह गया...परन्तु जब से तुम्हें देखा, मेरी तमाम इच्छाएं मूल रूप में जागृत हो उठीं..... कुछ दिनों से सुधीर के प्रति तुम्हारी आंखों में अनुराग बढ़ता देख रहा हूं। भगवान करे यह सब मेरा भ्रम हो। तुम समझदार हो, कदमों की बाट जोहता, मैं, प्रो० सिंह।

अचानक मुझे लगा प्रो० सिंह एंजियोस्पर्म्स से जिम्नोस्पर्म्स हो गये हैं। उनकी ख्वाहिशें जग जाहिर हो गयी हैं। मृग मरीचिका की भांति सुमन दूर-दूर होती जा रही है। रेगिस्तान के दूसरे छोर पर खड़े सुधीर की बांहों की ओर, और मैं दौड़ में पिछड़ गया हूं.....पिछड़ता जा रहा हूं।... प्रोफैसर सिंह अनर्गल प्रलाप कर रहे हैं। उनकी आकृति में बन्दर का प्रतिबिम्ब झलक उठा है। वह बोले जा रहे हैं, जैसे वनमानुष......शब्दों में आवाज़ नहीं, अर्थ नहीं..... स्ट्रगल फॉर एग्जिसटैंस...... जिजीविषा का संघर्ष......पिछड़ता हुआ मैं और परछाईं की ओर लपकते प्रो० सिंह.... सबसे आगे छुरेबाज सुधीर......। अजीब तस्वीरें हैं।....सुमन की सूरत भी एक पेड़ में बदलती जा रही है.....वह एंजियोस्पर्म है या जिम्नोस्पर्म मैं पहचान नहीं पाता।

सुमन जीवों के प्रति दयार्द्र है परन्तु छुरे वाले सुधीर से प्रेम कर रही है, उसके चरित्र का यह रूप समझ नहीं आ रहा। नारी तुम दुविधा हो।

5.2.2.8 खुले हाथ डॉ० राजकुमार के 1984 ई० में प्रकाशित कहानी-संग्रह 'खुले हाथ' में 1972 से 1976 ई० तक विभिन्न पत्रिकाओं में पूर्व प्रकाशित आठ कहानियों के अतिरिक्त 'पीले गुलाब', 'फिलासफर' और 'खुले हाथ' समेत कुल 11 कहानियां है। जम्मू-कश्मीर अकादमी से पुरस्कृत इन कहानियों में नयापन है, भाषा-पक्ष सबल और समृद्ध है। भाषागत काव्यात्मकता के बावजूद यथार्थ की सशक्त अभिव्यक्ति हुई है। इन कहानियों का मूल्यांकन प्रस्तुत है।

5.2.2.8.1 वेटिंग रूम कहानी एक कस्बे के मोटर अड्डे के प्रतीक्षालय के इर्द-गिर्द घूमती है। सैक्स की भूख और व्यक्ति की मानसिक कुवृत्तियों और विकारों की सशक्त अभिव्यक्ति सहज ढंग से इस कहानी में हुई है। पात्रों का बाह्य दिखावा और अन्तर्मन की चाह का अच्छा संतुलित चित्रण हुआ है।'मानी हुई प्रॉस है वह औरत ।' 'हैं ?' -प्रॉस शब्द ने उसके मानस पटल को कौतुल और मिठास भरा झटका दिया था.....औरत की मोटी आंखों में तरल-मोहकता थी।' ......'इसमें तो रस ही नहीं।' सुनते ही औरत की निगाह अपने शरीर पर बिछ-

मी गई। कहानी में व्यक्ति की सेक्स की भूख का भापाई अश्लीलता के माध्यम से अच्छा संयोजन हुआ है।

5.2.2.8.2 पीले गुलाब कहानी में आदर्श दाम्पत्य का चित्रण हुआ है। बीमार पत्नी के कारण पति की आकांक्षाएं अतृप्त हैं बच्चों के प्रति पिता के जिम्मेदार रवैये का भी चित्रण हुआ है। उसके गृहस्थ प्रेम का भी सशक्त चित्रण हुआ है। इस दम्पत्ति के परस्पर प्रेम का पुल है- एक छोटी मासूम-सी बच्ची, बेबी जो काफी चंचल है और मां-बाप के अन्तर्मन की छिपी हुई कामनाओं को उजागर कर देती है। बेबी ही मां के पड़ौसी मरीज़ के मन में वात्सल्य और सहानुभूति की भावनाओं को उकसाती है। कहानी में आदमी के अकेलेपन की पीड़ा को भी सशक्त अभिव्यक्ति मिली है। बिन बोले सद्गृहस्थ का सशक्त चित्रण किया गया है।

...अचानक दो नन्हीं बाहों ने मुझे घेर लिया और नन्हें होंठ मेरे होठों की ओर बढ़े....मैं हतप्रभ-सा रह गया...वह बोली 'कुछ नहीं, डैडी भी तो मम्मी से ऐसा ही कर रहे थे...! मैं चौंक पड़ा! वार्ड में इतना एकान्त होगा।......' तभी पति की भुजाओं में लहराती वीना का चेहरा क्षण भर के लिए सामने ठहर जाता है.....और मन उड़ता-उड़ता सा सकून महसूस करने लगता है।

बीमार आदमी के अकेलेपन के एहसास और उसकी अंतर्वेदना का सशक्त चित्रण हुआ है। कहानी की भाषा काफी समृद्ध है, वाक्य छोटे परन्तु भावप्रेरक हैं।

5.2.2.8.3 फिलास्फर कहानी में नपुंसकताजन्य कुण्ठाओं के कारण उपजे तनाव और संत्रास का मनोविश्लेपणात्मक चित्रण हुआ है। संतान की इच्छा के कारण पत्नी अपने दाम्पत्य जीवन में दरार डाल लेती है, दोनों का दाम्पत्य जीवन ढर्रा-सा जाता है। कहानी में वातावरण और पात्र के अन्तर्मन में परस्पर सामंजस्य बिठाया गया है, कहीं कहीं वातावरण प्रतीकात्मक भी हो गया है, कहानी की भाषा में काव्यतत्त्व का समाहार हो गया है, परन्तु भावुकता की अपेक्षा स्थितियों का सशक्त यथार्थपरक चित्रण कहानी को कमज़ोर नहीं होने देता, स्थितिगत चित्रण बड़ा महत्वपूर्ण है।

एक रात मदन और अनुभा दोनों मूड में थे....आलिंगन में कसी-कसी अनुभा सिसकार रही थी...अचानक मदन की पकड़ ढीली हो गई...उसे लगा जैसे मानिक की ऐनक का फ्रेम बिल्कुल सामने चमक रहा है....गलत निगाहों से घिरा मदन विचलित हो गया.....उन दोनों के बीच पिघला तांबा फैल गया था। अपने दाम्पत्य जीवन के प्रति अब दोनों सहज न रहकर सजग हो गए थे....मदन को लगा जैसे मानिक की कैंची उसकी ओर बढ़ रही है....वह फालतू टहनी-सा कांप उठा। ...गौरैया अपने घौंसले में थी...बच्चे नन्हीं चोंच खोल-खोल दाना मांग रहे थे....उसे लगा कि वह अपने जिस्म के टुकड़े-टुकड़े करके फैंक देगा। ....ऐसे नपुंसक जिस्म का जिंदा रहना....वह लौटा तो ठिठक गया....मानिक के हाथों में फूलों का एक जोड़ा था....उसकी उंगलियां अनुभव के अनचाहे बालों को हटाकर फूल टांकने में व्यस्त थीं....

कहानी की सिचुऐशनज़ सशक्त हैं और मनोविश्लेपक संकेत काफी पुख्ता हैं।

5.2.2.8.4 कमाई कहानी में दो अनाथ बच्चों के भरण-पोषण की समस्या को लेकर उनके चाचा ताया के झगड़े और उन की स्वार्थी वृत्ति का चित्रण हुआ है तथा मानवीय लालच का कहानी मे भण्डा फोड़ हुआ है। चाचा ताया दोनों ही बच्चों के भरण-पोषण के नाम पर उन्हें अपनी कमाई का साधन बनाना चाहते हैं, दोनों ही गिद्धों की तरह उनके गिर्द निकटतर हो रहे हैं। पंचायत बच्चों के भरण-पोषण की जिम्मेदारी उन्हें सौंपना चाहती है, साथ ही उनकी जायदाद के दो हिस्से कर देती है। परन्तु यह न्याय कितना स्वीकार्य है इसका पता कहानी के अंत में ही चलता है। कहानी का काफी सारा हिस्सा रिपोर्ट सुनाने जैसा ही है, जिसमें कहानी की मूल समस्या उजागर हो जाती है। पात्रों विशेष कर बच्चों और बंते के अन्तर्मन का अच्छा चित्रण हुआ है। बंते को बच्चों के बाप ने पढ़ाया है, वह बच्चों के हक में है परन्तु दूसरे दोनों चाचा ताया बच्चों से बेगार लेना चाहते हैं।

अंत में अचानक मोड़ खा जाने पर कहानी और भी जोरदार हो गई है। गांवों की पंचायत-व्यवस्था और उसकी न्याय-प्रक्रिया का आंखों देखा चित्रण हुआ है। कहानी का अंतिम वाक्य प्रतीकात्मक हो गया है और जीवन की अनन्त समस्याओं (जो क्षण भर के लिए टल गयी हैं) और अनन्त शोषण की ओर संकेत कर देता है।

5.2.2.8.5 शिराएं असफल प्रेम की दु:खांत कहानी है। बेरोजगारी के कारण प्रेमी हेमन्त का प्रेम परवान नहीं चढ़ सका। प्रेमिका अनामिका पिता की स्वार्थ वृत्ति और कमाऊ बेटी के ब्याहने में देर करने की वृत्ति के कारण कुंवारी रह गई है। उम्र खायी, बुढ़ाई सी, अधूरी-सी अनामिका विवाहित प्रेमी के साथ कुछ अरसा रह कर चली जाती है ओर हेमन्त अतीत की घटनाओं का स्मरण करता हुआ वर्तमान की ओर लौट रहा है, फ्लैश बैक पद्धति के सहारे प्रेम कहानी को बुना गया है। भाषा संकेतात्मक भी है और स्थितिजन्य प्रतीकों की व्याख्या भी करती चलती है।

बालकनी में बैठे हेमन्त को लगा उसके मन में भी गड्ड मड्ड अनेक रेशे हैं जो सुलझने की अपेक्षा अनामिका के जाने से और अधिक उलझ गए हैं। हेमू तुम समझते क्यों नहीं, डैडी बहुत खतरनाक दिखे थे, आज कहते थे, हमारी इज्जत पर डाका डाला है तो अंजाम के लिए भी तैयार रहे .....तुम समझते क्यों नहीं, डैडी को? अनामिका के स्वर में खीझ थी। तुम उनसे न मिलना प्लीज़।'

'तुम क्या समझते हो, डैडी मुझे इतनी जल्दी किसी की लुंगी में लिपटने देंगे, अनामिका ने लगभग बात खत्म कर दी थी। खैर, उसने साधारण घरेलू लड़की से ही शादी कर ली। बीवी मायके गई हुई थी......बाहर अनामिका खड़ी थी। अब हेमन्त से न रहा गया मन की सारी क्रूरता धुल कर रह गई, उसका संवेदनासिक्त हाथ अनामिका के हाथ पर था। दोनों की आंखों में एक

समझौता आकर ठहर गया। चलो यार जितने दिन साथ हैं पहले की तरह गुजार लें।

कहानी में प्रेम सम्बंधों की रोमांटिकता को यथार्थ के धरातल पर उतारकर परखा गया है और अजीब तरह की उदासी और हृदयस्थ भावना के निर्वाह को अभिव्यक्ति मिली है 'हेमू कमल तोड़ लाऊं! पर ये तो सफेद हैं उसकी आंखों में वैराग्य-सा कुछ झलक रहा था....वह डगमगाती-सी आगे बढ़ी तो पांव कीचड़ में धंस गया। हेमन्त ने बांह पकड़ कर उसे खींच लिया, 'ओफ् कीचड़ लग गया! 'वह तो पहले ही लग गया था! '...दोनों उद्विग्न मन से लौटे थे। उसे लगा एक ठण्डी छुरी उसके जिस्म में उतरती जा रही है अधिक देर तक वह हाथ थामें न रह सका ।

5.2.2.8.6 दु:स्वप्न कहानी में न्यायिक व्यवस्था के छिद्रों की ओर संकेत किया गया है और पुलिस व्यवस्था की कुंद जहनी पर चोट की गई है। इसी बहाने व्यक्ति के आत्मालोचन और आत्मग्लानि को प्रस्तुत किया गया है।

गिरफ्तार स्वयं तैरना नहीं जानता परन्तु हड़बड़ाहट में डूब रहे आदमी को बचाने का भरसक यत्न करता है। यश-कामना के अतिरिक्त जोश में डूब रहे व्यक्ति के गले को पकड़ लेता है। चिकने पत्थर पर से पांव फिसल जाने से डूब रहे आदमी का गला दब जाता है और आदमी मर जाता है। पहले तो बचाने वाले की बचाव की कोशिशों की प्रशंसा होती है जबकि वह सच्च को जानता है और अपने आप से लड़ता है। अपराध बोध से ग्रस्त रहता है। फिर मैडिकल रिपोर्ट के आधार पर उसे गिरफ्तार कर लिया जाता है क्योंकि डूब कर मरे व्यक्ति के गले पर उसी के हाथों का दबाव मान लिया जाता है।

मुकद्दमे के दौरान जेल में पड़े वह सारी कहानी को आत्मव्यथा के रूप में कह देता है। आदमी के अस्तित्व बोध और अकेलेपन की पीड़ा तथा अपने-आप को निर्दोष सिद्ध कर पाने की यातना को कहानी में सुदृढ़ता से पिरोया गया है। मैंने तो उसे बेहोश करके बाहर निकलने के लिए गला पकड़ा था...पैर न फिसलता तो गला न दबता...नहीं तूं हत्यारा है...तुम्हें तैरना नहीं आता था तो कूदा क्यों? हो सकता था वह बच ही जाता। लाश जल रही थी और मेरे मन में द्वन्द्व चल रहा था।'

कहानी में लाल और काले रंग को आग और धुंए, सच और झूठ, रक्त और दाग़ के रूप में प्रस्तुत करके प्रतीकों का अच्छा निर्वाह किया गया है। मानव-मन में समाए अकेलेपन और त्रास की निविड़ पीड़ा की सशक्त अभिव्यक्ति हुई है। छोटे-छोटे वाक्यों में भावुकता की अपेक्षा बौद्धिकता का नियंत्रण रोचक है। आत्मविश्लेषण शैली में लिखी उत्कृष्ट कहानी है।

5.2.2.8.7 सलीब-दर-सलीब कहानी में घरेलू रिश्तों, प्रणयगत ईर्ष्या के कारण रची गई साजिशों और बदल रहे मैत्री मूल्यों का अच्छा विश्लेषणपरक संयोजन हुआ है। बेकार तो नहीं परन्तु कम वेतन पर काम कर रहे व्यक्ति को घर में स्वीकार नहीं किया जा रहा, भाई-भाई

में नोक-झोंक होती रहती है, मार-पीट भी और घर की बदनामी के डर से बेटे को शहर से बाहर नौकरी ढूंढने के लिए प्रेरित किया जाता है, इससे मां के मातृत्व पर प्रश्नचिन्ह लग जाता है।

घर से दु:खी सूदन सुनीता के प्रति आकर्षित हो जाता है, दोनों में प्रेम पनप जाता है परन्तु सूदन का सहयोगी जो स्वयं सुनीता को चाहता है, साजिश रच देता है, कालेज नुमा अकादमी में वह स्वयं सच्चा बन कर सूदन को बदनाम कर देता है। सूदन न घर में चैन पाता है न अकादमी में, न उसका प्रेम ही उसे मिल पाता है। मानवी रिश्तों के घिनौनेपन और ओछेपन को प्रस्तुत कहानी में सशक्त अभिव्यक्ति मिली है। कहानी भ्रातृत्व, मातृत्व, पितृत्व, मैत्री, प्रणयानुभूति और छात्रों के प्रेम के खोखलेपन को एक साथ बुन लेती है....।

5.2.2.8.8 निरस्त्र कहानी असफल प्रेम की निविड़ अनुभूति की व्याख्या करती है और प्रेम की अनभिव्यक्त शिद्दत को समेटती हुई आगे बढ़ती है। 'मैं तुमसे प्यार करता हूं इतना भर कह देना ही कितना मुश्किल है, यही कहानी का कथ्य है। जब इतना कह दिया जाता है तो साजिशी वृत्तियां दो प्रेमियों को काट कर अलग फेंक देती हैं। आत्मकथात्मक नहीं बल्कि आत्म-विश्लेषण पद्धति में लिखी गई यह सशक्त कहानी है। प्रेम के अदम्य आकर्षण को कहानी में बड़े सशक्त और मोहक ढंग से पिरोया गया है।

'मैं उसके निकट होता तो मेरी बुद्धि कुण्ठित-सी हो जाती, वैचारिक विद्रोह ठण्डा पड़ जाता.....वह मेरी चेतना पर हावी हो गई थी...... और मैं चाहता कि समूची शक्ति से उसे देखता रहूं लेकिन रात-दिन का व्यतिक्रम ! न यह व्यतिक्रम टूटता और न मैं उसके जबड़ों से छूट पाता...जो अनुभूति मन में पनपती रही है वह पूरी तरह कह भी सकूंगा.....शब्द तो इसे पकड़ नहीं पाते।

हम दोनों के मेक अप में एक अन्तर बना ही रहा, बड़ी बात तो यह कि हम दोनों एक-सी मन:स्थिति में कभी आए ही नहीं....मैंटल यूनीसेनिटी न होते हुए भी हम एक-दूसरे को जी रहे थे ......शायद मुझे संदेह था कि रेखा मुझ से अधिक सबल साबित हो जाएगी। यदि उसने घर वालों को मना लिया पर मेरे घर वाले ही न माने तो? नहीं...पहले मैं अपने घर में बात करूंगा.....रेखा के लिए मान गए तो इससे कहलवाना उचित होगा.....कहीं जल्दबाज़ी में इसे आघात न लगे। मुझे महसूस हुआ कि वाकई मैं रेखा को आघात नहीं पहुंचाना चाहता....मुझे याद है कि मैंने यह भी ताड़ लिया था कि उसकी सहेली ने उसे चिढ़ाया है।

उसकी करीबी सहेली नीता ने मुझे पूछा 'तुमने घरौंदे देखे हैं ' कुछ क्षणों तक वह चुप रही वैसे तुमने जो कुछ चाहा है काफी हद तक सराहनीय है परन्तु मैं जानती हूं कि लड़के अक्सर चाह लेते हैं, निभा नहीं पाते, बुरा न मानना मुझे अपना अनुभव है।' तब मुझे याद आया, उसे दो बार धोखा मिल चुका है, उसे राज़दार नहीं बनाना चाहिए था, पर अब क्या हो सकता

था। मैंने कहा, 'तुम ठीक कहती हो, तुम्हारा अपना अनुभव है, लेकिन मैं तो घर में सबसे कह चुका हूं, डैडी तो मान भी गए हैं।' 'पर उसकी तो सगाई हो चुकी है।' मुझे लगा उसका स्वर खूंखार हो गए हैं....मैं समझ गया था कि वह झूठ कहती है 'मुझे तुम पर विश्वास है, तुम सुलझे हुए हो, ऐसा कुछ नहीं करोगे जिससे कि ....नहीं नहीं...ऐसा तो कुछ नहीं आई विल डिपार्ट लाइक ए - फ्रैंड! मेरे मुंह से अचानक ही निकल गया और वह काइयां मुस्कान लिए चली गई।

5.2.2.8.9 घुटन 'हमारा साहित्य' 1971-72 में प्रकाशित हुई इस कहानी में टी॰ बी॰ के मरीज़ की करुण कथा है। डाक्टर उसे बचा लेने के लिए संघर्षरत हैं। मरीज की मां भी उसे तंदरुस्त देखना चाहती है, वह चाहती है कि वह हंसेबोले और मायूसी से बचे ताकि जल्दी ही तंदरुस्त हो जाए, स्थितियां ऐसी हैं कि वह अकेला और निरीह होकर रह गया है और मृत्यु को स्वीकार रहा है, वह डाक्टर के इलाज़ और मां की सहानुभूति दोनों को ही नकार रहा है और धीरे-धीरे मृत्यु की ओर बढ़ा रहा है। कहानी में संवाद बहुत कम परन्तु कसाव लिए हुए हैं, भावुकता को नकार कर संवेदना को उभारा गया है। ठीक है डाक्टर मौत सहज नहीं है पर मेरा तो जीवन भी असहज हो गया है..लगता है मौत निश्चित है...कब तक इसे टालता रहूं? उसे लगा मां की भूरी आंखें भूरी नहीं रही बल्कि अंशु की चकोर आंखों जैसी सुर्ख हो उठी हैं...सुर्ख आंखों में छोटे छोटे लाल दाग़ उभर आए हैं...सुर्ख चकोर आंखें फैलते-फैलते फेफड़ों की शक्ल अख्तियार करती जा रहीं हैं....और लाल दाग़, काले पड़ने लगे हैं, काले खूंखार धब्बे ......ठण्डे ...मौत की तरह!....वह चीख उठा.....'नहीं, अंशू नहीं आएगी। कहानी में आदमी की अन्तर्पीड़ाओं का विश्लेषण सशक्त है और अकेलेपन को स्वीकारता हुआ आदमी मौत की बाट जोहने के लिए विवश हो गया है।'

5.2.2.8.10 दंशित कहानी में मैत्री और भाईचारे तथा बचपन की स्मृतियों को काट कर न फैंक पाने की पीड़ा का सशक्त चित्रण हुआ है। आर्थिक अभावों से ग्रस्त आदमी जब स्वयं ही अपनी फटेहाली और भुखमरी का कारण बन जाए तो कोई उसकी मदद नहीं करता। हां, मैत्री की लाज रखने के लिए कोई आगे बढ़े भी तो आश्चर्य है जबकि उसी के नाते रिश्ते वाले उसे ऐसी मदद से टोक देते हैं। कुछ इसी कथ्य को लेकर कहानी विकसित की गई है।

रानू ने जुए की लत के कारण अपना सब कुछ गंवा दिया है और अब निपट अकेला है परन्तु अभी तक उसने अपना स्वाभिमान और मैत्री का मूल्य संजोए रखा है। यही मूल्य कैसे टूटता है, कहानी इसी टूटन-प्रक्रिया के गिर्द घूमती है।

भीतर भाभी का मूड बिगड़ गया था। सहाय को देखते ही तमतमा उठी कब तक गले लगाये रखोगे... इस निखट्टू को ? आपको भी लुटा देगा एक दिन। खेलने की आदत बुरी होती है। उसे लगा कि कोई पहाड़ गिरने को है और वह उसकी कगार में बैठा छाया अनुभव कर रहा है... नहीं, मैं यहां नहीं रहूंगा... लो अब यह सहारा भी टूट गया .... चलो अच्छा ही हुआ ऐसे अदृश्य धागों में बंधने का क्या लाभ ? वह टूटते टूटते बच जाना चाहता था लेकिन अचानक

उसके हाथ जेब में गए तो उंगलियों के पोर नोटों को छू गए .... पर अगले ही क्षण उसकी आंखें चमक उठीं हड़बड़ा कर उसने नोट निकाले और गिनने लगा, थोड़ा आश्वस्त हुआ और नोट दुबारा जेब में ठूंस कर चुपके से घर के बाहर हो गया ... उसका भीतर जैसे जगमगा रहा हो अंधेरा सामने छंटता जा रहा था ... इतनी रात गए बाहर नहीं रहना चाहिए, विचार आते ही उसने शिथिल पड़ी टांगों को झटका दिया और भाग खड़ा हुआ।

अच्छी कहानी है सिचुऐशन को सशक्त शब्द मिले हैं। भावुकता का संस्पर्श यथार्थ को कुछ और अधिक तीखा बना देता है।

5.2.2.8.11 खुले हाथ संग्रह की चरित्र प्रधान कहानी है जिसमें घरेलू जीवन की त्रासदी के कारण व्यक्ति का दफ्तरी जीवन इस तरह से प्रभावित हो जाता है कि वह अपने मातहतों के मज़ाक का कारण बन जाता है। उसके चिड़चिड़ेपन और छोटी-छोटी बातों पर होने वाली झड़पों के कारण कोई उससे सहानुभूति नहीं रखता। उससे सामाजिक तथा दोस्ताना सरोकार नहीं रखता। कहानी में एक ऐसे त्रस्त व्यक्ति गंगा प्रसाद का चरित्र बड़ी खूबसूरती से उभरा है।

पिछले तीन साल से वह इस कदर प्रसन्न भी तो नहीं दिखा कि किसी को न्यौता देकर शराब पिलाए... और वह भी मुझे! ... मुझ से तो वह वैसे भी उखड़ा-उखड़ा रहता था ...। स्साला तेल पिया खड़ा है... भद्द तो यह खुद करवाता है ... स्साले ने विद-आउट पे कर दिया जैसे खज़ाना इसके बाप का हो ... फैसला होने दो ... मैं समझौते के मूड में नहीं हूं।'

'धमकी देता है... मैं ... मैं भी गंगा प्रसाद हूं तुम्हें डिसमिस न करवाऊं तो नाम नहीं... घर में बैठे बिठाए टी०ए० क्लेम करते हो और ऊपर से फौजदारी!' ढाई तीन सालों से पत्नी बीमार क्या हुई है कि घर उजड़ गया है... गठिया बड़ा दर्दनाक है... हकीम ने संखिया के साथ कोई दवाई दी है... मुझे तो डर है कभी दो उंगलियां एक साथ चाट गई तो क्या होगा... तीन तीन बेटे हैं सभी कमाते हैं पर हमारे लिए कोई नहीं... उनका रिश्ता तो बस पैसों तक ही है। ... और बीवी है कि चिट्ठियां लिख-लिख कर घाव छीलती रहती है... क्या रखा है इस जिंदगी में जो जोंक की तरह खून चूस रही है... अब मैं बाबू को भी माफ कर दूंगा... अपना ही बच्चा है... बदतमीज़ हो जाए तो भी क्या ?

कहानी का अंत एक जिज्ञासा छोड़ जाता है कि किताब नाले में क्यों फैंकी ?

5.2.2.9. अनकही दीदार सिंह के कहानी-संग्रह 'अनकही' में कुल 12 कहानियां हैं। जून 1985 में प्रकाशित इस संग्रह की कहानियों का मूल्यांकन निम्नलिखित है।

5.2.2.9.1 उसका दर्द कहानी में गांव और शहर के जीवन की तुलनात्मक प्रस्तुति हुई है।

40 साल गांव में बिताने के बाद एक आदमी शहरों में बसे अपने बेटों के पास जाता है और तीन वर्ष बाद सात दिन के लिए अपने गांव लौटता है। गांव में उसे भरपूर आत्मीयता मिलती

है और जब वह पुन: शहर लौटने के लिए गाड़ी में बैठता है तो रात का खाना और सुबह का नाश्ता तक गांव के लोगों द्वारा दिया जाता है। गाड़ी में बैठा वह शहर में अपने बेटे-बहुओं के व्यवहार के बारे सोचता है कि बेटों के पास नौकर चाकर हैं, हर एक सुख सुविधा है परन्तु उसके साथ मिल बैठ कर बात करने का समय नहीं।

कहानी में इसी सांस्कृतिक अन्तर को स्पष्ट किया गया है, दो पीढ़ियों का अन्तर भी इसे कहा जा सकता है। कहानी का कथ्य अंतिम वाक्य में है-'काया का दर्द तो भुलाया जा सकता है लेकिन आत्मा का नहीं।' साधारण भाषा और थोड़ी-थोड़ी-सी डिटेल्स देकर अच्छी कहानी लिखी गई है।

5.2.2.9.2 फालतू औरत कहानी में विधवा और लाचार बूढ़ी हो गई औरत की व्यथा का अच्छा चित्रण हुआ है। बुढ़िया के तीन बेटे हैं, तीन बहुएं हैं और एक बेटी है जो ब्याही हुई है। बुढ़िया बीमार है और अर्द्ध मूर्छित है। बहुएं तथा बेटी उसे मृत्यु के निकट समझकर सामान का बंटवारा कर रही हैं। सभी चाहती हैं कि बुढ़िया से मरने के पूर्व ही सब कुछ लिखवा लिया जाए नहीं तो बाद में भाइयों में सिरफटौवल होगी।

परन्तु विडम्बना यह है कि बुढ़िया को धीरे-धीरे होश आ रहा है, वह सब सुन रही है और अपने अतीत का स्मरण कर रही है कि इन बेटों की पढ़ाई-लिखाई और शादी-ब्याह पर उसने क्या नहीं किया ? और ये सभी उसे फालतू समझ रहे हैं, उसे सम्मानपूर्वक अपने बीच बिठाते तक नहीं।

कहानी में आदमी की स्वार्थ की वृत्ति, बुजुर्गों की दयनीय दशा और उन्हें इस्तेमाल करके फालतू चीज़ की तरह नकार देने की वृत्ति पर करारी चोट की गई है। अच्छी कहानी है, संवाद, विवरण और स्मरण के सहारे कथ्य की सुगठित प्रस्तुति हुई है।

5.2.2.9.3 रिश्तों के बंधन कहानी आत्म-कथात्मक शैली में लिखी गई है। मृत्यु के समीप से लौट आया आदमी अपने इर्द गिर्द खड़े लोगों की नम आंखों को देखकर सोचता है कि इन्होंने न जाने क्या क्या दुआएं की होंगी, न जाने कौन कितना रोया होगा, तभी तो मेरी आंखें खुलते ही इनके चेहरों पर खुशी छलक आई है, 'मैं मरना नहीं चाहता' लेकिन कोई उसकी आवाज़ नहीं सुनता, वह हाथ हिलाना नहीं चाहता, हाथ हिलाना खतरनाक हो सकता है। वह मरने से पहले अपनी तपस्या को विरासत के रूप में दे जाना चाहता है।

वह उन प्रियजनों को याद करता है, जिनसे उसे प्रेरणा मिली, प्यार, सहयोग, स्नेह, सहानुभूति मिली वह उन्हें देखना चाहता है, परन्तु उन्हें क्या पता कि कोई उनके लिए कितना तड़प रहा है?

कहानी में आदमी की जिजीविषा और रिश्तों के बंधन के साथ-साथ जन-कल्याण की कामना का नियोजन करके कहानी को सार्थकता प्रदान कर दी गई है।

5.2.2.9.4 समझौता प्रस्तुत कहानी में तेज सिंह अपनी पत्नी और बेटे की मृत्यु के उपरान्त वाणप्रस्थ हो जाता है। उसकी पहचान अपने बंगाली पड़ोसी से होती है जो बीमार है. वह सेवा सुश्रुषा करता है परन्तु बंगाली बाबू की चिंता का कारण है, उसकी चालीस वर्षीय विधवा बहिन। वह उससे आश्रय का वायदा ले लेता है। परन्तु दिक्कत यह है कि उनके साथ औरत रह नहीं सकती, लोग खामख्वाह उन्हें बदनाम करेंगे। अंततः तेज सिंह बसंत पंचमी के दिन आरती से विवाह कर लेता है, लोक चर्चा होती है उसे पाखण्डी कहा जाता है, परन्तु वास्तविकता यह है कि वे लोगों की निगाह में ही पति-पत्नी हैं। आरती के मन में कभी-कभी पत्नीत्व की आकांक्षाएं जागती हैं परन्तु दोनों ने अलग अलग कमरे में भूमि पर सोने और अलग अलग पूजापाठ करके जीवन गुजारने का समझौता-सा कर लिया जिसे वे तोड़ते नहीं।

कहानी आदर्शप्रेरक हैं, उद्देश्य प्रधान परन्तु साधारण और विवरणात्मक है।

5.2.2.9.5 अनकही 'अनकही' अनकहे प्रेम की कहानी है। जसदीप के पड़ोस में चमेली नामक लड़की रहती है, दोनों एक दूसरे को देखते हैं परन्तु निगाह चुरा लेते हैं। दोनों के मकानों के बीच की दीवार सांझी है, आंगन को बांटने के लिए दीवार नहीं बनी। जसदीप ने क्यारियां बना ली हैं और फूलों के पौधे लगा लिए हैं, चमेली ने भी देखा देखी पौधे लगा लिए। परन्तु दोनों जमाने से डरते हैं, जब लड़की क्यारियों में होती तो वह बाहर न निकलता, जब वह क्यारियों में होता तो लड़की बाहर न निकलती। हां, फूल लगाने का मुकाबिला दोनों ओर से चल रहा है।

एक दिन जसदीप ने देखा कि यदि लड़की पड़ोस की गाय को बाहर न निकालती तो वह बहुत सारे पौधे खा जाती। जसदीप गाय के खुरों से कुचले पौधों को संवारने लगा तो लड़की आई, उसकी आंखों में व्यंग्य या शरारत न थी अपितु उदासी-सी थी, सहानुभूति-सी प्रकट कर रही हो जैसे। फिर वे दोनों एक दूसरे के फूलों पौधों की देख-रेख करने लगते हैं। बेलें परस्पर लिपटती हैं, फूल परस्पर लिपटते हैं और वे इन्हें परस्पर लिपटे उलझे देख प्रसन्न होते हैं।

कहानी असफल प्रेम-कहानी है, पौधे और फूल उनकी प्रेमानुभूतियों के प्रतीक तो बनते हैं परन्तु इन प्रतीकों का अर्थ खुलने से पूर्व ही चमेली द्वारा नया मकान बदल लिया जाता है। प्रेम अनकहा रह जाता है। अच्छी और सशक्त कहानी है, प्रेमानुभूतियों की बारीकी सराहनीय है, संवादों की अपेक्षा व्यक्ति के अन्तर्मन और आत्म संवाद के सहारे कहानी को विकसित किया गया है।

5.2.2.9.6 डायरी के आखिरी पन्ने कहानी डायरी शैली में लिखी गई है। 24, 25, 26 दिसम्बर तीन दिन की डायरी में सारी कहानी सिमट आई है और बर्फीले रेगिस्तान में दुर्घटनाग्रस्त होकर आ गिरे विमान में से जीवित बचे रिचर्ड की डायरी के माध्यम से आदमी के जीवन की सच्चाई को सशक्त अभिव्यक्ति दे दी गई है।

अभी तक कोई सर्च पार्टी भी नहीं पहुंची, भूखप्यास के मारे शरीर साथ छोड़ता जा रहा है। 'इस समय एक कप -चाय, एक गिलास दूध या एक सूखी रोटी भी कल्पना से परे की वस्तु हो गई है.... आज यह हीरे की अंगूठी, यह सोने की रिस्ट वॉच और सारी करंसी मेरी भूख नहीं मिटा सकती। आखिर इन्सान खाता तो रोटी ही है।' और वह देखता है आकाश में गीधें मंडरा रही हैं, उसके हाथ भी मांस का झुलसा हुआ टुकड़ा लगता है, जो उसी जैसे किसी यात्री के शरीर का अंग होगा। 'बहुत भूख लगने पर भी मैं उसे नहीं खा पाया।'

काफी देर वह झुलसे हुए लोथड़े को थामे रहा, लेकिन मम्मी डैडी ओर अपने लोगों से मिलने और जिंदा रहने के लिए वह मांस भी खाना पड़ा। वह मांस किसी के हाथ का था जिसमें वैसी ही अंगूठी थी जैसी उसने अपनी मंगेतर रुही को दी थी, वह एयरपोर्ट पर उसे छोड़ने आई थी तो आंखें छलक आई थीं। काश उसका भरोसा न टूटे।

26 दिसम्बर को वह डायरी तक को खा जाना चाहता है, परन्तु दांत घुस नहीं पाते शरीर जबाव दे रहा है, शरीर ठण्डा पड़ता जाता है... काश-काश.. मैं... उफ यह ठण्डी हवा-यह मम्मी! डैडी!! रुही!!! ओह गॉड!

और यह डायरी छः वर्ष बाद किसी लापता जहाज़ को ढूंढने आई सर्च पार्टी को मिलती है।

आदमी की जिजीविषा, रिश्तों के मोह, जीवन के सपनों, महत्वाकांक्षाओं और प्रकृति की मार-की लपेट में फंसे जूझ रहे आदमी की यह सशक्त कहानी है। विडम्बना यह है कि आदमी को जिंदा रहने के लिए आदमी का मांस भी खाना पड़ता है, परन्तु विडम्बना यह है कि जिन्दगी फिर भी नहीं बच पाती।

5.2.2.9.7 आत्महन्ता कहानी में दहेज न मिलने के कारण दुल्हे का पिता बारात वापिस लिवा ले जाता है। परन्तु संयोग-यह है कि इसी दुल्हे को अपनी नयी वैलफेयर आफिसर को रिपोर्ट देने जाना पड़ता है तो वैल्फेयर आफिसर के रूप में उसी लड़की को देखकर उसे घोर आत्मग्लानि से पीड़ित होना पड़ता है। कहानी साधारण ढंग से चलती हुई अचानक ऐसे विस्फोटक क्षण तक आ पहुंचती है कि रिपोर्ट देने आए आदमी के पांवों के नीचे से ज़मीन निकल जाती है।

वेल्फेयर आफिसर उसे पहचान लेती है 'आप ?' और उसे बिठाकर भीतर चली जाती है। आदमी भी उसे पहचान गया है और उसे पिता के कहे शब्द याद आते हैं, 'मैंने बेटे पर हजारों रुपये लगाये हैं। अब मैं उसे कौड़ियों के भाव फैंक दूं ? नहीं! यह विवाह नहीं हो सकता। बारात वापस ले चलो।' और वह अतीत-स्मरण करता हुआ आत्मग्लानि से ग्रस्त स्वयं उसी लड़की की निगाह में बौना हो उठा है। तब मेरे अन्दर जो कुछ शेष बचा था, वह आज मर गया।' छोटी परन्तु सशक्त कहानी है। आदमी के अन्तर्मन में छिपे अपराधबोध और ग्लानि का सशक्त चित्रण हुआ है।

5.2.2.9.8 तने हुए चेहरे प्रतीकात्मक कहानी है। कहानी का लेखक ऐसे शहर में आ गया है जहां सभी ने चेहरों पर मुखौटे चढ़ाए हैं, कोई हंसता नहीं, किसी में भी आत्मीयता नहीं, भावुकता नहीं, रक्त का दबाव भी बहुत कम है फिर भी लोग यहां आते हैं, क्योंकि यहां बीमार लोगों का इलाज किया जाता है। दुनिया को बताया जाता है कि बीमारों की खूब सेवा होती है, फल, दूध, अण्डे, मक्खन, मुर्गे खिलाए जाते हैं, जबकि असल में सभी चीजें लोग अपने घरों में ले जाते हैं और स्वयं उड़ाते हैं, इलाज के लिए आए आदमी को तो झाड़, डांट-डपट ही मिलती है। कहानी का अंत काफी विस्फोटक है 'ये डर गये हैं कि मैं कहीं इनके मुखौटे न नोच डालूं इसलिए इन्होंने मेरी आंख पर पट्टी बांध दी है।'

कहानी में अस्पतालों में मची लूटखसोट पर अच्छी करारी चोट की गई है परन्तु फैंटेसी निर्माण के लोभ में कहानी में दरारें भी आ गई हैं।

5.2.2.9.9 किरायेदार कहानी में लेखक ने मकान मालिक और किरायेदार के बीच के नाजुक रिश्तों का अच्छा ब्यौरा दिया है। मकान मालकिनों का अक्सर किरायदारिनों से व्यवहार अच्छा नहीं रहता, वे बिजली अधिक जलने, बच्चों द्वारा गंदगी फैलाने, शोर करने, मेहतर से ठीक तरह सफाई न कराने, खुद सफाई न करने आदि के उलाहने देती हैं और अपने बच्चों को इस सब से नहीं टोकतीं।

साधारण कहानी है किरायेदारों की जीवन त्रासदी का सफल चित्रण हुआ है।

5.2.2.9.10 भय यह आदमी के अन्तश्चेतन में छिपे भय की सशक्त कहानी है। शहर में रात तो रात दिन दहाड़े अपहरण हो जाते हैं, किसी को घायल करके सब कुछ छीन लिया जाता है, कोई स्त्री राह चलते आदमी को ब्लेक मेल कर लेती है कि उसने उसकी इज्जत पर हाथ डाला है। रोज इस तरह की घटनाएं घटित होती रहती हैं, जो आदमी के अन्तश्चेतन में दबी रहती हैं और स्थिति तथा वातावरण त्रासद होते ही वह भयभीत हो जाता है। 'भय' इसी मन:स्थिति और आतंक को चित्रित करने वाली कहानी है।

सड़क पर चले मिलखी को एक स्त्री मिल जाती है, वह डर जाता है कि कहीं वह किसी गिरोह की सदस्या तो नहीं। स्त्री उसे पूछती है कि उसने शक्तिनगर जाना है? तो वह हां कर देता है परन्तु भीतर ही भीतर स्त्री को चालाक समझ रहा है जो उसके बारे सभी कुछ जानती है। पूछने पर वह स्त्री भी शक्तिनगर जाने की बात ही कहती है और कहती है कि रिक्शा वाला ज्यादा पैसे मांग रहा था सो उसने पैदल चलना ही बेहतर समझा। फिर वह सामने तेज़ गति से आती कार को देखकर डर जाता है कि कहीं वह कार वाले इसी स्त्री के साथी न हों, वह स्त्री से दस गज़ दूर चलता है कि कहीं वह शोर मचा कर ब्लेकमेल न कर पाये।

समूची कहानी आदमी की भयजन्य अनुभूतियों, संदेहों, त्रास और आतंक की वृत्तियों के सशक्त संयोजन से बुनी गई है। उत्कृष्ट कहानी है।

5.2.2.9.11 खुले द्वार 'खुले द्वार' कहानी का कमल शादीशुदा है, बीवी सुंदर और सुगढ़ है। फिर भी वह अतृप्त है, शादीशुदा स्त्री मोहिनी को पाना चाहता है- पूर्ण रूप से तन से भी, मन से भी, भावों से भी, बुद्धि से भी.......! वह वह क्षण चाहता है जब मोहिनी केवल उसकी हो और उसे एक बार कह दे कि हां उसने भी उसे प्यार किया है। परन्तु मोहिनी उसके प्रति गंभीर नहीं है। दोनों इतने आदर्शवादी नहीं कि कोरे आदर्शों के नीचे दब जाएं, दोनों यथार्थ-जीवन में विश्वास रखते हैं-दोनों एक दूसरे से दूर भी नहीं। मोहिनी अब तो तेरे इन्तजार में उम्र भी बीत चली है वह आगे से और चिढ़ाती है- 'बताऊं तेरी बीवी को जाकर'।

उसे कई बार अवसर मिला जब वह चाहता तो मोहिनी को अपनी बांहों में कस सकता था और देख सकता था उसकी प्रतिक्रिया को। लेकिन वह कोई भी बात उस पर ठोंसने के हक में न था। वह छीन कर कुछ प्राप्त करने के हक में नहीं। वह जो कुछ चाहता है उसे पूरे तन-मन से प्राप्त करना चाहता है, हिस्सों में नहीं। जो कुछ मिल रहा है वह उससे भी हाथ नहीं धोना चाहता। वह नहीं जानता कि मोहिनी उससे प्यार करती है लेकिन आज तक उसने कोई आभास भी नहीं कराया कि वह प्यार नहीं करती। शायद वह व्यक्त नहीं करना चाहती केवल अनुभव कराना चाहती है या वह प्यार को कोई नाम नहीं देना चाहती...।'

सारी कहानी विवरणात्मक है, व्यक्ति के अंतर्मन में प्यार की टीस और अव्यक्त भावनाओं को पिरोने की सफल कोशिश, प्यार है ही वह अनुभूति जो अकथनीय भी है और अप्राप्य भी। अच्छी कहानी है।

5.2.2.10. दस दरवाजे आदर्श की दस कहानियों का संग्रह 'दस दरवाजे' 1986 ई० में प्रकाशित हुआ है, इन कहानियों का मूल्यांकन निम्नलिखित है।

5.2.2.10.1 समझदारी का सबूत समझदारी का सबूत कहानी में सरकारी दफ्तरों में चालू रिश्वतखोरी, कलम के जोर की धौंस और आदमी की ढिठाई पर करारी चोट की गई है। कहानी व्यंग्य नहीं सीधा-सच्चा विद्रोह है जो विवश आक्रोश बन कर रह जाता है।

चालीस वर्षीय, चुप्पा-सा, कमज़ोर, हड्डियों का ढांचा-सा अब्दुल बेटी के निकाह के लिए महीना पहले ही अर्न्डलीव का फार्म भर देता है परन्तु बाबू देसराज उससे टालू अंदाज में बात करता है 'ऐसे ही थोड़े होता है एकदम काम!' वह बाबू देसराज के होठों में दबी मुस्कराहट का अर्थ धीरे-धीरे समझ लेता है कि 'पहले ही बाबू की हथेली पर पांच रुपए का करारा नोट रख देता तो आज तक काम न बन गया होता।'

अब छुट्टी न मिलना निश्चित ही था, उसने भी फैसला किया, बाबू देसराज से मिलना ही ठीक है।' बाबू उतावला हो उठा 'पहले ही इस समझदारी का सुबूत दे देते तो क्या अब तक काम न बन गया होता ? अच्छा, अब लाओ भी, क्या दे रहे हो ?' बाबू ने हथेली खुजलाई और अब्दुल ने उसकी हथेली पर थूक दिया 'ठहरो बाबू जी। मैं यह दे रहा हूं। आक थू।'

कहानी में आक्रोश अच्छी तरह मुखरित है परन्तु विद्रोह की सीमा तक नहीं पहुंचा. कहानी अपनी बनावट और विषय के गठन के हिसाब से अच्छी है।

5.2.2.10.2 जस्ट हार्डली वन आवर कहानी में पैराट्रुपर्स की प्रशिक्षण की उड़ान के दौरान जहाज को आग लग जाती है। कहानी पैराट्रुपर्स और स्कवैड्रन लीडर वी०एस० मेहता की सामूहिक मृत्यु की त्रासदी को चित्रित करती है। नेरेटर ने मि० वी. एस. मेहता के भाई मेहता की प्रतिक्रियाओं, त्रासद अनुभूतियों और अपनी अनिष्ट की शंका का विशद और प्रभावोत्पादक वर्णन किया है कि कैसे जहाज के इन्जिन को आग लगी और कैसे भयंकर विस्फोट हुआ, कैसे हंसी व किलकारियां एक झटके के साथ बन्द होकर हाहाकारों में बदल गईं कैसे मांगों के सिंदूर सिहर सिहर उठे।

कहानी चरमोत्कर्ष पर पहुंचते पहुंचते पाठक को रुला देती है। कहानी वी०एस० मेहता का चारित्रिक केरीकेचर भी बन गई है। बड़े सशक्त और दिल दहला देने वाले मार्मिक प्रसंगों को आधार बना कर कुशलता से लिखी गई कहानी है। मिस्टर मेहता की त्रासद अनुभूतियों के चित्रण में डॉ० आदर्श काफी हद तक सफल रहा है।

5.2.2.10.3 बिजली का खम्बा कहानी में राजनेताओं के टालमटोल और चुनाव जीतने के लिए भोले-भाले लोगों को इस्तेमाल करने के बाद उनकी कोई मदद न करने की वृत्ति पर चोट की गई है।

लाईनमैन बलजीत ने लोगों से मिल मिलाकर वकील साहब को एम०एल०सी० बनवा दिया है। एम०एल०सी० ने मिनिस्टर के नाम चिट्ठी दी है कि बलजीत के बेटे को बैंक में चपरासी की नौकरी मिल जाए। भोला भाला बलजीत बड़ा प्रसन्न है कि उसके बेटे को नौकरी मिल जाएगी। परन्तु बलजीत सिंह की मिनिस्टर से मुलाकात नहीं हो सकी, बैंक के चेयरमैन ने परसों तक डिसिजन ले लेना है, यदि हुक्मसिंह जम्मू साथ चल कर मिनिस्टर से टैलीफोन करवा दे तो बात बन सकती है। डाक्टर गुप्ता बलजीत को समझाते हैं कि ये नेता किसी के नहीं होते, परन्तु बलजीत तो हुक्मसिंह का दीवाना है, इलेक्शन में उसके साथ काम किया है। खैर, डाक्टर गुप्ता बलजीत के साथ हुक्म सिंह के पास जाते हैं, वकील हुक्मसिंह बड़ी गर्मजोशी और शहद भीगे शब्दों से स्वागत करता है परन्तु फिक्सड प्रोग्रामों का बहाना लगा कर मिनिस्टर के पास जाने से इन्कार कर देता है। कहानी में भोले-भाले बलजीत के चरित्र के सभी पहलू उजागर हुए हैं, राजनेताओं के चारित्रिक दोगलेपन और स्वार्थी स्वभाव का मुखौटा भी उतर गया है। अच्छी कहानी है।

5.2.2.10.4 दूर और करीब कहानी में कश्मीरी मज़दूर याकूब के चारित्रिक गुणों और मानवीय अनुभूतियों का सशक्त चित्रण हुआ है।

याकूब बूढ़ा और कमज़ोर आदमी है परन्तु मकान और रेत-सरिये की सांभ-संभाल

करने में मालिक के प्रति पूरी तरह वफ़ादार है। मालिक को तो उसकी वफ़ादारी और चौकीदारी के साथ साथ स्वभाव का भी पता है, परन्तु उस के छोटे भाई अमित को दिहाड़ी के दौरान याकूब की सुस्ती से चिढ़ है और गुस्सा आता है। धीरे-धीरे अमित भी याकूब के महत्व को समझ लेता है तो दोनों में अपनत्व बढ़ जाता है।

याकूब के जीवन की विडम्बना का चित्रण करने के बाद कहानी धीरे धीरे चरमोत्कर्ष पर पहुंचती है. याकूब प्रातः छः बजे ही हाज़िर होता है और अमित का बिस्तर और संदूक बस स्टैंड पर पहुंचा देता है और अमित को उसी तरह विदा कर रहा है जैसे वह उसी का बेटा हो, उनका दूर का रिश्ता बहुत करीब का हो जाता है, 'नहीं, बाबू। यह रख लो इस अपने बच्चों को नहीं देता क्या ? खुदा आपको..'.. याकूब का गला भर आया है।

कहानी का अंत बड़ा मानवीय और सुखद है जो याकूब के हृदय की पीड़ा और अपने बेटे से दूरी के अहसास को एकदम उद्घाटित कर देता है। अच्छी कहानी है।

5.2.2.10.5 फांसी कहानी में न्यायिक व्यवस्था, कानूनी दांव-पेच, पैसे के बल पर झूठी गवाही और निरपराध व्यक्ति की चीखों के बे-असर हो जाने का मिश्रण किया गया है। जो पैसे से न्याय नहीं खरीद सकता वह निरपराध होते हुए भी फांसी के फंदे पर लटक जाता है, इस कथ्य का त्रासद चित्रण किया गया है।

मुकदमा चलता है परन्तु मालिक पैसे के बल पर छूट जाता है क्योंकि पैसे के बल पर खरीदा गया घायल टांग वाला आदमी यादाश्त ही भूल जाता है और कहता है कि बंदूक गुरुजीत के हाथ में थी। गुरुजीत बहुतेरा चीखता चिल्लाता है, खुद को निर्दोष कहता है परन्तु उसकी कोई सुनवाई नहीं होती। अन्त में उसे फांसी सुना दी गई। डाक्टर गुप्ता को फांसी से पहले के गुरुजीत की बातें और धार्मिक आस्थाएं याद आती हैं। गुरुजीत आखिरी समय में मां से नहीं मिलना चाहता और वह मां को डाक्टर गुप्ता द्वारा यही संदेशा देता है कि वह विदेश चला गया है, अच्छी नौकरी पर, जल्दी ही लौटेगा।

कहानी में गुरुजीत की मनोव्यथा को नेरेटर डाक्टर गुप्ता अपने अन्तर्मन में महसूस कर रहा है। सह-अनुभूति के विराट निरूपण की दृष्टि से यह डॉ० आदर्श की उत्कृष्ट कहानी है।

5.2.2.10.6 उधार कहानी में एक गरीब आदमी के स्वाभिमान, परस्पर स्नेह और उपकृत होने के अहसास को खूबसूरती से पिरोया गया है।

कहानी के नेरेटर डाक्टर गुप्ता का क्लीनिक बड़ी गंदी बस्ती में है, लोग भी कुछ-कुछ अक्खड़ और लड़ाके हैं। डाक्टर इरशाद के बच्चे का इलाज करता है, इरशाद और उसकी बीबी को भी बुखार है परन्तु उनके पास पैसे नहीं, वे अपने इलाज के लिए टाल देते हैं, लेकिन डाक्टर उन्हें भी दवा दिला देता है, इरशाद कहता है कि पत्नी काफ़िया कह रही है कि मुफ्त में इलाज नहीं कराएंगे, उधार ही सही। डाक्टर उनके स्वाभिमान को देखते हुए दो रुपए ले लेता है।

इरशाद डाक्टर गुप्ता के प्रति अहसानमंद है। लाख मना करने पर दूध का डिब्बा ला देता है "आप मना क्यों करते हैं, डाक्टर साहब ? हम गरीब आपके लिए कर ही क्या सकते हैं ? भला आपको क्या फर्क पड़ता है ? यह तो मेरे दिल को थोड़ा सकून पहुंचता है!"

डाक्टर गुप्ता को इरशाद के प्रति आत्मीयता की अनुभूति होती है, उसे वह अन्य लोगों से भिन्न भी लगता है। ईद के दिन इरशाद उसे खीर का सामान दे जाता है। डाक्टर गुप्ता को खीर का करीने से रखा सामान कुछ कुछ प्यार भरा खज़ाना प्रतीत होता है। परन्तु उसकी पत्नी उस डिब्बे को खोलकर देखती है तो चिढ़-सी जाती है मोटे चावल, सूखे छुहारे, खीर का सामान गंदे डिब्बे में! डाक्टर गुप्ता को पत्नी के व्यवहार पर क्षोभ-सा होता है परन्तु वह उसे कुछ कहते नहीं।

मानवीय अनुभूतियों के धागे बड़ी संकुलता से कसे और ताने गए हैं। भाषा भी भाव अनुभूति के अनुकूल है। अच्छी कहानी है।

5.2.2.10.7 सम्बन्ध कहानी में व्यक्ति के स्वाभिमान के चित्रण के साथ-साथ संसार के रिश्तों की पहचान भी करवाई गई है। बीमार आदमी उपेक्षित-सा त्रस्त है। पुराने सभी रिश्ते टूट रहे हैं। जिसे उसने बिना कोई फीस लिए पढ़ाया है वही डाक्टर नीरजा काम का बहाना करके ही नहीं आती।

कहानी का अंत मार्मिक है। विपिन की आंखों को जाने क्या हो गया है कि सामने बैठा सुलेमान मिस्त्री पारे का पिण्ड-सा दिखाई देता है। मेहनतकश आदमी की मानवीय अनुभूतियों का अच्छा चित्रण हुआ है।

5.2.2.10.8 अनुभव कहानी में लेखक ने पुलिस की सीनाज़ोरी, उसके नैतिक पतन और सामूहिक चारित्रिक हनन पर करारी चोट की है।

थानेदार क्रोधित हो उठता है 'हूँ! अच्छा तो आप ही हैं मुहल्ले के हीरो। आपकी बड़ी तारीफ सुनी है, हमें आपकी जरूरत थी... अबे उल्लू के पट्ठे मादर... सुअर की औलाद, सरकारी लोगों के कॉलर पकड़ता है.... रामसिंह! बन्द कर दो इस बहन.... को। रात को निपटूंगा इससे... भर दो साले के नाम दो चार डकैतियों में।' रात भर उसकी खूब पिटाई होती है।

उसे जमानत पर छुड़ा लिया जाता है लोग उसे नसीहतें देते हैं कि पुलिस से भिड़ना मुर्खता है, जबकि प्रोफेसर दिनेश उसे समझाते हैं 'तुमने अपना इन्सानी फर्ज़ निभाया है, यह घटना तुम्हारा एक अनुभव है, इसे संजो कर रखो, अन्याय का प्रतिरोध करने से पहले उसकी शक्ति को आंको, नासमझी में अन्याय का शिकार बन जाना विपक्षी की शक्ति बढ़ाना है।'

कहानी का अन्त उपदेशात्मक होते हुए भी स्थिति के अनुरूप है, खलता नहीं बल्कि एक नया अनुभव जोड़ जाता है अच्छी कहानी है।

5.2.2.10.9 काले बादल प्रस्तुत कहानी में पहला हार्ट अटैक हो चुके व्यक्ति की पत्नी की

चिन्ताओं और पति के प्रति उसके प्रेम का चित्रण हुआ है। प्रणव ने मां-बाप का विरोध करके उससे विवाह किया था, घरेलू व्यापार को छोड़ कर नौकरी की थी और घर की सभी सुख सुविधाएं जुटाई थीं। धीरे-धीरे पत्नी पति के प्रति कर्तव्य परायण होकर उसके इलाज की जिम्मेदारी संभाल लेती है।

साधारण घरेलू-सी कहानी है।

5.2.2.10.10 गिद्ध 'गिद्ध' कहानी में पुलिस के गश्ती सिपाही का कमीनापन अभिव्यक्त हुआ है। वह दुर्घटना स्थल पर पहुंच कर मुर्दों के शरीर से जेवर, घड़ियां और नकदी निकाल रहा है। दुर्घटनाग्रस्त एक आदमी की जेब से जब वह पैसे निकालने लगता है तो घायल उसे अपना सब कुछ दे देने के लिए तैयार हो जाता है ताकि सिपाही उसके बेटे को बचा ले। परन्तु धन का लालच आदमी को क्या-से-क्या बना देता है, यही इस कहानी का मूल कथ्य है।

सिपाही के चरित्र को उद्घाटित करने वाले कुछ स्वगत कथन महत्वपूर्ण हैं । 'फंस गया था एक मुर्गा साला। ... साले ने डिबिया भर चरस अपनी गद्दी के नीचे दबा रखी थी। पर सूंघने में हम क्या कम होते हैं कुत्ते से। दे गया बीस का लाल लाल कड़कदार नोट और एक पव्वा।' उसकी क्रूरता की स्थिति यह है कि वह जूते से बार बार एक मेंढ़क को मसल देने का यत्न कर रहा है- 'चौथी बार......निशाना। ठीक था, मेंढ़क बेचारा फौजी जूते के तले पिचक कर रह गया था।'

दुर्घटनास्थल पर वह पहुंचता है। एक आदमी चट्टान पर औंधे मुंह पड़ा है। वह उसे सीधा करता है, आदमी को मरा समझकर घड़ी उतार कर जेब में डाल लेता है। घायल आदमी जेब से नोटों से भरा पर्स निकाल कर उसकी ओर बढ़ाता है... 'यह भी लो। पर ज़रा देखो, मेरे साथ मेरे दो बच्चे भी थे। वह कहां हैं... पता नहीं ?' पर वह टार्च की रोशनी में निश्चित कर लेता है कि वह मर चुका है, 'हां, अब आंखें बंद थीं, वह पूरी तरह मर चुका था, पर्स लिया जा सकता था।'

कहानी का अंत करुण तो है ही, सिपाही की कमीनगी को भी उजागर कर देता है, क्षण भर के लिए मन में उभरी मानवीयता विदेशी घड़ी और नोटों के लालच में दब कर रह जाती है, उत्कृष्ट कहानी है।

5.2.2.11. अनजाने क्षितिज डॉ० अशोक जेरथ के जुलाई 1989 ई० में प्रकाशित कहानी-संग्रह 'अनजाने क्षितिज' में श्वेता और भुवन के परस्पर सम्बन्धों को लेकर लिखी गई चार कहानियां हैं- 'अभी कुछ बाकी है', 'बीते दिन', 'अनाम बन्धन' और 'मोड़ के उस पार'। उन्हें परस्पर जोड़ लें तो एक लघु उपन्यास का स्वरूप बन जाता है। इन कहानियों के अतिरिक्त 'अन्तराल', 'एक नयी दुनिया में', 'घेरे', 'एक दिन', घरौंदा 'नए क्षितिज की ओर' आदि सभी कहानियों का मूल कथ्य है- स्त्री पुरुष सम्बन्धों की व्याख्या और सम्बन्धगत अकेलापन तथा अजनबियत आदि। कहानियों में नए मूल्यबोध को उकेरने की विशेष कोशिश है।

कहानियों में अन्तर्द्वन्द्व, स्वगतकथन और अतीत स्मरण तथा फ्लैशबैक पद्धतियों का उपयोग किया गया है परन्तु कथ्यगत वैरायटी न होने के कारण बहुत कुछ बिखराव आ गया है। कहानियों की भाषा में काव्य-भाषा का पुट है, पंक्च्युएशन को महत्त्व न देकर भाव स्फीति की ओर ध्यान दिया गया है। इसी कारण बहुत कुछ अमूर्त्तांश भी रह गया है क्योंकि कहीं कहीं कहानी में कल्पनातिरेक और रोमानियत आ गई है। इन कहानियों का मूल्यांकन प्रस्तुत है।

5.2.2.11.1 अंतराल कहानी में भारतीय दाम्पत्य जीवन में निर्वाह की विवशता के साथ-साथ पाश्चात्य जीवन के मुक्त-यौन सम्बन्धों का ताना बाना बुना गया है और विवाह के दायित्व तथा दायित्वहीनता को परस्पर बुनकर तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। कहानी में प्रकृतवाद बल्कि पशुवृत्तियों की पैरवी की गई है और सुसंस्कृत विवाह पद्धति की आलोचना करने के बावजूद अंतिम निष्कर्ष पुनः भारतीयता का ही उद्घोष करते हैं।

'कैसा अस्वाभाविक लगता है कि तुम लोग एक ही खूंटी से बन्धे हो। मेरा एक बुआए फ्रेंड है, मेरा एक बुआए-फ्रेंड था और अभी भी मैं अलग अलग तरह से तीन पुरुषों से जुड़ी हूं किन्तु उन तक मेरी पहुंच अलग-अलग डिग्रियों में है। कुछ को मैं बहुत करीब से देखना चाहती हूं तो कुछेक को अपने पास महसूस करना चाहती हूं और तीसरी श्रेणी में वे लोग आते हैं जिन्हें मैं पसंद करती हूं पर अपना शरीर नहीं दे सकती। यू नीड टेण्डरनेस...... तुम्हें किसी आत्मीय वजूद की जबर्दस्त जरुरत है जो तुम्हें थपकी दे सके। मैं मैं तुम्हें स्पर्श दे सकती हूं, अगर तुम चाहो तो।'....... मैं तुम्हें बांध नहीं रही हूं, मुझे गलत मत समझो। तुम्हारे प्रति वैसा मोह भी मुझे नहीं है कि मैं तुम्हारे स्पर्श बिना रह न पाऊंगी। पर मुझे लगता है कि नारी देह के स्पर्श के अभाव में तुम्हारा मन रीता-सा हो गया है। तुम अपने में सम्पूर्ण हो पर यही रीतापन तुम्हें तोड़ता है, तुम्हें परिवार से विमुख कर देता है। तुम्हें रेवा ठीक से समझ नहीं पाई है। जब तुम चाहते हो वह अपनी देह तुम्हारे आगे बिछा देती है, अपने मन की बात कभी कही नहीं। वह इसे 'रिचुअल' की तरह निभाती चली आई है। तुम भी उसके शरीर के समक्ष 'रिचुअल' निभाकर दो एक क्षण में सन्तोष की हल्की रेखा को पार कर फिर अधूरे रह जाते हो शायद यही तुम्हारे और उसके बीच की अनसुलझी गुत्थी है। इस तरह तुम दोनों ही शारीरिक और मानसिक रूप से एक दूसरे को तोड़ रहे हो।'

युलरीक के इन तर्कों के आधार पर वह अपने दाम्पत्य जीवन को देखता है, स्मरण करता है और उसे लगता है कि वह इतने वर्षों तक रेवा के साथ बलात्कार करता आया है। इतना सब कुछ सोचने समझ लेने के बाद वह पश्चाताप-सा करता है...... तो रेवा आहिस्ता से उसके माथे को सहलाने लगी थी, उसे लगा कि वह उस टेंडरनेस को पाने लगा है जो एक अंतराल तक गुम थी।

कहानी में सम्बन्धों विशेषकर यौन सम्बन्धों और मन-हृदय की जरुरतों की अच्छी व्याख्या की गई है। फ्लैशज़ के सहारे कहानी को विकसित किया गया है।

5.2.2.11.2 **एक नई दुनिया** में अकेलापन मृत्युबोध और रचनात्मक लेखन की महत्त्वहीनता पर रोमांसवादी ढंग से चिंतन किया गया है। ऋचा और उसके मित्र प्रो० पल्लव अकेले, उजाड़ रास्तों पर चलते हैं और प्रो० पल्लव ऋचा के नैकट्य को महसूस करता हुआ उसे भोगना चाहकर भी अपनी इच्छा व्यक्त नहीं कर पाता। ऋचा उसकी मनोभावना को ताड़ जाती है और वह विरोध भी नहीं करती। परन्तु इतनी छूट के बावजूद दोनों में अजनबियत बनी रहती है। दोनों ही अकेलापन भोग रहे दार्शनिक किस्म के व्यक्ति अंकल के घर चाय पीते हैं। वह अंकल रचनात्मक लेखन को फिजूल ही मानता है। पल्लव महसूस करता है कि उम्र के किसी मोड़ पर सही तरह से जीने के लिए एक साथी की आवश्यकता है। कहानी में अकेलेपन की अनुभूति को पिरोने का यत्न हुआ है परन्तु प्रभाव बिखर गया है।

5.2.2.11.3 **घेरे** कहानी में आदमी के अकेलेपन, यायावरी, परिवार के साथ रहने की ललक तथा उससे बिछुड़ने की पीड़ा को स्वर मिला है। पहाड़ों में भेड़ पालकों के लोक व्यवहार तथा भेड़ों के परस्पर व्यवहार में एक साथ प्रेम और ममता आदि की अनुभूतियों को पिरोया गया है। कहानी में अतीत और वर्तमान का घालमेल किया गया है। कहानी का मूल कथ्य यही है कि हर एक व्यक्ति अपने आप में क्रियारत रहता है। अपने काम में रत वह अकेलापन की अवधारणा से अनभिज्ञ है।

साधारण कहानी है, अनुभूति को पिरोने के लिए कई एक घटनाओं को स्मृति चित्रण के रूप में इस्तेमाल किया गया है। हां, कहानी का शीर्षक सार्थक है।

5.2.2.11.4 **एक दिन** कहानी कुछ वर्तमान तो कुछ अतीत स्मरण के सहारे विकसित की गई है। यह असफल प्रेम की कहानी है। संयोग यह है कि सात वर्ष पहले की प्रेमिका शीलू बस में मिल जाती है। जबकि पिछले चार वर्ष से तो उसने उसका स्मरण तक नहीं किया था और वह कलकत्ता में मिस मुखर्जी, मैसूर में मिस पार्वती, दुर्गापुर में नीलू आदि से जुड़ा रहा था परन्तु किसी से भी पूर्णतया जुड़ नहीं पाया था।

शीलू का विवाह चार वर्ष पहले हुआ था। जबकि विवाह से पहले भी वह उसे मिली थी परन्तु वह इतना ही कह सका था कि परीक्षा के बाद सर्विस लगने पर ही फेरे लेंगे।

काफी पीते हुए मंदिर के प्रांगण में वे पुनः मिलते हैं तो उन्हें अभिसार, मिलन और प्रणयानुभूतियों तथा प्रणय सम्बन्धों का स्मरण हो आता है। इन स्थितियों के कारण शीलू तथा वह दोनों ही अन्तर्मन में भीग-भीग जाते हैं, शीलू उसे उपालम्भ भी देती है कि वह वर्तमान की अपेक्षा अतीत और कल्पना लोक में पलायन कर जाता रहा है, यही उसके जीवन की सबसे बड़ी विडम्बना है।

कहानी असफल प्रेम की अनुभूति को ही अभिव्यक्त करती है। हां, बीच-बीच में आदमी के आत्म-साक्षात्कार और अजनबियत का चित्रण भी हुआ है तथा नये रिश्ते के हावी हो

जाने पर पुराने रिश्तों को भूलते जाने की मानसिक प्रक्रिया का वर्णन भी हुआ है। भाषा में प्रतीकात्मकता का उपयोग किया गया है और आदमी की अंतर्यातना और दर्द को अभिव्यक्त किया गया है। प्रणय-क्रीड़ाओं के शब्द-चित्र सहज और मोहक हैं।

5.2.2.11.5 **नए क्षितिज की ओर** प्रेम कहानी है, परन्तु कहानी का उद्देश्य प्रेम की अनुभूति की अपेक्षा नर-नारी के परस्पर आकर्षण समर्पण और दायित्व बोध का चित्रण करना है। यहां अन्तर्मुखी प्रेम की अपेक्षा यौनाकर्षण की मुखर अभिव्यक्ति को महत्व दिया गया है। ऋचा के भीगे बदन को देख क्षितिज रोमांचित होता है, ऋचा भी उसे देख लजाती है और आकर्षित करती हुई-सी कपड़े बदलने लगती है, क्षितिज का मन और तन दहकने लगता है परन्तु दोनों ही परस्पर आकर्षित होने के बावजूद असमर्पित रह जाते हैं।

यूरी देखती है कि क्षितिज उसके शारीरिक सौंदर्य पर मुग्ध सा है परन्तु सकुचा रहा है। यूरी उसे अपने कमरे में ले जाती है और काफी पिलाने से पहले अपना ब्लाउज खोल देती है। वह उसके ब्रॉ में कसे अंगों को देखकर सुलगता है परन्तु सकुचता है यूरी यह सब देखती है, उसे आकर्षित करती है फिर काफी पिलाने के बाद अपने ब्लाउज का पिछला बटन बंद कराना चाहती है, परन्तु क्षितिज के कांपते हाथ कुछ नहीं कर पाते। यूरी व्यंग्य सा करती है कि भारतीय लोग अन्तर्मुखी होते हैं, औरत के शरीर को छूने में सकुचाते हैं, कुण्ठित रहते हैं, जबकि यही लोग अजंता आदि की संभोगरत नर-नारी की कलाकृतियों पर लम्बे व्याख्यान देते हैं। यूरी उसे प्रेम-लीला के लिए उकसाती है, परन्तु क्षितिज उसके साथ बैठ नहीं पाता।

क्षितिज भी बाद में सोचता है कि वह महिला संसर्ग में कमजोर क्यों पड़ जाता है, जब ऋचा शारीरिक संसर्ग के लिए आतुर हो जाती है तो वह बहुत कमजोर पड़ जाता है कुछ गलत हो जाने की कुण्ठा उसे त्रस्त करने लगती है... वे क्षण उसे भीरुता की सतह पर क्यों बांध लेते हैं..... यूरी भी यही सोचती होगी, कैसा मूर्ख है।

अंततः रात्रि के समय ऋचा और क्षितिज परस्पर समर्पित होकर एक हो जाते हैं। क्षितिज सभी कुण्ठाओं से मुक्त हो जाता है, ऋचा को शारीरिक सुख देता है। अगली सुबह ऋचा की आंखों में चमक है क्षितिज! तुम पहले कहां थे--बस मुझे और कुछ नहीं चाहिए ?

कहानी मनोविश्लेषण प्रधान है और यौन कुण्ठा को व्यक्त करती है, कहानी अच्छी है परन्तु लेखक खुद को रिपीट ही कर रहा है।

5.2.2.11.6 **घरौंदा** कहानी में मां बनने के लिए तरसती भोली भाली पहाड़ी औरत लम्बड़दारनी के टीसते दर्द की अभिव्यक्ति हुई है। लम्बड़दार नपुंसक था और लम्बड़दारनी मां नहीं बन पाई थी, उसकी सास ने जादूटोना आदि न जाने कितने इलाज कराये थे। लम्बड़दारनी मास्टर से भोली-भाली बातें करती है, घर भी बुहार देती है। लम्बड़दारनी की सास बूढ़ी है दमे और गठिए की मरीज है।' सन्ध्या होते ही अपनी कोठरी में चली जाती है। सास नहीं मानती कि

मर्दों में भी कभी कोई कमी होती है।. 'बच्चा पुरुष ने पैदा करना है या औरत ने। लम्बड़दारनी मास्टर से उदास होकर पूछ बैठती है कोई दूसरा इलाज नहीं हो सकता ?' मास्टर कह देता है, "आप कहीं और ..।"

लम्बड़दारनी का चेहरा सुर्ख हो जाता है, वह लजा जाती है और चली जाती है। मास्टर पश्चाताप ग्रस्त है कि उसने उसे ऐसा क्यों कहा। परन्तु बात लम्बड़दारनी तक ही रहती है। एक रात जब लम्बड़दार बाहर गया होता है लम्बड़दारनी मास्टर के कमरे में आती है और कुन्ती तथा द्रौपदी के उदाहरण देकर सुहाग का प्रतीक सिंदूर मास्टर के हाथ में थमा देती है। 'आपने कहा था कि कहीं और... तो ... मैं आई हूं। इस सिंदूर से मेरी मांग भर दीजिए। मैं आप को... ' उसकी आंखें भीग आई थीं।

लम्बड़दारनी मां बनकर तृप्त हो उठी है। कहानी का गठन और भाव अनुभूति का चित्रण सशक्त है।

5.2.2.11.7 अभी कुछ बाकी है कहानी में श्वेता को महत्वाकांक्षी और मुक्त आचरण वाली चित्रित किया गया है, जो मित्रों को बैसाखियों की तरह इस्तेमाल कर रही है। जबकि भुवन को मर्माहत प्रेमी के रूप में चित्रित किया गया है जो श्वेता की मनो-आकांक्षा की पूर्ति का साधन बना हुआ है। श्वेता उसकी शिष्या भी है, प्रेमिका भी । और वह उसे लेखन में रचनात्मक सहयोग देता रहा है। दोनों के परस्पर प्रणय सम्बन्धों में आई ईर्ष्या, द्वेष, तिक्तता और उपालम्भों की अभिव्यक्ति ही यहां हुई है।

5.2.2.11.8 बीते दिन कहानी में भुवन झील के किनारे बैठा है कि एक लड़की आकर उसे मछलियों को चने डालने के लिए उकसाती है और कहती है कि इससे अकेले आदमी को उसका प्रेमी मिल जाता है। भुवन स्वयं को अकेला, अधूरा, परिवेश से कटा हुआ ही नहीं अपने-आप से भी कटा और संतप्त अकेला समझ रहा है। परन्तु वह यह भी सोच रहा है कि पूर्णत्व पा लेता तो शायद खत्म हो जाता। इसीलिए श्वेता की उपस्थिति में जो गरिमा के क्षण उन दोनों के बीच तिरते रहे हैं, उन्हें कभी बान्धने का प्रयास उसने नहीं किया।

इस कहानी में भी भुवन श्वेता के प्रति अपने लगाव, घुटन, वितृष्णा और अपने अकेलेपन के प्रति चिंतन करता है और वह सम्बंधों से त्राण पाना चाहता है । परन्तु सम्बन्धों से त्राण पाकर भी तो वह मुक्त नहीं हो पाता, इसी सोच विचार में वह स्वयं को श्वेता से सम्बद्ध और जुड़ा हुआ-सा प्रतीत कर रहा है।

5.2.2.11.9 अनाम बंधन कहानी में कुमार और श्वेता के प्रणय सम्बन्धों का विश्लेषण करने का यत्न हुआ है। श्वेता से अपने परिचय और रूपजाल में बंध जाने के क्षणों का कुमार स्मरण करता है और नैतिकता-अनैतिकता पर विचार करता है। श्वेता के आकर्षण का 'स्पेल' टूटता नहीं तो वह तन और मन के एकत्व सहित श्वेता से सम्बद्ध हो जाने का निर्णय कर लेता

है। श्वेता के व्यक्तित्व, उसकी सहिष्णुता से अभिभूत-सा वह उसका स्पर्श चाहता है जो उसे अनायास प्राप्त भी हो जाता है, परन्तु वह आत्म-ग्लानि में भी मग्न है कि क्या आन्तरिक पहचान के लिए शारीरिक पहचान जरूरी है ? वह हिप्रोक्रेट भी नहीं बनना चाहता।

और एक दिन उसने अपनी कायरता का चोला उतार फेंका था, उसने श्वेता को बाँहों में भर लिया था। परन्तु यह रिफ्लैक्स एक्शन ज्यादा था। .....श्वेता अब स्वस्थ आई था ' ऐसा कैसे चलेगा ?'..... उसका सिर उसके कन्धों पर झुक आया था। उसे लगा कि उसे कम अपितु श्वेता को उस शान्त थपकी की ज्यादा जरूरत है। किन्तु वह अपने प्रगाढ़ आत्मविश्वास से अपनी भावनाओं को दबाए रखे रही थी।.....यह एक ओर का सच है।

5.2.2.11.10 **दूसरी ओर का सच** में श्वेता की अनुभूतियों का चित्रण है, वह भी नैतिकता पर सोचती रही है कि श्वेता ने कभी भी अनचाहे क्षणों को पकड़ना नहीं चाहा । उसे याद हैं वे क्षण, जब पहली बार कुमार ने सायास स्पर्श का प्रयत्न किया था और वह भीतर ही भीतर एक धमाके के साथ रोशनियों में नहा गई थी और सामान्य होने पर वह इस घटना के औचित्य पर चिन्तन करने लगी थी कि नैतिकता के धरातल पर यह कितना उपयुक्त है ?

पर वह कुमार के संसर्ग के 'स्पेल' से लौटना नहीं चाहती बल्कि आत्मीयता के क्षणों में अपने को भूल जाना चाहती है, क्या यह यौन संतुष्टि की प्रक्रिया है, शायद नहीं वह ऐसी अनुभूति कभी दूसरे के संसर्ग में नहीं पाती-यह भूख है, पेट की भूख की तरह मानसिक भूख जो बौद्धिक स्तर पर अंकुरित है।

वह अपने मार्ग को स्वयं प्रशस्त करना चाहती है किसी की ओर कम से कम इस मामले के लिए नहीं निहारेगी, वह स्वच्छन्दता के ज्यादा करीब है। वह घर के एकांगी परिवेश की घुटन से छूटना चाहती, अति आत्मीय जनों में भी वह एक आन्तरिक छटपटाहट से घिरी रहती। अपने को कुमार के लिए उत्सर्ग कर देने की अदम्य इच्छा होती।

5.2.2.11.11 **बीच का सच** बीच का सच यह है कि कुमार अनुशासित रहना चाहता है परन्तु श्वेता के व्यक्तित्व से प्रभावित है, उधर श्वेता कुमार की उपस्थिति में उष्मता के सुख की अनुभूति पाती है। वह उसके बहुत पास आकर जुड़ जाना चाहती है। पर इन दोनों किनारों के बीच बहती अनुभूतियों की धारा को स्थिर नहीं रखा जा सकता, इसके प्रवाह को जब-जब रोका गया है, तूफान आए हैं, जलजले उठे हैं और कुमार सोचता है कि क्या बीच का सत्य यही है ? क्या उसका अस्तित्व श्वेता के अस्तित्व से इतना बन्धा है कि दोनों की मौलिकता चुक गई है।

ये सीमाओं का बंधन ही व्यक्ति को क्षुधित कर देता है और सीमाओं में फंसा व्यक्ति अपनी पहचान भूल जाता है।..... श्वेता तुम स्वतंत्र हो सको, मैं स्वतंत्र हो सकूं ताकि हम दोनों की स्वतंत्र पहचान हो सके, स्वच्छन्द पर निराधार-यही सबसे बड़ा सत्य, निखिल सत्य है-बीच

का सच।'

कहानी साधारण है, अन्तर्मन की अनुभूतियों को सामाजिक नैतिकता के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करके स्वातन्त्र्य-बोध विशेषकर मात्र के स्वातन्त्र्य-बोध का ही चित्रण हुआ है। हां, भाषा कहीं कहीं 'नदी के द्वीप' से प्रभावित है।

5.2.2.11.12 **अनजाने क्षितिज** 'सारिका' के जुलाई 1989 के अंक में 'मोड़ के उस पार' नाम से प्रकाशित हो चुकी है। यह एक प्रेम कहानी है। प्रेमिका श्वेता किसी अन्य को शारीरिक समर्पण कर देती है। समर्पण के इन क्षणों का फोटोग्राफ भुवन के पास पहुंचता है और वह ईर्ष्या-ग्रस्त हो जाता है। वह भी प्रेम के सात्विक समर्पण के साथ-साथ शारीरिक समर्पण चाहता रहा है, पत्नी के होते हुए भी अन्यत्र सम्बन्ध जोड़े हुए रहना चाहता है, परन्तु वह श्वेता को किसी अन्य व्यक्ति के प्रति समर्पित होते नहीं देख पाता। इसी अन्तर्द्वन्द्व की बुनाई कहानी में हुई है।

श्वेता तीन वर्ष बाद भुवन से मिलने आई है और बहुत कुछ सुन-चुकने के बाद कहती है, 'आपसे प्रार्थना की थी कि एक रात केवल एक रात, मुझे दें पर आप नहीं माने थे..... शायद मैं अपने को खोल पाती, समझा पाती, दोस्त बनना कोई अपराध नहीं, मुझे अपने अकेलेपन को भरने के लिए साथ चाहिए था।' परन्तु भुवन इसे अपना अपमान समझता है। अब वास्तव में उसे श्वेता से वितृष्णा होने लगी थी, उससे परे रह कर अब वह स्थिर हो जाना चाहता है। 'उसका क्या होगा जो समर्पण तुमने बांटें हैं- समर्पण जो व्यक्ति के साथ बदले हैं।'

और भुवन को श्वेता के नग्न रूप की फोटो की याद आ जाती है, मन ग्लानि से भर जाता है, सम्पूर्ण नग्न श्वेता, रति में रत पुरुष के बाल सहला रही है, शारीरिक सुख की रेखाएं उसके चेहरे पर स्थिर हैं। पुरुष का मुंह छिपा है।' उसका मानसिक संतुलन बिगड़ने को हो जाता है, क्या श्वेता ने उसे नीचा दिखाने के लिए यह सब किया है ? श्वेता बहुतेरा कहती है कि वे केवल मित्र हैं, उसने एक बार स्पर्श करना चाहा था। आप मुझे समझते क्या हैं ? जिसके साथ चाहा निर्वस्त्र हो लिया ? उसके साथ मात्र स्पर्श हुआ है वह भी क्षणिक, आगे कभी बढ़ने नहीं दिया।'

कहानी में भाषाई पंक्च्युएशन की ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया। भाषा में कहीं आलोचना के तो कहीं कविता के शब्द हैं। लेखक 'नदी के द्वीप' की भाषा भंगिमा से विशेष प्रभावित प्रतीत होता है। काफी विस्तार लिए हुए भुवन का अन्तर्द्वन्द्व बोझिल भी बन गया है। चरित्र हनन का भय खूब विस्तार लिए हुए है। काफी लम्बी परन्तु साधारण कहानी है। दृष्टि स्पष्ट नहीं हो पाई।

कुल मिलाकर ये सभी कहानियां उनके पिछले कहानी-संग्रह की कहानियों की भाव-भंगिमा को नये भाव बोध के धरातल पर रिपीट करती प्रतीत होती हैं। शिल्प अतीत और वर्तमान

को समेटते हुए कहानी को गठित करता है। भाषा में काव्यतत्त्व मोहक है, रोमांटिक चित्रण भी।

5.2.2.12 जाल डॉ० राजकुमार का कहानी-संग्रह 'जाल' 19[illegible] ई० में प्रकाशित हुआ, जिसमें कुल आठ कहानियां संगृहीत हैं। लगभग सभी कहानियां विवरणात्मक शैली में लिखी गई हैं और कहीं-कहीं पूर्वदीप्ति और घटना-स्मरण का सहारा लिया गया है। कहानियों में व्यंग्य और सैक्स का पुट विशेष महत्वपूर्ण है। भाषाई मुहावरे में नयापन है और आंचलिक शब्दों का अच्छा अर्थस्फोटक हिन्दीकरण हुआ है। इन कहानियों का विस्तृत मूल्यांकन 'शिवालिक क्षेत्र में हिन्दी कहानी का उद्भव और विकास' ग्रन्थ में किया जा चुका है, यहां इन कहानियों का संक्षिप्त मूल्यांकन प्रस्तुत है।

5.2.2.12.1 प्यास कहानी अजनबियत के शिकार लोगों की कहानी है। नारायण के जीवन में अच्छी नौकरी के बावजूद अभी स्थैर्य नहीं आया। वह कभी बम्बई तो कभी महानगरीय जीवन के ग्लैमर के प्रति आकर्षित हो रहा है। पिता के प्रति दायित्व की भावना के बावजूद वह छुट्टियों में पिता की उपेक्षा-सी करके दिल्ली आ जाता है ताकि फ्रीलांसिंग के द्वारा कोई अच्छा अवसर ढूंढ ले। परन्तु दिल्ली की भीड़ और भागदौड़ से भी कोफ्त होती है और वह कॉफी हाउस में भी अजनबियत का ही बोझ ढोने लगता है।

दिल्ली में नारायण और वृंदिया से बिना अधिक संवाद करवाए लेखक ने दोनों के मानसिक तनाव और परस्पर लगाव की अनुभूतियों को कुशलता से नियोजित किया है। वातावरण और अजनबियत की समस्या का परस्पर गुंथा हुआ रूप कहानी को सशक्त बनाये हुए है पात्रों के अन्तर्मन और बाहरी वातावरण के बीच सघन तादात्मय बना रहा है, सशक्त कहानी है।

5.2.2.12.2 चिट्ठी 'चिट्ठी' कहानी में वोट की राजनीति से त्रस्त उजड़ रहे खोखे वालों के विद्रोह, उनसे हुई मारपीट, पुलिस के आतंक और प्रशासन की षड्यंत्रकारी तथा क्रूर नीतियों के साथ-साथ बीस सूत्री कार्यक्रम को लागू करने वाली प्रक्रिया के बीच के तंत्र की त्रुटियों की ओर संकेत किये गए हैं।

वह मुस्कराते हुए बोले 'अच्छा जब तक पक्की दुकानें अलाट नहीं होतीं रेहड़ियां लगा लो... सड़क से हटाकर... पर हां, खूंटे गाड़ कर छप्पर नहीं डालोगे।' मैंने कहा 'सरकार का जैसा हुकुम... लेकिन चिट्ठी मिल जाती तो..... क्या पता फिर वैसा ही हो... सौ... सवा-सौ परिवार हैं चोर उचक्के बन जाएंगे नहीं तो -'हां हां, जिलाधीश मुस्कराए. .... चिट्ठी भी ले ही जाओ।' कहानी में तंत्र के षड्यंत्र और अफसरी दंभ को दिखाने के साथ-साथ जिलाधीशों की टैक्टसिज़ का भी व्यंग्यात्मक ही सही अच्छा चित्रण हुआ है।

5.2.2.12.3 घेराव कहानी में बुद्धिजीवियों, नेताओं, छात्रों और प्रोफैसरों पर तीखा व्यंग्य किया गया है। कहानी की व्यंग्यात्मक वाक्यावली में देश में चर्तुदिक फैल गए भ्रष्टाचार और दिखावटी वृत्तियों पर तीखा प्रहार किया गया है। स्ट्रक्चर की दृष्टि से देखें तो कहानी

'बेगव' कहानी नहीं है इसमें असंगत, असम्बद्ध वाक्यावलियों को इस कौशल से जोड़ दिया गया है कि युवक के मन में युवती के प्रति पैदा हुए आकर्षण और युवती द्वारा इस आकर्षण के कारण किए युवक के शोषण की घटना को लेखक कहानी बना देता है जबकि आकर्षण की चरम स्थिति तक पहुंचने से पूर्व देश की अनेक समस्याओं, समाज की अनेक विसंगतियों, नेताओं के चारित्रिक दोगलेपन, प्रोफेसरों के चारित्रिक स्खलन और लोगों की अनेकानेक कुवृत्तियों को एक साथ पिरो दिया गया है। कहानी में काव्यात्मकता भाषा के स्तर पर है परन्तु विषय और कथ्य के प्रस्तुतिकरण में लेखक काफी सजग दीखता है।

5.2.2.12.4 **वसंतोत्सव** असफल प्रेम की कहानी है, जिसमें नारी-मन की आकांक्षाएं और उसके भोलेपन तथा प्रणयाकांक्षा का विस्तृत चित्रण हुआ है, मन की छोटी-छोटी प्रणय प्रतिक्रियाओं का चित्रण करने में लेखक सफल रहा है, नारी-मन के रोमानलोक और पुरुष की महत्वाकांक्षाओं का अच्छा चित्रण हुआ है, पुरुष के उपभोगवादी तथा उपयोगवादी दृष्टिकोण को परस्पर टकराते हुए कहानी को बुना गया है। नारी के मनोभावों ने कहानी को थोड़ा-थोड़ा काव्यात्मक बना दिया है परन्तु प्रकृति चित्रण के धरातल पर कहानी कहानी ही रही है कविता नहीं बनी और न ही लेखक ने कहानी के तर्क को कहीं छोड़ा है न ही भावुकता का दोष कहानी पर मढ़ा जा सकता है, श्वेता कवयित्री है सो भावुक भी और नीलाभ इंजीनियर है स्वभाव ही से तार्किक। अपने लाभ की ओर ध्यान देने वाला, सो दोनों के सम्बंधों में कहीं कोई स्वभाव-विरुद्ध पंक्ति नहीं। कहानी का अंत व्यंग्यात्मक हो गया है गैंडा... गैण्डा, बड़ी मोटी खाल वाला... जैसा कि नीलाभ।

5.2.2.12.5 **भालू** कहानी में बच्चे के मनोविश्लेषण के साथ-साथ रखैल औरत की अन्तर्पीड़ा को सशक्त अभिव्यक्ति मिली है। कहानी का शिल्प त्रिधारात्मक कथा-गठन के रूप में विकसित किया गया है। मनोविश्लेषण के निमित्त लेखक ने एक खिलौने का सहारा लिया है और कहानी धीरे-धीरे खिलौने को महत्वपूर्ण ही नहीं बनाती उसे कहानी का बीज भी बना देती है। समूची कहानी फ्लैश बैक, आत्ममंथन और अतीत के विश्लेषण के रुप में गठित है।

कविता को मां स्वीकार लेने तक की प्रक्रिया का ही कहानी में सशक्त मनोविश्लेषणात्मक चित्रण हुआ है और बाबू जी और कविता के परस्पर रिश्ते को जान लेने की जिज्ञासा आरम्भ से अंत तक बनी रही है। बड़ी सुगठित और विशिष्ट कहानी है।

5.2.2.12.6 **जाल** कहानी में प्राइवेट कालेज के प्राध्यापकों के शोषण और कालेज की प्रबन्धकीय व्यवस्था की त्रुटियों का चित्रण हुआ है। प्राध्यापकों में भी एक सदस्य ऐसा है जो व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए चापलूसी करता है और अपने ही वर्ग के विरुद्ध षड्यंत्र रचता है। प्राध्यापक उसके स्वभाव को जानते हैं परन्तु डरे-डरे-से उसके प्रति विद्रोह भी नहीं कर पाते। जबकि वह ऐसे मौकों पर चोट करता है कि नौकरी की खातिर उन्हें उसे सहन करना ही पड़ता है। सुच्चासिंह ऐसा ही प्राध्यापक है जबकि अनुराग शर्मा सुच्चासिंह के षड्यंत्रों का शिकार।

मुच्छासिंह के प्रति कालेज के छात्रों का भी कोई अच्छा विचार नहीं परन्तु वे भी आतंकित रहते हैं। कहानी में कहीं कहीं मानव मनोविज्ञान का सहारा लिया गया है और प्राध्यापकों पर थोपे जाने वाले आदर्शों और श्रम भावना का अच्छा दोहन किया गया है।

मुच्छासिंह कालेज होस्टल का वार्डन है। बाहर उसके अनुशासन से आतंकित हैं। प्रिंसीपल का सब से अधिक वफादार है वह.. मैनेजमेन्ट के प्रेजीडेंट का टोपीधारी चेहरा। खास जासूस है वह.......सैक्रेट्री का काणा चेहरा.. उसकी दूसरी आंख है वह। मतलब यह है कि सभी पावर्ज़ को पिरोकर बनाया गया कांटेदार पट्टा उसी के गले पर बंधा है...और वह यानी मुच्छा सिंह पालतू भी है...खूंखार भी...सभी डरते हैं। काश मुच्छा सिंह मामूली आदमी होता, प्रोफैसर शर्मा जैसा साधारण--सा जीव।

हां शर्मा जी...आपकी छुट्टी तो थी नहीं। मैंने बहुतेरा कहा था पर प्रबन्धक महोदय माने ही नहीं । कह रहे थे रूल तो सबके लिए एक जैसा है अमिर...! शर्मा जी की लैटरिंग अच्छी है...पर जब तक सफेदी नहीं होती...।'

कहानी में मुच्छा सिंह का चरित्र काफी उभार पा रहा है और अनुराग शर्मा के शोषण सम्बंधी घटनाएं भी काफी सहज और स्वभावजन्य हैं।

5.2.2.12.7 व्यभिचारी कहानी में आदमी के अन्तर्मन में छिपे भय का चित्रण हुआ है। जंगबहादुर के मन का भय और यौन उपभोग की आकांक्षा और रमेल सिंह का अपना भय अलग- अलग जगह है जबकि सावित्री की शारीरिक भूख अपनी जगह और रमेल सिंह की पत्नी की बीमारी तथा वहम अपनी जगह चारों खूंटियों पर खड़ी कहानी आदमी के अन्तर्मन के रहस्यों को उजागर कर देती है।

सारा परिवार गद् गद् था जंगबहादुर ने एक पैग और चढ़ा लिया जब तक खाना तैयार हुआ, रात काफी बीत गई थी। यह परिवार संभल जाए तो सकून ही मिलेगा...दुआ अलग...इज्जत अलग...उसे याद आया, रात का खाना...सावित्री खुद परोस रही थी...क्या बढ़िया खाना था। उसे लगा था...सावित्री की आंखों में रागानुराग की तरंगें उमड़ रही हैं, मुग्धा- सी वह उसे देखती है और आंखें झुका लेती है...अपने आप में डूबी -डूबी- सी कभी दुपट्टा संभालती है...कभी बाल समेटती है। रागानुराग में पगी-सी सविता उसे बहुत सुंदर लगी थी...दो चार बार उनकी आंखें भी मिली थीं...परन्तु मिलते ही उसकी रतनार आंखें झुक जाती थीं....।'

जंगबहादुर फंस-सा गया, कुछ अपने अभिनय के चक्कर में तो कुछ सावित्री के चक्कर में...उसे लगा, हड्डियां टूटेंगी, सिवाए पालतू हो जाने के चारा नहीं था। सामने सविता घड़ा उठाए चली आ रही थी। 'बाऊजी आते जाते रहा करो...रात को नींद तो आ गई थी न? आंखों में तो अभी भी खुमार है।' कई बरसों से देख रहा हूं...हर बरस अमलतास खिलता है और काले डण्ठल छोड़ कर बिखर जाता है...फूलों को संभाले नहीं रखता...मैं ही क्यों...फूल समेटे

गई ... मन [illegible] ... कह कर एकाएक उसने उसे आलिंगन में कस कर चूम लिया।

[illegible] ... [illegible] से ... अंत तक [illegible] बनी रही है और आर्थिक भय से तड़प रही अविवाहित लड़की की कुण्ठाओं और शंकाग्रस्त मर्द की मनःस्थितियों का सशक्त चित्रण हुआ है।

5.2.2.12.8 तलाश कहानी में बीमार मानसिकता के कारण त्यागी गई औरत की जीवन त्रासदी का चित्रण तो हुआ ही है, साथ ही साथ इसके पागलपन की तह में उतरने और उससे सहानुभूति रखने की अपेक्षा उसका तमाशा देखने और मज़ा लेने वाले लोगों की छिछली मनोवृत्ति पर चोट की है। कहानी में पागल-सी हो गई औरत की क्रिया-प्रतिक्रियाओं के पीछे उसके त्रस्त मन में उतरने की अच्छी चेष्टा हुई है। कहानी कुछ-कुछ मनोविश्लेषण-प्रधान है और औरत की मानसिक कुण्ठाओं और यंत्रणाओं के संकेतों को बुनकर कहानी का गठन किया गया है। कुछ बिखरी घटनाओं के संयोजन द्वारा हृदयद्रावक कथ्य को उजागर किया गया है।

'चलो यार...अब कोई डर नहीं...साली बेकार ही फंसा रही थी। पाल ने कहा और अपने ऊलजलूल भय पर ही हंसने लगा 'मुझे तो लगा था, यह आफत जरूर हड्डियां तुड़वा देगी'...फिर उसने यादव के कान में कुछ फुसफुसाया तो वह भी चहक उठा, 'अच्छा फिर तो हम दोष मुक्त हैं...अब इसकी क्या चिंता...डोलती फिरे बेशक....आंखें मारे, हाथ पकड़े, बाज़ू में बाज़ू डाले हमें क्या? हमारे मत्थे तो कुछ नहीं मढ़ सकती...कोई नहीं पकड़ सकता हमें... उसने यादव की उंगलियों में तेज़ नाखून गड़ा दिए थे।...भीड़ बढ़ती जा रही थी...तभी पाल का ज़ोरदार चांटा उसके गाल पर पड़ा, वह बिलबिला कर पीछे हटी, हाथ छूट गया था। पाल दुबारा लपका तो वह भी लपक पड़ी...'मेरे पेट में इसका बच्चा है... इसका बच्चा है मेरे पेट में...।' वह चिल्ला रही थी...और इन के पांवों के नीचे ज़मीन नहीं थी, दोनों के चेहरे ज़र्द थे, कुछ सूझ नहीं रहा था।...'पकड़ो...पकड़ो...सालों को...।' भीड़ चिल्ला उठी तो वे भाग खड़े हुए। परन्तु अब वे खुशी से फूले जा रहे थे फूले जा रहे थे...क्योंकि उसका पेट फूला हुआ नहीं था

कहानी में पागल-सी औरत की त्रासदी का चित्रण हुआ है और तथाकथित इज्जतदार लोगों की छिछली मनोवृत्तियों पर अच्छी चोट हुई है।

5.3 उपन्यास: नवां दशक

इस दशक में केवल दो उपन्यास प्रकाशित हुए हैं, जिनका मूल्यांकन निम्नलिखित है।

5.3.1 प्यार का सपना मृगेश दुबे शास्त्री का उपन्यास 'प्यार का सपना' 1984 ई. में प्रकाशित हुआ है। छात्र जीवन के दौरान लिखा गया यह साधारण उपन्यास है, जिसमें अशरीरी प्रेम को उच्च स्थान देने का यत्न किया गया है। पात्रों के कुछ अन्तर्विरोधी कथन और विचारसूत्र उनके चरित्र को कमज़ोर बना देते हैं और चरित्र विकास में भी अन्तर्विरोध पैदा कर देते हैं।

उपन्यास का मुख्य पात्र राजू साधारण ग्रामीण लड़का है जो शहर में बसने और शहरी

लड़की से विवाह करने की आकांक्षा पाले हुए है, सोचता है कि शहर में बसने और शहरी लड़की से विवाह करने के कारण उसकी इज्जत बढ़ जाएगी। इस साधारण सी आकांक्षा की पूर्ति के लिए वह शहरी लड़कियों में अपनी प्रेमिका पत्नी को ढूंढ रहा है परन्तु अपनी अव्यवहारिकता के कारण पामिला नाम की लड़की से अपमानित होता है और नारी जाति से घृणा करने लगता है।

फिर वह शशि नाम की लड़की के सम्पर्क में आता है परन्तु यहां भी बात बनती नहीं। इस स्थिति में दुःखी होकर वह विवाह के पचड़े में पड़ता ही नहीं और न ही पति को त्याग कर लौटी प्रेमिका शशि के पूर्ण समर्पण के बावजूद उससे विवाह करता है। राजू की इस उपराम स्थिति से दुःखी होकर शशि आत्महत्या कर लेती है और राजू अतीत-स्मरण करता हुआ नहर के किनारे खड़ा रह जाता है, उसी रात वह भी अंतिम सांस लेता है। उपन्यास में फ्लैश बैक शैली का उपयोग किया गया है, अन्तश्चेतन का सहारा भी लिया गया है।

राजू समाज के बंधनों से भाग कर विवाह कर लेने को सामाजिक कलंक समझता है और समझाता है कि एक बार वह उसके मां बाप को मनाने का यत्न करेगा, यदि न माने तो शशि को भुला देगा। वह शशि से कहता है 'शशि समाज में धनवानों का मुक़ाबिला करना कठिन है, मैं वह धनवान नहीं बन सकता, ऐसे समय में यहां से भाग जाना घर वालों को विशाल दुनिया में कलंकित करना है, बेहतर है तुम मुझे भुला दो और शादी कर लो।

वह राजू के पवित्र प्रेम का ऋण चुकाना चाहती थी और अपना सर्वस्व समर्पण कर देना चाहती थी। 'शादी से पहले मैं अपना आप तुम्हें सौंपना चाहती हूं।' राजू को यह सब सुन कर ठेस लगी 'क्या एक पवित्र प्रेम का ऋण तुम एक अन्धी वासना से चुकाना चाहती हो? क्या यही कीमत है प्यार की?'

शशि राजू की अकेलेपन की पीड़ा को समझती है और चाहती है कि राजू शादी कर ले।

शशि का पति से विवाद बढ़ जाता है तो वह उसका घर छोड़ कर राजू के पास आ जाती है। 'राजू मुझे कुछ भी कहो, बेहया, बेवफा, बदचलन या धन की प्यासी मगर मैं तो मजबूर होकर किसी की हो चुकी थी परन्तु आज..... भी यह दिल तुम्हारे ही प्यार से भरा है, मुझ पर, मेरे शरीर पर किसी ने अधिकार जरूर पा लिया परन्तु यह दिल कल भी तुम्हारा था और आज भी तुम्हारे ही प्यार से भरा हुआ है।' परन्तु राजू उसे अपने पति का घर बरबाद न करने की नसीहत देता है।

'एक बार पवित्र प्यार में कलंकित नारी कभी भी सुखी नहीं रह सकती, तुम अपनी प्यास बुझा लो सूर्य। अब मैं ज्यादा देर जीवित न रह सकूंगी।'...... सूर्य पश्चाताप ग्रस्त होता है परन्तु शशि का देहान्त हो जाता है और सूर्य उसके शव को नहर में बहा देता है। राजू उसके शव को बहते हुए देखता है और रात भर अपने अतीत का स्मरण करता रहता है। और वहीं उसके

जीवन की अंतिम रात हो जाती है।

उपन्यास का कथानक फिल्मी स्क्रिप्ट से प्रभावित है। तर्क की अपेक्षा भावुकता का आधिक्य भी गठन को कमजोर करता है। हां भाषा और संवाद के साथ-साथ सामाजिक दायित्व की दृष्टि से अच्छा उपन्यास है। संभावनाएं जगाता है।

5.3.2 धरती बोलती है सुदर्शं त्रिलोचन का उपन्यास 'धरती बोलती है' 1980-90 ई. के बीच ही कभी प्रकाशित हुआ है। उपन्यास का कथानक एक जिद्दी, शराबी, जुआरी और आक्रामक तबीयत के व्यक्ति के परिवार की त्रासदी को लेकर बुना गया है। पति के व्यवहार और आदतों से पत्नी की मानसिकता और मातृत्व तक घायल हो उठा है। परन्तु वह सारी आयु पति के प्रति विद्रोह नहीं कर पाती। स्थिति यह है कि उसकी बेटी बेटे ने मां की शारीरिक और मानसिक यातनाओं को देखा है, उन्हें मां के प्रति सहानुभूति भी है, वे मां को पिता के विरुद्ध विद्रोह करने के लिए उकसाते भी हैं परन्तु जब पत्नी ही अपने पति के विरुद्ध नहीं खड़ी हो पाती तो बच्चे मां की परवाह किए बगैर घर से निकल जाते हैं, बेटी मर्जी से विवाह कर लेती है और बेटा अपने स्वतंत्र-व्यक्तित्व के विकास के लिए घर त्याग देता है।

उपन्यास में परिवार के आर्थिक पतन और उत्थान का कल्पनाप्रसूत चित्रण हुआ है। औपन्यासिक शिल्प के आधार पर लेखिका के अच्छी उपन्यासकार बनने की संभावना से इन्कार नहीं किया जा सकता। लेखिका ने फ्लैशबैक, अन्तश्चेतन-विवरण और संवादों के माध्यम से कथानक को विकसित किया है। कहीं-कहीं भाषा में काव्य गुण आ गए हैं, प्रतीकों और रूपकों का अच्छा संयोजन हुआ है। कुलमिला कर यह एक अच्छा उपन्यास है।

अन्धेरे में कुछ पल पहले राजीव विलीन हुआ था और आरती इस हादसे से विजड़ित खड़ी थी, उसे विश्वास नहीं हो रहा था कि राजीव सभी बंधन तोड़कर चला जाएगा। मातृत्व के बवण्डर में उसने लूना की सीट पर हाथ रखा और उसे सहलाने लगी। 'राजू तू भी मेरे अन्तर को न जान सका।' उसने राजू की बात को गंभीरता से नहीं लिया था जब उसने कहा था 'मम्मी आज मैं निर्णय ले लूंगा, यही कि मुझे यहां रहना है या नहीं, पापा से तुम्हें मिला ही क्या है? उपेक्षा और निरादर का एक लम्बा सिलसिला ही ना, तुम्हें अपने ही घर में तिरस्कृत ही होते देखा है।' मां के प्रति सहानुभृति के कारण उसके हृदय में विद्रोह का लावा सुलग रहा है।

वह अपने अतीत में खो जाती है उसे लगता है कि दुःख एक अहसास है जिसके साथ जिया जाता है उसे छुआ नहीं जा सकता। वह दुःख सहती आई है ताकि यह घर बिखरे नहीं, बच्चों का बचपन बर्बाद न हो जाए, इसी कारण जैसा भी हुआ, जैसा भी मिला गले लगाया। उसने अपने आपको दो ध्रुवों के मध्य एक निर्जीव पिण्ड की तरह महसूस किया जिसे दोनों ओर का आकर्षण कीलित कर गया है, उसे लगा सूली पर चढ़े ईसा उसे ही देख मुस्करा रहे हों।

कभी-कभी अजित कई-कई दिन गायब रहता, जब आता तो फटे हाल, मलीन मुख!

मैले कुचैले वस्त्रों में! आरती का हृदय चीत्कार कर उठता. कभी आरती के हृदय में क्रोध उबलता तो झूठे सच्चे बहानों से उसे बहला लेती, पर कभी अजित पर सख्ती न कर सकी, अजित के दो मीठे बोल आरती के क्रोध के ज्वालामुखी के लावे को मोम बना देते। .....

उसकी सास ने समझाया था 'बेटी ! मैं जो हूं, मेरी तरफ देखो, सोलह वर्ष से वैधव्य काट रही हूं। सिर्फ अजित के सहारे ही न। कांटों पर चल कर भी मैं उसे जो बनाना चाहती थी वह न बना सकी। तुझे उसके लिए नहीं आने वाली संतान के लिए सब कुछ बर्दाश्त करना ही पड़ेगा। नारी धरती होती है बेटी! उस पर पत्थर भी गिरते हैं। ओले भी पड़ते हैं। वह बनी ही इसलिए है बेटी कि सूरज की जलती किरणों को अपनी नंगी पीठ पर झेलती रहे।'

उसे लगा था कि अजित उसे पत्नी नहीं बल्कि मन बहलाने का एक साधन मानता है। उसे तो सिर्फ 'लेना' है 'देना' शब्द उसकी डिक्शनरी में नहीं है।...... फिर अजित को संदेह हुआ था कि मुरलीधर उसका घर बरबाद कर रहा है। काफी दिनों बाद अजित घर आया था और मुरलीधर को देख कर भड़क उठा था।..... उसकी अनुपस्थिति में उसकी मां उसे याद करते मर गई थी परन्तु अजित का तो आरोप था कि आरती और मुरलीधर ने मिल कर उसकी मां को मार डाला है ताकि वे दोनों आसानी से मिल सकें। आरती फूट-फूट कर रोती रही और मुरलीधर अपमानित-सा महसूस कर चला गया। .....

वही अजित लौटा तो कितना बेगाना-सा होकर, कभी भावुकता के क्षणों में उसने बताया भी तो बस इतना कि जुआ, शराब और औरत ही उसकी जिंदगी है, वह इन तीनों के बिना नहीं रह सकता। परन्तु आरती कैसे अपनी जिम्मेदारियों से विमुख होती ?.... और एक दिन अजित घर आया तो सारी कमीज खून से लथपथ थी। .....अजित और उसके साथियों ने जुआ खेलते हुए सेठ मोहनलाल की बहुत पिटाई की थी। और अब उन सबसे छिप रहा था।

आरती ने मां की जो थोड़ी बहुत जमीन थी वह ठेके पर दे रखी थी जिससे घर की दाल रोटी ही चलनी मुश्किल थी । मां आरती का दुःख न सह सकी तो उसका देहान्त हो गया। अब आरती और भी अकेली रह गई, भूख से व्याकुल बच्चा, बीमार पति, बेबस आरती और आरती के पेट में बेटी रेनु थी। गांव के जमींदार ने उनकी जमीन हड़प ली थी। भाग्य ने उन्हें दर-दर की ठोकरें खाने के लिए विवश कर दिया था।

आरती की सेवा और तपस्या से अजित तंदरुस्त हुआ था तो उसके जीवन का ढर्रा बदल गया था, उन दिनों अजित एक ऐसे नशे में डूब कर जी रहा था, जिसे जिंदगी कहते हैं। उसे सदा यही लगन रहती कि वह अपनी जमीन छुड़वा ले। फिर अजित ने पीछे मुड़ कर नहीं देखा, शोहरत और दौलत का दरवाज़ा तो खुला पर शेष सभी मरने लगा, अजित सब कुछ भूलने लगा और वह पत्थर बनती रही, जिस पर हवा वर्षा या गर्मी का कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

परन्तु अतीत की कड़वी स्मृतियां अभी भी उसे कचोटती हैं। राम प्रकाश ने उसे खेतों में काम दिया परन्तु दिहाड़ी के नाम पर सूखी रोटियां देकर इज्जत लूटनी चाही। आरती को याद आया। पंडित जी ने चीथड़ों में से झांकते उसके नंगे बदन को निहारते हुए कहा था 'आरती अगर पैसों की जरूरत हो तो तुम निसंकोच ले सकती हो,' और एक अर्थ भरी मुस्कराहट आरती पर फेंकते हुए चला गया था।

उसे याद आया अजित ने भावुक होकर आरती से कहा था 'आरती मैंने आज तक तुम्हें दुःख दिए हैं और तुम-तुम फिर भी मेरी सेवा कर रही हो, मैं ठीक हो जाऊं तो रात दिन मेहनत करूंगा' और फिर कुछ दिनों बाद वह जमींदार के खेतों में हल चला रहा था कि एक दिन वह भूख की वजह से हल की फाल पर गिर गया था। सिर में गहरा ज़ख्म हुआ था। परन्तु जमींदार के बेटे ने ज़ख्म की परवाह न करके उसे काम पर आने के लिए कहा था और रकम उधार देने की धौंस भी दिखाई थी। 'जब तक वह ठीक नहीं होता उसकी जगह आरती खेतों में काम करे' उसे वहम था कि आरती अजित की छुट्टी और पैसों के लिए पक्के आम की तरह उसकी झोली में टपक पड़ेगी।

अजित ने राजीव के बारे पूछा था 'लौटा नहीं, न जाने कहां मरा है? हां तुम्हें कहां भूख होगी तुम्हारे लाडले ने जो अभी तक खाया नहीं। मैं कहता हूं तुम्हारे लाड़ प्यार ने उसकी आदतें बिगाड़ दी हैं, तुम्हीं ने उसे निठल्ला बना दिया है। हां और किसने? तुमने सदैव उसके लिए मुझ से झूठ बोला है। उसकी गलतियों को छुपाया है। कान खोल कर सुन लो वह आता है तो कह देना, चुपचाप कल आफिस आ जाए और फाईनैंस कम्पनी वाला काम संभाल ले इसीलिए मैंने उसे कामर्स के विषय ले दिए थे और उससे कह देना कि यह खामख्वाह की आर्टिस्टी बंद करे समय फजूल के कामों में नष्ट करने के लिए नहीं होता।' उसकी आंखों में घृणा और क्रोध की आग थी। आरती को याद आया बाप बेटे में रिश्ते के स्थान पर अलगाव रहा जबकि आरती ने बाप बेटे में रिश्ता जोड़ने के सभी प्रयत्न किए लेकिन हर बार उसी के अपने हाथ लहुलुहान हुए।

आरती को याद आता है कि रेनु ने आकर कहा था कि राकेश आने वाला है परन्तु आरती को लगा था जैसे राकेश नहीं भूचाल आने वाला है। अजित राकेश से नफरत करता है, उसे दिल फेंक और आवारा किस्म का लड़का कहता है। वह शहर के जाने माने एम.एल.ए. का लड़का है परन्तु अजित को उसकी वेशभूषा पसंद नहीं। रेनु राकेश से प्रेम करती है, उससे विवाह करना चाहती है, राकेश उसी का हाथ मांगने आने वाला है परन्तु आरती को डर है कि उसका अपमान न हो जाए।

'तुम्हें मालूम है मुझे वह अधकच्चरा नौजवान बिलकुल भी पसंद नहीं, प्रेम! कोरी भावुकता! तुम्हें मालूम है मैं जुबान दे चुका हूं।' आरती को याद आया कि प्रेम और विश्वास अजित की जिंदगी का कभी हिस्सा नहीं बन पाए इसलिए रेनु की भावनाएं उसके लिए तो कोरी

भावुकता ही थी और फिर राकेश का पिता अजित से रेनु का रिश्ता मांगने आया था तो अजित ने उसका भी अपमान कर दिया था। तब रेनु होस्टल से गायब हो गई थी और राकेश से प्रेम विवाह कर लिया था।

रेनु की शादी के बाद आरती बिलकुल अकेली पड़ कर बीमार रहने लगी थी, एक अभाव, खालीपन और चिढ़चिड़ेपन में जीने लगी थी वह सोचती कि चीखे कि घर की खामोशी को एक आवाज़ मिले, कौन है मेरा कोई एक भी तो नहीं, आओ और जान से मार डालो मुझे, यूं तड़पा तड़पा कर क्यों मारना चाहते हो।'...... और उसकी चीख चिल्लाहट को सुन कर राजीव उसके कमरे में भाग आया था..... और अजित को आरती को समझाते देख कर चला गया था और आरती ने पति से कहा था अगर आपको मुझ से जरा-सी भी सहानुभूति है तो रेनु को एक बार मुझसे मिला दीजिए। न जाने किस हाल में होगी। परन्तु अजित ने उसे डांट-सा दिया था। बेटी तो चली गई थी पर राजीव कहां जाए, उसे पापा से बेहद घृणा हो चुकी थी, जिस घर के वातावरण में नफरत और भय रचे बसे हों वहां कोई कब तक रहे ?

अंततः जब अजित की आंखें भर आईं, आत्मग्लानि से भर उसने माना कि उसने आरती को सदा दुःख ही दिया है तो आरती को अजित से सहानुभूति होने लगी है कि वह नहीं जान सका कि बच्चे कुण्ठित होकर उससे नफरत करते रहे हैं, वह उनकी घृणा का पात्र बनता रहा है।.... सोये हुए अजित के चेहरे पर बच्चों की तरह का भोलापन उमड़ आया देख आरती के मन में ममत्व उमड़ता है और वह अनायास उससे लिपट जाती है। अजित की बांहों में कैद वह सोच रही है कि वह कभी अजित से घृणा नहीं कर सकी अजित के आगे उसकी घृणा पिघल कर मोम की तरह जल कर कतरा-कतरा बिखर जाती रही है, क्या ये वही क्षण हैं जिन्हें आरती जीना चाहती रही है परन्तु इन क्षणों का जीवन होता ही कितना है।

उपन्यास का शिल्प सुगठित है परन्तु कहीं-कहीं कुछ वाक्य अन्तर्विरोध भी पैदा कर देते हैं भाषा अच्छी है।

संदर्भ

1. मरुस्थल-ओ.पी. शर्मा 'सारथी'-

2. इस भूमण्डल पर राजकुमार-फ्लैप।

3. सरसिज सुश्री शकुन्तला सेठ-भूमिका

4/5 सौगात अवतार कृष्ण राजदान-भूमिका।

-0-

6

उपसंहार

जम्मू-कश्मीर राज्य में हिन्दी साहित्य का इतिहास बहुत पुराना नहीं। यहां हिन्दी साहित्य-लेखन की परम्परा का आरम्भ रीतिकाल के उतरार्द्ध में कवि दत्तू से हुआ। राजाश्रित कवि दत्तू ने 'महाभारत' के 'द्रोण पर्व' का अनुवाद तो किया ही 'ब्रजराज पंचाशिका' में रीतिकालीन पद्धति में युद्ध वर्णन भी किया। उनकी कविता को जम्मू-कश्मीर की हिन्दी कविता का पहला नींव पत्थर कहा जा सकता है।

महाराजा रणवीर सिंह के शासन काल (1856-85 ई०) यानी भारतेन्दु काल में भी यहां के हिन्दी साहित्य में रीतिकालीन काव्य-प्रवृत्तियां बनी रहीं। राजाश्रित कवि पंडित नीलकंठ ने इस काल में काफी रचनाएं लिखीं, जिनमें शासकीय रीति-नीति और आचार-व्यवहार का वर्णन मिलता है। इसी काल में कश्मीर में कवि परमानन्द की कविता में भक्ति और अद्वैत दर्शन के प्रभाव के दर्शन होते हैं।

महाराजा प्रताप सिंह के शासन काल (1885-1925 ई.) यानी 'द्विवेदी युग' से पहले से लेकर 'छायावाद' के मध्य तक जम्मू कश्मीर में साहित्य-लेखन की गति धीमी पड़ गई और इस काल में अधिकतर हस्तलेखों को संगृहीत और संकलित किया गया। हां, इस काल में कश्मीर में मास्टर जिंदा कौल शंकर के वेदान्त दर्शन से प्रभावित होकर रहस्यवादी कविता लिख रहे थे।

कहा जा सकता है कि जम्मू में 1925 ई. तक का साहित्य राजाश्रित रहा है जबकि कश्मीर में कवि परमानन्द से ही राजाश्रय मुक्त भक्ति-भावना से प्रेरित साहित्य का सृजन होने लगा था और यह परम्परा मास्टर जिंदाकौल तक क्रियमान रही।

महाराजा हरि सिंह के शासनकाल 1925-48 ई. भारतीय स्वतंत्रता पूर्व काल तक जम्मू का साहित्य भी धीरे-धीरे राजाश्रय से मुक्त होने लगा और इस काल के मुख्यधारा के हिन्दी साहित्य से प्रभावित होने लगा। इसी काल में जम्मू के हिन्दी साहित्य में भारतेन्दु कालीन और 'द्विवेदी काल' की काव्य-प्रवृत्तियों के दर्शन होने लगे। महाराजा हरिसिंह के शासन काल के उत्तरार्द्ध में जम्मू में राजाश्रय से मुक्त साहित्य-संस्थाएं अस्तित्व में आईं और प्रदेश का साहित्य समूचे देश की हिन्दी काव्यधाराओं से प्रभावित होने लगा। महाराजा हरि सिंह के शासन काल का यही उत्तरार्द्ध जम्मू में साहित्य-सृजन की दृष्टि से काफी महत्वपूर्ण है। इसी काल में पंडित हरदत्त शर्मा कविता के माध्यम से देशप्रेम, भाषा-प्रेम, प्रभु-प्रेम और समाज-सुधार की द्विवेदी

युगीन काव्य-प्रवृत्तियों का प्रचार-प्रसार कर रहे थे।

वस्तुत: 1940 ई. के बाद जम्मू में अनेक कवियों का काव्य-सृजन आरम्भ हुआ, कुछ पत्रिकाएं भी प्रकाशित होने लगीं, साहित्य संस्थाओं में गोष्ठियां होने लगीं और साहित्य सृजन की कामना उन्माद की स्थिति तक पहुंचने लगी। इसी काल में लेखन का श्री गणेश करने वाले कवियों ने आगे चल कर जम्मू में हिन्दी साहित्य की परम्परा को आज तक जीवित रखा है। इस काल में गोष्ठियों में पढ़ने के लिए अधिकतर कविता का ही सृजन हुआ और कविता में द्विवेदी युगीन मुख्य धारा की हिन्दी कविता की लगभग सभी काव्य-प्रवृत्तियों का घालमेल एक साथ मिल जाता है समाज सुधार, देशानुराग, भाषा-प्रेम की भारतेन्दुकालीन प्रवृत्तियां, भाषागत सरलता, सहजता के साथ द्विवेदी युगीन आकांक्षा और छायावादी रहस्यमयी प्रकृति का चित्रण तथा आध्यात्मिक भावना और विरह-चित्रण की मन:स्थितियों के साथ-साथ छायावादोत्तर कवित्रयी (बच्चन, नरेन्द्र, अंचल) की कविता जैसी स्वच्छन्दता, मादकता और मांसल श्रृंगारिकता को तो 1970 ई. तक की जम्मू की हिन्दी कविता में देखा जा सकता है।

जबकि कश्मीर में 1950 ई. के बाद साहित्य संस्थाओं की स्थापना हुई और जो एकाध कवि परम्परानुगत साहित्य-सृजन कर रहे थे उन्होंने भी प्रयोगवादी कविता से प्रभाव ग्रहण कर रचना-शिल्प को बदलना आरम्भ कर दिया। परन्तु इनमें काव्य अनुभूति के धरातल पर कोई विशेष बदलाव नहीं आया।

मातृभाषा के विकास और मातृभाषा में साहित्य-सृजन की प्रवृत्ति ने 1940 ई. के बाद ज़ोर पकड़ा तो जम्मू में डोगरी साहित्य-लेखन और कश्मीर में कश्मीरी साहित्य-लेखन की ओर लेखकों का रुझान बढ़ा। अत: राज्य में ऐसे अनेक साहित्यकार तैयार हुए जो मातृभाषा और हिन्दी दोनों में साहित्य-सृजन करने लगे और 1970 ई. तक के प्रकाशित साहित्य में उनकी एक ही रचना दोनों भाषाओं में प्रकाशित होती रही। इस प्रवृत्ति से हिन्दी के साथ-साथ अन्य प्रादेशिक भाषाओं के साहित्य में भी श्री वृद्धि होती रही।

छठे दशक में कश्मीर में 'नयी कविता' की प्रवृत्तियों ने बल पकड़ा परन्तु जम्मू में कविता का भावबोध और काव्य-शिल्प परम्परा अनुमोदित ही रहा। हां, जम्मू में इस काल में प्रगतिवादी चेतना का प्रभाव भी पड़ा और सुभाष भारद्वाज ने इस प्रगतिवादी चेतना से सम्पृक्त अनेक कविताएं लिखीं । जो उनके काव्य-संग्रह 'ताण्डव' में 1960 ई. के एकदम बाद प्रकाशित हुईं।

1961 ई. में प्रकाशित 'पद्यांजली' में जम्मू कश्मीर कल्चरल अकादमी ने इस काल तक की हिन्दी कविता की सभी बानगियों को एक साथ संकलित किया, जिससे स्पष्ट हो जाता है कि इस समय तक जम्मू कश्मीर में अधिकतर परम्परागत भावबोध और काव्य-शिल्प में ही रचनाएं लिखी गईं। इसी काल में बल्कि 1961 ई. में ही कल्चरल अकादमी ने 'गद्यांजली' को प्रकाशित किया जिसमें कहानी, निबन्ध, नाटक आदि संकलित हुए। इस संग्रह में अधिकतर पूर्व प्रकाशित कहानियों को ही संकलित किया गया है। यहीं से ज्ञात होता है कि हरिकृष्ण कौल और वेदराही

ने इसी दशक में लेखन आरम्भ किया. वस्तुत: इसी दशक में स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी का आरम्भ हुआ है। 'पद्यांजली' के संदर्भ में देखें तो शशि शेखर तोषखानी की कविता में 'नयी कविता' के आरम्भ का दर्शन होता है जबकि पृथ्वीनाथ 'पुष्प' की कविता के स्वच्छन्द काव्य-शिल्प में प्रगतिवादी दृष्टिकोण और रत्नलाल 'शान्त' तथा मोहन 'निराश' की कविताओं में प्रयोगवादी प्रवृत्ति की झलक मिल जाती है। कहानी और नाटक का शिल्प परम्परागत ही रहा है।

सातवें दशक में 'शीराजा' में अनेक फुटकर रचनाएं प्रकाशित हुईं और 'हमारा साहित्य' में इन पूर्व प्रकाशित महत्वपूर्ण रचनाओं का पुनर्प्रकाशन होता रहा। इन सभी रचनाओं के अतिरिक्त इस दशक में लेखकों के स्वतंत्र काव्य-संग्रह प्रकाशित होने लगे और एक स्वतंत्र कहानी-संग्रह तथा दो उपन्यास भी प्रकाशित हुए। इन संग्रहों के अतिरिक्त चार नाटक-संग्रह भी प्रकाशित हुए। कहा जा सकता है कि 1960 ई. तक अप्रकाशित रहे रचनाकारों के लिए यह दशक स्वर्णिम युग रहा। इन प्रकाशित काव्य-संग्रहों में अधिकतर व्यक्तिगत राग-विराग, शृंगार और यौवन की कामनाओं को परम्परागत शिल्प और परम्पराभुक्त प्रस्तुत-विधान और छन्दों में प्रस्तुत किया गया और इन में बौद्धिकता की अपेक्षा भावुकता को बल मिला। व्यक्तिगत अभाव और नैराश्य के साथ-साथ अध्यात्म और रहस्यवादी चेतना की अभिव्यक्ति भी इन रचनाओं में हुई।

गंगादत्त विनोद, शंकरशर्मा पिपासु, मनसाराम शर्मा 'चंचल' और ओम प्रकाश गुप्त की कविताओं में यह सभी प्रवृत्तियां मिल जाती हैं। जबकि रत्नलाल 'शान्त', सुभाष भारद्वाज और सुतीक्ष्ण कुमार आनन्दम् की सातवें दशक में प्रकाशित रचनाओं में क्रमश: मूल्यगत विघटन, संस्कार-शोधन और प्रयोगाकांक्षा को कविता का केन्द्रीय तत्व बनाया गया है और मोहभंग के कारण पैदा हुए मूल्य-ह्रास तथा रुग्ण मन: स्थितियों का अस्तित्ववादी प्रभाव के अन्तर्गत चित्रण किया गया है। कश्मीर के प्राकृतिक सौंदर्य का चित्रण भी इन कविताओं में हुआ है और लोक जीवन के आह्लाद, ऊब, घुटन और संत्रास को भी अभिव्यक्ति मिली है। नये भावबोध और शिल्प को अपनाते हुए इस दशक में कवि शशि शेखर तोषखानी और डॉ. रमेश कुमार शर्मा ने बदल रही जीवन स्थितियों में जूझ रही संघर्षचेतना का अच्छा चित्रण किया है परन्तु अंधकार के विरुद्ध संघर्षशील प्रकाश इन कविताओं में असमर्थ-सा है और विवशता की अनुभूति कविता का केन्द्रीय भाव है। इस दशक के एक मात्र महाकाव्य 'शिवालोक' में 'कामायनी' का घातक प्रभाव लक्षित होता है।

सातवें दशक में मूलतया हिन्दी में लिखने वाले कहानीकारों ने साधारण और परम्परागत रचना शिल्प की ही कहानियां लिखी हैं। हां, उर्दू, डोगरी और कश्मीरी आदि भाषाओं में लिखने वाले कहानीकारों ने कुछेक अच्छी ही नहीं उत्कृष्ट कहानियां भी हिन्दी में प्रकाशित करवाई हैं। ठाकुर पुन्छी की 'दसौंधा सिंह 'दर्दी', 'डबू जी' पुष्कर नाथ की 'जीते की मौत', 'हृदय का रहस्य', 'गलीचा' प्रो. राम नाथ शास्त्री की 'बदनामी की छांव' नरेन्द्र खजूरिया की 'एक पत्ता पतझर का' चंचल शर्मा की 'टूटा फूटा पति' घनश्याम सेठी की 'पारो' मदन सिंह

ठाकुर की 'स्वर्ग सीढ़ी' वेदराही की 'एक पुल था', 'दरार', 'बर्फ' हरिकृष्ण कौल की 'दांव', 'गन्दी बहार' आदि ऐसी कहानियां हैं जिन्होंने आगे चल जम्मू कश्मीर की हिन्दी कहानी को अत्यधिक प्रभावित किया है। ये कहानियां न केवल मौलिकता, सहजता, रोचकता और कथारस की दृष्टि से ही उत्कृष्ट हैं, रूपबन्ध और कथ्य की दृष्टि से भी जम्मू-कश्मीर की हिन्दी कहानी के स्वरूप-विकास की प्रक्रिया की शुरुआत करती हैं। इस दशक के उपन्यास साधारण हैं।

नाटकों में से नरेन्द्र खजूरिया का 'रास्ता कांटे और हाथ' अच्छा आदर्शवादी सामाजिक नाटक है जबकि मोतीलाल केमु के नाटकों में जीवनगत असंगतियों और राजनीतिक, सामाजिक जीवन में घर कर रही मूल्यहीनता और अनैतिकता का विशद् चित्रण हुआ है। इन नाटकों की व्यंग्यमयी भंगिमा तीखी और भेदक है। लोकनाट्य के शिल्प को अपनाकर लिखा गया केमु का नाटक 'अन्तः पुर का दर्पण' व्यंग्य और विसंगति के साथ-साथ राजनीतिक प्रपंचों पर लिखा गया जम्मू कश्मीर का ही नहीं हिन्दी नाटक साहित्य का उत्कृष्ट नाटक है।

आठवें दशक में परम्परागत भावबोध से सम्बंधित फुटकर कविताओं का प्रकाशन लगभग बंद हो जाता है और इस दशक में बंसीलाल सूरी के काव्य-संग्रह 'सहस्त्रमुखी' और देवरत्न शास्त्री के काव्य-संग्रह 'सप्तपदी' में ही इस भावबोध की झलकियां मिलती हैं दोनों यद्यपि इन कवियों ने नवीन काव्य-शिल्प को अपनाने का भी यत्न किया है। इन दोनों कवियों के अतिरिक्त इस दशक में प्रकाशित 14 काव्यसंग्रहों में धरती, प्रकृति और परमात्मा के सौंदर्य-चित्रण की अपेक्षा जनजीवन की विसंगतियों, ऊब, घुटन, संत्रास और राजनीतिक विसंगतियों को चित्रित किया गया है। मोहभंग और अस्तित्ववादी रुग्ण मन:स्थितियों के चित्रण का एक फैशन-सा इन कविताओं में मिल जाता है। जबकि इन स्थितियों का चित्रण कहीं-कहीं अकारण हुआ है तो कहीं मात्र स्थिति प्रस्तुतीकरण के रूप में। बहुत कम कविताएं ऐसी हैं जिनमें ऊब, संत्रास, घुटन की कारक शक्तियों को पहचाना गया हो और उनके विरुद्ध संघर्ष-चेतना को प्रज्वलित किया गया हो। पृथ्वीनाथ 'मधुप', रमेश मेहता, 'निर्मल' विनोद, सुतीक्ष्ण कुमार आनन्दम्, अशोक कुमार, अशोक जेरथ आदि के काव्य-संग्रहों में संघर्षचेतना के विकास की पृष्ठभूमि मिलती है साथ ही साथ प्रयोग की आकांक्षा भी बलवती है और स्थिति-चित्रण का आग्रह भी ज़ोर पर है। ओम प्रकाश गुप्त, अशोक कुमार, अशोक जेरथ और आनन्दम् की कविताओं में व्यक्तिवादी आकांक्षाओं की पूर्ति की राह में आए गतिरोधों के विरुद्ध हुई काव्याभिव्यक्ति के दर्शन होते हैं। 1975 में घोषित आपातकाल से पहले के राष्ट्रीय स्तर के छात्र आंदोलन से 1977 ई. के राष्ट्रीय चुनाव के बाद बनी नयी सरकार से की गई जन-आकांक्षाओं की आपूर्ति न होने के कारण विकसित हुए विषाद का चित्रण भी जम्मू-कश्मीर की कविता का केन्द्रीय तत्व बना है। जनता की इस संघर्षचेतना को राजनीतिक चेतना के रूप में बदलने का यत्न इस काल की कविता का महत्वपूर्ण अंग है। यह बात अलग है कि कवियों की राजनीतिक विचारधारा कहीं कहीं प्रगतिवाद (मार्क्सवाद) से प्रेरित है तो कहीं-कहीं भारतीय पुनरुत्थानवादी चेतना से और भारतीय राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की विचारधारा से भी। महाराज कृष्ण संतोषी, बलनील देवम्, आज़ाद कुमार मानव 'नाहर', अशोक जेरथ, ओम प्रकाश गुप्त, आदि कवियों

की अनेक कविताओं में क्रमश: ऐसी राजनीतिक चेतना का संस्पर्श मिल जाता है। कुल मिलाकर आठवें दशक के कवियों ने आम आदमी की जीवन विसंगतियों, राजनीतिक विडम्बनाओं, पूंजीवादी अर्थव्यवस्था और शासन तंत्र में छटपटाते आदमी की जिजीविषा को कविता का कथ्य बनाया है और राजनीतिक दोगलेपन तथा स्वार्थों पर चोटें की हैं। कहीं-कहीं व्यंग्य, आक्रोश और विवशता का अच्छा उद्‌घाटन हुआ है और मानव जीवन की विसंगतियों के कारणों को खोजा गया है। परम्परागत काव्यशिल्प के अन्तर्गत देवरत्न शास्त्री की कुछ व्यंग्य कविताएं काफी सफल और सार्थक हैं।

आठवें दशक में हिन्दी के अतिरिक्त अन्य भाषाओं में लिखने वाले पुराने कहानीकार हिन्दी का कहानी क्षेत्र लगभग छोड़ देते हैं जबकि पंजाबी तथा डोगरी के भी कुछ नये कहानीकार हिन्दी में कहानी लिखने लगते हैं। कश्मीरी के कहानीकार हरिकृष्ण कौल तो पूर्णतय: हिन्दी कहानी के क्षेत्र में उतर पड़ते हैं और अनेक हिन्दी कहानियां प्रकाशित करवाते हैं। पंजाबी के नये कहानीकार दीदार सिंह का हिन्दी कहानी-संग्रह 'धुंधलके' इसी दशक में प्रकाशित होता है, हिन्दीतर अन्य भाषाओं के नये लेखकों की एकाध हिन्दी कहानियां इस दशक में प्रकाशित हुई हैं। इनके लेखकों अतिरिक्त मूलतया हिन्दी में लिखने वाले नये कहानीकारों की अनेक कहानियां इस दशक में प्रकाशित हुई हैं, कुछेक स्वतंत्र कहानी-संग्रह भी नये लेखकों के प्रकाशित हुए हैं।

आठवें दशक की कुछ उत्कृष्ट कहानियां हैं-'टोकरी भर धूप' , 'कर्फ्यू', 'भय', (हरिकृष्ण कौल) 'कर्फ्यू' (रत्न लाल शान्त), 'घुटन' 'राजा' ध्यानपुरी उर्फ डा० राजकुमार 'इज्जत' (सत्या प्रकाश आनन्द) 'दायरे' (ज्योतीश्वर पथिक) 'सहज असहज' '(निर्मल विनोद)' अधूरी कहानी का हीरो और संदर्भहीन (रमेश मेहता), 'एक फैला हुआ बरगद एक घुटी हुई सांस' (जगमोहन) एक वार कई घाव (डॉ. मनोज), 'एक दिन का सूर्य' (इन्द्रजीत सिंह पुजारी), 'जेम्स एक पैथेटिक कैरेक्टर' (सुभाष शर्मा) 'घर की ओर' (अमरनन्दा) 'अलगाव' (नीलम खोसला), 'एक घण्टा लम्बी सड़क की नियति' (डॉ. सोमनाथ कौल), 'चट्टान' (राजेन्द्र जेरथ) 'युग और आग' 'मैटर्निटी लीव', 'बूढ़ा ज्वार', 'तारों की छांव' (डॉ. ओम प्रकाश गुप्त) 'मांग का सिंदूर', 'घुटन', 'बन्द दरवाज़ा', 'बड़े घर की बहू' (दीदार सिंह), 'निर्वासित', 'व्यक्ति', 'मुक्तिदूत', 'नन्हा सीताराम' (ओम गोस्वामी) 'आकाश के टुकड़े', 'ताण्डव नृत्य', 'भरा पुरा पुरुष', 'सिर्फ एक बार' (बलनील देवम्) 'रजाई', समझौता (राज भल्ला) ' 'कीमती चीज़' 'बरसात' 'पराजय' (अवतार कृष्ण राजदान) आदि।

इन कहानियों में अनुभूतिगत तनाव, जिज्ञासा, रोचकता, मौलिकता और सहजता के गुण सतत् विद्यमान हैं और इनमें मानवहृदय का सीधा सच्चा साक्षात्कार होता है और ये कहानियां भावुकता तथा कल्पनातिरेक से बची हुई हैं। कहानी में कथारस में कहीं-कहीं अवरोध आया है और कहीं-कहीं काव्यगुण भी आए हैं परन्तु कहानी के ये दोष लेखकों की प्रयोगकांक्षा के कारण ही आए हैं, कहानी के शिल्प में विकास की आकांक्षा के कारण भी कुछेक कहानियों को नुकसान पहुंचा है, फिर भी उपर्युक्त कहानियों के कथानक-विकास में संयोगों और कथा

अभिप्रायों के संयोजन की पद्धति को पूर्णतया त्याग कर संवादों, स्थिति-चित्रण और पात्र की कार्यशीलता, स्थिति तथा आन्तरिक द्वन्द्व और अन्तश्चेतन की विचारशीलता के परस्पर ग्रन्थन से कहानियां उत्कृष्ट बन पड़ी हैं। मौजूदा जीवन विसंगतियों में फँसे आदमी के अन्तश्चेतन की अभिव्यक्ति ही इन कहानियों का विषय है। जम्मू-कश्मीर में पूर्व प्रकाशित कहानियों के प्रभाव और मन: स्थिति के दुहराव की वृत्ति से भी ये सभी कहानियां मुक्त हैं और न ही इनमें शैलीगत प्रयोगों का अतिरेक है। यदि कथारस कहानी का मूल गुण है तो ये सभी कहानियां उत्कृष्ट हैं।

आठवें दशक में साधारण आदर्शवादी उपन्यास प्रकाशित हुए हैं जिनमें पात्रों के व्यक्तित्व का विकास या तो आरोपित प्रतीत होता है या अवरुद्ध-सा है। कथानक में एकांगीपन है और बहसों या लम्बे-लम्बे सम्वादों को उपन्यास-सृजन का आधार बनाया गया है। 'अनुराग विराग' को कुछ हद तक अच्छा उपन्यास कहा जा सकता है, जिसकी प्रासंगिक कथाएं अच्छी हैं। 'दहकते अंगारे' और 'अनुराग विराग' दोनों ही आठवें दशक के आदर्शवादी उपन्यास हैं जिनका ऐतिहासिक महत्व है। आठवें दशक में 'आखरी पन्ने' नाटक-संग्रह के नाटक आदर्शवादी हैं, जिनमें से 1966 ई. में लिखा 1975 ई. में 'सांझे मंच पर' नाम से प्रकाशित नाटक 'पागल' को उत्कृष्ट नाटक कहा जा सकता है।

1940 ई. से लिख रही तीन कवयित्रियों कृष्णा गुप्ता, शकुन्तला सेठ, राज भल्ला का नवें दशक में एक एक काव्य-संग्रह प्रकाशित हुआ है, इन संग्रहों में इनकी नयी पुरानी चुनी हुई कविताएं संकलित हैं। इन कवियों के अतिरिक्त पुराने भावबोध और शिल्प के अन्तर्गत लिखने वालों में सरिता शर्मा, वेदकुमारी, राम प्रताप और शंकर शर्मा 'पिपासु' की कविताएं भी पुस्तक रूप में प्रकाशित हुई हैं। इनके संग्रहों की कविताओं में देश प्रेम, आत्मा-परमात्मा, दाम्पत्य जीवन, नारी-भावना, नारी-जीवन की महिमा और व्यथा, जीवन की परिभाषा, भाषा-प्रेम, प्रकृति चित्रण की प्रवृत्तियां मिलती हैं और कुछेक सामाजिक समस्याओं का चित्रण भी हुआ है। शकुन्तला सेठ की कविता में लोकजीवन और नवनिर्माण की भावना बलवती है, कृष्णा गुप्ता ने नारी भावनाओं को सशक्त अभिव्यक्ति दी है, राज भल्ला की कविता में सामाजिक समस्याओं और राजनीति के दोगलेपन पर तीखे व्यंग्य बाण छोड़े गए हैं। वेद कुमारी की कविता में शृंगार का चित्रण अच्छा है। इसी दशक में भारतीय जीवन-दृष्टि की विस्तृत अभिव्यक्ति भुवनपति और आनन्दम् की कविताओं में मिलती है 'सारथी' की कविता में मौजूदा जीवन-संघर्षों में आदमी के लुप्त होते चले जाने की चिंता और व्यक्ति के मुखौटों तथा सत्ता के प्रसार के बीच के अच्युत संघर्ष का वर्णन हुआ है। लगभग इन सभी कवियों का जीवन-दर्शन और कवि-दृष्टि भारतीय आनन्दवादी जीवन-दृष्टि और अद्वैत भावना के परिप्रेक्ष्य में विकसित हुई है, और लगभग ये सभी कवि आस्तिक हैं और आध्यात्मिक जीवन से जुड़े प्रश्नों और रहस्यवादी कल्पनाओं के पक्ष-विपक्ष में अपनी अनुभूति और विचारों का संयोजन करते प्रतीत होते हैं।

नवें दशक में नये भावबोध और शिल्प से सम्बंधित अनेक काव्य-संग्रह प्रकाशित हुए हैं। इन संग्रहों की कविताओं में आधुनिक पूंजीवादी लोकतंत्र में दिन-ब-दिन विवश हो रहे आदमी का चित्रण किया गया है और राजनीतिक दोगलेपन पर चोटें की गई हैं। इन कविताओं

का आम आदमी ऊब, घुटन और संत्रास की मन: स्थितियों से ग्रस्त न होकर आत्म-विभाजित-सा है और अपने विडम्बनाग्रस्त जीवन के कारणों को खोज रहा है, उन पर चोट कर रहा है, आदमी के संस्कारों का शोधन करके उसे संघर्ष के लिए प्रेरित कर रहा है। नवें दशक की कविता में पूंजीवादी मशीनीकरण, स्वार्थांध राजनीति और शहरीकरण के कारण हो रहे मानव-मूल्यों के ह्रास के प्रति चिंता की गई है और दिन-प्रति-दिन विघटनशील तथा सूख रहे जीवन स्रोतों के प्रति चिंता का चित्रण हुआ है। नवें दशक की कविता में फैशन के तौर पर अपनाई अस्तित्ववादी जीवन-दृष्टि का भी चित्रण हुआ है। इसके अन्तर्गत आने वाली पलायन वृत्ति को त्याग कर मार्क्सवादी संघर्षचेतना को विकसित करने के यत्न भी दृष्टिगोचर होते हैं। मनोज शर्मा और आदर्श की कविताएं तो परम्परागत गांधीवादी सुधार-चेतना और अकवितावादी अस्तित्व दर्शन को पूरी तरह नकार रही हैं और ये कवि प्रतिबद्ध लेखन के पक्षधर प्रतीत होते हैं। किसी राजनीतिक विचारधारा के अन्तर्गत आने वाली संघर्ष-चेतना की अपेक्षा मानव-अस्तित्व के लिए घातक जीवन-शक्तियों के विरुद्ध नैसर्गिक संघर्ष-वृत्ति का चित्रण इस दशक के लगभग सभी कवियों की कविताओं में हुआ है और राज नेताओं के खोखलेपन पर चोटें की गई हैं। डॉ० ओम प्रकाश गुप्त, डॉ. राजकुमार, जितेन्द्र उधमपुरी, पृथ्वीनाथ 'मधुप', ज्योतीश्वर पथिक रमेश मेहता, सत्यपाल श्रीवत्स, आदर्श, मनोज शर्मा और राजभल्ला की अनेक कविताओं का मूल विषय है-मानव-मन की कटु जीवनानुभूतियों और जीवन-संघर्ष की यथार्थ अभिव्यक्ति। जिनमें प्रयोगाकांक्षा की अपेक्षा भावगत तरलता और सम्प्रेषणीयता को अधिक महत्व मिला है।

नवें दशक में जम्मू-कश्मीर में हिन्दी कहानी अपने चरमोत्कर्ष पर पहुंची है। अनेक नये कहानीकार कहानी के क्षेत्र में उभरे हैं, अनेक स्वतंत्र कहानी-संग्रह प्रकाशित हुए हैं और अनेक कहानीकारों की अनेक श्रेष्ठ कहानियां इस दशक में प्रकाशित हुई हैं। ये उत्कृष्ट कहानियां हैं-मटमैले आधार (संजना कौल) 'लहराती हुई पूंछ' (शक्ति शर्मा) 'खत' (महाराज कृष्ण शाह), 'धराशायी' (चन्द्रकान्ता), 'धुंध' (अलंकार), 'बनजारे' (ज्योतीश्वर पथिक) 'उखड़ने से पहले' (रमेश मेहता) 'सारस' (रत्नलाल शान्त) 'पुनर्योग' (वेद राही), 'कौरव पाण्डव', 'अफशां', 'अग्निपरीक्षा' (दीदार सिंह) 'दिशाहीन' (डॉ. निर्मल चोपड़ा) 'थकान' (बंसीलाल), 'सूरज जग गया' (पद्मा सचदेवा) 'स्याह आंधी' (किरण बख्शी) कटता हुआ कुछ (सुदर्श त्रिलोचन), आग (वीणाधर), 'जमीन ढूंढते पांव' (मनोज शर्मा) आदि।

इन फुटकर कहानियों के अतिरिक्त इस दशक में प्रकाशित कहानी-संग्रहों में भी उत्कृष्ट कहानियां हैं-'चीड़ें झुकती हैं', 'जख्म', 'चेरी के फूल', अपराजेय (अशोक जेरथ), 'पीली लड़की', 'रिश्ते नाते', 'रेवती' (राज भल्ला) 'अरथी', 'राग विराग', 'यह साहब वह साहब', 'शापिंग' (हरिकृष्ण कौल) 'एक जंगल वाहियात', 'रात का रखवाला', 'हवाचक्र', 'पराजित सीमान्त', 'बदनसीब सड़क' (ओम गोस्वामी) 'रोशनी से दूर', 'गांठदार धागे', 'टापू का आदमी', 'पिघलता हुआ गुस्सा', 'कालक्षयी' (छत्रपाल), 'कमाई', 'शिराए', 'दु:स्वप्न' 'दंशित' (डॉ. राजकुमार) 'दर्द', 'फालतू औरत', 'अनकही', 'भय' (दीदार सिंह) 'समझदारी का सुबूत', 'दूर और करीब', 'फांसी', 'गिद्ध', 'घरौंदा' (आदर्श) 'प्यास', 'चिट्ठी', 'भालू',

'जाल', 'व्यभिचारी' उर्फ 'अमलतास के फूल' (डॉ. राजकुमार) आदि।

इन सभी कहानियों की बुनाई जम्मू-कश्मीर प्रदेश की सांस्कृतिक सामाजिक जीवन स्थितियों के बीच से की गई है और आम आदमी के अन्तर्मन को खंगाला गया है, उसकी पींड़ा को सशक्त अभिव्यक्ति दी गई है, जो रूपवादी संगठन की अपेक्षा स्थिति और मन:स्थिति के अन्तर्नियोजन से विकसित हुई है। इन कहानियों में पात्र-सृजन की अपेक्षा टोन और टेक्सचर का परस्पर अन्तर्ग्रन्थन हुआ है और फालतू की चकाचौंध या अति कल्पना को त्यागा गया है जबकि आठवें दशक की अनेक अच्छी कहानियां फैंटेसीगत अवरोधों के कारण शिथिल रह गई थीं, उन कहानियों में लेखकों के रचना-शिल्प पर बाह्य दबाव कुछ अधिक रहे हैं और तथाकथित अश्लील प्रसंगों से बचने के लिए संकेतात्मकता का सहारा लिया गया था जिससे अभिव्यक्ति अवरुद्ध रह गई थी जबकि इस दशक की कहानियों में इस प्रकार के अवरोध नहीं के बराबर हैं। कथानक-गठन, संवाद-योजना, स्थिति और मन: स्थिति के चित्रण और मनोवैज्ञानिक अंतश्चेतन का सार्थक उपयोग करते हुए इन कहानियों को सुगठित किया गया है। भाषा और भाव-संयोजना की दृष्टि से भी ये कहानियां उत्कृष्ट तो हैं ही मौलिकता, सहजता, अनुभूतिगत तनाव, जिज्ञासा और कथारस की निरंतरता की दृष्टि से भी ये कहानियां उत्कृष्ट हैं।

इस दशक में एकमात्र उपन्यास प्रकाशित हुआ है-'धरती बोलती है।' भाषा, भाव और कथ्य की अभिव्यक्ति के साथ-साथ नर-नारी के दाम्पत्यगत रिश्तों को बड़ी कुशलता से परत दर परत उघाड़ा गया है। यह अच्छा पढ़ने योग्य उपन्यास है । नवें दशक में नाटक प्रकाशित नहीं हुआ।

कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि जम्मू कश्मीर में हिन्दी साहित्य का सृजन मूलतया स्वातंत्र्योत्तर काल में ही हुआ है और 1970 ई. के बाद ही नये भावबोध और शिल्प-संवेदना का साहित्य लिखा गया है। 1970 ई. से पूर्व के साहित्य का केन्द्रीय परम्पराभुक्त रहा है जबकि 1970 ई. के बाद के साहित्य केन्द्रीय तत्व है-मौलिक अनुभूति। 1970 ई. के बाद कश्मीर का हिन्दी लेखन राष्ट्रीय स्तर की मुख्य साहित्यधारा के समकक्ष हुआ है और यह क्रिया सतत विकासशील है। इस साहित्यधारा का प्रदेश के हिन्दी-साहित्य में उच्च स्थान है जिसका अध्ययन परमावश्यक है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

	लेखक	ग्रन्थ विधा	प्रकाशन वर्ष	
1.	अवतार कृष्ण राजदान	सौगात (कहानी)	1980	सीमान्त प्रकाशन दरियागंज, दिल्ली
2.	अशोक कुमार	1 डूबे हुए सूरज की तलाश (कविता)	1980	युवा हिन्दी लेखक संघ, जम्मू
3.	अशोक	1 आहत चीड़ें (कविता)	1979	निस्तन्द्र प्रकाशन, जम्मू

जेरथ	2 चेरी के फूल (कहानी)	1980	निस्तन्द्र प्रकाशन, जम्मू
	3 अनजाने क्षितिज (कहानी)	1984	मानवी प्रकाशन, रैम्बल उधमपुर
	4 सं० देवदार की छाया तले (कहानी)	1976	निस्तन्द्र प्रकाशन, जम्मू
4. अर्जुन नाथ रैणा	1 केसर के फूल (कहानी)	1973	ज्ञान मंदिर, नई दिल्ली, 16
5. आदर्श	1 प्रश्न तुमसे (कविता)	1975	आयास प्रकाशन, साधुबेला मार्ग, हरिद्वार।
	2 दस दरवाजे (कहानी)	1986	आयास प्रकाशन, उधमपुर
	3 चौराहे की आग (कविता)	1988	आयास प्रकाशन, उधमपुर
	4 सं. एक आयास अनायास (कविता)	1974	आयास प्रकाशन, हरिद्वार
6. आनन्दम्	1 देखती आकाश आंखें (कविता)	1968	साक्षर प्रकाशन, जम्मू
सुतीक्ष्ण कुमार	2 हम हैं बालक भारती (बाल कविता)	1970	साक्षर प्रकाशन, जम्मू
	3 कांप कांप रहा चक्रबन्धु (कविता)	1972	साक्षर प्रकाशन, जम्मू
	4 नौका का इतिहास (कविता)	1974	साक्षर प्रकाशन, जम्मू
	5 आखरी पन्ने (नाटक)	1981	साक्षर प्रकाशन, जम्मू
	6 कमल पत्र पर डोलता जलकण (कविता)	1984	साक्षर प्रकाशन, जम्मू
7. आजाद कुमार मानव नाहर	1 बादलों में कैद सूरज (कविता)	1979	निस्तन्द्र प्रकाशन, जम्मू
8. उषा व्यास 'छवि'	1 प्रतिदान (उपन्यास)	1968	त्रिशूल प्रकाशन, जालन्धर

ओम प्रकाश गुप्त	1 सागर के तीर (कविता)	1967	हिन्दी साहित्य मंडल, जम्मू
	2 युद्ध और शान्ति (नाटक)	1967	हिन्दी साहित्य मंडल, जम्मू
	3 लहर लहर हर नैया नाचे (कहानी)	1971	एस.चन्द एण्ड कं, दिल्ली
	4 सेतुओं की खोज (कविता)	1978	युवा हिन्दी लेखक मंच, जम्मू
	5 सुनो मार्कण्डेय (कविता)	1983	न्यू एज बुक सैंटर, अमृतसर
10. ओम गोस्वामी	1 निवार्सित (कहानी)	1974	गोस्वामी पुस्तक प्रकाशन, जम्मू
	2 बारह कहानियां (कहानी)	1981	पराग प्रकाशन, दिल्ली
	3 सर्द आग (कहानी)	1983	पराग प्रकाशन, दिल्ली
11. ओ.पी., शर्मा 'सारथी'	1 मरूस्थल (कविता)	1982	सारथी प्रकाशन, जैन बाजार, जम्मू
12. कृष्णा गुप्ता	1 उच्छवास (कविता)	1982	तरुण प्रकाशन, जम्मू
13. गंगा दत्त 'विनोद'	1 उल्लोल (कविता)	1963	राधा कृष्ण आनन्द, जम्मू
	2 मति मंथन (आलोचना)	1972	अजय पब्लिशर्ज, देवनगर दिल्ली
	3 अनुराग विराग (उपन्यास)	1980	सीमांत प्रकाशन दरियागंज दिल्ली
14. छत्रपाल	1 रोशनी से दूर (कहानी)	1982	पराग प्रकाशन, दिल्ली
15. जवाहर रैणा	सं 1 चौराहे पर खड़े बारह चेहरे (कविता)	1974	युवा हिन्दी लेखक, संघ, जम्मू
	सं 2 प्रिज्मों में बंटी किरणें (कहानी)	1974	युवा हिन्दी लेखक, संघ, जम्मू
16. जितेन्द्र उधमपुरी	1 फूल उदास हैं (कविता)	1984	प्रेम प्रकाशन, जम्मू
	2 दे दो एक बसंत (कविता)	1989	प्रेम प्रकाशन, जम्मू
17. दीदार सिंह	1 धुंधलके (कहानी)	1973	मल्होत्रा ब्रदर्ज़, जम्मू

	2 अनकही (कहानी)	1985	न्यूएज़ बुक सैंटर, अमृतसर
18. देवरत्न शास्त्री	1 सप्तपदी (कविता)	1978	प्रगति प्रकाशन, शास्त्री नगर, जम्मू
19. नरेन्द्र खजूरिया	1 रास्ता, कांटे और हाथ (नाटक)	प्रकाशन वर्ष नहीं	जे.आर. हरकिशन लाल चोपड़ा एण्ड ब्रदर्ज, जम्मू
20. 'निर्मल' 'विनोद'	1 पत्थरों का दरिया (कविता)	1976	न्यू एज़ बुक सैंटर, अमृतसर
	2 बयार के पंखों में (कविता)	1978	नीलम प्रकाशन, जम्मू
	3 साक्षी सन्ध्याओं के (कविता)	1982	नीलम प्रकाशन, जम्मू
21. पथिक ज्योतिश्वर	1 रुनझुन (कविता)	1966	रश्मि प्रकाशन, 115 नया अस्पताल रोड, जम्मू
	2 ड्राईंग रूम में कैक्टस (कविता)	1987	मानवी प्रकाशन रैम्बल, उधमपुर
22. प्रेम सागर 'भारती'	1 उपासना (उपन्यास)	1970	भारतीय साहित्य निधि, वीर मार्ग, जम्मू
23. पृथ्वी नाथ 'मधुप'	1 खोया चेहरा (कविता)	1973	कपूर ब्रदर्ज लाल चौक, श्रीनगर
	2 खुली आंख की दास्तान (कविता)	1985	क्रान्ति आफसैंट प्रिंटिंग हाऊस, जम्मू
24. पृथ्वी नाथ पुष्प 'सं०	सं. 1 पद्यांजली (कविता)	1961	ज. क. कल्चरल अकादमी, जम्मू
	2 गद्यांजली (गंद्य विधाएं)	1964	ज. क. कल्चरल अकादमी, जम्मू
25. बलनील देवम	1 उल्कापात (कहानी)	1977	निस्तन्द्र प्रकाशन, जम्मू
	2 अंतिम युद्ध की चाह (कविता)	1977	निस्तन्द्र प्रकाशन, जम्मू
	3 आग जल रही है (कविता)	1980	निस्तन्द्र प्रकाशन, जम्मू
	4 धूप की तरह खिला वर्तमान (कविता)	1980	निस्तन्द्र प्रकाशन, जम्मू
26. बंसी लाल सूरी	1 सहस्रमुखी (कविता)	1975	ज. क. कल्चरल अकादमी, जम्मू

27. ब्रह्मचारी शिवप्रसाद त्रिपाठी	1 शिवलोक (महा काव्य)	1968	ब्रह्मचारी शिव प्रसाद त्रिपाठी, रानी तालाब, जम्मू
28. भुवन पति शर्मा	1 साक्षात् के क्षण (कविता)	1987	मानवी प्रकाशन, रैम्बल, उधमपुर
29. महाराज कृष्ण संतोषी	इस बार शायद (कविता)	1980	निस्तन्द्र प्रकाशन, जम्मू
30. मनसा राम शर्मा 'चंचल'	सुषमा (कविता)	1965	मल्होत्रा ब्रदर्ज, जम्मू
31. मोती लाल केमु	तीन असंगत एकांकी (नाटक)	1960 के बाद नहीं	प्रतिभा प्रकाशन, लाल चौक, श्रीनगर
32. रमेश मेहता	1 खुले कमरे बंद द्वार (कविता)	1972	सुरेश शर्मा 402 अम्बफला, जम्मू
	2 तिनका तिनका घोंसला	1987	जयश्री प्रकाशन, दिल्ली
33. रत्न लाल 'शान्त'	1 खोटी किरणें (कविता)	1965	नीहार प्रकाशन, बड़ी याखला, श्री नगर
34. राज भल्ला	1 ये तस्वीरें (कहानी)	1976	386 रिहाड़ी, जम्मू
	2 कलाकार के आंसू (कहानी)	1980	इक्नामिक आर्ट प्रिंटर्ज, जम्मू
	3 सुरभि (कविता)	1990	386 रिहाड़ी, जम्मू
35. डॉ. राजकुमार	2 इस भूमण्डल पर (कविता)	1985	सातवाहन प्रकाशन, दिल्ली
	3 सांप मेरे साथी हैं (कविता)	1985	न्यू एज़ पब्लिकेशनज़, अमृतसर
	4 खुले हाथ (कहानी)	1985	स्वर्ण प्रकाशन, जम्मू
	5 जाल (कहानी)	1990	स्वर्ण प्रकाशन, जम्मू
	6. सं. अभिव्यक्त होने दो (कहानी)	1984	युवा हिन्दी लेखक संघ, जम्मू
36. वेद कुमारी रामप्रताप	1 मेरे गीत तुम्हारे गीत (कविता)	1987	ऋचा प्रकाशन, 173 रघुनाथ पुरा, जम्मू

37. वेद कुमारी	1 कश्मीर का संस्कृत साहित्य को योगदान (समीक्षा)	1978	ज.क. कल्चरल अकादमी, जम्मू
38. सत्य पाल श्री वत्स	1 मीठे बोल तीखे स्वर (कविता)	1988	विनोद बुक डिपो, जम्मू
39. सरिता	1 स्वप्न माला (कविता)	1982	राधा कृष्ण आनन्द, जम्मू
40. सुभाष भारद्वाज	1 ताण्डव (कविता)	1960	उपलब्ध नहीं,
	2 रेत का सागर (कविता)	1967	मल्होत्रा ब्रदर्ज, जम्मू
	3 शंकर शर्मा 'पिपासु' व्यक्तित्व और कृतित्व (समीक्षा)	1986	ज.क. कल्चरल अकादमी, जम्मू
41. सुरेश शास्त्री दबे	1 प्यार का सपना (उपन्यास)	1984	इन्दु पाकेट बुक्स, जम्मू
42. सुदर्श त्रिलोचन	1 धरती बोलती है (उपन्यास)	1980 के बाद	शिवामिठ प्रकाशन, 5-ए गांधी नगर, जम्मू
43. संतोष कौल	1 लक्ष्यहीन (कहानी)	1969	कौल प्रकाशन, विष्णुभवन जुल्हाका मुहल्ला, जम्मू
44. शकुन्तला सेठ	1 सरसिज (कविता)	1986	सरस्वती सेठ प्रकाशन, जम्मू
45. शंकर शर्मा 'पिपासु'	1 दो चान्द (कविता)	1965	उमा उर्मिला प्रकाशन, 369 मुहल्ला जुल्हाका, जम्मू
	2 सीमा का पंछी (कविता)	1967	उमा उर्मिला प्रकाशन, 369 मुहल्ला जुल्हाका, जम्मू
46. हरि कृष्ण कौल	1 टोकरी भर धूप (कहानी)	1976	सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली
	2 अरथी (कहानी)	1981	पराग प्रकाशन, दिल्ली
47. क्षेमलता बख्लू	1 दहकते अंगारे (उपन्यास)	1979	सीमान्त प्रकाशन, दरियागंज, दिल्ली

पत्रिकाएं

'हमारा साहित्य' अंक वर्ष 1964, 1965, 1966, 1967, 1968, 1969, 1970-71, 1972, 1974, 1978, 1987 ज. क. अकादमी

'सृजन के संदर्भ' 1986 ज०क० अकादमी, जम्मू

'शीराज़ा' के पूर्णांक

62 जुलाई 1982, 73 मार्च 1985, 74 मई
1985, 75 जुलाई 1985, 76 नवम्बर 1985, 77
जनवरी 1986, 80 जुलाई 1987 82 नवम्बर 1986,
83 जनवरी 1987, 84 मार्च 1987, 88 नवम्बर 1987,
89 जनवरी 1988, 90 मार्च 1988, 92 जुलाई 1988,
93 नवम्बर 1988, 94 जनवरी 1989, 95 मार्च 1989,
96 मई 1989, 97 जुलाई 1989, 98 सितम्बर 1989,
99 नवम्बर 1989, 100 जनवरी 1990, 101 मार्च 1990,
102 मई 1990, 102 जुलाई 1990, 103 सितम्बर 1990,
104 नवम्बर 1990, 105 जनवरी 1991 = 27 पूर्णांक

1990 ई. के बाद जम्मू-कश्मीर में प्रकाशित हिन्दी साहित्य

1. अग्निशेखर 'किसी भी समय' (कविता) (1992) संभावना प्रकाशन, हापुड़
2. 'आनन्दम् कि वे बोलें' (कविता) 1991 साक्षर प्रकाशन, जम्मू
   बाम के झरोखे से (कविता) 1992 साक्षर प्रकाशन, जम्मू
3. आकाश काले अक्षर (मिनी कहानी) 1994 Literary world Publishers Jammu.
4. उपेन्द्ररैणा 'आत्मदाह' (कविता) 1991 उपमन्यु प्रकाशन, दिल्ली
5. ओम प्रकाश गुप्त 'अरुणोदय' (महाकाव्य) 1993 युवा हिन्दी लेखक संघ, जम्मू
   फिर मुझे पहचान (कविता 1994) युवा हिन्दी लेखक संघ, जम्मू
6. ओ. पी. शर्मा 'सारथी' बिन पानी के दरिया, (उपन्यास) 1993 सारथी प्रकाशन, विजयगढ़ जैन हाजार जम्मू
7. चंचल डोगरा 'अपने से अलग' (कविता) 1992 जयश्री प्रकाशन, दिल्ली
8. महाराज कृष्ण संतोषी 'बर्फ पर नंगे पांव' (कविता) 1992 पल्लवी प्रकाशन, निर्माण बिहार, दिल्ली
9. शकुन्त दीपमाला 'कितिज लौट आयेगी?' (कहानी) 1994 युवा हिन्दी लेखक संघ, जम्मू
10. ऋचा 'कलिका' (कविता) 1991 ऋचा प्रकाशन 15/2 त्रिकुटा नगर, जम्मू